श्री विजयदेवसुर-संघ ग्रन्थांक १४

त्रिषष्टिशलाका पुरुष-चरित्र

पर्व-पहला-दूसरा

श्री आदिनाथजी और भरतचक्रवर्ती के चरित्र पर्व पहला

तथा

श्री अजितनाथजी और सगरचक्रवर्ती के चरित्र पर्व दूसरा

कलिकालसर्वज्ञ—

श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य-रचित संस्कृत ग्रंथका

हिन्दी अनुवाद

●

अनुवादक-

चौवीसतीर्थंकर चरित्र, जैनरामायण, आदर्शजीवन, महाजन आदि ग्रंथोंके

लेखक-साहित्यभूषण

श्री० कृष्णलाल वर्मा,

रिटायर्ड हिन्दी ऑर्गनाइजर म्यु० स्कूल्स बम्बई.

●

-: प्रकाशक :-

गोडीजी जैनमन्दिर और धार्मिक विभागोंके ट्रस्टी

●

[मूल्य पाँच रुपये]

—: प्रकाशक :—
श्री गोड़ीजी जैन मन्दिर और धार्मिक विभागोंके ट्रस्टियोंकी ओर से
मंगलदास ल० घडियाली
मानद मन्त्री श्रीज्ञानसमिति,
नं० १२, पायधुनी, बम्बई ३.

—: मुद्रक :—
पं० परमेष्ठीदास जैन,
जैनेन्द्र प्रेस, ललितपुर
(झाँसी)

Shree Vijayadevsur Sangh Series No. 11

Trishashtishalaka Purush Charitra

(Parv-First & Second)

Written in Sanskrit by
Kalikal-Sarvajyan
SHRIMADA HEMCHANDRACHARYA



Translated in Hindi
By
Sahitya Bhooshan
KRISHNALAL VARMA
Retired Hindi organiser
Municipal Upper Primary
G. & M. Schools Bombay



Published by
TRUSTEES OF GODIJI JAIN TEMPLE &
CHARITIES.



(Price Rupees Five Only)

Published by:-
SHRI MANGALDAS L. GHADIALI
For
The Managing trustees of
Shri Vijayadevsur sangh Gnan Samiti
The Godiji Jain Temple and Charities,
12, Poydhoni, Bombay 3.



Printed by-
Pandit Parmeshthidas Jain,
Jainendra Press,
Lalitpur (Jhansi)



★





विषय-सूची

●

पर्व पहला

छठा सर्ग— परिव्राजकोंकी उत्पत्ति: राजकुमार कपिलका परिव्राजक होना, अतिशय, अष्टापद, समवसरण, बारह पर्षदा, इन्द्रोत्सवकी स्थापना, विहार (४३५-४५६) ब्राह्मणों और यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति, भावी त्रिषष्टिशलाकापुरुष, शत्रुंजय, पुण्डरीक गणधरादि साधुओंका निर्वाण (४५६-४८१) भगवान आदिनाथ प्रभुका परिवार, निर्वाणोत्सव (४८१-४९०) भरतका अष्टापद पर मन्दिर बनवाना और प्रभुस्तुति करना (४९१-५०३) भरतका वैराग्य, गृहस्थावस्थामें केवलज्ञान, भरतकी दीक्षा और मुक्ति (५०३-५०९)

पर्व दूसरा

पहला सर्ग—श्री अजितनाथ चरित्र: प्रथम भव-विमलवाहन राजा, राज्यत्याग, प्रजापालनका उपदेश, दीक्षा, समिति, गुप्ति, परिसह (५१०-५४१) दूसरा भव-विजय विमानमें देव (५४१-४२)

दूसरा सर्ग—तीसरा भव-तीर्थंकरकी और सगर चक्रीकी माताओंके चौदह चौदह स्वप्न, स्वप्नोंके फल, अजितनाथजीका जन्म, इन्द्रादि देवों द्वारा जन्मोत्सव, सगरका जन्म; जन्मोत्सव (५४३-५९३)

तीसरा सर्ग—दोनोंका बचपन, यौवन, रूपवर्णन, विवाह, राज्यप्राप्ति, त्याग, सगरकी राज्यप्राप्ति, प्रभुकी दीक्षा (५९४-६२६) गुणस्थान, अजितनाथजीको केवलज्ञान, उत्सव, समवसरण, देशना, धर्मध्यान, आठ कर्म, चौदह राजलोक (६२६-६७२) गणधरोंकी स्थापना, अधिष्ठायक महायक्ष; अधिष्ठायिका अजितबला, सम्यक्त्वका माहात्म्य (६७२-६८४)

॥ श्री गोडी पार्श्वनाथाय नमः ॥

प्रकाशकोंका वक्तव्य

श्री गोडी पार्श्वनाथ जैन मन्दिर और धर्मादा विभागों के ट्रस्टी महाशयोंने ज्ञान विभागकी आयमेंसे एक अच्छी रकम ज्ञानप्रचारके लिए अलग निकाली है, और ज्ञानप्रचार में उसका उपयोग करनेके लिए एक ज्ञानसमिति बनाई है। समितिने उद्देशपूर्तिके लिए एक पुस्तकालयकी स्थापना की है; उसमें सभी तरहके हजारों ग्रन्थ हैं और जनता उनसे लाभ उठाती है। और एक ग्रंथमाला भी आरंभ की है। उसमें अब तक नीचे लिखे ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं।

(१) शास्त्रवार्ता समुच्चय (२) कुमारपाल भूपाल चरित्र (३) नवतत्त्व बावनी (४) सुयगडांग सूत्र भाग १ ला (५) पंच प्रतिक्रमण सूत्र (६) सुयगडांग सूत्र भाग दूसरा (७) Jainism in Gujrat (८) सेठ मोतीशाह (९) श्री भगवतीसूत्रम् [यूनिवरसिटीके विद्यार्थियोंके लिए] (१०) श्री उत्तराध्ययन सूत्र [विद्यार्थियोंके लिये प्रेसमें] इनमेंसे नं० १, २, ३ की एक प्रति भी स्टाकमें नहीं है।

अब इस ग्रन्थमालाके ११वें मनकेके रूपमें, कलि-काल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य रचित श्री त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चरित्रके पहले व दूसरे पर्वका हिंदी अनुवाद, प्रकाशित किया जा रहा है।

श्री त्रिषष्टि शलाका-पुरुष-चरित्रका सम्पूर्ण गुजराती अनुवाद भावनगरसे प्रकाशित हुआ है। परन्तु इसका उपयोग केवल गुजराती भाषा जाननेवाले ही कर सकते हैं। वर्तमानमें हिंदी राष्ट्रभाषा हुई है। लगभग बीस करोड़ लोग इसे बोलते और समझते हैं। इसलिए यदि हिंदी भाषामें ग्रंथ प्रकाशित किए जाएँ तो उसका उपयोग हिंदी जाननेवाले जैन और जैनेतर सभी कर सकें, लोग जैनधर्मको अच्छी तरह समझ सकें और जैनधर्मका प्रचार हो। यह बात अपने स्व० पंजाब केसरी, वयोवृद्ध आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजीने हमको (ज्ञान-समितिके कार्यकर्ताओंको) समझाई और उन्हींकी सूचना और प्रेरणासे हमारी समितिने सं० २००६ के पोस वदी ७ बुधवार ता० ७-१-५३ के दिन कार्यकारिणीकी बैठकमें, त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र पर्व पहले और दूसरेका हिंदी अनुवाद प्रकाशित करानेका प्रस्ताव किया। उसके अनुवादका काम प्रसिद्ध लेखक साहित्यभूषण श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा को सौंपा गया। श्री कृष्णलाल वर्मा अजैन घरमें जन्म लेकर भी जैनधर्मके अभ्यासी हैं, इतना ही नहीं वे पूर्णतया जैनाचार पालते हैं। इसलिए यद्यपि इनके अनुवादमें अपने सिद्धांतोंके विरुद्ध किसी बातका आना संभव नहीं है तथापि यदि किसी जगह कोई भूल रह गई हो तो विज्ञ पाठक उसे सुधारकर पढ़ें और हमें सूचित करें ताकि वह भूल सुधार दी जाए।

हिंदीभाषा जाननेवाले लोगोंके लिए यह ग्रंथ प्रकाशित किया जा रहा है। इसका मूल्य लागतसे भी कम रखा गया है। आशा है हिंदीभाषी हमारे इस प्रयत्नको सफल बनानेमें

सहायक होंगे और हमें पूरा ग्रंथ प्रकाशित करानेका अवसर देंगे ।

स्वर्गवासी, पंजावकेसरी आचार्यदेव श्री विजयवल्लभ सूरीश्वरजीकी, साहित्यका प्रचार करनेकी, प्रबल भावना थी। उस भावनाको सफल बनानेमें, यह संस्था जो कुछ कर सकी है उसके लिए वह अपनेको भाग्यवान मानती है।

निवेदक :–

१. पानाचन्द रूपचन्द झवेरी
२. केशवलाल वुलाखीदास
३. लक्ष्मीचन्द रायचन्द सरवैया
४. रतनचन्द चुन्नीलाल दालिया
५. नरोत्तम भगवानदास
६. फतहचन्द झवेरभाई
७. मोहनलाल दीपचन्द चौकसी
८. छोटालाल गिरधरभाई
९. मंगलदास लल्लुभाई घड़ियाली (मानद मन्त्री)

प्रस्तावना

जैनशास्त्र चार भागोंमें विभक्त हैं। वे हैं :—

१. द्रव्यानुयोग, २. चरितानुयोग अथवा कथानुयोग, ३. गणितानुयोग और ४. चरणकरणानुयोग।

१. द्रव्यानुयोगमें—तत्त्वज्ञान है। इसमें छः द्रव्य, व नवतत्त्व इत्यादिसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें हैं। या यह कहना चाहिए कि इसमें संसारके सभी पदार्थोंकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशका तात्त्विक विवेचन है।

२. चरितानुयोगमें—महात्माओंके चरित्र आकर्षक शैली-में कहे या लिखे गये हैं। इनका उद्देश्य कथाओं द्वारा मनोरं-जन करना गौण है और उदाहरणों द्वारा जीवनको उच्च बनानेकी शिक्षा देना मुख्य।

३. गणितानुयोगमें—गणितका विषय है। इसमें क्षेत्रका प्रमाण, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादिका व उनकी गति विधिका वर्णन और आठ तरहकी गणित-पद्धतिका विवेचन है।

४. चरणकरणानुयोगमें—चरणसत्तरी और करणसत्तरी है। (देखो टिप्पणी नम्बर १, ४.)

'त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्र' ग्रन्थ चरितानुयोगका है। इसमें दस पर्व हैं। हरएक पर्वमें भिन्न भिन्न चरित्र हैं।

नीचेके कोष्ठकमें उनकी संख्या बताई गई है।

पर्व	तीर्थंकर	चक्रवर्ती	वासुदेव	प्रति वासुदेव	बलभद्र	कुल
१ ला	१	१	×	×	×	२
२ रा	१	१	×	×	×	२
३ रा	८	×	×	×	×	८
४ था	५	२	५	५	५	२२
५ वाँ	१	१	×	×	×	२
६ ठा	४	४	२	२	२	१४
७ वाँ	१	२	१	१	१	६
८ वाँ	१	×	१	१	१	४
९ वाँ	१	१	×	×	×	२
१०वाँ	१	×	×	×	×	१
कुल	२४	१२	९	९	९	६३

१. पहले पर्वमें तीर्थंकर ऋषभदेवजी और चक्रवर्ती भरतके चरित्र हैं।

२. दूसरे पर्वमें तीर्थंकर अजितनाथजी और चक्रवर्ती सगरके चरित्र हैं।

३. तीसरे पर्वमें आठ तीर्थंकरोंके (संभवनाथजी, अभिनन्दन जी, सुमतिनाथजी, पद्मप्रभुजी, सुपार्श्वनाथजी, चन्द्रप्रभुजी, सुविधिनाथजी और शान्तिनाथजीके) चरित्र हैं।

४. चौथे पर्वमें ५ तीर्थंकरोंके (श्रेयांसनाथजी, वासुपूज्यजी, विमलनाथजी, अनंतनाथजी, और धर्मनाथजीके,) दो चक्रवर्तियोंके (मघवा और सनतकुमारके,) पाँच वासुदेवोंके (त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम व पुरुषसिंहके) पाँच प्रतिवासुदेवोंके (अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधु और निष्कंभके) और पाँच बलभद्रोंके (अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ व सुदर्शनके) चरित्र हैं।

५ पाँचवें पर्वमें तीर्थंकर श्रीशांतिनाथजी और चक्रवर्ती श्रीशांतिनाथजीके चरित्र हैं। (चक्रवर्ती शांतिनाथजी ही अंत में उसी भवमें तीर्थंकर भी हुए हैं। एक ही जीव एकही भवमें दो शलाका पुरुष हुआ है।)

६. छठे पर्वमें चार तीर्थंकरोंके (कुंथुनाथजी, अरनाथजी मल्लिनाथजी और मुनिसुव्रतस्वामीके) चार चक्रवर्तियोंके (कुंथुनाथजी, अरनाथजी, सुभोम और पद्मके) दो वासुदेवोंके (पुरुषपुंडरीक और दत्तके) दो प्रतिवासुदेवोंके (बलि और प्रह्लादके) और दो बलभद्रोंके (आनन्द और नन्दनके) कुल चौदह शलाका पुरुषोंके चरित्र हैं। (इनमेंसे कुंथुनाथ जी और अरनाथजी एकही भवमें चक्रवर्ती भी हुए और तीर्थंकर भी हुए इसलिए जीव बारह ही हैं।)

७. सातवें पर्वमें तीर्थंकर नमिनाथजीका, दो चक्रवर्तियों के (हरिषेण और जयके) वासुदेव लक्ष्मण, प्रतिवासुदेव रावण तथा बलभद्र रामके कुल छः शलाका पुरुषोंके चरित्र हैं।

८. आठवें पर्वमें तीर्थंकर नेमिनाथजी; वासुदेव श्रीकृष्ण जी; प्रतिवासुदेव जरासंध और बलभद्र बलदाऊजी ऐसे चार शलाका पुरुषोंके चरित्र हैं।

९. नवें पर्वमें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथजी और चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त के चरित्र हैं।

१०. दसवें पर्वमें तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामीका चरित्र है। शलाका पुरुषोंके चरित्रोंके सिवा इन पर्वोंमें अवांतर कथायें भी सैकड़ों हैं।

जिन आत्माओंके अधिकार, शक्ति व सम्पत्ति मनुष्य भवमें महान होते हैं और जिनका उसी भवमें या आनेवाले किसी मनुष्य भवमें मोक्ष जाना निश्चित होता है उनको 'शलाका पुरुष' कहते हैं। वर्तमान चौबीसमें ऐसे ६३ शलाका पुरुष हुए हैं।

इनमें से चौबीसों तीर्थंकर मोक्ष गये हैं। बारह चक्रवर्तियों मेंसे दस चक्रवर्ती संयमधारण कर मोक्ष गये हैं और सुभूम व ब्रह्मदत्त चक्री नरक गये हैं; वे अगले किसी मनुष्य भवसे मोक्ष जाएंगे; सभी वासुदेव और प्रतिवासुदेव तीव्र कषायी होनेसे नरक गए हैं; भविष्यमें किसी मनुष्य भवसे मोक्ष जाएँगे। कुछ बलभद्र वासुदेवोंकी की मृत्युके बाद छः महीनेके पश्चात् मोहबन्धन काट संयमधारणकर मोक्ष गए हैं और कुछ स्वर्ग गए हैं; आगामी किसी भवसे मोक्ष जाएँगे।

इन शलाका पुरुषोंमें आत्माएँ ५९ हैं और स्वरूप ६० हैं, कारण, शांतिनाथजी, कुंथुनाथजी तथा अर्हनाथजी एकही स्वरूपमें तीर्थंकर भी हुए हैं और चक्रवर्ती भी, इसलिए ६३ मेंसे ३ कम करने पर ६० स्वरूप रहते हैं। प्रथम वासुदेव त्रिपृष्ठका जीवही महावीर स्वामीका जीव हुआ। इसलिए चार जीव तिरसठ जीवोंमेंसे कम करनेसे उनसठ जीव हैं।

तिरसठ शलाका पुरुषोंकी माताएँ साठ थीं। कारण,शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरहनाथ ये तीनों एकही भवमें तीर्थंकर भी थे और चक्रवर्ती भी थे। तिरसठ शलाका पुरुषोंके पिता एकावन हैं। कारण, वासुदेव और बलदेव एकही पिताकी संतान होते हैं, इसलिए नौ वासुदेवों और नौ बलदेवोंके पिता नौ हुए और शांति, कुंथु और अरह ये तीनों एकही भवमें चक्रवर्ती भी थे और तीर्थंकर भी थे। इसलिए इनके पिता तीन थे। इस तरह कुल बारह कम करनेसे पिता इक्कावन हुए।

जीवोंके भव अनन्त होते हैं, परन्तु शलाका-पुरुष-चरित्र में तीर्थंकरोंके जो भव दिए गए हैं वे सम्यक्त्व प्राप्त करनेके बाद मोक्ष गए तब तकके ही दिए गए हैं। जैसे श्री ऋषभदेव भगवानके तेरह भवोंका वर्णन दिया गया है।

तीर्थंकर होनेवाला आत्मा सम्यक्त्व प्राप्त करनेके बाद तीसरे भवमें ही तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है। तीर्थंकर नामकर्म बीस स्थानकोंमेंसे एक-दोकी अथवा बीसोंकी आराधना करने से बँधता है। बीस स्थानकोंका वर्णन पहले पर्वके प्रथम सर्गमें (१०६ से १०९ पृष्ठ तक) आया है। इसको बीस पद भी कहते हैं।

त्रिषष्टि-शलाका-पुरुषचरित्र महाकाव्य है; इसलिए इसमें महाकाव्यके लक्षणके अनुसार ऋतुओंका वर्णन, नायक-नायिका वर्णन, देश नगरादिका वर्णन और युद्धका वर्णन और प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन आदि हैं।

यह ग्रन्थ गुजरातके राजा कुमारपालके आग्रहसे कलिकाल सर्वज्ञके नामसे ख्यात श्रीमद् हेमचन्द्राचार्यने संस्कृतपद्योंमें लिखा था। आचार्यश्रीने दसवें पर्वकी प्रशस्तिमें लिखा है, "कुमारपालने एक बार श्रीआचार्यसे नम्रतापूर्वक कहा, हे स्वामी आप निष्कारण उपकारक हैं। मैंने आपकी आज्ञासे नरकगतिके आयुष्यके निमित्तकारण शिकार, जुआ, मदिरापान इत्यादि दुर्गुणोंके आचरणोंका निषेध किया है। पुत्रहीन मरे हुए आदमीका धन लेनाभी मैंने छोड़ दिया है और पृथ्वीको मैंने अरिहंतोंके चैत्योंसे सुशोभित किया है, इसलिए मैं वर्तमानमें संप्रति राजाके समान हूँ। पहिले मेरे पूर्वज सिद्धराजकी प्रार्थनापर आपने वृत्ति सहित 'सिद्ध हेम व्याकरण' की रचना की थी। मेरे लिए भी आपने 'योगशास्त्र' की रचना की थी। सामान्य जनताके लिए भी आपने 'द्वाश्रय काव्य' 'छन्दानुशासन' 'काव्यानुशासन' 'अभिधान चिंतामणिकोश' वगैरा अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। यद्यपि आप सदा लोककल्याणके काम करते रहते हैं तथापि मेरी प्रार्थना है कि आप मुझ जैसे अल्पज्ञ लोगोंके लिए त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित्र लिखें।"

इसी ग्रन्थके पहले और दूसरे पर्वोंका यह हिन्दी अनुवाद है। जैनधर्म प्रसारक सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित मूल और उसके गुजराती अनुवादसे यह अनुवाद किया गया है। सभाका मैं कृतज्ञ हूँ। मूलमें जो सुभाषित आए हैं वे सभी मूल संस्कृत

ही में दिए गए हैं। और नीचे उनका हिन्दीमें अर्थ दिया गया है।

श्री हेमचन्द्राचार्य एक महान आचार्य हुए हैं। कुमारपाल इन्हींके उपदेशसे जैन बना था; इन्हींकी प्रेरणासे उसने गुजरातमें जैनधर्मका प्रचार किया था और अमारी घोषणा कराई थी। आचार्यश्रीका प्रतिभा अद्वितीय थी। इसीसे उन्होंने सर्व विषयोंके ग्रन्थ लिखे हैं। इनके विस्तृत ज्ञानके कारणही लोगोंने इनको कलिकाल सर्वज्ञकी उपाधि दी थी। पाश्चात्य विद्वानोंने भी इनको महान विद्वान माना है। प्रो० जेकोबीने परिशिष्ट पर्वकी प्रस्तावनामें लिखाहै, "शब्दानुशासनके समान महान व्याकरणके रचयिता, अभिधान चिंतामणिके समान महान कोशके बनाने वाले, छन्दानुशासनके समान पिंगल ग्रंथ के प्रणेता और काव्यानुशासनके समान काव्यका निर्माण करनेवालेकी विद्वत्ता किसी भी तरहकी भूलोंको दूर करनेके लिये काफी थी। × × × × हेमचन्द्राचार्यने यह ग्रन्थ बड़ीही चतुराईसे लिखा है। अपनी कथा पाठकोंके सामने रखनेमें उन्हें पूरी सफलता मिली है। इससे अच्छे ग्रन्थ होनेकी प्रसिद्धि पाए हुए ग्रन्थोंकी तरहही पाठक इस ग्रन्थको (त्रिषष्टि शलाका-पुरुष-चरित्रको) उत्साह और आनंदसे पढ़ेंगे।"

राज्यसंचालनकी हरेक बात पर ध्यान देनेवाले, हररोज राज्यसभामें जानेवाले और इतना होते हुए भी सतत ग्रन्थ-रचना करनेवाले असाधारण बुद्धिमान, इस कलिकालमें सर्वज्ञ के समान माने गए सूरिजीने जो ग्रन्थ रचे हैं वे सचमुचही जैनसमाजकी महान निधि हैं। इस निधिकी रक्षा करना और

इसका लोगोंमें प्रचार कर जैनधर्मकी महत्ता बढ़ाना जैनसमाज का मुख्य कर्तव्य है।

यह हिंदी अनुवाद स्वर्गीय आचार्य महाराज श्री विजयवल्लभसूरिजीकी आज्ञाके अनुसार किया गया है। उन्होंने प्रथम पर्वके दो सर्गोंका अनुवाद देखकर संतोष प्रकट किया था। उनका स्वर्गवास हो जानेके कारण वे पूरा अनुवाद न देख सके। उनकी इच्छा थी कि दसों पर्वोंका हिंदी अनुवाद शीघ्र प्रकाशित हो जाए।

पुस्तक प्रेसमें दी गई उसी समयसे मैं बीमार हूँ; अब तक भी मुझे बीमारीसे पूरी छुट्टी नहीं मिली है। इसी कारणसे कुछ शीपकोंमें और कुछ दूसरे स्थानोंमें सामान्य भूलें रह गई हैं। यद्यपि ये भूलें ऐसी नहीं हैं कि जिनसे कथाका रस भंग हो या कोई तात्त्विक बात गलत लिख दी गई हो तथापि जो भूलें रह गई हैं उनके लिए आशा है क्षमाशील पाठक क्षमा करेंगे। शीर्षक विषयसूचीके सही माने जाएँ और दूसरी जगह जो भूलें जान पड़ें वे शुद्धिपत्रसे सुधार ली जाएँ; फिर भी कोई छूट गई हो तो विद्वान पाठक उसे बतानेकी कृपा करें। हरेक बात अच्छी तरह समझानेकी कोशिश की गई है, जिस बातका स्पष्टीकरण मूलमें नहीं हो पाया है, उसका स्पष्टीकरण टिप्पणियोंमें किया गया है। कोई बात अस्पष्ट रह गई हो तो पाठक सूचना देनेकी कृपा करें। वह स्पष्ट की जाएगी।

हिंदी भाषामें श्वेताम्बर जैनग्रन्थ बहुतही कम हैं, ऐसी दशामें श्री गोडीजी महाराज जैनमंदिर और धार्मिक विभागों के ट्रस्टियोंने यह अनुवाद प्रकाशित कराया है, इसके लिए वे धन्यवादार्ह हैं। आशा है वे बाकी आठ पर्वोंका हिंदी अनुवाद भी शीघ्र ही प्रकाशित कर स्वर्गीय आचार्य महाराजश्रीकी इच्छा पूर्ण करेंगे और अहिंसा धर्मका संदेश समस्त हिंदी जानने वालों तक पहुँचाकर पुण्य और यशकी प्राप्ति करेंगे।

लक्ष्मी हाउस
लेडी हार्डिंज रोड, माहीम,
बंबई १६. ता० २-३-५६

कृष्णलाल वर्मा



श्री त्रिषष्टि शलाका
पुरुष-चरित्र

पर्व १ ला—सर्ग १ ला.

श्री आदिनाथ चरित्र

श्रीमदर्हते नमः

चौबीस तीर्थंकर—स्तुति

श्लोक : सकलार्हत्प्रतिष्ठानमधिष्ठानं शिवश्रियः ।
भूर्भुवःस्वस्त्रयीशान-मार्हन्त्यं प्रणिदध्महे ॥१॥

[जो सबके लिए पूजाके स्थान रूप हैं—पूज्य हैं, जो मोक्ष-लक्ष्मीके निवास रूप हैं, जो पाताल, पृथ्वी और स्वर्गके ईश्वर हैं (तीन लोकके स्वामी हैं) उन अर्हंतोंके समूहका हम ध्यान करते हैं ।]

नामाकृतिद्रव्यभावैः, पुनतस्त्रिजगज्जनम् ।
क्षेत्रे काले च सर्वस्मि-न्नर्हतः समुपास्महे ॥२॥

[जो सभी क्षेत्रोंमें, भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें, नामनिक्षेप, स्थापनानिक्षेप, द्रव्यनिक्षेप और भाव-निक्षेप-इन चार निक्षेपोंसे तीन लोकके लोगोंको पवित्र करते हैं उन अर्हंतोंकी हम सेवा करते हैं ।]

आदिमं पृथिवीनाथ-मादिमं निष्परिग्रहम् ।
आदिमं तीर्थनाथं च, ऋषभस्वामिनं स्तुमः ॥३॥

[जो पृथ्वीके प्रथम नाथ हैं, परिग्रहका त्याग करने वाले प्रथम (साधु) हैं, और प्रथम तीर्थंकर हैं, उन ऋषभ स्वामीकी हम स्तुति करते हैं ।]

अर्हंतमजितं विश्व-कमलाकरभास्करम् ।
अम्लान-केवलादर्श-संक्रांत-जगतं स्तुवे ॥४॥

[जो इस जगतरूपी कमलके सरोवरके लिए सूर्यके समान हैं, जिन्होंने अपने निर्मल केवलज्ञानरूपी दर्पणमें तीनों लोकोंको प्रतिबिंबित किया है (अर्थात् तीनों लोकोंकी बातें उनको इस तरह मालूम हो जाती हैं, जिस तरह आइनेमें अपना-सामने खड़े रहनेवालेका--संपूर्ण आकार मालूम हो जाता है), उन अर्हंत अजितकी (अजितनाथ तीर्थंकरकी) मैं स्तुति करता हूँ ।]

विश्वभव्य-जनाराम-कुल्या-तुल्या जयंति ताः ।
देशना समये वाचः, श्रीसंभवजगत्पतेः ॥५॥

[जगतके स्वामी श्रीसंभवनाथ (तीर्थंकर) के वचन—जो देशनाके (उपदेशके) समय बोले जाते हैं, और जो भव्य-जीव रूपी बगीचेको सींचनेमें (पानी पिलानेमें) जलधाराके समान हैं, वे वचन-सदा यशस्वी होते हैं ।]

अनेकांत-मतांभोधि-समुल्लासन-चंद्रमाः ।
दद्यादमंदमानंदं, भगवानभिनंदनः ॥६॥

[अनेकांत (स्याद्वाद) मतरूपी समुद्रको उल्लसित (आनंदित) करनेमें चंद्रमाके समान श्रीअभिनंदन भगवान बहुत आनंद दें ।]

द्युसत्किरीट-शाणाग्रो-त्तेजितांघ्रि-नखावलिः ।
भगवान् सुमतिस्वामी, तनोत्वभिमतानि वः ॥७॥

[देवताओंके मुकुट (ताज) रूपी शाण (सान) के अगले भागके कोनोंसे जिनकी नखपंक्ति चमकदार बनी है (यानी देवताओंके, आगे आकर, चरणोंमें मुकुट सहित मस्तक झुकानेसे, नाखून चमक रहे हैं) वे भगवान् सुमतिस्वामी तुम्हारी इच्छाएँ पूरी करें ।]

पद्मप्रभ-प्रभोर्देह-भासः पुष्णंतु वः श्रियम् ।
अंतरंगारिमथने, कोपाटोपादिवारुणाः ॥८॥

[अंतरंग वैरियों (काम, क्रोधादि) का मंथन (नाश) करनेके लिए कोपकी प्रबलतासे मानों लाल हो गई है ऐसी, पद्मप्रभ प्रभुके शरीरकी अरुण (लाल), कांति तुम्हारे कल्याणका (मोक्ष रूपी लक्ष्मीका) पोषण करे ।]

श्रीसुपार्श्व-जिनेंद्राय, महेंद्र-महितांघ्रये ।
नमश्चतुर्वर्णसंघ-गगनाभोगभास्वते ॥ ९ ॥

[चतुर्विध संघ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) रूपी आकाशके विस्तारमें सूर्यके समान चमकनेवाले, और इन्द्रोंके द्वारा पूजित चरणवाले श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेंद्रको नमस्कार हो।]

चंद्रप्रभ-प्रभोश्चंद्र-मरीचि-निचयोज्ज्वला ।
मूर्तिर्मूर्त-सितध्यान-निर्मितेव श्रियेऽस्तु वः ॥१०॥

चंद्रप्रभ प्रभुकी जो मूर्ति मूर्तिमंत शुक्ल ध्यानसे बनी-हुईसी मालूम होती है, वह तुम्हारे लिए ज्ञानलक्ष्मी प्राप्तिका

कारण हो। (तुमको इस मूर्तिके कारणसे ज्ञानरूपी लक्ष्मी मिले।)

करामलकवद्विश्वं, कलयन् केवलश्रिया।
अचिंत्यमाहात्म्यनिधिः, सुविधिर्बोधयेऽस्तु वः ॥११॥

इस श्लोकमें आए हुए 'करामलकवद्विश्वं' पद का समास दो तरहसे करके, दो तरहसे उसका अर्थ किया जाता है।

(१) कर+आमलक+वत्+विश्वं-हाथमें रखे हुए आँवलेकी तरह विश्वको।

(२) कर+अमल+क+वत्+विश्वं [कर-हाथ; अमल-निर्मल; क-जल; वत्-तरह; विश्वं-जगतको] हाथमें रखे हुए निर्मल जलकी तरह जगतको।

[१. जो हाथमें रखे हुए आँवलेकी तरह जगतको, अपनी केवलज्ञानश्रीसे जाननेवाले हैं और जो अचिंतनीय (जिसकी कल्पना भी न की जा सके ऐसे) प्रभावका खजाना हैं वे सुविधिनाथ भगवान तुम्हें सम्यकत्व पानेमें सहायक हों।

२. जो हाथमें रखे हुए निर्मल जलकी तरह जगतको, अपनी केवलज्ञानश्रीसे जाननेवाले हैं और जो अचिंतनीय प्रभावके खजाना हैं वे सुविधिनाथ भगवान तुमको बोध दें।]

सत्त्वानां परमानंद-कंदोद्भेदनवांबुदः।
स्याद्वादामृत-निस्यंदी, शीतलः पातु वो जिनः ॥१२॥

[जीवोंके उत्तमसे उत्तम आनंदका अंकुर फूटनेमें जो नवीन मेघके समान हैं (अर्थात जैसे नवीन मेघके जलसे जमीनमें अंकुर फूटते हैं वैसेही जिनकी वाणीसे हृदयमें

आनंद होता है) और जो स्याद्वादरूपी अमृत (उपदेशामृत) बरसानेवाले हैं वे शीतलनाथ जिनेश्वर तुम्हारी रक्षा करें]

भवरोगार्तजंतूना-मगदंकारदर्शनः ।
निःश्रेयसश्रीरमणः, श्रेयांसः श्रेयसेऽस्तु वः ॥ १४ ॥

[जिनका दर्शन संसार रूपी रोगसे दुखी जीवोंके लिए वैद्यके समान है और जो मोक्षरूपी लक्ष्मीके स्वामी हैं वे श्रेयांसनाथ तुम्हारे कल्याणका कारण हों।]

विश्वोपकारकीभूत-तीर्थकृत्कर्मनिर्मितिः ।
सुरासुरनरैः पूज्यो, वासुपूज्यः पुनातु वः ॥ १४ ॥

[सारी दुनियाकी भलाई करनेवाला तीर्थंकर नामकर्म जिन्होंने निर्माण किया है (पाया है), और जो देवों, (भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क, और वैमानिक देवों), असुरों और मनुष्योंके लिए पूज्य हैं वे वासुपूज्य तुम्हारी रक्षा करें ।]

विमलस्वामिनो वाचः, कतकक्षोदसोदराः ।
जयंति त्रिजगच्चेतो–जलनैर्मल्यहेतवः ॥ १५ ॥

[निर्मलीके चूर्णकी तरह, सारे संसारके लोगोंके चित्त रूपी जलको साफ करनेके कारणरूप श्रीविमलनाथके वचन सदा जयवंत हों ।]

स्वयंभूरमणस्पर्द्धि–करुणारसवारिणा ।
अनन्ताजिदनंतां वः, प्रयच्छतु सुखश्रियम् ॥ १६ ॥

[जिनका करुणारसरूपी जल स्वयंभूरमण नामक समुद्रके जलसे स्पर्द्धा करनेवाला है वे अनंतनाथ जिनेश्वर असीम मोक्षरूपी लक्ष्मी तुमको दें ।]

कल्पद्रुमसधर्माण-मिष्टप्राप्तौ शरीरिणाम् ।
चतुर्धाधर्मदेष्टारं, धर्मनाथमुपास्महे ॥ १७ ॥

[शरीर धारण करनेवाले जीवोंको, कल्पवृक्षकी तरह, चाही हुई चीज देनेवाले और चार तरहका (दान, शील, तप और भावरूप) धर्म बतानेवाले श्रीधर्मनाथकी हम उपासना करते हैं। (पूजा, सेवा, भक्ति, गुणगान करते हैं।)

सुधासोदरवाग्ज्योत्स्ना-निर्मलीकृतदिङ्मुखः ।
मृगलक्ष्मा तमःशांत्यै, शांतिनाथजिनोस्तु वः ॥१८॥

[जिनकी वाणीरूपी चांदनीने दिशाओंके मुखोंको निर्मल किया है और जो मृग (हिरण) के लक्षणवाले हैं वे श्री शांतिनाथ तुम्हारे अन्धकारकी शांतिके कारण बनें। (अर्थात् उनके निमित्तसे तुम्हारा अज्ञान हट जाए और तुमको शांति मिले।]

श्रीकुंथुनाथो भगवान्, सनाथोऽतिशयर्द्धिभिः ।
सुरासुरनृनाथाना-मेकनाथोस्तु वः श्रिये ॥ १९ ॥

[जो अतिशयोंकी¹ समृद्धिवाले हैं, और जो देवों और असुरोंके स्वामी इन्द्रके तथा मनुष्योंके स्वामी चक्रवर्तीके (इन्द्रों और चक्रवर्तियोंके भी) अद्वितीय स्वामी हैं वे श्री कुंथुनाथ तुम्हारे लिए कल्याण रूपी लक्ष्मीकी प्राप्तिके कारण हों। (अर्थात् उनके कारणसे तुमको कल्याण रूपी लक्ष्मी मिले।]

१. चौंतीस अतिशय होते हैं। विस्तृत विवेचन अन्तमें टिप्पणियोंमें देखो।

अरनाथस्तु भगवां-श्चतुर्थारनभोरविः ।
चतुर्थपुरुषार्थश्री-विलासं वितनोतु वः ॥ २० ॥

[चौथे आरे[1]रूपी आकाशमें सूरजके समान श्री अरनाथ तुम्हारे लिए चतुर्थ[2] पुरुषार्थरूपी लक्ष्मी (मुक्ति) के विलास का विस्तार करें । (अर्थात उनके कारणसे तुमको मुक्ति मिले ।)]

सुरासुरनराधीश–मयूरनववारिदम् ।
कर्मद्रून्मूलने हस्ति–मल्लं मल्लिमभिष्टुमः ॥ २१ ॥

[सुरों व असुरोंके स्वामी इन्द्र और मनुष्योंके स्वामी चक्रवर्ती (इंद्र और चक्रवर्ती) रूपी मोरोंके लिए जो नवीन मेघके समान हैं और कर्मरूपी वृक्षोंको उखाड़नेके लिए जो मस्त हाथीके समान हैं उन श्री मल्लिनाथकी हम स्तुति करते हैं । (अर्थात् जैसे नये मेघोंको देखकर मोर आनंदसे नाचने लगते हैं वैसे ही श्री मल्लिनाथ भगवानके दर्शन कर इंद्र व चक्रवर्ती आनंदित होते हैं; और जैसे मस्त हाथी वृक्षोंको उखाड़ देते हैं वैसे ही श्री मल्लिनाथ भगवान-ने अपने कर्मोंको उखाड़ कर फेंक दिया है इसलिए हम श्री मल्लिनाथ भगवानकी स्तुति करते हैं ।)]

जगन्महामोहनिद्रा--प्रत्यूषसमयोपमम् ।
मुनिसुव्रतनाथस्य, देशनावचनं स्तुमः ॥ २२ ॥

---

१. आरे छः हैं । वर्णन टिप्पणियोंमें देखो ।
२. पुरुषार्थ चार हैं । वर्णन ”

[श्री मुनिसुव्रतनाथकी जो वाणी सारी दुनियाकी मोहनीय कर्मरूपी निद्राके लिए प्रातःकालके समान है उस देशना-वाणीकी हम स्तुति करते हैं। (अर्थात्—जैसे सोते हुए प्राणी सवेरा होने पर जाग जाते हैं वैसे ही श्री मुनिसुव्रतनाथकी उपदेश-वाणी सुनकर मोहके वश में पड़े हुए प्राणी सावधान होकर आत्मसाधन करने लगते हैं।)]

लुठंतो नमतां मूर्ध्नि-निर्मलीकारकारणम् ।
वारिप्लवा इव नमेः, पांतु पादनखांशवः ॥ २३ ॥

[श्री नमिनाथके चरणोंके नखोंकी जो किरणें नमस्कार करते हुए प्राणियोंके मस्तकपर पड़ती हैं और जलके प्रवाहकी तरह (उनके दिलोंको) निर्मल करनेका कारण बनती हैं वे किरणें तुम्हारी रक्षा करें।]

यदुवंशसमुद्रेंदुः, कर्मकक्षहुताशनः ।
अरिष्टनेमिर्भगवान्, भूयाद्वोऽरिष्टनाशनः ॥ २४ ॥

[जो यदुवंशरूपी समुद्रके लिए चंद्रमाके समान हैं, और जो कर्मरूपी जंगलके लिए आगके समान हैं वे भगवान अरिष्टनेमि तुम्हारे अरिष्टोंको (दुःखों व आफतोंको) नाश करें।]

कमठे[1] धरणेंद्रे च, स्वोचितं कर्म कुर्वति ।
प्रभुस्तुल्यमनोवृत्तिः, पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः ॥ २५ ॥

---

१. कमठ और धरणेंद्रकी कथा टिप्पणियोंमें देखो।

[कमठ और धरणेंद्र दोनों अपने अपने योग्य काम करते थे; परंतु जिन श्री प्रभुकी भावना दोनोंके लिए समान थी वे श्री पार्श्वनाथ प्रभु तुम्हारे कल्याणका कारण बनें।]

कृतापराधेपि जने, कृपामंथरतारयोः।
ईषद्बाष्पार्द्रयोर्भद्रं, श्रीवीरजिननेत्रयोः ॥ २६ ॥

[श्री वीरभगवानकी जिन आँखोंकी पुतलियोंमें अपराध करनेवालोंपर[२] भी दया दिखाई देती है, और जो (उस दयाके कारण ही) आँसुओंसे भीज जाती हैं उन आँखोंका कल्याण हो।

\+ \+ \+ \+ \+

ऊपर चौवीस तीर्थंकरोंकी स्तुति की गई है। उन्हीं चौवीस तीर्थंकरोंके समयमें बारह चक्रवर्ती, नौ अर्द्ध चक्रवर्ती (वासुदेव), नौ बलदेव, नौ प्रति वासुदेव हुए हैं। ये सब इस अवसर्पिणी कालमें; इसी भरतक्षेत्रमें हुए हैं। ये त्रिषष्टि (६३) शलाका पुरुष[३] कहलाते हैं। उनमेंसे कइयोंको मोक्षलक्ष्मी प्राप्त हुई है और कइयोंको होनेवाली है। ऐसे शलाका--पुरुषत्व से सुशोभित महात्माओंके चरित्र हम कहते हैं। कारण—

"महात्मनां कीर्तनं हि, श्रेयो निश्रेयसास्पदम्।"

(महात्मा लोगोंके चरित्रोंका कीर्तन करना, कल्याण व मोक्षका स्थान रूप है।)

प्रथम भगवान ऋषभदेवजीका चरित्र कहा जाता है। उनको जिस भवमें सम्यक्त्व हुआ उसी भवसे यह कथन आरंभ होता है। इसीको उनका प्रथम भव कहा गया है।

(२७ से ३०)

१. वर्णन टिप्पणियों में देखो।

२. संगम अपराध करनेवाला था उसकी कथा टिप्पणियोंमें देखो।

३—जो उसी भव में अथवा आगामी भव में अवश्यमेव मोक्ष जानेवाले होते हैं—उनको शलाका पुरुष कहते हैं।

१. प्रथम भव-धन सेठ

जंबूद्वीप नामका एक (बड़ा) द्वीप (टापू) है। वह असंख्य समुद्रों तथा असंख्य (छोटे छोटे) टापुओं रूपी कंकणों तथा वज्र वेदिकाओंसे घिरा हुआ है। वह नदियों, क्षेत्रों, और वर्षधर[1] पर्वतोंसे सुशोभित है। उसके बीचमें सोने और रत्नों वाला मेरु पर्वत है। वह जंबूद्वीपकी नाभिके समान जान पड़ता है।

मेरु पर्वत एक लाख योजन[2] ऊँचा है। वह तीन मेखलाओंसे सुशोभित है। (पहली मेखला नंदन वन है, दूसरी मेखला सोमनस वन है और तीसरी मेखला पांडुक वन है।) उसकी चूलिका (शिखरकी समतल भूमि) चालीस योजनकी है, वह अनेक अर्हत-मंदिरोंसे सुशोभित है।

मेरु पर्वतकी पश्चिम तरफ विदेह क्षेत्र है। उसमें 'क्षिति प्रतिष्ठित' नामका नगर है। वह भूमंडलके मंडन (अलंकार) समान है। [३१-३४]

उस नगरमें 'प्रसन्नचन्द्र' नामका राजा था। वह धर्म-कर्ममें सावधान था। धन-वैभवसे वह इंद्रके समान सुशोभित होता था। [३५]

१—वर्ष अर्थात क्षेत्र। क्षेत्रों को जुदा करनेवाला पर्वत।
२—चार कोस या आठ मील का एक योजन होता है।

उस नगरमें एक 'धन' नामक सेठ रहता था। वह सारी संपत्तियोंका इसी तरह आश्रय था जैसे सारी नदियोंका आश्रय समुद्र है; वह यश रूपी दौलत-का स्वामी था। उस महत्वाकांक्षी सेठके पास इतना द्रव्य था कि जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। उस [द्रव्य] का उपयोग चाँदनीकी तरह लोगोंको लाभ पहुँचाना था। धन सेठ रूपी पर्वतसे सदाचार रूपी नदी बहती थी जो सारी पृथ्वीको पवित्र करती थी। वह सबके लिए सेव्य (सेवा करने लायक) था। उसमें यशरूपी वृक्ष-के, उदारता, गंभीरता और धीरजरूपी उत्तम बीज थे। उसके घर अनाजके ढेरोंकी तरह रत्नोंके ढेर थे और बोरोंकी तरह दिव्य वस्त्रोंके ढेर थे। जैसे जल--जंतुओं-से समुद्र शोभता है उसी तरह घोड़े, खच्चर, ऊँट आदि वाहनोंसे उसका घर शोभता था। शरीरमें जैसे प्राण-वायु मुख्य है उसी तरह वह धनी, गुणी और यशस्वी लोगोंमें मुख्य था। जैसे महासरोवरके पासकी जमीन झरनोंके जलसे भर जाती है वैसे ही उसके धनरूपी झरनोंसे उसकी नौकररूपी भूमि भी भर गई थी (उसके नौकर भी गरीब नहीं रहे थे।)

एक बार उसने उपस्कर (आभूषण, किराना, वगैरा) लेकर वसंतपुर जाना स्थिर किया। उस समय वह मूर्तिमान उत्साह मालूम होता था। उसने सारे शहरमें ढिंढोरा पिटवाया कि, "धन सेठ वसंतपुर जानेवाले हैं। इसलिए जिनकी इच्छा हो वे उनके साथ चलें। वे जिनके पास पात्र नहीं होगा उनको पात्र देंगे, जिनके पास सवारी नहीं

होगी उनको सवारी देंगे, जिनको मददकी जरूरत होगी उनको मदद देंगे और जिनके पास पाथेय (यात्राकी चीजें और खर्चके लिए धन) नहीं होगा उनको पाथेय देंगे, मार्गमें चोरों, लुटेरों और शिकारी जानवरोंसे रक्षा करेंगे, तथा जो अशक्त व रोगी होंगे उनकी अपने भाई-की तरह सेवा-शुश्रूषा करेंगे।" (४४--४८)

फिर जब कुलवान स्त्रियोंने कल्याण करनेवाली मंगल-विधि की तब वह रथमें बैठकर शुभ मुहूर्तमें घरसे रवाना हुआ और शहरके बाहर आया। (४९)

विदा होते समय ढोल बजा। उसकी आवाजको लोगोंने बुलावा करनेवाले लोगोंकी आवाज समझा। वसंतपुर जाने-की इच्छा रखनेवाले सभी शहरके बाहर, आकर जमा हो गए। (५०)

उसी समय साधुचर्यासे और धर्मसे पृथ्वीको पवित्र करते हुए धर्मघोष आचार्य सेठके पास आए। उनका मुख-मंडल सूर्यकी कांतिके समान तेजस्वी था।

उनको देखकर सेठ आदर सहित खड़ा हुआ। उसने विधि-पूर्वक हाथ जोड़कर आचार्यको. वंदना की और आनेका कारण पूछा।

आचार्यने कहा, "हम तुम्हारे साथ वसंतपुर आएँगे।" सुनकर सेठ बोला, "हे भगवन, आज मैं धन्य हुआ। (जैसे) साथ रखने लायक (धर्मात्माओंकी मुझे आवश्यकता थी वैसे) आप मेरे साथ चल रहे हैं। आप बड़ी खुशीसे मेरे साथ चलिए।"

फिर उसने अपने रसोइयोंको आज्ञा दी, "इन आचार्य महाराजके लिए तुम हमेशा अन्न-पानादि तैयार करना।" (५१-५५)

आचार्य बोले, "साधु ऐसा आहार-पानी लेते हैं जो उनके लिए न बनाया गया हो, न बनवाया गया हो, या न संकल्प ही किया गया हो। हे सेठ, कूआ, बावड़ी और तालावका जल भी-यदि अग्नि वगैरा से अचित न बनाया गया हो तो-साधु ग्रहण नहीं करते। यही जिन शासनका विधान है!"(५६-५७)

उसी समय किसीने आमोंसे भराहुआ थाल लाकर सेठके सामने रक्खा। उन पके हुए आमोंका सुन्दर रंग संध्याकालके फटे हुए बादलोंकासा था।

सेठने बड़े आनंदभरे मनसे आचार्यको कहा, "आप ये फल स्वीकार कर मुझे उपकृत कीजिए।"

आचार्यने कहा, "हे श्रद्धालु, ऐसे सचित फलोंको खानेकी बात तो दूर रही स्पर्श करना भी साधुओंके लिए वर्जित है।"

सेठने कहा, "आप किसी महा कठिन व्रतके धारी हैं। ऐसे कठिन व्रतको चतुर मनुष्य तक, अगर वह प्रमादी होता है तो, एक दिन भी नहीं पाल सकता। फिर भी आप साथ चलिए। मैं आपको वही आहार दूँगा, जो आपके लिए ग्राह्य होगा।" इस तरह कह, उसने वन्दना करके मुनिको विदा किया। [५८-६२]

सेठ अपने चंचल घोड़ों, ऊँटों, गाड़ियों और बैलोंके साथ इस तरह आगे बढ़ा जैसे समुद्र [ज्वारके समय]

चंचल जलतरंगोंसे आगे बढ़ता है। आचार्य भी अपने साधु-परिवार सहित रवाना हुए। साधु ऐसे मालूम होते थे, मानों वे मूर्तिमंत मूल गुण और उत्तर गुण हों। [६३-६४]

संघके आगे धन सेठ चलता था और उसके पीछे उसका मित्र मणिभद्र चलता था। उसके दोनों तरफ घुड़सवार चल रहे थे। उस समय आकाश, सेठके सफेद छत्रोंसे शरद्ऋतुके बादलोंसे घिरा हुआसा और मयूर-छत्रोंसे [मोरपंखोंके बने छत्रोंसे] वर्षा ऋतुके बादलोंसे घिरा हुआसा मालूम होता था। व्यापारकी भारी चीजोंको ऊँट, बैल, खच्चर और गधे इस तरह उठाए लिए जा रहे थे जैसे पृथ्वीको धनवात वहन करता है।

वेगसे चलते हुए ऊँटोंके पैर कब पृथ्वीपर टिकते थे और कब उठते थे यह समझमें नहीं आता था, इससे वे ऐसे मालूम होते थे, मानों मृग हैं। और खच्चरोंकी पीठ पर लदे हुए बोरे उछलते हुए फैलकर ऐसे मालूम होते थे मानों वे उड़ते पंखियोंके पंख हैं। [६५-६८]

बड़ी बड़ी गाड़ियाँ—जिनमें बैठकर युवक खेल सकते थे—चलती हुई ऐसी मालूम होती थीं, मानों घर जा रहे हैं। [६९]

पानी ले जानेवाले बड़े शरीरों और कंधोंवाले भैंसे ऐसे जान पड़ते थे मानों बादल-जमीन पर उतर आए हैं और लोगोंकी प्यास बुझा रहे हैं। (७०)

उपस्करोंसे भरी चलती हुई गाड़ियोंकी आवाज ऐसी मालूम होती थी मानों भारसे दबी हुई पृथ्वी चिल्ला रही है। (७१)

१—टिप्पणी देखो। २ आर्योंके अनुसार घनवातसे पृथ्वी टिकी हुई है।

बैलों, ऊटों और घोड़ों (के पैरों) से उड़ी हुई धूलि आकाश-में इस तरह छा गई कि दिन भी सूईसे बींधा जा सके ऐसे अंधकारसे पूर्ण हो गया। (७२)

बैलोंके (गलोंमें बँधे हुए) घंटोंकी आवाजोंने मानों दिशाओंके मुखोंको बहिरा बना दिया था। चमरी मृग (सुरा गौएँ) आवाजोंसे डरकर, अपने बच्चों सहित, कान खड़े किए दूर खड़ी (आवाजोंकी तरफ) देख रही थीं। (७३)

बहुत बोझा उठाकर चलते हुए ऊँट अपनी गरदनें टेढ़ी करके वृक्षोंके अगले भागको बार बार चाटते थे। (७४)

जिनकी पीठों पर (मालसे भरे) थैले रखे थे वे गधे अपने कान खड़े और गरदनें सीधीकर एक दूसरेको काटते थे और (चलते हुए) पीछे रह जाते थे। (७५)

हथियार-बंद रक्षकोंसे घिरकर चलता हुआ सेठ ऐसा मालूम होता था मानों वह वज्रके पिंजरेमें बैठा जा रहा है। (७६)

बहुतसा धन और सामान लेकर जाते हुए सार्थ (व्या-पारियोंके समूह) से चोर और लुटेरे इसी तरह दूर रहते थे जैसे मणिधर सर्पसे लोग दूर रहते हैं। (७७)

सेठ धनवान और गरीब सबके योग-क्षेमकी (कुशल-मंगलकी*) समान भावसे देखभाल करता था और वह सबके साथ इस तरह चलता था जैसे यूथपति हाथी सब छोटे-बड़े हाथियोंको साथ लेकर चलता है। खुशीसे चम-कती आँखोंके साथ लोग उसका आदर करते थे। वह सूर्य-की तरह, प्रति दिन, आगे बढ़ता था। (७८-७९)

---

* योग–अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति कराना।

क्षेम–प्राप्त वस्तुकी रक्षा करना।

ग्रीष्म वर्णन

सरोवरों और नदियोंके पानीको, रातकी तरह, कम करनेवाला (गरमीके दिनोंमें नदियों और तालावोंका पानी सूखता है और रातें छोटी होती हैं ।) मुसाफिरोंके लिए दुखदायक भयंकर गरमीका मौसम आ पहुँचा । भट्टीकी आगकी तरह असह्य लूएँ (गरम हवाएँ) चलने लगीं । अंगारोंके समान गरम धूपको सूरज चारों तरफ फैलाने लगा। सार्थके लोग रस्तेमें आनेवाले वृक्षोंके नीचे चलते चलते रुक कर थोड़ा थोड़ा विश्राम लेते हुए आगे बढ़ने लगे । पानीकी हरेक प्याऊपर जाकर लोग पानी पीने और थोड़ा लेटने लगे । भैंसे अपनी जीभें बाहर निकालने लगे; मानों निसासोंने उनको बाहर धकेल दिया है । वे चलानेवालोंके आघातोंकी (लाठी वगैरहके मारकी) कुछ परवाह न कर कीचड़में घुसने लगे । सारथी चाबुकोंसे पीटते थे तो भी बैल मारकी परवाह न करते हुए वृक्षोंकी. जो वृक्ष रस्तोंसे दूर होते थे उनकी, छायामें जा खड़े होते थे। मोम जैसे लोहेकी गरम कील लगनेसे पिघलने लगता है वैसेही सूरजकी गरम किरणें लगनेसे लोगोंके शरीर पिघलने लगे (उनके शरीरोंसे पसीना बहने लगा ।) आगमें तपाए हुए लोहेकी तरह सूरज अपनी किरणोंको गरम करने लगा । मार्गकी धूल कंडोंकी भूभलसी जलने लगी । सार्थकी स्त्रियाँ मार्गमें आनेवाली नदियोंमें (जहाँ बहाव न हो और एक तरफ नदीमें पानी भर रहा हो) उतर कर नहाने और कमलिनीकी डंडियाँ तोड़कर गलोंमें लपेटने लगीं । पसीनेसे तर कपड़े पहने हुए स्त्रियाँ ऐसी मालूम होती थीं, मानों वे अभी नहाकर भीगे कपड़े पहने आ रही हैं । मुसाफिर लोग ढाक, ताड़पत्र, हिंताल (छोटी जातिका एक खजूर),

कमल और केलेके पत्तोंके पंखे बना बना कर हवा करने और अपने शरीरका पसीना सुखाने लगे। (८०-८६)

वर्षा ऋतु

फिर गरमीके मौसमकी तरहही मुसाफिरोंकी गतिको रोकनेवाली मेघोंके चिह्नोंवाली वर्षा ऋतु (बारिश का मौसम) आई। यत्तकी तरह धनुष धारण किए और जलधारा रूपी बाण बरसाते आकाशमें मेघ आ चढ़ा। साथके सभी लोगों-ने भयभीत नजरसे उसको देखा। बालक अधजली लकड़ी लेकर जैसे घुमाते और डराते हैं वैसेही,मेघ बिजली चमकाकर साथके लोगोंको भयभीत करने लगा। आकाश तक गए (बहुत ऊँचे ऊँचे उछलते) हुए जलके पूरने मुसाफिरोंके दिलोंकी तरह ही नदियोंके किनारोंको तोड़ डाला। बादलोंके पानीने जमीनके ऊँचे और नीचे सभी भागोंको समान बना दिया। ठीकही कहा है:—

"जड़ानामुदये हंत विवेकः कीदृशो भवेत् ।"

[१. जड़ (मूर्ख) लोगोंका उदय होने पर भी, उनकी तरक्की होने पर भी, उनमें विवेक कैसे आ सकता है ? २. जल जब बहुत बढ़ता है तब उसमें विवेक नहीं रहता।]

जल, काँटों और कीचड़के कारण मार्ग दुर्गम हो गया था, इसलिए उसपर एक कोस चलना भी सौ योजन चलनेके समान मालूम होता था। मुसाफिर घुटने तक चढ़े हुए पानीमें इस तरह धीरे धीरे चल रहे थे, मानों वे अभीही कैदसे छूटकर

आ रहे हैं। (कीचमें पैरोंमें जब भारी भारी बेड़ियाँ होती हैं, तब कोई तेज नहीं चल सकता है।) इसके सिवा, पानी फैल रहा था, वह ऐसा मालूम पड़ता था मानों किसी क्रुद्ध देवने मुसाफिरों का रस्ता रोकनेके लिए अपने हाथ फैलाए हैं। गाड़ियाँ कीचड़में फँस गई थीं, ऐसा मालूम होता था कि बहुतसे गाड़ियोंके द्वारा जमीनकी छाती रौंदी जाती थी, इसलिए उसने नाराज होकर गाड़ियोंको पकड़ लिया था। ऊँटोंके पैर नहीं उठते थे इसलिए सवारोंने नीचे उतर, ऊँटोंके पैरोंमें रस्सी डाल उनको खींचना शुरू किया, मगर पैरोंकी कमजोरी (और कीचड़की अधिकता) के कारण वे गिर गिर पड़ने लगे। (९०–९९)

सार्थके सबको इस तरह रस्ते चलना बहुत कठिन हो गया था, इसलिए धनसेठने (ऊँची टेकरी देखकर उस पर) तंबू बाँधे और वर्षा वहीं जंगलमें रहना स्थिर किया। दूसरे लोगोंने भी झोंपड़ियाँ या तंबू बाँध लिए (और आरामसे वर्षाकाल बिताने लगे) ठीक ही कहा है:—

"नहि सीदंति कुर्वंतो देशकालोचितां क्रियाम् ।"

[जो देश और कालको देखकर काम करता है वह दुखी नहीं होता।] (१००-१०४)

सेठके मित्र मणिभद्रने झोंपड़ीका उपाश्रय बताया। वह जीव-जंतु रहित जमीन पर था, इसलिए सूरिजी अपने साधुओं सहित उसमें रहने लगे।

सार्थमें लोग अधिक थे और बहुत दिनों तक रहना पड़ा था, इसलिए उनके पास जो पाथेय और घास थे वे समाप्त हो

चले। इसलिए साथमें आए हुए लोग भूखसे घबराकर मैले कपड़ोंवाले तापसोंकी तरह, कंद-मूलादि भक्षण करने के लिए इधर-उधर घूमने लगे। (१०२-१०४)

एक दिन शामके वक्त सेठके मित्र मणिभद्रने साथके लोगोंकी दुःखकथा सेठको सुनाई। उसे सुनकर सार्थके लोगोंके दुःखोंकी चिंतामें वह इस तरह निश्चल होकर बैठ रहा जिस तरह हवा नहीं चलती है तब समुद्र निश्चल हो जाता है। (१०५-१०६)

इस तरह चिंतामें पड़े हुए सेठको क्षणमात्रमें नींद आ गई। कारण—

"अतिदुःखातिसौख्ये हि तस्याः प्रथमकारणम्।"

[बहुत दुःख और बहुत सुख निद्राका पहला कारण है।] (१०७)

रातकी अन्तिम पहरमें शुभ आशय रखने वाला अश्व-शाला (घुड़साल) का एक चौकीदार कहने लगा—

"हमारे स्वामीका यश चारों दिशाओंमें फैला हुआ है। अभी बड़ाही बुरा समय आया है तो भी वे अपने आश्रित लोगोंका अच्छी तरह पालन-पोषण कर रहे हैं।" (१०८-१०९)

सेठने यह बात सुनी। वह सोचने लगा, किसीने मुझे उपालंभ दिया है। मेरे साथमें कौन दुःखी है? अरे हाँ! मेरे साथ धर्मघोष आचार्य आए हुए हैं। वे अपने लिए नहीं बनाया और नहीं बनवाया हुआ प्रासुक(अचित)भिक्षान्न खाकर ही पेट भरते हैं। वे कंद, मूल और फलादि पदार्थोंको तो कभी छूते तक नहीं हैं। इस समय दुःखी सार्थमें उनकी क्या दशा हुई होगी?

जिनको, मैं यह कहकर लाया था कि मैं रस्तेमें आपकी सब तरहसे व्यवस्था करूँगा उनको आजतक मैंने याद भी नहीं किया। अब मैं जाकर किस तरह उनको अपना मुँह दिखाऊँगा। तो भी मैं आजही जाकर उनके दर्शन करूँगा और अपने पापको धोऊँगा। कारण, इसके सिवा उन, सब तरहकी इच्छाओंसे रहित, महात्माओंकी मैं दूसरी क्या सेवा कर सकता हूँ? (११०-११५)

इस तरहके विचारके बाद दर्शनके लिए आतुर बने हुए, सेठको रातकी चौथी पहर दूसरी पहरसी मालूम होने लगी। रात बीत गई। सवेरा हुआ। अच्छे वस्त्राभूषण (कपड़े और जेवर) पहनकर सेठ अपने खास खास आदमियोंको साथ ले सूरिजीकी, आश्रयस्थान, झोंपड़ीमें गया। वह झोंपड़ी ढाकके पत्तोंसे छाई हुई थी। उसके घासकी दीवारें थीं। उनमें पड़े हुए छेद कर्मोंके आस्रवसे मालूम होते थे। वह निर्जीव जमीन पर बनी हुई थी। (११६-११८)

वहाँ उसने धर्मघोष आचार्य को देखा। उसे जान पड़ा कि आचार्य पापरूपी समुद्रको मथनेवाले हैं (पापोंको नाश करनेवाले हैं), मोक्षके मार्ग हैं, धर्मके मंडप हैं, तेजके स्थान हैं, कषायरूपी गुल्म (घास विशेष) के लिए हिमके समान हैं, कल्याण लक्ष्मीके हार हैं, संघके अद्वैत भूषण हैं, मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंके लिए कल्पवृक्ष हैं, तपके साक्षात अवतार हैं, मूर्तिमान आगम हैं और तीर्थको चलानेवाले तीर्थंकर हैं। (११९-१२१)

उनके आसपास दूसरे मुनि थे। उनमेंसे कोई ध्यान लगा रहे थे, कोई मौन धारण किए बैठे थे, किसीने कायोत्सर्ग

किया था, कोई आगमका अध्ययन कर रहे थे, कोई वाचना दे रहे थे (पढ़ा रहे थे), कोई भूमि प्रमार्जन कर रहे थे (इस तरह जमीनको साफ कर रहे थे कि उसपरसे जीव हट जाएं और कोई मरने न पावे), कोई गुरुको वंदना कर रहे थे, कोई धर्मकथा सुना रहे थे, कोई श्रुत (शास्त्र) का उद्‌दाहरण दे रहे थे, कोई अनुज्ञा (इजाज़त या आज्ञा) दे रहे थे और कोई तत्व समझा रहे थे। (१२२-१२४)

सेठने पहले धर्मघोष आचार्य महाराजकी और फिर क्रमशः सब साधुओंकी वंदना की। आचार्य ने सेठको पापका नाश करनेवाला 'धर्मलाभ' (आशीर्वाद) दिया। (१२५)

फिर वह आचार्यश्रीके चरणकमलोंमें राजहंसकी तरह प्रसन्नतापूर्वक बैठा और बोला, "हे भगवन्! मैंने आपको अपने साथ आनेके लिए कहा था; मगर मेरे वे वचन शरदऋतुके बादलोंकी गर्जनाके समान मिथ्या आडम्बरही हुए। कारण, उस दिनके बाद मैंने आजतक न आपके दर्शन किए, न आपकी वंदनाकी और न अन्नपान या वस्त्रसे आपका सत्कार ही किया। जागते हुए भी मैं सोता रहा। मैंने आपकी अवज्ञा की, और अपने वचनका भंग किया। हे महाराज, मेरे प्रमादाचरणके लिए (मैंने लापरवाही की इसके लिए) आप मुझे क्षमा करें। (आप तो पृथ्वीके समान क्षमाशील हैं।)" कहा है—

"सर्वंसह महांतो हि सदा सर्वंसहोपमाः।"

[महात्मा सदा सब कुछ सहते हैं इसलिए वे सदा सबकुछ सहन करनेवाली(पृथ्वी) के जैसे (गंभीर) होते हैं।] (१२६-१३०)

सेठकी बातें सुनकर सूरिजी बोले, "हे सार्थवाह! (हे सेठ) तुमने रस्तेमें हमको हिंसक पशुओंसे और चोरोंसे बचाया है। ऐसा करके तुमने हमारा सब तरहसे सम्मान किया है। तुम्हारे साथके लोगही हमको आहारपानी (खानापीना) देते रहे हैं, हमको (खानेपीनेकी) कोई तकलीफ नहीं हुई। इसलिए हे महामति! आप जरासा भी खेद न करें।" (१३१-१३२)

सेठ बोला "सन्त पुरुष सदा सब जगह गुणही देखते हैं।"

"गुणानेव संतः पश्यंति सर्वतः।"

इसलिए आप मुझ दोषीके लिए भी ऐसी बातें कहते हैं। मैं अपने प्रमादके (लापरवाहीके) लिए बड़ा शरमिंदा हूँ। (अब) आप प्रसन्न होकर साधुओंको आहारपानी लेनेके लिए भेजिए। मैं इच्छा के अनुकूल आहारपानी दूँगा।

(१३३-१३४)

आचार्य बोले, "तुम जानते हो कि वर्तमान योगसे अकृत (नहीं किया हुआ) अकारित (नहीं कराया हुआ) और अचित (जीव रहित) अन्नादिकही हमारे उपयोगमें आते हैं। (१३५)

"मैं ऐसाही आहारपानी साधुओंको वहोराऊँगा (दूँगा) जो आपके उपयोगमें आने लायक होगा।" यह कहकर सार्थवाह अपने डेरेपर गया। (१३६)

उसके बाद दो साधु आहारपानी लेने उसके डेरेपर गए। दैवयोगसे कोई चीज साधुओंको देनेलायक उसके डेरेपर

न मिली। सार्थवाह इधर-उधर देखने लगा। उसे उसके निर्मल अंत:करणके समान ताज़ा घी दिखाई दिया। (१३७-१३८)

सार्थवाहने पूछा, "यह आपको कल्पेगा (आपके उपयोगमें आ सकेगा ?)"

साधुओंने "कल्पेगा" कहकर पात्र (लकड़ी की बनी हुई पतीली विशेष) रखा। (१३६)

"मैं धन्य हुआ, मैं कृतार्थ हुआ, मैं पुण्यवान हुआ, सोचते हुए सेठका शरीर रोमांचित हो गया। उसने अपने हाथोंसे साधुओंको घी वहोराया और मुनियोंकी अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे वंदना की; मानो उसने आनन्दाश्रुसे पुण्यांकुर को अंकुरित किया। साधु सर्व कल्याणोंकी सिद्धिके लिए सिद्धमंत्रके समान 'धर्मलाभ' देकर अपने डेरेपर गए। सार्थवाहको (धनसेठको) मोक्षवृक्षके बीजके समान दुर्लभ ऐसा बोध बीज (सम्यक्त्व) प्राप्त हुआ। रातको सार्थवाह फिर मुनियों-के डेरेपर गया, और गुरु महाराजको वंदनाकर, उनसे आज्ञा माँग, (हाथ जोड़) बैठा। धर्मघोषसूरि ने उसको श्रुतकेवलीकी तरह मेघके समान गंभीर वाणीमें नीचे लिखा उपदेश दिया। (१४०-१४५)

"धर्म उत्कृष्ट मंगल है, स्वर्ग और मोक्षको देनेवाला है और संसाररूपी वनको पार करनेमें रस्ता दिखानेवाला है। धर्म माताकी तरह पोषण करता है, पिताकी तरह रक्षा करता है, मित्रकी तरह प्रसन्न करता है, बन्धुकी तरह स्नेह रखता है, गुरुकी तरह उजले गुणोंमें ऊँची जगह चढ़ाता है और स्वामीकी तरह बहुत प्रतिष्ठित बनाता है। धर्म सुखोंका बड़ा महल है,

शत्रुओंके संकटमें कवच है, नरकोंसे पैदा हुई जड़ताको मिटानेमें धूप है और पापके मर्मको जाननेवाला है। धर्मसे जीव राजा बनता है, बलदेव होता है, अर्द्धचक्री (वासुदेव) होता है, चक्रवर्ती होता है, देव और इन्द्र होता है, ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान (नामके स्वर्गों) में अहमिन्द्र होता है और धर्महीसे तीर्थंकर भी बनता है। धर्मसे क्या क्या नहीं मिलता है? (सब कुछ मिलता है।) (१४३–१५१)

"दुर्गतिप्रपतज्जंतुधारणाद्धर्म उच्यते ।"

[दुर्गतिमें गिरते हुए जीवोंको जो धारण करता है (बचाता है) उसे धर्म कहते हैं।] वह चार तरहका है। (उनके नाम हैं) दान, शील, तप और भावना। (१५२)

दानधर्म तीन तरहका है। उनके नाम हैं १. ज्ञानदान २. अभयदान ३. धर्मोपग्रहदान। (१५३)

धर्म नहीं जाननेवालोंको वाचन या उपदेश आदिका दान देना अथवा ज्ञान पानेके साधनोंका दान देना ज्ञानदान कहलाता है। ज्ञानदानसे प्राणी अपने हिताहितको जानता है; और उससे हित-अहितको समझ, जीवादि तत्त्वोंको पहचान विरति (वैराग्य) प्राप्त करता है। ज्ञानदानसे प्राणी उज्ज्वल केवलज्ञान पाता है और सर्व लोक पर कृपाकर लोकाग्र भागपर आरूढ़ होता है (मोक्षमें जाता है)। (१५४–१५६)

अभयदानका अभिप्राय है, मन, वचन और कायासे जीवको न मारना, न मरवाना और न मारनेवालेका अनुमोदन करना (मारनेके कामको भला न बताना।) (१५७)

जीव दो तरहके होते हैं—स्थावर और त्रस। उनके भी दो भेद हैं—पर्याप्त[1] और अपर्याप्त[2]।

पर्याप्तियाँ छः तरहकी होती हैं। उनके नाम हैं १. आहार २. शरीर, ३. इंद्रिय, ४. श्वासोश्वास, ५. भाषा, ६. मन।

एकेंद्रिय जीवके (पहली) चार पर्याप्तियाँ, विकलेंद्रिय जीव (दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय और चार इंद्रिय जीव) के पहली पाँच पर्याप्तियाँ और पंचेंद्रिय जीवके छहों पर्याप्तियाँ होती हैं। (१५८-१६०)

एकेंद्रिय स्थावर जीव पाँच तरहके होते हैं—१. पृथ्वी (जमीन) २. अप (जल) ३. तेज (अग्नि) ४. वायु (हवा) ५. वनस्पति। इनमेंसे आरंभके चार सूक्ष्म और बादर ऐसे दो तरहके होते हैं। वनस्पतिके प्रत्येक और साधारण दो भेद हैं। साधारण वनस्पतिके भी दो भेद हैं। सूक्ष्म और बादर।

(१६१-१६२)

त्रस जीवोंके चार भेद हैं—१. दो इंद्रिय, २. तीन इंद्रिय, ३. चार इंद्रिय, ४. पंचेंद्रिय।

पंचेंद्रिय जीव दो तरहके होते हैं—१ संज्ञी, २. असंज्ञी।

१—जिस जीवके जितनी पर्याप्तियाँ होती हैं उतनी जो पूरी करता है उसे पर्याप्त जीव कहते हैं।

२—जिस जीवके जितनी पर्याप्तियाँ होती हैं उतनीको पूर्ण किए बिना जो मरता है उसे अपर्याप्त जीव कहते हैं।

शत्रुओंके संकटमें कवच है, सरदीसे पैदा हुई जड़ताको मिटाने-में धूप है और पापके मर्मको जाननेवाला है। धर्मसे जीव राजा बनता है, बलदेव होता है, अर्द्धचक्री (वासुदेव) होता है, चक्रवर्ती होता है, देव और इन्द्र होता है, ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान (नामके स्वर्गों) में अहमिन्द्र होता है और धर्महीसे तीर्थंकर भी बनता है। धर्मसे क्या क्या नहीं मिलता है? (सब कुछ मिलता है।) (१४६-१५१)

"दुर्गतिप्रपतज्जंतुधारणाद्धर्म उच्यते।"

[दुर्गतिमें गिरते हुए जीवोंको जो धारण करता है (बचाता है) उसे धर्म कहते हैं।] वह चार तरहका है। (उनके नाम हैं) दान, शील, तप और भावना। (१५२)

दानधर्म तीन तरहका है। उनके नाम हैं १. ज्ञानदान २. अभयदान ३. धर्मोपग्रहदान। (१५३)

धर्म नहीं जाननेवालोंको वाचन या उपदेश आदिका दान देना अथवा ज्ञान पानेके साधनोंका दान देना ज्ञानदान कहलाता है। ज्ञानदानसे प्राणी अपने हिताहितको जानता है; और उससे हित-अहितको समझ, जीवादि तत्वोंको पहचान विरति (वैराग्य) प्राप्त करता है। ज्ञानदानसे प्राणी उज्ज्वल केवलज्ञान पाता है और सर्व लोक पर कृपाकर लोकाग्र भागपर आरूढ़ होता है (मोक्षमें जाता है)। (१५४-१५६)

अभयदानका अभिप्राय है मन, वचन और कायासे जीवको न मारना, न मरवाना और न मारनेवालेका अनुमोदन करना (मारनेके कामको भला न बताना।) (१५७)

जीव दो तरहके होते हैं—स्थावर और त्रस। उनके भी दो भेद हैं—पर्याप्त[1] और अपर्याप्त[2]।

पर्याप्तियाँ छः तरहकी होती हैं। उनके नाम हैं १. आहार २. शरीर, ३. इंद्रिय, ४. श्वासोश्वास, ५. भाषा, ६. मन।

एकेंद्रिय जीवके (पहली) चार पर्याप्तियाँ, विकलेंद्रिय जीव (दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय और चार इंद्रिय जीव) के पहली पाँच पर्याप्तियाँ और पंचेंद्रिय जीवके छहों पर्याप्तियाँ होती हैं। (१५८-१६०)

एकेंद्रिय स्थावर जीव पाँच तरहके होते हैं—१. पृथ्वी (जमीन) २. अप (जल) ३. तेज (अग्नि) ४. वायु (हवा) ५. वनस्पति। इनमेंसे आरंभके चार सूक्ष्म और बादर ऐसे दो तरहके होते हैं। वनस्पतिके प्रत्येक और साधारण दो भेद हैं। साधारण वनस्पतिके भी दो भेद हैं। सूक्ष्म और बादर। (१६१-१६२)

त्रस जीवोंके चार भेद हैं—१. दो इंद्रिय, २. तीन इंद्रिय, ३. चार इंद्रिय, ४. पंचेंद्रिय।

पंचेंद्रिय जीव दो तरहके होते हैं—१ संज्ञी, २. असंज्ञी।

१—जिस जीवके जितनी पर्याप्तियाँ होती हैं उतनी जो पूरी करता है उसे पर्याप्त जीव कहते हैं।

२—जिस जीवके जितनी पर्याप्तियाँ होती हैं उतनीको पूर्ण किए बिना जो मरता है उसे अपर्याप्त जीव कहते हैं।

जो मन और प्राणको प्रवृत्त कर शिक्षा, उपदेश और आलाप (बातचीत) को समझते हैं—समझ सकते हैं उनको संज्ञी जीव कहते हैं। जो संज्ञीसे विपरीत होते हैं वे असंज्ञी कहलाते हैं। (१६३-१६४)

इंद्रियाँ पाँच हैं; १ स्पर्श, २ रसना (जीभ), ३ घ्राण (नासिका), ४ चक्षु (आंख), ५ श्रोत्र (कान)।

स्पर्शका काम है छूना, रसनाका काम है चखना (स्वाद जानना), घ्राणका काम है सूँघना, चक्षुका काम है देखना और श्रोत्रका काम है सुनना। (१६५)

कीड़े, शंख, गंडूपद (केंचुआ), जोंक, कपर्दिका (कौडी) और (सुतुही नामका जलजंतु) वगैरा अनेक तरह-के दोइंद्रिय जीव हैं। (१६६)

यूका (जूँ) मत्कुण (खटमल), मकोड़ा और लीख वगैरा तीनइंद्रिय जीव हैं।

पतंग (फतंगा), मक्खी, भौंरा, डाँस वगैरा प्राणी चार-इंद्रिय हैं। (१६७)

जलचर (मछली, मगर वगैरा जलके जीव), स्थलचर (गाय भैंस वगैरा पशु), खेचर (कबूतर, तीतर, कौवा वगैरा पंखी), नारकी (नरक में पैदा होने वाले), देव (स्वर्ग में पैदा होनेवाले) और मनुष्य ये सभी पंचेन्द्रिय जीव हैं। (१६८)

ऊपर कहे हुए जीवोंकी (मारकर) आयु समाप्त करना, उनके (शरीरको) दुःख देना और उनके (मनको) क्लेश पहुँचानेका नाम वध करना (हिंसा करना) है। और वध

नहीं करने का नाम अभयदान है। जो अभयदान देता है वह चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) का दान करता है। कारण, बचा हुआ जीव चारों पुरुषार्थ प्राप्त कर सकता है। प्राणियोंको राज्य, साम्राज्य और देवराज्यकी अपेक्षा भी जीवन अधिक प्रिय होता है। इसीसे कीचड़के कीड़ेको और स्वर्गके इंद्रको प्राण-नाशका भय समान होता है। इसलिए सुबुद्धि पुरुषको चाहिए कि वह सदा सावधान रहकर अभयदानकी प्रवृत्ति करे। अभयदान देनेसे मनुष्य परभवमें मनोहर, दीर्घायु, तन्दुरुस्त, कांतिवान, सुडोल और बलवान होता है। (१६६--१७४)

धर्मोपग्रहदान पांच तरहका होता है, १. दायक (दान देनेवाला) शुद्ध हो, २. ग्राहक (दान लेनेवाला) शुद्ध हो, ३. देय (दान देनेकी चीज) शुद्ध हो, ४. काल (समय) शुद्ध अच्छा हो, ५ भाव शुद्ध हो।

दान देनेवाला वह शुद्ध होता है जिसका धन न्यायोपार्जित हो, जिसकी बुद्धि अच्छी हो जो किसी आशासे दान न देता हो, जो ज्ञानी हो (वह दान क्यों दे रहा है इस वातको समझता हो) और देनेके बाद पीछेसे पछतानेवाला न हो। वह यह माननेवाला हो कि ऐसा चित्त (जिसमें दान देनेकी इच्छा है) ऐसा वित्त (जो न्यायोपार्जित है) आर ऐसा पात्र (शुद्ध दान लेनेवाला) मुझको मिला इससे मैं कृतार्थ हुआ हूँ। (१७५-१७७)

दान लेनेवाले वे शुद्ध होते हैं जो सावद्ययोगसे विरक्त

होते हैं (पापरहित होते हैं), जो तीन गौरव (१. रसगौरव, २. ऋद्धि गौरव, ३. साता गौरव) रहित होते हैं। तीन गुप्तियाँ धारण करनेवाले और पाँच समितियाँ पालनेवाले

१. मधुरादि रसोंके स्वादका अभिमान करना। २. ऐश्वर्य-धन-सम्पति आदिका अभिमान करना। ३. सुखका अभिमान करना।

४. निवृत्तिको या रोकनेको गुप्ति कहते हैं। इसके तीन भेद हैं। १-मनोगुप्ति-ध्यानको-मनको बुरे संकल्पों या विचारोंमें प्रवृत्त न होने देनेको 'मनोगुप्ति' कहते हैं। २-वचनगुप्ति-मौन रहनेको, और यदि बोलनेकी जरूरत ही हो तो ऐसे वचन बोलनेको, जिनसे किसी प्राणीको दुःख न हो, 'वचनगुप्ति' कहते हैं। ३-कायगुप्ति-शरीरको स्थिर रखना और यदि हलन-चलन करनेकी जरूरत ही हो तो ऐसा हलन चलन करना-जिससे किसी प्राणीको दुःख न हो। इसीका नाम 'कायगुप्ति' है।

५. अच्छी, स्वपरकल्याणकारी प्रवृत्तिको 'समिति' कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं। १-ईर्यासमिति-इस तरहसे चलना कि किसीभी जीवको कोई तकलीफ न हो। २-भाषासमिति-ऐसे वचन बोलना जिनसे किसी जीवको कोई दुःख न हो। ३-एषणासमिति-दोषोंको टालकर निर्वद्य आहारपानी लानेकी प्रवृत्ति। ४-आदान-निक्षेप-समिति-पात्र, वस्त्र तथा दूसरी चीजोंको सावधानीसे-प्रमादरहित होकर उठाने और रखनेकी प्रवृत्ति। ५-परिष्ठापनिकासमिति-मल, मूत्र और थूंकको सावधानीसे त्यागनेकी प्रवृत्ति।

होते हैं। जो राग-द्वेषसे मुक्त होते हैं, जो नगर, गाँव, स्थान, उपकरण और शरीरमें भी ममता नहीं रखनेवाले होते हैं, जो अठारह हजार शीलांग को धारण करनेवाले होते हैं; जो रत्नत्रय (सम्यक्-ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक् चारित्र) के धारण करनेवाले होते हैं. जो धीर और लोहा व सोनेमें समान दृष्टिवाले होते हैं, धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें जिनकी स्थिति होती है, जो जितेंद्रिय, कुक्षिसंबल (आवश्यकतानुसार भोजन करनेवाले), सदा शक्तिके अनुसार छोटे छोटे तप करनेवाले, सत्रह तरहके संयमको अखंडरूपसे पालनेवाले और अठारह तरहका ब्रह्मचर्य पालनेवाले होते हैं। ऐसे शुद्धदान लेनेवालोंको दान देना 'ग्राहक शुद्धदान' या 'पात्रदान' कहलाता है। (१७८-१८२)

देय शुद्धदान—देने लायक,४२ दोषरहित अशन (भोजन, मिठाई, पुरी वगैरा) पान (दूध-रस वगैरा), खादिम (फल मेवा वगैरा), स्वादिम (लौंग, इलायची वगैरा), वस्त्र और संथारा (सोने लायक पाट वगैरा) का दान, वह देय शुद्ध दान कहलाता है। (१८३)

योग्य समय पर पात्रको दान देना 'पात्रशुद्धदान' है और कामना रहित (कोई इच्छा न रखकर) दान देना 'भाव-शुद्धदान' है (१८४)

शरीरके विना धर्मकी आराधना नहीं होती और अन्नादि विना शरीर नहीं टिकता। इसलिए धर्मोपग्रह (जिससे धर्म साधनमें सहायता मिले ऐसा) दान देना चाहिए। जो मनुष्य अशनपानादि धर्मोपग्रहदान सुपात्रको देता है वह तीर्थको

अविच्छेद (स्थिर) करता है और परमपद (मोक्ष ; को पाता है। (१८५-१८६)

"शीलं सावद्ययोगानां प्रत्याख्यानं निगद्यते।"

[जिस प्रवृत्तिसे (कामसे) प्राणियोंको हानि हो ऐसी प्रवृत्ति नहीं करना शील है।] इसके दो भेद हैं—१. देशविरति, २. सर्वविरति। (१८७)

देशविरतिके बारह भेद हैं: पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत। (१८८)

स्थूल अहिंसा, स्थूल सत्य, स्थूल अस्तेय (अचौर्य), स्थूल ब्रह्मचर्य, और स्थूल अपरिग्रह ये पाँच अणुव्रत जिनेश्वर ने कहे हैं। (१८९)

दिग्विरति, भोगोपभोगविरति, और अनर्थदंडविरति ये तीन गुणव्रत हैं। (१९०)

सामायिक, देशावकाशिक, पौषध और अतिथिसंविभाग ये चार शिक्षाव्रत हैं। (१९१)

इस तरहका देशविरति गुण—शुश्रूषा (धर्म सुननेकी और सेवा करनेकी भावना) आदि गुणवाले, यतिधर्म (साधुधर्म) के अनुरागी, धर्मपथ्य भोजन (ऐसा भोजन जिससे धर्मका पालन हो) को चाहनेवाले, शम (निर्विकारत्व शाँति) संवेग (वैराग्य), निर्वेद (निस्पृह), अनुकंपा (दया) और आस्तिक्य (श्रद्धा) इन पाँच लक्षणोंवाले, सम्यक्त्वी, मिथ्यात्वसे निवृत्त (छूटे हुए) और सानुबंध (अखंड) क्रोधके उदयसे रहित—गृहमेधी (गृहस्थी) महात्माओंमें, चारित्र-

मोहनीय कर्मके नाश होनेसे, उत्पन्न होता है। (१६२-१६४)

स्थावर और त्रस जीवोंकी हिंसासे सर्वथा दूर रहनेको सर्वविरति कहते हैं। यह सर्वविरतिपन सिद्धरूपी महलपर चढ़नेके लिए सीढ़ीके समान है। जो स्वभावसेही अल्प कपायवाले, दुनियाँके सुखोंसे उदास और विनयादि गुणोंवाले होते हैं उन महात्मा मुनियों को यह सर्वविरतीपन प्राप्त होता है। (१६५-१६६)

"यत्तापयति कर्माणि तत्तपः परिकीर्त्तितम् ।"

[जो कर्मों को तपाता है (नाश करता है) उसे तप कहते हैं।] उसके दो भेद हैं; १ वाह्य। २ अंतर। अनशनादि वाह्य तप है और प्रायश्चित आदि अंतर तप है।

वाह्य तपके छः भेद हैं; १. अनशन (उपवास एकासन आंबिल आदि), २. ऊनोदरी (कम खाना), ३. वृत्तिसंक्षेप (जरूरतें कम करना), ४. रसत्याग (छ रसोंमें हर रोज किसी रसको छोड़ना), ५. कायक्लेश (केशलोंच आदि शरीर के दुख), ६. संलीनता (इंद्रियों और मनको रोकना)।

अभ्यंतर तपके छः भेद हैं; १. प्रायश्चित्त (अतिचार लगे हों उनकी आलोचना करना और उनके लिए आवश्यक तप करना), २. वैयावृत्य (त्यागियोंकी और धर्मात्माओंकी सेवा करना), ३. स्वाध्याय (धर्मशास्त्रोंका पठन, पाठन, मनन श्रवण), ४. विनय (नम्रता), ५. कायोत्सर्ग (शरीरके सब व्यापारोंको छोड़ना), ६. शुभध्यान (धर्मध्यान और शुक्ल ध्यानमें मन लगाना) । (१६७-१६६)

ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी रत्नत्रयको धारण करने वालोंकी भक्ति करना, उनका काम करना, शुभका विचार और संसारकी निन्दा करना भावना है। (२००)

यह चार तरहका (दान, शील, तप और भावनारूपी) धर्म अपार फल (मोक्षफल) पानेका साधन है, इसलिए संसार भ्रमणसे डरे हुए लोगोंको सावधान होकर इसकी साधना करनी चाहिए। (२०१)

धर्मोपदेश सुनकर धनसेठने कहा, "हे स्वामी, यह धर्म मैंने बहुत समयके बाद सुना है, इसलिए अबतक मैं अपने कर्मोंसे ठगा गया हूँ।" फिर सेठ उठा और गुरुके चरणोंमें तथा दूसरे मुनियोंकी वंदना करके अपने आत्माको धन्य मानता हुआ डेरे पर चला गया। धर्मदेशनाके आनंदमें मग्न सेठने वह रात एक क्षणकी तरह समाप्त की। (२०२-२०४)

वह जब सोके उठा तब, सवेरेही कोई मंगलपाठक (भाट) शंखके समान ऊँची व गंभीर और मधुर वाणीमें कहने लगा, "घनांधकारसे मलिन, पद्मिनी (कमलिनी) की शोभाको चुरानेवाली और मनुष्योंके व्यवहारको रोकनेवाली रात, बरसातके मौसमकी तरह चली गई है। तेजस्वी और प्रचंड किरणोंवाला सूरज उगा है। कामकाज करनेमें सुहृद (मित्र) के समान प्रातःकाल, शरद् ऋतुके समयकी तरह बढ़ रहा है। इस शरद्ऋतुमें सरोवर और सरिताओंके जल इसी तरह निर्मल हो रहे हैं, जिस तरह तत्वबोधसे बुद्धिमान लोगोंके मन निर्मल होते हैं। सूर्यकी किरणोंसे सूखे हुए और कीच-रहित मार्ग ऐसेही सरल हो गए हैं जिस तरह आचार्यके

उपदेशसे ग्रंथ संशय रहित और सरल हो जाते हैं। लीकपर जैसे गाड़ियोंकी कतार चलती है वैसेही नदियाँ भी दोनों किनारोंके बीचमें धीरे धीरे वह रही हैं। दोनों तरफ खेतोंमें पके हुए श्यामक (साँवा चावल), नीवार (तिन्नी धान्य), वालुंक (एक तरहकी ककड़ी) कुवलय (केले या बेर) आदिसे रस्ते मानों मुसाफ़िरोंका अतिथिसत्कार कर रहे हैं। शरदऋतुकी हवासे हिलते हुए गन्नोंसे निकलती हुई आवाज मानों पुकार रही है कि हे मुसाफिरो, अब अपनी अपनी सवारियोंपर चढ़ जाओ; (चलनेका) समय हो गया है। बादल सूर्यकी तेज किरणोंसे तपे हुए मुसाफिरोंके लिए छातेका काम कर रहे हैं। सार्थके साँढ अपने ककुदोंसे (बैलोंके कंधों परके डिल्लोंसे) जमीनको रौंद रहे हैं; मानों वे जमीनको, समतल बनाकर, सुखसे मुसाफिरी करने लायक बना रहे हैं। पहले रस्तोंपर पानी जोरसे वहता, गर्जना करता और उछलता हुआ आगे बढ़ता था, वह अब वर्षाऋतुके बादलोंकी तरह जाता रहा है। फलोंसे झुकी हुई वेलोंसे और पद पदपर बहनेवाले निर्मल जलके झरनोंसे रस्ते, मुसाफिरोंके लिए, बगैर मेहनतकेही पाथेयवाले हो गए हैं, और उत्साहसे भरेहुए दिलवाले उद्यमी लोग, राजहंस की तरह, दूसरे देशोंमें जानेके लिए जल्दी मचा रहे हैं।"

(२०५-२१७)

मंगलपाठककी बात सुनकर धनसेठने यह सोचकर कि इसने मुझे चलनेका समय हो जानेकी सूचना दी है, रवाना होनेकी भेरी बजवा दी (ढोल बजवा दिया)। आकाश और पृथ्वीके मध्यभागको भर देनेवाले भेरीके नादसे (आवाजसे)

सार्थके सभी लोग, (अपने अपने डेरे उखाड़कर) इस तरह रवाना हो गए, जैसे ग्वालेके सिंगी नादसे गायोंका समूह चल पड़ता है। (२१८-२१६)

भव्यजीवरूपी कमलोंको बोध करनेमें प्रवीण धर्मघोष आचार्यने मुनियोंके साथ इसी तरह विहार किया जिस तरह किरणोंसे घिरा हुआ सूरज चलता है। सार्थकी रक्षाके लिए आगे, पीछे और दाएँ-बाएँ सिपाहियोंको मुकर्रर कर धनसेठ भी वहाँसे रवाना हुआ। सार्थ जब उस महाजंगलको पारकर गया तब, आचार्य धनसेठकी अनुमति लेकर दूसरी तरफ विहार कर गए। (२२०-२२२)

नदियोंका समूह जैसे समुद्रमें जाता है उसी तरह धनसेठ भी सकुशल रस्तोंको पारकर वसंतपुर पहुँचा। वहाँ थोड़े समय तक रहकर उसने कुछ माल बेचा और कुछ वहाँसे नया खरीदा। फिर, समुद्रसे जैसे बादल जलपूर्ण होते हैं वैसेही, धनसेठ भी दौलतसे भरा-पूरा होकर लौटा; क्षितिप्रतिष्ठितपुर आया। कुछ बरसोंके बाद उसकी उम्र पूरी हुई और वह कालधर्मको प्राप्त हुआ-मर गया। (२२३-२२४)

दूसरा भव

मुनिको दान देनेके प्रभावसे धनसेठका जीव उत्तरकुरुक्षेत्रमें युगलिया[१] रूपमें जन्मा। वहाँ सदा एकांत सुषमा (सुख ही सुख हो ऐसा) नामका आरा (समय) वर्तता है। वह स्थान सीता नदीके उत्तर तटपर, जंबू वृक्षके पूर्व भागमें है। उस

१—बालक-बालिका एक साथ जन्मते हैं।

क्षेत्रके युगलियोंकी आयु तीन पल्योपम[1]की होती है, उनका शरीर तीन कोसका होता है, उनकी पीठमें दो सौ छप्पन पसलियाँ होती हैं, वे अल्पकषायी और ममतारहित होते हैं, उनको तीन दिनमें एक वार भोजनकी इच्छा होती है, आयुके अंतमें एकही वार स्त्री-युगलिया गर्भ धारण करती है, उनके एक युगल संतान पैदा होती है। उनको उन्चास दिनतक पालकर युगलिया (पुरुष और स्त्री दोनों) एक साथ मरते हैं, और वहाँसे देवगति-में जाते हैं (किसी स्वर्गमें जन्मते हैं)। उत्तर कुरुक्षेत्रमें रेती स्वभावसेही शक्कर जैसी मीठी होती है, जल शरदऋतुकी चाँदनी-के समान निर्मल होता है और भूमि रमणीय (सुंदर) होती है। उनमें दस तरहके कल्पवृक्ष होते हैं। वे युगलियोंको बिना मेहनतके, उनकी माँगी हुई चीजें देते हैं।

१. मद्यांग नामके कल्पवृक्ष मद्य देते हैं। २. भृगांग नाम-के कल्पवृक्ष पात्र (बरतन) देते है। ३. तूर्यांग नामके कल्प-वृक्ष विविध शब्दोंवाले (रागरागिणियोंवाले) बाजे देते हैं। ४. दीपशिखांग और ५. ज्योतिष्कांग नामके कल्पवृक्ष अद्भुत प्रकाश देते हैं। ६. चित्रांग नामके कल्पवृक्ष तरह तरहके फूल और उनकी मालाएँ देते हैं। ७. चित्ररस नामके कल्पवृक्ष भोजन देते हैं। ८. मण्यंग नामके कल्पवृक्ष आभूषण (जेवर) देते हैं। ९. गेहाकार नामके कल्पवृक्ष घर देते हैं। १०. अनग्न नामके कल्पवृक्ष दिव्य वस्त्र देते हैं। ये कल्पवृक्ष नियत और अनियत दोनों तरहके अर्थोंको (पदार्थोंको) देते हैं। वहाँ दूसरे

१—समय विशेष। (टिप्पण देखो)

भी कल्पवृक्ष होते हैं जो सब तरहकी इच्छित चीजें देते हैं। सभी इच्छित चीजें वहाँ मिलती थीं, इसलिए धनसेठका जीव युगलियापनमें, स्वर्गकी तरह विषयसुखका अनुभव करने लगा। (२२५३-२३७)

तीसरा भव

युगलियाकी आयु पूर्ण कर धनसेठका जीव पूर्वभवके दानके फलसे सौधर्म देवलोकमें देवता हुआ। (२३८)

चौथा भव

वहाँसे च्यवकर (देवयोनि पूर्णकर) पश्चिम महाविदेह-क्षेत्रके गंधिलावती विजय (द्वीप) में वैताढ्य पर्वतके ऊपर गंधार देशके गंधसमृद्धि नगरमें, विद्याधरशिरोमणि 'शतबल' नामके राजाकी 'चंद्रकांता' नामक पत्नीकी कोखसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ। वह बहुत बलवान था इसलिए उसका नाम 'महाबल' रखा गया। अच्छी तरह पालित-पोषित और रक्षकों द्वारा सुरक्षित महाबलकुमार वृक्षकी तरह बढ़ने लगा। क्रमशः चंद्रकी तरह सब कलाओंसे पूर्ण होकर वह महाभाग लोगोंके लिए आनंददायक हुआ। उचित समयपर अवसरके जानकार माता-पिताने मूर्तिमती विनयलक्ष्मीके समान 'विनयवती' नामकी कन्यासे उसका ब्याह किया। वह कामदेवके तेज हथियारके समान, कामिनियोंके लिए कार्मण (वशीकरण) के समान और रतिके लीलावन (क्रीडाबाग) के समान यौवनको प्राप्त हुआ। (पूरा जवान हो गया।) उसके पैर कछुएकी पीठकी

तरह ऊँचे और तलुए समान थे, उसका मध्यभाग सिंहके मध्य-भागका तिरस्कार करनेवालोंमें अग्रणी था (उसका छातीके नीचे और जंघाओंके ऊपरका भाग मोटा न था।) उसकी छाती पर्वतकी शिला (चट्टान) के समान थी। उसके दोनों ऊँचे कंधे बैलोंके कंधोंकी शोभाको धारण करने लगे। उसकी भुजाएँ शेषनागके फनोंसी सुशोभित होने लगीं। उसका ललाट आधे उगेहुए (पूर्णिमाके) चंद्रमाकी लीलाको ग्रहण करने लगा। और उसकी स्थिर आकृति, मणियोंसी दंत-पंक्ति (दाँतोंकी कतार) से, नखोंसे और सोनेके समान कांतिवाले शरीरसे, मेरु पर्वतकी समग्र लक्ष्मीके साथ तुलना करने लगी।

(२३९-२४९)

एक दिन सुबुद्धि. पराक्रमी और तत्वज्ञ विद्याधरपति शतबल राजा एकांतमें बैठकर सोचने लगा, "यह शरीर कुदरतीही अपवित्र है, इस अपवित्रताको नये नये ढँगों से सजाकर कबतक छिपाए रहूँगा? अनेक तरहसे सदा सत्कार पाते हुए भी यदि एकाध बार सत्कारमें कसर हो जाती है तो दुष्ट पुरुषकी तरह यह शरीर विकृत हो जाता है। विष्टा (पाखाना) मूत्र (पेशाब) और कफ जब शरीरसे बाहर निकलते हैं तब मनुष्य उनसे दुखी होता है—नफरत करता है; मगर अफसोस है कि येही चीजें जब शरीरमें होती हैं तो मनुष्य-को कुछ ख्याल नहीं आता। जीर्ण वृक्षकी कोटरमें (पेड़के खोखले भागमें) जैसे सर्प, बिच्छू वगैरा क्रूर प्राणी पैदा होते हैं वैसेही शरीरमें पीड़ा पहुँचानेवाले अनेक रोग पैदा होते हैं। शरदृऋतुके बादलोंकी तरह यह शरीर स्वभावसेही नाशवान है।

यौवनरूपी लक्ष्मी, बिजलीकी तरह देखतेही देखते विलीन हो जानेवाली है। उम्र ध्वजाकी तरह चपल है। संपत्ति तरंगोंकी तरह तरल है। भोग भुजंगके फनकी तरह वक्र हैं। और संगम (संयोग) सपनेकी तरह मिथ्या है। शरीरके अंदर रहनेवाला आत्मा, काम, क्रोधादिके तापोंसे तपकर पुटपाक[1] की तरह रातदिन पकता रहता है। अफसोस ! बहुत दुःख देनेवाले इन विषयोंमें सुख माननेवाले मनुष्य गंदगीमें रहनेवाले कीड़ोंकी तरह, कभी विरागी नहीं बनते। महान दुख देनेवाले विषयोंके स्वादमें फँसकर पराधीन बने हुए मनुष्य सामने खड़ी हुई मौतको इसी तरह नहीं देख पाते हैं जैसे अंधा आदमी अपने सामनेके कुएँको नहीं देख पाता है। विषकी तरह पहले हमलेमेंही, मधुर विषयोंसे आत्मा मूर्च्छित (बेहोश) होजाती है इसलिए अपने भलेकी कोई बात वह नहीं सोच पाती। चारों पुरुषार्थोंकी समानता है तो भी आत्मा पापरूपी अर्थ और काम पुरुषार्थमें ही लीन रहती है; धर्म और मोक्ष पुरुषार्थमें प्रवृत्ति नहीं करती। इस अपार संसाररूपी समुद्रमें प्राणियोंके लिए अमूल्य रत्नकी तरह मनुष्यदेह पाना बहुत कठिन है। यदि मनुष्यशरीर मिलता है तो भी भगवान अर्हंतदेव और निर्ग्रंथ सुसाधु गुरु पुण्यके योगसेही मिलते हैं। यदि हम मनुष्यभव-का फल ग्रहण नहीं करते हैं तो हमारी दशा शहरमें रहते हुए भी लुट जानेवाले मनुष्यके जैसी होती है, इसलिए अब

---

१. किसी बरतनमें भरकर कोई चीज रखी जाती है। बरतनका मुँह बन्द कर दिया जाता है और उसके चारों तरफ आग जलाई जाती है।

मैं कवचधारी महाबलकुमारको राजका भार सौंपकर इच्छानुसार जीवन सुधारूँ"। (२५०-२६५)

इस तरह विचारकर शतबल राजाने तुरत महाबलकुमारको बुलाया और उस विनीतकुमारको राज्य-भार उठानेका उपदेश दिया। पिताकी आज्ञासे राजकुमारने यह बात मंजूर की। कारण—

"भवंति हि महात्मानो गुर्वाज्ञाभंगभीरवः।"

[महात्मा लोग (अच्छी आत्मावाले लोग) गुरुजनोंकी (बुजुरगोंकी) आज्ञा भंग करने से डरते हैं।] (२६६)

फिर राजा शतबलने महाबलकुमारको सिंहासनपर बिठा, राज्याभिषेक कर अपने हाथोंसे मंगलतिलक किया। कुंदपुष्प (मोगरेके फूल) के समान कांतिवाले चंदनके तिलकसे वह नवीन राजा ऐसा सुशोभित हुआ जैसे चंद्रमासे उदयाचल (पर्वतविशेष) सुशोभित होता है। अपने पिताके हंसके पंखोंके समान आतापपत्रसे (छत्रसे) इस तरह सुशोभित हुआ जिसतरह गिरिराज शरदऋतुके बादलोंसे सुशोभित होता है। उड़ती हुई विमल बगुलोंकी जोड़ीसे जैसे मेघ शोभता है वैसेही दोनों तरफ डुलते हुए चँवरोंसे वह शोभने लगा। चंद्रोदयके समय जैसे समुद्र ध्वनि (आवाज) करता है वैसेही अभिषेकके समयकी स्तुति पाठकोंकी मंगलध्वनिसे दिशाएँ ध्वनित हो उठीं। सामंत और मंत्रियोंने महाबलको, शतबलका रूपांतर जानकर मस्तक नमाया और उसकी आज्ञा माननेकी तत्परता बताई। (२६६-२७३

इस तरह पुत्रको राजगद्दी देकर शतबल राजाने आचार्यके पास आकर शमसाम्राज्य (चारित्र) ग्रहण किया—दीक्षा ली। उसने असार विषयोंको छोड़कर सारूप तीन रत्न (सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र) ग्रहण किए। (राज्यवैभव छोड़कर दीक्षा लेने पर भी) उसके समताभाव कायम रहे। उस जितेन्द्रियने कषायोंको इसी तरह उखाड़ दिया जिस तरह नदीका पूर किनारोंके वृक्षोंको उखाड़ देता है। वह शक्तिशाली महात्मा मनको आत्मस्वरूपमें लीनकर, वाणीको नियममें रख और शरीरको नियमित (शुभ प्रवृत्तियोंमें) लगा, दुःसह परीसह सहन करने लगा। भावना (मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ भावनाओं) से जिसकी ध्यानसंतति बढ़ी है ऐसा शतबल राजर्षि, इस तरह अमंद (कभी न घटनेवाले) आनंदमें रहने लगा मानों वह मोक्षमेंही है। ध्यान और तपमें लीन रहकर उस महात्माने लीलामात्रमें (खेलमें समयका कुछ खयाल नहीं रहता इस तरह) आयु पूरीकी और स्वर्गमें देवताओंका स्थान पाया। (२७४-२७९)

महाबल राजा भी अपने बलवान विद्याधरोंकी सहायतासे इन्द्रकी तरह पृथ्वीका अखंड शासन (राज्य) करने लगा। हंस जैसे कमलिनीके खंडोंमें क्रीडा करता है वैसेही वह भी रमणियोंके साथ बगीचोंमें आनंदसे क्रीडा करने लगा। उसके शहरमें सदा संगीत होता था, उसकी प्रतिध्वनि वैताढ्य पर्वतसे उठती थी, वह ऐसी जान पड़ती थी मानो वैताढ्यकी गुफाएँ संगीतका अनुकरण कर रही हैं। आगे, पीछे और दोनों बगलोंमें वह स्त्रियोंसे घिरा हुआ साक्षात मूर्तिमान शृंगाररसको

तरह सुशोभित होता था। स्वच्छन्दतासे विषय-क्रीडामें लीन उसके लिए रात और दिन विषुवत[1]की तरह समान रूपसे गुजरने लगे। (२८०-२८४)

एक दिन, मणिस्तंभोंके समान सामंतों और मंत्रियोंसे अलंकृत (सजी हुई) सभाभूमिमें महाबल बैठा था और दूसरे सभासद भी उसको नमस्कार कर करके अपनी अपनी जगहोंपर बैठे थे। वे महाबलको एकटक इस तरह देख रहे थे मानों वे योगसाधनके लिए ध्यान लगा रहे हैं। स्वयंबुद्धि, संभिन्नमति, शतमति और महामति नामके चार मुख्य मंत्री भी वहाँ बैठे थे। उनमें स्वयंबुद्ध मंत्री, स्वामिभक्तिमें अमृतके सागरकी तरह, बुद्धिरत्नमें रोहणाचल पर्वतकी तरह और सम्यग्दृष्टि था। वह सोचने लगा, "अफसोस ! हम देख रहे हैं और हमारे विषयासक्त स्वामीको इन्द्रियरूपी दुष्ट घोड़े लिए चले जा रहे हैं। हमें धिक्कार है ! कि हम इसकी उपेक्षा कर रहे हैं। विषयोंके आनन्दमें लीन हमारे स्वामीका जन्म व्यर्थ जा रहा है, यह देखकर मेरा मन इसी तरह दुखी होरहा है जिस तरह थोड़े जलमें मछली दुखी होती है। यदि हम जैसे मंत्री इस राजाको उच्च पदपर न ले जाएँगे तो हममें और परिहासक (विदूषक) मंत्रीमें अंतरही क्या रहेगा ? इसलिए हमको चाहिए कि हम अपने स्वामीको विषयोंसे छुड़ाकर सन्मार्ग पर चलावें। कारण राजा सारिणी (पानीकी नाली)

१. जब सूर्य तुला या मेष राशिमें होता है तब दिन और रात समान होते हैं; छोटे बड़े नहीं होते। इसीको विषुवत् कहते हैं।

की तरह सदा उसी मार्गपर चलते हैं जिसपर इनके मंत्री उन्हें चलाते हैं। शायद स्वामीके व्यसनोंसे अपना जीवन निर्वाह करनेवाले लोग निन्दा करेंगे, तो भी हमको उचित सलाह देनी ही होगी। कारण—

"..........नोप्यंते यवा मृगभयेन किम्।"

[क्या मृगोंके डरसे (खेतमें) नाज नहीं बोया जाता?]

(२८४-२९३)

बुद्धिमानोंमें अग्रणी स्वयंबुद्ध मंत्रीने इस तरह विचारकर-हाथ जोड़, राजा महाबलसे कहा, "महाराज, यह संसार समुद्र-के समान है। जैसे नदियोंके जलसे समुद्र तृप्त नहीं होता, समुद्रके जलसे वडवानल तृप्त नहीं होता, जंतुओंसे यमराज तृप्त नहीं होता और लकड़ीसे आग तृप्त नहीं होती वैसेही इस दुनियामें यह आत्मा विषयसुखसे कभी तृप्त नहीं होती। नदी किनारेकी छाया, दुर्जन मनुष्य, विष, विषय और सर्पादि जहरीप्राणी इनका अधिक सेवन-परिचय सदा दुखदेनेवाला ही होता है। सेवनके समय कामभोग सुखदायी मालूम होते हैं, मगर परिणाममें विरस लगते हैं। जिस तरह खुजानेसे पाम (खुजली) बढ़ती है इसी तरह कामका सेवन भी असन्तोषको बढ़ाता है। कामदेव नरकका दूत है, व्यसनोंका सागर है, विपत्तिरूपी लताका अंकुर है और पापरूपी वृक्षको फैलानेवाला है। कामदेवके मदसे मतवाले बने हुए पुरुष सदाचाररूपी मार्ग-से भ्रष्ट होकर भव-संसाररूपी खड्डेमें पड़ते हैं। चूहा जब घरमें घुसता है तो अनेक स्थानोंपर बिल बनाता है (और कपड़े लत्ते वगैरा काटता है।) इसी तरह कामदेव जब शरीरमें

घुसता है तब वह पुरुषके अर्थ, धर्म और मोक्षको नष्ट करता है। (२६४-३०१)

"स्त्रियाँ जहरीली वेलकी तरह दर्शन, स्पर्श और उपभोग-से अत्यन्त व्यामोह (भ्रम-अज्ञान) उत्पन्न करती हैं। वे काल-रूपी पारधीके जाल हैं। इसलिए हरिणकी तरह पुरुषोंके लिए अत्यन्त अनर्थ करनेवाली हो जाती हैं। जो मौज-शौक़के मित्र हैं, वे केवल खाने, पीने और स्त्रीविलासके मित्र हैं। इसलिए वे अपने स्वामीके परलोकके हितकी चिंता कभी नहीं करते। वे स्वार्थीलोग नीच, खुशामदी व लंपट होते हैं, इसलिए अपने स्वामीको सदा स्त्रीकथा, गीत, नाच और विनोदकी बातें ही सुना सुनाकर खुश करते हैं। वेरके पेड़के साथ रहनेसे जैसे केलेका पेड़ कभी अच्छा नहीं रहता वैसेही, कुसंगतिसे कुलीन पुरुषोंका कभी उत्थान नहीं होता; इसलिए हे कुलीन स्वामी, प्रसन्न होइए; विचार कीजिए। आप खुद ज्ञानी हैं इसलिए मोहमें न गिरिए, व्यसनोंकी आसक्ति छोड़िए और धर्ममें मन लगाइए। छायाहीन वृक्ष, जलहीन सरोवर, सुगंधहीन फूल, दंतहीन हाथी, लावण्यहीन रूप, मंत्रीहीन राजा, देवमूर्तिहीन चैत्य, चंद्रहीन रात्रि, चरित्रहीन साधु, शस्त्रहीन सेना, और नेत्रहीन चेहरा, जैसे सुशोभित नहीं होते उसी तरह, धर्महीन पुरुष भी कभी सुशोभित नहीं होता। चक्रवर्ती राजा भी अगर अधर्मी होता है तो उसे वहाँ नया भव मिलता है जहाँ खराव अन्न भी राज्य-संपदाके समान समझा जाता है। महा कुलमें उत्पन्न होने पर भी जो आत्मा धर्माचरण नहीं करता है वह नए जन्ममें कुत्ते-की तरह दूसरोंका जूठा भोजन खानेवाला होता है। ब्राह्मण भी

धर्महीन होता है तो वह पाप बाँधता है और विलावकी तरह दुष्ट चेष्टाओंवाला होकर म्लेच्छ योनिमें जन्म लेता है। अन्य आत्माएँ भी धर्महीन होती हैं तो विलाव, सर्प, सिंह, बाज, और गीध वगैरा तिर्यंच योनियोंमें कई भव तक भटकते हुए नरकयोनिमें जाती हैं। वहाँ वैरसे क्रुद्ध (लोगों) की तरह परमाधार्मिक देवोंके द्वारा अनेक तरहसे सताई जाती हैं। शीशा जैसे आगमें गलता है वैसेही अनेक व्यसनोंकी आगमें अधार्मिक आत्माओंके शरीर गला करते हैं। इसलिए ऐसे अधार्मिक प्राणियोंको धिक्कार है! परम बंधुकी तरह सुख मिलता है और नावकी तरह धर्मके द्वारा आपत्ति रूपिणी नदियाँ पार की जाती हैं। जो धर्म उपार्जन करते हैं वे पुरुषोंमें शिरोमणि होते हैं और लताएँ जैसे वृक्षोंका आश्रय लेती हैं इसी तरह संपदाएँ उनका आश्रय लेती हैं। आधि, व्याधि, विरोध आदि दुःखके हेतु हैं, वे धर्मसे इसी तरह नष्ट हो जाते हैं जिस तरह जलसे आग तत्कालही नष्ट हो जाती है। पूरी शक्ति लगाकर किया हुआ धर्म, अन्य जन्मोंमें कल्याण और संपत्तिके लिए जामिनके समान है। हे स्वामी, मैं अधिक क्या कहूँ जैसे, जीने-से महलके ऊपर जाया जाता है वैसेही प्राणी धर्मसे लोकाग्र-भाग-मोक्षमें पहुँचते हैं। आप भी धर्मसेही विद्याधरोंके राजा बने हैं, इसलिए इससेभी अधिक लाभके लिए धर्मका आचरण कीजिए।" (३०१-३२३)

स्वयंबुद्ध मन्त्रीकी ये बातें सुनकर अमावस्याकी रात्रिके अंधकारकी तरह मिथ्यात्वरूपी अंधकारकी खानके समान और विष जैसी विषम मतिवाला 'संभिन्नमति' नामका मंत्री बोला,

"शाबाश, स्वयंबुद्ध मंत्री, शाबाश! तुम अपने स्वामीके बहुत अच्छे हितचिंतक हो। जैसे डकारसे भोजनका अनुभव होता है वैसे ही तुम्हारी बातोंसे ही तुम्हारे भावोंका अनुमान होता है। सदा आनन्दमें रहनेवाले स्वामीके सुखके लिए तुम्हारे जैसे मंत्रीही ऐसा कह सकते हैं, दूसरे नहीं कह सकते। तुम्हें किस कठोर स्वभाववाले उपाध्यायने पढ़ाया है कि, जिससे तुम स्वामीको ऐसे असमयमें वज्रपातके समान, कठोर वचन कह सके हो! सेवक खुद जब अपने भोगहीके लिए स्वामीकी सेवा करते हैं तब वे स्वामीसे ऐसा कैसे कह सकते हैं कि, तुम भोग न भोगो। जो इस भवमें मिलनेवाले भोग-सुखोंको छोड़कर परलोकके लिए यत्न करते हैं वे अपनी हथेली-में रहे हुए लेह्य (चाटने लायक) पदार्थको छोड़कर कुहनी चाटनेकी कोशिश करनेवाले जैसी (मूर्खता) करते हैं। धर्मसे परलोकमें फल मिलता है यह कहना असंगत है। कारण पर-लोकमें रहनेवालोंका अभाव है। और जब रहनेवालेही नहीं हैं तब लोक कहाँसे आया? जैसे गुड़, आटा और जलसे मदशक्ति (शराब) पैदा होती है उसी तरह पृथ्वी, अप, तेज और वायुसे चेतनाशक्ति उत्पन्न होती है। शरीरसे भिन्न कोई दूसरा शरीर-धारी प्राणी नहीं है कि, जो इस लोकको छोड़कर परलोकको जाए। इसलिए निःशंक होकर विषयसुखोंको भोगना चाहिए। और अपने आत्माको ठगना नहीं चाहिए। स्वार्थका नाश करना मूर्खता है। धर्माधर्मकी शंकाएँ कभी नहीं करनी चाहिए। कारण ये सुखोंमें विघ्न करनेवाली हैं। और धर्म-अधर्मकीतो गधेके सींगकी तरह हस्तीही नहीं हैं। एक पाषाणको, स्नान,

विलेपन, फूल और वस्त्राभूषणोंसे लोग पूजते हैं और दूसरे पाषाणपर बैठकर लोग पेशाब करते हैं। बताइए इस पाषाणने कौनसा पाप किया है और उसने कौनसा पुण्य किया है! यदि प्राणी कर्मसे पैदा होते और मरते हैं तो पानीमें उठनेवाले जल बुदबुद किस कर्मसे उठते और नाश होते हैं। जो जबतक इच्छा सहित प्रयत्न करता है तबतक वह चेतन कहलाता है। नाश हुए चेतनका पुनर्जन्म नहीं है। यह कहना बिलकुल युक्तिहीन है कि, जो प्राणी मरता है वही पुनः जन्मता है। यह सिर्फ बातही बात है। हमारे स्वामी शिरीषकुसुमसी कोमल सेजमें सोवें, रूपलावण्यसे पूर्ण रमणियोंके साथ निःशंक होकर क्रीड़ा करें, अमृत जैसे भोज्य व पेय पदार्थोंका आस्वादन करें (खाएँ पीएँ)। जो इसका विरोध करता है उसे स्वामिद्रोही समझना चाहिए। हे स्वामी, आप कपूर, अगर, कस्तूरी और चन्दनादि-से सदा व्याप्त रहें, जिससे आप साक्षात सुगंधका अवतार मालूम हों। हे राजन! नेत्रोंको आनन्द देनेवाले बाग, वाहन, किले, और चित्रशालाएँ आदि जो पदार्थ हों उनको बार बार देखिए। हे स्वामी! वीणा, वेणु, मृदंग आदि बाजे और उनपर गाए जानेवाले मधुर गीतोंके शब्द आपके कानोंके लिए निरंतर रसायन रूप बनें। जबतक जीवन है तबतक विषयोंके सुखका सेवन कीजिए। धर्मकार्यके नामसे बेफायदा तकलीफ न उठाइए। (दुनियामें) धर्म-अधर्मका कोई फल नहीं है।"

(३२४-३४५)

संभिन्नमतिकी बातें सुनकर स्वयंबुद्धने कहा, "धिक्कार है! उन नास्तिक लोगोंको जो अपने और पराए सबको,

आकर्षित कर इसी तरह दुर्गतिमें डालते हैं, जिस तरह अंधा साथ आनेवाले सभी आदमियोंको अपने साथ कूएमें डालता है। जैसे सुख-दुख स्वसंवेदन (निज अनुभव) से ही मालूम होते हैं, वैसेही आत्मा भी स्वसंवेदनसे ही जानने योग्य है। स्वसंवेदनमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए आत्माका निषेध कोई नहीं कर सकता है। 'मैं सुखी हूँ। मैं दुखी हूँ।' ऐसी अबाधित प्रतीति आत्माके सिवा और किसीको कभी भी नहीं हो सकती है। इस तरहके ज्ञानसे अपने शरीरमें आत्माकी सिद्धि होती है तो अनुमानसे दूसरेके शरीरमें भी आत्मा होनेकी सिद्धि होती है। जो प्राणी मरता है वही पुनः पैदा होता है, इससे निःसंशय मालूम होता है कि, चेतनका परलोक भी है। जैसे चेतन बचपनसे जवान होता है और जवानसे बूढ़ा होता है वैसे ही, वह एक जन्मसे दूसरे जन्ममें भी जाता है। पूर्वभवकी अनुवृत्ति (याद) के सिवा तुरतका जन्मा हुआ बालक सिखाए बगैरही माताका स्तनपान कैसे करने लगता है? इस जगतमें कारणके समानही कार्य दिखाई देते हैं, तब अचेतन भूतोंसे (पृथ्वी, अप, तेज, और वायु से) चेतन कैसे उत्पन्न हो सकता है? हे संभिन्नमति! बताओ कि चेतन प्रत्येक भूतसे उत्पन्न होता है या सबके संयोगसे? यदि यह मानें कि प्रत्येक भूतसे चेतन उत्पन्न होता है तो उतनेही चेतन होने चाहिए जितने भूत हैं; और यदि यह मानें कि सब भूतोंके संयोगसे चेतन उत्पन्न होता है, तो भिन्न स्वभाववाले भूतोंसे एक स्वभाववाला चेतन कैसे उत्पन्न हो सकता है? ये सब बातें विचार करने योग्य हैं। पृथ्वी रूप, रस, गंध और

स्पर्श गुणवाली है; जल रूप, स्पर्श, रसात्मक गुणवाला है; तेज रूप और स्पर्श गुणवाला है; मरुत (वायु) स्पर्श गुणवाला है। इस तरह भूतोंका भिन्न भिन्न स्वभाव सभी जानते हैं। यदि तुम कहोगे कि, जैसे जलमें भिन्न गुणवाला मोती पैदा होता है वैसेही अचेतन भूतोंसे चेतन पैदा होता है; मगर ऐसा कहना योग्य नहीं है। कारण, मोतीमें भी जल होता है। दूसरे मोती और जल दोनों ही पौद्गलिक हैं—पुद्गलसे बने हैं, इसलिए उनमें भिन्नता नहीं है। तुम गुड़, आटा और जलसे पैदा हुई मदशक्तिका उदाहरण देते हो; मगर वह मदशक्ति अचेतन है इसलिए चेतनमें वह दृष्टांत कैसे संभव हो सकता है? देह और आत्माकी एकता कभी भी नहीं कही जा सकती। कारण मृत शरीरमें चेतन नहीं पाया जाता। एक पत्थर पूजा जाता है और दूसरेपर लोग पेशाब करते हैं, यह दृष्टांत भी असत्य है; कारण,पत्थर अचेतन है;इसलिए उसको सुखदुःखादिका अनुभव कैसे हो सकता है? इसलिए इस शरीरसे अलग परलोक जानेवाला आत्मा है और धर्म अधर्म भी हैं। (कारण, परलोक जानेवाला आत्माही यहाँके भले-बुरेका फल लेकर जाता है और वहाँ भोगता है।) जैसे आगकी गरमीसे मक्खन पिघल जाता है वैसेही स्त्रीके आलिंगनसे पुरुषोंका विवेक चला जाता है। अनर्गल और अधिक रसवाले आहार पुद्गलोंका उपभोग करनेवाला आदमी उन्मत्त पशुकी तरह उचित कर्मको नहीं जानता। चंदन, अगर, कस्तूरी और केसर आदिकी सुगंधसे कामदेव सर्पादिकी तरह मनुष्यपर आक्रमण करता है। जैसे काँटोंमें कपड़ा फँसनेसे आदमीकी गति रुक जाती है वैसेही

स्त्री आदिके रूपमें फँसे हुए पुरुषकी गति भी स्खलित हो जाती है–लड़खड़ा जाती है। जैसे धूर्त आदमीकी मित्रता थोड़े समयके लिए सुखदायक होती है वैसेही मोह पैदा करनेवाला संगीत भी बार बार सुननेसे, दुखका हेतु होता है। इसलिए हे स्वामी ! पापके मित्र, धर्मके विरोधी और नरकमें ले जानेवाले विषयोंका दूरहीसे त्याग कीजिए। एक सेव्य (सेवा करने लायक) होता है और एक सेवक होता है; एक दाता होता है और एक याचक होता है, एक सवार होता है और एक वाहन होता है; एक अभयदाता होता है और एक अभय माँगनेवाला होता है–इनसे इसी लोकमें धर्म-अधर्मका महान फल दिखाई देता है। इसको देखते हुए भी जो मनुष्य मानता नहीं है उसका भला हो ! और क्या कहा जाए ? हे राजन् ! आपको असत्य वचनकी तरह दुःख देनेवाले अधर्मका त्याग और सत्य वचनकी तरह सुखके अद्वितीय कारणरूप धर्मका ग्रहण करना चाहिए।" (३४६–३७४)

ये बातें सुनकर शतमति नामका मंत्री बोला, "प्रतिक्षण-भंगुर पदार्थके विषयके ज्ञानके सिवा जुदा कोई आत्मा नहीं है। वस्तुओंमें स्थिरताकी जो बुद्धि है उसका मूल कारण वासना है। इसलिए पूर्व और अपर क्षणोंकी वासनारूप एकता वास्तविक है, क्षणोंकी एकता वास्तविक नहीं है।"

(३७५–३७६)

तब स्वयंबुद्धने कहा, "कोई भी वस्तु अन्वय (परंपरा) रहित नहीं है; जैसे गायसे दूध पानेके लिए जल और घास उसे खिलानेकी कल्पना है। आकाशके फूलकी तरह और

कछुएके बालकी तरह इस लोकमें अन्वयरहित कोई वस्तु नहीं है। इसलिए क्षणभंगुरताकी बुद्धि वृथा है। यदि वस्तु क्षणभंगुर हो तो संतानपरंपरा भी क्षणभंगुरही कही जाएगी। यदि संतानकी नित्यता मानते हैं तो दूसरे समस्त पदार्थ क्षणिक कैसे हो सकते हैं? यदि सभी पदार्थोंको क्षणिक मानेंगे तो रखी हुई धरोहरको वापस माँगना, बीती बातको याद करना और अभिज्ञान (चिह्न) बनाना आदि बातें भी कैसे संभव हो सकती हैं? यदि जन्म होनेके बाद दूसरेही क्षण नाश हो जाता है तो जन्मके बाद दूसरे क्षण बालक अपने मातापिताकी संतान न कहलाएगा और बालक भी दूसरे क्षणमें पहले क्षणके माता-पिताको माता-पिता न कहेगा। इसलिए सभी पदार्थोंको क्षण-भंगुर बताना असंगत है। विवाहके क्षणमें एक पुरुष और स्त्री पति-पत्नी कहलाते हैं. वे यदि क्षणनाशमान होते तो दूसरेही क्षण पुरुष स्त्रीका पति न रहता और स्त्री पुरुष की पत्नी नहीं रहती। इसलिए वस्तुको क्षणभंगुर मानना असमंजस है—विचारहीनता है। एक क्षणमें जो बुरे काम करता है दूसरे क्षणमें वह बदलजाता है और उसका फल नहीं भोगता, कोई अन्य भोगता है। यदि ऐसा हो तो उससे कृतका नाश व अकृतका आगमन ऐसे दो बड़े दोषोंकी प्राप्ति होती है।"

(३७७-३८३)

तब महामति मंत्री बोला, "यह सब माया है। तत्वसे कुछ नहीं है। ये सारी चीजें जो दिखाई देती हैं—सपने और मृगतृष्णाकी तरह झूठी हैं। गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, धर्म-अधर्म अपना-पराया—ये सारे व्यवहार हैं, तत्वसे कुछ नहीं है। एक

गीदड़ कहींसे मांसका टुकड़ा लेकर नदी किनारे आया। उसने पानीमें तैरती हुई मछलियाँ देखीं। वह मांसका टुकड़ा छोड़कर, मछली पकड़ने दौड़ा। मछली गहरे पानीमें चली गई। गीदड़ने लौटकर देखा कि उसका लाया हुआ मांसका टुकड़ा भी गीध लेकर उड़ गया। (वह खड़ा पछताने लगा।) इसी तरह जो मिले हुए दुनियवी सुखोंको छोड़कर परलोकके (सुखोंके) लिए दौड़ते हैं, वे दोनों तरफसे भ्रष्ट होकर अपने आत्माको ठगते हैं। पाखंडी लोगोंके बुरे उपदेश सुनकर लोग नरकसे डरते हैं और मोहमें पड़कर व्रत वगैरा करके अपने शरीरको सताते हैं। उनका नरकमें गिरनेके डरसे तप करना ऐसाही है, जैसे लावक (लवा) पक्षीका पृथ्वी गिर जानेके डरसे एक पैर पर नाचना।" (३८४-३८६)

स्वयंबुद्धने कहा, "यदि वस्तु सत्य न हो तो हरेक अपने अपने कर्मका करनेवाला खुदही कैसे होता है? यदि सब माया-ही हो तो सपनेमें मिला हुआ हाथी (प्रत्यक्षकी तरह) काम क्यों नहीं करता? यदि तुम पदार्थोंके कार्य-कारणभावको सच नहीं मानते हो तो, गिरनेवाले वज्रसे क्यों डरते हो? यदि कुछ न हो तो तुम और मैं-वाच्य (कहने योग्य) और वाचक (कहनेवाला) ऐसा भेद भी नहीं रहता है और व्यवहार चलानेवाली, इष्टकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? हे राजन्! वितंडावादके पंडित, अच्छे परिणामोंसे विमुख और विषयकी इच्छा रखनेवाले इन लोगोंके फेरमें न पड़िए; विवेकसे विचार-कर विषयोंका दूरहीसे त्याग कीजिए और इस लोक व परलोक-में सुख देनेवाले धर्मका आसरा लीजिए।" (३९०-३९४)

इस तरह मंत्रियोंकी अलग अलग बातें सुनकर स्वाभाविक निर्मलतासे सुंदर मुखवाले राजाने कहा, "हे महाबुद्धिवान स्वयंबुद्ध, तुमने बहुत अच्छी बातें कही हैं। तुमने धर्मग्रहण करनेकी बात कही, वह उचित है। हम भी धर्मद्वेषी नहीं हैं। परंतु जैसे युद्धमेंही मंत्रास्त्र ग्रहण किया जाता है वैसेही समय-परही धर्मका ग्रहण करना योग्य है। बहुत दिनोंके बाद आए हुए मित्रकी तरह प्राप्त यौवनका योग्य उपयोग किए बिना कौन उसकी उपेक्षा करेगा? तुमने जो धर्मका उपदेश दिया है वह असामयिक-बेमौके है। जब मधुर वीणा बज रही हो तब वेदोंके वचन नहीं शोभते। धर्मका फल परलोक है। वह संदेहास्पद है (परलोकके होनेमें शंका है), इसलिए तुम इस लोकके सुखास्वादका (सुख भोगनेका) कैसे निषेध करते हो?"

(३६५-३६९)

राजाकी बात सुनकर स्वयंबुद्धने हाथ जोड़ और कहा, "महाराज! आवश्यक धर्मके फलमें कभी भी शंका नहीं करनी चाहिए। क्या आपको याद है कि बचपनमें हम एक दिन नन्दनवनमें गए थे, वहाँ हमने एक सुंदर कांतिवान देवको देखा था। उस समय उस देवने प्रसन्न होकर आपसे कहा था; "मैं तुम्हारा पितामह था। मेरा नाम अतिबल था। मैंने बुरे दोस्तकी तरह, घबराकर, विषयसुखसे मुँह मोड़ा और तिनके-की तरह राज्यको छोड़कर रत्नत्रयको ग्रहण किया। अंतिम अवस्थामें भी व्रतरूपी महलके कलशरूपी त्यागभावको स्वीकार-कर उस शरीरका त्याग किया। उसीके प्रभावसे मैं लांतकाधि-पति देवता हुआ। इसलिए तुम भी इस असार संसारमें प्रमादी

बनकर मत रहना।" यूँ कहकर वे बिजलीकी तरह आकाश-को प्रकाशित करते हुए चले गए थे। इसलिए हे महाराज! आप अपने पितामह (दादा) के वचनोंपर विश्वासकर यह मानिए कि परलोक है। कारण, जहाँ प्रत्यक्षप्रमाण हो वहाँ दूसरे प्रमाणकी कल्पना क्यों करनी चाहिये? (४००-४०६)

महाबल बोला, "तुमने मुझे पितामहकी बात याद दिलाई, यह बहुत अच्छा किया। अब मैं धर्म-अधर्म जिसके कारण हैं उस परलोकको मानता हूँ।" (४०७)

राजाका आस्तिकतावाला वचन सुनकर, मिथ्यादृष्टियोंकी वाणीरूपी रजके लिए मेघके समान स्वयंबुद्ध, मौका देखकर सानंद इस तरह कहने लगा, "हे महाराज, पहले आपके वंशमें कुरुचंद नामका राजा हुआ था। उसके कुरुमती नामकी एक स्त्री थी और हरिश्चंद्र नामका एक पुत्र था। वह राजा बड़ा क्रूर था, बड़े बड़े आरंभ-परिग्रह करता था, अनार्य कार्योंका नेता था, दुराचारी, भयंकर और यमराजकी तरह निर्दय था। उसने बहुत समय तक राज्य किया। कारण-

"पूर्वोपार्जितपुण्यानां फलमप्रतिमं खलु।"

[पूर्व भवमें उपार्जित धर्मका फल अप्रतिम (अद्वितीय) होता है।] अंतमें उस राजाको धातुविपर्यय (बहुत खराब) रोग हुआ। वह आनेवाले नरकदुःखोंका नमूनारूप था। इस रोगसे उसको रुईकी भरी गद्दियाँ काँटोंके जैसी लगने लगीं। मधुर और स्वादिष्ट (जायकेदार) भोजन नीम जैसे कडुए लगने लगे, चंदन, अगर, कपूर, कस्तूरी वगैरा सुगंधी चीजें

दुर्गंधके जैसी लगने लगीं, पुत्र और स्त्री आदि शत्रुकी तरह आँखोंमें खटकने लगे और सुंदर गायन गधे, ऊँट या गीदड़के स्वरकी तरह कर्णकटु लगने लगे। कहा है—

"पुण्यच्छेदेऽथवा सर्वं प्रयाति विपरीतताम्।"

[जब पुण्यका नाश हो जाता है तब सभी चीजें विपरीत-ही मालूम होती हैं।] कुरुमति और हरिश्चंद्र गुप्तरीतिसे जागकर परिणाममें दुःखदायी; परन्तु थोड़ी देरके लिए सुख देनेवाले विषयोपचार करने लगे। उसके शरीरमें ऐसी जलन होने लगी मानों उसको अंगारे चूम रहे हों। अंतमें वह दुखसे घबराया हुआ रौद्रध्यानमें लीन होकर इस लोकसे चल बसा। (४०८-४१७)

उसका पुत्र हरिश्चंद्र पिताकी अग्निसंस्कारादि क्रिया करके राज्यगद्दीपर बैठा। आचरणसे वह सदाचाररूपी मार्गका मुसाफिर मालूम होता था। वह विधिवत-न्यायसे राज्य करने लगा। अपने पिताकी, पापोंके फलसे हुई (दुःख देनेवाली) मौतको देखकर वह, धर्मकी स्तुति करने लगा। धर्म सब पुरुषार्थोंमें इसी तरह मुख्य है जिस तरह सूर्य ग्रहोंमें मुख्य है। (४१८-४१९)

सुबुद्धि नामका एक श्रावक उसका बालमित्र था। उसको हरिश्चंद्रने कहा, "तुम धर्मज्ञानियोंसे धर्म सुनकर मुझे कहा करो।" सुबुद्धि तत्परतासे उसके कथनानुसार करने लगा। कहा है—

"अनुकूलनिदेशो हि सतामुत्साहकारणम्।"

[अपने मनके अनुकूल आज्ञा सत्पुरुषोंके लिए उत्साहः का कारण होती है।] पापसे डरा हुआ हरिश्चंद्र सुबुद्धिके कहे हुए धर्मपर इसी तरह श्रद्धा रखने लगा जैसे रोगसे डरा हुआ आदमी दवापर विश्वास रखता है। (४२०-४२२)

एक बार शहरके बाहर उद्यानमें 'शीलंधर' नामके महामुनिको केवलज्ञान हुआ था। उनकी पूजा करनेको देवता जा रहे थे। यह बात सुबुद्धिने हरिश्चंद्रसे कही। निर्मल मनवाला हरिश्चंद्र घोड़ेपर सवार होकर मुनिके पास गया। वहाँ वंदना करके वह मुनिके सामने बैठा। महात्मा मुनिने कुमतिरूपी अंधकारके लिए चाँदनीके समान धर्मदेशना दी। देशना (उपदेश) के बाद राजाने मुनिसे हाथ जोड़कर पूछा, "हे महात्मन् ! मेरे पिता मरकर किस गतिमें गए हैं ?"

त्रिकालदर्शी मुनिने कहा, "हे राजा, तेरे पिता सातवें नरकमें गए हैं। उसके समान मनुष्यके लिए दूसरी जगह नहीं हो सकती।"

यह सुनकर उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह मुनिको वंदनाकर, उठा और तत्कालही अपने महलको गया। वहाँ उसने पुत्रको राज्यगद्दीपर बिठाया और सुबुद्धिसे कहा, "मैं दीक्षा लूँगा। तुम मेरी तरह मेरे पुत्रको भी सदा उपदेशकी बातें कहते रहना।"

सुबुद्धि बोला, "मैं भी आपके साथ दीक्षा लूँगा; मगर मेरा पुत्र आपके पुत्रको धर्मकी बातें सदा सुनाता रहेगा।"

फिर राजा हरिश्चंद्र और सुबुद्धिने कर्मरूपी पर्वतका नाश

करनेके लिए वज्रके समान दीक्षा ली। और बहुत समय तक उसका पालन करके वे मोक्षमें गए।" (४०३-४३१)

स्वयंबुद्ध फिर बोला, "आपके वंशमें दूसरा एक दंडक नामका राजा हुआ है। उसका शासन प्रचंड था। वह अपने शत्रुओंके लिए साक्षात यमराजके समान था। उसके मणिमाली नामका पुत्र था। वह अपने तेजसे सूर्यकी तरह दिशाओंको व्याप्त करता था। दंडक राजा पुत्र, मित्र, स्त्री, रत्न, स्वर्ण और द्रव्यमें बहुत मूर्च्छावान था—फँसा हुआ था और इन सबको वह अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यार करता था। आयुष्य पूर्ण-कर वह आर्तध्यानमें मरा और अपने भंडारमें भयानक अज-गरकी योनिमें जन्मकर रहने लगा। वह सर्वभक्षी और भयानक आत्मा जो कोई भंडारमें जाता था उसको निगल जाता था। एक बार उसने मणिमालीको भंडारमें प्रवेश करते देखा, उसने पूर्वजन्मके स्मरणसे जाना कि यह मेरा पुत्र है। वह इतना शांत हो गया कि मूर्तिमान स्नेहसा जान पड़ा। उसकी शांति देख-कर मणिमालीने भी समझा कि यह मेरे पूर्वजन्म का कोई बंधु है। फिर मणिमालीने किन्हीं ज्ञानीसे अजगरका हाल पूछकर जाना कि वह उसका पिता है। उसने अजगरको जैनधर्मका उपदेश दिया। अजगरने भी जैनधर्मको समझकर संवेगभाव-त्यागभाव धारण किया और शुभध्यानमें मरकर वह देवता हुआ। उस देवताने आकर एक दिव्य मोतियोंकी माला मणि-मालीको दी थी। वह माला आज आपके गलेमें पड़ी हुई है। आप हरिश्चंद्रके वंशधर हैं और मैं सुबुद्धिके वंशमें जन्मा हूँ, इसलिए आपका मेरा संबंध वंशपरंपरागत है। इसलिए मेरा

निवेदन है कि आप धर्ममें लगिए। मैंने असमयमें धर्माचरण-की बात क्यों कही, इसका कारण भी सुनिए। आज नंदनवनमें मैंने दो चारणमुनियोंको देखा था। वे दोनों मुनि जगतको प्रकाशित करनेवाले और महामोहरूपी अंधकारका नाश करनेवाले चाँद और सूरजके समान लगते थे। अपूर्व ज्ञानधारी वे महात्मा धर्मदेशना देते थे। उस समय मैंने उनसे आपकी उम्रका प्रमाण पूछा था। उन्होंने बताया था कि आपकी उम्र अब केवल एक महीना रही है। इसलिए हे महामति, मैं आपसे शीघ्रही धर्म-काममें लगनेकी विनती कर रहा हूँ।" (४३२-४४६)

महाबल राजा बोला, "हे स्वयंबुद्ध! हे बुद्धिके समुद्र! मेरे बंधु तो तुम्हीं एक हो। तुम्हीं मेरे हितकी चिंतामें सदा रहते हो। विषयोंमें फँसे हुए और मोहनिद्रामें पड़े हुए मुझको तुमने जगाया यह बहुत अच्छा किया। अब मुझे बताओ कि मैं किस तरह धर्मका साधन करूँ? आयु कम है, अब इतनेसे समयमें कितनी धर्मसाधना कर सकूँगा? आग लगनेके बाद कुँआ खोदकर आग बुझाना कैसे हो सकता है?" (४४७-४४९)

स्वयंबुद्धने कहा, "महाराज अफसोस न कीजिए! दृढ़ बनिए। आप परलोकके लिए मित्रके समान यतिधर्मका आसरा लीजिए। एक दिनकी भी दीक्षा पालनेवाला मनुष्य मोक्ष पा-सकता है तो स्वर्गकी तो बातही क्या है?" (४५०-४५१)

महाबल राजाने दीक्षा लेना स्वीकारकर अपने पुत्रको इसी तरह अपनी राज्यगद्दीपर बिठाया जिस तरह मंदिरमें प्रतिमा स्थापित की जाती है। फिर दीन और अनाथ लोगोंको उसने इस तरहसे और इतना अनुकंपादान दिया कि उस नगरमें एक

भी मनुष्य दीन या अनाथ न रहा। दूसरे इंद्रकी तरह उसने सभी चैत्योंमें विचित्र प्रकारके वस्त्रों, माणिक्यों, स्वर्ण और फूलों वगैरासे पूजा की। फिर उसने स्वजनों और परिजनोंसे क्षमा माँगकर मुनिमहाराजसे मोक्षलक्ष्मीकी सखिके समान दीक्षा ली। सभी सावद्ययोगोंका—दोषोंवाली बातोंका त्यागकर उस राजर्षिने चतुर्विध आहारको भी छोड़ दिया। वे समाधिरूपी अमृतके झरनेमें सदा मग्न रहे, और कमलिनीके खंडकी तरह जरासे भी म्लान नहीं हुए। वे महासत्वशिरोमणि, इस तरह अक्षीणकांतिवाले होने लगे मानों वे अच्छा भोजन करते थे और अच्छी पीनेकी चीजें पीते थे। बाईस दिनके अनशनके अंतमें वे पंचपरमेष्ठीका स्मरण करते हुए कालधर्मको प्राप्त हुए।" (४५२–४५६)

वहाँ से दिव्य अश्वोंके समान संचित पुण्यके द्वारा धनसेठका जीव तत्कालही दुर्लभ ईशानकल्प (दूसरे देवलोक) में पहुँचा। वहाँ श्रीप्रभनामके विमानमें, उत्पन्न होनेके शयनसंपुटमें-मेघके गर्भमें बिजली उत्पन्न होती है वैसे, उत्पन्न हुआ। दिव्य आकृति, समचतुरस्र संस्थान, सात धातुओंसे रहित शरीर, शिरीष-कुसुमके समान कोमलता, दिशाओंके अंतरभागको देदीप्यमान करनेवाली कांति, वज्रके समान काया, बड़ा उत्साह, सब तरहके पुण्यलक्षण, इच्छाके अनुसार रूप धारण करनेकी शक्ति, अवधिज्ञान, सभी विज्ञानोंमें पारंगतता, अणिमादि आठ सिद्धियोंकी प्राप्ति, निर्दोषता और वैभव—ऐसे सभी गुणोंसे सहित वह (धनसेठका जीव) ललितांग ऐसा सार्थक नाम धारण करनेवाला देव हुआ। दोनों पैरोंमें रत्नके

कड़े, कमरपर कंदोरा, हाथमें कंकण, भुजाओंमें भुजबंध, छाती-पर हार, गलेमें ग्रैवेयक (गलेमें पहिननेका जेवर), कानमें कुंडल, मस्तकपर पुष्पमाला और मुकुट वगैरा आभूषण, दिव्य वस्त्र और सभी अंगोंका भूषणरूप यौवन उसको उत्पन्न होनेके साथही प्राप्त हुए। उस समय प्रतिध्वनिसे दिशाओंको गुंजा देनेवाले दुंदुभि बजे और मंगलपाठक (भाट) कहने लगे, "जगतको आनंदित करो और जय पाओ।" गीत-वादित्रकी ध्वनिसे और वंदीजनोंके (चारणोंके) कोलाहलसे मुखरित वह विमान ऐसा जान पड़ता था मानों वह अपने स्वामीके आनेकी खुशीमें आनंदसे गर्जना कर रहा है। फिर ललितांगदेव इस तरहसे उठ बैठा, जैसे सोया मनुष्य उठ बैठता है, और ऊपर कही हुई बातें देखकर सोचने लगा, "क्या यह इंद्रजाल है? सपना है? माया है? या क्या है? ये सब गीत-नाच मेरे लिए ही क्यों हो रहे हैं? ये विनीत लोग मुझे स्वामी माननेके लिए क्यों तड़प रहे हैं? और इस लक्ष्मीके मंदिररूप, आनंदके घररूप, रहनेलायक प्रिय और रमणीय भवनमें मैं कहाँसे आया।" (४६०–४७२)

इस तरहसे उसके मनमें कई सवाल उठ रहे थे उसी समय प्रतिहार उसके पास आया और हाथ जोड़कर कोमल वाणीमें बोला, "हे नाथ! हम आज आपके समान स्वामी पाकर सनाथ हुए हैं; धन्य हुए हैं। आप नम्र सेवकोंपर अमी-दृष्टिसे कृपा कीजिए। हे स्वामी! यह ईशान नामका देवलोक है। यह सभी इच्छित (वस्तुयें) देनेवाला, अविनाशी लक्ष्मीवाला और सभी सुखोंकी खान है। इस देवलोकमें आप जिस विमान-

को सुशोभित कर रहे हैं वह 'श्रीप्रभ' नामका विमान है। पुण्यसे आपको यह मिला है। ये सब सामानिक देवता हैं जो आपकी सभाके सिनगार जैसे हैं। इनके इस विमानमें आप एक होते हुए भी अनेक जैसे मालूम होते हैं। हे स्वामी! ये तेंतीस पुरोहित देवता हैं। ये मंत्रके स्थानरूप हैं। ये आपकी आज्ञा पालनेको तैयार हैं। इनको समयोचित आदेश दीजिए।

"ये इस परिषदके नर्म-सचिव (विदूषक) हैं। ये आनंद-क्रीडा करानेके प्रधान हैं। ये लीला-विलासकी बातोंमें आपके मनको प्रसन्न करेंगे।

"ये आपके शरीररक्षक देवता हैं। ये सदा कवच पहननेवाले, छत्तीस तरहके हथियारोंसे लैस रहनेवाले और अपने स्वामीकी रक्षा करनेमें चतुर हैं।

"ये आपके नगरकी (विमानकी) रक्षा करनेवाले लोकपाल देवता हैं।

"ये सेनासंचालनमें चतुर सेनापति हैं।

"और ये पुरवासी और देशवासी प्रकीर्णक देवता हैं; जो आपकी प्रजाके समान हैं। ये आपकी निर्माल्य (बिलकुल मामूली) आज्ञाको भी अपने मस्तकपर धारण करेंगे।

"ये आभियोग्य देवता हैं। ये आपकी दासकी तरह सेवा करेंगे।

"ये किल्बिषक देवता हैं। ये सब तरहके मलिन काम करेंगे।

"ये आपके महल हैं जो सुंदर रमणियोंसे रमणीक आँगनवाले, मनको प्रसन्न करनेवाले और रत्नोंसे जड़े हुए हैं।

"स्वर्णकमलकी खानके समान ये बावड़ियाँ हैं।

"रत्न और स्वर्णके शिखरवाले ये क्रीड़ा-पर्वत हैं।

"आनंद देनेवाली और निर्मल जलसे भरी हुई ये क्रीड़ा-नदियाँ हैं।

"नित्य फूल और फल देनेवाले ये क्रीड़ा-उद्यान हैं।

"और अपनी कांतिसे दिशाओंके मुखको प्रकाशित करनेवाला सूर्यमंडलके समान स्वर्ण और माणिक्यसे बना हुआ यह आपका सभामंडप है।

" ये वारांगनाएँ (वेश्याएं) चमर, पंखा और दर्पण लिए खड़ी हैं। ये आपकी सेवा करनेमेंही महामहोत्सव मानती हैं।

"और चार तरहके वाद्योंमें चतुर यह गंधर्ववर्ग आपके सामने संगीत करनेको तैयार खड़ा है।" (४७३-४८६)

प्रतिहारकी बातें सुनकर ललितांगदेवने उपयोग दिया। और उसको अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवकी बातें इसी तरह याद आने लगीं जैसे कलकी बातें याद आती हैं। (४६०)

"मैं पूर्व जन्ममें विद्याधरोंका स्वामी था। मुझे धर्ममित्र स्वयंबुद्ध मंत्रीने जैनेन्द्रधर्मका उपदेश दिया था, उससे मैंने दीक्षा लेकर अनशन किया था। उसीका यह फल मुझे मिला है। अहो ! धर्मका वैभव अचिंत्य है।" (४६१-४६२)

इस तरह पूर्वजन्मका स्मरणकर तत्कालही वह वहाँसे उठा, छड़ीदारके हाथपर हाथ रखकर चला और जाकर उसने सिंहासनको सुशोभित किया। चारों तरफसे जयध्वनि उठी। देवताओंने उसका अभिषेक किया। चमर ढुरने लगे और गंधर्व मधुर और मंगलगीत गाने लगे। (४६४-४६५)

फिर भक्तिभरे मनवाले उस ललितांगदेवने वहाँसे उठकर चैत्यमें जा शास्वती अर्हत्प्रतिमाकी पूजा की और तीन ग्राम (सप्तक) के स्वरोंसे मधुर और मंगलमय गायनोंके साथ विविध स्तोत्रोंसे जिनेश्वरकी स्तुति की; ज्ञानके लिए दीपकके समान ग्रंथ पढ़े और मंडपके खंभेमें रखी हुई अरिहंतकी अस्थिकी अर्चना-पूजा की। (४६६-४६७)

फिर आतपत्र (छत्र) धारण करनेसे पूर्णिमाके चंद्रकी तरह प्रकाशमान होकर वह क्रीड़ाभुवनमें गया। अपनी प्रभासे बिजलीकी प्रभाको भी लज्जित करनेवाली स्वयंप्रभा नामकी देवीको उसने वहाँ देखा। उसके नेत्र, मुख और चरण बहुत कोमल थे, उनसे वह ऐसी मालूम होती थी मानों वह लावण्य-सिंधु (सुंदरताके समुद्र) में कमलवाटिका (वाड़ी) है। अनुक्रमसे स्थूल और गोल जाँघोंसे वह ऐसी जान पड़ती थी मानों कामदेवने अपना माथा वहाँ रखा है। स्वच्छ वस्त्रोंसे ढके हुए नितंबोंसे वह ऐसे शोभती थी जैसे राजहंसोंसे व्याप्त किनारोंसे नदी शोभती है। पुष्ट और उन्नतस्तनोंका भार उठाने-से कृश बना हुआ उदर (उदर और कमर) वज्रके[1] मध्य-भागके समान मालूम होता था, जिसने उसकी मनोहरताको बढ़ा दिया था। उसका तीन रेखाओंवाला और मधुर स्वर बोलने-वाला कंठ कामदेवके विजयकी घोषणा करनेवाले शंखके जैसा

१. वज्र ऊपरसे मजबूत, मोटा और एक तरफसे आगे बढ़ा हुआ और फिर क्रमशः चूड़ा उतार होता है। बीचका भाग पतला होता है। फिर हाथमें पकड़नेका भाग थोड़ा मोटा होता है।

लगता था। बिंबफलका तिरस्कार करनेवाले होठोंसे और नेत्र-रूपी कमलकी नालकी¹ लीलाको ग्रहण करनेवाली नासिकासे वह बहुतही सुंदर दिखाई देती थी। पूर्णिमाके आधे किए हुए चंद्रमाकी सारी लक्ष्मीका हरण करनेवाले उसके स्निग्ध और सुंदर ललाटसे वह मनको मोह लेती थी। उसके कान कामदेवके झूलेकी लीलाको हरनेवाले थे। पुष्पबाणके धनुषकी शोभाको हरनेवाली उसकी भ्रकुटी थी। मुखरूपी कमलके पीछे फिरनेवाले भ्रमरसमूहकी तरह और स्निग्ध काजलके समान उसके केश थे। सारे शरीरमें धारण किए हुए रत्न-जटित आभूषणोंकी रचनासे वह चलती-फिरती कामलतासी मालूम होती थी; और मनोहर मुखकमलवाली हजारों अप्सराओंसे घिरी हुई वह अनेक नदियोंसे वेष्टित गंगाके समान जान पड़ती थी। (४६८–५१०)

ललितांगदेवको अपने पास आते देख, उसने स्नेह-युक्तिसे खड़े होकर उसका सत्कार किया। वह श्रीप्रभ विमानका स्वामी स्वयंप्रभाके साथ जाकर पलंगपर बैठा। वे इस तरह शोभने लगे जैसे एक आलवाल (थाले) में वृक्ष और लता (पेड़ और बेल) शोभते हैं। एकही बेड़ीसे बँधे हुए (दो आदमी एकत्रित रहते हैं वैसे) निबिड रागसे (बहुत प्रेमसे) बँधे हुए उनके चित्त एक दूसरेमें लीन हो गए। जिसके प्रेमकी सुगन्ध अविच्छिन्न है (कभी मिटती नहीं है) ऐसे श्रीप्रभ विमानके प्रभुने देवी स्वयंप्रभाके साथ क्रीडा करते हुए, बहुतसा काल बिताया जो एक कला¹के समान मालूम हुआ। फिर जैसे वृक्षसे पत्ता गिर

१. कला–समयका प्रमाण जो १ मिनिट ३६ सेकंडके बराबर होता है।

पड़ता है वैसेही, आयु पूर्ण होनेसे, स्वयंप्रभा देवीका वहाँसे च्यवन हो गया—देवगतिसे किसी दूसरी गतिमें चली गई। कहा है कि—

"आयुःकर्मणि हि क्षीणे, नेंद्रोऽपि स्थातुमीश्वरः ।"

[आयुकर्मके समाप्त होजानेपर इंद्र भी रहनेमें समर्थ नहीं होता।] (५११-५१५)

प्रियाके वियोग-दुःखसे ललितांगदेव इस तरह गिरकर मूर्च्छित हो गया, मानो वह पर्वतसे गिरा हो या वज्रके आघात-से गिरा हो। थोड़ी देरसे जब वह होशमें आया तब वह जार जार रोने लगा। उसकी प्रतिध्वनि ऐसे जान पड़ती थी मानों सारा श्रीप्रभ विमान रो रहा है। बाग-बगीचोंमें उसका मन न लगा, वापिकाओंके (ठंडे पानीसे) उसका मन ठंडा न हुआ, क्रीडापर्वतमें उसे शांति न मिली और नन्दनवनसे भी उसको खुशी न हुई। हा प्रिये! तू कहाँ है? हा प्रिये! हा प्रिये! पुकारता और रोता, वह सारी दुनियाको, स्वयंप्रभामय देखता, चारों तरफ फिरने लगा। (५१६-५१९)

उधर स्वयंबुद्ध मंत्रीको भी अपने स्वामीकी मौतसे वैराग्य पैदा हुआ। और उसने श्रीसिद्धाचार्य नामक आचार्यसे दीक्षा लेली। वह बहुत वर्षों तक निरतिचार दीक्षा पाल, आयु पूर्ण-कर, ईशान देवलोकमें इंद्रका 'दृढधर्मा' नामक सामानिकदेव हुआ। (५२०-५२१)

उस उदारबुद्धिवाले देवके मनमें पूर्वभवके संबंधसे, बंधु-कासा प्रेम हुआ। वह (अपने विमानसे) ललितांगदेवके पास

आया और उसे धीरज धरानेके लिए कहने लगा, "हे महा-सत्त्व! (हे महागुणी, हे महाधीर,) केवल स्त्रीके लिए आप इतने क्यों घबरा रहे हैं? धीर पुरुष मौतके समय भी इतने नहीं घबराते हैं।" (५२२-५२३)

ललितांगने कहा, "हे बंधु! तुम यह क्या कह रहे हो? प्राणोंका विरह सहन हो सकता है; परंतु कांताका विरह नहीं सहा जा सकता। कहा है कि—

"एकैव ननु संसारे सारं सारंगलोचना।
या विना नूनमीदृश्योप्यसाराः सर्वसंपदः॥"

इस संसारमें एक सारंगलोचना (हिरणके समान आँखों-वाली स्त्री) ही सार है। उसके विना ये सारी संपत्ति भी असार है। (५२४-५२५)

उसकी ऐसी दुखभरी बातें सुनकर ईशानेंद्रका वह सामा-निक देव भी दुखी हुआ। फिर अवधिज्ञानका उपयोग कर उसने कहा, "हे महानुभाव! आप दुःख न कीजिए। मैंने ज्ञान-से जाना है कि आपकी होनेवाली प्रिया कहाँ है? इसलिए स्वस्थ होकर सुनिए। (५२६-५२७)

"पृथ्वीपर धातकीखंडके पूर्वविदेह क्षेत्रमें नंदी नामका गाँव है। उसमें एक दरिद्र गृहस्थ रहता है। नागिल उसका नाम है। वह पेट भरनेके लिए भूतकी तरह सदा भ्रमता है, तो भी पेट नहीं भरता; भूखाही सोता है और भूखाही उठता है। दरिद्री को भूखकी तरह उसके मंदभाग्य-शिरोमणि नागश्री नामकी स्त्री है। खुजलीमें फुंसियोंकी तरह, उसके एक एक करके छह लड़-

कियाँ हुईं। वे लड़कियाँ गाँवके शूकरकी तरह प्रकृतिसे बहुत खानेवाली, बदसूरत और दुनियामें निंदा पानेवाली हुईं। उसके बाद भी उसकी स्त्रीको गर्भ रहा। कहा है—

"प्रायेण हि दरिद्राणां शीघ्रगर्भभृतः स्त्रियः।"

[प्रायः दरिद्रीके घरही गर्भधारण करनेवाली स्त्रियाँ होती हैं।] उस समय नागिल मनमें सोचने लगा, 'यह मेरे किस कर्मका फल है कि मैं मनुष्यलोकमें रहता हुआ भी नरकलोकका दुःख सह रहा हूँ। मेरे साथ जन्मी हुई और जिसका प्रतिकार होना असंभव है, ऐसी इस दरिद्रताने मुझे इस तरह खोखला कर डाला है जिस तरह दीमक पेड़को खाकर खोखला कर देती है। प्रत्यक्ष अलक्ष्मी (दरिद्रता) की तरह, पूर्वजन्मकी वैरिनोंकी तरह, मूर्तिमान अशुभलक्षणोंकी तरह इन कन्याओंने मुझे दुःख दिया है। यदि इसबार भी लड़कीही जन्मेगी तो मैं इस कुटुंबका त्याग कर परदेश चला जाऊँगा। (५२८-५३७)

वह इसी तरहकी बातें सोचा करता था। एक दिन उसने सुना कि उसकी स्त्रीने कन्याको जन्म दिया है। यह बात उसके कानमें सुईसी चुभी। तब वह अपने परिवारको छोड़कर इसी तरह चला गया जैसे अधम बैल भारको छोड़कर चला जाता है (भाग जाता है)। उसकी स्त्रीको पतिके चले जानेकी बात प्रसववेदनाके साथ इसी तरह दुःख देनेवाली हुई, जिस तरह घावपर नमक होता है। दुःखिनी नागश्रीने कन्याका कोई नाम नहीं रखा, इसलिए लोग उसे निर्नामिका कहकर पुकारने लगे। नागश्रीने उसका अच्छी तरह पालन-पोषण नहीं किया। तो भी वह बाला दिन-बदिन बढ़ने लगी। कहा है—

"जंतोर्वज्राहतस्यापि मृत्युर्नात्रुटितायुषः ।"

[प्राणी वज्रकी चोट खानेपर यदि उसका आयुकर्म बाकी होता है तो वह नहीं मरता ।] अत्यन्त अभागी और माताको दुःख पहुँचानेवाली वह दूसरोंके घर हलके काम करके अपना जीवन बिताने लगी । एक दिन उसने किसी धनिकके लड़केके हाथमें लड्डू देखा । वह भी अपनी माँसे लड्डू माँगने लगी । उसकी माता गुस्सेसे दाँत पीसती हुई कहने लगी, "लड्डू क्या तेरा बाप है कि तू उससे माँगती है ? यदि तुझे लड्डू खानेकी इच्छा हो तो अंवरतिलकपर्वतपर लकड़ीका बोझा लेने जा ।"
(५३८–५४६)

अपनी माँकी कंडेकी आगकी तरह जलानेवाली बात सुनकर वह रस्सी लेकर, रोती हुई पर्वतकी तरफ चली । उस समय पर्वतपर, एक रात्रिकी प्रतिमा धारणकर रहे हुए युगंधर नामक मुनिको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था । इससे पासमें रहनेवाले देवताओंने केवलज्ञानकी महिमाका उत्सव करना आरंभ किया था । पर्वतके आसपासके गाँवों और शहरोंमें रहनेवाले नरनारी केवलज्ञानकी बात सुनकर जल्दी जल्दी पर्वतपर जा रहे थे । अनेक तरहके वस्त्रालंकारोंसे सजे हुए लोगोंको आते देखकर निर्नामिका विस्मित हुई और चित्रमें लिखी पुतलीसी खड़ी रही । जब उसे लोगोंके पर्वतपर जानेका कारण मालूम हुआ तब वह भी लकड़ीका बोझा, दुःखके भारकी तरह, फेंककर लोगोंके साथ पर्वतपर चढ़ी ।

"......तीर्थानि सर्वसाधारणानि यत् ।"

[कारण, तीर्थ सबके लिए समान होते हैं।] उसने महामुनिके चरणकमलोंको कल्पवृक्षके समान समझा और आनंदसे वंदना की। ठीकही कहा गया है—

"......मतिः गत्यनुसारिणी।"

[बुद्धि गतिके अनुसार होती है।] महामुनिने गंभीर-वाणीमें, लोगोंके लिए हितकारी और आनंदकारी धर्मदेशना दी। (५४७-५५६)

"कच्चे सूतसे बुने हुए पलंगपर सोनेवाला प्राणी जैसे जमीनपर गिरता है वैसेही विषयसेवन करनेवाला आदमी भी संसाररूपी भूमिपर गिरता है। दुनियामें, पुत्र, मित्र और पत्नी आदिका स्नेह-समागम एक रात (किसी मुसाफिरखानेमें) बितानेके लिए रहनेपर वहाँ मिलनेवाले मुसाफिरोंकासा है। चौरासीलाख जीव-योनिमें भटकनेवाले जीवोंपर जो अनंत दुःखका भार है वह अपने कर्मोंकाही परिणाम है। (५५७-५५८)

तब हाथ जोड़कर निर्नामिकाने सवाल किया, "हे भगवन्! आप राजा और रंक दोनोंमें समान भाव रखनेवाले हैं; इसीलिए मैं पूछती हूँ। आपने कहा है कि संसार दुःखोंका घर है; मगर मुझसे ज्यादा दुखीभी क्या कोई इस दुनियामें है?" (५५९-५६०)

"केवलीभगवानने कहा, "हे दुःखनी बाला! हे भद्रे! तुमें क्या दुःख है! तुमसे बहुत ज्यादा दुःखी जीव हैं, उनका हाल सुन। जो जीव अपने बुरे कर्मोंके कारण नरकगतिमें

जाते हैं उनमेंसे अनेकोंके शरीर भिदते हैं, अनेकोंके अंग छिदते हैं और अनेकोंके मस्तक धड़से जुदा होते हैं। नरकगतिमें अनेक जीव तिलोंकी तरह, परमाधामी देवों द्वारा, घाणोमें पीले जाते हैं, कई लकड़ीकी तरह तीक्ष्ण करौतोंसे चीरे जाते हैं और कई घनोंसे लोहेके बरतनोंकी तरह कूटे जाते हैं। वे असुर कई जीवोंको सूलीकी सेजपर सुलाते हैं, कइयोंको कपड़ोंकी तरह शिलाओंपर पछाड़ते हैं और कइयोंके शाककी तरह टुकड़े टुकड़े करते हैं; मगर उन सबके शरीर वैक्रियक होते हैं इसलिए तत्कालही मिल जाते हैं। इसलिए परमाधामी फिरसे उनको उसी तरह दुःख देते हैं। ऐसे दुःख झेलते हुए वे करुण स्वरमें रोते हैं। वहाँ पानी माँगनेवालोंको तपाये हुए शीशेका रस पिलाया जाता है और छाया चाहनेवाले जीवोंको असिपत्र (तलवारकी धार जैसे पत्तोंवाले) नामक पेड़ोंके नीचे बिठाया जाता है। अपने पूर्वकर्मोंको याद करते हुए वे पलभरके लिए दुःखसे रहित नहीं हो सकते। हे वत्से! (हे बाले!) उन नपुंसकवेदवाले नारकी जीवोंको जो दुःख होते हैं उनका वर्णन भी आदमियोंको कंपा देता है। (५६१–५६६)

"इन नारकी जीवोंकी बात तो दूर रही; मगर सामने दिखाई देनेवाले जलचर, स्थलचर और खेचर तिर्यंच जीवोंको भी पूर्वकर्मोंके उदयसे अनेक तरहके दुःख भोगने पड़ते हैं। जलचरजीवोंमेंसे कइयोंको दूसरे जलचर खाजाते हैं, कइयोंको धीवर पकड़ते हैं और कइयोंको बगुले पकड़कर निगल जाते हैं। चमड़ा चाहनेवाले मनुष्य उनका चमड़ा उधेड़ते हैं, खानेके शौकीन उनको मांसकी तरह भूनते हैं और चरबी चाहनेवाले

उनको पेलते हैं। (५७०-५७२)

"स्थलचर जीवोंमें मांसकी इच्छावाले बलवान सिंह वगैरा गरीब हिरन वगैराओंको मारते हैं, शिकारके शौकीन उन गरीब निरपराध प्राणियोंको, मांसके लिए या केवल शिकारका शौक पूरा करनेहीके लिए, मारते हैं। बैल वगैरा पशु भूख, प्यास, सरदी और गरमी सहन करते हैं, बहुत बोझा उठाते हैं और चाबुक, अरई आदिके आघात सहते हैं। (५७३-५७५)

"आकाशचारी जीवोंमेंसे तीतर, तोता, कबूतर, चिड़िया वगैराओंको मांसभक्षी बाज, गीध, सिचान (शिकरा) वगैरा पकड़कर खाजाते हैं और चिड़ीमार उन सबको अनेक तरकीबों-से पकड़ते हैं और तरह तरहसे सताकर मार डालते हैं। उन तिर्यंचोंको दूसरे शस्त्रों आदिका और जल (आग वगैराका) भी बहुत डर रहता है। पूर्वकर्मोंका बंधन ऐसा होता है कि जिसका विस्तार रोका नहीं जा सकता। (५७६-५७८)

"जो जीव मनुष्ययोनिमें जन्म लेते हैं उनमेंसे भी अनेक ऐसे होते हैं जो जन्महीसे अंधे, बहरे, लूले, लँगड़े और कोढ़ी होते हैं। कई चोरी करनेवाले और कई परस्त्रीगामी मनुष्य अनेक तरहके दंड पाकर नारकी जीवोंकी तरहही दुःख पाते हैं। कई अनेक तरहके रोगोंमें फँस जाते हैं और अपने पुत्रोंसे भी उपेक्षित होते हैं-उनके बेटे भी उनकी परवाह नहीं करते। कई बिकते हैं और (नौकर, गुलाम आदि होकर) खच्चरोंकी तरह अपने स्वामियोंसे पिटते हैं, अपमानित होते हैं, बहुत बोझा उठाते हैं और भूख-प्यासके दुःख सहते हैं। (५७९-५८२)

"आपसमें लड़कर हार जानेसे और अपने स्वामीके स्वामित्व-में बँधे रहनेके कारण देवता भी सदा दुःखी रहते हैं। स्वभाव-सेही दारुण और अपार समुद्रमें जैसे जल-जंतु अपार हैं वैसेही इस संसाररूपी समुद्रमें दुःखरूपी अपार जल-जंतु हैं। भूत-प्रेतोंके स्थानमें जैसे मंत्राक्षर रक्षक होते हैं वैसेही इस संसारमें जिनेश्वरका बताया हुआ धर्म संसाररूपी दुःखोंसे बचाता है। बहुत अधिक बोझेसे जैसे जहाज समुद्रमें डूब जाता है वैसेही हिंसारूपी बोझेसे प्राणी नरकरूपी समुद्रमें डूब जाता है, इससे कभी हिंसा नहीं करनी चाहिए। झूठको सदा छोड़ना चाहिए। कारण, झूठसे प्राणी इसी तरह संसारमें सदा भटकता रहता है जैसे बवंडरसे तिनका इधर-उधर उड़ता रहता है। कभी चोरी नहीं करनी चाहिए—बगैर मालिककी आज्ञाके कभी कोई चीज नहीं लेनी चाहिए। कारण, चोरीकी चीज लेनेसे आदमी इसी तरह दुःखी होता है जिस तरह कपिकच्छ (कौंच) की फलीसे छूकर आदमी खुजाते खुजाते परेशान हो जाता है। अब्रह्मचर्य (संभोग-सुख) को सदा छोड़ना चाहिए। कारण, यह मनुष्यको इसी तरह नरकमें लेजाता है जिस तरह सिपाही बदमाशको पकड़-कर हवालातमें लेजाता है। परिग्रह जमा नहीं करना चाहिए। कारण, बहुत बोझेसे बैल जैसे कीचड़में फँस जाता है वैसेही आदमी परिग्रहके भारसे दुःखमें डूब जाता है। जो लोग हिंसा आदि पांच बातें देशसे (थोड़ेसे) भी छोड़ते हैं वे उत्तरोत्तर कल्याण-संपत्ति के पात्र होते हैं। (५७६–५६१)

"केवली भगवानके मुखसे उपदेश सुनकर निर्नामिकाको वैराग्य उत्पन्न हुआ। लोहेके गोलेकी तरह उसकी कर्मग्रंथी

सिद गई। उसने मुनिमहाराजसे अच्छी तरह सम्यक्त ग्रहण किया; सर्वज्ञका बनाया हुआ गृहस्थधर्म अंगीकार किया और परलोकरूपी मार्गके लिए पाथेयके समान अहिंसादि पाँच अणुव्रत धारण किए। फिर मुनिमहाराजको प्रणामकर अपने-को कृतकृत्य समझ, घासका बोझा उठाकर अपने घर गई। उस दिनसे वह बुद्धिमती बाला अपने नामकी तरह योगंधर मुनिके उपदेशको नहीं भुलाती हुई अनेक तरहके तप करने लगी। वह जवान हुई तो भी किसीने उससे शादी नहीं की। जैसे कड़वी लौकीको पकनेपर कोई नहीं खाता वैसेही उसको भी किसीने ग्रहण नहीं किया। इस समय विशेष वैराग्य-की भावनासे निर्नामिका योगंधरमुनिसे अनशनव्रत ग्रहण कर रही है। हे ललितांगदेव! तुम उसके पास जाओ और उसे दर्शन दो, जिससे तुममें आसक्त वह मरकर तुम्हारी पत्नी बने। कहा है—

"......या मतिः सा गतिः किल।"

[अंतमें जैसी बुद्धि होती है वैसीही गति होती है]

(५९२-५९९)

ललितांगदेवने वैसाही किया। और उसके ऊपर (मनमें) प्रेम करती हुई वह सती मरकर स्वयंप्रभा नामा उसकी पत्नी हुई। प्रणय-कोपसे भागकर गई हुई स्त्री वापस आई हो उस तरह, अपनी प्रियाको पाकर ललितांगदेव अधिक क्रीड़ा करने लगा। कारण, बहुत धूपमें तपेहुए आदमीको छाया अत्यंत प्रिय-सुखदेनेवाली होती है। (६००-६०१)

इस तरह क्रीड़ा करते बहुतसा समय बीत गया। पीछे ललितांगदेवको अपने च्यवनके चिह्न दिखाई देने लगे। स्वामीका वियोग निकट समझकर उसके रत्नाभरण निस्तेज होने लगे, मुकुटकी मालाएँ म्लान होने लगीं और उसके अंगवस्त्र मलिन होने लगे। कहा है—

"आसन्ने व्यसने लक्ष्म्या लक्ष्मीनाथोऽपि मुच्यते।"

[जब दुःख नजदीक आता है तब लक्ष्मी विष्णुको भी छोड़ जाती है] उस समय उसके मनमें धर्मका अनादर, भोगकी विशेष लालसा उत्पन्न हुई। जब अंतसमय आता है तब प्राणियों की प्रकृतिमें परिवर्तन होही जाता है। उसके परिवारके मुखसे अपशकुनमय-शोककारक और नीरस वचन निकलने लगे। कहा है—

"भाविकार्यानुसारेण, वागुच्छलति जल्पताम्।"

[बोलनेवालेकी जबानसे, होनहारके अनुसारही. वचन निकलते हैं।] जन्मसे प्राप्त हुई लक्ष्मी और लज्जारूपी प्रियाने उसे इसी तरह छोड़ दिया जैसे लोग किसी अपराधीका त्याग करदेते हैं। चींटिके जैसे मौतके समयही पंख आते हैं वैसेही वह अदीन और निद्रारहित था, तो भी अंतसमय निकट आनेसे वह दीन और निद्राधीन हुआ। हृदयके साथ उसके संधिबंध शिथिल होने लगे। महाबलवान पुरुष भी जिनको नहीं हिला सकते थे ऐसे उसके कल्पवृक्ष काँपने लगे। उसके नीरोग अंगोपांगकी संधियाँ भविष्यमें आनेवाले दुःखकी शंकासे भग्न (शिथिल) होने लगीं। दूसरेका स्थायीभाव देखनेमें

असमर्थ हो ऐसे उसकी आँखें चीजोंको देखनेमें असमर्थ होने लगीं। गर्भमें रहनेके दुःखका भय लगा हो वैसे उसका सारा शरीर काँपने लगा। ऊपर अंकुश लेकर बैठे हुए महावतके कारण जैसे हाथीको चैन नहीं पड़ती वैसेही वह ललितांगदेव रम्य-क्रीड़ापर्वतों, सरिताओं, वापिकाओं, दीर्घिकाओं (तालावों) और बगीचोंमें भी आराम नहीं पाता था। (६०२-६१३)

उसकी ऐसी दशा देखकर देवी स्वयंप्रभा बोली, "हे नाथ! मैंने आपका ऐसा कौनसा अपराध किया है कि जिसके कारण आप इस तरह नाराजसे रहते हैं? (६१४)

ललितांगदेव बोला, "हे सुभ्रू! (सुन्दर भौंहोंवाली!) तुमने कोई अपराध नहीं किया। अपराध मेरा है कि मैंने पुण्य कम किया—तपस्या भी कम की। पूर्वजन्ममें मैं विद्याधरोंका राजा था, तब भोगकार्योंमें जागृत और धर्मकार्योंमें प्रमादी था। मेरे सौभाग्यके दूतकी तरह स्वयंबुद्ध नामके मंत्रीने मेरी थोड़ी उम्र बाकी रही तब मुझे जैनधर्मका उपदेश दिया। मैंने उसको स्वीकार किया। उस थोड़ी मुद्दत तक पालन किए हुए धर्मके प्रभावसे मैं इतने समय तक श्रीप्रभ विमानका प्रभु रहा; मगर अब मुझे यहाँसे जाना पड़ेगा। कारण, अलभ्य वस्तुका कभी लाभ नहीं होता। (६१५-६१८)

इसी समय इंद्रकी आज्ञासे दृढ़धर्मा नामका देव उसके पास आया और बोला, "आज ईशान कल्पके स्वामी नंदीश्वरादिक द्वीपोंमें जिनेन्द्रप्रतिमाओं की पूजा करनेके लिए जानेवाले हैं। उनकी आज्ञा है कि आप भी उनके साथ जावें। (६१९-६२०)

सुनकर उसे बड़ी खुशी हुई और वह यह कहता हुआ

अपनी प्रियाके साथ रवाना हुआ कि सौभाग्यसे स्वामीकी आज्ञा भी समयके अनुसारही मिली है। (६२१)

नंदीश्वर द्वीपमें जाकर उसने शाश्वती अर्हत्प्रतिमाकी पूजा की। और पूजासे पैदा हुए आनंदमें वह अपने च्यवनकाल-को भी भूल गया। निर्मल मनवाला वह देव जब दूसरे तीर्थोंकी तरफ जा रहा था तब उसकी आयु समाप्त हो गई और वह थोड़े तेलवाले दीपककी तरह रस्तेमेंही समाप्त हो गया—देवयोनिसे निकल गया। (६२२-६२३)

पाँचवाँ भव

जंबूद्वीपमें, सागरके समीप पूर्वविदेह क्षेत्र है। उसमें सीता नामकी महानदीके उत्तरतटकी तरफ पुष्कलावती नाम-का विजय (प्रांत) है। उसमें लोहार्गल नामका बड़ा शहर है। उसका राजा स्वर्णजंघ था। उसकी पत्नी लक्ष्मीके गर्भसे ललि-तांग नामका देव पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ। आनंदसे फले हुए माता-पिताने खुश होकर उसका नाम वज्रजंघ रखा। (६२४-६२६)

स्वयंप्रभादेवी भी, ललितांगदेवके वियोगसे दुखी होकर धर्मकार्यमें दिन बिताती हुई, कुछ कालके बाद वहाँसे च्यवी और उसी विजयमें पुंडरीकिनी नगरीके राजा वज्रसेनकी पत्नी गुणवतीकी कोखसे कन्यारूपमें जन्मी। वह बहुतही शोभा-वाली (सुंदरी) थी, इसलिए मातापिताने उसका नाम श्रीमती रखा। वह दाइयों द्वारा पाली जाकर इस तरह क्रमशः बढ़ रही थी जिस तरह मालिनों द्वारा पाली जाकर लताएँ बढ़ती हैं।

उसका शरीर कोमल था और उसके हाथ नवीन पत्तोंकी तरह चमकते थे। अपनी स्निग्ध कांतिसे गगनतलको (पृथ्वीको) पल्लवित (आनंदित) करती हुई उस राजबालाको इस तरह यौवन प्राप्त हुआ जिस तरह स्वर्णकी अँगूठीको रत्न प्राप्त होता है (अँगूठीमें रत्न जड़ा जाता है।) एक बार संध्याकी अभ्रलेखा जैसे पर्वतपर चढ़ती है वैसेही वह अपने सर्वतोभद्र नामके महलपर आनंदके साथ चढ़ी। उस समय उसने उधरसे देवताओंके विमानोंको जाते देखा। वे मनोरम नामके उद्यानमें किन्हीं मुनिको केवलज्ञान हुआ था उसके पास जा रहे थे। उन्हें देखकर उसे विचार आया कि मैंने पहिलेभी ऐसा कहीं देखा है। सोचते हुए उसको पूर्वभवकी बातें रातके सपनेकी तरह याद आईं। पूर्वभवके ज्ञानका बोझ उठानेमें असमर्थ हुई हो वैसे वह पलभरमें जमीनपर गिरी और बेहोश हो गई। सखियोंने चंदनादिसे उपचार किया, इससे वह होशमें आई और उठकर इस तरह विचार करने लगी। (६२५-६२६)

"पूर्वभवमें ललितांग नामके देव मेरे पति थे। उनका स्वर्गसे च्यवन हुआ है; मगर अभी वे कहाँ हैं? यह बात मैं नहीं जानती। इसीलिए मेरे मनमें दुःख है। मेरे दिलमें वेही बैठे हुए हैं। वही मेरे प्राणेश्वर हैं। कारण-कपूरके बरतनमें नमक कौन डाले? यदि मैं अपने प्राणपतिसे बातचीत नहीं कर सकती हूँ तो दूसरेके साथ बातचीत करनेसे क्या लाभ?" ऐसा सोचकर उसने मौन धारण कर लिया। (६२७-६२९)

तब उसने बोलना बंद कर दिया तब उसकी सखियोंने इसको दैवदोष समझा और मंत्र-तंत्रादिकसे उपचार करना

शुरू किया। ऐसे सैकड़ों उपचार किए गए मगर उसने मौनका त्याग नहीं किया। कारण, एक रोगकी दवा दूसरे रोगको अच्छा नहीं कर सकती। जब जरूरत होती थी तब वह लिख कर या हाथ आदिके संकेतसे परिवारके लोगोंको अपनी जरूरत बताती थी। (६४०–६४२)

एक दिन श्रीमती अपने क्रीड़ोद्यानमें (खेलने कूदनेके बगीचेमें) गई। उस समय एकांत देखकर उसकी पंडिता नामकी दाईने कहा, "हे राजपुत्री ! तू मुझे प्राणोंके समान प्रिय है और मैं तेरी माताके समान हूँ। इसलिए हमें एक दूसरेपर अविश्वास नहीं रखना चाहिए। हे पुत्री ! तूने जिस कारणसे मौन धारण किया है वह कारण मुझे बता और मुझे दुखमें भागीदार बनाकर अपना दुःख कम कर। तेरा दुःख जानकर उसे मिटानेकी मैं कोशिश करूँगी।" कारण—

"न ह्यज्ञातस्य रोगस्य चिकित्सा जातु युज्यते।"

[रोग जाने बिना इलाज कैसे हो सकता है ?] (६४३–६४६)

तब श्रीमतीने अपनी पूर्वजन्मकी सही बातें पंडिताको इस तरह कह सुनाईं जिस तरह शिष्य प्रायश्चित्तके लिए सद्गुरुके सामने सही सही बातें कहता है। पंडिताने सारी बातें एक पट पर चित्रित कर लीं और फिर वह पंडिता (चतुर) पट लेकर वहाँ से विदा हुई। (६४७–६४८)

उन्हीं दिनोंमें चक्रवर्ती वज्रसेनका जन्मदिन पास आ रहा था, इसलिए बहुतसे राजा और राजकुमार, उस मौकेपर वहाँ आ रहे थे। उस समय श्रीमतीके मनोरथको बनानेवाली

चित्रपटको खोलकर पंडिता राजमार्गमें खड़ी रही। जानेवालों-में से कई शास्त्रोंकी बातें जाननेवाले थे इसलिए वे आगमके अर्थके अनुसार चित्रित नंदीश्वरद्वीप वगैराको देखकर उसकी स्तुति करने लगे। कुछ लोग श्रद्धासे अपने सर हिलाते हुए उसमें चित्रित श्रीमत् अरिहंतके हरेक बिंबका वर्णन करने लगे। कलाकौशलके पंडित राहगीर-बारीकीसे चित्रोंकी रेखा आदिकी वास्तविकता जानकर बार बार बखान करने लगे। और कई लोग काला, सफेद, पीला, नीला और लाल रंगोंसे संध्याभ्र (शामके बादल) के समान, उस पटके अंदरके रंगोंका वर्णन करने लगे। (६४६-६५४)

इतनेहीमें नामके समान गुणवाला दुर्दर्शन नामके राजाका दुर्दांत नामक पुत्र वहाँ आया। वह कुछ क्षण पटको देखता रहा और कपट कर जमीनपर गिरा और बेहोशसा हो गया। फिर वापस होशमें आया हो वैसे वह (धीरे धीरे) उठा। उठने पर लोगोंने उसको बेहोश होनेका कारण पूछा। वह कपट नाटक करके इस तरह अपना (झूठा) हाल सुनाने लगा। (६५५-६५७)

"इस पटमें किसीने मेरे पूर्वजन्मका हाल चित्रित किया है। उसको देखनेसे मुझे पूर्वजन्मका ज्ञान हुआ है। यह मैं ललितांगदेव हूँ और यह मेरी देवी स्वयंप्रभा है। इस तरह उसमें जो जो बातें चित्रित थीं वे वे बातें उसने बताईं।"

पंडिताने कहा, "यदि ऐसा है तो इस पटमें जो जो स्थान हैं उनको अँगुली रखरखकर बताओ।"

दुर्दांतने कहा, "यह सुमेरु पर्वत है और यह पुंडरीकिणी नगरी है।"

पंडिताने पूछा, "मुनिका नाम क्या है ?"

वह बोला, "मैं मुनिका नाम भूल गया हूँ।"

उसने फिर पूछा, "मंत्रियोंसे घिरे हुए इस राजाका नाम क्या है और यह तपस्विनी कौन है ?"

उसने कहा, "मैं उनके नाम नहीं जानता।" (६५८-६६२)

इससे पंडिताने समझ लिया कि यह आदमी मायावी है। उसने हँसते हुए कहा, "हे वत्स ! तेरे कथनानुसार यह तेरे पूर्वजन्मका हाल है। तू ललितांगदेवका जीव है और तेरी पत्नी स्वयंप्रभा अभी कर्मदोषसे पंगु होकर नंदीग्राममें जन्मी है। उसको जातिस्मरण (पूर्वभवका) ज्ञान हुआ इसलिए इस पटमें उसने अपने पूर्वजन्मका चरित्र चित्रित किया। मैं जब धातकीखंडमें गई थी तब उसने मुझे दिया था। मुझे उस पंगुपर दया आई इसलिए मैंने तुझे ढूँढ़ निकाला। अब तू मेरे साथ चल। मैं तुझे धातकीखंडमें उसके पास पहुँचा दूँ। हे पुत्र ! वह गरीब बिचारी तेरे वियोगसे दुःखमें जीवन बिता रही है। इसलिए तू वहाँ जाकर अपने पूर्वजन्मकी प्राणवल्लभा को आश्वासन दे।" (६६३-६६७)

यह कहकर पंडिता चुप हो रही, इसलिए उसके समान उम्रवाले मित्रोंने दिल्लगीके स्वरमें कहा, "हे मित्र ! तुमको स्त्री-रत्नकी प्राप्ति हुई है; इसलिए मालूम होता है कि तुम्हारे पुण्य-का उदय हुआ है। इसलिए तुम जाकर उस पंगु स्त्रीसे मिलो और सदा उसका पालन-पोषण करो।"

मित्रोंसे ऐसी परिहासकी बातें सुनकर दुर्दांतकुमार लज्जित हुआ और बिकी हुई चीजोंमेंसे जैसे बची खुची चीजें रहती हैं वैसा होकर वह वहाँसे चला गया। (६६८-६७०)

थोड़ी देरके बाद उस जगह, लोहार्गलपुरसे आया हुआ वज्रजंघकुमार भी आया। वह चित्रपटमें लिखे हुए चरित्रको देखकर मूर्च्छित होगया। पंखोंसे हवा कीगई और पानी छींटा गया तब वह मूर्छासे जागा। पीछे, वह स्वर्गसे आया हो इस तरह उसे जातिस्मरण-ज्ञान हुआ।"

उस समय पंडिताने पूछा, "हे कुमार! पटको देखकर तुमको मूर्च्छा क्यों आगई थी?"

वज्रजंघने उत्तर दिया, "हे भद्रे! मेरे पूर्वजन्मका हाल, मेरी स्त्री सहित, इस पटमें चित्रित है। उसे देखकर मुझे मूर्च्छा आगई। यह श्रीमान ईशानकल्प है। इसमें यह श्रीप्रभ विमान है। यह मैं ललितांगदेव हूँ और यह मेरी देवी स्वयंप्रभा है। धातकीखंडके नंदीग्राममें महादरिद्रीके घर यह निर्नामिका नाम-की लड़की है। वह इस अंबरतिलक नामके पर्वतपर खड़ी है और उसने युगंधर नामक मुनिसे अनशनव्रत ग्रहण किया है। यहाँ मुझमें आसक्त इस स्त्रीको मैं आत्मदर्शन कराने आया हूँ। फिर वह इस जगह मरकर स्वयंप्रभा नामक मेरी देवी हुई है। यहाँ मैं नंदीश्वरद्वीपके जिनबिंबों की पूजा करनेमें तत्पर हुआ हूँ। और वहाँसे दूसरे तीर्थोंमें जाते समय मेरा च्यवन हुआ है। एकाकिनी, दीन और रंकके समान बनी हुई यह स्वयंप्रभा यहाँ आई है। ऐसा मेरा ख्याल है। और यही मेरी पूर्वभवकी प्रिया है। वह भी यहीं है। और मुझे विश्वास है कि उसीने अपने

जातिस्मरणसे यह पट चित्रित किया है। कारण, अनुभवके विना दूसरा कोई इन वातोंको जान नहीं सकता है।"

सब स्थानोंको वताते हुए वज्रजंघने जो वातें कहीं उनको सुनकर पंडिताने कहा, "तुम्हारा कहना बिलकुल सही है।"

फिर पंडिता श्रीमतीके पास आई और हृदयके दुखको मिटानेवाली दवाके समान वे सारी बातें उसने श्रीमतीसे कहीं। (६७१-६८२)

मेघके शब्द सुनकर जैसे विदूरपर्वतकी भूमि रत्नोंसे अंकुरित होती है वैसेही श्रीमती अपने प्रिय पतिका हाल सुनकर रोमांचित हुई। फिर उसने पंडिताके द्वारा अपने पितासे यह वात कहलाई। कारण—

"अस्वातंत्र्यं कुलस्त्रीणां धर्मो नैसर्गिको यतः।"

[स्वच्छंद न होना कुलीन स्त्रियोंका स्वाभाविक धर्म है।] (६८३-६८४)

पंडिताकी वात सुनकर वज्रसेन राजा ऐसे खुशी हुआ जैसे मेघकी आवाज सुनकर मोरको खुशी होती है। फिर उसने वज्रजंघ कुमारको बुलाया और कहा, "मेरी पुत्री श्रीमती पूर्वजन्मकी तरह इस जन्ममें भी तुम्हारी पत्नी बने।"

वज्रजंघने स्वीकार किया। तब वज्रसेनने अपनी कन्या श्रीमतीका व्याह वज्रजंघके साथ इस तरह कर दिया जिस तरह समुद्रने लक्ष्मीको विष्णुके साथ व्याह दिया था। फिर चंद्र और चाँदनीकी तरह एकरूप बने हुए ये पति-पत्नी उज्ज्वल रेशमी वस्त्र धारणकर राजाकी आज्ञा ले लोहार्गलपुर गए। वहाँ

सुवर्णजंघ राजाने, पुत्रको योग्य समझकर राज्य दिया और खुदने दीक्षा लेली। (६५५-६५८)

इधर वज्रसेन चक्रवर्तीने अपने पुत्र पुष्करपालको राज देकर दीक्षा ली और वे तीर्थंकर हुए। (६६०)

वज्रजंघने अपनी प्रियाके साथ संभोग करते हुए राज्य-भारको इस तरह वहन किया जिस तरह हाथी कमलको वहन करता है। गंगा और समुद्रकी तरह वे कभी वियोगी नहीं हुए। निरंतर सुखका उपभोग करते हुए उस दंपतीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। (६६१-६६२)

ऐसेमें सर्पके भारकी उपमाको सेवन करनेवाले और महा-क्रोधी सीमाके सामंत राजा पुष्करपालके विरोधी हो गए। इसने सर्पकी तरह उनको वश करनेके लिए वज्रजंघको बुलाया। वह बलवान राजा उसको मदद करनेके लिए चला। इंद्रके साथ जैसे इंद्राणी जाती है उसी तरह अचलभक्ति रखनेवाली श्रीमती भी वज्रजंघके साथ चली। वे आधे रस्ते पहुँचे होंगे कि उनको अमावसकी रातमें भी चंद्रिकाका भ्रम करानेवाला एक शरवण (काँस) का महावन दिखाई दिया। मुसाफिरोंने बताया कि इस रस्तेमें दृष्टिविष सर्प (जिन साँपोंके देखतेही जहर चढ़ता है ऐसे सर्प) रहते हैं, इसलिए वह दूसरे मार्गसे चला। कारण—

"......नयज्ञा हि प्रस्तुतार्थेषु तत्पराः।"

[नीतिवान पुरुष प्रस्तुत अर्थमेंही तत्पर होते हैं।]

(६६३-६६७)

पुंडरीक (सफेद कमल) की उपमावाला वज्रजंघ पुंडरीकिणी

नगरीमें आया। और उसकी शक्तिसे सभी सामंत पुष्करपालके आधीन हो गए। विधि (रिवाज) को जाननेवाले पुष्करपालने वयोवृद्धोंका जैसे सम्मान किया जाता है वैसे वज्रजंघ राजा का बहुत सम्मान किया। (६६८-६६६)

कुछ समय बाद श्रीमतीके भाईकी अनुमति लेकर वज्रजंघ राजा वहाँसे श्रीमतीके साथ इस तरह चला जैसे लक्ष्मीके साथ लक्ष्मीपति चलता है। शत्रुओंका नाश करनेवाला वह राजा जब काँसवनके पास आया तब मार्गदर्शक चतुर पुरुषोंने उससे कहा, "अभी इस वनमें दो मुनियोंको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, इससे देवताओंके आनेके प्रकाशसे दृष्टिविषसर्प निर्विष हुआ है। वे सागरसेन और मुनिसेन नामके दो मुनि सूर्य और चंद्रकी तरह अब भी यहीं मौजूद हैं और वे सगे भाई हैं। यह जानकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और विष्णु जैसे समुद्रमें निवास करते हैं वैसे उसने उस वनमें निवास किया। देवताओंकी पर्षदा (सभा) से घिरे हुए और धर्मोपदेश देते हुए उन दोनों मुनियोंको, राजाने स्त्रीसहित भक्तिके भारसे झुका हुआ हो इस तरह झुककर वंदना की। देशनाके अंतमें उसने अन्न, पानी और वस्त्रादि उपकरणोंसे मुनिको प्रतिलाभा; अन्न वस्त्रादि वहोराए-दिए। फिर वह सोचने लगा, "धन्य हैं इन मुनियोंको जो सहोदरभावमें समान हैं, कषायरहित हैं, ममतारहित हैं और परिग्रहरहित हैं। मैं ऐसा नहीं हूँ इसलिए अधन्य हूँ। व्रत ग्रहण करनेवाले अपने पिताके सन्मार्गका अनुसरण करनेवाले ये पिताके औरस (शरीरसे जन्मनेवाले) पुत्र हैं और मैं ऐसा नहीं करता इसलिए खरीदे हुए लड़केके समान हूँ। ऐसा

होते हुए भी यदि अब भी मैं व्रत ग्रहण करूँ तो उचितही होगा। कारण—दीक्षा, दीपककी तरह ग्रहण करने मात्रहीसे अज्ञानके अंधकारको दूर करती है। इसलिए मैं यहाँसे नगरमें जाकर पुत्रको राज्य दूँगा और हंस जैसे हंसगतिका आश्रय लेता है वैसेही मैं भी पिताकी गतिका अनुसरण करूँगा।" (७००-७१०)

फिर एक मनकी तरह व्रत ग्रहण करनेमें भी बाद करनेवाली श्रीमतीके साथ वह अपने लोहार्गलनगरमें आया। वहाँ राज्यके लोभसे उसके पुत्रने धन देकर मंत्रियोंको फोड़ लिया था।

"धनैः.....किं नाभेद्यं जलैरिव।"

[जलकी तरह (धनसे) कौन अभेद्य है? अर्थात जैसे जल सभीको फोड़ देता है इसी तरह धनसे भी प्रायः आदमियोंको अप्रामाणिक बनाया जा सकता है] (७११-७१२)

श्रीमती और वज्रजंघ यह विचार करते हुए सो गए कि सवेरे उठकर पुत्रको राज्यगद्दी देना है और हमें व्रत ग्रहण करना है—दीक्षा लेना है। उस समय सुखसे सोते हुए राज्य-दंपतिको मारडालनेके लिए राजपुत्रने विषधूप किया। कहा है—

"कस्तं निषेद्धुमीशः स्याद्गृहादग्निमिवोत्थितम्।"

[घरमें उठी हुई (लगी हुई) आगकी तरह उसको (राजाके पुत्रको) रोकनेमें कौन समर्थ हो सकता है?] प्राणोंको पकड़कर खींचनेवाले अंकुश (चीमटे) की तरह विषधूपका धूआँ राजारानीकी नाकमें घुसा और उनके प्राणपखेरू उड़ गये। (७१३-७१५)

छठा भव

वज्रजंघ और श्रीमतीके जीव उत्तर कुरुक्षेत्रमें जुगलिया-रूपमें उत्पन्न हुए। ठीक ही कहा है कि—

"एक चिंताविपन्नानां गतिरेका हि जायते।"

[समान विचार करते हुए मरनेवालोंकी गति भी एकही होती है।] (७१६)

सातवाँ भव

उस क्षेत्रके योग्य आयुको पूर्ण कर मरे और सौधर्म देव-लोकमें स्नेहशील देवता हुए और बहुत समयतक स्वर्गके सुख भोगे। (७१७)

आठवाँ भव

देव आयु समाप्त होनेपर, गरमीसे जैसे बरफ गलता है वैसेही वज्रजंघका जीव वहाँसे च्यवा और जंबूद्वीपके विदेह-क्षेत्रमें, क्षितिप्रतिष्ठित नगरमें सुविधि वैद्यके घर पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ। नाम जीवानन्द रखा गया। उसी दिन उस शहर-में, धर्मके शरीरधारी चार अंगोंकी तरह, दूसरे चार बालक जन्मे। पहला ईशानचंद्र राजाके घर कनकवती नामकी स्त्रीसे महीधर नामका पुत्र हुआ। दूसरा सुनासीर मंत्रीकी लक्ष्मी नामक स्त्रीसे लक्ष्मीपुत्रके समान सुबुद्धि नामका पुत्र हुआ। तीसरा सागरदत्त सेठकी अभयमती नामकी स्त्रीसे पूर्णभद्र नाम-का पुत्र हुआ। और चौथा धनश्रेष्ठीकी शीलमती नामकी स्त्रीसे

शीलपुंजके समान गुणाकर नामका पुत्र हुआ। धाइयोंके द्वारा प्रयत्न सहित पालित और रक्षित चारों बालक समानरूपसे इस तरह बढ़ने लगे जैसे शरीरके सभी अंगोपांग एकसाथ बढ़ते हैं। सदा एक साथ खेलते कूदते हुए उन्होंने सारी कलाएँ इस तरह ग्रहण कीं जिस तरह वृक्ष मेघका जल एक साथ समानरूपसे ग्रहण करते हैं। (७१८-७२६)

श्रीमतीका जीव भी देवलोकसे च्यवकर उसी शहरमें ईश्वरदत्त सेठके घर पुत्ररूपमें पैदा हुआ। नाम केशव रखा गया। पाँच इंद्रियाँ और छठे मनकी तरह, वे छः मित्र हुए और प्रायः दिनभर वे एक साथ रहते थे। (७२७-७२८)

उनमेंसे सुविधि वैद्यका पुत्र जीवानंद औषधि और रस-वीर्यके विपाक अपने पितासे सीखकर अष्टांग आयुर्वेदका जाननेवाला हुआ। हाथियोंमें जैसे ऐरावत और नवग्रहोंमें जैसे

१—आयुर्वेदके आठ अंग ये हैं- १—शल्य-इसमें चीरफाड़ सम्बन्धी ज्ञान होता है। अंगरेजीमें इसे सर्जरी (Surgery) कहते हैं। २—शालाक्य-आयुर्वेदोक्त शल्यचिकित्सा संबंधी एक शास्त्रा-तंत्र जिसमें गर्दनके ऊपरकी इन्द्रियोंकी चिकित्साका वर्णन है। ३—काय चिकित्सा-इसमें सर्वांगव्यापी रोगोंकी चिकित्सा दी गई है। ४—भूतविद्या—इसमें पिशाच आदिकी बाधासे उत्पन्न रोगका इलाज बताया गया है। ५—कौमारभृत्य-इसमें बालकोंकी चिकित्सा का वर्णन है। ६—अगदतंत्र-इसमें सर्पादिकके दंशकी चिकित्सा बताई गई है। ७—रसायन-इसमें जराव्याधिनाशक चिकित्सा बताई गई है। ८—वाजीकरण-कामोद्दीपन औषध और उसका प्रयोग।

सूरज अग्रणी (मुख्य) होता है वैसेही सभी वैद्योंमें वह, ज्ञानवान और निर्दोष विद्याओंका जाननेवाला, अग्रणी हुआ। वे छहों मित्र सहोदरकी तरह निरंतर साथ साथ रहते थे और एक दूसरेके घर जमा होते थे। (७२६-७३१)

एक दिन वे वैद्यपुत्र जीवानंद के घर बैठे थे, उस समय एक मुनि महाराज वहोरनेको आए। वे साधु पृथ्वीपाल राजाके गुणाकर नामक पुत्र थे। और उन्होंने मलकी तरह राज्य छोड़कर शमसाम्राज्य—दीक्षा ली थी। गरमीके मौसमसे जैसे नदी सूख जाती है उसी तरह तपसे उनका शरीर सूख गया था। बेसमय और अपथ्य भोजन करनेसे उनको कृमिकुष्ट (ऐसा कोढ़ जिसमें कीड़े पैदा होजाते हैं) नामका रोग होगया था। सारे शरीरमें रोग फैल गया था, तो भी उन महात्माने कभी दवा नहीं माँगी थी। कहा है—

"·········कायानपेक्षा हि मुमुक्षवः।"

[मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छा रखनेवाले) कभी शरीरकी परवाह नहीं करते।] (७३२-७३५)

गोमूत्रिका[1] विधानसे घर घर फिरते साधुको, छटके

---

१. साधु जब आहारपानी लेने जाते हैं तब वे इस तरह एक घरसे दूसरे घर जाते हैं जैसे बैल पेशाब करता है। अर्थात वे सीधे सिलसिलेवार घरोंमें आहार लेने नहीं जाते। कारण सिलसिलेवार जानेसे, संभव है कि अगले घरवाले साधुके लिए कुछ तैयार कर लें। इसलिए वे दाहिने हाथकी श्रेणीके घरसे बाएँ हाथकी श्रेणीके किसी घरमें जाते हैं और बाएं हाथकी श्रेणीके घरसे दाहिने हाथकी श्रेणीके किसी घरमें जाते हैं।

(दो दिनके उपवासके) बाद पारना करनेके लिए आहारपानी लेनेके हेतु, अपने आँगनमें आते उनने देखा। उस समय महीधर कुमारने, जगतके अद्वितीय (दुनियामें जिनके समान दूसरा कोई नहीं है ऐसे) वैद्य जीवानंदसे परिहास करते हुए कहा, "तुमको, बीमारियोंकी जानकारी है, दवाइयाँ मालूम हैं और इलाज भी तुम बहुत अच्छा करते हो; मगर तुममें दया बिलकुल नहीं है। जैसे वेश्या धनके बिना किसीके सामने नहीं देखती वैसेही तुम भी धनके बिना परिचित विनती करनेवाले-प्रार्थना करनेवाले दुःखी आदमियोंकी तरफ भी नहीं देखते। विवेकी आदमियोंको सिर्फ धनका लोभीही नहीं होना चाहिए। किसी समय धर्मका खयाल करके भी इलाज करना चाहिए। तुम्हारी रोगोंके कारणोंकी और उनके इलाजकी, जानकारीको धिक्कार है कि तुम ऐसे श्रेष्ठपात्र रोगी मुनिका भी खयाल नहीं करते।" (७३६-७४१)

यह सुनकर विज्ञानरत्नके रत्नाकर जैसे जीवानंदने कहा, "तुमने मुझको याद दिलाई, यह बहुत अच्छा किया।" धन्यवाद !" अकसर— (७४२)

ब्राह्मणजातिरद्वेष्टा वणिग्जातिरवंचकः ।
प्रियजातिरनीर्ष्यालुः शरीरी च निरामयः ॥
विद्वान् धनी गुणागर्वः स्त्रीजनश्चापचापलः ।
राजपुत्रः सुचरित्रः प्रायेण न हि दृश्यते ॥

[दुनियामें प्रायः ब्राह्मणजाति द्वेष-रहित नहीं होती (द्वेष करनेवाली होती है।) वनियोंकी जाति अवंचक (न ठगनेवाली)

नहीं होती (ठगनेवालीही होती है।) मित्रमंडली अनीर्ष्यालु (ईर्ष्या न करनेवाली) नहीं होती (ईर्ष्या करनेवालीही होती है।) शरीरधारी निरोग (तंदुरुस्त) नहीं होता (रोगीही होता है।) विद्वान लोग धनवान नहीं होते, गुणवान निरभिमानी (बगैर घमंडके) नहीं होते, स्त्री अचपल (चंचलतारहित) नहीं होती और राजपुत्र अच्छे चारित्र (चालचलन) वाला नहीं होता। (७४३-७४४)

ये मुनि इलाज करने लायक हैं (और मैं इलाज करना चाहता हूँ) परन्तु इस समय मेरे पास दवाकी चीजें नहीं हैं। यह अंतराय है; इस व्याधिको मिटाने के लिए लक्षपाक तेल, गोशीर्षचंदन और रत्नकंबल चाहिए। मेरे पास तेल है; मगर दो चीजें नहीं हैं। ये चीजें तुम ला दो।" (७४५-७४६)

ये दोनों चीजें हम लाएँगे, कहकर पाँचों मित्र बाजारमें गए। और मुनि अपने स्थान पर गए। (७४७)

उन पाँचों मित्रोंने बाजारमें जाकर किसी बूढ़े व्यापारीसे कहा, "हमको गोशीर्षचंदन और रत्नकंबलकी जरूरत है। कीमत लो और ये चीजें हमको दो।" उस व्यापारीने कहा, "इनमेंसे हरेककी कीमत एक लाख सोना मुहरें (अशरफियाँ) हैं। यानी दोनोंकी कीमत दो लाख अशरफियाँ हैं। कीमत लाओ और चीजें लेजाओ। मगर पहले यह बताओ कि तुमको इन चीजोंकी जरूरत क्यों हुई ?" (७४८-७४९)

उन्होंने कहा, "जो कीमत हो सो लो और दोनों चीजें हमको दो। इनका उपयोग एक महात्मा का इलाज करनेमें किया जाएगा।" (७५०)

यह सुनकर उसे अचरज हुआ। खुशीसे उसकी आँखें चमकने लगीं और शरीरमें रोमांच हो आया। वह विचार करने लगा, "कहाँ उन्माद, आनंद और यौवनके कारण कामदेवकी मस्तीसे भरी इनकी यह जवानी! और कहाँ वयोवृद्धोंके समान इनकी विवेकशीलमति! जिन कामोंको मुझ जैसे बुढ़ापेसे जर्जर बनेहुए आदमियोंको करना चाहिए उनको ये कर रहे हैं और अदम्य उत्साहके साथ भारको उठा रहे हैं।"

(७५१-७५३)

इस तरह विचारकर बूढ़े व्यापारियोंने कहा, "हे भले जवानो! ये गोशीर्षचंदन और कंबल तुम ले जाओ। कीमत देनेकी जरूरत नहीं है। मैं इन चीजोंकी कीमत, धर्मरूपी अक्षयनिधि लूँगा। तुमने मुझे सगे भाईकी तरह धर्म-काममें हिस्सेदार बनाया है।" फिर उस भले सेठने दोनों चीजें दीं। कुछ काल बाद शुद्ध मनवाला सेठ दीक्षा लेकर मोक्ष गया। (७५४-७५६)

दवाइयाँ लेकर महात्माओंमें अग्रणी वे मित्र वैद्यजीवानंदको साथ लेकर मुनिके पास गए। वे मुनि महाराज एक बड़के नीचे कायोत्सर्ग कर ध्यानमें खड़े थे। वे ऐसे मालूम होते थे मानों बड़के पैर हों। उनको वंदनाकर वे बोले, "हे भगवन! आज हम चिकित्सा-कार्यसे आपके तपमें विघ्न डालेंगे। आप आज्ञा दीजिए और पुण्यसे हमको अनुगृहीत (अहसानमंद) कीजिए।" (७५७-७५९)

मुनिने इलाज करनेकी संमति दी। इसलिए वे तत्कालका मरा गोमृतक (गायका मुरदा) लाए। कारण अच्छे वैद्य कभी भी विपरीत (पापवाला) इलाज नहीं करते। फिर उन्होंने मुनिके

हरेक अंगमें लक्षपाक तेलकी मालिशकी। तेल मुनिकी हरेक नसमें इस तरह फैल गया जैसे नहरका पानी खेतमें फैल जाता है। उस बहुत गरम गुणवाले तेलसे मुनि बेहोश हो गए।

"योग्यमुग्रस्य हि व्याधेः शांत्यामत्युग्रमौषधम् ।"

[बड़ी बीमारीमें बहुत उग्र (तेज) दवाही योग्य होती है-असर करती है।] तेलसे घबराए हुए कीड़े मुनिके शरीरसे इस तरह बाहर निकले जिस तरह पानी डालनेसे वल्मीक (चींटियोंके दर) से चींटियाँ निकलतीं हैं। तब जीवानंदने मुनिके शरीरको रत्नकंबलसे इस तरह ढक दिया जिस तरह चाँद अपनी चाँदनीसे आकाशको ढक देता है। रत्नकंबलमें शीतलता थी, इसलिए शरीरसे बाहर निकले हुए कीड़े उस कंबलमें ऐसे घुस गए जैसे गरमीके दिनोंमें दुपहरके वक्त गरमीसे घबराई हुई मछलियाँ सेवालमें घुस जाती हैं। फिर उन्होंने रत्नकंबलको, हिलाए बगैर धीरेसे उठाकर, उसमेंके सारे कीड़े गायके मुरदेपर डाल दिए। कहा है—

"..........अहो सर्वत्राद्रोहता सताम् ।"

[सतपुरुषोंकी सब जगह अद्रोहता होती है—यानी उनका हरेक काम दयापूर्ण होता है] उसके बाद जीवानंदने अमृतरसके समान प्राणीको जिलानेवाले गोशीर्षचंदनका लेप मुनिके शरीरपर किया। इससे उसमें शांति हुई। इस तरह पहले चमड़ीके अंदरके कीड़े निकले। फिर उन्होंने तेल मला, इससे उद्यानपामुमे जैसे रस निकलता है वैसे मांसके अंदरके बहुतसे कीड़े बाहर निकले। पहलेकी तरह रत्नकंबल ढका, इससे दो तीन दिनके

दहीके जंतु जैसे लाखके पुट पर तैर कर आजाते हैं वैसेही कीड़े ढके हुए रत्नकंबलपर आगए और उन्होंने उनको पहलेकीही तरह गायके मुरदे पर डाल दिया। वाह! वैद्यकी यह कैसी चतुराई है! फिर जीवानंदने गोशीर्षचंदनके रसकी धारासे मुनिको इस तरह शांत किया जैसे गरमीके मौसमसे पीड़ित हाथीको मेघ शांत करता है। थोड़ी देर बाद उन्होंने तीसरीबार लक्षपाक तेलकी मालिश की। इससे हड्डियोंमें जो कीड़े रहे थे वे भी निकल आए। कारण, जब बलवान पुरुष नाराज होता है तब वज्रके पिंजरेमें भी रक्षा नहीं होती। वे कीड़े भी पहलेही-की तरह रत्नकंबलपर लेकर गायके मुरदेपर डालदिए गए। ठीकही कहा गया है कि—

"......अधमस्थानं अधमानां हि युज्यते।"

[बुरे के लिए बुरा स्थानही चाहिए।] फिर उस वैद्य-शिरोमणिने परमभक्तिके साथ जैसे देवको विलेपन किया जाता है वैसेही, मुनिको गोशीर्षचंदनके रसका विलेपन किया। इस तरह दवा करनेसे मुनि निरोग और नवीन कांतिवाले हुए; और मार्जन की हुई-उजाली हुई सोनेकी मूर्ति जैसे शोभती है वैसे शोभने लगे। अन्तमें उन मित्रोंने क्षमाश्रमणसे क्षमा माँगी। मुनिभी वहाँसे विहार करके दूसरी जगह चलेगए। कारण, वैसे साधुपुरुष कभी एक जगहपर नहीं रहते। (७६०-७७७)

फिर बचेहुए गोशीर्षचंदन और रत्नकंबलको बेचकर उन बुद्धिमानोंने सोना लिया। और उस सोनेसे तथा दूसरे अपने सोनेसे (जिसे वे गोशीर्षचन्दन और स्वर्णकंबलके लिए देना चाहते थे) मेरुके शिखर जैसा जिनचैत्य बनवाया। जिन-

प्रतिमाकी पूजा व गुरुकी उपासना—सेवामें तत्पर उन लोगोंने कर्मकी तरह बहुतसा समय भी खपाया। एकबार उन छहों मित्रोंको संवेग (वैराग्य) उत्पन्न हुआ। इससे उन्होंने मुनि-महाराजके पास जाकर जन्मवृक्षके फलसमान दीक्षा अंगीकार की। नवगृह जैसे नियत समयतक रहकर एक राशिसे दूसरी राशिपर फिरा करते हैं वैसेही वे गाँव, नगर और वनमें नियत समयतक रहते हुए विहार करने लगे। उपवास, छट्ठ और अट्ठम वगैरा तपरूपी खरादसे अपने चरित्ररूपी रत्नको अत्यंत उज्ज्वल करने लगे। आहार देनेवालेको किसी तरहकी पीड़ा न पहुँचाते हुए, केवल प्राणधारण करनेके लिए ही वे माधुकरी वृत्तिसे पारणेके दिन भिक्षा ग्रहण करते थे। वीर जैसे (शस्त्रोंके) प्रहार सहन करते हैं वैसेही धीरजके साथ भूख, प्यास और गरमी वगैरा परिसह सहन करते थे। मोहराजाके चार सेनांगों के (फौजके अफसरोंके) समान चार कषायोंको उन्होंने क्षमा-दिक शस्त्रोंसे जीता। फिर उन्होंने द्रव्यसे और भावसे संलेखना करके कर्मरूपी पर्वतका नाश करनेमें वज्रके समान अनशनव्रत ग्रहण किया। समाधिको धारण करनेवाले उन्होंने पंचपरमेष्ठी-का स्मरण करते हुए अपने शरीरका त्याग किया। कहा है—

"......... न हि मोहो महात्मनाम् ।"

[महात्मा पुरुषों को मोह नहीं होता।] (७८८–७८८)

१—मधुकर यानी भौंरा जैसे फूलका पराग ग्रहण करता है; परन्तु उसको तकलीफ नहीं पहुँचाता, इसी तरह साधु गृहस्थके घरसे इस तरह और इतना आहार लेते हैं कि गृहस्थको बोझा नहीं मालूम होता।

नवाँ भव

वे छहों महात्मा वहाँसे आयु समाप्त कर अच्युत नामके देवलोकमें इन्द्रके सामानिक देव हुए। कारण—

"..........तादृङ् न हि सामान्यफलं तपः ।"

[उस तरहके तपका सामान्य फल नहीं होता।] वहाँसे बाईस सागरोपमकी आयु पूर्णकर वे च्यवे। कारण—

"..........अच्यवनं न हि मोक्षं विना क्वचित् ॥"

[मोक्षके विना दूसरी किसी भी जगहपर अच्यवन-स्थिरता नहीं है।] (७८९-७९०)

दसवाँ भव

पूर्वविदेहमें पुष्कलावती नामक विजय (प्रांत) में लवण समुद्रके पुंडरीकिणी नामका नगर है। उस नगरका राजा वज्रसेन था। उसकी धारणी नामक रानीके गर्भसे उनमेंसे पाँच क्रमशः पुत्ररूपमें जन्मे। उनमेंसे जीवानंदका जीव चतुर्दश महास्वप्नोंसे सूचित वज्रनाभ नामका पहला पुत्र हुआ, राजपुत्र महीधरका जीव बाहु नामसे दूसरा पुत्र हुआ, मंत्रीपुत्र सुबुद्धिका जीव सुबाहु नामसे तीसरा पुत्र हुआ; सेठपुत्र पूर्णभद्रका जीव पीठ नामसे चौथा पुत्र हुआ और सार्थवाहपुत्र पूर्णभद्रका जीव महापीठ नामसे पाँचवाँ पुत्र हुआ। केशवका जीव सुयशा नामसे अन्य राजपुत्र हुआ। सुयशा बचपनहीसे वज्रनाभका आश्रय लेने लगा। सच है—

"स्नेहः प्राग्भवसंबंधो ह्यनुबध्नाति बंधुताम् ।"

[पूर्वभवका स्नेहसंबंध इस भवमें भी बंधुता पैदा करता है ।] (७९१–७९६)

जैसे छः वर्षधर[1] पर्वत मनुष्यरूप पाए हों वैसे वे पाँचों राजकुमार और छठा सुयशा क्रमशः बड़े होने लगे। वे महा-पराक्रमी राजपुत्र बाहर राजमार्गों पर घोड़े कुदाते-दौड़ाते थे, इससे वे रेवंत (सूर्यपुत्र) के समान क्रीडा करनेवाले मालूम होते थे। कलाओं का अभ्यास करानेमें उनके कलाचार्य साक्षी-मात्रही होते थे। कारण—

''प्रादुर्भवंति महतां स्वयमेव यतो गुणाः ।''

[महान आत्माओंमें गुण अपने आपही पैदा होते हैं।] वे अपने हाथोंसे बड़े पर्वतोंको शिलाकी तरह तोलते थे-उठा लेते थे, इसलिए उनकी बालक्रीडा किसीसे भी पूर्ण नहीं होती थी। (७९७-८००)

एक दिन लोकांतिक देवोंने आकर राजा वज्रसेनसे कहा, "हे स्वामी, धर्मतीर्थका प्रवर्तन कीजिए, धर्मतीर्थ आरंभ कीजिए।" (८०१)

१—चूल हिमवंत, महाहिमवंत, निषध, शिखरी, रुक्मी और नीलवंत ये छः पर्वत भरत, हिमवंतादि क्षेत्रोंको अलग करनेवाले हैं, इसलिए वर्षधर पर्वत कहलाते हैं। वर्ष यानी क्षेत्र, धर यानी धारण करनेवाले; वर्षधर क्षेत्रोंको धारण करनेवाले।

२—आठ कर्मोंमें से ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी और अंतराय ये चार कर्म घातिकर्म कहलाते हैं। कारण ये आत्माके ज्ञानादि गुणोंका घात करते हैं।

वज्रसेन राजाने वज्रके समान पराक्रमी वज्रनाभ पुत्रको गद्दीपर बिठाया और एकवर्ष तक दान देकर लोगोंको इस तरह तृप्त करदिया जिस तरह मेघ बरसकर जमीनको तर कर-देते हैं। फिर देव, असुर और मनुष्योंके स्वामियोंने वज्रसेनका निर्गमनोत्सव किया—जुलूस निकाला। और उन्होंने (वज्रसेनने) शहरके बाहरके बागको जाकर इस तरह सुशोभित किया जिस तरह चाँद आकाशको सुशोभित करता है। वहीं उन स्वयंबुद्ध भगवानने दीक्षा ली। उसी समय उनको मनःपर्ययज्ञान (जिससे हरेकके मनकी बात मालूम हो जाती है ऐसा ज्ञान) उत्पन्न हुआ। फिर आत्मस्वभावमें लीन रहने वाले, समता-रूपी धनवाले, ममतारहित, निष्परिग्रही और अनेक तरहके अभिग्रह धारण करनेवाले वे प्रभु पृथ्वीपर विहार करने लगे।
(८०२-८०६)

उधर वज्रनाभने अपने हरेक भाईको अलग अलग देशोंके राज्य दिए। वे चारों भाई सदा उसकी सेवामें रहने लगे। इससे वह ऐसा शोभने लगा जैसे लोकपालोंसे इन्द्र शोभता है। अरुण जैसे सूर्यका सारथी है वैसे सुयश उसका सारथी हुआ। महारथी पुरुषोंको सारथी भी अपने समान ही करना चाहिए। (८०७-८०८)

वज्रसेन भगवानको, घातिकर्म रूपी मलके नाश होनेसे,

१—यह शास्वत नियम है कि जब कोई आत्मा तीर्थंकर होने-वाला होता है तो उसको गृहस्थावस्थामें लोकांतिक देव आकर तीर्थ प्रवर्तानेकी सूचना करते हैं। और वह दीक्षा लेता है।

दर्पण (आइने) परसे मैल निकल जानेसे जैसे उज्ज्वलता प्रकट होती है वैसे ही उज्ज्वल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। (८०९)

उसी समय वज्रनाभ राजाकी आयुधशालामें सूर्यमंडलका भी तिरस्कार करनेवाले चक्ररत्नने प्रवेश किया। दूसरे तेरह रत्न भी उसको तत्कालही मिले। कहा है—

"संपद्धि पुण्यमानेनांभोमानेनेव पद्मिनी।"

[जैसे कमलिनी जलके प्रमाणके अनुसार ऊँची होती है वैसेही पुण्यके अनुसार संपत्ति भी मिलती है।] सुगंधसे आकर्षित होकर जैसे भँवरे आते हैं वैसेही प्रवल पुण्यसे आकर्षित नवनिधियाँ भी आकर उसके घर सेवा करने लगीं। (८१०-८१२)

फिर उसने सारे पुष्कलावती विजयको जीत लिया। इससे वहाँके सभी राजाओंने आकर उसको चक्रवर्ती बनाया। भोगोंका उपभोग करनेवाले उस चक्रवर्ती राजाकी धर्मबुद्धि भी इस तरह अधिकाधिक बढ़ने लगी मानो वह बढ़ती हुई आयुकी स्पर्द्धा कररही हो। अधिक जलसे जैसे लताएँ बढ़ती हैं वैसेही संसारके वैराग्यकी संपत्तिसे उसकी धर्मबुद्धि भी पुष्ट होने लगी। (८१३-८१५)

एकबार साक्षात मोक्षके समान परम आनंद उत्पन्न करनेवाले वज्रसेन भगवान विहार करते हुए उधर आए। वहाँ उनका समवसरण हुआ। समवसरणमें चैत्यवृक्षके नीचे बैठकर उन्होंने कानोंके लिए अमृतकी प्रपा (प्याऊ) जैसी धर्मदेशना देनी प्रारंभ की। (८१६-८१७)

प्रभुका आगमन सुनकर वज्रनाभ चक्रवर्ती बंधुवर्ग सहित राजहंसकी तरह, सानंद प्रभुके चरणोंमें—समवसरणमें आया और तीन प्रदक्षिणा दे, जगत्पतिको वंदना कर, छोटे भाईकी तरह इंद्रके पीछे बैठा। फिर भव्यजीवोंकी, मनरूपी सीपमें बोध-रूपी मोतीको उत्पन्न करनेवाली स्वाति नक्षत्रकी वर्षाके समान प्रभुकी देशनाको वह श्रावकाग्रणी सुनने लगा। मृग जैसे गाना सुनकर उत्सुक होता है वैसे भगवानकी वाणी सुन उत्सुक बना हुआ वह चक्रवर्ती हर्षपूर्वक इस तरह विचार करने लगा। (८१८-८२१)

"यह संसार अपार समुद्रकी तरह दुस्तर (कठिनतासे तैरने लायक) है। इससे तिरानेवाले तीनभुवनके मालिक ये मेरे पिताही हैं। अंधकारकी तरह, पुरुषोंको अत्यंत अंधा बनाने-वाले मोहको, सूर्यकी तरह सब तरहसे भेद करनेवाले ये जिने-श्वरही हैं। चिरकालसे जमा हुआ यह कर्मोंका समूह महा भयंकर असाध्य रोगके समान है। उसका इलाज करनेवाले ये पिताही हैं। अधिक क्या कहा जाए! परंतु करुणारूपी अमृतके सागररूप ये प्रभु दुःखका नाश करनेवाले और अद्वितीय सुखको उत्पन्न करनेवाले हैं। अहो! ऐसे स्वामीके होते हुए भी मैंने, मोहसे प्रमादी बने हुए लोगोंके मुखियाने, अपने आत्मा को, बहुत समयतक (धर्मसे) वंचित रखा है।" (८२२-८२६)

इस तरह विचारकर उस चक्रवर्तीने धर्मके चक्रवर्ती प्रभु-से भक्ति-गद्गद वाणी द्वारा विनती की, "हे नाथ! दर्भ जैसे क्षेत्रकी भूमिको कदर्थित (निकम्मी) करता है, वैसेही अर्थ-साधनका प्रतिपादन करनेवाले नीतिशास्त्रोंने मेरी बुद्धिको दीर्घ-

कालतक कदर्थित किया। विषयोंमें लोलुप होकर मैंने (नेपथ्य-कर्मसे) जुदा जुदा रूप धारण कराके इस आत्माको नटकी तरह चिरकालतक नचाया है। यह मेरा साम्राज्य अर्थ और कामका कारण है। इसमें धर्मका जो चिंतन किया जाता है वह भी पापानुबंधकही होता है। मैं आपके समान पिताका पुत्र होकर भी यदि संसार-समुद्रमें भटका करूँ तो फिर मुझमें और दूसरे सामान्य मनुष्योंमें क्या अंतर है? इसलिए जैसे मैंने आपके दिए हुए राज्यका पालन किया है वैसेही अब, मुझे संयमरूपी साम्राज्य दीजिए। उसका भी मैं पालन करूँगा। (८२७-८३२)

अपने वंशरूपी आकाशमें सूरजके समान चक्रवर्ती वज्रजंघने निज पुत्रको राज्य सौंप भगवानके पाससे दीक्षा ग्रहण की। पिताने और बड़े भाईने जिस व्रतको ग्रहण किया उस व्रतको बाहु आदि भाइयोंने भी ग्रहण किया। कारण उनकी कुलरीति यही थी। सुयशा सारथीने भी धर्मके सारथी ऐसे भगवानसे अपने स्वामीके साथही दीक्षा ली। कारण, सेवक स्वामीका अनुकरण करनेवालेही होते हैं। (८३३-८३५)

वज्रनाभ मुनि थोड़ेही समयमें शास्त्रसमुद्रके पारगामी हुए। इससे वे एक अंगको प्राप्त हुई प्रत्यक्ष जंगम (चलती फिरती) द्वादशांगीके समान मालूम होते थे। बाहु वगैरा मुनिगण ग्यारह अंगोंके पारगामी हुए। ठीकही कहा है कि—

"क्षयोपशमवैचित्र्याच्चित्रा हि गुणसंपदः।"

[क्षयोपशमसे विचित्रता पाई हुई गुणसंपत्तियाँ भी विचित्र तरहकी ही होती हैं। यानी जैसा क्षयोपशम होता है

वैसेही गुण भी मिलते हैं।] यद्यपि वे संतोषरूपी धनके धनी थे तो भी तीर्थंकरकी चरण-सेवा करनेमें और दुष्कर तप करनेमें असंतुष्टही रहते थे। मासोपवासादि (एक महीनेका उपवास आदि) तप करते हुए भी निरंतर तीर्थंकरकी वाणीरूपी अमृतका पान करनेसे वे ग्लानि नहीं पाते थे—थकते नहीं थे। फिर भगवान वज्रसेन स्वामी उत्तम शुक्लध्यानसे निर्वाणपदको प्राप्त हुए। देवताओंने निर्वाणोत्सव किया। (८३६-८४०)

अब धर्मके भाईके समान वज्रनाभ मुनि अपने साथ व्रतधारण करनेवाले मुनियोंके साथ पृथ्वीपर विहार करने लगे। अंतरात्मासे जैसे पाँच इंद्रियाँ सनाथ होती हैं वैसेही वज्रनाभ स्वामीसे बाहु वगैरा चारों भाई तथा सारथी, ये पाँचों मुनि, सनाथ हुए। चाँदकी चाँदनीसे जैसे पर्वतोंमें दवाइयाँ प्रकट होती हैं, वैसेही योगके प्रभावसे उनको खेलादि लब्धियाँ प्राप्त हुईं। (८४१-८४३)

लब्धियों का वर्णन–

१. खेलोसहि लद्धि (श्लेष्मौषधि लब्धि)—कोढ़ीके शरीरपर थोड़ासा थूँक लेकर मलनेसे कोढ़ नाश होता है और शरीर ऐसा सुवर्णवर्ण-सोनेके रंग जैसा हो जाता है जैसे कोटि-रससे (सोना बनानेवाले रससे) ताम्रराशि स्वर्णमय हो जाती है। (८४४)

२. जल्लोसहि लद्धि (जल्लौषधि लब्धि)—इससे कानों, आँखों और शरीर का मैल रोगोंके सभी रोगोंका नाश करनेवाला और कस्तूरीके समान सुगंधदार होता है। (८४५)

३. आमोसहि लद्धि (आमर्शौषधि लब्धि)—जैसे अमृतके स्नानसे रोगियोंके रोग चले जाते हैं वैसेही शरीरके स्पर्शसे सब रोग चले जाते हैं। (८४६)

४. सव्वोसहि लद्धि (सर्वौषधि लब्धि)—बारिशमें बरसता हुआ और नदी वगैरामें बहता हुआ जल, इस लब्धि-वालेके शरीरसे स्पर्श करलेनेपर इसीतरह सभी रोगोंका नाश करताहै जैसे सूरजका तेज अंधकारका नाश करता है। गंधहस्तिके मदकी सुगंधसे जैसे हाथी भाग जाते हैं वैसेही उनके शरीरका स्पर्श करके आए हुए पवनसे विष आदि दोष दूर हो जाते हैं। अगर विष मिला हुआ अन्नादिक पदार्थ उनके मुखमें या पात्र-में आजाता है तो वह भी अमृतकी तरह निर्विष हो जाता है। जहर उतारनेके मंत्राक्षरोंकी तरह उनके वचनको याद करनेसे महाविषके कारण दुख उठाते हुए आदमियोंके दुःख दूर होजाते हैं और (स्वातिका) जल सीपमें गिरनेसे जैसे मोती होता है वैसेही उनके नख, केश, दांत और उनके शरीरसे होनेवाली सभी चीजें (रामबाण) दवाइयां होजाती हैं। (८४७-८५१)

५. अणुत्व शक्ति—धागेकी तरह (अपने शरीरको) सुईके छेदमेंसे निकालनेकी शक्ति।

६. महत्व शक्ति—इससे इतना ऊँचा शरीर बनाया जा सकता है कि मेरु पर्वत भी उनके घुटनों तक पहुँचे।

७. लघुत्व शक्ति— इससे शरीर पवनसे भी हलका किया जा सकता है।

८. गुरुत्व शक्ति— इंद्रादिक देव भी जिसे नहीं सह सकते ऐसा, वज्रसे भी भारी शरीर करनेकी शक्ति।

९. प्राप्ति शक्ति —पृथ्वीपर रहते हुए भी पेड़के पत्तोंकी तरह मेरु के अग्रभागको और ग्रहादिकको स्पर्श करनेकी शक्ति।

१०. प्राकाम्य शक्ति—जमीनकी तरह पानीमें चलनेकी और जलकी तरह जमीनपर भी उन्मज्जन निमज्जन करने (नहाने, धोने, डुबकी लगाने) की शक्ति।

११. ईशत्व शक्ति—चक्रवर्ती और इंद्रकी ऋद्धिका विस्तार करनेकी शक्ति।

१२. वशित्व शक्ति—स्वतंत्र, क्रूरसे क्रूर प्राणियोंको भी वशमें करनेकी शक्ति।

१३. अप्रतिघाती शक्ति— छिद्रकी तरह पर्वतके बीचमेंसे भी बेरोक निकल जानेकी शक्ति।

१४. अप्रतिहत अंतर्ध्यान शक्ति—पवनकी तरह सब जगह अदृश्यरूप धारण करनेकी शक्ति।

१५. कामरूपत्व शक्ति-एकही समयमें अनेक प्रकारके रूपोंसे लोकको पूर्ण कर देनेकी शक्ति[1]।

१—संख्या ४ से १५ की शक्तियाँ वैक्रियलब्धिमें आजाती हैं। यानी वैक्रियलब्धिवालोंमें ये शक्तियाँ होती हैं। इन्हें सिद्धियाँ भी कहते हैं।

१६. बीजबुद्धि—एक अर्थरूपी बीजसे अनेक अर्थरूपी बीजोंको जान सके ऐसी शक्ति। (अर्थात्-जैसे किसान अच्छी जोती हुई जमीनमें बीज बोता है और उससे अनेक बीज होते हैं, इसी तरह ज्ञानावरणादि कर्मोंके क्षयोपशमकी अधिकतासे एक अर्थरूपी बीजको जानने-सुननेसे अनेक अर्थरूपी बीजोंको जानता है, उसे बीजबुद्धि लब्धि कहते हैं।

१७. कोष्टबुद्धि—इससे कोठेमें रखे हुए धान्यकी तरह पहले सुने हुए अर्थ, स्मरण किए बगैर भी यथास्थित रहते हैं।

१८. पदानुसारिणी[1] लब्धि—इससे आदि, अंत या मध्यका एक पद सुननेसे सारे ग्रंथका बोध हो जाता है। (किसी सूत्रका एक पद सुननेसे अनेक श्रुतोंमें जो प्रवृत्त होता है उसे भी पदानुसारिणी लब्धि कहते हैं।)

१९. मनोबली लब्धि—इससे एक वस्तुका उद्धार करके यानी एक बातको जानकर अंतर्मुहूर्तमें सारे श्रुतसमुद्रका अवगाहन किया जा सकता है।

१—इसके तीन भेद हैं। (१) अनुश्रोतपदानुसारिणी—इससे पहला पद या उसका अर्थ सुनकर अंतिम पदतक अर्थकी विचारणामें प्रवृत्त होती है यानी सारे सूत्रका अर्थ मालूम होजाता है। (२) प्रतिश्रोतपदानुसारिणी—इससे अंतिम पद सुनकर सूत्रके पहले पदतकका अर्थ ज्ञात होजाता है। (३) उभयपदानुसारिणी—इससे बीचमेंका कोई एक पद सुनकर सूत्रके आगे पीछेके सभी पदोंका अर्थ मालूम हो जाता है।

*२० वाग्बली लब्धि—इससे एक मुहूर्तमें मूलाक्षर गिननेकी लीलासे सारे शास्त्रका पाठ किया जा सकता है।

*२१ कायबली लब्धि—इससे बहुत समयतक कायोत्सर्ग करके प्रतिमाकी तरह स्थिर रहनेपर भी थकान नहीं होती है।

२२. अमृत-क्षीरमध्वाज्याश्रवि लब्धि—इससे पात्रमें पड़े हुए कुत्सित—खराब अन्नमें भी अमृत, क्षीर, मधु और घी वगैराका रस आता है; और दुःखसे पीड़ित लोगोंको इस लब्धिवालेकी वाणी अमृत, क्षीर, मधु और घीके जैसी शांति देनेवाली होती है।

२२. अक्षीण[1] महानसी लब्धि—इससे पात्रमें पड़े हुए अन्नमें से कितनाही दानमें दिया जानेपर भी वह अन्न अक्षय रहता है; समाप्त नहीं होता है।

२३. अक्षीणमहालय लब्धि— इससे तीर्थंकरोंकी पर्षदाकी तरह थोड़ी जगहमें भी असंख्य प्राणियोंको बिठाया जा सकता है।

---

*१९, २०, २१ संख्याकी लब्धियाँ वीर्यांतरायकर्मके क्षयोपशमसे प्राप्त होती हैं।

१—यह लब्धि गौतमस्वामीको प्राप्त थी, इसलिए उन्होंने एकबार पात्रमें लाई हुई खीरसे पन्द्रहसौ तापसोंको पारणा कराया था।

२४. संभिन्नश्रोत लब्धि[1]—इससे एक इंद्रीसे दूसरी इंद्रियोंके विषयों का ज्ञान भी प्राप्त किया जा सकता है।

२५. जंघाचारण लब्धि—इस लब्धिवाला एकही कदममें जंबूद्वीपसे रुचकद्वीप[2] पहुँच सकता है; और लौटते समय एक कदममें नंदीश्वर[3] द्वीप और दूसरे कदममें जंबूद्वीप यानी जहाँ से चला हो वहीं पहुँच सकता है। और अगर ऊपरकी तरफ जाना हो तो एक कदममें मेरु पर्वतपर स्थित पांडुक उद्यानमें जा सकता है व लौटते समय एक कदम नंदनवनमें रख दूसरे कदममें जहाँसे चला हो वहीं पहुँच जाता है।

२६. विद्याचारण लब्धि—इस लब्धिवाला एक कदम-में मानुषोत्तर पर्वतपर, दूसरे कदममें नंदीश्वरद्वीप और तीसरे कदममें रवाना होनेकी जगहपर पहुँच सकता है। और ऊपर जाना हो तो जंघाचरणसे विपरीत गमनागमन (जाना आना) कर सकता है।

ये सारी लब्धियाँ वज्रजंघादि मुनियोंके पास थीं। इनके अलावा आसीविष लब्धि और ज्ञानिलाभ पहुँचाने वाली कई

१—इस लब्धिवाला सभी इंद्रियोंसे सुन सकता है या सभी इंद्रियों के विषयोंको एक इंद्रियसे जान सकता है। चक्रवर्तीकी फौजका कोलाहल होता हो; शंख, भेरी, नगारे (ढोल) वगैरा बाजे एक साथ बजते हों, तो भी इस लब्धिवाला सभीकी आवाजोंको अलग अलग पहचान सकता है। २—यह जंबूद्वीपसे तेरहवाँ द्वीप है। ३—यह जंबूद्वीपसे आठवाँ द्वीप है।

दूसरी लब्धियाँ भी उनको मिली थीं। मगर इन लब्धियोंका उपयोग वे कभी नहीं करते थे। सच है—

"मुमुक्षवो निराकांक्षा वस्तुषूपस्थितेष्वपि ।"

[मोक्ष जाने की इच्छा रखने वाले मिली हुई वस्तुओंकी भी इच्छा नहीं रखते, यानी उनका उपयोग नहीं करते ।]

(८४४-८८१)

अब वज्रनाभ स्वामीने बीस स्थानककी आराधना करके दृढ़ तीर्थंकर नाम-गोत्रकर्म उपार्जन किया। उन बीस स्थानोंका-पदोंका वर्णन नीचे दिया जाता है।

१. अरिहंत पद— अरिहंतोंकी और अरिहंतोंकी प्रतिमाकी पूजा करनेसे, उनकी अच्छे अर्थवाली स्तुति करनेसे और उनकी निंदा होती हो तो उसका निषेध करनेसे इस पदकी आराधना होती है।

२. सिद्ध पद—सिद्धस्थानोंमें रहे हुए सिद्धोंकी भक्तिके लिए जागरणका उत्सव करनेसे तथा यथार्थरीत्या सिद्धत्वका कीर्तन-भजन करनेसे इस स्थानकी आराधना होती है।

३. प्रवचन पद—बालक, बीमार और नये दीक्षित शिष्य वगैरा यतियोंपर अनुग्रह करनेसे और प्रवचनका यानी चतुर्विध संघ अथवा जैनशासनपर वात्सल्य-स्नेह रखनेसे इस स्थानककी आराधना होती है।

४. आचार्य पद—बड़े आदरके साथ आहार, दवा, और कपड़े वगैरके दान द्वारा गुरुके प्रति वात्सल्य या भक्ति दिखानेसे इस पदकी आराधना होती है।

१२. **ब्रह्मचर्य पद**— अहिंसादिक मूलगुणोंमें और समिति आदि उत्तरगुणोंमें अतिचाररहित प्रवृत्ति करना बारहवीं ब्रह्मचर्यस्थानक आराधना है।

१३. **समाधि पद**—पल पल और क्षण क्षण प्रमाद छोड़कर शुभध्यानमें लीन रहना तेरहवीं समाधि आराधना है।

१४. **तप पद**—मन और शरीरको पीड़ा न हो, इस तरह यथाशक्ति तप करना चौदहवीं तपस्थानक आराधना है।

१५. **दान पद**—मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक तपस्वियोंको अन्नादिकका यथाशक्ति दान देना पंद्रहवीं दानस्थानक आराधना है।

१६. **वैयावृत्य पद या वैयावच्च पद**— आचार्यादि दसका[1], अन्न, जल, और आसन वगैरहसे वैयावृत्य-भक्ति करना सोलहवीं वैयावृत्यस्थानक आराधना है।

१७. **संयम पद**—चतुर्विध संघके सभी विघ्नोंको दूर करके मनमें समाधि (संतोष) उत्पन्न करना सत्रहवीं संयमस्थानक आराधना है।

१८. **अभिनवज्ञान पद**--अपूर्व ऐसे सूत्र और अर्थ इन दोनोंका प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करना अठारहवीं अभिनवज्ञान स्थानक आराधना है।

---

१. जिनेश्वर, सूरि, वाचक, मुनि, बालमुनि, स्थाविर मुनि, ग्लान (रोगी) मुनि, तपस्वी मुनि, चैत्य और श्रमणसंघ—ये दस।

१२. ब्रह्मचर्य पद— अहिंसादिक मूलगुणोंमें और समिति आदि उत्तरगुणोंमें अतिचाररहित प्रवृत्ति करना बारहवीं ब्रह्मचर्यस्थानक आराधना है।

१३. समाधि पद—पल पल और क्षण क्षण प्रमाद छोड़कर शुभध्यानमें लीन रहना तेरहवीं समाधि आराधना है।

१४. तप पद—मन और शरीरको पीड़ा न हो, इस तरह यथाशक्ति तप करना चौदहवीं तपस्थानक आराधना है।

१५. दान पद—मन, वचन और कायकी शुद्धिपूर्वक तपस्वियोंको अन्नादिकका यथाशक्ति दान देना पंद्रहवीं दानस्थानक आराधना है।

१६. वैयावृत्य पद या वैयावच्च पद— आचार्यादि दसका,[1] अन्न, जल, और आसन वगैरहसे वैयावृत्य-भक्ति करना सोलहवीं वैयावृत्यस्थानक आराधना है।

१७. संयम पद—चतुर्विध संघके सभी विघ्नोंको दूर करके मनमें समाधि (संतोष) उत्पन्न करना सत्रहवीं संयमस्थानक आराधना है।

१८. अभिनवज्ञान पद—अपूर्व ऐसे सूत्र और अर्थ इन दोनोंका प्रयत्नपूर्वक ग्रहण करना अठारहवीं अभिनवज्ञान स्थानक आराधना है।

---

१. जिनेश्वर, सूरि, वाचक, मुनि, बालमुनि, स्थविर मुनि, ग्लान (रोगी) मुनि, तपस्वी मुनि, चैत्य और श्रमणसंघ—ये दस।

१९. **श्रुत पद**—श्रद्धासे, उद्भासन-प्रकाशनसे और अवर्णवाद्-निंदाको मिटाकरके श्रुतज्ञानकी भक्ति करना उन्नीसवीं श्रुतस्थानक आराधना है।

२०. **तीर्थ पद**—विद्या, निमित्त, कविता, वाद और धर्मकथा आदिसे शासनकी प्रभावना करना बीसवीं तीर्थ-स्थानक आराधना है।

इस बीस स्थानकोंमेंसे एक एक पदकी आराधना भी तीर्थंकर नामकर्मके बंधनका कारण होती है; परन्तु वज्रनाभ मुनिने तो इन बीसों स्थानकोंकी आराधना करके तीर्थंकर नामकर्मका वंध किया था। (८८२-९०३)

बाहु मुनिने साधुओंकी सेवा करके चक्रवर्तीके भोग-फलोंको देनेवाला कर्म बाँधा। (९०४)

तपस्वी मुनियोंकी विश्रामणा-सेवासुश्रूषा करके सुबाहु मुनिने लोकोत्तर बाहुबल उपार्जन किया। (९०५)

तब वज्रनाभ मुनिने कहा, "अहो! साधुओंकी वैयावच्च और विश्रामणा (सेवा-सुश्रूषा) करनेवाले इन बाहु और सुबाहु मुनियोंको धन्य है।" (९०५-९०६)

तब प्रशंसा सुनके पीठ और महापीठ मुनियोंने सोचा कि जो लोगोंका उपकार करते हैं उन्हींकी तारीफ होती है। हम दोनों आगमोंका अध्ययन करने और ध्यान करनेमें लगे रहे, इसलिए किसीका कोई उपकार नहीं करसके, इसलिए हमारी तारीफ कौन करेगा? अथवा सभी लोग अपना काम करनेवालेही को मानते हैं। (९०७-९०८)

इस तरह माया-मिथ्यात्वसे युक्त ईर्षा करके, इस बुरे कामकी आलोचना न करके उन्होंने स्त्रीनामकर्म-स्त्रीपर्याय जिससे मिले ऐसा नामकर्म बाँधा। (९०९)

उन छहों महर्षियोंने तलवारकी धाराके समान संयमका, अतिचाररहित, चौदहलाख पूर्व (समयविशेष) तक पालन किया। फिर धीर उन छहों मुनियोंने दोनों तरहकी संलेखना-पूर्वक पादोपगमन अनशन अंगीकार कर, उस देह का त्याग किया। (९१ -९११)

बारहवाँ भव

छहों सर्वार्थसिद्धि नामके पाँचवें अनुत्तर विमानमें तेतीस सागरोपमकी आयुवाले देवता हुए। (९११)

आचार्य श्री हेमचंद्रविरचित त्रिषष्टि शलाका पुरुष
चरित्र महाकाव्यके प्रथम पर्वमें, धन
आदिके बारह भवोंका वर्णन
करनेवाला—

प्रथम सर्ग पूरा हुआ।

卐

सर्ग दूसरा

१. सागरचंद्रका वृत्तांत

इस जंबूद्वीपके पश्चिम महाविदेहमें, शत्रुओंसे जो कभी पराजित नहीं हुई-हारी नहीं, ऐसी अपराजिता नामकी नगरी थी। उस नगरीमें ईशानचंद्र नामका राजा था। उसने अपने बलसे जगतको हराया था और लक्ष्मीसे वह ईशानेंद्रके समान मालूम होता था। (१-२)

उसी शहरमें चंदनदास नामका सेठ रहता था। उसके पास बहुत धन था। वह धर्मात्मा पुरुषोंमें मुख्य और दुनियाको सुख पहुँचानेमें चंदनके समान था। (३)

उसके सागरचंद्र नामका पुत्र था। उससे दुनियाकी आँखें ठंडी होती थीं। समुद्र जैसे चंद्रमाको आनंदित करता है वैसेही वह पिताको आनंदित करता था। स्वभावसेही वह सरल, धार्मिक और विवेकी था। इससे सारे नगरका वह मुखमंडन (तिलक) हो गया था (४-५)

एक दिन सागरचंद्र राजभुवनमें-दरबारमें गया। वहाँ राजा (सिंहासन पर बैठा था) और उसके मुजरा करने और उसकी सेवा करनेके लिए आए हुए सामंत चारों तरफ बैठे थे। राजाने सागरचंद्रका उसके पिताहीकी तरह, आसन, तांबूलदान (पान-बीड़ा देना) वगैरा से सत्कार किया और बड़ा स्नेह जतलाया। (६-७)

उस समय कोई मंगलपाठक (चारण) दरबारमें आया और शंखकी ध्वनिको भी दबादेनेवाली ऊँची आवाजमें कहने लगा, "हे राजा, आज आपके उद्यानमें उद्यानपालिका-मालिन-की तरह फूलोंको सजानेवाली वसंतलक्ष्मीका आगमन हुआ है; इसलिए खिले हुए फूलोंकी सुगंधसे दिशाओंके मुखको सुगंधित करनेवाले बगीचेको, आप इसी तरह सुशोभित कीजिए जिस तरह इंद्र नंदनवनको सुशोभित करता है।" (८-१०)

मंगलपाठककी बात सुनकर राजाने द्वारपालको आज्ञा दी, "नगरमें ढिंढोरा पिटवा दिया जाय कि कल सवेरे सभी राजोद्यानमें (राज्यके बागमें) जाएँ।" फिर उसने सागरचंद्र-से भी कहा, "तुम भी सवेरे बागमें आना।" यह स्वामीकी खुशीका चिह्न है। (११-१२)

राजासे आज्ञा पाकर सागरचंद्र खुशी खुशी अपने घर गया और उसने अपने मित्र अशोकदत्तको राजाकी आज्ञा सुनाई। (१३)

दूसरे दिन राजा अपने परिवार सहित बागमें गया। शहरके लोग भी वहाँ गए। प्रजा राजाका अनुकरण करती है। सागरचंद्र भी अपने मित्र अशोकदत्तके साथ उद्यानमें इसी तरह गया जिस तरह मलय पवनके साथ वसंत ऋतु आती है। वहाँ कामदेवके शासनमें सभी लोग फूल चुनकर, गीत, नाच वगैरा क्रीडाएँ करने लगे। जगह जगह इकट्ठे होकर क्रीडा करते हुए नगरके लोग, (इस बागको) राजा कामदेवके पड़ावके साथ तुलना करने लगे। पद-पदपर गायन और वादनकी ध्वनि

इस तरह हो रही थी मानों वह दूसरी इंद्रियोंके विषयोंको जीतने के लिए निकली है। (१४-१८)

उसी समय पासकी किसी वृत्तोंकी झुरमुटमेंसे स्त्री-कंठसे निकलती हुई "रक्षा करो! रक्षा करो!" की आवाज सुनाई दी। सुनतेही सागरचंद्र उस तरफ आकर्षित हुआ और 'क्या है? क्या है?' कहता हुआ जल्दीसे आवाजकी तरफ दौड़ा। वहाँ जाकर उसने देखा, कि भेड़िया जैसे मृगीको पकड़ता है वैसेही पूर्णभद्र सेठकी पुत्री प्रियदर्शनाको बंदीयोंने (बदमाशोंने) पकड़ रक्खा है। सागरचंद्रने एक बदमाशके हाथसे छुरी इस तरह छीन ली जिस तरह सर्पकी गरदन मोड़कर मणि निकाल लेते हैं। उसकी यह वीरता देखकर दूसरे बदमाश भाग गए। कारण,

"व्याघ्रा अपि पलायंते ज्वलज्ज्वलनदर्शनात् ।"

[जलती आगको देखकर व्याघ्र भी भाग जाते हैं।]

सागरचंद्रने प्रियदर्शना को इस तरह छुड़ाया जिस तरह लकड़-हारेके पाससे आम्रलता छुड़ाई जाती है। उस समय प्रियदर्शना-को विचार आया, "परोपकार करनेके व्यसनियोंमें मुख्य यह कौन है? अहो! यह अच्छा हुआ कि मेरी सद्भाग्यरूपी संपत्ति-से आकर्षित होकर यह पुरुष यहाँ आया। कामदेवके रूपका भी तिरस्कार करनेवाला यह पुरुष मेरा पति हो।" इस तरह विचार करती हुई प्रियदर्शना अपने घरकी तरफ रवाना हुई। सागरचंद्र भी, मूर्ति स्थापित की गई हो इस तरह प्रियदर्शना-को अपने हृदय-मंदिरमें रखकर मित्र अशोकदत्तके साथ घर गया। (१६-२७)

धीरेधीरे चंदनदासको यह बात मालूम हुई। ऐसी बातें गुप्त भी कैसे रह सकती हैं? चंदनदासने अपने दिलमें सोचा, "इस पुत्रका प्रियदर्शनापर प्रेम हुआ, यह उचितही है। कारण, कमलिनीकी मित्रता राजहंसके साथही होती है। परंतु उसने वीरताका काम किया, यह अनुचित हुआ। कारण, पराक्रमी बनियोंको भी अपना पराक्रम प्रकट नहीं करना चाहिए। फिर सागरचंद्र सरल स्वभावका है। उसकी मित्रता मायावी अशोकदत्त से हुई है यह अयोग्य है। इसका साथ इसी तरह बुरा है जिस तरह केलेके साथ बेरका संग अहितकर होता है।" इस तरह बहुत देरतक सोचनेके बाद उसने सागरचंद्र कुमारको बुलाया और जैसे उत्तम हाथीको उसका महावत शिक्षा देना आरंभ करता है वैसेही चंदनदासने सागरचंद्रको मीठी वाणीमें उपदेश देना शुरू किया। (२८-३२)

"हे पुत्र! सब शास्त्रोंका अभ्यास करनेसे तुम व्यवहार-को अच्छी तरह समझते हो, तो भी मैं तुमसे कुछ कहता हूँ। हम वणिक कला-कौशलसे निर्वाह करनेवाले हैं, इसलिए हमें अनुद्भट (सौम्य) स्वभाव व मनोहर वेषसे रहना चाहिए। इस तरह रहनेहीसे हमारी निंदा नहीं होती; इसलिए इस जवानीमें भी तुमको गूढ़ पराक्रमी (वीरताको गुप्त रखनेवाला) होना चाहिए। वणिक लोग सामान्य अर्थके लिए भी आशंका-युक्त वृत्तिवाले कहलाते हैं। स्त्रियोंका शरीर जैसे ढका हुआही अच्छा लगता है वैसेही, हमारी संपत्ति, विषयक्रीड़ा और दान ये सभी गुप्तही अच्छे लगते हैं। जैसे ऊँटके पैरोंमें बँधा हुआ सोनेका कंकण नहीं शोभता वैसेही अपनी जातिके लिए अयोग्य (पराक्रमका) काम करना भी हमें नहीं शोभता। इसलिए

हे प्रिय पुत्र ! अपने कुलपरंपरासे आए हुए योग्य व्यवहार करनेवाले बनकर तुम्हें धनकी तरह गुणको भी गुप्त रखना चाहिए। और जो स्वभावसेही कपटी हों उन दुर्जनोंकी संगति छोड़ देना चाहिए। कारण—

"सोऽलर्कविषवत्कालेनापि यात्येव विक्रियाम् ।"

[वह (दुर्जनकी संगति) पागल कुत्तेके जहरकी तरह समय पाकर विकृत होती है–नुकसान पहुँचाती है।] हे वत्स ! तेरा मित्र अशोकदत्त अधिक परिचयसे तुझे इसी तरह दूषित करेगा जिस तरह कोढ़का रोग, फैलनेसे, शरीरको दूषित करता है। यह मायावी वेश्याकी तरह सदा मनमें जुदा, वचनमें जुदा और काममें जुदा होता है।" (३३-४१)

सेठ इस तरह आदर सहित उपदेश करके चुप रहा, तब सागरचंद्र मनमें सोचने लगा, "पिताजी ऐसा उपदेश करते हैं, इससे जान पड़ता है कि प्रियदर्शनाके संबंधकी बात इनको मालूम होगई है। और पिताजीको यह मेरा मित्र अशोकदत्त संगति करने लायक नहीं मालूम होता है। ऐसे (उपदेश देने-वाले) गुरुजन भाग्यहीनोंकेही नहीं होते। ठीक है, इनकी इच्छा पूरी हो।" इस तरह थोड़ी देर सोचकर सागरचंद्र विनय सहित नम्रवाणीमें बोला, "पिताजी, आपकी आज्ञाके अनुसार मुझे चलनाही चाहिए। कारण, मैं आपका पुत्र हूँ। जिस कामको करनेसे गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लंघन होता है उस कामको नहीं करना चाहिए। मगर कई बार दैवयोगसे, अकस्मात ऐसा काम आ पड़ता है कि जिसके लिए, विचार करनेमें थोड़ासा समय भी नहीं खोया जासकता। जैसे किसी

मूर्ख मनुष्यकी पर्ववेला (पर्वका समय) पैरोंको पवित्र करनेमेंही बीत जाती है वैसेही कुछ काम ऐसे होते हैं जिनका समय विचार करनेमें बीत जाता है (और काम बिगड़ जाता है) फिर भी हे पिताजी ! अबसे, प्राणोंपर संकट आनेपर भी, कोई ऐसा काम न करूँगा जिससे आप लज्जाका अनुभव करें। और आपने अशोकदत्तके बारेमें कहा, मगर मैं न तो उसके दोषोंसे दूषित हूँ और न उसके गुणोंसे गुणीही हूँ। सदाका सहवास, एकसाथ धूलमें खेलना, बार बार मिलना, समान जाति, समान विद्या, समान शील, समान वय और परोक्षमें भी उपकारिता और सुखदुःखमें हिस्सा लेना-आदि कारणोंसे मेरी उसके साथ मित्रता हुई है। मुझे उसमें कोई कपट नहीं दिखता। उसके संबंधमें आपको किसीने झूठी बातें कही हैं। कारण—

"......खलाः सर्वंकषाः खलु।"

[दुष्टलोग दूसरोंको दुखी करनेवालेही होते हैं।] यदि वह मायावी होगा तो भी वह मेरा क्या नुकसान कर सकेगा ? कारण—

"एकत्र विनिवेशेऽपि काचः काचो मणिर्मणिः ॥"

[एक साथ रखे रहनेपर भी काच काचही रहेगा और मणि मणिही रहेगा।] (४२-५४)

सागरचंद्र इस तरह कहकर चुप रहा तब सेठ बोला, "पुत्र ! यद्यपि तुम बुद्धिमान हो तो भी मुझे कहनाही पड़ता है। कारण—

"......दुर्लक्षा हि पराशयाः।"

[दूसरोंका आशय-दूसरोंके मनकी बात-जानना कठिन है।] (५५)

फिर पुत्रकी भावनाको जाननेवाले सेठने शीलादिक गुणोंसे पूर्ण प्रियदर्शनाको, पूर्णभद्र सेठसे (अपने पुत्रके लिए) माँगा। पूर्णभद्र सेठने यह कहकर उसकी माँगको स्वीकार किया, कि आपके पुत्रने तो उपकारके द्वारा पहलेही मेरी पुत्रीको खरीद लिया है।

शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमें मातापिताने सागरचंद्रका प्रियदर्शनाके साथ ब्याह कर दिया। इच्छित दुंदुभि बजनेसे जैसे आनंद होता है वैसेही मनवांछित ब्याह होनेसे वधू-वरको बहुत प्रसन्नता हुई। समान अंतःकरण (भावना) वाले होनेसे-एक आत्मावाले हों इस तरह उनकी प्रीति सारस पक्षीकी तरह बढ़ने लगी। चाँदसे जैसे चाँदनी शोभती है वैसेही निरंतर उदयवाली और सौम्य (मोहक) दर्शनवाली प्रियदर्शना सागरचंद्रसे शोभने लगी। चिरकालसे घटना करनेवाले दैवके योगसे उस शीलवान, रूपवान और सरलतावाले दंपतिका उचित योग हुआ। एक दूसरेपर विश्वास था इसलिए उनमें कभी अविश्वास तो उत्पन्नही नहीं हुआ। कारण, सरल आशय (विचार) वाले कभी विपरीत शंका नहीं करते।

(५६-६३)

एक बार सागरचंद्र जब बाहर गया हुआ था तब अशोकदत्त उसके घर आया और प्रियदर्शनासे कहने लगा, "सागरचंद्र हमेशा धनदत्त सेठकी स्त्रीसे एकांतमें मिलता है, इसका क्या कारण है?" (६४-६५)

स्वभावसेही सरल मनवाली प्रियदर्शना बोली, "इसका कारण तुम्हारे मित्र जानें या सदा उनके दूसरे दिलके समान तुम जानो। व्यवसायी महत्पुरुषोंके एकांतसूचितकार्य कौन जान सकता है? और जो जानता है वह घर क्यों कहेगा?" (६६–६७)

अशोकदत्तने कहा, "तुम्हारे पति उसके साथ एकांतमें मिलते हैं, इसका अभिप्राय मैं जानता हूँ; परंतु वह बताया कैसे जा सकता है?" (६८)

प्रियदर्शनाने पूछा, "बताइए, क्या अभिप्राय है?"

अशोकदत्त बोला, "हे सुभ्रू! जो अभिप्राय मेरा तुम्हारे साथ है, वही अभिप्राय उसका उसके साथ है।" (६९)

इस तरह अशोकदत्तने कहा तो भी उसका मतलब वह नहीं समझी और उस सरल मनवाली प्रियदर्शनाने पूछा, "मुझसे तुम्हें क्या काम है?"

उसने कहा, "हे सुभ्रू! तुम्हारे पतिके सिवा दूसरे किस रसज्ञ और सचेतन पुरुषको तुमसे काम न होगा?" (७०–७१)

अशोकदत्तकी इच्छाको सूचित करनेवला उसका वचन प्रियदर्शनाके कानमें सूईकी तरह चुभा। वह नाराज हुई और सर झुका कर बोली, "हे नराधम! हे निर्लज्ज! तूने ऐसी बात कैसे सोची? अगर सोची तो उसे जबानपर क्यों लाया? मूर्ख! तेरे इस दुःसाहसको धिक्कार है। और हे दुष्ट! मेरे महात्मा पतिको तू अपने समान होनेकी संभावना करता है, यह मित्रके बहाने तू शत्रुका काम कर रहा है। तुझे धिक्कार

है। हे पापी ! तू यहाँसे चला जा ! खड़ा न रह ! तुझे देखनेसे भी पाप होता है।"(७२-७५)

इस तरह अपमानित होकर अशोकदत्त चोरकी तरह वहाँसे निकला। गोहत्या करनेवालेके सामन, पापरूपी अंधकार-से मलिन मुखवाला, खीजता हुआ अशोकदत्त चला जाता था। उस समय सामने आते हुए सागरचंद्रने उसे देखा और उस साफ मनवालेने उससे पूछा, "हे मित्र ! तुम दुखी क्यों दिखते हो ?" (७६-७७)

मायाके पर्वतके समान अशोकदत्तने दीर्घ निःश्वास डाला और मानो महान दुःखसे दुखी हो ऐसे होठ चढ़ाकर कहा," हे भाई ! जैसे हिमालयके पास रहनेवालोंके लिए ठिठुर जानेका हेतु प्रकट है वैसेही, इस संसारमें रहनेवालोंके लिए दुःखके कारण भी प्रकटही हैं। तो भी बुरी जगहपर उठे हुए फोड़ेकी तरह यह बात न गुप्तही रक्खी जा सकती है और न प्रकटही की जा सकती है।"(७८-८०)

इसतरह कह आँखोंमें आँसू भर आनेका कपट दिखावाकर वह चुप रहा। तब निष्कपट सागरचंद्र विचार करने लगा,"अहो! यह संसार असार है। इसमें ऐसे पुरुषोंको भी अचानक ऐसी शंकाकी जगह मिल जाती है। धुआँ जैसे आगकी सूचना करता है वैसेही धैर्यसे नहीं सहने लायक इसके आंतरिक दुःखको जबर्दस्ती इसके आँसू प्रकट करते हैं।" (८१-८३)

कुछ देर इसी तरह सोच, उसके दुःखसे दुखी, सागरचंद्र पुनः गद्गद स्वरमें बोला,"हे बंधु ! अगर कहने लायक हो तो इसी समय, तुम अपने दुःखका कारण मुझे बताओ और मुझे

अपने दुःखका भाग देकर दुःखका भार कम करो।"(८४-८५)

अशोकदत्तने कहा, "हे मित्र ! तुम मेरे प्राणोंके समान हो तुमसे जब दूसरी भी कोई बात छिपाकर नहीं रखी जा सकती तब यह तो छिपाईही कैसे जा सकती है ? तुम जानते हो कि दुनियामें औरतें, अमावसकी रातें जैसे अंधकार पैदा करती हैं वैसे ही, अनर्थ पैदा करती हैं।" (८६-८७)

सागरचंद्रने पूछा, "परंतु भाई ! इस समय तुम नागिनके समान किसी स्त्रीके संकटमें पड़े हो ?"(८८)

अशोकदत्त, बनावटी शरमका दिखावा करके,बोला,"प्रियदर्शना बहुत दिनोंसे मुझे अनुचित बात कहा करती थी, मगर मैंने यह सोचकर, अवज्ञाके साथ उसकी उपेक्षा की कि वह आपही लज्जित होकर चुप हो रहेगी; मगर उसने तो असतीके लायक बातें कहना बंद नहीं किया। कहा है,

"......अहो स्त्रीणामसद्ग्रहाः ।"

[अहो ! स्त्रियोंका अनुचित आग्रह कितना होता है ?।] हे बंधु ! आज मैं तुमसे मिलनेके लिए तुम्हारे घर गया था। तब छलको जाननेवाली उस स्त्रीने राक्षसीकी तरह मुझे रोका। मगर हाथी जैसे बंधनसे छूटता है वैसेही मैं बहुत कोशिशके बाद उसके बंधनसे छूटा और जल्दी जल्दी वहींसे चला आरहा हूँ। मैंने रस्तेमें सोचा,"मेरी जिंदगी तक यह औरत मुझको नहीं छोड़ेगी इसलिए मुझे आत्मघात करलेना चाहिए मगर मरना भी तो ठीक नहीं है। कारण, यह स्त्री मेरे लिए इसी तरह कहेगी या इसके विपरीत कुछ कहेगी ? इसलिए मैं खुदही अपने मित्रको सारी बातें बता दूँ; जिससे वह स्त्रीपर विश्वास करके अपना नाश न

करे। अथवा यह भी ठीक नहीं है। कारण, मैंने उस स्त्रीकी इच्छा पूरी नहीं की तब मैं क्यों उसके दुःशीलकी बात कहकर तुम्हारे घावपर नमक छिड़कूँ ? इसी तरहके विचार करता जा रहा था कि तुमने मुझे देखा। हे भाई ! यही मेरे दुःखका कारण है।" (८६-६८)

उसकी बातें सागरचंद्रको ऐसी लगीं मानों उसने हालाहल-भयंकर जहर पिया हो और वह हवा बिनाके समंदरकी तरह स्थिर हो गया। फिर उसने कहा, "स्त्रियोंके लिए यही ठीक है। कारण, खारी जमीनके तालमें खारा जलही होता है। हे मित्र ! अब अफसोस न करो; अच्छे कामोंमें लगो; स्वस्थ होओ और उसकी बातें याद मत करो। हे भाई ! वह सचमुचही चाहे जैसी भी हो; परंतु हम मित्रोंके मनमें मलिनता नहीं आनी चाहिए।" (६६-१०२)

सरल स्वभाववाले सागरचंद्रकी ऐसी प्रार्थनासे अधम अशोकदत्त खुश हुआ। कारण मायाचारी लोग अपराध करके भी अपनी आतमाकी तारीफ कराते हैं।" (१०३)

उस दिनसे सागरचंद्र प्रियदर्शनासे स्नेहरहित हो, उसके साथ इस तरह रहने लगा जैसे रोगी उँगलीको दुःखी होकर रखा जाता है। कारण,

"वंध्याप्युन्मूल्यते नैव लता या लालिता स्वयम्।"

[खुदने सींची हुई बेल यदि वंध्या होती है-फलफूल नहीं देती है तो भी वह उखाड़कर फैंकी नहीं जाती।] (१०४-१०५)

प्रियदर्शनाने भी यह सोचकर अशोकदत्तकी बात अपने पतिसे नहीं कही कि मेरे कारण मित्रोंमें कोई जुदाई न आवे। (१०६)

सागरचंद्र संसारको कैदखानेके समान मानकर सारी धन-दौलत दीनों और अनाथोंको देकर उन्हें कृतार्थ-निश्चित करने लगा। समयपर प्रियदर्शना सागरचंद्र और अशोकदत्त ये तीनों अपनी अपनी उम्र पूरी कर परलोक गए। (१०७-१०८)

सागरचंद्र और प्रियदर्शना, इस जंबूद्वीपमें, भरतक्षेत्रके दक्षिण खंडमें, गंगा-सिंधुके मध्यप्रदेशमें, इस अवसर्पिणीके तीसरे आरेमें पल्योपमका आठवाँ भाग बाकी रहा था तब युगलिया रूपमें उत्पन्न हुए। (१०९-११०)

पाँच[1] भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रोंमें समयकी व्यवस्था करनेका कारणरूप बारह आरोंका एक कालचक्र गिना जाता है। वह काल अवसर्पिणी[2] और उत्सर्पिणी[3]के भेदसे दो तरहका है। अवसर्पिणी कालके छः आरे हैं। वे नाम सहित नीचे दिए जाते हैं:—

१. **एकांत सुषमा**— यह आरा चार कोटाकोटि सागरोपमका होता है।

२. **सुषमा**—यह तीन कोटाकोटि सागरोपमका होता है।

(१) जंबूद्वीपमें एक, धातकी खंडमें दो और पुष्करार्द्धमें दो इस तरह पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्र जानने चाहिए। (२) अवसर्पिणी=उतरता। (३) उत्सर्पिणी=चढ़ता।

३. **सुषमा दुखमा**—यह दो कोटाकोटि सागरोपमका होता है।

४. **दुखमा सुषमा**—यह बयालीसहजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपमका होता है।

५. **दुखमा**—यह इक्कीसहजार वर्षका होता है।

६. **एकांत दुखमा**— यह भी इक्कीसहजार वर्षका होता है। जिस तरह अवसर्पिणीके आरे कहे हैं उसी तरह उत्सर्पिणीके भी प्रतिलोम क्रमसे छः आरे समझने चाहिए। (अर्थात-१. एकांत दुखमा, २. दुःखमा, ३. दुखमा सुखमा, ४. सुषमा दुखमा, ५. सुषमा, ६. एकांत सुषमा) अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालकी संख्या कुल मिलाकर बीस कोटाकोटि सागरोपमकी होती है। इसे कालचक्र कहते हैं। (१११-११७)

प्रथम आरेमें मनुष्य तीन पल्योपम तक जीनेवाले, तीन कोस ऊँचे शरीरवाले और चौथे दिन भोजन करनेवाले होते हैं। वे समचतुरस्रसंस्थानवाले, सभी लक्षणोंसे लक्षित (चिह्नोंवाले), वज्रऋषभनाराचसंहननवाले और सदा सुखी होते हैं। वे क्रोधरहित, मानरहित, निष्कपट, निर्लोभी और स्वभावहीसे अधर्मका त्याग करनेवाले होते हैं। उत्तरकुरुकी तरह उस समय रातदिन उनकी इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले मद्यांगादि इस तरहके कल्पवृक्ष होते हैं। (११८-१२१)

१—मद्यांग नामके कल्पवृक्ष माँगनेसे तत्कालही उत्तम मद्य देते हैं। २—भृतांग नामके कल्पवृक्ष भंडारीकी तरह पात्र-

उत्पन्न देते हैं। ३—तुर्यांग नामके कल्पवृक्ष तीन तरहके बाजे देते हैं। ४—दीपशिखा और ५—ज्योतिषिका नामके कल्पवृक्ष अत्यंत प्रकाश देते हैं। ६—चित्रांग नामके कल्पवृक्ष विचित्र तरहके फूलोंकी मालाएँ देते हैं। ७—चित्ररस नामके कल्पवृक्ष रसोइयोंकी तरह अनेक तरहके भोजन देते हैं। ८—मण्यंग नामके कल्पवृक्ष उत्कृष्ट आभूषण (जेवर) देते हैं। ९—गेहाकार कल्पवृक्ष गंधर्वनगरकी तरह क्षणभरमें अच्छे घर देते हैं। और १०—अनग्न कल्पवृक्ष मनचाहे कपड़े देते हैं—इनमेंके हरेक कल्पवृक्ष अनेक तरहकी मनचाही चीजें भी देते हैं। (१८८–१९६)

उस समय जमीन शक्करसे भी बहुत अधिक स्वादिष्ट (जायकेदार) होती है। नदी वगैराका जल अमृतके जैसा मीठा होता है। उस आरेमें क्रमशः धीरे धीरे आयु, संहननादिक और कल्पवृक्षोंका प्रभाव कम कम होता जाता है। (१९७–१९८)

दूसरे आरेमें मनुष्य दो पल्योपम की आयुवाले, दो कोस ऊँचे शरीरवाले, और तीसरे दिन भोजन करनेवाले होते हैं। उस समय कल्पवृक्ष कुछ कम प्रभाववाले, पृथ्वी कम स्वादवाली और जलभी कुछ कम मधुर होता है। इस आरेमें भी पहले आरेकी तरह हरेक बातमें धीरे धीरे कमी होती जाती है, जिस तरहसे हाथीकी सूँड़में क्रमशः मोटाई कम होती जाती है। (१९९–२०१)

तीसरे आरेमें मनुष्य एक पल्योपम तक जीनेवाले, एक कोस ऊँचे शरीरवाले और दूसरे दिन भोजन करनेवाले होते हैं। इस आरेमें भी पहलेके आरेकी तरह, शरीर, आयु, कल्पवृक्षोंकी

मिठास और कल्पवृक्षोंकी महिमा क्रमशः कम होती जाती है। (१३२-१३३)

चौथा आरा पहलेके प्रभावसे-कल्पवृक्षोंसे, पृथ्वीके स्वाद-से और जलकी मधुरतासे-रहित होता है। उसमें मनुष्य एक कोटि पूर्वके आयुवाले और पाँचसौ धनुष ऊँचे शरीरवाले होते हैं।

पाँचवें आरेमें मनुष्य सौ वर्षकी आयुवाले, और सात हाथ ऊँचे शरीरवाले होते हैं।

छठे आरेमें मनुष्य केवल सोलह वर्षकी आयुवाले और सात हाथ ऊँचे शरीरवाले होते हैं।

एकांत दुखमा नामक आरेसे आरंभ होनेवाले कालमें इसी तरह पश्चानुपूर्विसे-अवसर्पिणीसे उल्टी तरहसे छः आरोंमें मनुष्योंकी स्थिति जाननी चाहिए।(१३४--१३६)

सागरचंद्र और प्रियदर्शना तीसरे आरेके अंतमें उत्पन्न हुए इसलिए वे नौसौ धनुषके शरीरवाले और पल्योपमके दसवें हिस्सेकी आयुवाले युगलिया हुए। उनका शरीर वज्रऋषभ-नाराचसंहननवाला और समचतुरस्रसंस्थानवाला था। मेघमाला-से जैसे मेरुपर्वत शोभता है वैसेही जात्यसुवर्णकी (खरे, सौ-टंचके सोनेकी) कांतिवाला वह युग्मधर्मी (सागरचंद्रका जीव) अपनी प्रियंगु (राईके) वर्णवाली स्त्रीसे शोभता था।
(१३७-१३९)

अशोकदत्त भी पूर्वजन्मके किए हुए कपटसे उसी जगह सफेद रंग और चार दाँतवाला देवहस्तिके जैसा हाथी हुआ। एक बार वह अपनी इच्छासे इधर-उधर फिर रहा था उस

समय उसने युगमधर्मी जन्मे हुए अपने पूर्वजन्मके मित्र सागर-चंद्रको देखा। (१४०-१४१)

(मित्रके) दर्शनरूपी अमृतकी धारासे जिसका शरीर व्याप्त होरहा है ऐसे उस हाथीके (मनमें) बीजमेंसे जैसे अंकुर निकलता है वैसेही स्नेह उत्पन्न हुआ। इससे उसने अपनी सूँड-से, उसे (सागरचंद्रके जीवको) आनंद हो इस तरह, आलिंगन किया और उसकी इच्छा न होते हुए भी उसे उठाकर अपने कंधेपर बिठा लिया। एक दूसरेको देखते रहनेके अभ्याससे उन दोनों मित्रोंको थोड़े समय पहले किए गए कामकी तरह पूर्व-जन्म की याद आई।

उस समय चार दाँतवाले हाथीके कंधेपर बैठे हुए सागरचंद्रको, अचरजसे आँखें फैलाकर दूसरे युगलिए, इंद्रकी तरह देखने लगे। वह, शंख, डोलरके, फूल और चंद्रके जैसे विमल हाथीपर बैठा हुआ था इसलिए युगलियोंने उसको विमलवाहन के नामसे पुकारना शुरू किया। जातिस्मरण (पूर्वजन्मके) ज्ञानसे सब तरहकी नीतियों को जाननेवाला, विमलहाथीकी सवारीवाला और कुदरती सुंदररूपवाला वह सबसे अधिक (सन्माननीय) हुआ। (१४२-१४७)

कुछ समय बीतनेके बाद चारित्रभ्रष्ट यतियोंकी तरह कल्पवृक्षका प्रभाव कम होने लगा। मद्यांग कल्पवृक्ष थोड़ा और विरस मद्य देने लगे, मानों वे (पुराने कल्पवृक्ष नहीं हैं) दुर्दैवने उनकी जगह दूसरे कल्पवृक्ष रख दिए हैं। भृतांग कल्पवृक्ष, दें या न दें, इस तरह सोचते हुए, और परवश हों इस तरह याचना करनेपर भी, देरसे पात्र देने लगे। तूर्यांग कल्पवृक्ष ऐसा

संगीत करते थे मानो वे जबर्दस्ती बेगारमें पकड़कर लाए गए थे; दीपशिखा और ज्योतिष्क कल्पवृत्त, बारबार प्रार्थना करनेपर भी, (रातके समय भी) दिनमें जैसे बत्तीका प्रकाश मालूम नहीं होता उसी तरह प्रकाश देते न थे; चित्रांग वृत्त अविनयी और तत्काल आज्ञानुसार काम न करनेवाले सेवककी तरह इच्छानुसार फूलमालाएँ नहीं देते थे; चित्ररस वृत्त, दान देनेकी इच्छा जिसकी क्षीण होगई है ऐसे सत्रीकी (सदाव्रत देनेवालेकी) तरह, चार तरहके विचित्र रसवाला भोजन पहलेकी तरह नहीं देते थे; मण्यंग वृत्त, इस चिंतासे कि फिर कैसे मिलेंगे, व्याकुल होकर पहलेकी तरह आभूषण नहीं देते थे; व्युत्पत्ति (कल्पना शक्तिकी) मंदतावाले कवि जैसे अच्छी कविता धीरेसें कर सकता है वैसेही गेहाकारवृत्त घर धीरेसे देते थे; और बुरे ग्रहोंसे रुका हुआ मेघ जैसे थोड़ा थोड़ा जल देता है वैसेही अनग्न वृत्त वस्त्र देनेमें स्खलना पाने लगे–कमी करने लगे। उस कालके प्रभावसे युगलियोंको भी शरीरके अवयवोंकी तरह कल्पवृत्तोंपर ममता होने लगी। एक युगलिया जिस कल्पवृत्तका आश्रय लेता था उसीका दूसरा भी कर लेता था तो पहले आश्रय लेनेवालेका पराभव (हार) होता था; इससे परस्परका पराभव सहन करनेमें असमर्थ होकर युगलियोंने विमलवाहनको, अपनेसे अधिक (शक्तिशाली) समझकर, अपना स्वामी मान लिया। (१४८–१६०)

जातिस्मरण ज्ञानसे नीतिको जाननेवाले विमलवाहनने, उनमें कल्पवृत्त इसी तरह बाँट दिए जैसे वृद्धपुरुष अपने गोत्रवालोंमें (परिवारमें) धन बाँट देता है। यदि कोई दूसरेके कल्प-

वृत्तकी इच्छासे मर्यादाका त्याग करता था तो उसको दंड देनेके लिए 'हाकार' नीति स्वीकार की। समुद्रके ज्वारका जल जैसे मर्यादा नहीं छोड़ता है, वैसेही "हा! तुमने यह बुरा काम किया!" ये शब्द सुनकर युगलिए नियम नहीं तोड़ते थे। वे शारीरिक पीड़ाको सहनकर सकते थे; मगर 'हा! तुमने ऐसा किया!' इस वाक्यको वे सहन नहीं कर सकते थे। (इसे बहुत अधिक दंड समझते थे।) (१६१-१६४)

दूसरा कुलकर चक्षुष्मान

जब विमलवाहनकी आयु छः महीनेकी बाकी रही तब उसकी चंद्रयशा नामकी स्त्रीसे एक युग्मका जन्म हुआ। वह युग्म असंख्यपूर्वकी आयुवाला; प्रथम संस्थान और प्रथम संहननवाला, श्याम (काले) रंगका और आठसौ धनुष प्रमाण ऊँचे शरीर-वाला था। मातापिताने उनके नाम चक्षुष्मान और चंद्रकांता रखे। साथमें उगे हुए वृक्ष और लताकी तरह वे एक साथ बढ़ने लगे (१६५-१६७)

छः महीने तक अपने दोनों बालकोंका पालनकर, बुढ़ापे और रोगके बगैर मृत्यु पाकर विमलवाहन सुवर्णकुमार[1] देवलोकमें और उसकी स्त्री चंद्रयशा नागकुमार[2] देवलोकमें उत्पन्न हुए। कारण—

"अस्तमीयुषी पीयूषकरे तिष्ठेन्न चंद्रिका।"

[चाँदके छिप जानेपर चाँदनी भी नहीं रहती।] (१६८-१६९)

१—भुवनपतिके दस निकायों (समूहों) मेंसे तीसरा निकाय।
२—दूसरा निकाय।

वहाँसे वह हाथी भी अपनी आयु पूर्णकर नागकुमारदेव हुआ। कालका महात्म्यही ऐसा है। (१७०)

अपने पिता विमलवाहनकी तरह चक्षुष्मान भी 'हाकार' नीतिहीसे युगलियोंकी मर्यादाओंको चलाता रहा। (१७१)

तीसरा कुलकर यशस्वी

अंत समय निकट आया तब चक्षुष्मानकी चंद्रकांतासे यशस्वी और सुरूपा नामका युगलधर्मी जोड़ा पैदा हुआ। दूसरे कुलकरके समानही उनके संहनन और संस्थान थे। उनकी आयु कुछ कम थी। आयु और बुद्धिकी तरह वे दोनों क्रमशः बढ़ने लगे। साढ़ेसातसौ धनुष ऊँचे शरीर-परिमाण (नाप) वाले वे साथ साथ फिरते थे जो तोरणके खंभोंकी भ्रांति पैदा करते थे-तोरणके खंभोंके समान लगते थे। (१७२-१७४)

आयु पूर्ण होनेपर मरकर चक्षुष्मान सुवर्णकुमारमें और चंद्रकांता नागकुमारमें उत्पन्न हुए। (१७५)

यशस्वी कुलकर अपने पिताहीकी तरह, गवाल जैसे गायोंका पालन करता है उसी तरह, युगलियोंका लीलासे (सरलतासे) पालन करने लगा। मगर उसके समयमें युगलिए 'हाकार' दंडका क्रमशः इस तरह उल्लंघन करने लगे जिस तरह मदमाते हाथी अंकुशको नहीं मानते हैं। तब यशस्वीने उनको 'माकार' दंडसे सजा देना शुरू किया। कारण—

"रोगे त्वेकौषधासाध्ये देयमेवौषधांतरम्।"

[अगर एक दवासे बीमारी अच्छी न हो तो दूसरी दवा देनी चाहिए।] वह महामति यशस्वी थोड़े अपराधवालेको

'हाकार' नीतिसे और अधिक अपराधवालेको 'माकार' नीतिसे और उससे अधिक अपराधवालेको दोनों नीतियोंसे दंड देने लगा। (१७६-१७६)

चौथा कुलकर अभिचंद्र

यशस्वी सुरूपाकी आयु जब थोड़ी बाकी रही तब उनके एक युगलिया इस तरह जन्मा जिस तरह विनय और बुद्धि एक साथ जन्मते हैं। मातापिताने पुत्रका नाम अभिचंद्र रखा कारण वह चंद्रमाके समान उजला था और पुत्रीका नाम प्रतिरूपा रखा कारण वह प्रियंगुलता (राईकी बेल) की प्रतिरूपा (समान) थी। वे अपने माँबापसे कुछ कम आयुवाले और साढ़ेछहसौ धनुष ऊँचे शरीरवाले थे। एक जगह मिले हुए शमी और पीपलके पेड़ोंकी तरह वे एक साथ बढ़ने लगे। गंगा और यमुनाके पवित्र प्रवाहके मिले हुए जलकी तरह वे दोनों निरंतर शोभने लगे। (१८०-१८३)

आयु पूर्ण होनेपर यशस्वी उदधिकुमार और सुरूपा उसके साथही मरकर नागकुमार भुवनपति देव-निकायमें उत्पन्न हुए। (१८४)

अभिचंद्र भी अपने पिताहीकी तरह, उसी स्थितिमें और उन्हीं दोनों नीतियोंके द्वारा युगलियोंको दंड देने लगा। (१८५)

पाँचवाँ कुलकर प्रसेनजित

अंतिम अवस्थामें प्रतिरूपाने एक जोड़ेको इसी तरह जन्म दिया जिस तरह बहुत प्राणियोंके चाहनेपर रात चंद्रमाको जन्म देती है। मातापिताने पुत्रका नाम प्रसेनजित रखा और पुत्री सबके

चक्षुओंको (आँखोंको) मनोहर लगती थी इसलिए उसका नाम चक्षु-कांता रखा। वे दोनों अपने मातापितासे कम आयुवाले, तमालवृक्षके समान श्यामकांतिवाले बुद्धि और उत्साहकी तरह एक साथ बढ़नेवाले, छहसौ धनुष प्रमाण शरीरकी ऊँचाईवाले, और विपुवत[1] कालके समान जैसे दिन और रात समान होते हैं उसी तरह, समान प्रभावाले थे। (१८६-१८६)

मरकर अभयकुमार उदधिकुमारमें और प्रतिरूपा नाग-कुमारमें (भुवनपति देवनिकायमें) उत्पन्न हुए। (१६०)

प्रसेनजित भी सब युगलियोंका राजा हुआ। कारण—

"प्रायो महात्मनां पुत्राः स्युर्महात्मान एव हि।"

[प्राय: (अकसर)महात्माओंके लड़के महात्माही होते हैं।] कामार्त्त लोग जैसे लाज और मर्यादा नहीं मानते वैसेही उस समयके युगलिए 'हाकार' और'माकार'दंडनीतिकी उपेक्षा करने लगे। तब प्रसेनजित, अनाचाररूपी महाभूतको त्रास करनेमें (भूतको ठीक करनेमें) मंत्राक्षरके समान, तीसरी 'धिक्कार' नीतिका उपयोग करने लगे। प्रयोग करनेमें कुशल वह प्रसेन-जित, (महाव्रत) तीन अंकुशोंसे (तीन फलोंवाले अंकुशसे) जैसे हाथीको वशमें करता है वैसेही वह तीन नीतियोंके ('हाकार' 'माकार'और'धिक्कार')दंड द्वारा सभी युगलियोंको दंड देने लगा-अपने वशमें रखने लगा। (१६१-१६४)

१—सूर्य जब तुला और मेष राशिमें आता है तब विपुवत काल होता है।

छठा मरुदेव कुलकर

कुछ कालके बाद युग्म दंपतिकी आयु कम रही तब चक्षुकांताने स्त्री-पुरुषरूप युग्मको जन्म दिया। साढ़ेपाँचसौ धनुष प्रमाण शरीरवाले वे वृक्ष और छायाकी तरह क्रमशः बढ़ने लगे। वह युग्मधर्मी मरुदेव और श्रीकांताके नामसे इस लोकमें प्रसिद्ध हुए। सुवर्णके समान कांतिवाला वह मरुदेव अपनी प्रियंगुलताके समान प्रियाके साथ इस तरह शोभने लगा जैसे नंदनवनकी वृक्षश्रेणीसे (पेड़ोंकी कतारसे) कनकाचल (मेरु) पर्वत शोभता है। (१९५–१९८)

आयु पूर्णकर प्रसेनजित द्वीपकुमार देवोंमें और चक्षुकांता नागकुमार देवोंमें उत्पन्न हुए। (१९९)

मरुदेव प्रसेनजितकी दंडनीतिसे ही, इंद्र जैसे देवताओंको दंड देता है वैसेही, युगलियोंको दंड देकर वशमें रखने लगा। (२००)

सातवाँ नाभि कुलकर

आयु पूर्ण होनेमें थोड़ा समय बाकी रहा तब मरुदेवकी प्रिया श्रीकांताने एक युगलको जन्म दिया। पुरुषका नाम नाभि और स्त्रीका मरुदेवा रखा गया। सवापाँचसौ प्रमाण ऊँचे शरीरवाले वे क्षमा और संयमकी तरह एक साथ बढ़ने लगे। मरुदेवा प्रियंगुलताके समान और नाभि सुवर्णके समान कांतिवाले थे, इससे वे अपने मातापिताके प्रतिबिंबके समान सुशोभित होते थे। उन महात्माओंकी आयु अपने मातापिता—मरुदेव और

श्रीकांता–की आयुसे कुछकम संख्यात पूर्वकी हुई। (२०१–२०४)

काल करके मरुदेव द्वीपकुमार देवोंमें उत्पन्न हुआ और श्रीकांता भी तत्कालही मरकर नागकुमारमें उत्पन्न हुई। (२०५)

मरुदेवकी मृत्युके बाद नाभिराजा युगलियोंका सातवाँ कुलकर हुआ। वह ऊपर बताई हुई तीन तरहकी नीतिके द्वाराही युग्मधर्मी मनुष्योंको सजा करने लगा। (२०६)

ऋषभदेवजीकी माताके चौदह स्वप्न

तीसरे आरेके चौरासीलाख पूर्व और नवासी पक्ष (तीन-बरस और साढ़ेसात महीने) बाकी रहे तब आषाढ़ मासकी कृष्ण (काली) चतुर्दशी (चौदस) के दिन, उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें, चंद्रयोगके समय वज्रनाभका (धनसेठका) जीव तेतीससागरोपमकी आयु पूर्ण कर, सर्वार्थसिद्ध नामक विमानसे च्यवकर, नाभि कुलकरकी स्त्री मरुदेवीके गर्भमें इस तरह आया जिस तरह हंस मानसरोवरसे गंगाके तटपर आता है। (२०७–२१०)

प्रभु गर्भमें आए उस समय, क्षणभरके लिए प्राणीमात्रके दुःखका उच्छेद (अभाव) हुआ, इससे तीनोंलोकमें सुख और उद्योत–प्रकाश हुआ। (२११)

जिस रातको प्रभु च्यवकर माताके पेटमें आए उसी रात-को अपने महलमें सोती हुई मरुदेवी माताने चौदह महास्वप्न देखे। (२१२)

१. मरुदेव और श्रीकांताकी आयुका प्रमाण दिया हुआ नहीं है।

१—पहले सपनेमें उज्ज्वल, पुष्ट कंधेवाला, लंबी और सीधी पूँछवाला, सोनेकी घूघर-मालावाला, और मानों विद्युत सहित शरदऋतुका मेघ हो वैसा वृषभ (बैल) देखा। (२१३)

२—दूसरे सपनेमें सफेद रंगवाला, क्रमसे ऊँचा, निरंतर झरते हुए मदकी नदीसे रमणीय और मानों चलता-फिरता कैलाश हो वैसा चार दाँतवाला हस्ति (हाथी) देखा। (२१४)

३—तीसरे सपनेमें पीली आँखोंवाला, लंबी जीभवाला, चपल केशर (कंधेके बाल) वाला और मानों वीरोंकी जयध्वजा हो वैसा पूँछको उछालता हुआ (ऊँची करता हुआ) केसरी-सिंह देखा। (२१५)

४—चौथे सपनेमें पद्म (कमल) में रहनेवाली, पद्मके समान आँखोंवाली, दिग्गजों (दिशाओंके हाथियों) की सूँडोंसे उठाए गए पूर्ण कुंभोंसे (कलसोंसे) शोभती लक्ष्मीदेवी देखी। (२१६)

५—पाँचवें सपनेमें, तरह तरहके देववृक्षोंके फूलोंसे गूँथी हुई, सरल और धनुषधारीके आरोहण (धारण) किए हुए धनुषके जैसी लंबी पुष्पमाला देखी। (२१७)

६—छठे सपनेमें मानों अपने मुखका प्रतिबिंब हो वैसा, आनंदका कारणरूप और कांति-समूहसे जिसने दिशाओंको प्रकाशित किया है ऐसा चंद्रमंडल देखा। (२१८)

७—सातवें सपनेमें, रातके समय भी तत्काल दिनका भ्रम करानेवाला, सारे अँधेरेको मिटानेवाला और फैलती हुई कांति-वाला सूरज देखा। (२१९)

८—आठवें सपनेमें चपल कानोंसे जैसे हाथी शोभता है वैसा, घूघरियोंकी पंक्तिके भारवाला व चलायमान (हिलती हुई) पताकाओंसे सुशोभित महाध्वज देखा। (२२०)

९— नवें सपनेमें,खिले हुए कमलोंसे जिसका मुख अर्चित किया हुआ है ऐसा, समुद्र मथनेसे निकले हुए सुधा (अमृत) के घड़े जैसा जलसे भरा हुआ सोनेका कलश देखा। (२२१)

१०—दसवें सपनेमें, मानों आदि अर्हंत (प्रथम तीर्थंकर) की स्तुति करनेको अनेक मुख हों ऐसे और भँवरे जिनपर गूँज रहे हैं ऐसे अनेक कमलोंसे शोभता महान पद्माकर (कमलोंका सरोवर) देखा। (२२२)

११—ग्यारहवें सपनेमें, पृथ्वीपर फैले हुए, शरदऋतुके मेघकी लीलाको चुरानेवाला और ऊँची तरंगोंके समूहसे चित्तको आनंदित करनेवाला क्षीरनिधि (समुद्र) देखा। (२२३)

१२—बारहवें सपनेमें, मानों भगवान देवशरीरसे उसमें रहे थे इससे, पूर्वस्नेहके कारण आया हो वैसा बहुत कांतिवाला विमान देखा। (२२४)

१३—तेरहवें सपनेमें, मानों किसी कारणसे ताराओंका समूह जमा हुआ हो वैसा और एकत्र हुई निर्मल कांतिके समूह जैसा आकाशस्थित रत्नपुंज देखा। (२२५)

१४—चौदहवें सपनेमें तीनलोकमें फैले हुए तेजस्वी पदार्थोंके पिंडभूत (इकट्ठे हुए) तेजके जैसा प्रकाशमान निर्धूम अग्नि मुखमें प्रवेश करते देखी। (२२६)

रातके अंतमें, सपनोंके समाप्त होनेपर खिले हुए मुखवाली स्वामिनी मरुदेवी, कमलिनीकी तरह,प्रबोध पाई (जागीं) मानो उनके हृदयमें हर्ष समाता न हो इससे, उन्होंने अपने सपनेकी सारी ठीक ठीक बातें कोमल अक्षरोंसे उद्गार करती हों (बोलती हों) वैसे नाभिराजाको कह सुनाई । नाभिराजाने अपने सरल स्वभावको शोभा दे इस तरह सपनोंका विचार करके कहा, "तुम्हारे उत्तम कुलकर पुत्र होगा।" (२२७-२२९)

उस समय इंद्रोंके आसन काँपे, मानो वे यह सोचकर नाराज हुए हों कि स्वमिनीने केवल कुलकर उत्पन्न होनेकीही संभावना की है, यह अनुचित है। हमारे आसन अचानक क्यों काँपे ? ऐसा (प्रश्न कर), उपयोग देनेसे इंद्रोंको कारण मालूम हुआ। (पहलेसे किए हुए) संकेतके अनुसार, जैसे मित्र एक जगह जमा होते हैं वैसे, सभी इंद्र मित्रोंकी तरह जमा होकर, सपनोंका अर्थ बतानेके लिए, भगवानकी माताके पास आए । फिर वे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक इस तरह सपनोंका अर्थ (फल) समझाने लगे, जैसे वृत्तिकार (व्याख्या करनेवाला) सूत्रोंका अर्थ स्पष्ट करके (खोलकर) समझाता है । (२३०-२३३)

वे कहने लगे, "हे स्वामिनी ! आपने पहले सपनेमें वृषभ (बैल) देखा इससे आपका पुत्र मोहरूपी कीचड़में फँसे हुए धर्म-रूपी रथका उद्धार करनेमें समर्थ होगा । हे देवी ! हाथीको देखनेसे आपका महान पुरुषोंका भी गुरु और बहुत बलका एक स्थानरूप होगा(बहुत बलवान होगा)। सिंहको देखनेसे आपका पुत्र पुरुषोंमें सिंह जैसा धीर, निर्भय, वीर और अस्खलित (कम नहीं होनेवाले) पराक्रमवाला होगा । हे देवी ! आपने सपनेमें

लक्ष्मी देखी इससे आपका पुत्र पुरुषोंमें उत्तम, और तीनलोककी साम्राज्य-लक्ष्मीका पति होगा। आपने पुष्पमाला देखी इससे आपका पुत्र पुण्यदर्शनवाला होगा और सारी दुनिया उसकी आज्ञा मालाकी तरह धारण करेगी (आज्ञा मानेगी)। हे जगन्माता ! आपने सपनेमें चंद्रमा देखा इससे आपका पुत्र मनोहर और आँखोंको आनंद देनेवाला होगा। सूर्य देखा इससे आपका पुत्र मोहरूपी अंधकारका नाश करके दुनियामें प्रकाश करनेवाला होगा। और महाध्वज देखा उससे आपका आत्मज (पुत्र) आपके वंशमें बड़ी प्रतिष्ठावाला (इज्जतदार) और धर्मध्वज होगा। हे देवी ! आपने सपनेमें पूर्णकुंभ देखा इससे आपका सूनु (पुत्र) सभी अतिशयोंका पूर्णपात्र होगा अर्थात् सभी अतिशयोंवाला होगा। हे स्वामिनी ! आपने पद्मसरोवर देखा इससे आपका आत्मज (पुत्र) संसाररूपी कांतार (जंगल) में पड़े हुए मनुष्योंका (पापरूपी) ताप मिटाएगा। आपने समुद्र देखा इससे आपका तनय (पुत्र) अधृष्य (अजेय)होते हुए भी उसके पास लोग जाएँ ऐसा वह होगा। हे देवी ! आपने सपनेमें संसारमें अद्भुत ऐसा विमान देखा इससे आपके सुत (पुत्र) की वैमानिक देव भी सेवा करेंगे। आपने चमकती हुई कांतिवाला रत्नपुंज देखा इससे आपका आत्मज सर्वगुणरूपी रत्नोंकी खानके समान होगा, और अपने जाज्वल्यमान (दहकती हुई) अग्नि देखी इससे आपका पुत्र दूसरे तेजस्वियोंके तेजको दूर करनेवाला होगा। हे स्वामिनी ! आपने चौदह सपने देखे हैं वे यह सूचित करते हैं कि आपका पुत्र चौदह राजलोकका स्वामी होगा।”

(२३४-२४८)

इस तरह सभी इंद्र सपनोंका फल बता, मरुदेवी माताको प्रणाम कर, अपने अपने स्थानोंको गए। स्वामिनी मरुदेवी माता स्वप्नफलकी व्याख्यारूपी सुधासे सींची जाकर ऐसी प्रफुल्लित हुई जैसे जमीन बरसात के पानीसे सींची जानेपर प्रफुल्लित होती है। (२४९-२५०)

महादेवी मरुदेवी उस गर्भसे ऐसी शोभने लगी जैसे सूरज-से मेघमाला (बादलोंकी कतार) शोभती है; मोतीसे सीप शोभती है और सिंहसे पर्वतकी गुफा शोभती है। प्रियंगु (राई) के समान श्यामवर्णवाली होनेपर भी, गर्भके प्रभावसे ऐसे पीले वर्णवाली हो गई जैसे शरदऋतुसे मेघमाला पीले रंगवाली हो जाती है। उनके स्तन मानों इस हर्षसे उन्नत और पुष्ट हुए कि जगतके स्वामी हमारा पयपान करेंगे—दूध पिएंगे। उनकी आँखें विशेष विकसित हुई मानों वे भगवानका मुख देखनेके लिए पहलेहीसे उत्कंठित हो रही हैं। उनका नितंब, (कमरसे नीचेका भाग) यद्यपि पहलेहीसे बड़ा था तो भी वर्षाकाल बीतने-पर जैसे नदी-किनारेकी जमीन विशाल होती है वैसेही विशाल हुआ। उनकी चाल यद्यपि पहलेहीसे मंद थी पर अब वह ऐसी हो गई थी जैसे मदमस्त होनेपर हाथीकी चाल हो जाती है। उनकी लावण्यलक्ष्मी (सुंदरतारूपी लक्ष्मी) गर्भके प्रभावसे इस तरह बढ़ने लगी जैसे सवेरे विद्वान मनुष्यकी बुद्धि बढ़ती है या ग्रीष्म ऋतुमें समुद्रकी वेला (सीमा) बढ़ती है। यद्यपि उन्होंने तीनलोकके सारत्व गर्भको धारण किया था तो भी उनको कोई तकलीफ नहीं होती थी; कारण, गर्भवासी अर्हतोंका ऐसा ही प्रभाव है। पृथ्वीके अंतरभागमें जैसे अंकुर बढ़ता है

वैसेही मरुदेवीके उदरमें वह गर्भ गुप्तरीतिसे धीरे धीरे बढ़ने लगा। ठंडा पानी, हिममृतिका (बरफ) डालनेसे जैसे अधिक ठंडा होता है वैसेही गर्भके प्रभावसे स्वामिनी मरुदेवी अधिक विश्व-वत्सला हुई। गर्भमें आए हुए भगवानके प्रभावसे, नाभि-राजा युग्मधर्मी लोगोंमें, अपने पितासे भी अधिक माननीय हुए। शरदऋतुके योगसे चाँदकी किरणें जैसे अधिक तेजवाली होती हैं वैसेही सभी कल्पवृक्ष अधिक प्रभाववाले हुए। जगतमें पशुओं और मनुष्योंके आपसी वैर शांत हो गए; कारण वर्षा-कालके आनेसे सभी जगह संताप (दुःख) शाँत हो जाते हैं।
(२५१-२६३)

भगवान ऋषभदेवका जन्म

इस तरह नौ महिने और साढ़े आठ दिन बीते; फिर चैत्र महिनेकी वदी पक्षकी अष्टमी के दिन, आधी रातके समय सभी ग्रह उच्चस्थानमें आए थे और चंद्रका योग उत्तराषाढ़ा नक्षत्र-में आया था उस समय मरुदेवीने सुखपूर्वक युगलधर्मी संतानको (जुडवाँ बच्चोंको) जन्म दिया। तब इस आनंदकी (बातसे) दिशाएँ प्रसन्न हुई और स्वर्गमें रहनेवाले देवोंकी तरह लोग बड़े आनंदसे क्रीड़ाएँ करने लगे। उपपादशय्या (देवताओं-के उत्पन्न होनेकी शय्या) में उत्पन्न हुए देवताओंकी तरह जरायु[1] और रुधिर आदि कलंकसे रहित–भगवान बहुत अधिक शोभने लगे। उस समय दुनियाकी आँखोंमें अचरज पैदा करने-वाला और अँधेरेको मिटानेवाला, बिजलीके प्रकाश जैसा, प्रकाश

१—वह झिल्ली जिसमें लिपटा हुआ बच्चा गर्भसे बाहर आता है।

तीनोंलोकोंमें फैल गया। नौकरोंने नगारे नहीं बजाए थे तो भी बादलोंकी गड़गड़ाहटके समान गंभीर शब्दवाले दुंदुभि आकाशमें बजने लगे; उनसे ऐसा मालूम होता था कि खुद स्वर्गही आनंदसे गर्जना कर रहा है। उस समय जब नारकियोंको भी क्षणभरके लिए, पहले कभी नहीं हुआ था वैसा, सुख मिला तब तिर्यंच, मनुष्य और देवताओंको सुख हो इसके लिए तो कहनाही क्या है? मंद मंद बहती हुई हवाओंने, सेवकोंकी तरह जमीनकी धूलिको दूर करना शुरू किया। बादल चेलक्षेप (वस्त्र गिराने) और सुगंधित जलकी वर्षा करने लगे; इससे पृथ्वी बीज बोया हुआ हो ऐसे उच्छ्वास पाने लगी (प्रोत्साहन पाने लगी)। (२६४–२७२)

उस समय अपने आसनोंके हिलनेसे भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिंदिता—ये आठ दिशाकुमारियाँ तत्कालही अधोलोकसे भगवानके सूतिकागृहमें आईं। आदि तीर्थंकर और तीर्थंकरकी माताको प्रदक्षिणा देकर कहने लगीं, "हे जगन्माता! हे जगदीपकको जन्म देनेवाली देवी! हम आपको नमस्कार करती हैं। हम अधोलोकमें रहनेवाली आठ दिशाकुमारियाँ पवित्र तीर्थंकर जन्मको अवधिज्ञान द्वारा जानकर, उनके प्रभावसे, उनकी महिमा करनेके लिए यहाँ आई हैं; इससे आप भयभीत न हों।" फिर उन्होंने, ईशान विदिशामें रहकर एक सूतिकागृह बनाया। उसका मुख पूर्व दिशाकी तरफ था और उसमें एक हजार खंभे थे। उन्होंने संवर्त नामकी वायु चलाकर सूतिकागृहके चारों तरफ एक योजनतकके कंकर और काँटे दूर

कर दिए। फिर, वे संवर्त वायुको रोक, भगवानको प्रणाम कर गीत गाती हुईं उनके पास बैठीं। (२७३-२८०)

उसी तरह आसन काँपनेसे प्रभुके जन्मको जानकर, मेघंकरा मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, वारिषेणा और बलाहिका नामकी, मेरुपर्वतपर रहनेवाली आठ ऊर्द्धलोकवासिनी आठ दिशाकुमारियाँ वहाँ आईं और उन्होंने जिनेश्वर तथा जिनेश्वरकी माताको, नमस्कार करके, स्तुति की। उन्होंने भादोंमासकी तरह तत्काल आकाशमें बादल फैलाए; उनसे सुगंधित जलकी बारिश करके सूतिकागृहके चारों तरफकी, एक योजनतककी रज ऐसे नाश करदी जैसे चाँदनी अँधेरेका नाश करती है; घुटनोंतक पचरंगी फूलोंकी वर्षा करके भूमिको इस तरह सुशोभित कर दिया मानों वह अनेक तरहके चित्रोंवाली है। फिर वे तीर्थंकरके निर्मल गुणोंका गान करती हुईं और बहुत बढ़े हुए आनंदसे शोभती हुईं अपने उचित स्थानपर बैठीं। (२८१-२८६)

दक्षिण रुचकाद्रिमें रहनेवाले नंदा, नंदोत्तरा, आनंदा, नंदिवर्धना, विजया, वैजयंती, जयंती, और अपराजिता नामकी आठ दिशाकुमारियाँ भी ऐसे वेगवान विमानोंमें बैठकर आईं जो मनकी गतिके साथ स्पर्द्धा करते थे। वे स्वामी तथा मरुदेवी माताको नमस्कार करके, पहलेकी देवियोंकी तरह कहकर और अपने हाथोंमें दर्पण लेके मांगलिक गीत गाती हुईं पूर्व दिशाकी तरफ खड़ी हुईं। (२८७-२८९)

दक्षिण रुचकाद्रिमें रहनेवाली, समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुंधरा

नामकी आठ दिशाकुमारियाँ प्रमोद (आनंद) ने उनको प्रेरित किया हो वैसे, प्रमोद पाती हुई वहाँ आई और पहले आई हुई दिशाकुमारियोंकी तरह जिनेश्वर और उनकी माताको नमस्कार कर, अपना काम बता, हाथोंमें कलश ले गायन गाती हुई दक्षिण दिशामें खड़ी हुई । (२९०-२९२)

पश्चिम रुचक पर्वतमें रहनेवाली इलादेवी, सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मवती, एकनासा, अनवमिका, भद्रा और अशोका नामकी आठ दिशाकुमारियाँ इस तेजीसे वहाँ आई मानो वे भक्तिसे एक दूसरेको जीतना चाहती हैं; और वे पहलेवालियोंहीकी तरह भगवानको व माताको नमस्कार कर, आनेका कारण बता, हाथों में पंखे ले गीत गाती हुई पश्चिम दिशामें खड़ी हुई। (२९३-२९५)

उत्तर रुचक पर्वतसे अलंबुसा, मिश्रकेशी, पुंडरीका, वारुणी, हासा, सर्वप्रभा, श्री और ह्री नामकी आठ दिशाकुमारियाँ आभियोगिक देवताओंके साथ इस वेगके साथ रथोंमें आई मानों रथ वायुकाही रूप हो। फिर वे भगवानको तथा उनकी माताको पहले आनेवालियोंहीकी तरह, नमस्कार कर, अपना काम बता, हाथोंमें चँवर ले गीत गाती हुई उत्तर दिशामें खड़ी रहीं। (२९६-२९८)

विदिशाके रुचक पर्वतसे चित्रा, चित्रकनका, सतेरा और सौत्रामणी नामकी चार दिशाकुमारियाँ भी वहाँ आई। वे पहलेवालियोंकीही तरह जिनेश्वरको तथा माताको नमस्कार कर, अपना काम बता, हाथमें दीपक ले ईशान आदि विदिशाओंमें, गीत गाती हुई, खड़ी हुई। (२९९-३००)

रुचक द्वीपसे रूपा, रूपासिका, सुरूपा और रूपकावती नामकी चार दिशाकुमारियाँ भी तत्कालही वहाँ आईं। उन्होंने भगवानके नाभिनालको, चार अंगुल रखकर, काटा; फिर वहाँ एक खड्डा खोदकर, उसे उसमें रखा और खड्डेको रत्नों व वज्रोंसे पाट दिया और उसपर दुर्वा (दूब) से पीठिका बाँधी; पश्चात भगवानके जन्मगृहसे संबंध रखनेवाले, पूर्व, दक्षिण और उत्तर-में, लक्ष्मीके गृहरूप, केलेके तीन घर बनाए; हरेक घरमें अपने विमानके जैसे विशाल और सिंहासनसे भूषित चौक बनाए; बादमें वे जिनेश्वरको हस्तांजलिमें ले, जिनमाताको चतुरदासी की तरह हाथका सहारा दे दक्षिण चौकमें ले गईं। वहाँ दोनोंको सिंहासन पर बिठाकर वृद्ध संवाहिका (मालिश करनेवाली) स्त्रीकी तरह, सुगंधित लक्षपाक तेलसे, उनके मालिश करने लगीं। फिर उन्होंने दोनोंके उबटन–जिसकी सुगंधसे सभी दिशाएँ सुगंधित हो रही थीं-लगाया; फिर उन्हें पूर्व दिशाके चौकमें ले जाकर सिंहासनपर बिठाया;और अपने मनके समान निर्मलजलसे दोनोंको स्नान कराया; कापाय (गेरुआ) रंगके अंगोछोंसे उनका शरीर पोंछा; गोशीर्षचंदनके रससे उनके शरीरको चर्चित किया और दोनोंको दिव्य वस्त्र और बिजलीके प्रकाशके समान विचित्र आभूषण (जेवर) पहनाए। फिर उन्होंने भगवान व उनकी माताको उत्तरके चौकमें ले जाकर सिंहासन-पर बिठाया। वहाँ उन्होंने आभियोगिक देवताओंको भेजकर, क्षुद्र हिमवंत पर्वतसे, गोशीर्षचंदनकी लकड़ी मँगवाई; अरणी (खास तरहकी एक लकड़ी) के दो बड़े टुकड़े लेकर उनसे आग पैदा की; होमने लायक बनाए हुए गोशीर्षचंदनके काष्ठ

(लकड़ी) से हवन किया और उस आगसे बनी हुई राखकी पोटली बनाकर दोनोंके हाथोंमें बाँधी । यद्यपि वे (प्रभु और माता) बड़ी महिमावाले थे तो भी दिशाकुमारियोंका भक्तिक्रम ऐसाही है। उन्होंने भगवानके कानोंके पास जोरसे यह पुकारकर कि,"तुम पर्वतके समान आयुष्मान हो"पत्थरके दो गोले जमीन-पर पछाड़े।पश्चात प्रभुको और माताको सूतिका भुवनमें सेजपर सुलाकर वे मंगलगीत गाने लगीं। (३०१-३१७)

तब, जैसे लग्नके समय सभी बाजे एक साथ बजते हैं वैसेही शास्वत घंटोंकी एक साथ ऊँची आवाज हुई और पर्वतों-के शिखरकी तरह अचल इंद्रोंके आसन, सहसा हृदय काँपता है उस तरह, काँपने लगे । उस सौधर्मेंद्रकी आँखें गुस्सेके वेगसे लाल हो गईं, कपालपर भ्रकुटी चढ़नेसे उसका मुख विकराल मालूम होने लगा, आंतरिक क्रोधरूपी ज्वालाकी तरह उसके होठ फड़कने लगे, मानो आसन स्थिर करनेकी कोशिश करता हो वैसे उसने एक पैर उठाया और कहा, "आज किसने यमराजको पत्र भेजा है" फिर उसने वीरतारूपी आगको प्रज्वलित करनेके लिए वायुके समान वज्र उठानेकी इच्छा की। (३१८-३२१)

इस तरह सिंहके समान क्रुद्ध इंद्रको देखकर, मानो मूर्ति-मान मान हो ऐसे सेनापतिने आकर विनती की, "हे स्वामी ! आपके मेरे जैसा नौकर है तो भी आप खुदही क्यों कोप करते हैं ? हे जगत्पति ! मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं आपके किस शत्रु-का नाश करूँ ?" (३२२-३२३)

उस समय अपने मनका समाधान कर इंद्रने अवधिज्ञान-से देखा तो उसे मालूम हुआ कि प्रभुका जन्म हुआ है। आनंद-

से तत्कालही उसके क्रोधका वेग गल गया, और वर्षासे दावानलके बुझने पर पर्वत जैसे शांत होता है वैसेही वह शांत हो गया। "मुझे धिक्कार है कि मैंने ऐसा विचार किया। मेरा दुष्कृत (पाप) मिथ्या हो।" इस तरह कहकर उसने इंद्रासनका त्याग किया; सात-आठ कदम भगवानके सामने चलकर, मानो दूसरे रत्नमुकुटकी देनेवाली हो ऐसी करांजलि सरपर रखी, जानु (घुटने) और मस्तक–कमलसे पृथ्वीको स्पर्श किया और प्रभुको नमस्कार कर, रोमांचित हो, उसने इस तरह भगवानसे प्रार्थना करना आरंभ किया। (३२४–३२६)

"हे तीर्थनाथ! हे जगतको सनाथ करनेवाले! हे कृपारसके समुद्र! हे नाभिनंदन! आपको नमस्कार करता हूँ। हे नाथ! नंदनादिक (नंदन, सोमनस और पांडुक) नामके उद्यानोंसे जैसे मेरुपर्वत शोभता है वैसेही मति, श्रुति और अवधिज्ञान सहित आप शोभते हैं। क्योंकि ये तीनों जन्मसेही आपको प्राप्त हैं। हे देव! आज यह भरतक्षेत्र स्वर्गसे भी अधिक शोभता है; कारण, तीन लोकके मुकुटरत्नके समान आप उसको अलंकृत करते हैं। हे जगन्नाथ! जन्मकल्याणकके महोत्सवसे पवित्र बना हुआ आजका दिन, संसारमें रहूँ तबतकके लिए (मेरे लिए) आपकी तरहही वंदनीय है। इस आपके जन्म-पर्वसे आज नारकियोंको भी सुख हुआ है। अर्हंतोंका जन्म किसके संतापको मिटानेवाला नहीं होता है? इस जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें निधानकी तरह धर्म नष्ट हो गया है, उसे आप अपने आज्ञारूपी बीजसे पुनः प्रकाशित कीजिए। हे भगवान!—

"त्वत्पादौ प्राप्य संसारं, तरिष्यंति न केऽधुना।
अयोऽपि यानपात्रस्थं पारं प्राप्नोति वारिधेः।"

[अब आपके चरणको प्राप्त करके कौन संसारसे पार न होगा ? कारण, नावके योगसे लोहा भी समुद्रको तैर जाता है।] हे भगवन! आपने इस भरतक्षेत्रमें लोगोंके पुण्यसे ऐसे अवतार लिया है जैसे बिना वृक्षके प्रदेशमें कल्पवृक्ष उत्पन्न होता है और मरुदेशमें नदीका प्रवाह होता है। (२३०-२३७)

प्रथम देवलोकके इंद्रने इसतरह भगवानकी स्तुति करके, अपने सेनापति नैगमेषी नामके देवसे कहा, "जंबूद्वीपके दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्रके बीचके भूमिभागमें नाभि कुलकरकी लक्ष्मीकी निधिके समान पत्नी मरुदेवीके गर्भसे प्रथम तीर्थंकरका जन्म हुआ है, इसलिए उनके जन्मस्नात्रके लिए सभी देवताओंको बुलाओ।" (२३८-२४०)

इंद्रकी आज्ञा सुनकर उसने एक योजनके विस्तारवाला और अद्भुत ध्वनिवाला सुघोषा नामका घंटा तीन बार बजाया। इससे दूसरे विमानोंके घंटे भी इसी तरह बजने लगे, जैसे मुख्य गानेवालेके पीछे दूसरे गवैये भी गाने लगते हैं। उन सभी घंटों का शब्द, दिशाओंके मुखमें हुई प्रतिध्वनिसे इस तरह बढ़ा जिस तरह कुलवान पुत्रोंसे कुलकी वृद्धि होती है। बत्तीस लाख विमानोंमें उछलता हुआ वह शब्द तालुकी तरह अनुरणन (प्रतिध्वनि) रूप होकर बढ़ा। देवता प्रमादमें पड़े थे इसलिए यह शब्द सुनकर मूर्च्छित हो गए और मूर्च्छा जानेपर सोचने लगे कि क्या होगा ? सावधान देवोंको संबोधन कर सेनापतिने मेघकी

गर्जनाके समान गंभीर शब्दोंमें कहा, "हे देवो ! सबके लिए अनुलंध्य शासनवाले इंद्र, देवी वगैरा परिवार सहित तुमको आज्ञा देते हैं, कि जंबूद्वीपके दक्षिणार्द्ध भरतखंडके बीचमें कुल-कर नाभि राजाके कुलमें आदि-तीर्थंकर जन्मे हैं। उनके जन्म-कल्याणकका उत्सव करनेके लिए मेरीही तरह तुमभी वहाँ जाने-की जल्दी तैयारी करो। कारण, इसके समान कोई दूसरा उत्तम काम नहीं है। (३४१–३४६)

सेनापतिकी बातें सुनकर कई देवता भगवानकी भक्तिके कारण तुरतही इस तरह चले जैसे मृग वेगसे, वायुकी तरफ जाते हैं; या लोहचुंबकसे लोहा खिंचता है। कई देवता इंद्रकी आज्ञा से खिंचकर चले, कई देव अपनी देवांगनाओंके उत्साहित करनेसे इस तरह चले जैसे नदियोंके वेगसे जलजंतु दौड़ते हैं। कई अपने मित्रोंके आकर्षणसे ऐसे चले जैसे पवनके आकर्षणसे सुगंध फैलती है। इसतरह सभी देव अपने सुंदर विमानों और दूसरे वाहनोंसे, आकाशको दूसरे स्वर्गकी तरह सुशोभित करते हुए, इंद्रके पास आए। (३५०–३५२)

उस समय इंद्रने पालक नामक आभियोगिक देवको, असंभाव्य (बहुत कठिन) और अप्रतिम (अद्वितीय) एक विमान बनानेकी आज्ञा दी। स्वामीकी आज्ञाका पालन करनेवाले उस देवने तत्कालही इच्छानुगामी (बैठनेवालेकी इच्छाके अनुसार चलनेवाला) विमान बनाया। वह विमान हजारों रत्न-स्तंभोंके किरणसमूहसे आकाशको पवित्र करता था। गवाक्ष (खिड़कियाँ) उसके नेत्र थे, बड़ी बड़ी ध्वजाएँ उसकी भुजाएँ थीं, वेदिकाएँ उसके दाँत थे और स्वर्णकुंभ ऐसे मालूम होते थे मानों वह हँस

रहा है। विमान पाँचसौ योजन ऊँचा था। उसका विस्तार लाख योजन था। उस विमानकी कांतिसे तरंगित (लहराती हुई) तीन सीढ़ियाँ थीं; वे हिमवंत पर्वतकी गंगा, सिंधु और रोहि-ताशा नदियोंके समान मालूम होती थीं। उन सीढ़ियोंके आगे अनेक रंगोंके रत्नोंके तोरण थे; वे इंद्रधनुषके समान सुंदर मालूम होते थे। उस विमानमें चंद्रमंडल-दर्पण, आलिंग मृदंग (छोटा ढोल) और उत्तम दीपिका (चाँदनी) के समान उज्ज्वल और चौरस जमीनें (आँगन) शोभती थीं। उस भूमिपर रखी हुई रत्नमय शिलाएँ, लगातार पड़नेवाली बहुतसी किरणोंसे दीवारों-की तसवीरोंपर गिरनेवाली यवनिकाकी शोभाको धारण करती हुई मालूम होती थीं। उसके बीचमें अप्सराओंके समान पुत-लियोंसे विभूषित रत्नजड़ित प्रेक्षामंडप (रंगमंडप) था और उसके अंदर माणिक्यकी एक पीठिका (बैठक) थी; वह खिले हुए कमलकी कर्णिका (कमलके छत्ते) के समान सुंदर मालूम होती थी। वह पीठिका लंबाई-चौड़ाईमें आठ योजन और मोटाईमें चार योजन थी। वह इंद्रकी लक्ष्मीकी शय्याके समान मालूम होती थी। उसपर एक सिंहासन था; वह सर्वरत्नके सारके पिंडसा मालूम होता था। उस सिंहासनपर अपूर्व शोभावाला, विचित्र रत्नोंसे जड़ा हुआ और अपनी किरणोंसे आकाशको व्याप्त करनेवाला एक विजयवस्त्र दैदीप्यमान हो रहा था। उसके बीचमें हाथीके कानमें हो वैसा वज्रांकुश और लक्ष्मीके क्रीड़ा करनेके स्थान जैसी कुंभिक जातिके मोतियोंकी माला शोभती थी। उस मोतियोंकी मालाके आसपास गंगानदीके अंदर जैसे, उससे आधे विस्तारवाली, अर्द्धकुंभिक मोतियोंकी मालाएँ

शोभती थीं। और उसके स्पर्श-सुखके लोभसे, मानों स्खलना पाया हो-कदम नहीं उठते हों वैसे, मंदगतिसे चलते हुए पूर्व दिशाकी वायुसे वह माला धीरेधीरे हिल रही थी। उसके अंदर संचार करता हुआ-जाता हुआ पवन, कानोंको सुख देनेवाले शब्द करता था। वह, ऐसा मालूम होता था मानों, स्तुतिपाठककी तरह इंद्रका निर्मल यश-गान कर रहा है। उस सिंहासनके वायव्य और उत्तर दिशाके मध्यमें तथा उत्तर और पूर्व दिशाके बीचमें, चौरासीहजार सामानिक देवोंके चौरासीहजार भद्रासन (सिंहासन) थे; वे स्वर्गकी लक्ष्मीके मुकुट से मालूम होते थे। पूर्व-दिशामें आठ अग्रमहिषियों (इंद्राणियों) के आठ आसन थे। वे सहोदरकी तरह, समान आकार-प्रकारके से शोभते थे। दक्षिण पूर्वके बीचमें अभ्यंतर सभाके सभासदोंके बारह हजार सिंहासन थे। दक्षिणमें मध्यसभाके चौदह हजार सभासदोंके चौदह हजार सिंहासन थे। दक्षिण-पश्चिमके बीचमें बाह्य पर्षदा (सभा) के सोलहहजार देवताओंके सोलहहजार सिंहासनोंकी पंक्ति (क़तार) थी। पश्चिम दिशामें, मानों एक दूसरेके प्रतिबिंब हों वैसे, सात तरहकी सेनाओंके सात सेनापति देवोंके सात आसन थे; और मेरु पर्वतके चारों तरफ जैसे नक्षत्र शोभते हैं वैसेही, शक्रके सिंहासनके चारों तरफ चौरासीहजार आत्मरक्षक देवताओंके चौरासीहजार आसन शोभते थे। इस तरह परिपूर्ण विमानकी रचना कर आभियोगिक देवताओंने इंद्रको सूचना दी। इससे इंद्रने तत्कालही उत्तर वैक्रिय रूप धारण किया—

"नैसर्गिकी हि भवति द्युसदां कामरूपिता।"

[इच्छाके अनुसार रूप धारण करलेना देवताओंके लिए स्वाभाविक है।] (३५३-३७६)

फिर इंद्र दिशा-लक्ष्मीके समान आठ पट्टरानियों सहित गंधर्वों और नाट्य (नाटक) के सैन्यों (सैनिकों) के कौतुक देखता हुआ, सिंहासनको प्रदक्षिणा देकर पूर्व दिशाके जीनोंके मार्गसे, अपने मनके जैसे ऊँचे सिंहासनपर चढ़ा। माणिक्यकी भींतों-दीवारोंमें उसका प्रतिबिंब पड़नेसे वह मानों हजारों शरीरवाला हो, ऐसा मालूम होता था । सौधर्मेंद्र पूर्वाभिमुख होकर (पूर्वकी तरफ मुँह करके) अपने आसनपर बैठा। फिर मानों इंद्रके दूसरे रूपही हों वैसे उसके सामानिक देव उत्तर तरफके जीनेसे चढ़कर अपने अपने आसनोंपर बैठे। इससे दूसरे देवता भी दक्षिण तरफके जीनेपर चढ़कर अपने आसनोंपर बैठे; कारण स्वामीके पास आसनोंका उल्लंघन नहीं होता। सिंहासन-पर बैठेहुए शचिपति (इंद्र) के आगे दर्पण वगैरा अष्ट मांगलिक और मस्तकके ऊपर चाँदके जैसा उज्ज्वल छत्र शोभा देने लगे। दोनों तरफ दो चँवर इस तरह डुलने लगे मानों वे चलते हुए दो हंस हों। निर्झरणोंसे-(बहते हुए स्रोतोंसे) जैसे पर्वत शोभता है वैसेही पताकाओंसे सुशोभित हजार योजन ऊँचा एक इंद्र-ध्वज विमानके आगे फर्रा रहा था। उस समय करोड़ों सामानिक आदि देवताओंसे घिराहुआ इंद्र इस तरह सुशोभित होरहा था जैसे नदियोंके प्रवाहसे घिरा हुआ सागर शोभता है। दूसरे विमानोंसे घिरा हुआ वह विमान, इस तरह शोभता था जैसे, दूसरे चैत्योंसे घिरा हुआ मूल चैत्य शोभता है। विमानकी सुंदर माणिक्यमय दीवारोंके अंदर एक विमानका प्रतिबिंब

दूसरे विमानकी दीवारोंमें पड़ता था; इससे ऐसा मालूम होता था कि विमान विमानोंसे सगर्भ (गर्भ धारण किया हो वैसे) हुए हैं। (३८०-३९०)

दिशाओंके मुखमें प्रतिध्वनिरूप बनाहुआ, बंदीजनों-(चारणों) की जयध्वनिसे दुंदुभि (नगारों) के शब्दोंसे और गंधर्वों तथा नाटकके वाजोंकी आवाजोंसे, मानों आकाशको फाड़ता हुआ बढ़ रहा हो इस तरह, वह विमान इंद्रकी इच्छासे सौधर्म देवलोकके बीचमें होकर चला। सौधर्म-देवलोकके उत्तर-में होकर जरा टेढ़ा उतरता हुआ वह विमान, लाख योजनके विस्तारवाला होनेसे, जंबूद्वीपके ढकनसा मालूम होता था। उस समय रस्ते चलते हुए देव आपसमें एक दूसरेसे कहने लगे—

"हे हाथीके सवार! दूर जाओ, तुम्हारे हाथीको मेरा शेर बरदाश्त नहीं करेगा।" —"हे घोड़ेके सवार! तुम जरा अलग रहो, मेरा ऊँट गुस्से हुआ है। वह तुम्हारे घोड़ेको सहन नहीं करेगा।"—"हे मृगवाहन! (हिरणकी सवारीवाले) तुम पास न आना, अन्यथा मेरा हाथी तुम्हारे मृगको हानि पहुँचाएगा।" "हे सर्पके वाहनवाले! यहाँसे दूर चले जाओ, वरना मेरा वाहन गरुड़ तुम्हारे सर्पको हानि पहुँचाएगा।" —"हे भाई! बीचमें आकर तुम मेरे विमानकी गतिको क्यों रोकते हो? मेरे विमानसे अपना विमान क्यों टकराते हो?" —"अजी साहब! मैं पीछे रह गया हूँ और इंद्र बड़ी शीघ्रतासे चले जा रहे हैं, इसलिए अगर कहीं विमान टकरागया हो तो गुस्सा न करो। कारण,—

"......संमर्दः खलु पर्वणि।"

[पर्वके दिन संकड़ेही होते हैं, यानी पर्वके दिनोंमें भीड़ होतीही है।] इस तरह उत्सुकतासे इंद्रके पीछे चलनेवाले सौधर्म देवलोकके देवताओंका बड़ा शोर होने लगा। उस समय वह बड़ी पताकावाला विमान आकाशसे उतरता हुआ इस तरह शोभता था जैसे समुद्रके मध्य शिखरसे उतरती हुई नाव शोभती है। मानों मेघमंडलसे पंकिल (कीचड़वाला) बने हुए स्वर्गको झुकाताहो वैसे,वृक्षोंसे बीचमें चलनेवाले हाथियोंकी तरह नक्षत्र-चक्रके बीचमें होकर, वह विमान आकाशमें चलता हुआ वायु-वेगसे असंख्य द्वीप-समुद्रोंको लाँघकर नंदीश्वर द्वीप पहुँचा। विद्वान पुरुष जैसे ग्रंथको संक्षेप करते हैं वैसे, इंद्रने उस द्वीपके दक्षिण पर्वके मध्यभागमें स्थित, रतिकर पर्वतके ऊपर विमान-को छोटा बनाया। वहाँसे आगे कई द्वीप और समुद्रोंको लाँघ-कर, उस विमानको पहलेसे भी छोटा बनाता हुआ, इंद्र जंबूद्वीप-के दक्षिण भरतार्द्धमें, आदि तीर्थंकरके जन्मभुवनमें आपहुँचा। सूरज जैसे मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करता है वैसेही वहाँ इंद्रने उस विमानसे प्रभुके सूतिकागृहकी प्रदक्षिणा दी और फिर घरके कोनेमें जैसे निधि-धन रखते हैं वैसेही ईशान कोनेमें उस विमानको रखा। (३९१-४०६)

फिर शक्रेंद्र, महामुनि जैसे मानसे उतरते हैं वैसे विमानसे उतरा और प्रभुके पास आया। प्रभुको देखतेही उस देवाग्रणीने पहले प्रभुको प्रणाम किया; कारण, स्वामीके दर्शन होतेही प्रणाम करना, उन्हें पहली भेट देना है। फिर माता सहित प्रभुको, प्रदक्षिणा देकर, फिरसे प्रणाम किया। कारण—

"......भक्तौ न पुनरुक्तता।"

[भक्तिमें पुनरुक्तदोष नहीं होता।] देवताओंने जिसका मस्तकाभिषेक किया है ऐसा वह भक्तिमान इंद्र, हाथ जोड़, उन्हें मस्तकसे ऊपर उठा, स्वामिनी मरुदेवीसे कहने लगा,—

"अपने उदरमें पुत्ररूपी रत्नको धारण करनेवाली और जगद्दीपकको प्रकाशित करनेवाली, हे जगन्माता! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप धन्य हैं! आप पुण्यवान हैं। आपका जन्म सफल है और आप उत्तम लक्षणोंवाली हैं। तीनलोकमें पुत्रवाली स्त्रियोंमें आप पवित्र हैं; कारण—धर्मका उद्धार करनेमें अग्रणी और आच्छादित (ढकेहुए) मोक्षमार्गको प्रकट करनेवाले भगवान आदि-तीर्थंकरको आपने जन्म दिया है। हे देवी! मैं सौधर्मेंद्र देवलोकका इंद्र हूँ; आपके पुत्र अरिहंतका जन्मोत्सव करने यहाँ आया हूँ। इसलिए आप मेरा भय न रखें।"

फिर इंद्रने अवस्वापनिकानिद्रा (गहरी नींदमें सुलानेवाली नींद) में मरुदेवी माताको सुलाया; उनकी बगलमें प्रभुकी एक मूर्ति बनाकर रखी और अपने पाँच रूप बनाए। कारण, शक्तिशाली लोग अनेक रूपोंसे प्रभुकी भक्ति करनेकी इच्छा रखते हैं। उनमेंसे एक रूप भगवानके पास गया और नम्रतासे प्रणाम कर बोला, "हे भगवन! आज्ञा दीजिए।" इस तरह कहकर उस कल्याणकारी भक्तिवाले इंद्रने अपने गोशीर्षचंदन लगे हुए दोनों हाथोंसे, मानों मूर्तिमान कल्याणही हों ऐसे, भुवनेश्वर भगवानको उठाया; एक रूपसे जगतके तापको नाश करनेमें छत्रके समान जगत्पिताके मस्तकपर, पीछे रहकर, छत्र रखा। स्वामीके दोनों तरफ बाहुदंड (भुजाओं) की तरह दो रूपोंमें रहकर सुंदर चँवर धारण किए और एकरूपसे मानों मुख्य द्वारपाल हो इस तरह

वज्र हाथमें लेकर भगवानके आगे रहा। फिर जय जय शब्दों-से आकाशको गुँजाता हुआ देवताओंसे घिराहुआ और आकाश-के समान निर्मल मनवाला इंद्र अपने पाँच रूपोंसे आकाशमार्ग द्वारा चला। तृषा (प्यास) से घबराए हुए मुसाफिरोंकी नजर जैसे अमृतके सरोवरपर पड़ती है वैसेही, उत्सुक बने हुए देवता-ओंकी दृष्टि भगवानके अद्भुत रूपपर पड़ी। भगवानके अद्भुत रूपको देखनेके लिए आगे चलनेवाले देवता पीछेकी तरफ आँखें चाहते थे। दोनों तरफ चलनेवाले देवता स्वामीको देखनेसे तृप्त नहीं हुई हों इसतरह मानों स्तंभित हो गई हों इस तरह, वे अपनी आँखें दूसरी तरफ नहीं घुमा सके थे। पीछे रहे हुए देवता भग-वानको देखनेके लिए आगे आना चाहते थे, इसलिए वे अपने स्वामी या मित्रकोभी पीछे छोड़कर आगे बढ़जाते थे। फिर देवपति इंद्र भगवानको अपने हृदयके पास रखकर, मानों उसने भगवान को हृदयमें रख लिया है, मेरु-पर्वतपर गया। वहाँ पांडुक वन-में, दक्षिण चूलिकाके ऊपर निर्मल कांतिवाली अतिपांडुकवला नामकी शिलापर, अर्हत स्नात्रके योग्य सिंहासनपर, पूर्वदिशा-का पति इंद्र, हर्ष सहित प्रभुको अपनी गोदमें लेकर बैठा।

(४०७–४३०)

जिस समय सौधर्मेन्द्र मेरुपर्वतपर आया उसी समय महाघोषा घंटाके नाद (आवाज) से, (भगवानके जन्मको) जानकर, अठाइसलाख विमानवासी देवताओंसे घिरा हुआ त्रिशूलधारी, वृषभके वाहनवाला ईशानकल्पका अधिपति ईशानेंद्र आभियोगिक देवके बनाए हुए पुष्पक नामके विमानमें बैठकर दक्षिण दिशाके रस्तेसे ईशानकल्पसे नीचे उतर, तिर्छा चल,

नंदीश्वर द्वीपपर आ, उस द्वीपके ईशानकोनके रतिकर पर्वतपर सौधर्मेंद्रकी तरह अपने विमानको छोटा बना, भक्तिभरे हृदयके साथ भगवानके पास आया।

सनत्कुमार नामका इंद्र भी अपने बारह लाख विमानवासी देवोंके साथ सुमन्न नामके विमानमें बैठकर आया।

महेंद्र नामका इंद्र आठलाख विमानवासी देवताओंके साथ श्रीवत्स नामके विमानमें बैठकर मनकी तरह शीघ्रही वहाँ आया।

ब्रह्मेंद्र नामका इंद्र चारलाख विमानवासी देवताओंके साथ नंद्यावर्त नामके विमानमें बैठकर प्रभुके पास आया।

लांतक नामका इंद्र पचासहजार विमानवासी देवोंके साथ कामगव नामके विमानमें बैठकर जिनेश्वरके पास आया।

शुक्र नामका इंद्र चालीसहजार विमानवासी देवोंके साथ पीतिगम नामके विमानमें बैठकर मेरुपर्वतपर आया।

सहस्रार नामका इंद्र छःहजार विमानवासी देवताओंके साथ मनोरम नामके विमानमें बैठकर जिनेश्वरके पास आया।

आनत प्राणत देवलोकका इंद्र चारसौ विमानवासी देवोंके साथ अपने विमल नामके विमानमें बैठकर आया।

और आरणाच्युत देवलोकका इंद्र भी तीनसौ विमानवासी देवोंके साथ अपने अतिवेगवाले (तेज चालवाले) सर्वतोभद्र नामके विमानमें बैठकर आया। (४३१-४४२)

उसी समय रत्नप्रभा पृथ्वीके मोटेपनके अंदर रहनेवाले भुवनपति और व्यंतर देवोंके इंद्रोंके आसन काँपे। चमरचंचा नामकी नगरीमें, सुधर्मा सभामें, चमर नामके सिंहासनपर, चमरासुर (चमरेंद्र) बैठा था। उसने अवधिज्ञानसे भगवानका जन्म जाना और सभी देवोंको यह बात जतलानेके लिए अपने द्रुम नामके सेनापतिसे ओघघोषा नामका घंटा बजवाया। फिर वह अपने चौसठहजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायत्रिंशक (गुरुस्थानके योग्य) देवों, चार लोकपालों, पाँच अग्र महीषियों, अभ्यंतर, मध्य और बाह्य इन तीन सभाओंके देवों,सात तरहकी सेनाओं, सात सेनापतियों, चारों तरफ चौसठ चौसठ हजार आत्मरक्षक देवों तथा दूसरे उत्तम ऋद्धिवाले असुरकुमार देवोंसे घिराहुआ वह, आभियोगिक देवके द्वारा तत्कालही बनाए हुए, पाँचसौ योजन ऊँचे, बड़े ध्वजसे सुशोभित और पचासहजार योजनके विस्तारवाले, विमानमें बैठकर भगवानका जन्मोत्सव करनेकी इच्छासे रवाना हुआ। वह चमरेंद्र भी शक्रेंद्रकी तरह अपने विमानको मार्गमें छोटा बनाकर, स्वामीके आगमनसे पवित्र बने हुए मेरुपर्वतके शिखरपर आया। (४४३-४५१)

बलिचंचा नामकी नगरीके इंद्र बलिने भी महौघस्वरा नामक बड़ा घंटा बजवाया। उसके महाद्रुम नामक सेनापतिके बुलानेसे आए हुए साठहजार सामानिक देवों, उससे चौगुने (२४००००) अंगरक्षक देवों और दूसरे त्रायत्रिंशक इत्यादिक

१—रत्नप्रभा पृथ्वीकी मोटाई १८०००० योजन है। उसीमें वे रहते हैं।

देवों सहित चमरेंद्रकी तरह अमंद आनंदके मंदिर रूपमेरु पर्वतपर आया। (४५२–४५४)

नागकुमारके धरण नामके इंद्रने मेघस्वरा नामक घंटा बजवाया। उसकी छःहजार पैदल सेनाके सेनापति भद्रसेनके कहनेसे आए हुए छःहजार सामानिक देवों, उससे चौगुने (२४०००) आत्मरक्षक देवों, अपनी छः पट्टदेवियों (इंद्राणियों) और दूसरे भी नागकुमार देवों सहित वह, इंद्रध्वजसे शोभित पचीसहजार योजन विस्तारवाले और ढाईसौ योजन ऊँचेविमानमें बैठ भगवानके दर्शनके लिए उत्सुक हो, क्षणभरमें मंदराचलके (मेरुके) मस्तक (शिखर) पर आया। (४५५–४५८)

भूतानंद नामके नागेंद्रने मेघस्वरा नामका घंटा बजवाया और उसके दक्ष नामके सेनापति द्वारा सामानिक देवता आदिकोंको बुलवाया। फिर वह आभियोगिक देवके बनाए हुए विमानमें, सबके साथ बैठकर, जो तीनलोकके नाथसे सनाथ हुआ है उस मेरु पर्वतपर आया। (४५६–४६०)

फिर विद्युत्कुमारके इंद्र हरि और हरिसह; सुवर्णकुमारके इंद्र वेणुदेव और वेणुदारी; अग्निकुमारके इंद्र अग्निशिख और अग्निमानव; वायुकुमारके इंद्र वेलंब और प्रभंजन; स्तनितकुमारके इंद्र सुघोष और महाघोष; उदधिकुमारके इंद्र जलकांत और जलप्रभ; द्वीपकुमारके इंद्र पूर्ण और अवशिष्ट और दिक्कुमारके इंद्र अमित और अमितवाहन भी आए। (४६१–४६४)

व्यंतर देवोंमें पिशाचोंके इंद्र काल और महाकाल, भूतोंके इंद्र सुरूप और प्रतिरूप, यक्षोंके इंद्र पूर्णभद्र और मणिभद्र;

राक्षसोंके इंद्र भीम और महाभीम; किन्नरोंके इंद्र किन्नर और किंपुरुष; किंपुरुषोंके इंद्र सत्पुरुष और महापुरुष; महोरगोंके इंद्र अतिकाय और महाकाय; गंधर्वोंके इंद्र गीतरति और गीतयशा; अप्रज्ञप्ति और पंचप्रज्ञप्ति वगैरा व्यंतरोंकी दूसरी आठ निकायों-(जो वाणव्यंतर कहलाती हैं) के सोलह इंद्र,- उनमेंसे अप्रज्ञप्तिके इंद्र संनिहित और समानक; पंचप्रज्ञप्तिके इंद्र धाता और विधाता; ऋषिवादितके इंद्र ऋषि और ऋषिपालक; भूतवादिनके इंद्र ईश्वर और महेश्वर; क्रंदितके इंद्र सुवत्सक और विशालक; महाक्रंदितके इंद्र हास और हासरति; कुष्मांडके इंद्र श्वेत और महाश्वेत, पावकके इंद्र पवक और पवकपति; और ज्योतिष्कोंके सूर्य और चंद्र, इन दोही नामोंके असंख्य इंद्र; इस तरह कुल चौसठ[१] इंद्र एक साथ मेरुपर्वतपर आए।

(४६५-४७४)

फिर अच्युतेंद्रने, जिनेश्वरके जन्मोत्सवके लिए उपकरण (साधन) लानेकी आभियोगिक देवताओंको आज्ञा दी; इसलिए वे ईशान दिशाकी तरफ गए। वहाँ उन्होंने वैक्रिय समुद्घातके द्वारा एक पलमें उत्तम पुद्गलोंका आकर्षण करके सोनेके, चाँदीके, रत्नोंके, सोने और चाँदीके, सोने और रत्नोंके; सोना-

१—चौसठ इंद्र—वैमानिकोंके १०, भुवनपतिकी दस निकायके २०, व्यंतरोंके ३२ और ज्योतिष्कोंके २ इंद्र; इस तरह कुल ६४ इंद्र हुए। ज्योतिष्कोंके सूर्य चंद्र नामकेही असंख्य इंद्र हैं; इसलिए यह भी कहा जाता है कि असंख्य इंद्र प्रभुका जन्मोत्सव करते हैं।

चाँदी और रत्नोंके, चाँदी और रत्नोंके, तथैव मिट्टीके,—ऐसे आठ तरहके, हरेक तरहके एक हजार आठ, एक योजन ऊँचे (कुल ८०६४) सुंदर कलश बनाए। कुंभोंकी संख्याके अनुसार-ही और आठ प्रकारके पदार्थोंके झारियाँ, दर्पण, रत्नकी करंडि-काएँ (छोटी टोकरियाँ), सुप्रतिष्ठक (डिब्बे), थाल, पात्रिकाएँ (कटोरियाँ) और फूलोंकी चंगेरियाँ (डलियाँ); ये सब प्रत्येक तरहके ८०६४ गिनते, ५६४४८ बरतन और कलश मिलाकर ६४५१२—वगैरा बरतन, मानों वे पहलेहीसे तैयार रखे थे वैसे, तुरत बनाकर वहाँ लाए। (४७५-४८०)

फिर आभियोगिक देवता घड़े उठाकर ले गए और उन्हों-ने क्षीरसागरमेंसे घड़े बारिशके पानीकी तरह भरलिए और वहाँसे पुंडरीक, उत्पल और कोकनद जातिके कमल भी, इस-लिए लेआए कि उनकी क्षीरनिधिके जलकी जानकारी को इंद्र जानले। पानी भरनेवाले पुरुष जलाशय (कूआ, बावड़ी या तालाब) मेंसे जल भरते समय जैसे कलश हाथमें लेते हैं वैसे ही देवोंने कलश उठाए और पुष्करवर समुद्रपर जाकर वहाँसे पुष्कर जातिके कमल लिए, फिर वे मागधादि तीर्थोंको गए और वहाँसे उन्होंने जल और मिट्टी लिए, मानों वे अधिक कलश बनाना चाहते हैं। माल खरीदनेवाले जैसे नमूना लेते हैं वैसेही उन्होंने गंगा आदि महानदियोंमेंसे जल लिया; क्षुद्रहिमवंत पर्वत-से उन्होंने सिद्धार्थ (सफेद सरसों) के फूल, श्रेष्ठ सुगंधकी चीजें और सर्वौषधि लिए। उसी पर्वतसे उन्होंने पद्म नामक सरोवरमें-से निर्मल, सुगंधित और पवित्र जल और कमल लिए। एकही कामके लिए वे भेजे गए थे इसलिए मानों आपसमें स्पर्द्धा करते

हों वैसे, उन्होंने दूसरे वर्षधर पर्वतपरकी झीलोंमेंसे पद्म आदि लिए। सभी क्षेत्रोंमेंसे वैताढ्यपरसे और दूसरे विजयों(प्रांतों)मेंसे अनुप्रदेवोंने स्वामीके प्रसादकी तरह जल और कमल लिए। वक्षार नामक पर्वतसे उन्होंने, दूसरी पवित्र और सुगंधित चीजें इस तरह लीं मानों वे उन्हींके लिए जमा करके वहाँ रखी हुई थीं। आलसरहित उन देवोंने देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रोंके द्रहोंके (तालाबोंके) जलसे कलशों को इस तरह भरा मानों श्रेय (मंगल-कल्याण) से अपनी आत्माओंकोही भरा हो। भद्रशाल, नंदन, और पांडुक वनमेंसे उन्होंने गोशीर्ष चंदन वगैरा चीजें लीं। इस तरह गंधकार जिस तरह सभी सुगंधित द्रव्योंको एकत्र करता है, वैसे सुगंधित चीजें और जल एकत्रित करके तत्काल ही मेरुपर्वतपर आए। (४८८-४९३)

अब दस हजार सामानिक देवोंसे, चालीस हजार आत्मरक्षक देवोंसे, तेतीस त्रायस्त्रिंशत देवोंसे, तीन सभाओंके सभी देवोंसे, चार लोकपालोंसे, सात बड़ी सेनाओंसे और सेनापतियोंसे परवरा हुआ-यानी ये जिसके साथ हैं ऐसा-आरणाच्युत देवलोकका इंद्र पवित्र होकर भगवानको स्नान करानेके लिए तैयार हुआ। पहले उस अच्युतेंद्रने उत्तरासंग (उत्तरीय-दुपट्टा) धारणकर निःसंग (निःस्वार्थ) भक्तिसे खिलेहुए पारिजात आदि फूल, अंजलिमें (मिलेहुए दोनों हाथोंमें) ले, सुगंधित धूपके धुएँसे धूपित कर, तीनलोकके नाथके सामने रखा। तब देवोंने, भगवानके निकट पहुँचनेके आनंदसे मानों हँसरहे हों ऐसे और पुष्पमालाओंसे लिपटे हुए, सुगंधित जलके कलशोंको लाकर वहाँ रखा। उन पानीके कलशोंके मुखभागपर भँवरोंके

शब्दोंसे गूँजते हुए, कमल थे. जो ऐसे मालूम होते थे मानों वे भगवानके प्रथम स्नात्रमंगलका पाठ पढ़ रहे हों। कलश ऐसे मालूम होते थे मानों वे पातालकलश हैं और स्वामीको स्नान करानेकेलिए पातालसे वहाँ आए हैं। अपने सामानिक देवताओंके साथ अच्युतेंद्रने एकहजारआठ कलश इस तरह उठाए मानों वे उसकी संपत्तिके फल थे। ऊँची उठाई हुई भुजाओंके अग्रभागमें (हाथोंमें) कुंभ, नालें (कमलकी डंडियाँ) जिनके ऊपर की गई हों ऐसे कमलकोशोंकी विडंबना (परिहास) करते से मालूम होते थे; अर्थात उनसे भी अधिक सुंदर लगते थे। फिर अच्युतेंद्रने अपने मस्तककी तरह कलशको जरा झुकाकर जगत्पतिको स्नान कराना आरंभ किया। उस समय कईएक देवोंने, गुफाओंमें होते हुए शब्दोंकी प्रतिध्वनिसे मेरुपर्वतको वाचाल करते हों वैसे, आनक नामक मृदंग बजाने आरंभ किए। भक्तिमें तत्पर कई देव, सागरमंथनकी ध्वनिको चुरानेवाली दुंदुभियाँ बजाने लगे। कई देव भक्तिमें मस्त होकर, पवन जैसे आकुल ध्वनिवाले प्रवाहकी तरंगोंको टकराता है वैसे, झाँझ बजाने लगे। कई देवता, मानों ऊर्ध्वलोकमें जिनेन्द्रकी आज्ञाका विस्तार करती हों वैसी ऊँचे मुँहवाली भेरियाँ उच्चस्वरसे बजाने लगे। कई देवता, मेरुपर्वतके शिखरपर खड़े होकर, गवाल लोग जैसे सींगियाँ बजाते हैं वैसे ऊँची आवाजवाले काहल नामक बाजे बजाने लगे। कई देव उद्घोष(भगवानके जन्माभिषेककी घोषणा)करनेके लिए, जैसे दुष्ट शिष्योंको हाथोंसे पीटते हैं वैसे, मुरज नामक बाजेको अपने हाथोंसे पीटने लगे। कई देवता वहाँ आए हुए असंख्य

सूरज और चाँदकी लक्ष्मी (शोभा) को हरनेवाली सोने और चाँदीकी झालरें बजाने लगे। और कई देवता मुँहमें अमृतकी गंडूष (कुल्ली) भरी हो वैसे अपने स्तन गालोंको फुला-फुलाकर शंख बजाने लगे। इस तरह देवोंके बजाए हुए तरह तरहके बाजोंकी प्रतिध्वनिसे आकाश भी वादक (बजानेवाले) न होते हुए भी बजनेवाला एक बाजा हो गया। (२६७-२७३)

चारण मुनियोंने उच्चस्वरमें कहा, "हे जगन्नाथ! हे सिद्धिगामी! हे कृपासागर! हे धर्मप्रवर्तक! तुम्हारी जय हो! तुम सदा सुखी रहो। (२७४)

अच्युतेंद्रने, शुद्धक, उत्साह, स्कंधक, गलित और वस्तुवदन नामके मनोहर पद्य-पद्य द्वारा भगवानकी स्तुति की। फिर वह धीरे धीरे अपने परिवारके देवों सहित भुवनभर्ता (तीनोंलोकको पालनेवाले आदिनाथ) पर धीरे धीरे कुंभजल डालने लगा। भगवानके मस्तकपर जलधारा डालते हुए वे कुंभ (कलश) मेरु पर्वतके शिखरपर बरसते हुए बादलोंके समान मालूम होने लगे। भगवानके मस्तकके दोनों तरफ देवताओंके झुकाए हुए कलश माणिक्यके मुकुटकी शोभाको धारण करने लगे। एक योजनके मुखवाले कलशोंसे गिरती हुई जलकी धारा पर्वतकी गुफामेंसे निकलते हुए झरनेके समान शोभने लगी। प्रभुके मस्तकपरसे उछलकर चारों तरफ गिरते हुए जलके छींटे धर्मरूपी वृक्षके अंकुरके समान शोभने लगे। प्रभुके शरीरपर गिरतेही दीर्घाकार विस्तृत हुआ जल फैलकर, मस्तकपर सफेद छत्रके समान, ललाट पर, फैली हुई कांतिवाले ललाटके आभूषण-समान, कानोंके भागमें आकर विश्रांत (थके हुए) नेत्रोंकी कांतिके जैसा, कपोल

(गाल) पर कपूरकी पत्रवल्ली (पत्तोंकी बेलों) के समूह जैसा, मनोहर होठोंपर स्मित-हास्यकी कांतिके कलाप (समूह) जैसा, कंठभागमें मोतियोंकी माला जैसा, कंधोंपर गोशीर्षके चंदनके तिलक जैसा और बाहु, हृदय और पीठपर विशाल (बड़े) वस्त्र जैसा मालूम होता था। (५१५-५२५)

जैसे चातक स्वातिका जल ग्रहण करते हैं वैसेही कई देवता प्रभुके स्नात्र (स्नान) के उस जलको, पृथ्वीपर पड़तेही, श्रद्धासे ग्रहण करने लगे; कई देवता, मारवाड़के लोगोंकी तरह यह सोचकर कि ऐसा जल हमें फिर कहाँसे मिलेगा, इस जलको अपने मस्तकपर डालने लगे; और कई देवता, गरमीके मोसमसे घबराए हुए हाथियोंकी तरह, बड़े शौकसे उस जलसे अपना शरीर भिगोने लगे। मेरुपर्वतके शिखरोंपर वेगसे फैलता हुआ वह जल चारों तरफ हजारों नदियोंकी कल्पना कराता था और पांडुक, सोमनस, नंदन तथा भद्रशाल उद्यानोंमें फैलता हुआ वह जल कुल्या (नाले) के समान मालूम होता था। स्नान कराते-कराते कुंभोंके मुख नीचे हो गए। वे ऐसे मालूम होते थे, मानों स्नान करानेकी जलरूपी संपत्ति कम हो जानेसे वे लज्जित हो रहे हैं। उस समय इंद्रकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले आभियोगिक देव, खाली कुंभोंको दूसरे भरे हुए कुंभोंके जलसे भरते थे। एक हाथसे दूसरे हाथमें-ऐसे अनेक हाथोंमें-जाते हुए वे कुंभ धनवानोंके बालकों जैसे मालूम होते थे। नाभिराजाके पुत्रके समीप रखे हुए कलशोंकी कतार आरोपित स्वर्णकमलोंकी मालाके समान सुशोभित होती थी। खाली कुंभोंमें पानी डालनेसे जो आवाज होती थी वह ऐसी मालूम होती थी मानों कुंभ

प्रभुकी स्तुति कर रहे हैं। देवगण उन भरे कलशोंसे फिरसे प्रभुका अभिषेक करते थे। यक्ष जैसे चक्रवर्तीके निधान-कलशको (खजानेके कलशको) भरते हैं वैसेही प्रभुको स्नान करानेसे खाली हुए इंद्रके कलशोंको देवता जलसे भर देते थे। बार बार भरते और खाली होते कलश चलते हुए रहँटकी घटिका (घड़िया या घड़े) के समान मालूम होते थे। इस तरह अच्युतेंद्रने करोड़ों कलशोंसे प्रभुको स्नान कराया और अपने आत्माको पवित्र किया। यह भी एक अचरज है! फिर आरण और अच्युत देवलोकके स्वामी अच्युतेंद्रने दिव्य गंधकाषायी (सुगंधित गेरुए) वस्त्रसे प्रभुका शरीर पोंछा; उसके साथही अपने आत्माको भी पोंछा (पापमलरहित किया)। प्रातः और संध्याके आकाशकी रेखा जैसे सूर्यमंडलका स्पर्श करनेसे शोभती है वैसेही वह गंधकाषायी वस्त्र प्रभुके शरीरको स्पर्श करनेसे शोभता था। पोंछा हुआ भगवानका शरीर, स्वर्णसारके सर्वस्वके जैसा, स्वर्ण-गिरिके एक भागसे बनाया हो वैसा शोभता था।

(५२६-५४१)

फिर आभियोगिक देवोंने गोशीर्षचंदनके रसका कर्दम (लेप) सुंदर और विचित्र रकाबियोंमें भरकर अच्युतेंद्रके पास रखा। इंद्रने भगवानके शरीरपर इस तरह लेप करना आरंभ किया जिस तरह चाँद अपनी चाँदनीसे मेरुपर्वतके शिखरपर लेप करता है। उस समय कई देवता दुपट्टे पहन, तेज धूपवाली धूपदानियाँ हाथोंमें ले, प्रभुके चारों तरफ खड़े हुए। कई जो उनमें धूप डालते थे, ऐसे मालूम होते थे मानों वे स्निग्ध धूएँकी रेखाओंसे मेरुपर्वतकी दूसरी श्यामवर्णकी चूलिका (चोटी)

बना रहे हों। कई देवता जो प्रभुके ऊपर सफेद छत्र लगा रहे थे, ऐसे मालूम होते थे मानों वे आकाशरूपी सरोवरको कमलमय बना रहे हैं। कई, जो चँवर डुला रहे थे, ऐसे मालूम होते थे मानों वे प्रभुके दर्शनके लिए अपने आत्मीय (परिवार) लोगोंको बुला रहे हैं। कई देवता जो कमर कसे शस्त्र लिए प्रभुके चारों तरफ खड़े थे, प्रभुके अंगरक्षकोंसे मालूम होते थे। कई देवता जो सोने और मणियोंके पंखोंसे भगवानको हवा कर रहे थे, ऐसे मालूम होते थे मानों वे आकाशमें लहलहाती हुई विद्युल्लता (बिजलीरूपी वेल) की लीला बता रहे हैं। कई देवता जो आनंदसे विचित्र प्रकाशके दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे, दूसरे रंगाचार्य (चितारे) से मालूम होते थे। कई देव अत्यंत सुगंधित द्रव्योंका चूर्ण कर चारों दिशाओंमें बरसा रहे थे, वे अपने पापोंको निकाल-निकालकर फैंकते हुएसे जान पड़ते थे। कई देवता, जो सोना उछाल रहे थे, ऐसे जान पड़ते थे मानों उनको स्वामीने नियत किया है, इसलिए मेरुपर्वतकी ऋद्धि बढ़ानेका प्रयत्न कर रहे हैं। कई देवता, ऊँचे दरजेके रत्न बरसा रहे थे; वे रत्न आकाशसे उतरती हुई ताराओंकी कतारसे जान पड़ते थे। कई देवता अपने मीठे स्वरोंसे, गंधर्वोंकी सेनाका भी तिरस्कार करनेवाले नए नए ग्रामों (तार, मध्य और षडज आदि स्वरों) और रागोंसे भगवानके गुण-गान करने लगे। कई देव मढ़े हुए घन (मोटे) और छिद्रवाले बाजे बजाने लगे। कारण, भगवानकी भक्ति अनेक तरहसे की जाती है। कई देवता अपने चरणपातसे मेरुको कँपाते हुए नृत्य कर रहे थे, मानों वे मेरुको भी नचा रहे हैं। कई देवता अपनी

देवियोंके साथ तरह तरह के हावभाव दिखाते हुए छ प्रकारके नाटक करने लगे। कई देवता आकाशमें उड़ते थे,वे गरुड़ पक्षी-से मालूम होते थे। कई क्रीडासे (खेलसे) मुर्गोंकी तरह जमीन पर गिरते थे। कई देव अंककार (नट) की तरह सुंदर चाल चलते थे। कई सिंहकी तरह गुस्सेसे सिंहनाद करते थे। कई हाथियोंकी तरह ऊँची आवाज करते थे। कई आनंदसे घोड़ों-की तरह हिनहिनाते थे। कई रथके पहियोंकी आवाजकी तरह घर-घर शब्द करते थे। कई विदूषककी तरह हँसी उत्पन्न करनेवाले चार तरहके शब्द बोलते थे। कई बंदर कूद-कूदकर जैसे पेड़ोंको हिलाते हैं वैसे, कूद-कूदकर मेरुपर्वतके शिखरको हिलाते थे। कई अपने हाथोंको इस तरह जोरसे पृथ्वीपर पछाड़ रहे थे मानों वे लड़ाईमें प्रतिज्ञा करनेवाले योद्धा हैं। कई दाव जीते हों इस तरह चिल्ला रहे थे। कई बाजेकी तरह अपने फूले हुए गालोंको बजा रहे थे। कई नटोंकी तरह अनोखा रूप बना-कर उछलते थे। कई स्त्रियाँ गोल फिरती हुई रास करती हैं वैसे गोल फिरते हुए मधुर गायन और मनोहर नाच कर रहे थे। कई आगकी तरह जलते थे। कई सूरजकी तरह तपते थे। कई मेघकी तरह गरजते थे। कई बिजलीकी तरह चमकते थे और कई पूरी तरहसे पेट भरे हुए विद्यार्थीकी तरह दिखावा करते थे। प्रभुकी प्राप्तिसे होनेवाले आनंदको कौन छिपा सकता है? इस तरह देवता जब खुशियाँ मना रहे थे तब, अच्युतेंद्रने प्रभु-के लेप किया, पारिजातकादि विकस्वित फूलोंसे भक्तिसहित प्रभु-की पूजा की और फिर जरा पीछे हट,भक्तिसे नम्र हो, शिष्यकी तरह भगवानकी वंदना की। (४२८-४३१)

दूसरे बासठ इंद्रोंने भी स्नान, विलेपनसे प्रभुकी इसी तरह पूजा की जैसे बड़े भाईके पीछे छोटे भाई करते हैं।

(५७२)

फिर सौधर्मेंद्रकी तरह ईशानेंद्रने भी अपने पाँच रूप किए। उनमेंके एक रूपने भगवानको गोदमें लिया, एक रूपने कपूर जैसा छत्र धारण किया। छत्रके मोतीकी झालरें लग रही थीं, वे ऐसी मालूम होती थीं मानों इंद्र दिशाओंको नाचनेका आदेश कर रहा है। दो रूपोंसे वह प्रभुके दोनों तरफ चँवर डुलाने लगा। उसके हिलते हुए हाथ ऐसे मालूम होते थे मानों वे हर्षसे नाच रहे हैं। और एक रूपसे वह इस तरह प्रभुके आगे खड़ा रहा मानों वह प्रभुके दृष्टिपातसे अपनेको पवित्र बना रहा है। (५७३-५७६)

फिर सौधर्मकल्पके इंद्रने जगत्पतिकी चारों दिशाओंमें स्फटिकमणिके चार ऊँचे पूरे वृषभ(बैल)बनाए। ऊँचे सींगोंसे शोभते वे चारों वृषभ चारों दिशाओंमें रहे हुए चंद्रकांत रत्नके चार क्रीड़ा-पर्वतोंके समान मालूम होने लगे। चारों बैलोंके आठ सींगोंसे आकाशमें इस तरह जलधाराएँ निकलने लगीं मानों वे पृथ्वी फोड़कर निकली हैं। मूलमें अलग अलग मगर अंतमें मिली हुई वे जलधाराएँ आकाशमें हुए नदी-संगमका भ्रम कराने लगीं। सुरों असुरोंकी नारियाँ कौतुकसे उन जलधाराओंको देखने लगीं। वे धाराएँ प्रभुके मस्तकपर इसतरह पड़ने लगीं जिस तरह नदियाँ समुद्रमें पड़ती हैं। जलयंत्रों (नलों) की तरह सींगोंसे निकलती हुई जलधाराओंसे शक्रेंद्रने आदि-तीर्थंकरको स्नान कराया। भक्तिसे जैसे हृदय आर्द्र हो जाता है (भीग जाता है) वैसे-ही मस्तकपर गिरकर उछलतीहुई स्नानजलकी बूँदोंसे दूर खड़े

हुए देवताओंके कपड़े भीगने लगे। फिर इंद्रने उन चारों बैलों-को इस तरह अदृश्य कर दिया जैसे जादूगर अपने जादूसे बनाई चीजोंको अदृश्य कर देता है। स्नान करानेके बाद बहुत स्नेहशील उस देवपतिने देवदुष्य वस्त्रसे प्रभुके शरीरको इसतरह (यत्नके साथ) पोंछा जैसे रत्नके दर्पणको (आइनेको) पोंछते हैं। रत्नमयी पटरेपर निर्मल और चाँदीके अखंड अक्षतोंसे (चाँवलों-से) प्रभुके सामने अष्टमंगल (साथियाविशेष) बनाया। पीछे मानों अपना बहुत अनुराग (स्नेह) हो उस तरहके उत्तम अंग-राग (उबटन)से उसने त्रिजगतगुरुके अंगपर लेप किया। प्रभु-के हँसते हुए मुखरूपी चंद्रकी चंद्रिकाका भ्रम पैदा करने वाले उज्ज्वल और दिव्य वस्त्रोंसे इंद्रने प्रभुकी पूजा की और विश्वकी मूर्द्धन्यताके (जगतमें मुख्य होनेके) चिह्न समान वज्रमाणि-क्यका सुंदर मुकुट प्रभुको धारण कराया। फिर उसने प्रभुके कानोंमें सोनेके दो कुंडल पहनाए, वे ऐसे शोभते थे जैसे साँझके समय पूर्व और पश्चिम दिशामें आकाशपर सूरज और चाँद शोभते हैं। उसने स्वामीके गलेमें दिव्य मोतियोंकी बड़ी माला पहनाई, वह लक्ष्मीके झूलेकी डोरीसी मालूम होती थी। बाल-हस्तिकी दंतूशलोंमें जैसे सोनेके कंकण (चूड़ियाँ) पहनाते हैं वैसे-ही उसने प्रभुकी भुजाओंमें दो भुजबंध पहनाए। उसने वृक्षकी शाखाके अंतिम भागके गुच्छके समान, गोलाकार और बड़े मोतियोंके मणिमय कंकण प्रभुके मणिबंधों (कलाइयों) में पहनाए। वर्षधर पर्वतके नितंबभाग (ढाल) पर रहे हुए सुवर्ण-कूलके विलासको धारण करनेवाला कंदोरा इंद्रने प्रभुकी कमरमें पहनाया। उसने प्रभुके दोनों पैरोंमें माणिक्यमय लंगर पहनाए, वे ऐसे मालूम होते थे मानों देवों और असुरोंके तेज उनमें समा

गए हैं। इंद्रने जो जो आभूषण भगवानके अंगोंको अलंकृत करनेके लिए पहनाए थे वे खुदही भगवानके अंगोंसे अलंकृत हुए। भक्तिपूर्ण चित्तवाले इंद्रने, प्रफुल्लित पारिजातके पुष्पोंकी मालासे प्रभुकी पूजा की। फिर कृतार्थ हुआ हो वैसे वह जरा पीछे हटकर प्रभुके सामने खड़ा हुआ। उसने आरती करनेके लिए हाथमें आरती ली। जलती हुई कांतिवाली उस आरतीसे इंद्र ऐसा शोभने लगा जैसे प्रकाशमान औषधिवाले शिखरसे महागिरि शोभता है। जिसमें श्रद्धालु देवोंने फूलोंका समूह डाला है ऐसी उस आरतीसे उसने तीन बार प्रभुकी आरती उतारी। फिर भक्तिसे रोमांचित होकर शक्रस्तव द्वारा प्रभुकी वंदना कर इंद्र इस तरह विनती करने लगा; (५७३-६०१)

"हे जगन्नाथ! हे त्रैलोक्य-कमल-मार्तंड! (तीन लोकके प्राणी रूपी कमलोंके लिए सूरजके समान) हे संसाररूपी मरु-स्थलमें कल्पवृक्ष! हे विश्वका उद्धार करनेवाले बांधव! मैं आप-को नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! यह मुहूर्त्त भी वंदनीय है कि जिसमें धर्मको जन्म देनेवाले, अपुनर्जन्मा (जिनका फिर कभी जन्म न होगा ऐसे) और जगज्जंतुओंके दुःखका नाश करनेवाले ऐसे, आपका जन्म हुआ है। हे नाथ! इस समय आपके जन्मा-भिषेकके जलके पूरसे भीगी हुई और बगैर कोशिशकेही जिसका मल दूर होगया है ऐसी यह रत्नप्रभा पृथ्वी (आपके समान रत्नको जन्म देकर) यथानाम तथा गुणवाली हुई है। हे प्रभो! वे मनुष्य धन्य हैं जो सदा आपके दर्शन पाएँगे; हम तो कभी-कभीही आपके दर्शन पाएँगे। हे स्वामी! भरतक्षेत्रके मनुष्योंके लिए मोक्षमार्ग बंद हो गया है, उसे आप नवीन मुसाफिर होकर

फिरसे आरंभ करेंगे। हे प्रभो! आपकी धर्मदेशना तो दूर रही, केवल आपके दर्शनही प्राणियोंका कल्याण करनेवाले हैं। हे भवतारक (संसारको तारनेवाले)! ऐसा कोई नहीं है जिससे आपकी तुलना की जाए; इसलिए मैं कहता हूँ कि आपके समान आपही हैं। अब अधिक स्तुति कैसे करूँ? हे नाथ! मैं आपके सद्भूतार्थ (सत्य अर्थको बतानेवाले) गुणोंका वर्णन करनेमें भी असमर्थ हूँ। कारण, स्वयंभूरमण समुद्रके जलको कौन माप सकता है? (६०१-६०६)

इस तरह जगत्पतिकी स्तुति करके, प्रमोद (खुशी) से जिसका मन सुगंधमय (खुश) हुआ है ऐसे शक्रेंद्रने पहलेहीकी तरह पाँच रूप बनाए। उनमेंसे अप्रमादी एक रूपसे उसने ईशानेंद्रकी गोदसे, रहस्यकी तरह जगत्पतिको अपने सीनेपर लिया। स्वामीकी सेवाको जाननेवाले उसके दूसरे रूप, नियुक्त किए हुए नौकरकी तरह, पहलेकी तरहही अपना अपना काम करने लगे। फिर अपने देवताओं सहित देवताओंका नेता शक्रेंद्र, वहाँसे आकाशके रस्ते, मरुदेवीसे अलंकृत मंदिर (महल) में आया। वहाँ, माताके पास उसने प्रतिरूप रक्खा था उसे उठा लिया और प्रभुको सुला दिया। इंद्रने मरुदेवी माताकी अवस्वापिनी निद्रा इसी तरह दूर कर दी जिस तरह सूर्य कमलिनीकी निद्राको दूर करता है। सरितातटपर रहे हुए हंसमालाके विलासको धारण करनेवाला उजला, दिव्य और रेशमी वस्त्रका एक जोड़ा उसने प्रभुके सिरहाने रक्खा। बचपनमें भी, उत्पन्न हुए भामंडलकी कल्पना करानेवाली रत्नमय कुंडलकी जोड़ी भी उसने प्रभुके सिरहाने रक्खी। इसी तरह सोनेके प्राकार (किनारे)

से बनाए हुए विचित्र रत्नके हारों और अर्द्धहारोंसे व्याप्त और सोनेके सूर्यके समान प्रकाशित श्रीदामगंड (झूमर) भी प्रभुकी नजरको आनंदित करनेके लिए,आकाशके सूर्यकी तरह, ऊपरके चंदोवेमें लटका दिया। फिर उसने कुबेरको आज्ञा दी कि बत्तीस करोड़ हिरण्य (कीमती धातुविशेष), बत्तीसकरोड़ सोना, बत्तीस नंदासन, बत्तीस भद्रासन, और दूसरे मनोहर वस्त्र इत्यादि मूल्यवान पदार्थ–जिनसे सांसारिक सुख होता है–स्वामीके भुवनमें इस तरह बरसाओ जिस तरह बादल पानी बरसाते हैं।" (६१०–६२२)

कुबेरने आज्ञा पातेही ज्रंभक[1] जातिके देवोंसे कहा और उनने इंद्रकी आज्ञाके अनुसार सभी चीजें बरसाईं। कारण–

"ह्याज्ञाप्रचंडानां वचसा सह सिद्धयति।"

[प्रचंड–शक्तिवान पुरुषोंकी आज्ञा वचनके साथही सिद्ध होती है।] फिर आभियोगिक देवोंको इंद्रने आज्ञा दी, "तुम चारों निकायके देवोंको सूचना देदो कि जो कोई प्रभुको अथवा उनकी माताको हानि पहुँचानेका विचार करेगा उसका मस्तक अर्कमंजरी[2]की तरह सात तरहसे छेदा जाएगा। गुरुकी आज्ञाको शिष्य जैसे ऊँची आवाजसे सुनाता है वैसेही उन्होंने भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवोंमें इंद्रकी आज्ञाकी घोषणा

१—दस तरहके तिर्यग्ज्रंभक देवता हैं; वे कुबेरकी आज्ञामें रहनेवाले हैं। २—यह एक तरहकी मंजरी है। जब यह पककर फूटती है तब इसके सात भाग हो जाते हैं।

की। फिर जैसे सूरज बादलोंमें पानी डालता है वैसेही उसने भगवानके अंगूठेमें अनेक तरहके रस भरदिए अर्थात अंगूठेमें अमृत भरदिया। अर्हंत स्तनपान नहीं करते इसलिए जब उनको भूख लगती है तब अपने आप, अमृतरस बरसानेवाला अपना अंगूठा, मुँहमें लेकर चूसते हैं। फिर उसने पाँच अप्सराओंको, धायका काम करनेके लिए वहीं रहनेकी आज्ञा दी।

(६२३-६२९)

जिन-स्नात्र हो जानेके बाद, जब इंद्र भगवानको रखनेके लिए आया उस समय बहुतसे देवता मेरुशिखरसे नंदीश्वर द्वीप गए। सौधर्मेंद्रभी नाभिपुत्रको उनके महलमें रखकर, स्वर्गवासियोंके निवास समान नंदीश्वर द्वीपको गया और वहाँ पूर्व दिशाके, क्षुद्र मेरु[1] पर्वतके समान प्रमाणवाले, देवरमण नामके अंजनगिरि पर उतरा। वहाँ उसने विचित्र मणियोंकी पीठिकावाले, चैत्यवृक्ष और इंद्रध्वजद्वारा अंकित, और चार दरवाजोंवाले चैत्यमें प्रवेश किया और अष्टाह्निका उत्सवसहित ऋषभादि[2] अर्हंतोंकी शाश्वती प्रतिमाओंकी पूजा की। उस अंजनगिरिकी चार दिशाओंमें चार बड़ी बावड़ियाँ हैं। उनमेंसे हरेकमें एक एक स्फटिक मणिका दधिमुख नामक पर्वत है। उन चारों पर्वतोंके ऊपरके चैत्योंमें शाश्वती अर्हंतोंकी प्रतिमाएँ हैं। शक्रेंद्रके चार दिग्पालोंने, अष्टाह्निका उत्सवसहित, उन प्रतिमाओंकी विधिसहित पूजा की।

(६३०-६३६)

१—दूसरे चार छोटे मेरु पर्वत हैं। वे ८४००० योजन ऊँचे हैं।

२—ऋषभ, चंद्रानन, वारिषेण और वर्द्धमान इन चार नामोंवालीही शाश्वती प्रतिमाएँ होती हैं।

ईशानेंद्र उत्तर दिशाके नित्य रमणीक ऐसे रमणीय नामके अंजनगिरिपर उतरा और उसने उस पर्वतपरके चैत्यमें ऊपरकी तरह ही शाश्वती प्रतिमाएँ हैं, उनकी अष्टाहि उत्सव-पूर्वक पूजा की। उसके दिक्पालोंने भी उस पर्वतके चारों तरफकी बावड़ियोंके दधिमुख पर्वतोंपरके चैत्योंमें विराजमान शाश्वत प्रतिमाओंकी पूजा की। (६३७–६३९)

चमरेंद्र दक्षिण दिशाके नित्योद्योत नामके अंजनाद्रि पर उतरा। रत्नोंसे नित्य प्रकाशमान उस पर्वतपरके चैत्योंमें विराजमान शाश्वत प्रतिमाओंकी उसने बड़ी भक्तिके साथ, अष्टाहिका महोत्सव सहित पूजा की। और उस पर्वतके चारों तरफ की बावड़ियोंके दधिमुख पर्वतोंपरके चैत्योंमें विराजमान प्रतिमाओंकी अचलचित्तसे उत्सवके साथ चमरेंद्रके चार लोकपालोंने पूजा की। (६४०–६४२)

बलि नामका इंद्र पश्चिम दिशाके स्वयंप्रभ नामके अंजनगिरिपर, मेघके समान प्रभावके साथ उतरा। उसने उस पर्वतके चैत्योंमें विराजमान देवताओंकी आँखोंको पवित्र करनेवाली, शाश्वती ऋषभादि अर्हतोंकी प्रतिमाओंका उत्सव किया। उसके चार लोकपालोंसे भी उस अंजनगिरिके चारों तरफकी दिशाओंकी बावड़ियोंके अंदर दधिमुख नामक पर्वतोंपरके चैत्योंमें विराजमान शाश्वती जिनप्रतिमाओंका उत्सव किया।

(६४३–६४५)

इस तरह सभी देव नंदीश्वरद्वीपपर उत्सव करके मुसाफिरोंकी तरह जैसे आए थे वैसेही अपने अपने स्थानोंपर गए।

(६४६)

इधर सवेरे स्वामिनी मरुदेवी माता जागीं। उनने रातमें देवताओंके आनेजानेकी, रातके सपनेकी तरह, सारी बातें कहीं। जगत्पतिके उरूपर ऋषभका चिह्न था और मरुदेवी माताने भी सपनोंमें सबसे पहले ऋषभ देखा था इसलिए हर्षित मातापिताने शुभ दिन देखकर उत्साहके साथ प्रभुका नाम ऋषभ रखा। उनके साथही, युगल रूपमें जन्मी हुई कन्याका नाम सुमंगला रखा। यह नाम यथार्थ और पवित्र था। जैसे वृक्ष खेतोंमेंकी कुल्याओं का (पानीकी नालियोंका) जल पीते हैं वैसेही ऋषभ स्वामी भी, इंद्रके द्वारा अंगूठेमें भरेहुए अमृतका योग्य समयपर पान करने लगे। जैसे पर्वतकी गोद (गुफा) में बैठे सिंहका किशोर शोभता है, वैसेही पिताकी गोदमें बैठे हुए बालक भगवान शोभने लगे। जैसे पाँच समितियाँ महामुनिको नहीं छोड़ती हैं, वैसेही इंद्रकी रखी हुई पाँच दाइयाँ प्रभुको कभी भी अकेला नहीं छोड़ती थीं। (६४७–६५३)

जब प्रभुके जन्मको एक साल होने आया तब सौधर्मेंद्र वंशकी स्थापना करनेके लिए वहाँ (अयोध्या में) आया। सेवकको कभी खाली हाथ स्वामीके पास नहीं जाना चाहिए, इस विचारसे इंद्र एक बड़ा गन्ना अपने साथ लाया। शरीरधारी शरद्‌ऋतुके समान सुशोभित इंद्र गन्ने सहित वहाँ आया जहाँ प्रभु नाभिराजाकी गोदमें बैठे हुए थे। प्रभुने अवधिज्ञानके द्वारा इंद्रका इरादा जान, हाथीकी (सूँडकी) तरह अपना हाथ गन्ना लेनेको लंबा किया। स्वामीका भाव जाननेवाले इंद्रने सर झुकाकर गन्ना भेंटकी तरह प्रभुको दे दिया। प्रभुने इक्षु (गन्ना)

ग्रहण किया था, इसलिए इंद्र प्रभुके वंशका नाम इक्ष्वाकु रखकर स्वर्गमें चला गया। (६५४–६५६)

युगादिनाथका शरीर पसीना, रोग और मलसे रहित सुगंधि व सुंदर आकारवाला था और वह स्वर्णकमलके समान शोभता था। उनके शरीरके मांस और रुधिर गायके दूधकी धाराके समान उज्ज्वल और दुर्गंधरहित थे। उनके आहार-भोजन, नीहार (मलत्याग) की विधि चर्मचक्षु के अगोचर थी। यानी कोई आँखोंसे प्रभुका भोजन करना या मलत्याग करना देख नहीं सकता था। उनकी साँसकी सुगंध खिले हुए कमलके समान थी। ये चारों अतिशय जन्मसेही प्रभुको मिले हुए थे। वज्रऋषभनाराच संहननवाले प्रभु इस विचारसे धीरे-धीरे चलते थे कि कहीं जमीन धँस न जाए। उनकी उम्र छोटी थी, तो भी वे गंभीर और मधुर बोलते थे। कारण, लोकोत्तर पुरुषोंका बचपन उम्रकी दृष्टिसेही होता है। समचतुरस्रसंस्था-नवाला प्रभुका शरीर ऐसा शोभता था मानों वह खेलनेकी इच्छा रखनेवाली लक्ष्मीकी स्वर्णमय क्रीड़ावेदिका हो। समान उम्रके बनकर आए हुए देवकुमारोंके साथ वे उनकी अनुवृत्तिके लिए-उनको खुश रखनेके लिए खेलते थे। खेलते समय धूलसे भरे हुए शरीरवाले और घुँघरू पहने हुए प्रभु मस्तीमें आए हुए हाथीके बालकके समान शोभते थे। जिसको प्रभु लीलामात्रमें ले सकते थे उसको पानेमें बड़ी ऋद्धिवाला देव भी समर्थ नहीं

१—प्रभुके ३४ अतिशय होते हैं, उनमेंसे ४ तो जन्मके साथही प्राप्त होते हैं।

होता था। अगर कोई प्रभुके बलकी परीक्षाके लिए उनकी अँगुली पकड़ता था तो वह उनके श्वासके पवनसे रेतीके कणकी तरह उड़कर दूर जा गिरता था। कई देव-कुमार कंदुक (गेंद) की तरह प्रभुके सामने लोटते थे और विचित्र कंदुकोंसे (गेंदोंसे) प्रभुको खिलाते थे। कई देवकुमार राजशुक (पाले हुए तोते) का रूप धारण कर चाटुकार (खुशामद करनेवाले) की तरह, "जीते रहो! जीते रहो।" "खुश रहो! खुश रहो!" इत्यादि तरह तरहके शब्द बोलते थे। कई देव स्वामीको खुश करनेके लिए मोर बनकर केकावाणीसे (मोरकी बोलीसे) षड्ज स्वरमें गाते थे और नाचते थे। प्रभुके मनोहर हस्तकमलको ग्रहण करने और स्पर्श करनेके इरादेसे कई देवकुमार हंसोंका रूप धारण कर गांधार स्वरमें गायन कर प्रभुके आसपास फिरते थे। कई देवकुमार प्रभुका प्यारभरा दृष्टिपात रूपी अमृतपान करनेकी इच्छासे क्रौंचपक्षीका रूप धारण कर उनके सामने मध्यम स्वरमें बोलते थे। कई प्रभुके मनको प्रसन्न करनेके लिए कोयलका रूप धारण कर पासके वृक्षपर बैठ, पंचम स्वरमें गाते थे। कई अपनी आत्माको पवित्र करनेकी इच्छासे, प्रभुका वाहन बननेके लिए घोड़ेका रूप धारण कर धैवत ध्वनिमें हिनहिनाते हुए प्रभुके पास आते थे। कई हाथीका रूप धारण कर निषाद स्वरमें बोलते हुए नीचा मुँह किए, सूँडोंसे प्रभुके चरणोंको स्पर्श करते थे। कई वृषभ (बैल) का रूप धारण कर सींगोंसे तट-प्रदेशको (पासकी जमीनको) ताड़न करते और वृषभके समान स्वरोंमें बोलते हुए प्रभुकी दृष्टिको आनंदित करते थे। कई अंजनाचल (काले पहाड़) के समान बड़े भैंसोंका रूप धारण कर, परस्पर लड़ते थे और प्रभुको युद्ध-क्रीड़ा बताते थे। कई

प्रभुके आनंदके लिए पहलवानोंका रूप धरकर अपनी भुजाओं-को ठोकते हुए एक दूसरेको अखाड़ेमें उतरनेके लिए ललकारते थे। इस तरह योगी जैसे तरह तरहकी विधियोंसे प्रभुकी उपा-सना करते हैं वैसेही देवकुमार भी तरह तरहके खेल बताकर प्रभुकी उपासना करते थे। ऐसी स्थितिमें रहते हुए और उद्या-नपालिकाएँ जैसे वृक्षका लालन करती हैं उसी तरह अप्रमादी पाँच दाइयोंके द्वारा लालित-पालित प्रभु क्रमशः बड़े होने लगे। (६६०-६८२)

अंगूठा चूसनेकी अवस्था पूरी होनेपर दूसरी अवस्थाको प्राप्त गृहवासी अरिहंत सिद्धअन्न (रँधाहुआ नाज) का भोजन करते हैं; परंतु नाभिनंदन भगवान तो उत्तरकुरु क्षेत्रसे देवताओं-के द्वारा लाए हुए कल्पवृक्षके फलोंका भोजन करते थे और क्षीरसमुद्रका पानी पीते थे। बीते कलकी तरह बचपनको पूरा कर, सूरज जैसे दिनके मध्यभागमें आता है वैसे प्रभु-ने, जिसमें अवयव पूर्ण दृढ़ हो जाते हैं, ऐसे यौवनका आश्रय लिया। जवान होनेके बाद भी प्रभुके दोनों चरण, कमलके मध्य-भागके समान कोमल, लाल, उष्ण, कंपरहित, पसीनेरहित और समान तलुएवाले थे। उनमें चक्रका चिह्न था, वह मानों दुखियों-के दुःखोंका छेदन करनेके लिए था, और माला, अंकुश तथा ध्वजाके चिह्न थे, वे मानों लक्ष्मीरूपी हथिनीको हमेशा स्थिर रखनेके लिए थे। लक्ष्मीके लीलाभवनके समान प्रभुके चरण-तलमें शंख और कुंभके चिह्न थे व एड़ीमें स्वस्तिकका चिह्न था। प्रभुका पुष्ट, गोलाकार और सर्पके फनकी तरह उन्नत अंगूठा, वत्सकी तरह श्रीवत्सके चिह्नवाला था। वायुरहित स्थानमें

जलते हुए कंपरहित दीपककी शिखाके समान प्रभुकी छिद्ररहित और सरल अंगुलियाँ चरणरूपी कमलके समान मालूम होती थीं। उन अंगुलियोंके नीचे नंद्यावर्त (जौंके जैसी रेखाओं) के चिह्न शोभते थे। उनका जो प्रतिबिंब भूमिपर पड़ता था वह धर्मप्रतिष्ठाका हेतुरूप होता था¹। जगत्पतिकी हरेक उँगलीके पर्वमें अधोवापियाँ(गहरे खड्डों)सहित जौंके चिह्न थे। वे ऐसे मालूम होते थे मानों वे जगतकी लक्ष्मीके साथ प्रभुका ब्याह होनेवाला है इसलिए बोए गए हैं। पृथु (मोटी) और गोलाकार एड़ी ऐसी शोभती थी, मानों वह चरणकमलका कंद (छत्ता) हो। नाखून अंगूठे और अंगुलीरूपी सर्पोंके फनोंपर मणिके समान शोभते थे। चरणोंके गूढ़ (साफ न दिखनेवाले) गुल्फ (टखने) सोनेके कमलकी कलिकी कर्णिका (गाँठ) के गोलक (खड्डा) की शोभाका विस्तार करते थे। प्रभुके दोनों पैरोंके तलुवेके ऊपरके भाग कछुएकी पीठकी तरह क्रमसे उन्नत, नसें न दिखें ऐसे, रोमरहित और स्निग्ध कांतिवाले थे। गोरी पिंडलियाँ, अस्थि-रुधिरमें छिप जानेसे, पुष्ट, गोल और हिरणोंकी पिंडलियोंकी शोभाका भी तिरस्कार करनेवाली थीं। घुटने मांससे भरे हुए और गोल थे। वे रूईसे भरेहुए गोल तकियेके अन्दर डाले हुए आइनेके समान लगते थे। जाँघें कोमल, क्रमसे (मोटाईमें) चढ़ती हुई और स्निग्ध थीं। वे केलेके खंभेके विलासको धारण करती थीं। मुष्क (अंडकोश) हाथीकी तरह गूढ़ व समस्थितिवाले थे; कारण,

१—चैत्यकी प्रतिष्ठामें नंद्यावर्तकी पूजा होती है, वैसेही यहाँ भी उसे धर्मकी प्रतिष्ठाका चिह्न समझना चाहिए।

अश्वकी तरह कुलीन पुरुषके चिह्न बहुत गूढ़ होते हैं। उनका पुरुष-चिह्न ऐसा था जिसकी नसें नहीं दिखती थीं। वह न ऊँचा था, न नीचा था, न शिथिल था, न बहुत छोटा था, न बहुत मोटा था; सरल था, कोमल था, रोमरहित था और गोलाकार था। उसके कोशमें रहा हुआ पंजर-शीत, प्रदक्षिणावर्त्त शब्दमुक्ताको धारण करनेवाला, अबीभत्स (जिससे घृणा न हो ऐसा) और आवर्ताकार (भँवर जैसा) था। प्रभुकी कमर विशाल, पुष्ट, स्थूल और बहुत कठिन थी। उनका मध्यभाग सूक्ष्मतामें वज्रके बीचके भाग जैसा मालूम होता था। उनकी नाभि नदीके भँवरके विलासको धारण करती थी। उनकी कुक्षि (कोख) के दोनों भाग स्निग्ध, मांसल, कोमल, सरल और समान थे। उनका वक्षस्थल (छाती) सोनेकी शिलाके जैसा विशाल, उन्नत, श्रीवत्सरत्नपीठके चिह्नवाला और लक्ष्मीके खेलनेके लिए छोटे चबूतरेसा मालूम होता था। उनके दोनों कंधे सांढके ककुद (डिल्ला) के समान दृढ़, पुष्ट और उन्नत थे। उनकी दोनों कक्षाएँ (काँखें) अल्प रोमवाली, उन्नत और गंध, पसीना व मैलसे रहित थीं। उनकी पुष्ट और कर (हाथ) रूपी फनोंके छत्रवाली भुजाएँ घुटनों तक लंबी थीं। वे ऐसी मालूम होती थीं मानों चंचला लक्ष्मीको वशमें रखनेके लिए नागफाँस हैं। और दोनों हाथ नवीन आमके पत्तोंसी लाल हथेलीवाले, निष्कर्म होते (कुछ काम न करते) हुए भी, कठोर, पसीनेरहित, छिद्ररहित और जरा गरम थे। पैरोंकी तरह उनके हाथ भी–दंड, चक्र, धनुष, मत्स्य, श्रीवत्स, वज्र, अंकुश, ध्वज, कमल, चामर, छत्र, शंख, कुंभ, समुद्र, मंदिर, मकर, ऋषभ, सिंह, अश्व, रथ,

स्वस्तिक, दिग्गज, प्रासाद, तोरण और दीप वगैरा चिह्नोंसे अंकित थे। उनके अँगूठे और अँगुलियाँ लाल हाथमेंसे उत्पन्न हुए, इसलिए लाल और सरल थे। वे प्रांतभागमें माणिक्यके फूलवाले कल्पवृक्षके अंकुरके जैसे मालूम होते थे। अँगूठेके पर्वभागमें यशरूपी उत्तम अश्वको पुष्ट करनेके कारणरूप यवोंके चिह्न स्पष्टतया शोभते थे। अँगुलियोंके ऊपरके भागमें प्रदक्षिणावर्तके (दाहिनी तरफके चक्रके) चिह्न थे, वे सर्वसंपत्ति बतानेवाले दक्षिणावर्तके शंखपनको धारण करते थे। उनके कर-कमलके मूलभागमें (कलाईमें) तीन रेखाएँ शोभती थीं, वे ऐसी मालूम होती थीं मानों वे तीनलोकका उद्धार करनेके लिए ही बनाई गई हैं। उनका गोलाकार, अदीर्घ (बहुत लंबा नहीं ऐसा) और तीन रेखाओंसे पवित्र बना हुआ गंभीर ध्वनिवाला कंठ शंखकी समानताको धारण करता था। निर्मल, वर्तुल (गोल) और कांतिकी तरंगोंवाला मुख कलंकरहित दूसरे पूर्ण चंद्रसा लगता था। दोनों कपोल (गाल) कोमल, स्निग्ध और मांससे भरे थे, वे एक साथ रहनेवाली वाणी और लक्ष्मीके दो दर्पण जैसे थे; और अंदरके आवर्त (गोलाई) से सुंदर और कंधेतक लंबे दोनों कान मुखकी कांतिरूपी समुद्रके तीरपर रही हुई दो सीपोंके जैसे थे। होठ बिंबफलके समान लाल थे। बत्तीसों दाँत कुंदकलिके सहोदर (सगे भाई) के समान थे; और उनकी नाक क्रमशः विस्तारवाली और उन्नत वंशके समान थी। उनकी चिबुक (ठुड्डी) पुष्ट, गोलाकार, कोमल और समान थी तथा उसपर उगी हुई दाढ़ीके केश श्याम, सघन, स्निग्ध और कोमल थे। प्रभुकी जीभ नवीन कल्पवृक्षके प्रवाल समान लाल,कोमल,

अनतिस्थूल (बहुत मोटी नहीं ऐसी) और द्वादशांगके अर्थको बतानेवाली थी। उनकी आँखें अंदरके भागमें श्याम व सफेद और किनारेपर लाल थीं;इससे मानों वे नीलमणि,स्फटिकमणि और शोणमणिसे बनी मालूम होती थीं। कानोंतक फैली हुई और काजलके समान काली भौहोंवाली आँखें, मानों भौंरे जिनमें लीन होरहे हों ऐसे कमलसी मालूम होती थीं। उनकी श्याम और टेढ़ी भौंहें, दृष्टिरूपी पुष्करिणी (जलाशय-विशेष) के तीरपर उगीहुई लताकी शोभाको धारण करती थीं। मांसल, गोल, कठिन, कोमल और समान ललाट अष्टमीके चंद्रमाके समान शोभता था। और मौलिभाग (ललाटके ऊपरका भाग) क्रमशः उन्नत था, वह उलटे किए हुए छत्रसा जान पड़ता था। जगदीश्वरपनको सूचित करनेवाला प्रभुके मौलिछत्रपर विराजमान गोल और ऊँचा मुकुट कलशकी शोभाको धारण करता था और टेढ़े, कोमल, स्निग्ध और भौंरेके जैसे काले केश यमुना नदीकी तरंगोंके समान जान पड़ते थे। प्रभुके शरीरपर गोरोचनके गर्भके समान गोरी, स्निग्ध और स्वच्छ त्वचा (चमड़ी) सोनेके रससे पोती हुई हो ऐसी, शोभती थी। और कोमल, भौंरेके जैसी श्याम, अपूर्व उद्गमवाली और कमलतंतुके समान बारीक रोमावली शोभती थी। (६८२-७२६)

इस तरह अनेक तरहके असाधारण लक्षणोंसे युक्त प्रभु, रत्नोंसे रत्नाकरकी तरह किसके सेव्य (सेवा करने योग्य) न थे? अर्थात सुर, असुर और मनुष्य, सबके सेव्य थे। इंद्र उनको हाथका सहारा देते थे, यक्ष चमर डुलाते थे और 'चिरजीवो! चिर जीवो!' कहते हुए असंख्य देवता उनके चारों

तरफ रहते थे; तो भी प्रभुके मनमें अभिमान जरासा भी न था। वे यथासुख विहार करते थे (खेलते कूदते थे)। कई बार प्रभु इंद्रकी गोदमें पैर रखे, चमरेंद्रके गोदरूपी पलंगपर, अपने शरीरके ऊपरी भागको स्थिर किये और देवताओंद्वारा लाएहुए आसनपर विराजमान हो, दोनों हाथोंमें हस्ताड़ (तौलिए) लिए हाजिरीमें खड़ी हुई अप्सराओं द्वारा सेवित, अनासक्त भावसे दिव्य नृत्य-संगीत देखते-सुनते थे। (७३०-७३५)

एक दिन एक युगलियोंकी जोड़ी ताड़वृक्षके नीचे बालकों-के लायक खेलकूद करती थी। उस समय बहुत मोटा ताड़का फल उस युगलके पुरुषके सरपर पड़ा और काकतालीय न्यायसे, वह पुरुष तत्कालही अकालमृत्युसे पंचत्व पाया (असमयमें मर गया)। ऐसी घटना यह पहलीही बार हुई थी। अल्पकषायके कारण वह युगलिया लड़का मरकर स्वर्गमें गया। कारण-

"तूलमप्यल्पभारत्वादाकाशमनुधावति।"

[रुई भी बहुत कम वजनवाली होनेसे आकाशमें जाती है।] पहले बड़े पक्षी, अपने घोंसलोंकी लकड़ीकी तरह युगलि-योंके मृत शरीरको उठाकर समुद्रमें डाल देते थे; मगर उस समय यह बात नहीं रही थी; अवसर्पिणीकालका प्रभाव अव-सर्पण हो रहा था (आगे बढ़ रहा था)। इसलिए वह कलेवर-मुर्दा वहीं पड़ा रहा। उस जोड़ीमें बालिका थी; वह स्वभावसेही मुग्धपनसे सुशोभित होरही थी। अपने साथी लड़केके मर जानेसे, बिकनेके बाद बची हुई चीजकी तरह वह चंचल आँखों-वाली बालिका वहीं बैठी रही। फिर उसके मातापिता उसको वहाँसे उठाकर ले गए और उसका पालन-पोषण करने लगे।

उन्होंने उसका नाम सुनंदा रखा। कुछ दिनोंके बाद सुनंदाके मातापिता मर गए। कारण संतान पैदा होनेके बाद युगलियोंकी जोड़ी थोड़े दिनही जीवित रहती है। अकेली रह जानेपर क्या करना चाहिए सो उसे नहीं सूझता था और वह यूथभ्रष्टा मृगी-की तरह (अपने समूहसे बिछुड़ी हुई हरिणीकी तरह) वनमें अकेली भटकने लगी। सरल अँगुलीरूपी पत्रवाले चरणोंसे जमी-नपर कदम रखती हुई वह, मानों पृथ्वीपर खिले हुए कमल स्था-पित कर रही हो ऐसी मालूम होती थी। उसकी दोनों जाँघें कामदेवके बनाए हुए सोनेके भाथोंसी (तरकस)जान पड़ती थीं। क्रमसे विशाल और गोल पिंडलियाँ हाथीकी सूँडसी मालूम होती थीं। चलते समय उसके पुष्ट और भारी नितंब (चूतड़) कामदेवरूपी जुआरीकी सोनेकी फैंकी हुई गोटसे दिखते थे। मुट्ठीमें आजाए ऐसी और कामदेवके आकर्षणके समान कमरसे और कामदेवकी क्रीड़ावापिका (खेलनेकी बावड़ी) के समान नाभिसे वह बहुत शोभती थी। उसके पेटमें त्रिवलि रूपी तरंगें थीं, उनसे वह अपने रूपद्वारा तीनलोकको जीतनेसे, तीन जयरेखाओंको धारण करती हो ऐसी मालूम होती थी। उसके स्तन कामदेवके क्रीड़ापर्वतोंके समान दिखते थे। उसकी भुज-लताएँ (हाथ) रतिपतिके झूलेकी दो यष्टियां (डोरियां) सी जान पड़ती थीं। उसका तीन रेखाओंवाला कंठ शंखकी शोभाको हरता था। उसके होठोंसे वह पके हुए बिंबफलकी कांतिका पराभव करती थी(हराती थी) और होठरूपी सीपके अंदर रहे हुए मुक्ता-फलरूपी दाँतोंसे और नेत्ररूपी कमलकी नालकीसी नासिकासे वह बहुत अधिक सुंदर मालूम होती थी। उसके दोनों गाल मानों

ललाटकी स्पर्द्धा करते हों वैसे अर्द्धचंद्रकी शोभाको चुराते थे। और उसके सुन्दर केश मुखरूपी कमलमें लीन हुए भौंरे हों ऐसे जान पड़ते थे। सभी अंगोंसे सुंदर और पुण्य लावण्य(सुन्दरता) रूपी अमृतकी नदीसी वह बाला वनमें फिरती हुई वनदेवीके समान शोभती थी। उस अकेली मुग्धाको देखकर किंकर्तव्य मूढ़तासे (क्या करना चाहिए सो नहीं समझनेसे) जड़ बने हुए कई युगलिए उसे नाभिराजाके पास ले गए। श्री नाभिराजाने 'यह ऋषभकी धर्मपत्नी हो' यह कह कर, नेत्ररूपी कुमुदके लिए चाँदनीके समान उस बालाको स्वीकार किया। (७२५-७५६)

इसके बाद एक दिन सौधर्मेंद्र अवधिज्ञानसे प्रभुके ब्याह-का समय जानकर अयोध्यामें आया और जगत्पतिके चरणोंमें प्रणाम कर उनके सामने एक प्यादेकी तरह खड़े हो, हाथ जोड़ विनती करने लगा,"हे नाथ! जो अज्ञानी ज्ञानकी निधिके समान स्वामीको, अपने विचार या बुद्धिसे किसी काममें प्रवृत्त होनेकी बात कहता है वह हँसीका पात्र बनता है;तोभी स्वामी अपने नौक-रोंको स्नेहकी दृष्टिसेही देखता है,इसलिए वे कई बार स्वच्छंदता-पूर्वक कुछ बोल सकते हैं। उनमें भी जो अपने स्वामीके अभि-प्रायको समझकर बोलते हैं वे सच्चे सेवक कहलाते हैं। मगर हे नाथ! मैं आपके अभिप्रायको जाने बगैर बोलता हूँ, इसलिए आप अप्रसन्न न हों। मैं जानता हूँ कि आप गर्भवाससेही वीत-राग हैं और अन्य पुरुषार्थोंकी इच्छा न होनेसे चौथे पुरुषार्थ (मोक्ष) के लिए ही तैयार हैं; फिर भी हे स्वामी! मोक्षमार्गकी तरह व्यवहारमार्ग भी आपहीसे प्रकट होनेवाला है, इसलिए उस लोकव्यवहारको आरंभ करनेकेलिए मैं आपका विवाह

महोत्सव करनेकी इच्छा रखता हूँ; इसलिए हे प्रभो ! आप प्रसन्न होकर मुझे अनुमति दीजिए। भुवनमें भूषणरूप रूपवान सुमंगला और सुनंदा आपके व्याहने योग्य हैं।" (७५७-७६५)

उस समय स्वामी भी, अवधिज्ञानसे यह जानकर कि मुझे तेरासी लाख पूर्व तक दृढ़ भोगकर्म भोगना ही पड़ेंगे, सर हिला कर सायंकालकी तरह अधोमुख हो रहे (७६६-६७)

इंद्रने स्वामीके मनकी बात जानकर विवाहकर्मका आरंभ करनेके तत्कालही देवताओंको वहाँ बुलाया। इंद्रकी आज्ञा पाकर आभियोगिक देवोंने वहाँ एक सुंदर मंडप बनाया। वह सुधर्मा सभाका अनुज (छोटा भाई) सा लगता था। उसमें रोपे हुए सोने, माणिक और चाँदीके खंभे, मेरु, रोहणाचल और वैताढ्य पर्वतोंकी चूलिकाओं (शिखरों) से शोभते थे। उनपर रखे हुए स्वर्णमय उद्योतकारी(प्रकाश करनेवाले) कलश चक्रवर्ती-के कांकणी रत्नोंके मंडलोंके समान शोभते थे और वहाँ रखी हुई वेदियाँ अपनी फैलती हुई किरणोंसे, दूसरे तेजको सहन नहीं करनेवाली सूर्यकी किरणोंका आभास कराती थीं। उस मंडपमें प्रवेश करनेवाले, मणिमय शिलाओंकी दीवारोंमें प्रति-बिंबित बहुत परिवारवाले मालूम होते थे। रत्नोंके खंभोंपरकी पुतलियाँ नाचकर थकी हुईं नाचनेवालियोंसी जान पड़ती थीं। उस मंडपकी हरेक दिशामें कल्पवृक्षके तोरण बनाए गए थे, जो ऐसे शोभते थे, मानों वे कामदेवके धनुष हों। और स्फटिकके द्वारकी शाखाओंपर नीलमणिके तोरण बनाए गए थे, वे शरद ऋतुकी मेघमालामें रही हुई (उड़ती हुई) तोतोंकी पंक्तियोंके जैसे सुंदर लगते थे। कई स्थान स्फटिकमणियोंसे बने थे।

उनपर निरंतर किरणें पड़नेसे वे क्रीड़ा करनेकी अमृतसरसी (बावड़ी) के समान शोभते थे। कई स्थानोंपर पद्मरागमणियों- की शिलाओंकी किरणें फैलरही थीं, उनसे वह मंडप कसूँबी और विस्तारवाले दिव्य वस्त्रोंको संचित करनेवालासा मालूम होता था। कई स्थान नीलमणियोंकी शिलाओंके बहुतही मनोहर किरणोंके अंकुर पड़नेसे, मंडप फिरसे बोएहुए मांगलिक यवां- कुरवालासा जान पड़ता था। कई स्थानोंपर मरकतमय (रत्नमय) पृथ्वीकी किरणें निरंतर पड़ती थीं, इससे वह वहाँ लाए हुए नीले, और मंगलमय वाँसोंकी शंका पैदा करता था। उस मंडप पर सफेद दिव्य वस्त्रोंका उल्लोच (चँदोवा) वँधा था, वह ऐसा मालूम होता था मानों आकाश-गंगा चँदोवेके बहाने वहाँ कौतुक देखने आई है। और चँदोवेके चारों तरफ खंभों पर मोतियोंकी मालाएँ लटकाई गई थीं,वे आठों दिशाओंके हर्षकी हँसीसी जान पड़ती थीं। मंडपके बीचमें देवियोंने रतिके निधानरूप रत्न- कलशोंकी आकाश तक ऊँची चार श्रेणियाँ (कतारें) स्थापन की थीं। उन चार श्रेणियोंके कुंभोंको सहारा देनेवाले हरे वाँस विश्वको सहारा देनेवाले स्वामीके वंशकी वृद्धिको सूचित करते हुए शोभते थे। (७६८-७८४)

उस समय—"हे रंभा माला (बनाना) आरंभ कर। हे उर्वशी ! दूब तैयार कर। हे घृताचि ! वरको (दूल्हेको) अर्घ्य देनेके लिए घी और दही वगैरा चीजें ला। हे मंजुघोषा ! सखियों से धवलमंगल अच्छी तरहसे गवा। हे सुगंधे ! तू सुगंधित चीजें तैयार कर। हे तिलोत्तमा ! दरवाजेमें सुंदर साथिया पूर। हे मैना ! तू आए हुए लोगोंका सुंदर आलापकी रचनासे सम्मान

कर। हे सुकेशी ! वरवधूके लिए केशाभरण तैयार कर। हे सहजन्या ! जन्ययात्रा (बारात) में आए हुए पुरुषोंको स्थान बता। हे चित्रलेखा ! मातृभुवनमें विचित्र चित्र बना। हे पूर्णिमे ! तू पूर्णपात्र शीघ्र तैयार कर। हे पुंडरीके ! तू पुंडरीकों (कमलों) से पूर्ण कुंभोंको सजा। हे अम्लोचे ! तू वरमंचिका (वरके लिए चौकी) योग्य स्थानमें रख। हे हंसपादि ! तू वरवधूकी पादुकाएँ (जोड़े) रख। हे पुंजिकास्थला ! तू वेदिकाको गोमय (गोवर) से शीघ्र लीप। हे रामा ! दूसरी तरफ कहाँ रमती है (खेलती है) ? हे हेमा ! तू सोनेको क्यों देख रही है ? हे द्रुतुस्थला ! तू पागलकी तरह विसंस्थुल (शांत) कैसे हो रही है ? हे मारिची ! तू क्या विचार कर रही है ? हे सुमुखी ! तेरा मुख क्यों विगड़ रहा है ? हे गांधर्वी ! तू आगे क्यों नहीं रहती ? हे दिव्या ! तू वेकार खेल क्यों कर रही है ? अब लग्नका मूहूर्त्त नजदीक आगया है। सभी अपने अपने विवाहोचित काम जल्दी पूरे करो।" इस तरह अप्सराएँ एक दूसरेको, नाम लेकर पुकार पुकारकर कह रही थीं। उससे वहाँ अच्छा कोलाहलसा हो रहा था। (७८५-७९५)

फिर कुछ अप्सराओंने सुमंगला और सुनंदाको मंगलस्नान करानेके लिए चौकियोंपर विठाया। मधुर, धवल-मंगलगान करते हुए पहले उन्होंने उनके सारे शरीरपर सुगंधित तेलका अभ्यंग किया (मालिश की), फिर जिनके रजके पुंजसे पृथ्वी पवित्र हुई है ऐसी उन दोनों कन्याओंके वारीक उवटन लगाया; फिर उनके दोनों चरणोंपर, दोनों हाथोंपर, दोनों घुटनोंपर, दोनों कंधोंपर और एक केशमें, ऐसे नौ श्यामतिलक किए। वे उनके

शरीरमें तो अमृतकुंडोंके समान लगते थे। उन्होंने उछंग पर लिपटे हुए अंगूठेके बाणे निकालकर उनसे देवियोंके सव्य और अपसव्य (दाहिने और बाएँ) अंगोंको स्पर्श किया, मानों उनका शरीर समचतुरस्रसंस्थानवाला है या नहीं इस बातकी जाँच की। इस तरह अप्सराओंने सुंदर वर्णवाली उन बालाओंको, बालकों-की तरह, मानों वे उनकी चपलता सिखाती हों इस तरह वर्णकमें[1] डाला। सुगंधि पूर्ण हुई उन अप्सराओंने वर्णकके सहोदरके समान उद्वर्तनका[2] भी उसी तरह लेप किया। उसके बाद, दोनों-को, मानों वे अपनी पुतलियाँ हों, इस तरह दूसरे आसनपर बिठाकर सोनेके कलशोंसे भरे जलसे स्नान कराया। सुगंधित गंधयुक्त अंगोंसे उनका शरीर पोंछा; कोमल रेशमी वस्त्रसे उनके केश लपेटे; रेशमी वस्त्र पहनाकर उनको दूसरे आसनपर बिठाया; उनके सिरोंके बालोंसे पानीकी बूँदें इस तरह टपकरही थीं मानों मोती बरस रहे हों; और स्निग्ध धूपकी लपटसे जिनकी शोभा बढ़रही है ऐसे उनके लम्बे बालोंको दिव्यधूपसे धूपित किया (सुगंधित किया)। जिस तरह सोनेपर गेरूका लेप करते हैं वैसे ही उन बालिकाओंके शरीरपर सुगंधित अंगरागका लेप किया। उनकी ग्रीवाओं (गलों), भुजाओंके अग्रभागों, स्तनों व गालोंपर पत्रवल्लरियाँ (पत्तोंकी बेलें) बनाईं; वे कामदेवकी प्रशस्तिके

१—वर्णकमें डालना यानी उबटन लगाना। शरीरमें उबटन लगानेके बाद उसकी रंगत—उसका रंग निखर उठता है, इसलिए कविने वर्णोंके लिए वर्णकको सहोदरकी उत्प्रेक्षा की है। २—उब-टन विशेष।

समान मालूम होती थीं। कामदेवके ठहरनेके नवीन मंडल (प्रदेश) के समान उनके ललाटोंपर चंदनका सुन्दर तिलक किया; उनकी आँखोंको नीलकमलके वनोंमें आनेवाले भौंरोंके समान काजलसे सँवारा; उनके अंबोड़े (पीछे गोलाकारमें बँधी हुई केस-वेणियाँ) खिले हुए पुष्पोंकी मालाओंसे गूँथकर बाँधे, वे ऐसे मालूम होते थे मानों कामदेवने अपने हथियार रखनेके लिए शस्त्रागार बनाए हैं। चंद्रमाकी किरणोंका तिरस्कार करनेवाले और लंबे पल्लोंवाले जरीसे भरे विवाहके वस्त्र उन्हें पहनाए; पूर्व और पश्चिम दिशाओंके मस्तकोंपर जैसे सूर्य और चंद्रमा रहते हैं वैसेही उनके मस्तकोंपर विचित्र मणियोंसे देदीप्यमान मुकुट रखे; उनके कानोंमें मणिमय अवतंस (करनफूल) पहिनाए, वे अपनी शोभासे रत्नोंसे अंकुरित-शोभित मेरुपर्वतकी पृथ्वीके सब अभिमानको हरते थे। कर्णलताओंमें नवीन फूलोंके गुच्छोंकी शोभाकी विडंबना (दिल्लगी) करनेवाले मोतियोंके सुन्दर कुंडल पहनाए, कंठोंमें विचित्र माणिकोंकी कांतिसे आकाशको प्रकाशित करनेवाले, और संक्षेप (छोटा) किए हुए इंद्रधनुपकी लक्ष्मीको (शोभाको) हरनेवाले पदक (गलेके आभूपण-विशेप) पहनाए; भुजाओंपर कामदेवके धनुपमें बाँधे हुए वीरपटसे सुशोभित रत्नमंडित वाजूबंद बाँधे; उनके स्तन-तटोंपर, चढ़ती उतरती नदीका भ्रम करानेवाले हार पहनाए; उनके हाथोंमें मोतीके कंकण पहनाए; वे जललताओंके नीचे सुशोभित जलके आलवालसे (थालेसे) जान पड़ते थे; जिनमें घुघरियोंकी कतारें घमकार कर रही हैं, ऐसी मणियोंकी कटिमेखलाएँ (कंदोरे) उनकी कमरोंमें बाँधे, इनसे वे रतिदेवीकी मंगल-पाठिकाओंसी

शोभने लगीं और उनके चरणोंमें रत्नमय झाँझर पहनाए, उनकी झणकार दोनोंके गुणगानसी मालूम होने लगी। देवियोंने इस तरह दोनों बालाओंको लेजाकर मातृभुवनमें स्वर्णके आसनपर बिठाया। (७९६-८२३)

उसी समय इंद्रने आकर वृषभलांछनवाले प्रभुसे विवाहके लिए तैयार होनेकी विनती की। प्रभुने यह सोचकर इंद्रकी विनती मानली कि मुझे लोगोंको व्यवहारमार्ग बताना चाहिए और साथही मुझे जिन कर्मोंको अवश्य भोगना पड़ेगा उनको भी भोग लेना चाहिए। विधिके जानकार इंद्रने प्रभुको स्नान कराया, अंगराग लगाया और यथाविधि सिंगारा। फिर प्रभु दिव्य वाहनमें बैठकर विवाहमंडपकी तरफ चले। इंद्र छडीदारकी तरह उनके आगे आगे चला, अप्सराएँ दोनों तरफ नमक उतारने लगीं, इंद्राणियाँ श्रेय करनेवाले धवल मंगलगीत गाने लगीं, सामानिक देवियाँ बलाएँ लेने (किसीका रोग दुःख अपने पर लेना) लगीं और गंधर्व तुरतही जन्मे हुए हर्षसे बाजे बजाने लगे। इस तरह प्रभु दिव्यवाहनमें मंडपके द्वारके पास आए; फिर विधिको जाननेवाले प्रभु, जैसे समुद्र अपनी मर्यादा-भूमिपर आकर रुकता है वैसेही, वाहनसे उतरकर, विवाहमंडपके दरवाजेपर खड़े हुए। प्रभु इंद्रके हाथका सहारा लेकर खड़े हुए ऐसे मालूम होते थे मानों हाथी वृक्षका सहारा लेकर खड़ा है।

(८२४-८३१)

तत्कालही मंडपकी स्त्रियोंमेंसे किसीने एक सरावसंपुट[1]

१—दो कसोरोंको मिलाकर बनाया हुआ पात्र।

द्वारके बीचमें रखा। उनमें आग और नमक थे, इससे (नमकके जलनेसे) तड़-तड़की आवाज आ रही थी। एक स्त्री, पूर्णिमाकी रात्रि जैसे चंद्रमाको धारण करती है वैसे, चाँदीका थाल उठाकर प्रभुके आगे खड़ी रही। उसमें दुर्वा वगैरा मांगलिक पदार्थ थे। एक स्त्री कसूँबी वस्त्र पहनकर, पाँच पखुड़ियोंवाली-मथनी-जो-प्रत्यक्ष मंगलके समान जान पड़ती थी—लेकर अर्ध्य देनेके लिए खड़ी हुई। "हे अर्घ्य देनेवाली! अर्घ्य देने योग्य इन दूल्हेको अर्घ्य दे; थोड़ा मक्खन छींट, समुद्रमेंसे जैसे अमृत उछालते हैं वैसे थालमेंसे दही लेकर उछाल।" "हे सुंदरी! नंदनवनमेंसे लाए हुए चंदनका रस तैयार कर।" "भद्रशाल वनकी जमीनमें से लाई हुई दुर्वा आनंदसे ले आ।" जिनपर, एकत्रित लोगोंके नेत्रोंकी श्रेणीका बना हुआ जंगम-हिलता हुआ तोरण है और जो तीनों लोकोंमें उत्तम हैं ऐसे वर तोरणद्वार पर खड़े हुए हैं। उनका शरीर उत्तरीय वस्त्रके अंतरपटसे ढका है, इससे वे गंगा नदीकी तरंगोंमें ढके हुए जवान राजहंसके समान मालूम होते हैं। "हे सुंदरी! हवासे फूल खिर रहे हैं और चंदन सूखने लग रहा है, इसलिए वरको अब अधिक समय तक दरवाजेपर रोककर न रख।" इस तरह बीच बीचमें बोलती हुई देवांगनाएँ धवल-मंगल गान कर रही थीं। उस समय उस (कसूँबल वस्त्र धारण करके अर्घ देनेके लिए खड़ी हुई) स्त्रीने अर्घ देने योग्य वरको अर्घ अर्पण किया। शोभायमान लाल होठोंवाली उस देवीने, धवल मंगलकी तरह शब्द करते हुए कंकणवाले हाथोंसे तीनलोकके स्वामीके ललाटको तीन बार मथनीसे स्पर्श किया। फिर प्रभुने अपनी बाईं पादुका द्वारा हिमकर्परकी लीलासे

(जिस तरह वज्रके टुकड़ेको तोड़ते हैं वैसे) अग्निसहित सरावसंपुटको चूर्ण कर डाला। तब अर्घ देनेवाली देवीने प्रभुके गलेमें कसूँबी वस्त्र डाला, उसके द्वारा खिंचेहुए प्रभु मातृ-भुवनमें गए। (८२४–८२३)

वहाँ कामदेवके कंकणके समान मदनफल (मैनफल-मींडल) से सुशोभित सूत्र (धागे) वधूवरके हाथोंमें बाँधे गए। देवियोंने वरको मातृदेवियोंके आगे ऊँचे सोनेके सिंहासनपर बिठाया। वे वहाँ ऐसे शोभते थे मानों मेरुपर्वतकी शिलापर सिंह बैठा हो। सुंदरियोंने शमीवृक्ष और पीपलकी छालोंका चूर्ण करके उसका लेप दोनों कन्याओंके हाथोंमें किया। वह कामदेव रूपी वृक्षका दोहद पूर्ण किया हो ऐसा लगता था। जब लग्नका ठीक समय हो गया तब सावधान प्रभुने दोनों बालाओंके लेपवाले हाथोंको अपने हाथसे पकड़ा। उस समय इंद्रने जलवाले थालेमें जैसे शालि-धान्यका बीज बोया जाता है वैसे, लेपवाले दोनोंके हस्तसंपुटमें एक मुद्रिका डाली। प्रभुके दोनों हाथ जब उन दोनों-के हाथोंसे मिले तब प्रभु ऐसे शोभने लगे जैसे दो शाखाओंमें लताओंके लिपटनेसे वृक्ष शोभता है। नदियोंका जल जैसे समुद्रसे मिलता है वैसे वधुओंकी आँखें वरकी आँखोंसे मिलीं। बिना वायुके पानीकी तरह वरवधुओंके नयन नयनोंसे और मन मनोंसे मिल गए। वे एक दूसरेकी तारिकाओंमें प्रतिबिंबित होने लगे। वे ऐसे मालूम होने लगे मानों आपसी प्रेमसे एक-दूसरेके दिलोंमें घुस गए हैं। (८२८–८४२)

उस समय विद्युत्प्रभादि गजदंत जैसे मेरुके पास रहते हैं वैसे सामानिक देव अनुचर की तरह भगवानके साथ रहे।

कन्याके साथ जो स्त्रियाँ थीं उनमेंकी चतुर परिहासरसिका (दिल्लगी-पसंद) स्त्रियाँ इस तरह परिहासके गीत गाने लगीं, "बुखारवाला आदमी समुद्रका सारा जल पी सकनेका विश्वास रखता है, वैसेही ये अनुवर सारे लड्डू खा जानेका विश्वास किस मनसे कर रहे हैं ? कुत्ता काँदे (प्याज़) पर अखंड दृष्टि रखता है वैसेही मंडोंपर लगी हुई इन अनुवरों की निगाहें कुत्तोंकी निगाहोंसे स्पर्द्धा कर रही हैं । इन अनुवरोंके दिल बड़े खानेको इस तरह ललचा रहे हैं जैसे रंक (गरीब) बालकका मन—जन्मसेही कभी बड़े नहीं मिलनेसे—ललचाया करता है । जैसे चातक मेघ-जलकी इच्छा करता है और याचक पैसेकी इच्छा करता है वैसे-ही अनुवरोंका मन सुपारीकी इच्छा कर रहा है । बछड़ा जैसे घास खानेकी लालसा रखता है वैसेही तांबूलपत्र(पान) खानेको ये अनुवर लालायित हो रहे हैं । मक्खनके गोलेको देखकर जैसे बिल्लीकी राल टपकती है, वैसेही चूर्ण खानेको इन अनुवरोंकी राल टपक रही है । कीचड़में जैसे भैंसे श्रद्धा रखते हैं, वैसेही ये अनुवर विलेपनमें किस मनसे श्रद्धा रख रहे हैं । उन्मत्त आदमी जैसे निर्माल्यपर प्रीति रखते हैं वैसेही पुष्पमालाओंपर इन अनुवरोंकी चपल आँखें लगी हुई हैं ।" (८५३-८६२)

ऐसे परिहासपूर्ण गाने सुननेके लिए कुतूहलसे देवता कान खड़े कर ऊँचा मुख किए हुए थे । वे सब चित्रलिखित-से मालूम होते थे । (८६३)

'लोगोंको यह व्यवहार दिखाना योग्य है ।' यह सोचकर वाद-विवादमें चुने हुए मध्यस्थ आदमीकी तरह प्रभु उसकी उपेक्षा कर रहे थे । (८६४)

फिर इंद्रने प्रभुके दुपट्टेके पल्लेके साथ दोनों देवियोंके दुपट्टोंके पल्ले इसतरह बाँध दिए जिस तरह जहाजके साथ नौकाएँ बाँधी जाती हैं। आभियोगिक देवोंकी तरह इंद्र खुद भक्तिसे प्रभुको गोदमें उठाकर, वेदीगृहमें लेजानेको चला, तब दो इंद्राणियोंने आकर तत्कालही दोनों देवियोंको गोदमें उठा लिया और हस्तमिलापको छुड़ाए बगैर स्वामीके साथही चलीं। तीनलोकके शिरोरत्नके समान वधू-वरने पूर्वद्वारसे वेदीवाले स्थानमें प्रवेश किया। किसी त्रायस्त्रिंश (पुरोहितका काम करनेवाले) देवताने, तत्कालही, मानों पृथ्वीमेंसे आग उठी हो ऐसे, वेदीमें आग प्रकट की। उसमें समिध डालनेसे धुआँ उठकर आकाशमें फैलने लगा, वह ऐसा मालूम होरहा था, मानों आकाशचारी मनुष्यों (विद्याधरों) की स्त्रियोंके अवतंसों (कर्णफूलों) की श्रेणी है। (८६५-८७०)

स्त्रियाँ मंगलगीत गा रही थीं। प्रभुने सुमंगला और सुनंदाके साथ अष्ट मंगल (आठ फेरे) पूरे हुए तबतक वेदीकी प्रदक्षिणा की। फिर असीसके गीत गाए जा रहे थे तब इंद्रने तीनोंके हाथोंको अलग किया और साथही उनके दुपट्टोंके पल्लोंकी गाँठ भी खोली। (८७१-८७२)

फिर, स्वामीके लग्नोत्सवसे आनंदित इंद्र, रंगाचार्य (सूत्रधार) की तरह आचरण करते हुए, इंद्राणियों सहित हस्ताभिनयकी लीलाएँ बता नाच करने लगा। पवनके द्वारा नचाए हुए वृक्षोंके साथ जैसे आश्रित लताएँ भी नाचने लगती हैं वैसेही इंद्रके साथ दूसरे देवता भी नाचने लगे। कई देवता चारणोंकी तरह जय-जयकार करने लगे; कई भारत-नाट्य पद्धतिके अनुसार

विचित्र प्रकारके नाच करने लगे; कई ऐसे गायन गाने लगे मानों उनकी जाति गंधर्वही है; कई अपने मुँहसे ऐसे शब्द करने लगे मानों उनके मुख बाजेही हों; कई बड़ी चपलतासे बंदरोंकी तरह कूदने लगे; कई वैहासिकों (विदूषकों) की तरह सबको हँसाने लगे और कई प्रतिहारों (छड़ीदारों) की तरह लोगोंको दूर हटाने लगे। इस तरह हर्षोन्मत्त होकर जिनके सामने भक्ति प्रकट की है ऐसे, और जो, दोनों तरफ बैठी हुईं सुमंगला और सुनंदासे शोभित हो रहे हैं ऐसे, श्री आदिनाथ प्रभु दिव्य वाहनमें सवार होकर अपने स्थानपर गए। (८७३-७६)

इस तरह विवाह-महोत्सव समाप्त कर इंद्र ऐसे अपने देवलोकको गया जैसे रंगाचार्य नाट्यगृहका काम पूरा कर अपने घर जाता है। तभीसे स्वामीने विवाहकी जो विधि बताई है वह लोगोंमें प्रचलित हुई। कारण-

"......परार्थाय महतां हि प्रवृत्तयः।"

[महान पुरुषोंकी प्रवृत्तियाँ दूसरोंकी भलाईके लिए ही होती हैं।] (८८०-८८१)

अब अनासक्त होते हुए भी प्रभु दोनों पत्नियोंके साथ दिन बिताने लगे। कारण, पहले सातावेदनीयकर्मका जो बंधन हुआ था वह भोगे बिना क्षय नहीं हो सकता था। विवाहके बाद प्रभुने छ:लाख पूर्वसे कुछ कम समय तक दोनों पत्नियोंके साथ सुख-भोग भोगे। (८८२-८८३)

उस समय बाहु और पीठके जीव सर्वार्थसिद्धि विमानसे च्यवकर सुमंगलाकी कुक्षिसे युग्मरूपमें उत्पन्न हुए; और सुबाहु

तथा महापीठ के जीव भी उसी सर्वार्थसिद्धि विमानसे च्यवकर सुनंदाके गर्भसे युगलिया रूपमें उत्पन्न हुए। मरुदेवीकी तरह गर्भके माहात्म्यको सूचित करनेवाले चौदह स्वप्न सुमंगलादेवीने भी देखे। देवीने इन स्वप्नोंकी बात प्रभुसे कही। प्रभुने कहा, "तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र पैदा होगा।" (८८४-८८७)

समय आनेपर जैसे पूर्व दिशा सूर्य और संध्याको जन्म देती है वैसेही सुमंगलाने अपनी कांतिसे दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले दो बालकोंको जन्म दिया। उनके नाम 'भरत' और 'ब्राह्मी' रखे गए। (८८८)

वर्षाऋतु जैसे मेघ और बिजलीको जन्म देती है वैसेही सुनंदाने सुंदर आकृतिवाले 'बाहुबलि' और 'सुंदरी' को जन्म दिया। (८८९)

फिर सुमंगलाने, विदूरपर्वतकी भूमि जैसे रत्नोंको उत्पन्न करती है वैसे उनचास युग्मपुत्रोंको (९८ लड़कोंको) जन्म दिया। महापराक्रमी और उत्साही वे बालक इस तरह खेलते-कूदते बढ़ने और पुष्ट होने लगे जैसे विंध्यपर्वतमें हाथियोंके बच्चे होते हैं। जैसे बहुतसी शाखाओंसे बड़ा वृक्ष शोभता है, वैसे अपने बालकोंसे घिरे हुए ऋषभस्वामी सुशोभित होने लगे। (८९०-८९१)

उस समय कालदोषसे कल्पवृक्षोंका प्रभाव इसी तरह कम होने लगा जैसे सवेरे दीपकोंका प्रकाश कम होता है। अश्वत्थ (पीपल) के पेड़में जैसे लाख (लाख) के कण उत्पन्न होते हैं, वैसेही युगलियोंमें धीरे धीरे क्रोधादि कषाएँ उत्पन्न होने लगीं।

और जैसे सर्प तीन तरहकी ताड़ना-विशेषकी परवाह नहीं करते वैसेही युगलिए हाकार, माकार और धिक्कारकी-तीन तरहकी-नीतिकी उपेक्षा करने लगे। तब (समझदार) युगलिए प्रभुके पास आए और उन्होंने (राज्यमें) जो असमंजस (अनुचित्त) घटनाएँ होती थीं वे कह सुनाईं। सुनकर तीन ज्ञान (मति, श्रुति और अवधि) के धारक और जातिस्मरणज्ञान-वाले प्रभुने कहा, "दुनियामें जो लोग मर्यादाका उल्लंघन करने-वाले होते हैं उनको दंड देनेवाला राजा होता है। राजाको पहले ऊँचे आसनपर बिठाकर अभिषेक किया जाता है। उसके पास अखंड अधिकार और चतुरंगिणी सेना (हाथी, घोड़े, रथ और प्यादोंकी सेना) होती है।" (८९३-८९८)

तब उन्होंने कहा, "हे स्वामी, आप हमारे राजा बनिए। आपको हमारी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। कारण, हममें आपके समान दूसरा कोई नहीं है।" (८९९)

प्रभुने कहा, "तुम उत्तम कुलकर नाभिके पास जाकर प्रार्थना करो। वे तुम्हें राजा देंगे। (९००)

तदनुसार उन्होंने कुलकराग्रणी नाभिसे जाकर प्रार्थना की। तब उन्होंने कहा, "ऋषभदेव तुम्हारा राजा बने।"(९०१)

युगलिए खुशी खुशी प्रभुके पास आए और कहने लगे, "नाभि कुलकरने तुम्हींको हमारा राजा बनाया है। (९०२)

उसके बाद वे युगलिए प्रभुका अभिषेक करनेको जल लेनेके लिए गए। उस समय स्वर्गपति-इंद्रका सिंहासन काँपा। उसने अवधिज्ञानसे प्रभुके राज्याभिषेकका समय जाना और वह जैसे

आदमी एक घरसे दूसरे घरमें जाता है वैसे क्षणभरमें–अयोध्यामें–आया। (९०३–९०४)

फिर सौधर्म कल्पके उस इंद्रने स्वर्णकी वेदिका (चबूतरा) बनाकर, अतिपांडुकवला शिलाकी[1] तरह, उसपर एक सिंहासन बनाया। और पूर्व दिशाके अधिपतियोंने स्वस्तिवाचक (पुरोहित) की तरह, देवताओंके द्वारा लाए हुए तीर्थजल द्वारा प्रभुका अभिषेक किया। फिर इंद्रने प्रभुको दिव्य वस्त्र धारण कराए। वे निर्मलतासे चंद्रके सुन्दर तेजमय मालूम होते थे; और तीनलोकके स्वामीके अंगको, मुकुट आदि रत्नालंकार यथास्थान धारण कराए। इसी समय युगलिए कमलिनीके पत्तोंमें जल लेकर आए। वे प्रभुको भूषित देखकर इस तरह सामने खड़े हो रहे मानों वे उनको अर्घ्य दे रहे हैं। उन्होंने,यह सोचकर कि दिव्य वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित प्रभुके मस्तकपर जल डालना योग्य नहीं है, कमलिनीके पत्तोंके दोनोंमें भरा हुआ जल प्रभुके चरणोंमें चढ़ाया। इससे इंद्रने समझा कि ये लोग काफी विनीत हो गए हैं इसलिए इन लोगोंके रहनेके लिए विनीता नामकी नगरी बसानेकी कुबेरको आज्ञा दी; फिर वह अपने देवलोकको चला गया। (९०५–९११)

कुबेरने बारह योजन लंबी और नौ योजन चौड़ी विनीता नामक नगरी बसाई। उसका दूसरा नाम 'अयोध्या' रखा। यक्षपति कुबेरने उस नगरीको अक्षय वस्त्रों, अलंकारों और धन-

१—तीर्थंकर भगवान का जन्माभिषेक करनेकी, मेरुपर्वतपरकी शिला।

धान्यसे परिपूर्ण किया। उस नगरीमें हीरों, इंद्रनीलमणियों और वैडूर्यमणियोंसे बनी हुई बड़ी बड़ी हवेलियाँ, अपनी कर्बुर (स्वर्ण) किरणें आकाशमें, दीवारके न होनेपर भी विचित्र चित्रकी क्रियाएँ रचती थीं, और मेरुपर्वतके शिखरके समान ऊँची स्वर्णकी हवेलियाँ ध्वजाके बहाने चारों तरफ पत्रालंबनकी लीलाका विस्तार करती थीं। वे उनके चारों तरफ पत्ते फैले हुए हों ऐसी मालूम होती थीं यानी हवेलियाँ वृक्षसी और ध्वजाएँ फैले हुए पत्तोंसी जान पड़ती थीं। उस नगरीके किलेपर माणिक्यके कंगूरोंकी श्रेणियाँ थीं; विद्याधरोंकी सुंदरियोंके लिए बिना प्रयत्न केही दर्पणका काम देती थीं। उस नगरीके घरोंके आँगनोंमें मोतियोंके साथिए पूरे हुए थे, इसलिए लड़कियाँ उन मोतियोंसे कर्करिक क्रीड़ा (कंकरोंसे-चपेटा खेलनेका खेल) करती थीं। उस नगरीके बागोंके अंदरके ऊँचे ऊँचे वृक्षोंसे रात-दिन टकराते हुए खेचरियोंके विमान कुछ देरके लिए पक्षियोंके घोंसलोंका दृश्य दिखाते थे। अटारियोंमें और हवेलियोंमें पड़े हुए रत्नोंके ढेरों-को देखकर, वैसे शिखरोंवाले रोहणाचलकी शंका होती थी। गृहवापिकाएँ, जलक्रीड़ाएँ करती हुई सुंदरियोंके मोतियोंके हारोंके टूटनेसे, ताम्रपरणी सरिताकी शोभाको धारण करती थीं। वहांके व्यापारी इतने धनवान थे कि किसी व्यापारीके लड़केको देखकर यह मालूम होता था कि धनद (कुबेर) खुद यहाँ व्यापार करने आया है। रातके समय चंद्रकांतमणियोंकी दीवारोंसे झरते हुए जलसे वहाँकी रज स्थिर हो जाती थी। अयोध्या नगरी अमृतके समान जलवाले लाखों कुँओं, बावड़ियों और सरोवरोंसे नवीन अमृतके कुंडवाले नाग-लोकोंके समान शोभती थी। (६१२-६२३)

जब प्रभु बीसलाख पूर्वकी आयुके हुए, तब वे प्रजाको पालनेके लिए राजा बने। मंत्रोंमें जैसे ऊँकार, वैसेही राजाओंमें प्रथम राजा ऐसे ऋषभ प्रभु अपनी संतानकी तरह प्रजाका पालन करने लगे। उन्होंने असत्पुरुषोंको सजा देनेके लिए और सत्पुरुषोंका पालन करनेके लिए उद्यम करनेवाले मंत्री नियुक्त किए। वे प्रभुके अंगसे मालूम होते थे। इंद्रके लोकपालोंकी तरह, महाराज ऋषभदेवने अपने राज्यमें चोरी वगैरासे रक्षा करनेमें चतुर चौकीदार नियत किए। राजशक्तिके समान प्रभुने राज्यकी स्थितिके लिए, शरीरके विषयमें उत्तमांग सिरकी तरह, सेनाके उत्कृष्ट अंगस्वरूप हाथी रखे। सूर्यके घोड़ोंसे स्पर्द्धा करनेवाले, ऊँची ग्रीवावाले, उच्च जातिके घोड़ोंकी प्रभुने घुड़साल बनवाई। नाभिनंदनने अच्छी लकड़ीके सुश्लिष्ट (अच्छी तरह जुड़े हुए) सुंदर रथ बनवाए। चक्रवर्तीके भवमें एकत्र करते हैं वैसे, जिनकी शक्तिकी अच्छी तरह परीक्षा हो चुकी है ऐसी पैदल सेना भी नाभिपुत्रने जमा की। प्रभुने जो सेनापति नियत किए वे नवीन साम्राज्यके स्तंभसे मालूम होते थे; और गायें, भैंसें, बैल, खच्चर, ऊँट वगैरा पशु भी, उनका उपयोग जाननेवाले प्रभुने एकत्र किए। (९२९-९३३)

उस समय पुत्रविहीन वंशकी तरह, कल्पवृक्ष नष्ट हो गए थे, इसलिए लोग कंद-मूल फलादि खाते थे। वैसेही शालि (चावल), गेहूँ, चने और मूँग आदि अनाज भी अपने आपही घासकी तरह उगने लगा था। उसे वे युगलिए कच्चाही खाते थे। वह कच्चा उनको हजम नहीं हुआ इसलिए उन्होंने प्रभु तक यह बात पहुँचाई। प्रभुने बताया, "इसको मसलकर, उसके छिलके

निकाल डालो और फिर खाओ।" पालक प्रभुकी यह बात सुनकर वे उसके अनुसार अनाज खाने लगे। मगर कठिन होनेसे वैसा अनाज भी उनको नहीं पचने लगा। तब वे फिरसे प्रभुके पास गए। तब प्रभुने कहा, "पहले अनाजको हाथोंसे मलो, उसे पानीमें भिगोदो और फिर पत्तोंके दोनोंमें लेकर खाओ।" उन्होंने ऐसाही किया, तोभी उनका अजीर्ण नहीं मिटा। इसलिए वे पुनः प्रभुके पास गए। तब प्रभुने कहा, "ऊपर बताई हुई विधि करनेके बाद अनाजको मुट्ठीमें या बगलमें गरमी लगे इस तरह थोड़ी देर बराबर रखो, और फिर खाओ, इससे तुमको आराम मिलेगा।" ऐसा करनेपर भी उनका अजीर्ण नहीं मिटा और लोग कमजोर हो गए। इसी अरसेमें एक दिन वृक्षोंकी शाखाओंके आपसमें घिसनेसे आग पैदा हुई। (६३४–६४१)

वह आग घास और लकड़ियोंको जलाने लगी। लोगोंने उस जलती हुई आगको रत्नराशि समझा और रत्न लेनेके लिए उन्होंने हाथ लंबे किए। इससे उनके हाथ जलने लगे। तब वे प्रभुके पास जाकर कहने लगे, "वनमें कोई अद्भुत भूत पैदा हुआ है।" प्रभुने कहा, "स्निग्ध और रूक्ष कालके मिलनेसे यह आग पैदा हुई है। एकांत रूक्ष कालमें या एकांत स्निग्ध कालमें आग कभी पैदा नहीं होती। तुम उसके पास जाओ और उसके पास जो घास-फूस हो उसको हटा दो। फिर उस आगको लो और पहले बताई हुई विधिके अनुसार तैयार किए हुए अनाजको उसमें पकाओ और पक जाने पर निकालके खाओ।"

(६४२–६४६)

उन भोले लोगोंने अनाज आगमें डाला। वह सारा जल गया, तब उन्होंने आकर प्रभुसे कहा, "हे स्वामी! यह आग तो कोई भुक्कड़सी लगती है। हमने जितना अनाज उसमें डाला सभीको वह खागई। उसने थोड़ासा भी वापस नहीं किया।" उस समय प्रभु हाथीपर सवार थे, इससे उन्होंने वहीं भीगीहुई मिट्टीका पिंड मँगवाया और उसको हाथीके मस्तकपर रखकर, हाथसे उसको फैलाकर, वैसे हाथीके मस्तकके आकारका एक बरतन बनाया। इसतरह शिल्पोंमें प्रथम कुंभकारका शिल्प प्रभुने प्रकट किया। फिर स्वामीने उनसे कहा, "इस तरहके दूसरे बहुतसे बरतन बनाओ। (उनको आगमें रखकर मिट्टीको सुखाओ) फिर उन बरतनोंमें (भीगा हुआ) अनाज रखकर पकाओ। अनाजके पकनेपर बरतन आगपरसे उतार लो और फिर अनाज खाओ।" उन्होंने प्रभुकी आज्ञाके अनुसार काम किया। तभीसे कुम्हार पहले कारीगर हुए। उसके बाद प्रभुने (घर बनानेकी कला सिखाकर) वर्द्धकी यानी मकान बनानेवाले राज बनाए। कहा है—

"विश्वस्य सुखसृष्टयै हि महापुरुषसृष्टयः।"

[महापुरुष जो कुछ बनाते हैं वह दुनियाके लाभके लिएही होता है।] घरोंमें तस्वीरें बनाने और लोगोंके अनोखे खेलके लिए प्रभुने चित्रकला सिखाकर अनेक लोगोंको चित्रकार बनाया। लोगोंके लिए वस्त्र बुननेको (बुनाईका काम सिखाकर) जुलाहे बनाए। कारण, उस समय सभी कल्पवृक्षोंके स्थानपर प्रभु एकही कल्पवृक्ष रहे थे। लोगोंको, नाखूनों और केशोंके बढ़नेसे तकलीफ उठाते देखकर प्रभुने नापित बनाए।

उन पाँच शिल्पोंके (कुम्हारके, चित्रकारके, राजके, जुलाहेके और नापितके)–प्रत्येकके बीस बीस भेद हुए। इससे वे शिल्प सरिताके प्रवाहकी तरह सौ तरह फैले। यानी शिल्प सौ तरहके हुए। लोगोंकी जीविकाके लिए प्रभुने, घसियारेका, लकड़ी बेचनेवालेका,खेतीका और व्यापारका काम भी लोगोंको बताया। और साम, दाम, दंड व भेदकी नीति चलाई। यह चार तरहकी नीति मानों जगतकी व्यवस्थारूपी नगरीके चतुष्पथ (चार मार्ग) थे। (६४७–६५६)

ज्येष्ठ पुत्रको ब्रह्म (मूल मंत्र) कहना चाहिए, इस न्याय-सेही हो वैसे प्रभुने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरतको बहत्तर कलाएँ सिखाईं। भरतने भी वे कलाएँ अपने भाइयोंको और पुत्रोंको अच्छी तरहसे सिखलाईं। कारण,—

"सम्यगध्यापयत्पात्रे विद्या हि शतशाखिका।"

[पात्रको–योग्य मनुष्यको सिखाई हुई विद्या सौ शाखा-ओंवाली होती है।] प्रभुने बाहुबलीको हाथियों, घोड़ों, स्त्रियों और पुरुषोंके अनेक भेदोंवाले लक्षणोंका ज्ञान दिया; ब्राह्मीको दाहिने हाथसे अठारह लिपियाँ सिखाईं और सुन्दरीको बाएँ हाथसे गणित विद्या बताई। वस्तुओंका मान (माप) उन्मान (तोला, माशा आदि वजन) अवमान (गज, फुट, इंच आदि माप) प्रतिमान (पाव, सेर, ढाई सेर आदि वजन) बताए और मणि इत्यादि पिरोनेकी कला भी सिखलाई। (६६०–६६४)

वादी और प्रतिवादीका व्यवहार राजा अध्यक्ष और कुल-गुरुकी साक्षीसे होने लगा। हस्ति आदिकी पूजा धनुर्वेद (तीर-

कुसंगका भाव) वैद्यकीकी उपासना, संग्राम, अर्थशास्त्र, बंध, घात और वध (मारना-पीटना, कैद व फाँसीकी सजा) तथैव सभा वगैरा उसी समयसे आरंभ हुए। यह माता है, ये पिता हैं, यह भाई है, यह स्त्री है, यह पुत्र है, यह घर है, यह धन है, ये मेरे हैं; ऐसी ममता भी उसी समयसे लोगोंमें आरंभ हुई। लोगोंने व्याहके समय अलंकारोंसे अलंकृत और वस्त्रोंसे प्रसाधित (सजे हुए) प्रभुको देखा था, इसलिए उन्होंने भी अपने आपको आभूषणों और वस्त्रोंसे सजाना आरंभ किया। प्रभु-को पाणिग्रहण करते देखा था, इसलिए लोगभी अबतक उसी तरह पाणिग्रहण (व्याह) विधि करते आ रहे हैं। कारण,—

"......ध्रुवो ह्यध्वा महत्कृतः।"

[महान पुरुषोंका बनाया हुआ मार्ग (विधि-विधान) स्थिर होता है।] (८८२-८८६)

प्रभुके विवाहसे, दत्तकन्या यानी दूसरोंके द्वारा दी हुई कन्याके साथ विवाह करना शुरू हुआ। चूड़ाकर्म (बालकको सबसे प्रथम मुंडन कराकर चोटी रखनेका कार्य) उपनयन (यज्ञो-पवीत) और क्ष्वेडा (पुकारना) की पृच्छा (पूछ) भी तभीसे आरंभ हुई। ये सारे काम यद्यपि सावद्य (हिंसाका दोष आता हो ऐसे) हैं, तोभी प्रभुने संसारी लोगोंकी भलाईके लिए इनको चलाया। उनकी आज्ञायें अबतक दुनियामें बराबर चल रही हैं। अर्वाचीन बुद्धिके विद्वानोंने उनके शास्त्र बनाए हैं। स्वामी-के उपदेशसे सभी लोग चतुर हुए। कारण,—

"अंतरूपोपदेष्टारं पश्यंति मन्दा अपि।"

[उपदेशक अगर न हो तो मनुष्य भी पशुओंके समान आचरण करते हैं।] (६७०-६७३)

विश्वकी स्थिति रूपी नाटकके सूत्रधार प्रभुने उग्र, भोग, राजन्य, और क्षत्रिय नामक चार कुल स्थापित किए। १-उग्र-दंडके अधिकारी लोगोंका (यानी सिपाहीगिरी करने वालोंका और चोर, लुटेरे आदि प्रजाको सतानेवाले लोगोंको सजादेने-वालोंका)जो समूह था उस समूहके लोगोंका कुल उग्रकुलवाला कहलाया। २-इंद्रके जैसे त्रायस्त्रिंश देवता हैं वैसे प्रभुके मंत्रीका काम करनेवाले लोगोंका कुल भोगकुलवाला कहलाया। ३—प्रभुके समान आयुवाले जो प्रभुके साथही रहते थे और मित्र थे -लोगोंका कुल राजन्य कुल कहलाया। ४—बाकी जो मनुष्य थे उन सबका कुल क्षत्रिय कुल कहलाया। (६७४-७६)

इस तरह प्रभु नवीन व्यवहारनीतिकी नवीन रचना करके, नवोढ़ा स्त्रीकी तरह नवीन राज्यलक्ष्मीका उपभोग करने लगे। वैद्य जैसे रोगकी चिकित्सा करके योग्य दवा देता है वैसेही अप-राध करनेवाले लोगोंको, उनके अपराधोंके अनुसार, दंड देनेका विधान किया। दंडसे डरे हुए (साधारण) लोग चोरी वगैरा अपराध नहीं करते हैं। कारण—

"एकैव दंडनीतिर्हि सर्वान्यायाहि जांगुली।"

[दंडनीति सभी अन्याय रूपी साँपोंको वशमें जांगुली (विष विद्या) के समान है।] जैसे सुशिक्षित लोग प्रभुकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करते थे वैसेही कोई किसीके घर,खेत और उद्यान

वगैराकी मर्यादाको नहीं तोड़ता था। वारिश भी अपनी गर्जनाके बहाने मानों प्रभुके न्यायधर्मकी तारीफ करती थी और समयपर, धानके खेतोंको जल देनेके लिए बरसती थी। (लहलहाते) धान्यके खेतोंसे, गन्नोंके बागोंसे और गोकुलोंसे (गउओं आदि पशुओंकी आवाजोंसे) गूँजते हुए शहर और गाँव अपनी ऋद्धिसे शोभते थे और वे स्वामीकी ऋद्धिको सूचित करते थे। प्रभुने सभी लोगोंको त्याज्य (छोड़ने लायक) और ग्राह्य (लेने लायक) वस्तुओंका विवेक-ज्ञान कराया, इससे यह भरतक्षेत्र प्रायः विदेहक्षेत्रके अनुसार हो गया। इस तरह नाभिराजाके पुत्र (ऋषभदेव)ने राज्याभिषेकके बाद तिरसठ लाख पूर्व तक पृथ्वीका पालन किया। (९७७-९८१)

एक बार कामदेवका निवासस्थान वसंत ऋतु आया। परिवारके लोगोंके अनुरोधसे-विनतीसे प्रभु बागमें गए। वहाँ देहधारी वसंतऋतु हो ऐसे फूलोंके गहनोंसे सजे हुए प्रभु फूलोंके घरमें बैठे। उस समय फूलों और माकंद (आम) के मकरंद (फूलोंकी शहद) से उन्मत्त बनेहुए भँवरे गूँज रहे थे। इससे मालूम होता था कि वसंतलक्ष्मी प्रभुका स्वागत कर रही है। पंचमस्वरमें गानेवाली कोयलोंने मानों पूर्वरंगका (नाटक आरंभ होनेके पहले मंगलाचरणका) आरंभ किया है, यह समझकर मलयाचलके पवनने नट बनकर लतारूपी नृत्य बताना आरंभ किया। मृगलोचनाएँ अपने कामुक पुरुषोंकी तरह, कुरबक (आक) अशोक और बकुलके पेड़ोंको आलिंगन करती थीं, उनपर लातें मारती थीं और अपने मुखका आसव पिलाती थीं। तिलक वृक्ष (वसंतमें फूलनेवाला एक पेड़) अपनी प्रबल

सुगंधसे भौंरोंको खुश करके जवानोंके ललाटकी तरह बागको सुशोभित कर रहा था। लवली लता (पीले फूलोंवाली एक लता) अपने फूलोंके गुच्छोंके भारसे इस तरह झुकी हुई थी जिस तरह पतली कमरवाली स्त्री पुष्ट स्तनोंके भारसे झुक जाती है। चतुर कामी पुरुष जैसे मंद-मंद आलिंगन करता है वैसे मलयपवन आम्रलताओंका धीरे धीरे आलिंगन करने लगा। लकड़ीवाले पुरुषकी तरह कामदेव जंबू, कदंब, आम और चंपक वृक्षरूपी लकड़ियोंसे मुसाफिरोंको मारनेमें समर्थ होने लगा। नवीन पाटल-पुष्पोंके संपर्कसे (मेलसे) सुगंधित बनाहुआ मलयाचल पवन वैसेही सुगंधित जलकी तरह सबको आनंदित करता था। मकरंदके रससे भराहुआ महुएका पेड़, भौंरोंकी गुंजारसे ऐसे गूंज रहा था जैसे मधुपात्र भौंरोंकी गुंजारसे गूंजता है। गोलिका और धनुपका अभ्यास करनेके लिए कामदेवने, ऐसा मालूम होता था मानों कदंबके पुष्पके वहाने गोलिका बनाई है। जिसको इष्टापूर्ति (परोपकारके लिए कूआ, वावड़ी खुदवाना और प्याऊ विठाना) पसंद है ऐसे वसंत ऋतुने, वासंतीलताको भौंरे रूपी मुसाफिरके लिए, मकरंदरसकी एक प्याऊसी बना रखी थी। जिनके पुष्पोंके आमोदकी समृद्धि (प्रभाव) बहुत मुशकिलसे हटाई जासके ऐसे सिंदुवारके वृक्ष मुसाफिरोंकी नासिकाओंमें सुगंध पहुँचाकर उनको, विपकी तरह मुग्ध बनाते थे। वसंतरूपी उद्यानपालके नियत किए हुए (सिपाहियोंकी तरह) चंपक-वृक्षोंमें बैठे भौंरे निःशंक होकर घूमते थे। यौवन जैसे स्त्री और पुरुष दोनोंको सुशोभित करता है वैसेही वसंत-ऋतुभी अच्छे-बुरे सभी तरहके वृक्षों और

लताओंको सुशोभित करता था। मृगलोचनाएँ (हिरनोंके समान आँखोंवाली स्त्रियाँ) फूल चुनने लग रही थीं; मानो वे बड़े पर्वमें वसंतको अर्घ देनेकी तैयारी कर रही हैं। फूल चुनते हुए उन स्त्रियोंकी ऐसी कल्पना भी हुई होगी कि हमारे होते हुए कामदेवको दूसरे फूलोंके धनुषकी क्या जरूरत है? वासंती-लताके फूल चुन लिए गए थे और उनपर भौंरे गूंज रहे थे; ऐसा मालूम होता था कि अपने फूलोंके वियोगमें, भौंरोंकी गुंजारके बहाने, वह रो रही है। कोई स्त्री मल्लिकाके फूल चुन-कर जाना चाहती थी, परंतु उसकी साड़ीका पल्ला बेलमें अटक गया और वह खड़ी रह गई। इससे मालूम होता था, मानो मल्लिका पल्ला पकड़कर रोक रही है कि तू कहीं दूसरी जगह न जा। एक स्त्री चमेलीके फूल चुनना चाहती थी; मगर वहाँ बैठे हुए भौंरेने उसके होठोंपर डंक मारा, मानो वह अपना आश्रय भंग करनेवाली पर नाराज हुआ है। कोई स्त्री अपनी भुजालता ऊँचा कर, उसकी भुजाके मूलभागको देखने-वाले पुरुषोंके मनको भी फूलोंके साथ चुन रही थी। नवीन फूलोंके गुच्छोंको हाथोंमें रखनेसे फूल चुननेवाली स्त्रियाँ मानो जंगम (चलती फिरती) लताएँ हों ऐसी मालूम होती थीं। वृक्षोंकी शाखाओंमें फूल चुनने वाली स्त्रियाँ कौतुकसे झूलने लगी थीं, इससे वृक्ष मानो स्त्रीरूपी फलवाले मालूम होते थे। किसी पुरुषने खुदही मल्लिकाकी कलियाँ चुनकर अपनी प्रिया-के लिए उनसे, मोतियोंकी मालासी माला और दूसरे आभूषण बनाए थे। किसीने कामदेवके भाथेके समान अपनी प्यारीके केशपाशको खिले हुए फूलोंसे भरा था। कोई, पाँच रंगके फूलों-

से इंद्रधनुषके समान फूलमाला, अपने हाथोंसे गूथता था और अपनी प्रियाको पहनाकर प्रसन्न करता था; और कोई पुरुष अपनी प्रियाके द्वारा खेल-खेलमें फेंकी गई, फूलोंकी गेंदको उठाकर सेवककी तरह अपनी प्रियाको देता था। कई मृगलोचनाएँ झूलेपर झूलती हुई, सामने वाली डालीपर ऐसे पैर लगाती थीं जैसे अपने अपराधी पतिको कोई पादप्रहार करती हो—लात लगाती हो। कोई नवोढ़ा—नवविवाहित युवती, सखियोंके द्वारा पतिका नाम पूछा जानेपर लज्जासे मुद्रित मुखको झुका लेती थी और सखियोंके पादप्रहारको सहती थी। कोई पुरुष झूलेपर अपने सामने बैठी हुई डरपोक प्रियाको गाढ़ आलिंगन देनेके इरादेसे झूलेको जोरसे चलाता था और कई रसिक युवक बागके वृक्षोंकी डालोंमें बाँधे हुए झूलोंकी लंबी लंबी पेंगे लगाते थे। और वे झूलोंके वृक्षोंके पत्तोंमें जाने आनेसे बंदरके समान मालूम होते थे। (६८५-१०१६)

इस तरह नगरके लोगोंको लीला करते हुए देखकर प्रभुके मनमें विचार आया कि क्या दूसरी जगह भी इस तरहके खेल होते होंगे ? विचारते विचारते अवधिज्ञानसे पूर्वजन्मोंमें भोगे हुए अनुत्तर विमान तकके सभी स्वर्ग-सुख याद आए। पुनः विचारते हुए उनके मोहबंधन टूट गए और वे सोचने लगे— "इन विषयोंसे आक्रांत लोगोंको धिक्कार है ! ये आत्मसुखको जरासा भी नहीं जानते। अहो ! इस संसाररूपी कुएमें 'अरघट्ट घट्टि यंत्र' के न्यायसे (यानी जैसे रहँटकी माला कुएमें जाती है और वापस ऊपर आती है वैसे)जीव अपने कर्मासे गमना-

गमनकी क्रिया करते हैं। मोहसे अंध बने हुए प्राणियोंके जन्म-को धिक्कार है। कारण, उनका जन्म उसी तरह व्यर्थ बीत-जाता है जिस तरह सोते हुए आदमीकी रात व्यर्थ बीत जाती है। कहा है,—

"एते रागद्वेषमोहा उद्यंतमपि देहिनाम् ।
मूलाद्धर्मं निकृंतंति मूषका इव पादपम् ॥

[राग, द्वेष और मोह उद्योगी प्राणियोंके धर्मको भी इस तरह जड़मूलसे छेद डालते हैं जिस तरह चूहा वृक्षको छेद डालता है।] मोहमें फँसे हुए लोग बड़के पेड़की तरह क्रोधको बढ़ाते हैं। वह क्रोध अपने बढ़ानेवालोंकोही जड़से खाजाता है। मानपर चढ़े हुए मनुष्य हाथीपर चढ़े हुए आदमियोंकी तरह, किसीकी परवाह नहीं करते और मर्यादाका उल्लंघन करते हैं। दुराशय प्राणी कौंच बीजकी फलीकी तरह उत्पात करनेवाली मायाको नहीं छोड़ते। तुषोदक (चावल या जौकी काँजी) से जैसे दूध बिगड़ता है, और काजलसे जैसे उजले कपड़े मैले होते हैं वैसेही लोभसे प्राणी अपने उत्तम गुणोंको मलिन करता है। जबतक इस संसाररूपी जेलखानेके ये चार-कषायरूपी चौकीदार जागते हुए चौकी करते रहते हैं तबतक पुरुषोंको मोक्ष कैसे मिल सकता है? अहो! भूत लगा हो ऐसे अंगनाओं-के आलिंगनमें बँधे हुए प्राणी अपने क्षीण होते हुए आत्माको कैसे पहचान सकते हैं? दवाओंसे जैसे सिंहको तंदुरुस्त बनाया जाता है वैसे मनुष्य तरह तरहकी भोजन-सामग्रियोंसे, अपने आपही अपनी आत्माको उन्मादी बनाते हैं। (जैसे शेरको नीरोग बनानेसे वह नीरोग बनानेवालेही पर आक्रमण करता

है वैसेही आहारादि द्वारा पैदा किया हुआ इंद्रियोंका उन्माद आत्माके लिए भवभ्रमणका कारण होता है।) यह सुगंधित है या वह ? मैं किसे ग्रहण करूँ ? इस तरह विचार करता हुआ प्राणी लंपट और मूढ़ बनकर भौंरेकी तरह भ्रमता फिरता है। उसे कभी सुख नहीं मिलता। जैसे लोग खिलौनोंसे बालकोंको बहलाते हैं वैसेही सुंदर मालूम होनेवाली चीजोंसे लोग अपने आत्माहीको धोखा देते हैं। जैसे निद्रामें पड़ा हुआ पुरुष शास्त्र-चिंतनसे वंचित होता है वैसेही वेणु (बंसी) और वीणाके नाद-स्वरमें कान लगाकर प्राणी अपने स्वार्थसे (आत्मस्वार्थसे) भ्रष्ट होता है। एक साथ प्रबल बने हुए त्रिदोष--वात, पित्त और कफ--की तरह उन्मत्त बने हुए विषयोंसे प्राणी अपनी चेतनाको खो देता है; इसलिए उसे धिक्कार है!" (१०१७-१०३३)

इस तरह जब प्रभुका मन संसारसे उदास होनेके विचार-तंतुओंसे व्याप्त हो रहा था उसी समय सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दितोय, तुषिताश्व, अव्याबाध, मरुत और रिष्ट-ये नौ तरहके, ब्रह्म नामके पाँचवें देवलोकके अंतमें बसनेवाले, लौकां-तिक देवता प्रभुके चरणोंके पास आए और दूसरे मुकुटके समान, मस्तकपर पद्मकोश (कमलके संपुट) के जैसी अंजलि बना (दोनों हाथोंको जोड़) उन्होंने प्रभुसे निवेदन किया, "इंद्रके मुकुटको कांतिरूपी जलमें जिनके चरण मग्न हो रहे हैं ऐसे और भरतक्षेत्रमें नाश हुए मोक्षमार्गको बतानेमें दीपकके समान ऐसे; हे प्रभु ! जैसे आपने लोकव्यवहार प्रचलित किया है वैसे-ही अब आप अपने कृत्यको--कर्तव्यको याद कर धर्मतीर्थ प्रच-लित कीजिए।" इस तरह विनती कर देवता ब्रह्मलोकमें अपने

अपने स्थानों को गए और दीक्षाकी इच्छावाले प्रभु भी तत्काल-ही नंदनोद्यानसे अपने राजमहलमें गए। (१०३४-१०४०)

आचार्य श्रीहेमचंद्रसूरिके बनाए हुए त्रिषष्टि-
शलाका पुरुषचरित्र महाकाव्यके प्रथम
पर्वमें भगवानका जन्म, व्यवहार
और राज्यस्थिति
बतानेवाला

दूसरा सर्ग समाप्त हुआ।

卐

सर्ग तीसरा

दीक्षा

अब प्रभुने, तत्कालही सामंत आदि सरदारोंको और भरत, बाहुबली वगैरा पुत्रोंको बुलाया व भरतसे कहा, "हे पुत्र ! यह राज्य तुम सँभालो; हम अब संयमरूपी साम्राज्य ग्रहण करेंगे।"

स्वामीके वचन सुनकर भरत थोड़ी देर सर झुकाए चुपचाप खड़ा रहा, फिर हाथ जोड़ गद्गद स्वरमें बोला, "हे स्वामी ! आपके चरण-कमलोंमें लोटनेसे जैसा सुख मिलता है वैसा सुख सिंहासन पर बैठनेसे नहीं मिलेगा। आपके चरण-कमलोंकी छायामें मुझे जिस आनंदका अनुभव होता है, उस आनंदका अनुभव मुझे छत्रकी छायामें नहीं होगा। यदि मुझे आपका वियोग सहना पड़े तो साम्राज्यलक्ष्मीसे क्या लाभ ? आपकी सेवाके सुखरूपी क्षीरसागरमें राज्यका सुख एक बूँदके समान है।"

(१-७)

स्वामीने कहा, "हमने राज्य छोड़ दिया है। अगर पृथ्वीपर राजा न होगा तो 'मत्स्यगलागलन्याय'[1] की सब जगह प्रवृत्ति होगी। इसलिए हे पुत्र ! तुम अच्छी तरह इस पृथ्वीका

१—पानीमें बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियोंको खा जाती हैं; इसी तरह यदि राजा नहीं होता है तो जोरावर गरीबोंको चूसते और सताते हैं। इसी प्रवृत्तिको 'मत्स्यगलागल' कहते हैं।

पालन करो। तुम हमारी आज्ञा पालनेवाले हो; और हमारी यही आज्ञा है।"

प्रभुकी आज्ञाको उलंघन करनेमें असमर्थ भरतने राज्य अंगीकार किया। कहा है—

"......गुरुष्वेषैव विनयस्थितिः।

[गुरुजनोंके लिए इसी तरहकी विनयस्थिति है—यानी बड़ोंकी आज्ञा पालनाही छोटोंका कर्तव्य है।] (८-१०)

तब नम्र भरतने, सर झुकाकर उन्नतवंशकी तरह पिताके सिंहासनको अलंकृत किया। (भरत सिंहासनपर बैठा।) प्रभुके आदेशसे अमात्यों (वजीरों), सामंतों और सेनापति वगैरहने भरतका उसी तरहका राज्यारोहण (गद्दीनशीनी) उत्सव किया जिस तरहका उत्सव ऋषभदेव भगवानके राज्यारोहणके समय इंद्रादि देवोंने किया था। उस समय प्रभुके शासनकी तरह भरतके मस्तकपर पूर्णिमाके चाँदसा अखंड छत्र सुशोभित होने लगा। उनके दोनों तरफ ढुलते हुए चमर चमकने लगे, वे भरतक्षेत्रके अर्द्धद्वयसे[1] आनेवाली लक्ष्मीके दो दूतोंसे मालूम होते थे। भरत वस्त्रों और मोतियोंके आभूषणोंसे ऐसे सुशोभित होने लगे, मानों वे उनके अति उज्ज्वल गुण हों। महामहिमाके योग्य उन नवीन राजाको, नवीन चंद्रमाकी तरह राजमंडलने अपने कल्याणकी इच्छासे, प्रणाम किया। (११-१६)

प्रभुने बाहुबली वगैरा पुत्रोंको भी उनकी योग्यताके अनुसार देश बाँट दिए। उसके बाद प्रभुने कल्पवृक्षकी तरह, लोगों-

१—भरतक्षेत्रके उत्तरार्द्ध और दक्षिणार्द्ध, ऐसे दो भाग।

को उनकी इच्छानुसार, वार्षिक दान देना आरंभ किया। नगरके चौराहों और दरवाजोंपर ऐसी डोंडी पिटवा दी गई कि जिसको जो कुछ चाहिए वह प्रभुके पास आकर ले जाए। स्वामीने दान देना शुरू किया, तब कुबेरने जृंभक देवताओंको आज्ञा दी कि वे प्रभुके पास धन पहुँचावें। जृंभक देव इस तरहका धन—रत्न, जवाहरात, सोना, चाँदी वगैरा लाकर प्रभुके खजानेमें रखते थे कि जो चिरकालसे नष्ट हो गया था, खो गया था, मर्यादाको उल्लंघन करनेवाला था (यानी-लोगोंने जिसे अन्यायसे प्राप्त किया था), जो मसानोंमें, पहाड़ियोंमें, बगीचोंमें या घरोंमें—जमीनमें गाड़कर—छिपाकर रखा गया था और जिसका कोई मालिक नहीं था। देवता इस तरह प्रभुके खजानेको भर रहे थे जिस तरह बारिशका पानी कुओंको भरता है। प्रभु सूर्योदयसे दान देना शुरू करते थे सो भोजनके समय तक देते थे। हर रोज एककरोड़ आठलाख स्वर्णमुद्राकी कीमत जितना दान देते थे। इस तरह एक बरसमें प्रभुने, तीनसौअठासीकरोड़ और अस्सीलाख स्वर्ण-मुद्राकी कीमत जितना धन दानमें दिया। प्रभु दीक्षा लेनेवाले हैं यह जानकर लोगोंके मनोंमें भी वैराग्य-भावना जागी थी, इसलिए वे बहुत कम दान लेते थे। यद्यपि प्रभु इच्छानुसार दान देते थे तथापि लोग अधिक नहीं लेते थे। (१७–२४)

वार्षिक दान पूरा हुआ तब इंद्रका आसन काँपा। वह दूसरे भरतकी तरह प्रभुके पास आया। जलके कलश हाथमें लिए हुए दूसरे इंद्र भी उसके साथ थे। उनने राज्याभिषेककी तरहही दीक्षामहोत्सव संबंधी अभिषेक किया। वस्त्र और अलंकारोंसे

विभागके अधिकारीकी तरह, इंद्र वस्त्रालंकार लाया और प्रभुने उन्हें धारण किया। इंद्रने प्रभुके लिए सुदर्शना नामकी शिबिका (पालकी) तैयार की। वह अनुत्तर विमान नामक देवलोकके विमानसी दिखती थी। प्रभु इंद्रके हाथका सहारा लेकर उस शिबिकामें बैठे; ऐसा जान पड़ता था मानों वे लोकाग्र रूपी मंदिर (मोक्ष) की पहली सीढ़ी पर चढ़े हैं। पहले रोमांचित हुए मनुष्योंने और फिर देवताओंने, मूर्तिमंत पुण्य-भारके समान उस शिबिकाको उठाया। उस समय आनंदसे मंगल बाजे बजाए गए; उनकी आवाजसे, पुष्करावर्तक मेघकी तरह दसों दिशाएँ भर गईं। मानों इस लोक और परलोक दोनोंकी मूर्तिमान निर्मलता हो ऐसे दो चँवर प्रभुके दोनों तरफ चमकने लगे। वृंदारक जातिके देव, चारणोंकी तरह, मनुष्योंके कानोंको प्रसन्न करनेवाले, प्रभुकी जय-जयकारके शब्द ऊँचे स्वरमें करने लगे।

शिबिकामें बैठकर चलते हुए प्रभु उत्तम देवोंके विमानमें रही हुई शाश्वत प्रतिमाकी तरह शोभते थे। भगवानको जाते देखकर बालक, बूढ़े—सभी नगरनिवासी प्रभुके पीछे इस तरह दौड़ने लगे, जिस तरह बालक अपने पिताके पीछे दौड़ते हैं। कई मेघको देखनेवाले मोरोंकी तरह, दूरसे स्वामीको देखनेके लिए वृक्षोंकी ऊँची डालियोंपर जा बैठे; कई रत्नोंके मंदिरों व महलोंकी छतोंपर प्रभुको देखनेके लिए जा चढ़े। ऊपरसे पड़ती हुई तेज धूपको उन्होंने चाँदनीके समान माना। कई घोड़ा जल्दी न आनेसे यह सोचकर पैदलही घोड़ेकी तरह मार्गपर दौड़ने लगे कि समय व्यर्थ जा रहा है, और कई जलमें मछली-की तरह लोकसमूहमें घुसकर, स्वामीके दर्शनकी इच्छासे आगे

निकलने लगे। जगत्पतिके पीछे दौड़नेवाली कई स्त्रियोंके, वेगके कारण, हार टूट रहे थे; वे ऐसी मालूम होती थीं, मानों वे लाजांजलिसे (खीलोंकी अंजलिसे) प्रभुका स्वागत कर रही हैं। कई, प्रभु आते हैं यह सुनकर अपने बच्चोंको लिए स्थिर खड़ी थीं, वे बंदरोंके सहित लताएँ हों ऐसी जान पड़ती थीं; कुचकुंभके भारसे मंदगतिवाली युवतियाँ अपनी दोनों तरफ चलनेवाली स्त्रियोंके कंधोंपर हाथ रखकर चल रही थीं; मानों उन्होंने दो पंख निकाले हैं। कई स्त्रियाँ प्रभुको देखनेके उत्साह-की गतिको भंग करनेवाले अपने नितंबोंकी निंदा करती थीं। मार्गमें आनेवाले घरोंमें रहनेवाली कई कुलवधुएँ सुंदर कसूँबी वस्त्र पहन, पूर्णपात्र लिए खड़ी थीं, वे चंद्रमाके सहित संध्याकी सगी बहनोंसी जान पड़ती थीं; कई चपलनयनियाँ, प्रभुको देखनेके लिए (उत्सुक) अपने साड़ीके पल्लेको, हस्तकमलसे चँवरकी तरह हिला रही थीं (मानों वे भक्तिसे प्रभुपर चँवर ढुरा रही हों।); कई नाभिकुमारपर लाजा (चावलकी खीलें) डाल रही थीं, मानों वे अपने लिए, निर्भरतासे, पुण्यके बीज बो रही थीं; कई सुवासिनियाँ(सधवाएँ) 'चिर जीवो,चिर आनंद पाओ!' ऐसी असीसें देती थीं; और कई चपलाक्षी (चंचल आँखोंवाली) नगर-नारियाँ स्थिर आँखोंसे, शीघ्र चलनेवाली या धीरे चलने-वाली होकर प्रभुके पीछे जा रही थीं। (२६-४६)

अब चारों तरहके देव अपने विमानोंसे पृथ्वीतलको छाया-वाला बनाते हुए आकाशमें आने लगे। उनमें कई देव उत्तम मद-जल बरसाते हाथियोंको लेकर आते थे; इससे जान पड़ता था कि वे आकाशको मेघमय बना रहे हैं। कई देवता आकाशरूपी समु-

द्रमें, नौका रूपी घोड़ोंपर सवार होकर, डाँडों रूपी चावुकोंसे उन्हें चलाते हुए जगत्पति को देखने आ रहे थे। कई देवता मूर्तिमान पवन हों ऐसे वेगवाले रथोंपर सवार होकर नाभिनंदनको देखनेके लिए आरहे थे; मानों उन्होंने वाहनोंकी क्रीडाकी (गतिकी)शर्त लगाई हो इस तरह वे मित्रकी भी राह नहीं देखते थे। अपने गाँव पहुँचे हुए मुसाफिरकी तरह प्रभुके पास पहुँचनेपर 'ये स्वामी हैं ! ये स्वामी हैं !' कहते हुए वे अपने वाहनोंकी गतिको रोकते थे। विमान रूपी हवेलियोंसे और हाथियों, घोड़ों और रथोंसे ऐसा मालूम होता था कि मानों अनेक देवताओं और मनुष्योंसे घिरे हुए जगत्पति, अनेक सूर्यों और चंद्रमाओंसे घिरे हुए, मानुपोत्तर पर्वतके समान मालूम होते थे। उनके दोनों तरफ भरत और वाहुवलि सेवा करते थे; इससे प्रभु ऐसे शोभते थे जैसे दोनों किनारोंसे समुद्र शोभता है। हाथी जैसे अपने यूथपति (दलके सरदार) का अनुसरण करते हैं वैसेही दूसरे अट्ठानवें विनीत पुत्र प्रभुके पीछे चलते थे। माता मरुदेवी, पत्नियाँ सुमंगला और सुनंदा,पुत्रियाँ ब्राह्मी व सुंदरी तथा दूसरी स्त्रियाँ, ओसकी बूँदोंवाली कमलिनियोंकी तरह आँसूभरी आँखों के साथ प्रभुके पीछे चल रही थीं। इस तरह प्रभु सिद्धार्थ नामके उद्यानमें पधारे। वह उद्यान प्रभुके पूर्वजन्मके सर्वार्थसिद्ध विमानसा मालूम होता था। वहाँ प्रभु शिविकारत्नसे अशोक वृक्षके नीचे उतरे, जैसे ममतारहित मनुष्य संसारसे उतरता है (संसार छोड़ता है); और कषायकी तरह उन्होंने वस्त्रों, आभूषणों और मालाओंको तत्कालही छोड़ दिया। उस समय इंद्रने पास आकर चंद्रकी किरणोंसेही बना हो ऐसा उजला और बारीक देवदूष्य वस्त्र प्रभुके कंधेपर आरोपण किया (रखा)। (५०-६४)

वह चैत वदी आठमका दिन था। चंद्र उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें आया था। दिनके पिछले पहरका समय था। जय जय शब्दके कोलाहल पूर्वक असंख्य देवता और मनुष्य अपना हर्ष प्रकट कर रहे थे। उनके सामने मानों चारों दिशाओंको प्रसाद (वख-शिश) देनेकी इच्छासे प्रभुने चार मुट्ठीसे अपने सरके बालोंका लोंच किया। प्रभुके केशोंको सौधर्मपतिने अपने अंचलमें (कपड़े-के पल्लमें) लिया। ऐसा मालूम होता था मानों वह अपने वस्त्रको अलग तरहके धागोंसे बुनना चाहता है। प्रभुने पाँचवीं मुट्ठीसे बचेहुए केशोंका भी लोच करनेकी इच्छा की, तब इंद्रने प्रार्थना की, "हे प्रभु! आप इतने केश रहने दीजिए। कारण, वे जब हवासे उड़कर आपके सोनेके जैसी कांतिवाले कंधेके भाग पर आते हैं तब मरकत-मणिके समान शोभते हैं। प्रभुने इंद्रकी बात मानली और बचे हुए केशोंको रहने दिया। कारण—

"याञ्चामेकांतभक्तानां स्वामिनः खंडयंति न।"

[स्वामी अपने एकनिष्ठ भक्तोंकी याचना को नहीं ठुकराते।] सौधर्मपति जाकर उन केशोंको क्षीरसागरमें डाल आया। फिर उसने रंगाचार्य (सूत्रधार) की तरह हाथके इशारेसे बाजोंको बजाना बंद कराया। उस दिन प्रभुके छट्ट तप (दूसरा उपवास) था। उन्होंने देवताओं, असुरों और मनुष्योंके सामने सिद्ध भगवानको नमस्कार करके "मैं सावद्ययोगका प्रत्याख्यान करता हूँ।" (मैं उन सभी कामोंका करना छोड़ता हूँ जिनसे हिंसा होनेकी संभावना है) कहा और मोक्षमार्गके लिए रथके समान चारित्र ग्रहण किया। शरद ऋतुके तापसे तपे हुए पुरुष-को जैसे बादलोंकी छायासे थोड़ी देरके लिए सुख होता है वैसे

ही नारकी जीवोंको भी क्षणमात्रके लिए सुख हुआ। इसी समय मानों दीक्षाके साथ संकेत कर रखा हो वैसे, मनुष्यक्षेत्र-के सभी पंचेंद्रिय जीवोंकी बातको जाननेवाला 'मन:पर्ययज्ञान' प्रभुको उत्पन्न हुआ। कच्छ और महाकच्छ वगैरा चारहजार राजाओंने भी प्रभुके साथही दीक्षा लेली। मित्रोंने उन्हें रोका, बंधुओंने उनको मना किया, भरतेश्वरने बार-बार निषेध किया तो भी, उन्होंने अपने स्त्री-पुत्र-राज्य वगैरा सबका, तिनकेकी तरह त्याग कर, अपने स्वामीकी कृपाओंको याद कर, भौंरोंकी तरह प्रभुके चरण-कमलोंका विरह अपने लिए असह्य (सहन न हो सके ऐसा) समझ कर, और जो स्वामीकी गति है वही हमारी भी है यह निश्चय कर,आनंदसे चारित्र ग्रहण कर लिया। ठीकही कहा है कि-

"......भृत्यानामेष हि क्रमः।"

[नौकरोंका यही क्रम है, यानी सच्चे नौकर हर हालतमें अपने मालिक का साथ देते हैं।] (६५-८०)

फिर इंद्रादि देव वंदना कर, हाथ जोड़, प्रभुकी स्तुति करने लगे, "हे प्रभो! हम आपके यथार्थ गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं, तो भी स्तुति करने लगे हैं। कारण आपके प्रभावसे हमारी बुद्धिका विकास होता है- हमारी अक्ल बढ़ती है। हे स्वामी! त्रस और स्थावर जीवोंकी हिंसाको छोड़नेसे, अभयदान देनेवाली दानशालाके समान बने हुए, आपको हम नमस्कार करते हैं। झूठको बिलकुल छोड़ देनेसे, निर्मल व हितकारी, सत्य और प्रिय वचनरूपी सुधारसके समुद्रके जैसे आपको हम

नमस्कार करते हैं। अदत्तादानका (वगैर दिए किसीकी चीज लेनेका) त्यागरूपी मार्ग बंद हो गया था, उसपर सबसे पहले चलकर उसे पुनः आरंभ करनेवाले, हे भगवान ! हम आपको नमस्कार करते हैं। कामदेवरूपी अंधकारका नाश करनेवाले, अखंडित ब्रह्मचर्यरूपी महान तेजवाले सूर्यके समान हे प्रभो ! हम आपको नमस्कार करते हैं। तिनकेके समान जमीन-जायदाद वगैरा सब तरहके परिग्रहोंको एक साथ छोड़ देनेवाले, हे निर्लोभ आत्मावाले प्रभो ! हम आपको नमस्कार करते हैं। पाँच महाव्रतोंका भार उठानेमें वृषभ (बैल) के समान और संसाररूपी समुद्रको तैरनेमें कछुएके समान आप महात्माको हम नमस्कार करते हैं। पाँच महाव्रतोंकी सगी बहनोंके समान पाँच समितियोंको धारण करनेवाले, हे प्रभो ! हम आपको नमस्कार करते हैं। आत्मभावोंमेंही लगे हुए मनवाले, वचनकी प्रवृत्तिको रोकनेवाले और सभी प्रवृत्तियोंसे अलग शरीरवाले— ऐसे तीन गुप्तियोंको धारण करनेवाले हे प्रभो ! हम आपको नमस्कार करते हैं।" (८१–६०)

इस तरह स्तुति कर देवता जन्माभिषेकके समय जैसे नंदीश्वर द्वीप गए थे, वैसेही नंदीश्वरद्वीप जा, (वहाँ अट्ठाई महोत्सव कर) अपने अपने स्थानोंको गए। देवताओंकी तरहही भरत और बाहुबली वगैरा भी प्रभुको नमस्कार कर, दुखी मनके साथ अपने अपने स्थानोंको गए।

विहार

अपने साथ दीक्षा लेनेवाले कच्छ-महाकच्छादि मुनियों

सहित प्रभुने मौन धारणकर पृथ्वीपर विहार करना (एक स्थान-से दूसरे स्थान को जाना) शुरू किया। (६१-६३)

प्रभु पारणेके दिन गोचरीके लिए गए; मगर उनको कहींसे आहार नहीं मिला। कारण, उस समय लोग भिक्षादानको नहीं जाननेवाले और एकांत सरल थे। भिक्षाके लिए जानेवाले प्रभु-को, पहलेकी तरहही राजा समझकर, कई लोग उनके सूरजके उच्चःश्रवा नामके घोड़ेको भी वेगसे पीछे रख देनेवाले घोड़े भेट करते थे; कई शौर्यसे दिग्गजोंको भी हरानेवाले हाथी भेट करते थे; कई रूप-लावण्यसे अप्सराओंको भी लजानेवाली कन्याएँ भेट करते थे; कई बिजलीकी तरह चमकनेवाले आभूषण आगे रखते थे; कई साँझके आकाशमें फैले हुए तरह तरहके रंगोंके समान रंगीन कपड़े लाते थे; कई मंदार-माला (स्वर्गके एक वृक्षके फूलोंकी माला) से स्पर्द्धा करनेवाले फूलोंकी मालाएँ अर्पण करते थे; कई सुमेरु-पर्वतके शिखर जैसा सोनेका ढेर भेट करते थे और कई रोहणाचल (रोहण नामक पर्वत) की चूला (चोटी) के समान रत्नोंका ढेर अर्पण करते थे; मगर प्रभु उनमेंसे एक भी चीज नहीं लेते थे। भिक्षा न मिलने पर भी अदीन मनवाले प्रभु जंगम तीर्थकी तरह विहार कर (भ्रमण-कर) पृथ्वीतलको पावन करते थे। वे भूख-प्यास वगैराके परि-सहोंको इस तरह सहन करते थे, मानों उनका शरीर सात धातुओंका बना हुआ नहीं है। जहाज जिस तरह पवनका अनु-सरण करते हैं वैसेही स्वयमेव दीक्षित राजा भी स्वामीके साथ ही विहार करते थे। (६४-१००)

जटाधारी तापसोंकी उत्पत्ति

भूख प्याससे घबराए हुए और तत्त्वज्ञानसे रहित वे तपस्वी राजा अपनी बुद्धिके अनुसार विचार करने लगे, "ये स्वामी किंपाक (जहरी कोचले) के फलकी तरह मीठे फलभी नहीं खाते, खारे पानीकी तरह स्वादिष्ट मीठा जल भी नहीं पीते, शरीरकी तरफसे लापरवाह होनेसे स्नान और विलेपन भी नहीं करते और वस्त्रालंकारों और फूलोंको भार समझकर ग्रहण नहीं करते। ये तो हवाके द्वारा उड़ाई हुई धूलको पर्वतकी तरह धारण कर लेते हैं। ललाटको तपानेवाला ताप सदा सरपर सहन करते हैं। कभी सोते नहीं है तो भी नहीं थकते; श्रेष्ठ हाथीकी तरह गरमी-सरदीकी इन्हें कुछ परवाह नहीं है। ये भूखको नहीं गिनते, प्यासको नहीं पहचानते और वैर लेनेकी इच्छा रखनेवाले क्षत्रीकी तरह रातको नींद भी नहीं लेते। हम इनके अनुचर बने हैं; मगर मानों हम अपराधी हों इस तरह, हमें एक निगाहसे देखकर भी प्रसन्न नहीं करते; फिर बातचीतकी तो बात ही क्या है? ये प्रभु पुत्र-कलत्र (बाल बच्चे) आदिके त्यागी हैं तो भी हम नहीं समझते कि वे अपने मनमें क्या सोचा करते हैं?"

(१०३-११०)

इस तरह विचारकर वे सब तपस्वी अपने समूहके नेता और स्वामीके पास सेवककी तरह रहनेवाले, कच्छ और महाकच्छके पास गए व कहने लगे, "कहाँ भूखको जीतनेवाले प्रभु! और कहाँ अन्नके कीड़े हम! कहाँ प्यासको जीतनेवाले प्रभु! और कहाँ जलके मेंढक हम! कहाँ शीतसे न घबरानेवाले प्रभु! और कहाँ बंदरकी तरह सरदीसे काँपनेवाले हम! कहाँ निद्राहीन

प्रभु ! और कहाँ अजगरसे निद्रालु हम ! कहाँ हमेशा जमीनपर नहीं बैठे रहनेवाले प्रभु ! और कहाँ आसन लगाकर बैठे रहने-वाले पंगुसे हम ! समुद्र लाँघनेको उड़नेवाले गरुड़ पक्षीका जैसे कौवे अनुसरण करते हैं वैसेही स्वामीके धारण किए हुए व्रतका हमने अनुसरण किया है। (मगर उनका अनुगमन हमारे लिए कठिन हो गया है।) तब अपनी आजीविकाके लिए क्या हमें अपने राज्य वापस लेने चाहिए ? मगर उन्हें तो भरतने अपने अधिकारमें कर लिया है; तब हमें क्या करना चाहिए ? क्या हमें अपने जीवननिर्वाहके लिए भरतका आसरा लेना चाहिए ? मगर स्वामीको छोड़कर जानेमें उसीका भय हमें अधिक है। हे आर्य ! आप सदा प्रभुके पास रहनेवाले और उनके विचारोंको अच्छी तरह जाननेवाले हैं, इसलिए हम दिग्मूढ बने हुए साधु-ओंको क्या करना चाहिए ? सो बताइए।" (१११-११८)

उन कच्छ और महाकच्छ मुनियोंने जवाब दिया, "यदि स्वयंभूरमण समुद्रका पार पाया जासके तो प्रभुके भावोंको-भी जाना जासके। (स्वयंभूरमण समुद्रका जैसे कोई पार नहीं पा सकता, वैसेही प्रभुके विचारोंका पता भी किसीको नहीं लग सकता।) पहले हम प्रभुकी आज्ञाके अनुसार चलते थे; परंतु अभी तो प्रभुने मौन धारण कर रखा है, इसलिए जैसे उनके मनकी बात आप लोग नहीं जानते, वैसेही हम भी कुछ नहीं जानते। हम सबकी दशा एकसीही है; इसलिए आप कहिए वैसाही हम भी करें।" (११९-१२१)

फिर वे सब विचार करके गंगा नदीके पासके वनमें गए और वहाँ उन्होंने इच्छानुसार कंद-मूल-फलादि का आहार

करना शुरू किया। तभीसे कंदमूल-फलादिका आहार करनेवाले और वनमें रहनेवाले जटाधारी तपस्वियोंकी जमात पृथ्वीपर फिरने लगी। (१२२-१२३)

नमि विनमिका, प्रभुकी भक्ति करना, और विद्याधरोंका ऐश्वर्य पाना।

कच्छ और महाकच्छके नमि और विनमि नामके विनयी पुत्र थे। वे प्रभुकी आज्ञासे, प्रभुने दीक्षा ली इससे पहलेही, कहीं दूर-देश गए थे। वहाँसे लौटते समय उन्होंने अपने पिताको वनमें देखा। उनको देखकर वे सोचने लगे, "वृषभनाथके समान नाथ होते हुए भी अपने पिताओंकी ऐसी दशा क्यों हुई? कहाँ उनके पहननेके वे बारीक वस्त्र और कहाँ इनके ये भील लोगोंके पहनने लायक वल्कल (पेड़की छालोंके) वस्त्र! कहाँ शरीर पर लगानेका उबटन और कहाँ पशुओंके लायक यह जमीनकी धूल! कहाँ फूलोंसे सजे हुए केश और कहाँ यह वड़की बड़वाईके समान लंबी जटा! कहाँ हाथियोंकी सवारी और कहाँ प्यादोंकी तरह पैदल चलना!" इस तरह विचार कर वे अपने पिताओंके पास गए और प्रणाम कर उन्होंने उनसे सारी बातें पूछीं। तब कच्छ, महाकच्छने जवाब दिया।

(१२४-१२६)

"भगवान ऋषभदेवने राज-पाट छोड़, भरतादि पुत्रोंको पृथ्वी बाँट, दीक्षा लेली। हाथी जैसे गन्ना खाता है वैसेही हम सबने भी साहस करके उन्हींके साथ दीक्षा लेली। मगर भूख, प्यास, सरदी और गरमी वगैराके दुःखोंसे घबराकर हमने,

गधे या खच्चर जैसे अपना भार छोड़ देते हैं वैसेही, व्रतका त्याग कर दिया। हम यद्यपि प्रभुकी तरह आचरण करनेमें समर्थ नहीं हो सके तथापि हमने वापस घर-गिरस्ती बनना न चाहा और अब हम इस तपोवनमें बसते हैं।" (१३०-१३३)

ये बातें सुन, वे यह सोचकर प्रभुके पास गए कि हम भी अपना हिस्सा माँगें। उन्होंने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया। प्रभु मौन धारणकर काउसग्ग ध्यानमें (समाधि लगाए) खड़े थे। नमि-विनमि यह नहीं जानते थे कि प्रभु अब निःसंग हैं-सब कुछ छोड़ चुके हैं। इसलिए वे बोले, "हम दोनोंको आपने दूर देशोंमें भेज दिया और भरतादिको सारी पृथ्वी बाँट दी, हमको गौके खुरके बराबर भी पृथ्वी नहीं दी, इसलिए हे विश्व-नाथ! अब मेहरबानी करके हमें भी जमीन दीजिए।"(भगवान-को चुप देखकर वे फिर बोले) "आप देवोंके भी देव हैं। आपने हमारा कौनसा ऐसा अपराध देखा है कि, जिसके कारण आप जमीन देना तो दूर रहा, बात तक नहीं करते।" दोनोंके इस तरह कहनेपर भी प्रभुने उस समय कोई जवाब नहीं दिया। कारण,—

"निर्ममा हि न लिप्यंते कस्याप्यैहिकचिंतया।"

[मोह-माया रहित लोग किसी भी दुनियवी बातका विचार नहीं करते।] (१३४-१३६)

वे यह सोचकर प्रभुकी सेवामें लग गए कि प्रभु कुछ नहीं बोलते हैं तो भी हमारी गति तो यही है। स्वामीके आसपास-की जमीनकी धूल न उड़े, इसलिए सरोवरसे कमलके पत्तोंमें पानी भरकर लाते थे और जमीनपर छिड़कते थे। वे नित्य

सवेरे धर्मचक्रवर्ती भगवानके आगे, सुगंधसे मतवाले बने हुए भौंरे जिनपर गूँज रहे हैं ऐसे, फूलोंके गुच्छे लाकर रखते थे। जैसे सूरज और चाँद रातदिन मेरु पर्वतकी सेवा करते हैं वैसे-ही वे सदा हाथोंमें तलवारें लिए प्रभुकी सेवामें, उनके पास खड़े रहते थे और सवेरे शाम और दुपहरको हाथ जोड़, प्रणाम कर याचना करते थे, "हे स्वामी ! हमको राज्य दीजिए। आपके सिवा हमारा कोई स्वामी नहीं है।" (१४०–१४४)

एक दिन नागकुमारोंका अधिपति श्रद्धालु धरणेंद्र प्रभुके चरणोंमें वंदना करनेके लिए आया। उसने अचरजके साथ, बालकोंके समान सरल दोनों कुमारोंको, प्रभुसे राज्यलक्ष्मीकी याचना करते और प्रभुकी सेवा करते देखा। धरणेंद्रने अमृतके समान मधुर वाणीमें उनसे पूछा, "तुम कौन हो और बड़े आग्रहके साथ प्रभुसे क्या माँगते हो ? जब प्रभुने एक बरस तक मुँहमाँगा दान दिया था तब तुम कहाँ गए थे ? इस समय तो ये ममता-रहित, परिग्रह-रहित, अपने शरीरपर भी मोह नहीं रखनेवाले, और खुशी या नाराजगीसे मुक्त हैं।"

(१४५–१४७)

धरणेंद्रको भी प्रभुका सेवक समझ नमि-विनमिने आदर-के साथ उससे कहा, "ये हमारे स्वामी हैं और हम इनके सेवक हैं। इन्होंने हमें किसी दूर देशमें भेज दिया और पीछेसे अपने भरतादि पुत्रोंको सारा राज्य बाँट दिया। यद्यपि इन्होंने सब-कुछ दे दिया है तथापि ये हमको राज्य देंगे। (ऐसा हमें विश्वास है।) सेवकको सिर्फ सेवा करना चाहिए उसे यह चिंता क्यों करनी चाहिए कि मालिकके पास कुछ है या नहीं ?"

(१५०–१५२)

धरणेंद्रने कहा, "तुम भरतके पास जाकर माँगो। वह भी प्रभुका पुत्र होनेसे प्रभुके समानही है।"

उन्होंने कहा, "दुनियाके मालिकको पानेके बाद उनको छोड़कर अब हम कोई दूसरा मालिक नहीं बनाएँगे। कारण; कल्पवृक्षको पाकर कौन करीरके पास जाएगा ? हम परमेश्वरको छोड़कर दूसरेसे कुछ नहीं माँगेंगे। क्या चातक पक्षी मेघके सिवा किसी दूसरेसे कुछ माँगता है ? भरतादिका कल्याण हो ! आप क्यों चिंता करते हैं ? हमारे स्वामी जो कुछ दे सकेंगे देंगे; दूसरोंको इससे मतलब ?" (१५३-१५६)

उनकी ऐसी युक्ति-युक्त बातें सुनकर नागराज खुश हुआ। उसने कहा, "मैं पातालपति हूँ और इन प्रभुका सेवक हूँ। मैं तुम्हें शाबाशी देता हूँ। तुम बड़े भाग्यवान हो और सत्यवान भी हो। इसीसे तुम्हारी यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि ये स्वामीही सेवा करने लायक हैं, दूसरे नहीं। इन दुनियाके मालिककी सेवा करनेसे राज्यसम्पति, बँधकर खिंची आई हो इस तरह, सेवकके पास चली आती है। वैताढ्य पर्वतपर रहनेवाले विद्याधरोंकी मालिकी भी इन महात्माकी सेवा करनेवालेको वृक्षपर लटकते हुए फलकी तरह आसानीसे मिल जाती है। इनकी सेवा करनेसे भुवनाधिपति (इंद्र) की सम्पति भी, पैरोंतले पड़ी हुई दौलतकी तरह सरलतासे प्राप्त हो जाती है। इनकी सेवा करनेवालेको, व्यंतरेंद्रकी लक्ष्मी वशमें होकर इस तरह नमस्कार करती है जिस तरह जादूसे कोई स्त्री वशमें होती है। जो भाग्यवान पुरुष इन प्रभुकी सेवा करता है उसको,स्वयंवरा वधूकी तरह,ज्योतिष्पतिकी लक्ष्मी तुरंत अंगीकार करती है। जैसे वसंत ऋतुसे तरह तरहके फूलोंकी

वृद्धि होती है वैसेही इनकी सेवा करनेसे इंद्रकी संपत्तियाँ मिलती हैं। मुक्तिकी छोटी बहिनसी दुर्लभ अहमिंद्रकी लक्ष्मीभी इनके सेवकको तत्कालही मिलती है । इन जगत्पतिकी सेवा करनेवाला प्राणी जन्म-मरण रहित सदा आनंदमय पद (मोक्ष) भी पाता है । अधिक क्या कहूं ? इनकी सेवा करनेसे प्राणी इनकी तरहही इस लोकमें तीन भुवनका मालिक और परलोकमें सिद्धरूप होता है । मैं इन प्रभुका दास हूँ और तुम भी इन्हींके किंकर हो, इससे तुमको इनकी सेवाके फलरूप विद्याधरोंका ऐश्वर्य देता हूँ। यह समझना कि यह राज्य तुमको प्रभुकी सेवा करने से ही मिला है। (अर्थात स्वामीनेही यह राज्य तुमको दिया है ।) पृथ्वीपर अरुणका उदय सूर्यसेही होता है ।" इसके बाद इसने उनको, गौरी, प्रज्ञप्ति वगैरा अड़तालीसहजार विद्याएँ, जो पाठ करनेहीसे सिद्धि देती हैं, दीं और कहा, "तुम वैताढ्य पर्वतपर जाओ, वहाँ दोनों तरफ नगरकी स्थापना कर अक्षय राज्य करो।" (१५७-१७१)

तब वे भगवानको नमस्कार कर (विद्याबलसे) पुष्पक नामका विमान बना, उसमें सवार हो, पन्नगपति(नागराज) के साथही वहाँसे रवाना हुए । पहले वे अपने पिता कच्छ, महा-कच्छके पास गए और उनको स्वामीकी सेवारूपी वृक्षके फलरूपी उस नवीन संपत्ति प्राप्तिकी बात कही। फिर उन्होंने अयोध्याके पति भरतके पास जाकर उसे अपनी ऋद्धिका हाल बताया । कारण,—

"मानिनां मानसिद्धिर्हि सफला स्थानदर्शिनाम् ।"

[मानी पुरुषोंको मानकी सिद्धि अपना स्थान बतानेहीसे

सफल होती है ।] उसके बाद वे अपने स्वजनों और परिजनोंको (कुटुंब और परिवारके लोगोंको) साथ ले, उत्तम विमानमें बैठ वैताढ्य पर्वतकी तरफ गए। (१७२-१७५)

वैताढ्य पर्वतके एक भागको लवणसमुद्रकी तरंगें चूम रही थीं। वह मानों पूर्व और पश्चिम दिशाका मानदंड[1] हो, ऐसा मालूम होता था। वह पर्वत भरतक्षेत्रके दक्षिण और उत्तर भाग की मध्यवर्त्ती (बीचकी) सीमाके समान है। वह पचास योजन विशाल (फैला हुआ) है, सवाछ:योजन पृथ्वीमें है और पृथ्वीसे पचीस योजन ऊँचा है। गंगा और सिंधु नदियाँ उसके आसपास बहती हैं। उनसे ऐसा जान पड़ता है कि हिमालय दोनों हाथ पसारकर वैताढ्य पर्वतको भेट रहा है। भरतार्द्धकी लक्ष्मीके आराम और खेल करनेके स्थानोंके समान खंडप्रपा और तमिश्रा नामकी गुफाएँ उनमें हैं। चूलिका(शिखर)से जैसे मेरु पर्वत शोभता है वैसेही शाश्वत प्रतिमावाले सिद्धायतनकूट (मंदिर) से वह पर्वत अद्‌भुत सुंदर मालूम होता है। मानों नए कंठाभरण (गलेमें पहननेके जेवर) हों वैसे विविध रत्नोंवाले और देवताओंके लिए लीलास्थान (खेलनेकी जगह) रूप नौ-शिखर उसके ऊपर हैं। उसके बीस योजन ऊपर दक्षिण और उत्तरकी तरफ मानों वस्त्र हों ऐसी व्यंतरोंकी दो निवास श्रेणियाँ हैं। मूलसे लेकर चोटी तक मनोहर सोनेकी शिलाएँ हैं, उनसे वह पर्वत ऐसा मालूम होता है मानों स्वर्गका एक पादकटक

१—वह निश्चत किया हुआ सर्वमान्य मान या माप जिसके अनुसार किसी प्रकारकी योग्यता, श्रेष्ठता, गुण आदिका अनुमान या कल्पना की जाए।

(पैरोंका एक जेवर) जमीनपर आ गिरा है। पवनसे हिलती हुई वृक्षकी शाखाएँ ऐसी मालूम होती थीं, मानों वे पर्वतकी भुजाएँ हैं और हाथोंके इशारोंसे वह नमि-विनमिको बुला रही हैं। नमि-विनमि वैताढ्य पर्वतपर आ पहुँचे। (१७६-१८५)

नमि राजाने जमीनसे दस योजन ऊपरकी तरफ दक्षिणके हिस्सेमें पचास नगर बसाए। उनके नाम थे-बाहुकेतु, पुंडरीक, हरित्केतु, सेतकेतु, सर्पारिकेतु, श्रीबाहु, श्रीगृह, लोहार्गल, अरिंजय, स्वर्गलीला, वज्रगल, वज्रविमोक, महिसारपुर, जयपुर, सुकृतमुखी, चतुर्मुखी, बहुमुखी, रक्ता, विरक्ता, आखंडलपुर, विलासयोनिपुर, अपराजित, कांचिदाम, सुविनय, नभःपुर, क्षेमंकर, सहचिह्नपुर, कुसुमपुरी, संजयती, शक्रपुर, जयंती, वैजयंती, त्रिजया, क्षेमंकरी, चंद्रभासपुर, रविभासपुर, सप्तभूतलावास, सुविचित्र, महाभ्रपुर, चित्रकूट, त्रिकूटक, वैश्रवणकूट, शशिपुर, रविपुर, विमुखी, वाहिनी, सुमुखी, नित्योद्योतिनी और श्रीरथनुपुर चक्रवाल।

किन्नर पुरुषोंने पहले वहाँ मंगलगान किया। फिर नमिने रथनुपुर चक्रवाल नामक सर्वोत्तम नगरमें निवास किया। यह शहर सभी नगरोंके बीचमें था। (१८६-१६५)

धरणेंद्रकी आज्ञासे विनमिने भी वैताढ्यके उत्तर विभागमें साठ नगर बसाए। उनके नाम थे,—अर्जुनी, वारुणी, वैरसंहारिणी, कैलाशवारुणी, विद्युद्दीप, किलिकिल, चारुचूडामणि, चंद्रभूषण, वंशवत, कुसुमचूल, हंसगर्भ, मेघक, शंकर, लक्ष्मीहर्म्य, चामर, विमल, असुमत्कृत, शिवमंदिर, वसुमती, सर्वसिद्धस्तुत, सर्वशत्रुंजय, केतुमालांक, इंद्रकांत, महानंदन,

अशोक, वीतशोक, विशोकक, सुखालोक, अलक तिलक, नभस्तिलक, मंदिर, कुमुदकुंद, गगनवल्लभ, युवतीतिलक, अवनितिलक, सगंधर्व, मुक्तहार, अनिमिष विष्टप, अग्निज्वाला, गुरुज्वाला, श्री निकेतनपुर, जयश्री निवास, रत्नकुलिश, वसिष्ठाश्रम, द्रविणजय, सभद्रक, भद्राशयपुर, फेनशिखर, गोक्षीरवर शिखर, वैर्यक्षोभ शिखर, गिरिशिखर, धरणी, वारणी, सुदर्शनपुर, दुर्ग, दुर्द्धर, माहेंद्र, विजय, सुगंधिन सुरत, नागरपुर, और रत्नपुर। धरणेंद्रकी आज्ञासे विनमिने गगनवल्लभ नामके नगरमें निवास किया। यह नगर सभी नगर-नगरियोंके मध्यभागमें था। (१६६–२०८)

विद्याधरोंकी महान ऋद्धिवाली दोनों तरफके नगरोंकी हारमालाएँ उनके ऊपर रही हुई व्यंतर श्रेणीके प्रतिबिंबसी जान पड़ती थीं। उन्होंने दूसरे अनेक गाँव, कसबे और उपनगर भी बसाए। और स्थान व योग्यताके अनुसार कई जनपद (देश) भी बसाए। जिन जिन जनपदोंसे लाकर वहाँ लोगोंको बसाया था उन्हींके नामोंके अनुसार उन देशोंके नाम रखे गए। सभी नगरोंमें नमि विनमिने, हृदयकी तरह, सभाओंके अंदर भगवान श्री नाभिनंदनको स्थापित किया।

विद्याधर विद्याओंसे उन्मत्त होकर अविनयी न बन जाएँ इसलिए धरणेंद्रने उनके लिए नियम बनाया कि जो विद्याधर अपनी विद्याके घमंडमें, जिनेश्वर, जिनमंदिर, चरमशरीरी (इसी जन्ममें मोक्ष जानेवाले) और कायोत्सर्ग ध्यानमें रहे हुए मुनिका अपमान करेगा उसकी विद्या इसी तरह चली जाएगी जिस तरह आलसी आदमीको छोड़कर लक्ष्मी चली

जाती है। और जो विद्याधर किन्हीं पतिपत्नीको मार डालेगा या किसी स्त्रीके साथ उसकी इच्छा न होनेपर भी संभोग करेगा उसकी विद्या भी उसको तत्काल ही छोड़ जाएगी।" नागपतिने यह आज्ञा ऊँची आवाजमें कह सुनाई और सदा कायम रखनेके लिए रत्नोंकी दीवारमें प्रशस्तिकी तरह खुदवा दी। फिर नमि-विनमि दोनोंको विधिसहित विद्याधरोंका राजा बना, दूसरी कुछ जरूरी व्यवस्था कर, नागपति अंतर्धान होगया।

(२०६–२१८)

अपनी अपनी विद्याओंके नामसे विद्याधरोंकी सोलह जातियाँ हुईं। जैसे– गौरी विद्यासे गौरेय, मनु विद्यासे मनु पर्वक, गंधारी विद्यासे गांधार, मानवी विद्यासे मानव, कौशिकी पूर्व विद्यासे कौशिकी पूर्वक, भूमितुंड विद्यासे भूमितुंडक, मूल-वीर्य विद्यासे मूलवीर्यक, शंकुका विद्यासे शंकुक, पांडुकी विद्यासे पांडुक, काली विद्यासे कालिकेय, श्वपाकी विद्यासे श्वपाकक, मातंगी विद्यासे मातंग, पार्वती विद्यासे पार्वत, वंशालया विद्यासे वंशालय, पांसुमूला विद्यासे पांसुमूलक, और वृक्षमूला विद्यासे वृक्षमूलक। (२१९–२२४)

इनके दो भाग किए गए; आठ जातियोंके विद्याधर नमिके राज्यमें और आठके विद्याधर विनमिके राज्यमें हुए। अपनी अपनी जातिमें अपने शरीरकी तरह उन्होंने हरेक विद्यापति देव-ताकी स्थापना की। सदा वृषभस्वामीकी मूर्तिकी पूजा करनेवाले वे धर्मको बाधा न पहुँचे इस तरह, देवताओंके समान भोग भोगते हुए समय बिताने लगे। मानों दूसरे शक्र और ईशानेंद्र हों इसतरह वे दोनों(नमि-विनमि)किसी समय द्वीपांतरकी जगती-

के जाल कटकपर (यानी जंबूद्वीपके भूमिसमूहपर स्थित पर्वतके शिखरपर) कांताओंके सहित क्रीड़ा करते थे; कई बार वे सुमेरु पर्वतपरके नंदनादिक वनोंमें पवनकी तरह इच्छापूर्वक आनंदसहित विहार करते थे; कई बार यह समझकर कि श्रावककी संपत्तिका यही फल है, नंदीश्वरादि तीर्थोंपर शाश्वत प्रतिमाओंकी पूजा करनेके लिए जाते थे; कई बार वे विदेहादि क्षेत्रोंमें श्री अरिहंतके समवसरणमें जाकर प्रभुकी वाणी रूपी अमृतका पान करते थे; और कई बार वे, हरिण जैसे कान ऊँचे करके गायन सुनता है, वैसे चारण मुनियोंसे धर्मदेशना सुनते थे। सम्यक्त्व (समकित) और अक्षीण भंडारको धारण करनेवाले वे विद्याधरोंसे घिरे हुए तीन पुरुषार्थोंको—धर्म, अर्थ और कामको हानि न पहुँचे इस तरह राज्य करते थे। (२२५-२३३)

आहार-दान

कच्छ और महाकच्छ,—जो राजा तपस्वी हुए थे—गंगा नदीके दक्षिण किनारे मृगकी तरह वनचर होकर फिरते थे और वल्कल (छाल) के वस्त्र पहने हुए चलते-फिरते वृक्षोंके समान मालूम होते थे। वे गृहस्थियोंके घरके आहारको वमन किए हुए अन्नके समान समझकर कभी ग्रहण नहीं करते थे। चतुर्थ (एक उपवास) और छट्ठ (दो उपवास) वगैरा तप करनेसे उनके शरीरका लोहू और मांस सूखनेसे, उनका सूखा हुआ शरीर पड़ी हुई धौंकनीकी उपमाको धारण करता था। पारणेके दिन भी वे अपनेआप वृक्षसे गिरे हुए पत्तों और फलोंका आहार करते थे, और मनमें भगवानका ध्यान करते हुए वहीं रहते थे।

(२३४-२३७)

भगवान ऋषभदेव मौन धारण किएहुए आर्य और अनार्य सभी देशोंमें विचरण करते थे। एक साल तक निराहार रहे हुए प्रभुने विचार किया, "दीपक जैसे तेलसेही जलता है, वृक्ष जैसे जलसेही टिकता है, वैसेही प्राणियोंके शरीर भी आहारसेही टिकते हैं। साधुओंको भी बयालीस दोपरहित माधुकरी[1] वृत्तिसे भिक्षा माँग योग्य समय पर आहार लेना चाहिए। बीते दिनोंहीकी तरह, अब भी यदि मैं आहार न लूँगा तो मेरा शरीर तो टिका रह जायगा, मगर जैसे चार हजार मुनि भोजन न मिलनेसे पीड़ित होकर मुनिधर्मसे भ्रष्ट हो गए हैं वैसेही दूसरे साधु भी भ्रष्ट हो जाएँगे।" इस विचारको हृदयमें धारण कर प्रभु सभी नगरोंके मंडनरूप गजपुर[2] नगरमें भिक्षाके लिए गए। वहाँ बाहुबलीके पुत्र सोमप्रभ राजाके पुत्र श्रेयांसको सपना आया कि चारों तरफसे श्याम बने हुए सुवर्णगिरिको (मेरु पर्वतको) उसने दूधसे भरे हुए घड़ेसे अभिषेक करके उजला बनाया है। सुबुद्धि नामके सेठने सपनेमें देखा कि सूरजसे निकली हुई हजार किरणोंको, श्रेयांसकुमारने वापस सूर्यमें रखा है, इससे सूरज बहुत प्रकाशमान हुआ है। सोमयशा राजाने सपनेमें देखा कि अनेक शत्रुओंके द्वारा चारों तरफसे

१—मधुकर यानी भौंरा जिस तरहसे अनेक फूलोंसे थोड़ा रस लेता है और अपना पेट भरता है, इससे किसी फूलको तकलीफ नहीं होती; उसी तरह मुनि भी अनेक घरोंसे, बना हुआ, थोड़ा थोड़ा निर्दोष आहार ग्रहण करते हैं। इससे किसी गृहस्थको कोई तकलीफ नहीं होती। इसीको माधुकरी कहते हैं। २—हस्तिनापुर। दूसरा नाम गजपुरी था।

घिरे हुए एक राजाने अपने पुत्र श्रेयांसकी सहायतासे विजय प्राप्त किया है। तीनोंने अपने अपने सपनेका हाल एक दूसरेको सुनाया; मगर, उनके कारणका निर्णय न हुआ, इसलिए वे अपने अपने घर चले गए। मानों उन सपनोंका कारण या फल बताना चाहते हों। वैसे प्रभुने उसी दिन भिक्षाके लिए हस्तिना-पुरमें प्रवेश किया। एक बरस तक निराहार रहनेपर भी ऋषभ-की चालसे आते हुए प्रभुको शहरके लोगोंने आनंदके साथ देखा। (२३८-२५०)

शहरके लोग प्रभुको आते देखकर, तत्कालही दौड़े और विदेशसे आए हुए बंधुकी तरह उनके पास खड़े हो गए। एक बोला, "हे प्रभो ! आप हमारे घर चलनेका अनुग्रह कीजिए। कारण, आपने वसंतऋतुकी तरह, चिरकालके बाद दर्शन दिए हैं।" दूसरेने कहा, "हे स्वामी ! स्नान करनेके लायक जल, उबटन, तेल वगैरा और (पहननेको) वस्त्र तैयार हैं, आप स्नान करके वस्त्र धारण कीजिए।" तीसरा बोला, "हे भगवान ! मेरे यहाँ उत्तम केसर, कस्तूरी, कपूर और चंदन हैं। उनका उपयोग कर मुझे कृतार्थ कीजिए।" चौथा बोला, "हे जगत-रत्न ! कृपा करके हमारे रत्नालंकारोंको अपने शरीरपर धारण कर अलंकृत कीजिए।" पाँचवाँ बोला, "हे स्वामी ! मेरे मंदिर (घर) पधारिए और अपने शरीरके अनुकूल रेशमी वस्त्रोंको धारण कर उन्हें पवित्र बनाइए।" कोई बोला, "हे देव ! मेरी कन्या देवांगनाके समान है, उसको ग्रहण कीजिए। आपके समागमसे हम धन्य हुए हैं।" कोई बोला, "हे राजकुंजर ! आप क्रीडासे भी पैदल क्यों चलते हैं ? मेरे इस पर्वतके समान हाथीपर सवार होइए।"

कोई बोला, "मेरे सूरजके घोड़के समान घोड़ेको स्वीकार कीजिए। आतिथ्य (मेहमांनवाजी) स्वीकार न कर हमको अयोग्य क्यों बनाते हैं ?" कोई बोला, "इस रथमें उत्तम जातिके घोड़े जुते हुए हैं। आप इसको स्वीकार कीजिए। अगर आप इसमें सवार नहीं होते हैं तो फिर ये रथ हमारे किस कामका है ?" कोई बोला, "हे प्रभु ! आप इन पके फलोंको अंगीकार कीजिए। आपको सेवकोंका अपमान नहीं करना चाहिए।" किसीने कहा, "हे एकांतवत्सल ! इस तांबूलकी बेलके पत्र प्रसन्न होकर ग्रहण कीजिए।" किसीने कहा, "हे स्वामी ! हम लोगोंने क्या अपराध किया है कि जिसके सबबसे आप, सुनही न सकते हों इस तरह, कुछ बोलते भी नहीं हैं।"

इस तरह लोग उनसे प्रार्थना करते थे; मगर वे किसी चीजको भी लेने लायक न समझ, स्वीकार न करते थे और चांद जैसे तारे तारे पर फिरता है वैसे वे घर घर फिरते थे। सवेरे जैसे पक्षियोंका कोलाहल सुनाई देता है वैसेही नगरनिवासियों-का कोलाहल अपने भवनमें बैठे हुए श्रेयांसकुमारने सुना। उसने कोलाहल क्यों हो रहा है सो जाननेके लिए छड़ीदारको भेजा। छड़ीदार गया, सारी बातें जानकर वापस आया और हाथ जोड़कर इस तरह कहने लगा,– (२५१–२६६)

"राजाओंकी तरह अपने मुकुटोंसे जमीनको छूकर पादपीठ (पैर रखनेकी चौकी) के सामने लोटते हुए इंद्रादि देव दृढ़ भक्तिसे जिनकी सेवा करते हैं; सूरज जैसे चीजोंको बताता है, वैसेही जिन्होंने इसलोकमें दया करके सबलोगोंको उनकी आजी-विकाके साधनरूप काम बताए हैं; दीक्षा लेनेकी इच्छा करके

जिन्होंने भरतादि वगैरहको और आपको भी अपने शेष (बचे हुए अन्न) की तरह यह भूमि दी है और जिन्होंने सभी सावद्य वस्तुओंका त्याग कर, आठ कर्मरूपी महापंक(कीचड़) को सुखाने के लिए, गरमीकी धूपके समान, तपको स्वीकार किया है; वे ऋषभदेव प्रभु ममता-रहित, भूखे-प्यासे, अपने पादसंचारसे (चलनेसे) पृथ्वीको पवित्र करते फिरते हैं। वे न सूरजकी गरमीसे घबराते हैं और न छायासे खुश होते हैं; वे पर्वतकी तरह दोनोंमें समान भाव रखते हैं। वे वज्रकी कायावालेकी तरह न सरदीमें विरक्त होते हैं और न गरमीमें आसक्तही होते हैं। वे जहाँ तहाँ रहते हैं। संसाररूपी हाथीके लिए केसरी–सिंहके समान वे प्रभु युगमात्र प्रमाणसे (चार हाथ आगे) नजर रखते हुए, एक चींटीको भी तकलीफ न हो इस तरह कदम रखकर चलते हैं। प्रत्यक्ष (आपको) निर्देश (आज्ञा) करने लायक और तीन लोकके देव आपके दादा भले भाग्यसे यहाँ आए हैं। गवालेके पीछे जैसे गौएँ दौड़ती हैं वैसेही, प्रभुके पीछे दौड़नेवाले नगरनिवासियोंका यह मधुर कोलाहल है।" (२६७-२७६)

स्वामीका आना सुनकर युवराज श्रेयांस तुरत पैदल चलनेवालोंको भी पीछे छोड़ता हुआ (पांव-प्यादे) ही दौड़ पड़ा। युवराजको छत्र और उपानह (जूतों) रहित दौड़ते देखकर उसकी सभाके लोग भी, अपने छत्र और उपानह छोड़कर छायाके समान उसके पीछे दौड़ चले। जल्दी जल्दी दौड़नेसे उसके कानोंके कुंडल हिलते थे, उससे ऐसा मालूम होता था मानों युवराज पुनः स्वामीके सामने बाललीला कर रहा है। अपने घरके आंगनमें प्रभुको आए देख, वह प्रभुके चरणकमलोंमें लोटने लगा और

भौंरेका भ्रम पैदा करनेवाले अपने केशोंसे उसने (प्रभुके चरणों-को)मार्जन किया-उनके चरणोंकी धूल पोंछ डाली। उसने उठकर जगत्पतिको तीन प्रदक्षिणा दीं और पुनः आनंदके आँसू भरे नेत्रों-से उनके चरणोंमें नमन किया। गिरते हुए आँसू ऐसे मालूम होते थे मानो वे प्रभुके चरणोंको धो रहे हैं। फिर वह खड़ा होकर प्रभुके मुख-कमलको इस तरह देखने लगा जैसे पूनोंके चाँदको चकोर देखता है। 'मैंने ऐसा वेष पहले भी कहीं देखा है।' इस तरह सोचते हुए उसको विवेक-वृक्षके बीजके समान जातिस्मरण-ज्ञान (जिससे बीते जन्मोंकी बातें याद आजाएँ ऐसा ज्ञान)उत्पन्न हुआ। इससे उसने जाना कि किसी पूर्व जन्ममें, पूर्वविदेह क्षेत्र-में जब भगवान वज्रनाभ नामके चक्रवर्ती थे तब मैं उनका सारथी था। उसी भवमें स्वामीके वज्रसेन नामके पिता थे। उनको मैंने ऐसे तीर्थंकरोंके चिह्नवाला देखा था। वज्रनाभने वज्रसेन तीर्थंकरके चरणोंके पास बैठकर दीक्षा ली थी; तब मैंने भी उनके साथ ही दीक्षा ली थी। उस समय वज्रसेन अरिहंतके मुखसे मैंने सुना था कि यह वज्रनाभ भरतखंडमें पहले तीर्थंकर होंगे। स्वयंप्रभादिके भवमें भी मैं इन्हींके साथ रहा हूँ। वे इस समय मेरे प्रपितामह (परदादा) हैं। इनको भले भागसे आज मैंने देखा है। ये प्रभु, साक्षात मोक्ष हों इस तरह सारी दुनियापर और मुझपर कृपा करनेके लिए यहाँ पधारे हैं।"

कुमार इस तरह सोच रहा था, उसी समय किसीने आनंदके साथ आकर नवीन इक्षुरस (गन्नेके रस) से पूरे भरे हुए घड़े श्रेयांसकुमारको भेट किए। (जातिस्मरण ज्ञानसे) निर्दोष भिक्षा देनेकी विधिको जाननेवाले कुमारने प्रभुसे प्रार्थना

की, "हे भगवान ! यह कल्पनीय (दोष रहित, ग्रहण करने लायक) रस स्वीकार कीजिए ।" प्रभुने अंजली कर हस्तरूपी पात्र उसके सामने किया । कुमारने गन्नेके रससे भरे घड़े उठा उठाकर प्रभुकी अंजलीमें उंडेलना आरंभ किए। प्रभुकी अंजली में बहुतसा रस समा गया; मगर कुमारके हृदयमें उतना आनंद नहीं समाया (उसे संतोष नहीं हुआ) । स्वामीकी अंजलीमें रस इस तरह स्थिर होगया मानों उसकी शिखा आकाशमें लगी हुई होनेसे वह जम गया हो । कारण,तीर्थंकरोंका प्रभाव अचित्य है। प्रभुने उस रससे (एक बरसके उपवासोंका)पारणा किया, और सुर, असुर व मनुष्योंकी आँखोंने उनके दर्शनरूपी अमृतसे पारणा किया। उस समय श्रेयांसके कल्याणकी प्रसिद्धि करनेवाले चारण हों ऐसे आकाशमें प्रतिध्वनिसे वृद्धि पाए हुए दुंदुभि जोरसे बजने लगे। मनुष्योंकी आँखोंसे गिरनेवाले आनंदके आँसुओंके साथ'साथ देवताओंने आकाशसे रत्नोंका मेह बरसाया । मानो प्रभुके चरणोंसे पवित्र बनी हुई पृथ्वीको पूजना हो इस तरह देवता वहाँ पाँच रंगके फूलोंका मेह बरसाने लगे। देवताओंने सभी फूलोंके समूहसे संचय किए हों वैसे, गंधोदककी वृष्टि की। और मानो आकाशको विचित्र बादलोंवाला बनाते हों वैसे देवता और मनुष्य उजले कपड़े डालने लगे। (तीर्थंकरोंको आहार देनेसे ये पाँच दीव्य प्रकट होते हैं।) वैशाख सुदी तीजको दिया हुआ वह दान अक्षय हुआ। इसीलिए वह दिन अक्षय तृतीयाके नामसे आज भी प्रचलित है। जगतमें दानधर्म श्रेयांसकुमारसे आरंभ हुआ और दूसरे सभी व्यवहार भगवान ऋषभदेवसे आरंभ हुए। (२७७-३०२)

प्रभुने पारणा किया,इससे और देवताओंने रत्नादिका मेह बरसाया, इससे राजाओं और नगरके लोगोंको अचरज हुआ। और वे श्रेयांसके मंदिरमें आने लगे। कच्छ और महाकच्छ आदि क्षत्रिय तपस्वी भी भगवानके आहार करनेकी बात सुनकर बहुत खुश हुए और वहाँ आए। राजा, नागरिक और जनपदों-के (गाँवोंके) लोगोंका शरीर रोमांचित हो गया। वे प्रफुल्लित होकर श्रेयांसकुमारसे कहने लगे, "हे कुमार, तुम धन्य हो कि प्रभुने तुम्हारा दिया हुआ गन्नेका रस भी स्वीकार किया; मगर हम सबकुछ भेट कर रहे थे तो भी उन्होंने कोई चीज स्वीकार नहीं की; सबको तिनकेके समान समझा। वे हमपर प्रसन्न न हुए। प्रभु एक बरस तक गाँवों, शहरों, आकरों, (खानों) और जंगलोंमें फिरे, मगर उन्होंने हममेंसे किसीका भी आतिथ्य स्वीकार नहीं किया। इसलिए भक्त होनेका अभिमान रखनेवाले हमको धिक्कार है! हमारे घरोंमें विश्राम करना और हमारी चीजोंको स्वीकार करना तो दूर रहा, मगर आज तक उन्होंने हमको संभावित भी नहीं किया-बातचीत करनेका मान भी हमें नहीं दिया। जिन्होंने लाखों पूर्वोतक हमारा पुत्रकी तरह पालन किया, वे प्रभु इस समय हमारे साथ अनजानसा बरताव करते हैं।" (३०३-३१०)

श्रेयांसने कहा, "तुम ऐसा क्यों कहते हो? ये स्वामी इस समय पहलेकी तरह परिग्रहधारी राजा नहीं हैं। इस समय तो ये संसार रूपी आवर्त (भँवर या चक्कर) से निकलनेके लिए सभी सावद्य व्यापारका त्याग करके यति हुए हैं। जो भोगकी

इच्छा रखते हैं वे स्नान, उबटन, आभूषण और वस्त्र स्वीकार करते हैं; मगर विरक्त बने हुए प्रभुको उन चीजोंकी क्या जरूरत हो सकती है ? जो कामके वशमें होते हैं वे कन्याओंको स्वीकार करते हैं; मगर कामको जीतनेवाले स्वामीके लिए तो कामिनियाँ पूर्णतया पाषाणके समान हैं। जिनको पृथ्वीकी चाह हो वे हाथी, घोड़े वगैरा स्वीकार करें; संयमरूपी साम्राज्यको ग्रहण करनेवाले प्रभुके लिए तो ये सब चीजें जले हुए कपड़ेके समान हैं। जो हिंसक होते हैं वे सजीव फलादि ग्रहण करते हैं; मगर ये दयालु प्रभु तो सभी जीवोंको अभय देनेवाले हैं। ये तो सिर्फ एषणीय (निर्दोष), कल्पनीय (विधिके अनुसार ग्रहण करने योग्य) और प्राशुक (शुद्ध) आहारही ग्रहण करते हैं; मगर इन बातोंको, आप अजान लोग नहीं जानते हैं।" (३११-३१७)

उन्होंने कहा, "हे युवराज ! ये शिल्पादि जो आज चल रहे हैं, इनका ज्ञान पहले प्रभुने कराया था। इसी लिए सब लोग जानते हैं; मगर तुम जो बात कहते हो वह बात तो पहले प्रभुने हमें कभी नहीं बताई। इसलिए हम कोई नहीं जानते। आपने यह बात कैसे जानी ? आप इसे बता सकते हैं, इसलिए कृपा करके कहिए।" (३१८-३१९)

युवराजने बताया, "ग्रंथ पढ़नेसे जैसे बुद्धि उत्पन्न होती है वैसे ही प्रभुके दर्शनसे मुझे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। सेवक जैसे एक गाँवसे दूसरे गाँव (अपने स्वामीके साथ) जाता है वैसेही, मैं आठ भव तक प्रभुके साथ फिरा हूँ। इस भवसे पहले बीते हुए तीसरे जन्ममें, विदेह भूमिमें प्रभुके पिता वज्रसेन नामक

तीर्थंकर थे। उनसे प्रभुने दीक्षा ली, फिर मैंने भी दीक्षा ली थी। उस जन्मकी यादसे ये सारी बातें मैंने जानी हैं; इसी तरह गई रातको मुझे, मेरे पिताको और सुबुद्धि सेठको जो सपने आए थे उनका मुझे यह प्रत्यक्ष फल मिला है। मैंने सपनेमें श्याम मेरुको दूधसे धोया देखा था, इससे इन प्रभुको—जो तपसे दुर्बल हो गए थे-मैंने इक्षुरससे पारणा कराया। और इससे ये शोभने लगे। मेरे पिताने शत्रुके साथ जिनको लड़ते देखा था वे प्रभुही हैं और उन्होंने मेरे कराए हुए पारणेकी मददसे परिसह रूपी शत्रुओंको हराया है। सुबुद्धि सेठने सपना देखा था कि सूर्य-मंडलसे गिरी हुई सहस्र किरणोंको मैंने वापस आरोपित किया; इससे सूर्य अधिक शोभने लगा। प्रभु सूरजके समान हैं। सहस्र किरणरूप केवलज्ञान[1] नष्ट हो रहा था, उसे आज मैंने प्रभुको पाराणा कराके जोड़ दिया है; इसीसे भगवंत शोभने लगे हैं।" श्रेयांसकी बातें सुनकर सबने "बहुत अच्छा! बहुत अच्छा!" कहा। फिर वे सब अपने अपने घर गए। (३२०-३२६)

श्रेयांसके घर पारणा करके जगत्पति स्वामी वहाँसे दूसरी जगह विहार कर गए। कारण,छद्मस्थ तीर्थंकर कभी एक जगह नहीं रहते। भगवानके पारणा करनेकी जगहका कोई उल्लंघन न करे इस खयालसे श्रेयांसने उस स्थानपर एक रत्नमय पीठिका (चबूतरा) बनवाई। और उस रत्नमय पीठिकाकी प्रभुके साक्षात

१—प्रभुको आहारका अंतराय था। आहारके बिना शरीर नहीं टिकता और शरीरके बिना केवलज्ञान नहीं होता। इसलिए कहा गया है कि आहार देकर श्रेयांस कुमारने नष्ट होते हुए केवल ज्ञानको जोड़ दिया है।

चरण हों वैसे वह भक्तिभावसे नम्र हो त्रिकाल-पूजा करने लगा। जब लोग पूछते थे कि यह क्या है? तब वह जवाब देता था कि "यह आदिकर्ताका मंडल है।" फिर जहाँ जहाँ प्रभुने भिक्षा ग्रहण की वहीं वहीं लोगोंने उस तरहकी पीठिकाएँ बनवाईं। इससे क्रमशः 'आदित्य पीठ' की प्रवृत्ति हुई। (३३०-३३४)

बाहुबलीका धर्मचक्र बनवाना

एक बार कुंजर (हाथी) जैसे निकुंजमें (लता-मंडपमें) प्रवेश करता है वैसेही प्रभु साँझके समय बाहुबलीके देशमें उसकी तक्षशिलापुरीके निकट आए और नगरीके बाहर एक बगीचेमें कायोत्सर्ग करके रहे। उद्यानपालने (बागवानने) जाकर बाहुबलीको इसके समाचार दिए। तुरत बाहुबली राजाने नगर-रक्षक लोगोंको आज्ञा दी कि हाट-बाटको सजाकर सारे नगरका शृंगार करो। ऐसी आज्ञा होतेही सारे नगरमें जगह जगह कदलीके स्तंभोंकी तोरणमाला बनाई गई और उनसे लटकती हुई केलोंकी लुंबोंसे रस्ते चलनेवालोंके मुकुट छूने लगे। मानों भगवानके दर्शन करनेके लिए देवताओंके विमान आए हों वैसे हरेक रस्तेपर रत्नपात्रोंसे प्रकाशित मंच सुशोभित होने लगे। हवासे हिलती हुई ऊँची पताकाओंकी पंक्तिके बहाने मानों वह नगरी हजार हाथोंवाली होकर नाच करती हुईसी सुशोभित होने लगी। और चारों तरफ किए गए नवीन कुंकुम जलके छिड़कावसे सारे नगरकी जमीन ऐसी मालूम होती थी मानो उसने मंगल अंगराग किया है। भगवानके दर्शनकी उत्कंठारूपी चंद्रके दर्शनसे वह नगर कुमुद-खंडकी तरह (जिसमें कमल खिले हुए हों ऐसे स्थानकी तरह) विकसित

हुआ, अर्थात लोगोंकी नींद जाती रही। 'सवेरेही स्वामीके दर्शनसे मैं अपने आत्माको और लोगोंको पावन करूँगा।' ऐसी इच्छा रखनेवाले बाहुबलीको वह रात महीनेके समान जान पड़ी। यहाँ रात जब प्रभातके रूपमें बदली तब प्रतिमास्थिति समाप्त कर (ध्यानावस्थाको छोड़) प्रभु हवाकी तरह दूसरी जगह चले गए। (३३०-३४४)

सवेरेही बाहुबलीने बगीचेकी तरफ जानेकी तैयारी की। उस समय बहुतसे सूर्योंके समान बड़े बड़े मुकुटधारी मंडलेश्वर उनको-बाहुबलीको-घेरेहुए (उनकी हाजरीमें) थे; उपायोंके मानों मंदिर हों ऐसे और साक्षात शरीरधारी अर्थशास्त्र हों ऐसे शुक्रादिकके समान बहुतसे मंत्री उनकी सेवामें थे। मानों गुप्त पंखोंवाले गरुड़ हों ऐसे और जगतका उल्लंघन करनेका वेग रखते हों ऐसे चारों तरफ खड़े हुए लाखों घोड़ोंसे वह सुशोभित हो रहे थे। ऊँचे ऊँचे हाथी थे। उनके मस्तकसे मदजल वह रहा था। वे ऐसे मालूम होते थे, मानों वे पृथ्वीकी धूलको शाँत करनेवाले झरने जिनसे बह रहे हों ऐसे पर्वत हैं। और मानों पाताल-कन्याओंके समान और सूर्यको भी नहीं देखनेवाली वसंतश्री वगैरा अंत:पुरकी स्त्रियाँ भी, तैयार होकर, उनके आसपास खड़ी थीं। उनके दोनों तरफ चामरधारी स्त्रियाँ थीं, उनसे वह राजहंस सहित गंगा-यमुना द्वारा सेवित प्रयागके समान मालूम होते थे। उनके मस्तकपर सफेद छत्र था, उससे वह ऐसे शोभते थे जैसे पूनोंकी आधी रातके चाँदसे पर्वत शोभता है। देवनंदी नामका छड़ीदार आगे आगे चलकर जैसे इंद्रको मार्ग बताता है वैसेही, सोनेकी छड़ीवाला प्रतिहार उनको, आगे-

आगे चलकर मार्ग दिखाता था। रत्नाभरणोंसे भूषित श्रीदेवीके पुत्रके समान असंख्य साहूकार घोड़ोंपर सवार होकर उनके पीछे चलनेको तैयार हो रहे थे, और जैसे पर्वतकी शिलाकी पीठपर जवान सिंह बैठता है वैसेही इंद्रके समान बाहुबली राजा भद्र जातिके अच्छेसे अच्छे हाथी पर सवार हुए थे। शिखर-से जैसे पर्वत शोभता है वैसेही मस्तकपर तरंगित कांतिवाले रत्नमय मुकुटसे वह सुशोभित हो रहे थे। उनने मोतियोंके दो कुंडल धारण किए थे; वे ऐसे जान पड़ते थे मानों उनके मुखकी शोभाके द्वारा जीते हुए दो चाँद उनकी सेवाके लिए आए हैं। लक्ष्मीके मंदिररूप हृदयपर स्थूल मुक्ता-मणिमय हार उनने पहना था, वह मंदिरके किलेसे जान पड़ते थे। हाथोंके मूलमें उत्तम सोनेके दो बाजूबंद थे; उनसे ऐसे मालूम होते थे कि भुजारूपी वृक्ष, बाजूबंधरूपी लतासे वेष्टित कर, मजबूत बनाया गया था। हाथोंके मणिबंधोंपर (कलाइयोंपर) मुक्तामणि-के दो कंकण बँधे थे, वे लावण्यरूपी सरिताके तीरपर फेनके समान जान पड़ते थे। और अपनी कांतिसे आकाशको चमकाने-वाली दो अँगूठियाँ उनने पहनी थीं, जो ऐसी शोभती थीं मानों वे साँपके फनोंकी जैसी शोभावाली बड़ी दो मणियाँ हों।

उनने शरीरपर बारीक और सफेद कपड़ा पहना था; मगर शरीरपर किए हुए चंदनके लेपसे उसका भेद किसीको मालूम नहीं होता था। पूनोंका चाँद जैसे चाँदनीको धारण करता है वैसेही, गंगाके तरंगसमूहसे स्पर्द्धा करनेवाला सुंदर वस्त्र-दुपट्टा उनने ओढ़ा था। तरह तरहकी धातुमय आसपासकी भूमिसे जैसे पर्वत शोभता है वैसेही विचित्र रंगोंवाले सुन्दर,

अंदर पहने हुए वस्त्रोंसे वह शोभते थे। लक्ष्मीका आकर्षण करनेके लिए क्रीडा करनेका शस्त्र हो वैसा वज्र यह महाबाहु अपने हाथोंमें फेर रहे थे। और वंदीजन (चारण भाट वगैरा) जय-जयकारसे दिशाओंके मुखको भर रहे थे (दिशाएँ जय-जयकार शब्दसे गूँज रही थीं।) इसतरहसे राजा बाहुवली उत्सवपूर्वक स्वामीके चरणोंसे पवित्र बने हुए बगीचेके पास आये। (३४५-३६५)

फिर, आकाशसे गरुड उतरता है वैसे उनने हाथीसे उतर, छत्रादि राजचिह्नोंका त्याग कर उपवनमें प्रवेश किया। वहाँ उनने विना चंद्रके आकाशकी तरह, और अमृत-रहित सुधा-कुंडकी तरह विना प्रभुका उद्यान देखा। (प्रभुके दर्शनोंकी) बड़ी इच्छावाले बाहुबलीने उद्यानपालकोंसे पूछा, "आँखोंको आनंद देनेवाले भगवान कहाँ हैं?" उन्होंने जवाब दिया, "वे तो रातकी तरहही कहीं आगेकी तरफ चले गए हैं। हमने जब यह बात जानी तब हम आपको समाचार देने आनेही वाले थे; इतनेमें आपही यहाँ पधार गए।"

यह बात सुन तक्षशिला नगरीके राजा बाहुबली ठुड्डीपर हाथ रख आँखोंमें आँसू भर, दुखी दिलसे इसतरह सोचने लगे, "हाय! आज परिवार सहित प्रभुकी पूजा करनेका मेरा मनो-रथ, ऊसर भूमिमें बोए हुए वृक्ष बीजकी तरह बेकार हुआ। लोगोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे मैंने यहाँ पहुँचनेमें बहुत देरी की, इसलिए मुझको धिक्कार है! इस स्वार्थके नाश होनेसे मेरी मूर्खताही प्रकट हुई है। स्वामीके चरण-कमलोंका दर्शन करनेमें अंतराय डालनेवाली इस वैरिन रातको और मेरी मतिको

धिक्कार है ! मैं स्वामीको नहीं देख पारहा हूँ, इसलिए मेरे लिए यह प्रभात भी अप्रभात है, सूरज भी असूरज है और नेत्र भी अनेत्र हैं ! ओह ! त्रिभुवनपति रातको इसी जगहपर प्रतिमारूप से रहे थे और निर्लज्ज बाहुबली अपने महलमें आरामसे सो रहा था !" (३६६ ३७५)

इस तरहकी चिंतासे चिंतित बाहुबलीको देख शोकरूपी शल्यको निःशल्य करनेवाली (दुखको मिटानेवाली) वाणीमें उसके मुख्य मंत्रीने कहा, "हे देव ! आप यह चिंता क्यों करते हैं, कि मैंने यहाँ आए हुए स्वामीको नहीं देखा ? कारण, वे प्रभु तो हमेशा आपके हृदयमें विराजमान दिखाई देते हैं। और यहाँ उनके चरणोंके-वज्र, अंकुश, चक्र, कमल, ध्वजा और मछलीके चिह्नोंको देखकर यही मानिए कि मैंने भाव-दृष्टिसे (साक्षात) स्वामीकोही देखा है।" (३७६–३७८)

सचिवकी बात सुनकर अंतःपुर और परिवार सहित सुनंदाके पुत्र बाहुबलीने चरण-चिह्नोंकी वंदना की। इन चरण-चिह्नोंको कोई न लाँघे, इस विचारसे उनने उन चरण-चिह्नोंपर रत्नमय धर्मचक्र स्थापित किया। आठ योजन लंबा, चार योजन ऊँचा और हजार आरोंवाला वह धर्मचक्र ऐसा शोभता था मानों वह पूरा सूर्यबिंब हो। जिसका बनाना देवताओंके लिए भी कठिन है ऐसा तीन-लोकके नाथ प्रभुके अतिशयके प्रभावसे बना हुआ धर्मचक्र बाहुबलीने देखा। पीछे तत्कालही सभी स्थानोंसे लाए हुए फूलोंसे बाहुबलीने धर्मचक्रकी पूजाकी। इससे ऐसा मालूम हुआ कि वहाँ फूलोंका पर्वत बन गया है। नंदीश्वर द्वीपपर जैसे इंद्र अट्ठाई-महोत्सव करता है वैसेही बाहुबलीने

वहाँ उत्तम संगीत और नाटकादिसे अद्भुत अट्ठाई-महोत्सव किया। उसके बाद धर्मचक्रकी पूजा तथा रक्षा करनेवाले पुरुषों को सदा वहीं रहनेकी आज्ञा कर, धर्मचक्रको वंदना कर बाहुबली राजा अपने नगरमें गये। (३७९-३८५)

केवलज्ञानकी प्राप्ति

इस तरह पवनकी तरह स्वतंत्रतापूर्वक और अस्खलित गतिसे (जो कहीं नहीं रुकती ऐसी चालसे) विहार (भ्रमण) करनेवाले, तरह तरहकी तपस्याओंमें निष्ठा-भक्ति रखनेवाले, अलग अलग तरहके अभिग्रह (अमुक बात होगी तभी भोजन करूँगा, ऐसे नियम) धारण करनेवाले मौनी, यवनडंब वगैरा म्लेच्छ देशोंके निवासी, अनार्य जीवोंको भी दर्शनमात्रसे भद्र (सदाचारी) बनानेवाले और उपसर्ग तथा परिसह सहन करनेवाले प्रभुने एक हजार बरस एक दिनकी तरह बिताए।

क्रमशः वे विहार करते हुए महानगरी अयोध्याके पुरिमताल नामक शाखानगर (उपनगर) में आए। उसकी उत्तरदिशाके, दूसरे नंदनवनके समान, शकटमुख नामक उद्यानमें प्रभुने प्रवेश किया। अष्टम तप(तीन दिनका उपवास) कर प्रतिमारूपसें रहे हुए प्रभु 'अप्रमत्त' नामक सातवें गुणस्थानमें पहुँचे। फिर 'अपूर्वकरण' नामक गुणस्थानमें आरूढ हो 'सविचार प्रथक्त्ववितर्क-युक्त' नामक शुक्लध्यानकी प्रथम श्रेणीको प्राप्त हुए। उसके बाद 'अनिवृत्ति' नामक नवाँ और 'सूक्ष्म सांपराय' नामक दसवाँ गुणस्थान पाकर क्षणभरमें वे 'क्षीणकषाय'पनको प्राप्त हुए। फिर उसी ध्यान द्वारा क्षणभरमें चूर्ण किएहुए लोभका नाश कर, रीठेके जलकी तरह (रीठा पानीमें डालनेसे

ऊपरसे पानी साफ होजाता है, उसी तरह) 'उपशांतकषायी' हुए। फिर 'एकत्वश्रुत अविचार' नामक शुक्लध्यानकी दूसरी श्रेणीको पाकर वे अंतिम क्षणमें, क्षणभरमें 'क्षीणमोह' नामक बारहवें गुणस्थानमें पहुँचे। इससे उनके सभी घातिकर्मोंका (पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अंतरायकर्म, ऐसे चौदह घातिकर्मोंका) नाश हो गया। इस तरह व्रत लेनेके एक हजार बरस बीतनेके बाद, फाल्गुन महीनेकी वदी एकादशीके दिन, चंद्र जब उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें आया था तब, सवेरेके समय, प्रभुको त्रिकाल विषय वाला (यानी तीनों कालोंकी बातें जिससे मालूम होती हैं ऐसा) केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इस ज्ञानसे तीनों लोकोंकी बातें हाथमें रहे हुए पदार्थकी तरह मालूम होती हैं। उस समय दिशाएँ प्रसन्न हुईं, सुखकारी हवा चलने लगी और नरकके जीवोंको भी एक क्षणके लिए सुख हुआ।
(३८६–३९९)

उस समय सभी इंद्रोंके आसन काँपने लगे; मानों वे स्वामीके केवलज्ञानका उत्सव करनेकी इंद्रोंसे प्रेरणा कर रहे हों। सभी देवलोकोंमें मधुर शब्दोंवाले घंटे बजने लगे; मानों वे अपने अपने देवलोकके देवताओंको बुलानेका काम कर रहे हैं। प्रभुके चरणोंमें जानेकी इच्छा रखनेवाले सौधर्मेंद्रके सोचते-ही, ऐरावण नामका देव, गजका रूप धारण कर, तत्कालही उसके पास आया। उसने अपना शरीर एक लाख योजनका बनाया। वह ऐसा शोभता था मानों वह प्रभुके दर्शनोंकी इच्छा रखनेवाला चलता-फिरता मेरुपर्वत है। अपने शरीरकी-बरफके समान सफेद-कांतिसे वह हाथी चारों दिशाओंमें चंदनका लेप

करता हो ऐसा मालूम होता था। उसके गंडस्थलमेंसे झरते हुए अति सुगंधित मदजलसे वह स्वर्गके आँगनकी भूमिको कस्तूरीके समूहसे अंकित करता था। उसके दोनों कान पंखोंकी तरह हिल रहे थे; ऐसा मालूम होता था कि उसके कपोल-तलसे झरते हुए मदकी सुगंधसे अंध बने हुए भौंरोंके समूहको वह उड़ा रहा था। अपने कुंभस्थलके तेजसे उसने बालसूर्यका पराभव किया था। (यानी बालसूर्य उसके तेजके सामने मंद लगता था।) और क्रमशः गोलाकार और पुष्ट सूँडसे वह नागराजका अनुसरण करता था। (नागराज जैसा लगता था।) उसके नेत्र और दाँत मधुके समान कांतिवाले थे। उसका तालू ताम्रपत्र (तांबेकी चद्दर) के समान था। उसकी गरदन झंझा (डुग्गी) के समान गोल और सुंदर थी। शरीरके बीचका भाग विशाल था। उसकी पीठ डोरी चढ़ाए हुए धनुषके जैसी थी। उसका उदर कृश था।

वह चंद्रमंडलके समान नखमंडलसे मंडित (शोभता) था। उसका निःश्वास दीर्घ और सुगंधित था। उसकी करांगुली (सूँडका अगला भाग) दीर्घ और चलित (हिलती हुई) थी। उसके होठ, गुह्य-इंद्री और पूँछ बहुत बड़े थे। दोनों तरफ रहे हुए सूरज और चाँदसे, जैसे मेरु पर्वत अंकित होता है वैसेही, दोनों तरफ लटकते हुए दो घंटोंसे वह अंकित था। उसकी दोनों तरफकी डोरियाँ देववृक्षके फूलोंसे गुँथी हुई थीं। मानों आठों दिशाओंकी लक्ष्मियोंकी विभ्रम-भूमियाँ (हिरने-फिरनेके स्थान) हों वैसे सोनेके पत्रोंसे सजाए हुए आठ ललाटों और आठ मुखोंसे वह शोभता था। मानों बड़े पर्वतोंके

शिखर हों ऐसे दृढ़, कुछ टेढ़े, बड़े और ऊँचे आठ आठ दाँत उसके हरेक मुँहमें शोभते थे। उसके हरेक दाँतपर स्वादिष्ट (जायकेदार) और साफ जलवाली एक एक पुष्करिणी (बावड़ी) थी। वह हरेक 'वर्षधर' नामक पर्वतपरके द्रह (गहरी झील) के समान शोभती थी। हरेक पुष्करिणीमें आठ आठ कमल थे; वे ऐसे मालूम होते थे मानों जलदेवियोंने जलसे बाहर मुँह निकाले हैं। हरेक कमलमें आठ आठ बड़े पत्ते थे; वे ऐसे शोभते थे मानों क्रीड़ा करती हुई देवांगनाओंके विश्राम करनेके लिए द्वीप (टापू) हों। हरेक पत्रपर चार तरहके अभिनयोंसे युक्त अलग अलग आठ नाटक हो रहे थे। और हरेक नाटकमें, मानों इसके कल्लोलकी संपत्तिवाले झरने हों ऐसे बत्तीस पात्र (नाटक करनेवाले) थे।

ऐसे उत्तम गजेंद्रपर, अगले आसनपर इंद्र सपरिवार बैठा। हाथीके कुंभस्थलसे उसकी नाक ढक गई। हाथी, इंद्रको उसके परिवारसहित वहाँसे लेकर चला; वह ऐसा मालूम होता था, मानों संपूर्ण सौधर्म देवलोक चलरहा है। क्रमशः अपने शरीरको छोटा बनाता हुआ, मानों पालक विमान हो ऐसे-वह हाथी क्षणमात्रमें उस बगीचेमें जा पहुँचा, जिसको भगवानने पवित्र किया था। दूसरे अच्युत वगैरा इंद्र भी, 'मैं पहले पहुँचूँ, मैं पहले पहुँचूँ' यों सोचते हुए अति शीघ्र देवताओं सहित वहाँ आ पहुँचे। (४००-४२८)

समवसरण

उस समय वायुकुमार देवने अहम्पनको छोड़, समवसरणके लिए एक योजन पृथ्वी साफ की; मेघकुमार देवताओंने सुगंधित

जलकी वर्षा कर पृथ्वीपर छिड़काव किया; उससे ऐसा मालूम हुआ मानो प्रभुके आनेकी बात जानकर पृथ्वीने सुगंधित आँसुओंसे धूप और अर्घ्य उत्क्षिप्त किया है-फैंका है। व्यंतर देवताओंने भक्तिसहित अपनी आत्माके समान उच्च किरणोंवाले, सोने, माणिक और रत्नोंके पत्थरोंका फर्श बनाया। उसपर खुशबूदार पाँच रंगोंके फूल-जिनके वृंत (बोंड़ी) नीचेकी तरफ थे-फैला दिए; वे ऐसे जान पड़ते थे मानो जमीनमेंसे निकले हैं। चारों दिशाओंमें उन्होंने रत्नों, माणिकों और सोनेके तोरण बाँधे, वे उनकी कंठियोंके समान मालूम होते थे। वहाँपर खड़ी कीगई रत्नादिककी पुतलियोंसे निकलते हुए प्रतिबिंब एक दूसरी पुतलीपर गिरते थे; वे ऐसे मालूम होते थे मानो सखियाँ आपसमें गले मिल रही हैं। स्निग्ध इंद्रनीलमणियोंसे गढ़े हुए मगरोंके चित्र, नष्ट हुए कामदेवके छोड़े हुए अपने चिह्नरूपी मगरोंका भ्रम पैदा करते थे। वहाँ सफेद छत्र ऐसे शोभ रहे थे मानों वे भगवानके केवलज्ञानसे पैदा हुई दिशाओंकी प्रसन्नताकी हँसी हैं। ध्वजाएँ फर्रा रही थीं,वे ऐसे मालूम होती थीं मानो भूमिने बड़े आनंदसे नाचनेके लिए अपने हाथ ऊँचे किए हैं। तोरणोंके नीचे स्वस्तिकादि अष्टमंगलोंके चिह्न बनाए गए थे, वे बलि-पट्ट(पूजाके लिए बनाई गई वेदी) के समान मालूम होते थे। वैमानिक देवताओंने समवसरणके ऊपरके भागका प्रथम गढ़ रत्नोंका बनाया था वह ऐसा मालूम होता था मानो रत्नगिरिकी रत्नमय मेखला वहाँ लाई गई है। उस गढ़ पर मणियोंके कंगूरे बनाए गए थे, वे अपनी किरणोंसे आकाशको विचित्र रंगोंके वस्त्रोंवाला बनाते हुएसे जान पड़ते थे।

मध्यमें ज्योतिष्पति देवोंने सोनेका दूसरा गढ़ बनाया। वह उनके अंगकी पिंडरूप बनीहुई ज्योतिसा मालूम होता था। उस गढ़पर रत्नोंके कंगूरे बनाए गए थे, वे ऐसे मालूम होते थे मानों देवताओं और असुरोंकी नारियोंके लिए मुँह देखनेको रत्नमय आइने रखे हैं। भुवनपतिने बाहरी भागमें चाँदीका गढ़ बनाया था, वह ऐसा जान पड़ता था मानों भक्तिसे वैताढ्य पर्वत मंडलरूप (गोल) हो गया है। उस गढ़पर सोनेके विशाल कंगूरे बनाए गए थे, वे देवताओंकी बावड़ियोंके जलमें सोनेके कमलसे मालूम होते थे। वह तीन गढ़ोंवाली जमीन, भुवनपति, ज्योतिष्पति और विमानपति की लक्ष्मी जैसे एक एक गोलाकार कुंडलसे शोभती है, वैसे सुशोभित हुई। पताकाओंके समूहवाले माणिकमय तोरण ऐसे मालूम हो रहे थे, मानों वे अपनी किरणोंसे दूसरी पताकाएँ बना रहे हैं। हरेक गढ़में चार-चार दरवाजे थे, वे चतुर्विध धर्मके लिए क्रीड़ा करनेके झरोखोंसे मालूम होते थे। हरेक दरवाजेपर व्यंतर देवताओं द्वारा रखी हुई धूपदानियाँ, इंद्रनीलमणिके स्तंभोंके समान, धुएँकी रेखाएँ छोड़ रही थीं। (४२१-४४२)

उस समवसरणके हरेक दरवाजेपर गढ़की तरह, चार रस्तों और अंदर सोनेके कमलोंवाली बावड़ियाँ बनाई गई थीं। दूसरे गढ़के ईशान कोनेमें प्रभुके विश्राम करनेके लिए एक देवछंद (वेदिकाके आकारका आसनविशेष) बनाया गया था। अंदर प्रथम गढ़के पूर्व द्वारमें दोनों तरफ, सोनेके समान रंगवाले, दो वैमानिक देवता, द्वारपाल होकर खड़े थे। दक्षिण द्वारमें दोनों तरफ, मानों एक दूसरेके प्रतिबिंब हों ऐसे उज्ज्वल,

व्यंतर देवता द्वारपाल बने थे। पश्चिमके दरवाजेपर, साँझके समान जैसे सूरज और चाँद एक दूसरेके सामने आते हैं वैसही, लाल रंगवाले ज्योतिष्क देवता दरबान बने खड़े थे। और उत्तर-के दरवाजेपर, मानो उन्नत मेघ हों ऐसे, काले रंगवाले भुवन-पति देवता, दोनों तरफ द्वारपाल होकर स्थित थे। (४४३-४८)

दूसरे गढ़के चारों दरवाजोंपर, दोनों तरफ क्रमशः अभय पाश (तरुणास्त्र), अंकुश और मुद्गर धारण किए हुए, श्वेत-मणि, शोणमणि, स्वर्णमणि और नीलमणिके समान कांतिवाली और ऊपर कहा गया है वैसे चारों निकायों (जातियों) की जया, विजया, अजीता औ अपराजिता नामकी दो दो देवियाँ प्रतिहार (दरबान) की तरह खड़ी थीं। (४४६-५०)

अंतिम बाहरके गढ़के चारों दरवाजोंपर,-तुंबरू धारी, खट्वांग (हथियार-विशेष) धारी, मनुष्योंके मस्तकोंकी माला धारण करनेवाले, और जटा-मुकुटवाले, इन्हीं नामोंवाले, चार देवता दरबानकी तरह खड़े थे। (४५१)

समवसरणके बीचमें व्यंतरोंने एक तीन कोस ऊँचा चैत्य-वृक्ष बनाया था; वह मानो तीन रत्नों (ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूपी रत्नों) के उदयके समान मालूम होता था, और उस वृक्षके नीचे विविध-रत्नोंकी एक पीठ (आसन) बनाई थी, और उस पीठपर अनुपम मणियोंका छंदक (वेदिकाके आकारका आसन) बनाया था। छंदकके बीचमें पूर्व दिशाकी तरफ, लक्ष्मीका सार हो ऐसा पादपीठ (पाँव रखनेकी जगह) सहित रत्नोंका सिंहासन बनाया था; और उसपर तीन लोकके स्वामीपनके चिह्नोंके समान उज्ज्वल तीन छत्र रचे थे। सिंहासनके दोनों तरफ दो यक्ष हाथोंमें

चमर लेकर खड़े थे; चमर ऐसे मालूम होते थे मानों हृदयमें भक्ति नहीं समाई थी इसलिए वह बाहर निकल आई और उसीके ये समूह हैं। समवसरणके चारों दरवाजोंपर अनोखी कांतिके समूहवाले धर्मचक्र (प्रत्येक दरवाजेपर एक धर्मचक्र) सोनेके कमलोंमें रखे थे। दूसरी बातें भी जो करनी थीं, व्यंतरोंने वे सभी कीं। कारण साधारण समवसरणमें वेही अधिकारी हैं। (४५२-४५८)

सवेरेके समय चारों तरफके, करोड़ों देवताओंके साथ प्रभु समवसरणमें प्रवेश करनेको चले। उस समय देवता हजार पत्तोंवाले सोनेके नौ कमल बनाकर क्रमशः प्रभुके आगे रखने लगे। उनमेंके दो दो कमलोंपर स्वामी पैर रखने लगे और देवता, ज्योंही प्रभुके पैर अगले कमलोंपर पड़ते थे त्योंही पिछले कमल आगे रख देते थे। जगत्पतिने पूर्वके द्वारसे समवसरणमें प्रवेश किया, चैत्यवृक्षकी प्रदक्षिणा की और फिर वे तीर्थको नमस्कार कर, सूर्य जैसे पूर्वाचलपर चढ़ता है वैसे, जगतके मोहरूपी अंधकारका नाश करने के लिए, पूर्वाभिमुख (पूर्व दिशाकी तरफ मुँहवाले) सिंहासनपर आरूढ़ हुए-बैठे। तब व्यंतरोंने दूसरी तीन दिशाओंमें, रत्नोंके तीन सिंहासनोंपर प्रभुकी रत्नमय तीन प्रतिमाएँ स्थापित कीं। यद्यपि देवता प्रभुके अंगूठेकी प्रतिकृति (नकल) भी यथायोग्य करनेके लायक नहीं हैं, तथापि प्रभुके प्रतापसेही प्रभुकी प्रतिमाएँ यथायोग्य (हूबहू) बनी थीं। प्रभुके मस्तकके (प्रतिमाओंके मस्तकों सहित) चारों तरफ शरीरकी कांतिका मंडल (भामंडल) प्रगट हुआ। उस मंडलके तेजके सामने सूर्यमंडलका तेज खद्योत (जुगनू) के समान मालूम होता था। मेघके

समान गंभीर स्वरवाली दुंदुभि आकाशमें बजने लगी, उसकी प्रतिध्वनिसे चारों दिशाएँ गूँज उठीं। प्रभुके निकट एक रत्नमय ध्वज था, वह ऐसा शोभता था मानों धर्मने यह संकेत करनेके लिए, कि दुनियामें येही एक प्रभु हैं, अपना एक हाथ ऊँचा किया है। (४५६–४६८)

अब विमानपतियोंकी स्त्रियाँ पूर्वद्वारसे आईं, तीन प्रदक्षिणा दे, तीर्थंकर और तीर्थको नमस्कार कर, प्रथम गढ़में साधु-साध्वियोंके लिए जगह छोड़, उनकी जगहके अग्निकोनेमें खड़ी रहीं। भुवनपति, ज्योतिष्क,और व्यंतरोंकी स्त्रियाँ दक्षिण दिशाके द्वारसे प्रवेश कर क्रमशः विमानपतियोंकी स्त्रियोंके समान विधि कर नैऋत्य कोनेमें खड़ी रहीं। भुवनपति,ज्योतिष्क और व्यंतर देवता पश्चिम दिशाके द्वारसे प्रवेश कर, ऊपरकी तरह विधि कर वायव्य दिशामें बैठे। वैमानिक देवता, तथा पुरुष और स्त्रियाँ उत्तर दिशाके द्वारसे प्रवेश कर पूर्व विधिके अनुसार ईशान दिशामें बैठे। वहाँ पहले आए हुए अल्प ऋद्धिवाले, पीछे आनेवाले बड़ी ऋद्धिवालोंको नमस्कार करते और पीछे आनेवाले पहले आए हुओंको नमस्कार करके आगे जाते। प्रभुके समवसरणमें किसीके लिए रोक न थी, कोई विकथा न थी, विरोधियोंमें भी परस्पर वैर नहीं था और किसीको किसीका डर नहीं था। दूसरे गढ़में तिर्यंच आकर बैठे और तीसरे गढ़में सबके वाहन रहे। तीसरे गढ़के बाहरके भागमें कई तिर्यंच,मनुष्य और देवता आते जाते दिखाई देते थे। (४६९–४७७)

इस तरह समवसरणकी रचना होनेके बाद सौधर्म कल्पका इंद्र हाथ जोड़, जगत्पतिको नमस्कार कर, रोमांचित हो,

इस तरह स्तुति करने लगा, "हे स्वामी ! कहाँ आप गुणोंके पर्वत और कहाँ मैं बुद्धिका दरिद्री। फिर भी भक्तिने मुझे अत्यंत वाचाल बना दिया है, इसलिए मैं आपकी स्तुति करता हूँ। हे जगत्पति ! जैसे रत्नोंसे रत्नाकर शोभता है वैसेही आप अनंत ज्ञान-दर्शन-वीर्यके आनंदसे शोभते हैं। हे देव ! इस भरत-क्षेत्रमें बहुत समयसे धर्म नष्ट हो गया है, उस धर्मरूपी वृक्षको पुनः उत्पन्न करनेके लिए आप बीजके समान हैं। हे प्रभो ! आपके महात्म्यकी कोई अवधि (सीमा) नहीं है; कारण अपने स्थानमें रहे हुए अनुत्तर विमानके देवताओंके संदेहोंको यहाँ बैठे हुए भी आप जानते हैं और मिटाते हैं। महान ऋद्धिवाले और कांतिसे प्रकाशमान इन सभी देवताओंको स्वर्गोंमें रहने-का जो सौभाग्य मिला है वह आपकी भक्तिहीका अल्प फल है। मूर्ख आदमीको ग्रंथका अध्ययन (पढ़ना) जैसे दुःखके लिए होता है वैसेही जिन मनुष्योंके मनमें आपकी भक्ति नहीं है उनके बड़े बड़े तप भी व्यर्थ कायक्लेशके लिए ही होते हैं। हे प्रभो ! आपकी स्तुति करनेवाले और निंदा करनेवाले दोनोंपर आप समान भाव रखते हैं; परंतु अचरज इस बातका है कि दोनोंको शुभ और अशुभ फल अलग अलग मिलता है। हे नाथ ! मुझे स्वर्गकी लक्ष्मीसे भी संतोष नहीं है, इससे मैं माँगता हूँ कि मेरे हृदयमें आपकी अक्षय (कभी नाश न होनेवाली) और अपार भक्ति हो।" इंद्र इस तरह स्तुति कर, फिरसे नमस्कार कर नर-नारी और देव-देवांगनाओंसे आगे, (प्रभुके सामने) हाथ जोड़ कर बैठा। (४७८-४८७)

मरुदेवीको केवलज्ञान और मोक्षकी प्राप्ति

उधर अयोध्या नगरीमें विनयी भरत चक्रवर्ती सवेरेही मरुदेवी माताको नमस्कार करने गया। अपने पुत्रके विरहमें रात-दिन रोते रहनेसे उनकी आँखोंमें नीली (आँखोंका एक रोग) रोग हो गया था, इससे उनकी आँखोंकी ज्योति जाती रही थी,-वे देख नहीं सकती थीं, इसीलिए "यह आपका बड़ा पोता आपके चरणकमलोंमें नमस्कार करता है" कहकर भरतने नमस्कार किया। स्वामिनी मरुदेवीने भरतको असीस दी। फिर उनके हृदयमें शोक समाता न हो इस तरह उन्होंने इस तरह बोलना आरंभ किया, "हे पौत्र भरत! मेरा बेटा ऋषभदेव, मुझे, तुझे, पृथ्वीको, प्रजाको और लक्ष्मीको तिनकेकी तरह छोड़कर अकेला चला गया, फिर भी इस मरुदेवीको मौत नहीं आई। मेरे पुत्रके मस्तकपर चाँदकी चाँदनीके जैसा छत्र रहता था, वह (सुख) कहाँ? और अब छत्ररहित होनेसे सारे अंगको संताप पहुँचानेवाले सूर्यकी धूप उसको लगती होगी, वह (दुःख) कहाँ? पहले वह सुंदर चालवाले हाथी वगैरा वाहनों पर सवार होकर फिरता था और अब मुसाफिरकी तरह पैदल चलता है। पहले मेरे पुत्रपर वारांगनाएँ चँवर डुलाती थीं और अब वह डांस, मच्छर आदिकी पीड़ा सहन करता है। पहले वह देवताओंके लाए हुए दिव्य आहारका भोजन करता था और आज अभोजनके समान भिक्षा-भोजन करता है। पहले वह महान ऋद्धिवाला, रत्नोंके सिंहासनपर बैठता था और आज गैंडेकी तरह आसन-रहित रहता है। पहले वह नगररक्षकों और शरीररक्षकोंसे रक्षित नगरमें रहता था और अब सिंह आदि श्वापदों(हिंसक

पशुओं) से भरे हुए वनमें रहता है। अमृतरसके समान दिव्यांगनाओंके गायन सुननेवाले उसके कानोंमें आज सुईके समान चुभनेवाली सर्पोंकी फूत्कार सुनाई देती है। कहाँ उसकी पूर्व स्थिति और कहाँ वर्तमान स्थिति? हाय! मेरा पुत्र कितना दुःख सह रहा है! जो कमलके समान कोमल था वह वर्षाके जलका उपद्रव सहन करता है! हेमंत ऋतुमें अरण्यकी(जंगली) मालतीकी वेलकी तरह हिमपातके (वरफ गिरनेके) क्लेश लाचार होकर सहता है और गरमीके मोसममें वनवासी हाथीकी तरह सूरजकी अति दारुण (वहुत तेज धूपसे) किरणोंसे अधिक कष्ट सहन करता है। इस तरह मेरा पुत्र वनवासी वन, आश्रयहीन साधारण मनुष्यकी तरह अकेला फिरता है और दुःख उठाता है। ऐसे दुःखसे घवराए हुए पुत्रको, मैं हर समय अपनी आँखोंके सामने हो वैसे, देखती हूँ। और सदा ये बातें कह कहकर तुझे भी दुखी वनाती हूँ। (४८८-५०४)

इस तरह घवराई हुई मरुदेवी माताको देख, भरत राजा हाथ जोड़ अमृतके समान वाणीमें वोला, "हे देवी! धीरजके पर्वत समान, वज्रके साररूप और महासत्व (वहुत वड़ी ताकत वाले) मनुष्योंके शिरोमणि मेरे पिताकी माता होकर आप इस तरह दुःख क्यों करती हैं? इस समय पिताजी संसार-समुद्रको तैरनेके लिए प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे समयमें उन्होंने हमारा, हमें गलेमें वँधी हुई शिलाके समान समझ कर, त्याग किया है। वनमें विहार करनेवाले उनके सामने, हिंसक पशु भी पत्थरकी मूर्तिके समान हो जाते हैं-वे उनको कोई भी तकलीफ नहीं पहुँचा सकते। भूख, प्यास और सरदी-गरमी तो पिताजी-

को कर्मोंका नाश करनेमें मददगार हो रहे हैं। अगर आपको मेरी बातपर विश्वास न हो तो, थोड़ेही समयमें आप जब अपने पुत्रके केवलज्ञानके उत्सवकी बात सुनेंगी तब विश्वास हो जाएगा। (५०५-५१०)

उसी समय चोबदारने भरत महाराजको यमक और शमक नामक पुरुषोंके आनेकी सूचना दी। उनमेंसे यमकने भरत-राजाको प्रणाम कर निवेदन किया, "हे देव! आज पुरीमलताल नगरके शकटानन उद्यानमें युगादिनाथको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। ऐसी कल्याणकारी बात निवेदन करते मुझे मालूम होता है कि भाग्योदयसे आपकी अभिवृद्धि हो रही है।"

शमकने ऊँची आवाजमें निवेदन किया, "आपकी आयुधशालामें अभी चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है।"

सुनकर भरत राजा थोड़ी देरके लिए इस चिंतामें पड़े कि उधर पिताजीको केवलज्ञान हुआ है और इधर चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, पहले मुझे किसकी पूजा करनी चाहिए? मगर कहाँ जगतको अभय देनेवाले पिताजी! और कहाँ प्राणियोंका नाश करनेवाला चक्र! इस तरह विचार कर उनने पहले पिताजीकी पूजा करनेके लिए जानेकी तैयारी करनेकी आज्ञा दी; यमक और शमकको बहुतसा इनाम देकर विदा किया और फिर मरुदेवी मातासे निवेदन किया, "देवी! आप सदा करुणवाणीमें कहा करती थीं कि मेरा भिक्षा-आहारी और एकाकी पुत्र दुःखका पात्र है; मगर अब वे तीनलोकके स्वामी हुए हैं। उनकी सम्पत्ति देखिए।" ऐसा कहकर उनको हाथीपर सवार कराया। (५११-५१६)

पीछे मूर्तिमान लक्ष्मी हो वैसे सोने, रत्नों और माणिकके आभूषणवाले घोड़े, हाथी, रथ और पैदल ले भरत महाराज रवाना हुए। अपने आभूषणोंकी कांतिसे जंगम (चलते-फिरते) तोरणकी रचना करनेवाली सेना सहित चलते हुए भरत महाराजने दूरसे ऊपरका रत्नमय गढ़ देखा और मरुदेवी मातासे कहा, "हे देवी! वह देखिए देवियों और देवताओंने प्रभुके समवसरणकी रचना की है। पिताजी चरणकमलकी सेवासे आनंदित देवताओंका वह जय-जयकार शब्द सुनिए। हे माता! मानो प्रभुका वंदी (भाट) हो वैसे गंभीर और मधुर शब्दोंसे आकाशमें बजता हुआ दुंदुभि आनंद उत्पन्न करता है। स्वामीके चरणोंमें वंदना करनेवाले देवताओंके विमानोंमें होती हुई घुंघरुओंकी आवाज हम सुन रहे हैं। स्वामीके दर्शनोंसे हर्षित हुए देवताओंका, मेघकी गर्जनाके समान यह सिंहनाद आकाशमें हो रहा है। ताल, स्वर और राग सहित (प्रभुगुणोंसे) पवित्र बनी हुई गंधर्वोंकी गीति प्रभुकी वाणीकी दासी हो वैसे हमको आनंद देती है।" (५२०-५२७)

भरतकी बातोंसे उत्पन्न हुए, आनंदाश्रुओंसे मरुदेवी माताकी आँखोंके जाले इसी तरह कट गए जिस तरह पानीके प्रवाहसे कीचड़ धुल जाता है। इससे उन्होंने अपने पुत्रकी अतिशय सहित तीर्थंकरपनकी लक्ष्मी निज आँखोंसे देखी। उसके दर्शनसे उपजे हुए आनंदमें, मरुदेवीमाता, लीन हो गईं। तत्कालही समकालमें अपूर्वकरणके क्रमसे क्षपकश्रेणीमें आरूढ़ हो, आठ कर्मोंको क्षीण कर, मरुदेवी माताने केवलज्ञान पाया, और (उसी समय आयुके पूर्ण होनेसे) अंतकृतकेवली हो, हाथीपर बैठे बैठे ही

अव्ययपद-मोक्ष पाया। इस अवसर्पिणी कालमें मरुदेवी माता प्रथम सिद्ध हुईं। देवताओंने उनके शरीरका सत्कार करके उसे क्षीरसागरमें डाला। तभीसे इस लोकमें मृतककी पूजा आरंभ हुई। कहा है कि,—

"यत्कुर्वंति महांतो हि तदाचाराय कल्पते।"

[महापुरुष जो काम करते हैं वह आचार-रिवाज मान लिया जाता है।]

भरतकृत-स्तुति

माता मरुदेवीको मोक्ष पाया जान भरत राजा ऐसे शोक और हर्षसे व्याप्त हो गए जैसे बादलोंकी छाया और सूरजकी धूपसे मिश्रित शरदऋतुका समय (दिन) हो जाता है। फिर भरतने, राज्यचिह्नका त्याग कर, परिवार सहित पैदल चलकर उत्तर दिशाके द्वारसे समवसरणमें प्रवेश किया। वहाँ चारों निकायके देवोंसे घिरे हुए और दृष्टिरूपी चकोरके लिए चंद्रमाके समान प्रभुको देखा। भगवानकी तीन प्रदक्षिणा दे,प्रणाम कर, जुड़े हुए हाथ मस्तकपर रख चक्रवर्तीने इस तरह स्तुति करना आरंभ किया, (५२८-५३७)

हे सारे संसारके नाथ, आपकी जय हो! हे दुनियाको अभय देनेवाले आपकी जय हो! हे प्रथम तीर्थंकर, हे जगतको तारनेवाले आपकी जय हो! आज इस अवसर्पिणीमें जन्मेहुए लोक-रूपी कमलके लिए सूरजके समान प्रभो! तुम्हारे दर्शनसे मेरा अंधकार दूर हुआ है और मेरे लिए सवेरा हुआ है। हे नाथ! भव्यजीवोंके मनरूपी जलको निर्मल करनेकी क्रियामें

कतक (निर्मली) के चूर्ण जैसी आपकी वाणीका जय-जयकार हो! हे करुणाके क्षीरसागर! जो आपके शासनरूपी महारथमें आरूढ़ होते हैं उनके लिए मोक्ष दूर नहीं रहता। हे देव! हे निष्कारण जगतबंधु! हम साक्षात आपके दर्शन कर सकते हैं, इसलिए इस संसारको हम मोक्षसे भी अधिक मानते हैं। हे स्वामी! इस दुनियामें भी हमें, निश्चल नेत्रों द्वारा आपके दर्शन के महानंदरूपी झरनेमें (स्नान करनेसे) मोक्षसुखके स्वादका अनुभव होता है। हे नाथ! रागद्वेष और कषायादि शत्रुओं द्वारा बाँधे हुए इस संसारको आप, अभय-दान देनेवाले और बंधनसे छुड़ानेवाले हैं। हे जगत्पते! आप तत्त्व बताते हैं, मार्ग बताते हैं और संसारकी रक्षा करते हैं, तब इससे विशेष मैं आपसे क्या माँगूँ? जो अनेक तरहके उपद्रवोंसे और लड़ाइयों-से एक दूसरेके गाँवों और देशोंको छीननेवाले राजा हैं, वे सभी आपसमें मित्रभाव धारण कर आपकी सभामें बैठे हैं। आपकी पर्षदामें आया हुआ यह हाथी अपनी सूँड़से केसरी-सिंहके कर (पंजे) को खींचकर उससे बार बार अपने कुंभ-स्थलको खुजाता है। यह महिष (भैंसा) दूसरे महिषकी तरह स्नेहसे बार बार अपनी जीभ द्वारा इस हिनहिनाते घोड़ेको चाटता है। खेलसे अपनी पूँछको हिलाता यह मृग, ऊँचे कान कर और सर झुका अपनी नाकसे इस बाघका मुँह सूँघता है। यह तरुण मार्जार (बिल्ली) आगे-पीछे और आस-पासमें फिरते हुए चूहोंके बच्चोंको अपने बच्चोंकी तरह प्यार करती है। यह भुजंग (साँप) कुंडली-कर, इस नकुलके पास मित्रकी तरह निर्भय बना बैठा है। हे देव! ये दूसरे प्राणी भी—जो सदा आपसमें वैर रखनेवाले हैं—

यहाँ निर्वैर होकर बैठे हैं। इसका कारण आपका अतुल प्रभाव-ही है।" (५३८-५५२)

भरत राजा इस तरह जगत्पतिकी स्तुति कर क्रमशः पीछे हट स्वर्गपति इंद्रके पीछे जा बैठे। तीर्थनाथके प्रभावसे उस योजनमात्र जगहमें करोड़ों प्राणी किसी तरहकी तकलीफके बगैर बैठे हुए थे।

भगवानकी देशना

उस समय सभी भाषाओंको स्पर्श करनेवाली, पैंतीस अतिशयोंवाली और योजनगामिनी वाणीसे प्रभुने इस तरह देशना (उपदेश) देनी शुरू की— "आधि, व्याधि, जरा और मृत्युरूपी सैंकड़ों ज्वालाओंसे भरा हुआ यह संसार सभी प्राणियोंके लिए दहकती हुई आगके समान है। इसलिए विद्वानोंको (समझदारोंको) थोड़ासा प्रमाद भी नहीं करना चाहिए; कारण, रातहीके वक्त मुसाफिरी करने लायक मरुदेशमें कौन ऐसा अज्ञानी होगा जो प्रमाद करेगा ? (मुसाफिरी न करेगा ?) अनेक योनिरूपी आवर्तों (भँवरों) से क्षुब्ध बने हुए संसाररूपी समुद्रमें भटकते हुए प्राणियोंको उत्तम रत्नकी तरह इस मनुष्यजन्मका प्राप्त होना दुर्लभ है। दोहद[1] पूर्ण होनेसे

१—किंवदंति है कि-पहले कई फलदार वृक्ष ऐसे होते थे, जो बड़े होनेपर भी तबतक नहीं फलते थे जब तक उनके तनेमें किसी ऐसी स्त्रीका पैर नहीं लगता था जिसकी पहली संतान पुत्र हो; और जिसको प्रसववेदना अधिक नहीं हुई हो। इसी बातको वृक्षका दोहदपूर्ण होना कहा जाता था।

जैसे वृक्ष फलयुक्त होता है वैसेही परलोकका साधन करनेसे मनुष्य-जन्म सफल होता है। इस संसारमें शठ लोगोंकी वाणी जैसे आरंभमें मीठी और अंतमें कटु फल देनेवाली होती है, वैसेही विषय-वासना विश्वको ठगने और दुःख देनेवाली है। बहुत ऊँचाईका परिणाम जैसे गिरना है वैसेही संसारके अंदरके सभी पदार्थोंके संयोगका अंत वियोगमें है। इस संसारमें सभी प्राणियोंके धन, यौवन और आयु परस्पर स्पर्द्धा करते हों ऐसे जल्दी जानेवाले और नाशमान हैं। मरुदेशमें जैसे स्वादिष्ट जल नहीं होता वैसेही, संसारकी चारों गतियोंमें सुखका लेश भी नहीं होता। क्षेत्र-दोषसे दुःख पाते हुए और परमाधार्मिकोंके द्वारा सताए हुए नारकी जीवोंको तो सुख होही कैसे सकता है? (यानी उन्हें कभी सुख नहीं होता) सरदी, हवा, गरमी और पानीसे इसी तरह वध, बंधन और भूख इत्यादिसे अनेक तरहकी तकलीफ उठाते हुए तिर्यंचोंको भी क्या सुख है? गर्भवास, बीमारी, बुढ़ापा, दरिद्रता और मौतसे होनेवाले दुःखमें सने हुए मनुष्योंको भी कहाँ सुख है? आपसी द्वेष, असहिष्णुता, कलह तथा च्यवन वगैरा दुःखोंसे देवताओंको भी सुख नहीं मिलता। तो भी जल जैसे नीची जमीनकी तरफ बहता है वैसेही प्राणी भी अज्ञानसे बार बार इस संसारहीकी तरफ जाते हैं। इसलिए हे चेतनावाले (ज्ञानवान) भव्यजनो! जैसे दूध पिलाकर सर्पका पोषण करते हैं वैसेही, तुम मनुष्य जन्मसे संसारका पोषण मत करो। हे विवेकियो! इस संसारमें रहनेसे अनेक तरहके दुःख होते हैं, उन सबका विचार करके सब तरहसे मुक्ति पानेका यत्न करो। संसारमें नरकके दुःख जैसा, गर्भवासका दुःख

होता है, वैसा मोक्षमें कभी भी नहीं होता। कुंभीके बीचमेंसे खींचे जानेवाले नारकी जीवोंकी पीड़ाके समान प्रसववेदना मोक्षमें कभी भी नहीं होती। अंदर और बाहर डाले हुए कील-काँटोंके समान पीड़ाके कारणरूप आधि-व्याधि मोक्षमें नहीं होती। यमराजकी अग्रदूती, सब तरहके तेजको चुरानेवाली तथा पराधीनता पैदा करनेवाली जरा (वृद्धावस्था) भी वहाँ बिलकुल नहीं होती। और नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवताओंकी तरह संसारमें भ्रमण करनेकी कारणरूप मौत भी वहाँ नहीं होती। वहाँ मोक्षमें तो महा आनंद, अद्वैत और अव्यय सुख, शाश्वतरूप और केवलज्ञान-सूर्यसे अखंड ज्योति है। हमेशा ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी तीन उज्ज्वल रत्नोंको पालनेवाले (धारण करनेवाले) पुरुषही मोक्षको प्राप्त कर सकते हैं। (५५३-५७७)

ज्ञान

"जीवादि तत्वोंका संक्षेपमें या विस्तारसे यथार्थ ज्ञान होता है, उसको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल इस क्रमसे ज्ञान पाँच तरहका है। उसमेंसे जो अवग्रहादिक भेदोंवाला तथा दूसरे बहुग्राही, अबहुग्राही भेदोंवाला और जो इंद्रिय-अनिंद्रियसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान है उसे मतिज्ञान कहते हैं। जो पूर्व, अंग, उपांग और प्रकीर्णक सूत्र-ग्रंथोंसे विस्तार पाया हुआ और स्यात् शब्दसे लांछित(सुशोभित)अनेक प्रकारका ज्ञान है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। जो देवता और नारकी जीवोंको जन्मसे उत्पन्न होता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं। यह

क्षय और उपशम लक्षणवाला है। और दूसरोंके (मनुष्यों व तिर्यंचोंके) आश्रयसे इसके छः भेद होते हैं। (जिससे दूसरे प्राणियोंके मनकी बात जानी जाती है उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।) मनःपर्ययज्ञानके ऋजुमति और विपुलमति ऐसे दो भेद होते हैं। उनमेंसे विपुलमतिकी विशुद्धि और अप्रतिपातपनसे विशेषता जानना चाहिए। जो समस्त द्रव्य-पर्यायके विषयवाला है, विश्वलोचनके समान अनंत है, एक है और इंद्रियोंके विषय विनाका है वह केवलज्ञान कहलाता है। (५७८-५८४)

सम्यक्त्व

शास्त्रोंमें कहे हुए तत्त्वोंमें रुचि होना सम्यक्श्रद्धा कहलाती है। वह श्रद्धा स्वभावसे और गुरुके उपदेशसे प्राप्त होती है (५८५)

[सम्यक् श्रद्धाकोही सम्यक्त्व या सम्यक्दर्शन कहते हैं।]

इस अनादि अनंत संसारके चक्करमें फिरते हुए प्राणियोंमें ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनी और अंतराय नामके कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीसकोटाकोटि सागरोपमकी है; गोत्र व नामकर्मकी स्थिति बीसकोटाकोटि सागरोपमकी है; और मोहनीय कर्मकी स्थिति सत्तर (७०) कोटाकोटि सागरोपमकी है। अनुक्रमसे फलका अनुभव (उपभोग) करके सभी कर्म, पर्वतसे निकली हुई नदीमें टकराते टकराते पत्थर जैसे गोल हो जाते हैं उसी न्यायसे, अपने आप क्षय हो जाते हैं। इस तरह क्षय होते हुए कर्मकी अनुक्रमसे उन्तीस, उन्नीस और उनहत्तर कोटाकोटि सागरोपम तककी स्थिति क्षय होती है और एककोटाकोटि सागरोपमसे कुछ कम स्थिति बाकी रहती है तब प्राणी यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा

ग्रंथीदेशको प्राप्त होता है। दुःखसे (बहुत कठिनतासे) भेदे जा सकें ऐसे रागद्वेषके परिणामोंको ग्रंथीदेश कहते हैं। वह ग्रंथी काठकी गाँठकी तरह दुरुच्छेद (बहुत मुशकिलसे कटनेवाली) और बहुत मजबूत होती है। जैसे किनारेपर आया हुआ जहाज वायुके वेगसे वापस समुद्रमें चला जाता है वैसेही रागादिकसे प्रेरित कई जीव ग्रंथीको भेदे विनाही ग्रंथीके पाससे लौट जाते हैं। कई जीव, मार्गमें रुकावट आनेसे जैसे सरिताका जल रुक जाता है वैसेही, किसी तरहके परिणामविशेषके वगैरही वहीं रुक जाते हैं। कई प्राणी, जिनका भविष्यमें भद्र (कल्याण) होनेवाला होता है, अपूर्वकरण द्वारा अपना बल प्रकट करके दुर्भेद्य ग्रंथीको उसी तरह शीघ्रही भेद देते हैं जिस तरह बड़े(कठिन) मार्गको तै करनेवाले मुसाफिर घाटियोंके मार्गको लाँघ जाते हैं। कई चार गतिवाले प्राणी अनिवृत्तिकरण द्वारा अंतरकरण करके मिथ्यात्वको विरल (क्षीण) करके अंतर्मुहूर्तमात्रमें सम्यक्‌दर्शन पाते हैं। यह नैसर्गिक (स्वाभाविक) सम्यक् श्रद्धान कहलाता है। गुरु-उपदेशके आलंबन (सहारे) से भव्यप्राणियोंको जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है वह गुरुके अधिगमसे (उपदेशसे)हुआ सम्यक्त्व कहलाता है। (५८६-५९८)

सम्यक्त्वके औपशमिक, सास्वादन, क्षायोपशमिक, वेदक और क्षायिक ऐसे पाँच भेद हैं। जिसकी कर्मग्रंथी भिद गई है ऐसे प्राणीको, जिस सम्यक्त्वका लाभ प्रथम अंतर्मुहूर्तमात्रके लिए होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इसी तरह उपशम श्रेणीके योगसे जिसका मोह शांत हुआ हो ऐसे देही (शरीरधारी आत्मा) को मोहके उपशमसे (जो सम्यक्त्व)

उत्पन्न होता है वह भी औपशमिक सम्यक्त्व कहा जाता है। सम्यक्त्व भावका त्याग करके मिथ्यात्वकी ओर जानेवाले प्राणीको, अनंतानुबंधी कषायके उदय होनेसे उत्कर्षसे छःआवली (समयका एक भाग) तक और जघन्यसे एक समय (समयका एक भाग) तक सम्यक्त्वका परिणाम रहता है, वह सास्वादन सम्यक्त्व कहलाता है। मिथ्यात्व मोहनीके क्षय और उपशमसे जो सम्यक्त्व होता है वह क्षयोपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है; यह सम्यक्त्वमोहनीके परिणामवाले प्राणीको होता है। जो क्षपक-भावको प्राप्त हुआ है, जिसकी अनंतानुबंधी कषायकी चौकड़ी क्षय हो गई है, जिसकी मिथ्यात्व मोहनी और सम्यक्त्व मोहनी अच्छी तरह क्षय हो गई है, जो क्षायक सम्यक्त्वके सम्मुख हुआ है ऐसे, और सम्यक्त्व मोहनीके अंतिम अंशका भोग करनेवाले प्राणीको वेदक नामका चौथा सम्यक्त्व प्राप्त होता है। सातों प्रकृतियोंको (अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी और मिथ्यात्व मोहनी इन सात प्रकृतियोंको) क्षीण करनेवाले और शुभभावोंवाले प्राणीको क्षायिक नामका पाँचवाँ सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

(५९९-६०७)

सम्यक्त्व गुणसे रोचक, दीपक और कारक तीन प्रकारका है। शास्त्रोक्त(शास्त्रोंमें कहे हुए)तत्त्वमें, हेतु और उदाहरणके विना जो दृढ़ विश्वास उत्पन्न होता है उसे रोचक सम्यक्त्व कहते हैं। जो दूसरेके सम्यक्त्वको प्रदीप्त करता है उसे दीपक-सम्यक्त्व कहते हैं और जो संयम तथा तप वगैराको उत्पन्न

करता है उसे कारक सम्यक्त्व कहते हैं। वह सम्यक्त्व शम,[1] संवेग,[2] निर्वेद,[3] अनुकंपा[4] और आस्तिकता इन पाँच लक्षणों से अच्छी तरह पहचाना जाता है। जिसमें अनंतानुबंधी कषाय-का उदय नहीं होता उसे शम कहते हैं; सम्यक् प्रकृतिसे कषाय-के परिणामोंको देखनेका नाम भी शम है। कर्मके परिणामों और संसारकी असारताका विचार करते हुए विषयोंमें जो वैराग्य होता है उसको संवेग कहते हैं। संवेगभाववाले पुरुष-को, विचार आता है कि संसारका निवास काराग्रह (जेलखाना) है और कुटुंबी बंधन हैं। इस विचारहीको निर्वेद कहते हैं। एकेंद्रिय आदि सभी प्राणियोंको संसारसागरमें डूबनेसे जो दुःख होता है उसे देखकर मनमें जो आर्द्रता (दया, उनके दुःख-से मनमें जो दुःख) होती है और उसको मिटानेके लिए जो यथाशक्ति प्रवृत्ति की जाती है उसे अनुकंपा कहते हैं। दूसरे तत्त्वोंको सुनते हुए भी आर्हत् (अरिहंतके कहे हुए) तत्त्वोंमें जो प्रतिपत्ति (गौरव या विश्वास) रहती है उसे आस्तिकता कहते हैं। इस तरह सम्यक्दर्शनका वर्णन किया गया है। उसकी प्राप्ति थोड़ी देरके लिए होनेपर भी पूर्वका जो मति-अज्ञान होता है वह नष्ट होकर मतिज्ञानके रूपमें बदल जाता है; श्रुत-अज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान हो जाता है और विभंग-ज्ञान नष्ट होकर अवधिज्ञान हो जाता है। (६०८–६१९)

चारित्र

सभी सावद्ययोगोंको (ऐसे कामोंको जिनसे कोई हिंसा

१–इंद्रियोंका संयम। २–वैराग्य। ३–आसक्ति रहित। ४–दया

हो) छोड़नेका नाम चारित्र है। वह अहिंसादि व्रतोंके भेदसे पाँच प्रकारका है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच व्रत पाँच भावनाओंसे युक्त होनेसे मोक्षके कारण होते हैं। प्रमाद (असावधानी) के योगसे त्रस और स्थावर जीवोंके प्राणोंको नाश न करना अहिंसाव्रत कहलाता है। प्रिय, हितकारी और सत्य वचन बोलना सुनृत (सत्य) व्रत कहलाता है; अप्रिय और अहितकारी सत्यवचनको भी असत्यके समानही समझना चाहिए। अदत्त (न दी हुई) वस्तुको ग्रहण न करना अस्तेय या अचौर्य व्रत कहलाता है; कारण,—

"बाह्यप्राणा नृणामर्थो हरता तं हृता हि ते।"

[धन मनुष्यके बाहरी प्राण हैं;इससे जो किसीका धन लेता है वह उसके प्राणही लेता है] दिव्य (वैक्रिय) और औदारिक शरीरसे अब्रह्मचर्यसेवनका-मन, वचन और कायासे; करने, कराने और अनुमोदन करनेका-त्याग करना ब्रह्मचर्यव्रत कहलाता है। इसके अठारह भेद हैं। सभी चीजोंसे मूर्च्छा (मोह) का त्याग करना अपरिग्रहव्रत कहलाता है। कारण, मोहसे न होनेवाली वस्तुमें भी चित्तका विप्लव होता है-(जो बात होनेवाली नहीं है उसके लिए भी मनमें व्याकुलता होती है।) यतिधर्मसेमें अनुरक्त यतींद्रोंके लिए (इन पाँचों व्रतोंको) सर्वसे (यानी पूरी तरहसे पालना) औ गृहस्थोंके लिए देशसे (कुछ छूट रखकर पालना) चारित्र कहा है। (६२०-६२७)

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत मिलाकर

गृहस्थोंके लिए बारह व्रत हैं। ये सम्यक्त्वके मूल हैं। पंगु, कोढ़ी और कूणित्व (अंगका अव्यवस्थित) होना हिंसाका फल है;इसलिए बुद्धिमान पुरुषोंको संकल्पसे (इरादापूर्वक) निरपराध (वेगुनाह त्रस जीवोंकी) हिंसा करनेका त्याग करना चाहिए। मनमनत्व, काहलपन (मुँहका एक रोग), मूकता (गूँगापन), और मुखरोग, इनको झूठके फल जान, कन्या संबंधी झूठ वगैरा पाँच असत्योंको छोड़ देना चाहिए। कन्या, गाय और भूमि संबंधी झूठ बोलना, धरोहर दबाना और झूठी साक्षी देना ये पाँच स्थूल (मोटे) असत्य कहलाते हैं। दुर्भाग्य, प्रेष्यता, (कासिदका काम) दासता, अंगका छिदना और दरिद्रता, इनको अदत्तादानका फल जान स्थूल चौर्यका त्याग करना चाहिए। नपुंसकता, और इंद्रियके छेदको अब्रह्मचर्यका फल जान, बुद्धिमान पुरुषको स्वस्त्रीमें संतोष और परस्त्रीका त्याग करना चाहिए। असंतोष, अविश्वास, आरंभ और दुःख, इन सबको परिग्रहकी मूर्च्छाका (तीव्र इच्छाका) फल जान परिग्रहका प्रमाण करना चाहिए। (ये पाँच अणुव्रत कहलाते हैं)।

दशों दिशाओंमें निर्णय की हुई सीमासे आगे न जाना, दिग्व्रत नामक पहला गुणव्रत कहलाता है। शक्ति होते हुए भी भोग और उपभोग करनेकी संख्या ठहराना भोगोपभोग प्रमाण नामका दूसरा गुणव्रत कहलाता है। आर्त और रौद्र नामक बुरे ध्यान करना, पापकर्मका उपदेश देना, किसीको ऐसे साधन देना जिनसे हिंसा हो तथा प्रमादाचरण, इन चारोंको अनर्थदंड कहते हैं; शरीरादि अर्थदंडके प्रतिपक्षी अनर्थदंडका त्याग करना

तीसरा गुणव्रत कहलाता है।

आर्त और रौद्र ध्यानका त्याग कर, सावद्य (हिंसा हो ऐसे) कामोंको छोड़, मुहूर्त (दो घड़ी) तक समता धारण करना सामायिक व्रत कहलाता है।

दिन और रात्रि संबंधी दिग्व्रतमें प्रमाण किया हुआ हो, उसमें भी कमी करना देशावकाशिक व्रत कहलाता है।

चार पर्वणियोंके दिन (दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशीके दिन,) उपवासादि तप करना, कुव्यापारका (संसारसे संबंध रखनेवाले सभी कामोंका) त्याग करना, ब्रह्मचर्य पालना और दूसरी स्नानादिक क्रियाओंका त्याग करना, पौषधव्रत कहलाता है।

अतिथि (साधु) को चतुर्विध (अशन-रोटी आदि भोजन, पान-पीने योग्य चीजें, खादिम-फल मेवा वगैरा, स्वादिम-लौंग, इलायची वगैरा) आहार, पात्र, वस्त्र और स्थान (रहनेकी जगह) का दान करना अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है। (६२८-६४२)

यतियों (साधुओं) को और श्रावकोंको, मोक्षकी प्राप्तिके लिए सम्यक् ऐसे इन तीन रत्नोंकी हमेशा उपासना करना चाहिए।" (६४३)

तीर्थ (चतुर्विध संघ) की स्थापना

ऐसी देशना सुनकर तत्कालही भरतके पुत्र ऋषभसेनने प्रभुको नमस्कार कर विनती की, "हे स्वामी! कषायरूपी दावानलसे दारुण (भयंकर) इस संसाररूपी जंगलमें आपने नवीन मेघके समान अद्वितीय तत्त्वामृत बरसाया है। हे जगत्पति! जैसे

डूबते हुए मनुष्योंको जहाज मिलता है,प्यासे आदमियोंको प्याऊ मिलती है, सरदीसे व्याकुल आदमियोंको आग मिलती है, धूपसे घबराए हुए मनुष्योंको पेड़की छाया मिलती है, अंधकारमें डूबे हुओंको दीपक मिलता है, दरिद्रीको धन मिलता है, विषपीड़ितों-को अमृत मिलता है, रोगियोंको दवा मिलती है, दुष्ट शत्रुओंसे घबराए हुए लोगोंको किलेका आश्रय मिलता है, वैसेही दुनियासे डरे हुए लोगोंको आप मिले हैं। इसलिए हे दयानिधि! रक्षा कीजिए! रक्षा कीजिए! पिता,भाई,भतीजे और दूसरे सगे-संबंधी संसारभ्रमणके हेतुरूप होनेसे अहितकारियोंके समान हैं, इस-लिए इनकी क्या जरूरत है? हे जगतशरण्य! हे संसारसमुद्र-से तारनेवाले! मैंने तो आपका सहारा लिया है, इसलिए मुझ-पर प्रसन्न हूजिए और मुझे दीक्षा दीजिए।" (६४३-६५०)

इस तरह निवेदन कर ऋषभसेनने भरतके अन्य पाँचसौ पुत्रों और सातसौ पौत्रोंके साथ व्रत ग्रहण किया(दीक्षा ली)। सुर-असुरोंके द्वारा कीगई प्रभुके केवलज्ञानकी महिमा देखकर भरतके पुत्र मरीचिने भी व्रत ग्रहण किया। भरतके आज्ञा देनेसे ब्राह्मीने भी दीक्षा लेली। कारण—

"गुरूपदेशः साक्ष्येव प्रायेण लघुकर्मणाम्।"

[लघु कर्मवाले जीवोंके लिए गुरुका उपदेश प्रायः साक्षी मात्रही होता है।] (६५१-६५३)

बाहुबलीके मुक्त करनेसे सुंदरी भी दीक्षा लेना चाहती थी, परंतु भरतने मना किया, इसलिए वह प्रथम श्राविका हुई। भरतने भी प्रभुके निकट श्रावकपन स्वीकार किया। कारण, भोगकर्म भोगे विना कभी भी व्रत (चारित्र) की प्राप्ति नहीं

होती। मनुष्य, तिर्यंच और देवताओंकी पर्षदाओंमेंसे किसीने साधुव्रत ग्रहण किया, किसीने श्रावकव्रत लिया और किसीने सम्यक्त्व धारा। उन राजतापसोंमें कच्छ और महाकच्छके सिवा दूसरे सभी तापसोंने स्वामीके पास आकर हर्ष सहित पुनः दीक्षा ली। इसी समयसे चतुर्विध संघकी व्यवस्था हुई। उसमें ऋषभसेन (पुंडरीक) वगैरा साधु, ब्राह्मी वगैरा साध्वियाँ, भरत वगैरा श्रावक और सुंदरी वगैरा श्राविकाएँ थे। यह चतुर्विध संघकी व्यवस्था तबसे अबतक धर्मके एक श्रेष्ठ गृहरूप होकर चल रही है।

चतुर्दशपूर्व और द्वादशांगीकी रचना

उस समय प्रभुने गणधर नामकर्मवाले ऋषभसेन वगैरा चौरासी सद्बुद्धिवाले साधुओंको, सभी शास्त्र जिनमें समा जाते हैं ऐसी उत्पाद, विनाश (व्यय) और ध्रौव्य इन नामोंवाली पवित्र त्रिपदीका उपदेश दिया। उस त्रिपदीके अनुसार गणधरोंने अनुक्रमसे चतुर्दशपूर्व और द्वादशांगीकी रचना की। फिर देवताओंसे घिरा हुआ इंद्र, दिव्यचूर्णसे पूरा भरा हुआ एक थाल लेकर प्रभुके चरणोंके पास खड़ा रहा। भगवानने खड़े होकर उनपर चूर्ण डाला और सूत्रसे, अर्थसे, सूत्रार्थसे, द्रव्यसे, गुणसे, पर्यायसे और नयसे उनको अनुयोग-अनुज्ञा (आज्ञा) दी, तथा गणकी आज्ञा भी दी। उसके बाद देवता, मनुष्य और उनकी स्त्रियोंने दुंदुभिकी ध्वनिके साथ उनपर चारोंतरफसे वासक्षेप किया (चूर्णविशेष डाला)। मेघके जलको ग्रहण करनेवाले वृक्षोंकी तरह प्रभुकी वाणीको ग्रहण करनेवाले सभी गणधर हाथ जोड़कर खड़े रहे। फिर भगवानने पूर्ववत पूर्वाभिमुख

सिंहासन पर बैठकर पुनः उपदेशप्रद धर्मदेशना दी। इस तरह प्रभुरूपी समुद्रमेंसे उठी हुई देशनारूपी उद्दामवेला (ज्वार) की मर्यादाके समान प्रथम पौरुषी (पहर) पूरी हुई। (६५४-६६६)

उस समय, छिलकोंसे रहित, अखंड और उज्ज्वल शालि (चावल) से बनाया हुआ और थालमें रखा हुआ चार प्रस्थ (सेर) बलि समवसरणके पूर्वद्वारसे अंदर लाया गया। देवताओंने उसे, खुशबू डालकर दुगना सुगंधित बना दिया था। प्रधान पुरुष उसे उठाए हुए थे। भरतेश्वरने उसे बनवाया था। और उसके आगे दुंदुभि बज रहे थे। उनकी निर्घोष (ध्वनि) से दिशाओंके मुखभाग प्रतिघोषित (प्रतिध्वनित) हो रहे थे। उसके पीछे मंगलगीत गाती हुईं स्त्रियाँ चल रही थीं; मानो प्रभुके प्रभावसे जन्माहुआ, पुण्यका समूह हो वैसे वह चारों तरफसे पुरवासियोंसे घिरा हुआ था। फिर मानों कल्याणरूपी धान्यका बीज बोनेके लिए हो वैसे वह बलि प्रभुकी प्रदक्षिणा कराके उछाला गया। मेघके जलको जैसे चातक ग्रहण करता है वैसेही आकाशसे गिरते हुए उस बलिके आधे भागको देवताओंने अंतरिक्षमेंही (जमीनपर गिरनेसे पहलेही) ग्रहण कर लिया। पृथ्वीपर गिरनेके बाद उसका (गिरे हुएका) आधा भाग भरत राजाने लिया और जो शेष रहा उसको गोत्रवालोंकी तरह लोगोंने बाँट लिया। उस बलिके प्रभावसे पहले हुए रोग नाश होते थे और छःमहीने तक फिरसे नए रोग पैदा नहीं होते थे। (६७०-६७७)

फिर सिंहासनसे उठकर प्रभु उत्तरके मार्गसे बाहर निकले। जैसे कमलके चारों तरफ भौंरे फिरते हैं वैसेही सभी इंद्र भी

प्रभुके साथ चले। रत्नमय और स्वर्णमय वप्र (टेकरी) के मध्यभागमें, ईशानकोनमें स्थित, देवछंदपर प्रभु विश्राम लेनेके लिए बैठे। उस समय भगवानके मुख्य गणधर ऋषभसेनने, भगवंतकी पादपीठ (पैर रखनेकी जगह) पर बैठकर, धर्मदेशना देनी शुरू की। कारण, स्वामीको थकानमें आनंद, शिष्योंका गुणदीपन (गुण प्रकाशन) और दोनों तरफ प्रतीति (विश्वास) ये गणधरकी देशनाके गुण हैं। जब गणधरका व्याख्यान समाप्त हुआ तब सभी प्रभुको वंदना कर अपने अपने स्थानपर गए। (६७८-६८२)

इस तरह तीर्थकी स्थापना होनेपर गोमुख नामका एक यक्ष, जो प्रभुके पास रहता था, अधिष्ठायक हुआ। उसके चार हाथ थे। उसकी दाहिनी तरफके दो हाथोंमेंसे एक हाथ वरदान चिह्नवाला (वरदान देनेकी मुद्रामें) था और दूसरेमें उत्तम अक्षमाला शोभती थी; बाई तरफके दो हाथोंमें बीजोरा और पाश (रस्सी) थे। उसका वर्ण सोनेके जैसा और वाहन हाथी था। उसी तरह ऋषभदेव प्रभुके तीर्थमें उनके पास रहनेवाली एक प्रतिचक्रा (चक्रेश्वरी) नामक शासन-देवी हुई। उसकी कांति स्वर्णके समान थी और उसका वाहन गरुड़ था। उसकी दाहिनी भुजाओंमें वर देनेवाला चिह्न, बाण, चक्र और पाश थे और बाएँ हाथोंमें धनुष, वज्र, चक्र और अंकुश थे।

(६८३-६८६)

नक्षत्रोंसे घिरे हुए चंद्रमाकी तरह महर्षियोंसे घिरे हुए भगवानने दूसरी जगह विहार किया। मानो भक्तिवश होकर मार्गमें जाते प्रभुको वृक्ष नमस्कार करते थे, काँटे औंधे-

मुँह हो जाते थे और पक्षी प्रदक्षिणा देते थे। विहार करते हुए प्रभुकी इंद्रियोंके लिए ऋतुएँ और वायु अनुकूल हो जाते थे। कमसे कम एक करोड़ देवता उनके पास रहते थे। मानों भवांतरमें जन्मे हुए कर्मोंको नाश करते हुए देखकर भयभीत हुए हों ऐसे जगत्पतिके केश, श्मश्रु (डाढ़ी) और नाखून बढ़ते न थे। प्रभु जहाँ जाते थे वहाँ वैर, मारी, ईति, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, दुर्भिक्ष और स्वचक्र तथा परचक्रसे होनेवाला भय,—ये उपद्रव होते न थे। इस तरह विश्वको विस्मयों (अचरजों) से युक्त होकर संसारमें भटकनेवाले जगतके जीवोंपर अनुग्रह (मेहरबानी) करनेका विचार रखनेवाले नाभेय (नाभिराजाके पुत्र) भगवान वायुकी तरह पृथ्वीपर अप्रतिबद्ध (बेरोक-टोक) विहार करने लगे। (६८७–६९२)

आचार्य श्री हेमचंद्रविरचित, त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित नामक महाकाव्यके प्रथम पर्वमें, भगवद्दीक्षा, छद्मस्थ, विहार, केवलज्ञान और समवसरण-वर्णन नामका तीसरा सर्ग पूर्ण हुआ।

卐

चतुर्थ सर्ग

भरतका चौदह रत्न पाना और दिग्विजय करना

अब वहाँ अतिथिकी तरह चक्रके लिए उत्कंठित भरत राजा विनीता नगरीके मध्यमार्गसे होकर आयुधागारमें पहुँचे। चक्रको देखते ही राजाने उसको प्रणाम किया। कारण—

"मन्यंते क्षत्रिया ह्यस्त्रं प्रत्यक्षमधिदैवतम्।"

[क्षत्रिय लोग शस्त्रको साक्षात देवता या परमेश्वर मानते हैं।] भरतने रोमहस्तक (पोंछनेका एक वस्त्र) हाथमें लेकर चक्रको पोंछा। यद्यपि चक्ररत्नपर रज नहीं होती, तोभी भक्तों-की यह रीति है। फिर उदय होते हुए सूर्यको जैसे पूर्वसमुद्र स्नान कराता है वैसेही महाराजाने चक्ररत्नको पवित्र जलसे स्नान कराया। मुख्य गजपतिके पिछले भागकी तरह उसपर गोशीर्ष-चंदनका पूज्यतासूचक तिलक किया। फिर साक्षात जयलक्ष्मी-की तरह पुष्प, गंध, वासचूर्ण, वस्त्र और आभूषणोंसे उसकी पूजा की। उसके आगे चाँदीके चावलोंसे अष्टमंगल चित्रित किए और उन जुदा जुदा मंगलोंसे आठों दिशाओंकी लक्ष्मीको घेर लिया। उसके पास पाँच वर्णोंके फूलोंका उपहार रख पृथ्वीको विचित्र वर्णोंवाली बनाया। और शत्रुओंके यशकी तरह यत्न-पूर्वक चंदन-कपूरमय उत्तम धूप जलाया। फिर चक्रधारी भरत राजाने चक्रको तीन प्रदक्षिणा दी और गुरु-भावनासे वह सात आठ कदम पीछे हटा। जैसे हमको कोई स्नेही मनुष्य नमस्कार

करता है वैसे, उसने बायाँ घुटना सिकोड़ दाहिना घुटना जमीन पर रख, चक्रको नमस्कार किया। फिर मानो रूपधारी हर्षही हो वैसे पृथ्वीपतिने वहीं रहकर चक्रका अष्टाहिका उत्सव किया। कारण—

'पूजितैः पूज्यमानो हि केन केन न पूज्यते ?"

[पूज्य जिसकी पूजा करते हैं उसकी पूजा कौन नहीं करता ?]

(१-१३)

फिर उस चक्रके दिग्विजयरूप उपयोगको ग्रहण करनेके लिए भरत राजाने मंगलस्नानके लिए स्नानागारमें प्रवेश किया। आभूषण उतार, नहाने लायक कपड़े पहन,महाराज पूर्वकी तरफ मुँह कर स्नानसिंहासन (नहानेकी चौकी) पर बैठे। तब मालिश करने और न करने लायक स्थानको और मालिशकी कलाको जाननेवाले संवाहक (मालिश करनेवाले) पुरुषोंने देववृक्षके पुष्पके मकरंद (फूलोंके रस) के समान सुगंधित सहस्रपाक तेलसे महाराजके शरीरपर मालिश की। मांस, हाड़, चाम और रोमको सुख पहुँचानेवाली चार तरहकी मालिशसे और मृदु,मध्य और दृढ़ ऐसे तीन तरहके हस्तलाघव(हाथकी सफाई) से उन्होंने राजाके शरीरपर अच्छी तरह मालिश की; फिर उन्होंने आदर्श की तरह अम्लान (स्वच्छ) कांतिके पात्ररूप उस महिपतिके सूक्ष्म दिव्य चूर्णका उबटन लगाया। उस समय ऊँची नालके कमलोंवाली सुंदर वापिकाके समान सुशोभित कई स्त्रियाँ जलसे भरे सोनेके घड़े लेकर खड़ी हुईं; कई स्त्रियाँ, मानों जल घनरूप होकर कलशका आधार रूप हुआ हो ऐसे दिखाई देनेवाले, चाँदीके कलश लेकर खड़ी थीं; कई स्त्रियोंने अपने सुन्दर हाथोंमें

लीलामय (खेलते हुए) नीलकमलकी भ्रांति पैदा करनेवाले इंद्र-नीलमणिके घड़े लिए थे और कई सुभ्रू (सुन्दर भौंहोंवाली) वालाओंने अपने नखरत्नकी कांतिरूपी जलसे अधिक शोभा-वाले दिव्य रत्नमय कुंभ लिए थे। इन सभी स्त्रियोंने देवता जैसे जिनेंद्रको स्नान कराते हैं वैसे अनुक्रमसे सुगंधित और पवित्र जलधारासे धरणीपतिको स्नान कराया। स्नान करके राजाने दिव्य विलेपन कराया, दिशाओंकी चमकके समान उजले कपड़े पहने, और ललाटपर मंगलमय चंदनका तिलक किया; वह यशरूपी वृक्षका नवीन अंकुर जान पड़ता था। आकाश जैसे बड़े तारोंके समूहको धारण करता है वैसेही अपने यशपुंजके समान उजले मोतियोंके आभूषण उसने पहने। और कलशसे जैसे प्रासाद (महल) शोभता है वैसेही, अपनी किरणोंसे, सूर्य-को लजानेवाले मुकुटसे, वह शोभित हुआ। वारांगनाओंके करकमलोंसे बार बार डुलते हुए और कानोंके लिए आभूषणके समान बने हुए दो चामरोंसे वह विराजने (शोभने लगा)। लक्ष्मीके सदनरूप (घरके समान) कमलोंको धारण करनेवाले पद्म-द्रहसे (कमलोंके सरोवरसे) जैसे चूलहिमवंत नामका पर्वत शोभता है वैसेही सोनेके कलशवाले सफेद छत्रसे वह सुशोभित होने लगा। सदा पासही रहनेवाले प्रतिहार (दरबान) हों वैसे सोलहहजार यक्ष भक्त बनकर उसके आस-पास जमा हो गए। फिर इंद्र जैसे ऐरावण हाथीपर सवार होता है वैसेही, ऊँचे कुंभस्थलके शिखरसे दिशारूपी मुखको ढकनेवाले रत्नकुंजर नामक हाथीपर वह सवार हुआ। तत्कालही उत्कट (बड़ी) मदकी धाराओंसे दूसरे मेघके समान मालूम होनेवाले उस

जातिवंत हाथीने गंभीर गर्जना की। मानों आकाशको पल्लवित करते हों वैसे दोनों हाथ ऊँचे कर बंदीवृंदने (चारणोंके समूहने) एक साथ जय-जय शब्दका उच्चारण किया। जैसे वाचाल गायक पुरुष अन्य गानेवालियोंको गवाता है, वैसेही दुंदुभि ऊँची आवाजसे दिशाओंसे नाद कराने लगा। और सभी सैनिकोंको बुलानेके काममें दूतरूप बने हुए दूसरे मंगलमय श्रेष्ठ बाजे भी बजने लगे। धातुसहित पर्वत हों वैसे, सिंदूर धारण करनेवाले हाथियोंसे, अनेक रूप बने हुए रेवंत अश्वों (सूर्यके घोड़ों) का भ्रम करानेवाले अनेक घोड़ोंसे, अपने मनोरथके समान विशाल रथोंसे, और सिंहोंको वशमें किए हों वैसे पराक्रमी प्यादोंसे अलंकृत महाराजा भरतेश्वरने, मानो वे सैनाके (पैरोंसे) उड़ती हुई धूलिसे दिशाओंको दुपट्टेवाली बनाते हों वैसे, पूर्व दिशाकी तरफ प्रयाण किया। (१४–३६)

उस समय आकाशमें फिरते हुए सूर्यके बिंब जैसा, हजार यक्षों द्वारा अधिष्ठित (सेवित) चक्ररत्न सेनाके आगे चला। दंडरत्नको धारण करनेवाला सुषेण नामका सेनापतिरत्न अश्वरत्न पर सवार हो चक्रकी तरह आगे चला। शांति करानेकी (अनिष्टोंको मिटानेकी) विधिमें देहधारी शांतिमंत्र हो वैसा पुरोहितरत्न राजाके साथ चला। जंगम अन्नशालाके समान और सेनाके लिए हरेक मुकाम पर उत्तम भोजन उत्पन्न करनेमें समर्थ गृहपतिरत्न; विश्वकर्माकी तरह शीघ्रही स्कंधावार (सेनाके लिए रस्तेमें रहनेकी व्यवस्था) करनेमें समर्थ वर्द्धकिरत्न; और चक्रवर्तीकी स्कंधावार (छावनी) के प्रमाण (लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई) के अनुसार विस्तार पानेकी (छोटा बड़ा होनेकी)

शक्तिवाले चर्मरत्न और छत्ररत्न—ये सब महाराजके साथ चले। अपनी ज्योतिसे, सूरज और चाँदकी तरह अंधकारका नाश करनेमें समर्थ मणि और कांकिणी नामके दो रत्न भी चले; और सुरों व असुरोंके श्रेष्ठ अस्त्रोंके सारसे बनाया गया हो ऐसा प्रकाशित खड्गरत्न नरपतिके साथ चलने लगा। (४०-४७)

सेना सहित चक्रवर्ती भरतेश्वर प्रतिहारकी तरह चक्रके पीछे पीछे चला। उस समय ज्योतिषियोंकी तरह अनुकूल पवनने और अनुकूल शकुनोंने सब तरहसे उसके दिग्विजयकी सूचना दी। किसान जैसे हलसे जमीनको समान करता है वैसे सेनाके आगे चलते हुए सुषेण सेनापति दंडरत्नसे आसमान रस्तोंको समान करता जाता था। सेनाके चलनेसे उड़ी हुई रजसे दुर्दिन (धूलिपूर्ण) बना हुआ आकाश रथों और हाथियोंपर उड़ते हुए पताकाओंरूपी बगुलोंसे सुशोभित होता था। जिसका अंतिम भाग दिखाई नहीं देता ऐसी चक्रवर्तीकी सेना निरंतर बहनेवाली, दूसरी-गंगा नदी मालूम होती थी। दिग्विजयके उत्सवके लिए, रथ चीत्कार शब्दोंसे, घोड़े हिनहिनाहटसे और हाथी गर्जनाओंसे, आपसमें शीघ्रता करने लगे थे। सेनासे रज उड़ती थी, तो भी सवारोंके भाले उसमें चमक रहे थे; वे मानो ढकी हुई सूरजकी किरणोंका परिहास कर रहे थे। सामानिक देवताओंसे घिरे हुए इंद्रकी तरह मुकुटधारी और भक्तिवान राजाओंसे घिरा हुआ राजकुंजर (राजाओंमें श्रेष्ठ) भरत बीचमें शोभता था।

चक्र पहले दिन एक योजन चलकर रुक गया। तभीसे उस प्रयाणके अनुमानसे योजनकी नाप चली। हमेशा एक एक योजन चलते हुए राजा भरत कई दिनोंके बाद गंगाके दक्षिण किनारेके

नज़दीक जा पहुँचे। महाराजाने गंगातटकी विस्तृत भूमिको भी, अपनी सेनाकी जुदा जुदा छावनियोंसे, संकुचित बनाकर उस-पर विश्राम किया। उस समय गंगातटकी जमीन, बरसातके मौसमकी तरह हाथियोंके झरते मदसे पंकिल (कीचड़वाली) हो गई। मेघ जैसे समुद्रसे जल ग्रहण करता है, वैसे गंगाके निर्मल प्रवाहमेंसे, उत्तम हाथी इच्छापूर्वक जल ग्रहण करने लगे। अति चपलतासे बार बार कूदते हुए घोड़े, गंगातटमें तरंगोंका भ्रम पैदा करने लगे; और बहुत मेहनतसे गंगाके अंदर घुसे हुए हाथी, घोड़े, भैंसे और ऊँट, उस उत्तम सरिताको, चारों तरफसे नवीन जातिकी मछलियोंवाली बनाने लगे। अपने तटपर रहे हुए राजाको मानो अनुकूल होती हो वैसे गंगानदी अपनी उछलती हुई तरंगोंकी बूँदोंसे सेनाकी थकानको शीघ्रतापूर्वक मिटाने लगी। महाराजाकी बड़ी सेनासे सेवित गंगानदी शत्रुओं-की कीर्तिकी तरह क्षीण होने लगी। भागीरथी (गंगा) के किनारे उगे हुए देवदारुके वृक्ष सेनाके हाथियोंके लिए, विनाही मेहनतके बंधन-स्थान हो गए। (४८-६५)

महावत हाथियोंके लिए पीपल, सल्लकी (चीड़), कर्णिकार (कनेर) और उदुंबर (गूलर) के पत्तोंको कुल्हाड़ियोंसे काटते थे अपने ऊँचे किए हुए कर्णपल्लवोंसे (कानरूपी पत्तोंसे) मानो तोरण बनाते हों वैसे पंक्तिरूप बँधे हुए हजारों घोड़े शोभते थे। अश्वपाल (साईस) भाईकी तरह मूँग, मोठ, चने और जौ वगैरा लेकर घोड़ोंके सामने रखते थे। महाराजाकी छावनीमें अयोध्यानगरीकी तरह थोड़ेही समयमें चौक, तिराहे और दुकानोंकी पंक्तियाँ हो गईं थीं। गुप्त, बड़े और मोटे कपड़ेके

सुंदर तंबुओंमें अच्छी तरहसे रहते हुए सेनाके लोग अपने महलोंको भी याद नहीं करते थे। खेजड़ी, कर्कंधु (बेर) और वत्थूल (केर) के समान काँटेदार वृक्षोंको चूँटनेवाले (टहनियों और पत्तोंको खानेवाले) ऊँट सेनाके काँटे चुननेवाले हों ऐसे मालूम होते थे। स्वामीके सामने नौकरोंकी तरह खच्चर गंगाके रेतीले तीरपर अपनी चाल चलते और लोटते थे। कई आदमी लकड़ियाँ लाते थे, कई नदीसे पानी लाते थे, कई दूबके बोझे लाते थे और कई शाक फलादि लाते थे। कई चूल खोदते थे, कई शालि कूटते थे, कई आग जलाते थे, कई भात पकाते थे, कई घरकी तरह एक तरफ निर्मल जलसे स्नान करते थे, कई सुगंधित धूपसे शरीरको धूपित करते थे, कई पदातियोंको (प्यादोंको) पहले भोजन कराकर खुद बादमें आरामसे भोजन करते थे और कई स्त्रियोंसहित अपने अंगपर विलेपन करते थे। चक्रवर्तीकी छावनीमें सभी चीजें आसानीसे मिल सकती थीं इसलिए कोई अपनेको फौजमें आया हुआ मानता न था। (६६-७७)

भरत एक दिन-रात रहकर सवेरेही वहाँसे विदा हुए और उस दिन भी एक योजन चलनेवाले चक्रके पीछे एक योजन चले। इस तरह हमेशा एक योजन प्रमाणसे चक्रके पीछे चलनेवाला चक्रवर्ती मागधतीर्थ पहुँचा। वहाँ पूर्व समुद्रके तटपर महाराजाने छावनी डाली। वह बारह योजन लंबी और नौ योजन चौड़ी थी। वर्द्धकी रत्नने वहाँ सारी सेनाके लिए आवास (मकान) बनाए। धर्मरूपी हाथीकी शालारूप पौषधशाला भी बनाई। केसरीसिंह जैसे पर्वतसे उतरता है वैसेही महाराजा भरत पौषधशालामें रहनेकी इच्छासे हाथीसे उतरे। संयमरूपी

साम्राज्य-लक्ष्मीके सिंहासन जैसा दर्भका नया संस्तार (बिस्तर) चक्रवर्तीने वहाँ बिछवाया। उन्होंने हृदयमें मागधतीर्थ कुमार-देवको धारण कर सिद्धिका आदि द्वाररूप अष्टम भक्त (अट्ठम-तीन उपवासका) तप किया। बादमें निर्मल वस्त्र धारण कर, अन्य वस्त्रों, फूलोंकी मालाओं और विलेपनका त्याग कर, शस्त्रोंको छोड़, पुण्यका पोषण करनेमें दवाके समान पौषधव्रत ग्रहण किया। अव्ययपद (मोक्ष) में जैसे सिद्ध रहते हैं वैसे दर्भ-के विस्तरपर पौषधव्रती महाराज भरत जागते हुए और क्रिया-रहित होकर रहे। अष्टमतपके अंतमें पौषधव्रतको पूरा कर शरद ऋतुके बादलोंमेंसे जैसे सूरज निकलता है वैसे अधिक कांतिवान भरत राजा पौषधागारमेंसे निकले और सर्व अर्थको (सिद्धिको) पाए हुए राजाने स्नान करके बलिविधि की। कारण—

' यथाविधि विधिज्ञा हि विस्मरंति विधिं न हि ।"

[यथार्थ विधिको जाननेवाला पुरुष कभी विधिको नहीं भूलते।] (७८–८८)

फिर उत्तम रथी राजा भरत पवनके समान वेगवाले और सिंहके समान धीरे घोड़े जिसमें जुते हैं ऐसे सुंदर रथपर सवार हुआ। वह रथ चलता हुआ प्रासादसा मालूम होता था। उसपर ऊँची पताकाओंवाला ध्वजस्तंभ था। शस्त्रागारकी तरह अनेक तरहके शस्त्रोंसे वह सजा हुआ था। उस रथपर चारों तरफ चार घंटे बंधे हुए थे। इनकी आवाज मानों चारों दिशाओंकी विजय-लक्ष्मीको बुला रही थी। तत्कालही, इंद्रके सारथी मातलीकी तरह, राजाके भावोंको जाननेवाले सारथीने लगाम खींची और घोड़ोंको हाँका। राजा भरत दूसरे समुद्रकी तरह समुद्र किनारे

आया। इस (समुद्र) में हाथी गिरि (बादल) थे, बड़ी बड़ी गाड़ियाँ मकर (मगर) समूह था, अश्वोंकी चपल चालें तरंगें थीं, विचित्र शस्त्र भयंकर सर्प थे, जमीनसे उड़नेवाली रज वेला (किनारा) थी और रथोंकी आवाज गर्जना थी। फिर मछलियोंकी आवाजसे जिसके जलकी गर्जना बढ़ गई है उस समुद्रमें चक्रवर्तीने रथको, उसकी नाभि (धुरी) तक जलमें चलाया। एक हाथ धनुष के बीचमें और दूसरा हाथ कोनेपर, चिल्ला चढ़ानेकी जगह रखकर चिल्ला चढ़ाया। पंचमीके चाँदका अनुसरण करनेवाला धनुषका आकार बनाया और प्रत्यंचाको (चिल्लेको) जरा खींचकर धनुषकी टंकार की; यह धनुर्वेदके आद्य (शुरुके) ओंकारसी मालूम हुई। उसने भाथेमेंसे अपने नामसे अंकित एक बाण खींचा। वह पातालसे निकलते हुए सर्पके समान मालूम हुआ। सिंहके कानोंसी मुट्ठीमें उसने शत्रुओंके लिए वज्रदंडके समान बाणको पकड़कर, उसके पिछले भागको चिल्लेपर रखा। सोनेके कानोंके-आभूषणरूप और कमलनालकी उपमाको धारण करनेवाले उस बाणको चक्रवर्तीने कानों तक खींचा। महीपति (राजा) के नख-रत्नोंसे, फैलती हुई किरणोंसे, वह बाण मानो अपने सहोदरोंसे घिरा हुआ हो ऐसा मालूम होता था। खिंचे हुए धनुषके अंतिम भागमें रहा हुआ वह चमकता बाण, मौतके खुले हुए मुँहमें लपलपाती जीभकी लीलाको धारण करता था। उस धनुषमंडलके भागमें रहे हुए मध्य-लोकपाल भरत राजा, अपने मंडलमें रहे हुए सूरजकी तरह महा दारुण (भयंकर) मालूम होते थे। (८८-१०३)

इस समय लवणसमुद्र यह सोचकर क्षुब्ध हुआ कि यह

राजा मुझे स्थानभ्रष्ट करेगा अथवा मेरा निग्रह करेगा—मुझे दंड देगा। भरत चक्रवर्तीने, बाहर, बीचमें, अगली व पिछली नोकपर नागकुमार ,असुरकुमार और सुवर्णकुमारादि देवताओंसे अधिष्ठित (रक्षित), दूतकी तरह आज्ञाकारी और दंडके अक्षरोंसे भयंकर, बाणको मगधतीर्थके अधिपतिपर चलाया। पंखोंकी बहुत बड़ी फड़फड़ाहटसे आकाशको शब्दायमान करता हुआ (गुँजाता हुआ) वह बाण गरुड़के समान वेगसे चला। राजाके धनुषसे निकला हुआ वह बाण ऐसे शोभने लगा जैसे मेघसे निकलती हुई बिजली, आकाशसे गिरते हुए तारेकी आग, आगसे उड़ती हुई चिनगारियाँ, तपस्वीसे निकलती तेजोलेश्या, सूर्यकांतमणिसे प्रकट होती हुई आग और इंद्रके हाथसे छूटता हुआ वज्र शोभता है। क्षणभरमें बारह योजन समुद्रको लाँघकर वह बाण मगधपतिकी सभामें जाकर ऐसे पड़ा जैसे छातीमें बाण लगता है। मगधपति उस असमयमें सभामें बाणके आकर गिरनेसे इस तरह गुस्से हुए जिस तरह लकड़ी लगनेसे साँप गुस्से होता है। उसकी दोनों भ्रकुटियाँ भयंकर धनुषकी तरह चढ़कर गोल हो गईं; उसकी आँखें दहकती आगके समान लाल हो-उठीं; उसकी नाक धोंकनीके समान फूलने लगी और उसके ओंठ साँपके छोटे भाई हों ऐसे फूत्कार करने लगे। आकाशमें धूमकेतुकी तरह ललाटपर रेखाओंको चढ़ा, सपेरा जैसे सर्पको उठाता है वैसे अपने दाहिने हाथमें शस्त्र उठा, अपना बायाँ हाथ शत्रुके कपालकी तरह आसनपर पछाड़, विषज्वालाके समान वाणीमें वह बोला,—(१०४–११५)

"अपनेको वीर समझनेवाला और न माँगने लायक वस्तु-

को माँगनेवाला वह कौन कुबुद्धि पुरुष है जिसने मेरी सभामें बाण फेका है ? वह कौन ऐसा पुरुष है जो ऐरावण हाथीके दाँतको तोड़ कर उससे कानका जेवर बनाना चाहता है ? वह कौन पुरुष है जो गरुड़के पंखोंका मुकुट धारण करना चाहता है ? वह कौन है जो शेषनागके मस्तकपर रही मणि-मालाको लेनेकी चाह रखता है ? सूर्यके घोड़ेको हरनेकी इच्छा रखनेवाला वह कौन ऐसा पुरुष है कि जिसके घमंडको मैं, गरुड़ जैसे साँपकी जान लेता है वैसे, चूर-चूर कर दूँ ?" ऐसा कहकर मगधाधिप एकदम उठखड़ा हुआ। बाँबीमेंसे सर्पकी तरह उसने म्यानसे तलवार खींची और आकाशमें, धूमकेतुका भ्रम पैदा करनेवाली, उस तलवारको घुमाने लगा। उसका सारा परिवारभी कोपकी अधिकतासे इस तरह उठ खड़ा हुआ जिस तरह (हवाके वेगसे) समुद्रमें तरंगें उठती हैं। कई अपनी तलवारोंसे आकाशको काली बिजलीके समान और कई अपने चमकते वसुनंदोंसे (हथियारोंसे) आकाशको अनेक चंद्रमाओंवाला बनाने लगे। कई मौतके दाँतोंसे बने हुए हों ऐसे तेज भालोंको चारों तरफ उछालने लगे, और कई आगकी जीभकी बहिनके समान परशुओंको (कुल्हाड़ियोंको) घुमाने लगे। कई राहुके समान भयंकर भागवाले मुद्गरोंको पकड़ने लगे; कई वज्रकी धारके समान तीखे त्रिशूलोंको और कई यमराजके दंडके समान प्रचंड दंडोंको उठाने लगे। कई शत्रुका विस्फोट (नाश) करनेके कारणरूप अपनी भुजाएँ ठोकने लगे और कई मेघनादकी तरह ऊँची आवाजमें सिंहनाद करने लगे। कई 'मारो ! मारो !' पुकारने लगे और कई 'पकड़ो ! पकड़ो !' कहकर चिल्लाने लगे। कई 'ठहरो !ठहरो !' कहने लगे

और कई 'चलो ! चलो ! बोलने लगे। इस तरह मगधपतिका सारा परिवार कोपसे अनोखी अनोखी चेष्टाएँ करने लगा। फिर अमात्य (वजीर) ने भरत राजाके बाणको उठाकर अच्छी तरह देखा। उसे उसपर मंत्राक्षरोंके समान उदार और सारवाले नीचे लिखे अक्षर दिखाई दिए। (११६-१२६)

"सुर असुर और नरोंके साक्षात ईश्वर श्रीऋषभदेव स्वामीके पुत्र भरत चक्रवर्ती तुमको आज्ञा देते हैं कि तुम अगर अपने राज्य और जीवनको सुरक्षित चाहते हो तो, अपना सर्वस्व हमारे पास रखकर हमारी सेवा करो।" (१३०-१३१)

इन अक्षरोंको देख,मंत्रीने अवधिज्ञानसे विचार और जानकर वह वाण स्वामीको और सबको बताया और उच्च स्वरमें कहा, "हे (मिथ्या साहस करनेवाले, अर्थबुद्धिसे अपने स्वामीका अनर्थ करनेवाले और इस तरह अपने आपको स्वामीभक्त माननेवाले सभो राजाओ ! तुमको धिक्कार है। इस भरतक्षेत्रमें प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामीके पुत्र भरत राजा प्रथम चक्रवर्ती हुए हैं। वे हमसे दड माँगते हैं और इंद्रकी तरह प्रचंड शासनवाले वे हम सभीको अपनी आज्ञामें रखना चाहते हैं। इस भूमिपर शायद समुद्रका शोषण किया जा सके, मेरुपर्वत उठाया जा सके, यमराजका नाश किया जा सके, जमीन उलटी जा सके,वज्रका चूर्ण किया जा सके और वडवाग्नि बुझाई जासके, मगर चक्रवर्ती को नहीं जीता जा सकता। इस लिए हे राजन ! अल्पबुद्धिवाले इन लोगोंका खयाल न कर दंड (भेट) लेकर चक्रवर्तीको नमस्कार करने चलिए।" (१३२-१३८)

गंधहस्तिके मदको सूँघकर जैसे दूसरे हाथी शांत हो जाते

हैं वैसे मंत्रीकी बात सुनकर और बाणपर अंकित अक्षरोंको देखकर मगधपति शांत हो गया। फिर वह बाण और भेट लेकर भरत राजाके पास आया और प्रणाम करके बोला, "हे पृथ्वी-पति ! कमलिनीकी पर्वणी (पूर्णिमा) के चंद्रमाकी तरह भाग्यसे मुझे आपके दर्शन हुए हैं। भगवान ऋषभदेव जैसे प्रथम तीर्थंकर होकर पृथ्वीपर विजय पा रहे हैं वैसेही आप भी पृथ्वी पर प्रथम चक्रवर्ती होकर विजयी हों। जैसे ऐरावण हाथीका कोई प्रतिहस्ति (उसके समान दूसरा हाथी) नहीं होता, वायुके समान कोई बलवान नहीं होता और आकाशसे अधिक कोई माननीय नहीं होता वैसेही आपकी समता करनेवाला कोई नहीं हो सकता। कानों तक खिंचे हुए आपके धनुपसे निकले हुए बाणको कौन सह सकता है ? मुझ प्रमादीपर कृपा करके आपने मुझे अपना कर्तव्य बतानेके लिए छड़ीदारकी तरह यह बाण भेजा, इससे हे नृपशिरोमणि ! आजसे मैं आपकी आज्ञाको शिरोमणिकी तरह मस्तकपर धारण करूँगा। आपके द्वारा नियुक्त किया गया मैं, पूर्वदिशाके आपके जयस्तंभकी तरह, निष्कपट भक्तिसे इस मगधतीर्थमें रहूँगा। यह राज्य, यह सारा परिवार, मैं खुद और दूसरा जो कुछ भी है, वह सभी आपका है। आप मुझे अपना सेवक समझकर आज्ञा दीजिए।"

(१३९-१४८)

ऐसा कहकर उसने बाण, मगधतीर्थका जल, मुकुट और दो कुंडल भेट किए। भरत राजाने उन वस्तुओंको स्वीकारकर मगधपतिका सत्कार किया। कहा है—

"......महांतो हि सेवोपनतवत्सलाः।"

[महान लोग सेवाके लिए झुके हुए मनुष्यपर कृपाही करते हैं।] फिर इंद्र जैसे अमरावतीमें जाता है वैसेही चक्रवर्ती रथको घुमाकर (जिस मार्गसे आए थे) उसी मार्गसे वापस अपनी छावनीमें चले गए। रथसे उतर, स्नान कर परिवार सहित उन्होंने अट्टमका पारणा किया। बादमें (सेवककी तरह) झुके हुए मगधपतिका भी चक्रवर्तीने चक्रकी तरहही बड़ी धूम-धामसे वहाँ अष्टाह्निका उत्सव किया। उत्सव समाप्त होनेपर, मानों सूर्यके रथमेंसे निकलकर आया हो ऐसे तेजसे तीक्ष्ण चक्र आकाशमें चला और दक्षिण दिशामें वरदामतीर्थकी तरफ बढ़ा। (व्याकरणमें) प्र-आदि उपसर्ग जैसे धातुके पीछे चलते हैं वैसेही चक्रवर्ती भी चक्रके पीछे चला। (१४६-१५५)

हमेशा एक योजन-मात्र चलते हुए क्रमसे चक्रवर्ती दक्षिण समुद्रपर ऐसे पहुँचा जैसे राजहंस मानसरोवर पर पहुँचता है। इलायची, लौंग, चिरौंजी और कक्कोल (एक फलदार वृक्ष) वृक्षोंवाले दक्षिण सागरके किनारे नृपतिने सेनाकी छावनी डाली। महाराजकी आज्ञासे वर्द्धकिरत्नने पूर्व समुद्रके तटकी तरहही यहाँ भी निवासस्थान और पौषधशाला बनाए। राजाने वरदामतीर्थके देवको हृदयमें धारण कर अट्टम तप किया और पौषधागारमें पौषधव्रत ग्रहण किया। पौषध पूरा होनेपर पौषधघरमेंसे निकलकर धनुष धारण करनेवालोंमें अग्रणी चक्रवर्ती कालपृष्ठ[1](धनुष)ग्रहण कर सोनेके बने, रत्नोंसे जड़े और जयलक्ष्मीके निवासगृहके समान रथमें सवार हुआ। देवसे जैसे प्रासाद (मंदिर) शोभता है वैसेही सुंदर आकृतिवाले

१-महाभारतके प्रसिद्ध वीर कर्णके धनुषका नाम भी 'कालपृष्ठ' था।

महाराजाके बैठनेसे रथ शोभने लगा। अनुकूल पवनसे चपल बनी हुई पताकाओंसे आकाशको मंडित करता हुआ वह उत्तम रथ जहाजकी तरह समुद्रमें चला। रथकी नाभि (धुरी) तक समुद्रके जलमें लेजाकर सारथीने घोड़ोंकी लगाम खींची, घोड़े रुके और रथ ठहर गया। फिर आचार्य जैसे शिष्यको नमाते हैं (नम्र बनाते हैं) वैसेही पृथ्वीपतिने धनुषको झुकाकर चिल्ला चढ़ाया। संग्रामरूपी नाटकके आरंभमें सूत्रधारके समान तथा कालके आह्वानके लिए मंत्रके समान, धनुषका टंकार किया। ललाटपर कीहुई तिलकलक्ष्मीको चुरानेवाला बाण भाथेसे निकाला, धनुषपर चढ़ाया और चक्ररूप बने हुए धनुषके मध्य-भागमें धुरीका भ्रम पैदा करनेवाले उस बाणको महाराजाने कान तक खींचा। कान तक खिंचा हुआ बाण मानों महाराज-से पूछ रहा था कि बताइए मैं क्या करूँ? फिर महाराजाने उस बाणको वरदामपतिकी तरफ चला दिया। आकाशमें प्रकाश करते हुए जानेवाले उस बाणको पर्वतोंने वज्रकी भ्रांतिसे, सर्पोंने उड़ते हुए गरुड़की भ्रांतिसे और समुद्रने वड़वानलकी भ्रांतिसे भयके साथ देखा। बारहयोजन लाँघकर वह बाण बिजलीकी तरह जाकर वरदामपतिकी सभामें गिरा। शत्रुके भेजे हुए घातककी तरह उस बाणको गिरते देख वरदामपति नाराज हुआ और उछलते हुए समुद्रकी तरह उद्भ्रांत भ्रकुटिमें तरंगित हो उत्कट (कठोर) वाणीमें बोला, (१५६-१७३)

"अरे! यह कौन है जिसने ठोकर लगाकर इस सोते हुए सिंहको जगाया है। आज मौतने किसका पत्रा खोला है? कोढ़ीकी तरह आज किसे अपने जीवनमें वैराग्य हुआ है कि

जिसने साहस करके मेरी सभामें बाण फेंका है। इसी बाणसे मैं इस बाणको फेंकनेवालेके प्राण लूँगा।"

उसने क्रोधके साथ बाणको उठाया। मगधपतिकी तरहही वरदामपतिने भी चक्रके बाणपर लिखे हुए अक्षर पढ़े। उन अक्षरोंको पढ़कर वह इसी तरह शान्त हो गया, जिस तरह नाग-दमन औषधसे सर्प शांत हो जाता है। वह बोला, "अहो! मेंढक जैसे काले साँपको तमाचा मारनेके लिए तैयार होता है, बकरा जैसे अपने सींगोंसे हाथीपर प्रहार करनेकी इच्छा करता है, हाथी जैसे अपने दाँतोंसे पर्वत गिरानेकी इच्छा करता है, वैसे-ही मैं मंदबुद्धि भरत चक्रवर्तीसे युद्ध करनेकी इच्छा करने लगा।'

फिर उसने यह सोचकर अपने आदमियोंको उपायन(भेट) लानेकी आज्ञा की कि अब तक भी कुछ नहीं बिगड़ा है। वह अनेक तरहकी भेटें लेकर, इंद्र जैसे ऋषभध्वजके पास जाता है वैसेही, चक्रवर्तीके पास जानेको रवाना हुआ। वहाँ जाकर उसने चक्रवर्तीको नमस्कार किया और कहा, "हे पृथ्वीके इंद्र! आपके दूतके समान आए हुए बाणके बुलानेसे मैं यहाँ आया हूँ। आप खुद यहां आए हैं, तो भी मैं स्वतः आपके सामने नहीं आया, मुझ मूर्खके इस दोषको क्षमा कीजिए। कारण,—

"निह्नुते दोषमज्ञता।" [अज्ञानता दोषको ढक देती है।]

हे स्वामी! जैसे थकेहुए आदमीको विश्रामस्थान मिलता है, और प्यासे आदमीको जैसे भरा सरोवर मिलता है, वैसेही मुझ स्वामीहीनको आपके समान स्वामी मिले हैं। हे पृथ्वी-नाथ! समुद्रपर जैसे वेलाधर पर्वत रहता है वैसेही, मैं आजसे

आपके रखे हुए (मनुष्यकी तरह) आपकी आज्ञामें रहूँगा।"

ऐसा कहकर वरदामपतिने उस बाणको भरतके सामने ऐसे रखा जैसे कोई किसीकी धरोहरको उसके सामने रखता है; मानों सूरजकी कांतिसेही गुँथा हुआ हो वैसा अपनी कांति-से दिशामुखको प्रकाशित करता हुआ एक रत्नमय कटिसूत्र (कँदोरा), और मानों यशका समूह हो ऐसा चिरकालसे संचित किया हुआ मोतियोंका समूह उसने भरत राजाको भेट किए। इसी तरह जिसकी उज्ज्वल कांति प्रकाशित हो रही है ऐसा और मानो रत्नाकरका सर्वस्व हो ऐसा एक रत्नसमूह भी उसने भरतको भेट किया। ये सब चीजें स्वीकार कर भरतने वरदाम-पतिको अनुगृहीत किया और मानों अपना कीर्तिकर हो ऐसे उसे वहाँ स्थापित किया (मुकर्रर किया); फिर कृपापूर्वक वरदामपतिको विदा कर विजयी भरतेश अपनी छावनीमें आया। (१७४-१८२)

रथसे उतर, स्नान कर, उस राजचंद्रने परिजन सहित, अष्टम तपका पारणा किया और फिर वहाँ वरदामपतिका अष्टाहिका उत्सव किया। कारण,—

"लोके महत्त्वदानाय महांत्यात्मीयमीश्वराः।"

[स्वामी, लोगोंमें सन्मान करानेके लिए अपने आत्मीय-जनोंका सत्कार करते हैं।] (१८३-१८४)

फिर पराक्रममें द्वितीय इंद्रके समान चक्रवर्ती भरत चक्रके पीछे पीछे पश्चिम दिशामें प्रभासतीर्थकी तरफ चले। सेनासे उड़ती हुई धूलिके द्वारा आकाश और जमीनको भरते हुए कई दिनोंके बाद वे पश्चिम समुद्रपर आपहुँचे। उन्होंने पश्चिम समुद्रके किनारे

छावनी डाली। किनारेकी भूमि सुपारी, तांबूल और नारियलके पेड़ोंसे भरी हुई थी। वहाँ प्रभासपतिके उद्देश्यसे भरतने अष्टम भक्तका(तीन उपवासका तप किया और पहलेहीकी तरह पौषधालयमें पौषध लेकर बैठ। ।पौषधके अंतमें मानो दूसरा वरुण हो ऐसे चक्रीने रथमें बैठकर समुद्रमें प्रवेश किया। रथको पहियोंकी धुरी तक जलमें लेजाकर खड़ा किया और धनुषपर चिल्ला चढ़ाया। फिर जयलक्ष्मीके लिए क्रीडा करनेकी वीणारूप धनुषकी लकड़ीकी, तंत्रीके समान प्रत्यंचाको (चिल्लेको) अपने हाथसे उच्च स्वरमें शब्दायमान किया (बजाया)। सागरके किनारे खड़े हुए बेंतके वृक्षके समान भाथेमेंसे बाण निकाल, उसे धनुषके आसनपर इस तरह रखा जैसे आसनपर अतिथिको बिठाते हैं। सूर्यबिंबमेंसे खींचकर निकाली हुई किरणकी तरह बाणको प्रभासदेवकी तरफ चलाया। वायुके समान वेगसे बारह योजन समुद्रको लाँघ, आकाशको प्रकाशित करता हुआ वह बाण प्रभासपतिकी सभामें जाकर गिरा। बाणको देखकर प्रभासेश्वर नाराज हुआ; मगर उसपर लिखे हुए अक्षरोंको पढ़कर वह दूसरे रसको प्रकट करनेवाले नटकी तरह, तुरंत शांत हो गया। फिर बाण और दूसरी भेटें लेकर प्रभासपति-चक्रवर्तीके पास आया और नमस्कार करके इस तरह कहने लगा,—

"हे देव! आप, स्वामीके द्वारा भासित (प्रकाशित) किया गया मैं आजही वास्तविकरूपसे प्रभास (पाया हूँ प्रकाशित हुआ हूँ) कारण, कमल सूर्यकी किरणोंहीसे कमल[1] होता

१—कं=जलं; अलन्ति=भूषयंति : इति कमलानि। जलको जो सुशोभित करता है, उसे कमल कहते हैं।

है। हे प्रभो ! मैं पश्चिम दिशामें, सामंत राजाकी तरह रहकर सदा पृथ्वीपर शासन करनेवाले आपकी आज्ञामें रहूँगा।"

यों कहकर पहले चलाया हुआ बाण,युद्ध-विद्याका अभ्यास करनेके मैदानमें चलाए गए बाणोंको वापस लाकर देनेवाले नौकरकी तरह, प्रभासेश्वरने भरतको भेट किया; उसके साथही अपने मूर्तिमान तेजके समान कड़े, कंदोरा, मुकुट, हार और दूसरी कई चीजें और संपत्ति भी भेट की। उसको आश्वासन देनेके लिए भरतने ये सभी चीजें स्वीकार कीं। कारण—

"प्रभोः प्रासादचिह्नं हि प्राभृतादानमादिमम्।"

[स्वामीका अपने नौकरकी भेट स्वीकार करना, स्वामीकी प्रसन्नताका प्रथम चिह्न है।] फिर जैसे क्यारीमें पौधा रोपा जाता है वैसेही प्रभासेश्वरको वहाँ स्थापित कर वह शत्रुनाशक नृपति अपनी छावनीमें आया। कल्पवृक्षकी तरह गृहीरत्नके द्वारा तत्कालही तैयार किए गए भोजनसे उसने अट्ठमका पारणा किया। फिर प्रभासदेवका अष्टाह्निका उत्सव किया। कारण,—

"आदौ सामंतमात्रस्याप्युचिताः प्रतिपत्तयः।"

[आरंभमें अपने सामंतका भी आदर करना उचित है।]

(१९५-२१४)

जैसे दीपकके पीछे प्रकाश चलता है वैसेही, चक्रके पीछे चलते हुए चक्रवर्ती, समुद्रके दक्षिण तटके नजदीक सिंधु नदीके किनारे आ पहुँचा। उसके किनारे किनारे पूर्वकी तरफ चलकर सिंधुदेवीके सदनके पास उसने छावनी डाली। वहाँ उसने अपने मनमें सिंधुदेवीका स्मरण करके अट्ठम तप किया। इससे

पवनके द्वारा उठाई हुई तरंगोंकी तरह सिंधुदेवीका आसन कंपित हुआ। अवधिज्ञानसे चक्रवर्तीको आया जान बहुतसी दिव्य भेटें लेकर वह उनकी पूजा-सत्कार करने सामने आई। देवीने आकाशमें रह 'जय! जय!' शब्दके द्वारा असीस देकर कहा, "हे चक्री! मैं आपकी सेविका होकर यहाँ रहती हूँ। आप आज्ञा दीजिए, मैं उसका पालन करूँ!' फिर उसने मानों लक्ष्मीदेवीके सर्वस्व हों ऐसे और मानों निधान (खजाने) की संतति हों ऐसे रत्नोंसे भरे हुए एकहजारआठ कुंभ; मानों प्रकृतिकी तरहही कीर्ति और जयलक्ष्मीको एक साथ बैठानेके लिए हों ऐसे रत्नोंके दो भद्रासन; शेषनागके मस्तकपर रहनेवाली मणियोंसे बनाए हुए हों ऐसे प्रकाशमान रत्नमय बाहु-रक्षक (भुजबंध); मानों बीचमें सूर्यबिंबकी कांतिको बिठाया हो ऐसे कड़े और मुट्ठीमें समा जाएँ ऐसे सुकोमल दिव्य वस्त्र चक्रवर्तीको भेट किए। सिंधुराज (समुद्र) की तरह इनने सब चीजें स्वीकार कीं और मधुर बातचीतसे देवीको प्रसन्न कर विदा किया। फिर पूनौंके चाँदके समान सोनेके बासनमें भरत-ने अट्ठम तपका पारणा किया और वहाँ देवीका अष्टाह्निका उत्सव कर चक्रके बताए हुए मार्गसे आगे प्रयाण किया।

(२१५-२२६)

उत्तर और पूर्व दिशाओंके बीचमें (ईशानकोनमें) चलते हुए वे अनुक्रमसे दो भरतार्द्धोंके बीचमें सीमाकी तरह रहे हुए वैताढ्यपर्वतके पास जा पहुँचे। उस पर्वतके दक्षिण भाग पर, मानों कोई नया द्वीप हो इस तरह, लंबाई-चौड़ाईसे सुशोभित छावनी वहाँ डाली गई। वहाँ पृथ्वीपतिने अट्ठमतप किया,

इसलिए वैताढ्याद्रिकुमारका आसन कंपित हुआ। उसने अवधिज्ञानसे जाना कि भरतक्षेत्रमें यह प्रथम चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ है। उसने आ आकाशमें स्थित रह कहा, "हे प्रभो! आपकी जय हो। मैं आपका सेवक हूँ, इसलिए मुझे जो कुछ आज्ञा देनी हो दीजिए।" फिर मानों बड़ा भंडार खोला हो ऐसे कीमती रत्न, रत्नोंके अलंकार, दिव्यवस्त्र और प्रताप-संपत्तियोंके क्रीडा-स्थलके समान भद्रासन उसने चक्रवर्तीको भेट किए। पृथ्वीपतिने उसकी सारी चीजें स्वीकार कीं। कारण,—

"अलुब्धा अपि गृह्णंति, भृत्यानुग्रहहेतुना।"

[निर्लोभी स्वामी भी, नौकरोंपर मेहरबानीके लिए, उनकी भेट स्वीकार करते हैं।] फिर महाराजने उसे बुला, उसका अच्छी तरह आदर-सत्कार कर, उसे विदा किया। कहा है—

"महांतो नावजानंति नृमात्रमपि संश्रितम्।"

[महापुरुष अपने आश्रित सामान्य पुरुषकी भी अवज्ञा नहीं करते हैं।] अष्टमतपका पारणा कर भरतने वहाँ वैताढ्यदेवका अष्टाह्निका उत्सव किया। (२२७–२३६)

वहाँसे चक्ररत्न तमिस्रा गुफाकी तरफ रवाना हुआ। राजा भी पदान्वेषी (पदचिह्नोंको खोज करनेवाले) की तरह उसके पीछे चले। अनुक्रमसे वे तमिस्राके पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने फौजकी छावनी डाली। छावनीके खेमे ऐसे मालूम होते थे मानों विद्याधरोंके नगर वैताढ्य पर्वतसे नीचे उतरे हैं। उस गुफाके अधिष्ठाता कृतमाल देवका मनमें स्मरण कर, भरतने

अष्टमतप किया। देवका आसन कंपित हुआ। उसने अवधिज्ञानसे चक्रवर्तीका आना जाना। वह बड़ी मुद्दतके बाद आए हुए गुरुकी तरह, चक्रवर्तीरूपी अतिथिकी पूजा करने आया और बोला, "हे स्वामी! इस तमिस्रागुफाके दरवाजेपर मैं आपके द्वारपालकी तरह रहा हूँ।" यों कहकर उसने भूपतिकी सेवा अंगीकार की, और स्त्रीरत्नके योग्य अनुत्तम (जिनके समान उत्तम दूसरे नहीं ऐसे) चौदह तिलक और दिव्य आभूषणोंका समूह चक्रवर्तीके भेट किया। उनके साथही, पहलेसे महाराजाके लिएही रख छोड़ी हों ऐसी उनके योग्य मालाएँ और दिव्य वस्त्र भी अर्पण किए। चक्रीने उन सभी चीजोंको स्वीकार किया। कारण,—

"..........कृतार्था अपि भूभुजः।
न त्यजंति दिशोदंडं चिह्नं दिग्जयश्रियः॥"

[कृतार्थ राजा भी दिग्विजयकी लक्ष्मीके चिह्नरूप दिशादंडको दिशाओंके मालिकोंसे मिली हुई भेटको-नहीं छोड़ते हैं।] अध्ययनके अंतमें उपाध्याय जैसे शिष्यको छुट्टी देता है वैसेही भरतेश्वरने उसे बुला, उसके साथ बड़ी कृपाका व्यवहार कर, विदा किया। पीछे भरतने मानो जुदा पड़े हुए अपने अंश हों ऐसे और पृथ्वीपर पात्र रख, हमेशा साथ बैठकर भोजन करनेवाले हों ऐसे, राजकुमारोंके साथ पारणा किया। फिर कृतमालदेवका अष्टाह्निका उत्सव किया। कहा है कि —

"प्रभवः प्रणिपातेन गृहीताः किं न कुर्वते।"

[नम्रता दिखानेसे जो अपनालिए जाते हैं, उनके लिए स्वामी क्या नही करते हैं ?] (२३७–२४७)

दूसरे दिन महाराजाने सुषेण नामक सेनापतिको बुलाया और इंद्र जैसे नैगमेषी देवताको आज्ञा करता है वैसे, उसे आज्ञा की, "तुम चर्मरत्नसे सिंधु नदी उतरकर सिंधु, समुद्र और वैताढ्यपर्वतके बीचमें आए हुए दक्षिणसिंधुनिष्कुट (सिंधुके दक्षिण किनारेवाले बगीचेके समान प्रदेश) को जीतो और बेरके फलकी तरह, वहाँ रहनेवाले म्लेच्छ लोगोंको आयुध रूपी लकड़ीसे झाड़कर चर्मरत्नके पूर्ण फलको प्राप्त करो।"

सुषेण सेनापतिने चक्रवर्तीकी आज्ञा मानी। वह मानों वहींका जन्मा हुआ हो ऐसे, जल-स्थलके ऊँचे नीचे सभी भागोंमें, दूसरे किलोंमें तथा दुर्गम स्थानोंमें जानेवाले सभी मार्गोंसे परिचित था, म्लेच्छ भाषाका जानकार था, सिंहके समान पराक्रमी था, सूर्यके समान तेजस्वी था, बृहस्पतिके जैसा बुद्धिमान था और सभी लक्षणोंसे युक्त था। वह तत्कालही अपने डेरेपर आया। उसने मानों अपनेही प्रतिबिंब हों ऐसे सामंत राजाओंको चलनेकी आज्ञा दी। फिर वह स्नान कर, बलिदान दे, पर्वतके समान ऊँचे गजरत्नपर सवार हुआ। उस समय उसने थोड़े मगर बड़े कीमती आभूषण पहने थे, कवच धारण किया था, प्रायश्चित्त और कौतुकमंगल किया था, इसी तरह और रत्नोंका दिव्य हार धारण किया था; वह ऐसा मालूम होता था, मानों जयलक्ष्मीने उसके गलेमें अपनी भुज-लता डाली है। पट्टहस्तिकी तरह वह पट्टके चिह्नसे शोभता था। उसकी कमरपे मूर्तिमती शक्तिके समान एक क्षुरिका (कटार) थी; उसकी पीठपर सरल आकृतिवाले और सोनेके बने हुए सुन्दर दो भाथे थे, वे ऐसे जान पड़ते थे, मानों पीछेकी तरफसे भी युद्ध करनेके लिए दो

वैक्रिय हाथ हैं। वह गणनायकों, दंडनायकों, सेठों, सार्थवाहों, (कारवाँके नेताओं, संधिपालों और नौकरों आदिसे युवराजकी तरह घिरा हुआ था। उसका अग्रासन (सम्मानका स्थान) ऐसा निश्चल था, मानों वह आसनके साथही जन्मा हुआ हो। श्वेत छत्र और चामरोंसे सुशोभित उस देवोपम सेनापतिने अपने पैरके अँगूठेसे हाथीको चलाया। चक्रवर्तीकी आधी सेनाके साथ वह सिंधुके किनारे गया। सेनासे उड़ती हुई रजसे वह किनारा ऐसा बन गया मानों वह वहाँ सेतुबंध कर रहा है (पुल बाँध रहा है), सेनापतिने अपने हाथसे चर्मरत्नको–जो बारह योजन तक बढ़ सकता है, जिसमें सवेरे बोया हुआ नाज साँझको उग आता है और जो नदी, झील, और समुद्रको पार करनेमें समथ होता है-स्पर्श किया। स्वाभाविक प्रभावसे उसके दोनों किनारे फैले। सेनापतिने उसे उठाकर जलमें तेलकी तरह रखा। फिर रस्तेकी तरह वह सैना सहित उसपर चलकर नदीके दूसरे किनारे गया। (२४८–२६६)

सिंधुके दक्षिणके सभी प्रदेशोंको जीतनेके लिए वह प्रलय-कालके समुद्रकी तरह वहाँ फैल गया। धनुषके निर्घोषसे (शब्द-से) दारुण और युद्धमें कौतूहली–उसने कुतूहल (खेल) में ही सिंहकी तरह सिंहल लोगोंको जीत लिया; बर्बर लोगोंको खरीदे हुए गुलामोंकी तरह अपने आधीन किया और टंकणों को घोड़ों की तरह राजचिह्नोंसे अंकित किया। जलरहित रत्नाकरके समान रत्न-माणिक्यसे भरे हुए यवनद्वीपको उस नरकेसरीने खेलही खेलमें जीत लिया। उसने कालमुख जातिके म्लेच्छोंको जीत लिया, इससे वे भोजन न करते हुए भी मुँहमें उँगलियाँ डालने

लगे। उसके फैलनेसे जोनक नामके म्लेच्छ लोग, वायुसे वृक्षकी तरह, पराङ्मुख होगए (हार गए)। गारुड़ी (सपेरा) जैसे सब तरहके सर्पोंको वशमें कर लेता है, वैसेही उसने वैताढ्यपर्वतके आस-पासके प्रदेशोंमें रहनेवाले म्लेच्छोंकी सभी जातियोंको जीत लिया। (२६७-२७३)

प्रौढ़ प्रतापके अनिवार्य प्रसारवाले उस सेनापतिने वहाँसे आगे चलकर, सूरज जैसे सारे आकाशमें फैल जाता है वैसेही, कच्छदेशकी सारी भूमिको आक्रांत कर लिया (जीत लिया)। सिंह जैसे सारे जंगलको दबा देता है, वैसेही वह सारे निष्कुट प्रदेशोंको दबाकर कच्छकी समतलभूमिमें स्वस्थ होकर रहा। जैसे पतिके पास स्त्रियाँ आती हैं वैसेही, म्लेच्छदेशोंके राजा भेटें ले-लेकर भक्ति सहित सेनापतिके पास आने लगे। किसीने स्वर्णगिरिके शिखर जितने रत्नोंके ढेर दिए, कइयोंने चलते-फिरते विंध्य पर्वतके जैसे हाथी दिए, कइयोंने सूर्यके घोड़ोंको भी लाँघ जानेवाले घोड़े दिए और कइयोंने अंजनसे बनाए हुए देवताओंके रथोंके जैसे रथ दिए। दूसरी भी जो जो सारभूत चीजें थीं वे सभी उन्होंने उसको भेट की। कहा है कि—

"गिरिभ्योपि सरिल्लब्धं रत्नं रत्नाकरं व्रजेत्।"

[पर्वतसे नदीके द्वार निकाले गए रत्न भी रत्नाकर (समुद्र) मेंही जाते हैं।] इस तरह भेंट अर्पण कर उन्होंने सेनापतिसे कहा, "आजसे हम आपके आज्ञापालक हो आपके नौकरकी तरह यहाँ रहेंगे। सेनानीने सबको यथोचित सत्कार देकर, विदा किया। फिर आप जैसे आया था वैसेही सुखसे सिंधुके पार चला गया। कीर्तिरूपी वल्ली (लता) के दोहद, के समान म्लेच्छोंसे

भेटमें आई हुई सभी चीजें सेनापतिने चक्रीको भेट कीं। कृतार्थ चक्रीने सेनापतिको, आदरपूवक सत्कार कर सीख दी। वह खुशी-खुशी अपने डेरेपर गया। (२७४-२८३)

यहाँ भरत राजा अयोध्याकी तरहही सुखसे रहता था, कारण, सिंह जहाँ जाता है वहीं उसका स्थान होता है। एक दिन उसने सेनापतिको बुलाकर आज्ञा दी, "तमिस्रा गुफाके दरवाजे खोलो।" सेनापतिने इस आज्ञाको मालाकी तरह मस्तकपर चढ़ाया। और वह जाकर तमिस्राकी गुफाके बाहर ठहरा। तमिस्राके अधिष्ठाता देव कृतमालका स्मरण करके उसने अष्टम तप किया। कारण—

"......सर्वास्तपोमूला हि सिद्धयः।

[सभी सिद्धियोंका मूल तप है। अर्थात तपसेही सभी सिद्धियां मिलती हैं।] फिर सेनापति स्नान कर, श्वेत वस्त्ररूपी पंखोंको धारण कर, सरोवरमेंसे जैसे राजहंस निकलता है वैसे, स्नानागारमेंसे निकला और सुन्दर नीले कमलके समान सोनेकी धूपदानी हाथमें लेकर तमिस्राके द्वारपर आया। वह।के किवाड़को देखकर उसने पहले प्रणाम किया। कारण—

"महांतः शक्तिवंतोऽपि प्रथमं साम कुर्वते।"

[शक्तिवान महान पुरुष पहले साम नीतिका प्रयोग करते हैं।] वहाँ वैताढ्य पर्वत पर फिरती हुई विद्याधरोंकी स्त्रियोंको स्तंभन करने (रोकने) के लिए दवाके समान महर्द्धिक (महान शक्ति देनेवाला) अष्टाहिका उत्सव किया, और मांत्रिक (मंत्र जाननेवाला) जैसे मंडल बनाता है वैसेही सेनापतिने वहाँ अखंड

चावलोंसे अष्ट मांगलिक बनाए। फिर वह इंद्रके वज्रकी तरह शत्रुओंका नाश करनेवाला, चक्रवर्तीका दंडरत्न अपने हाथमें लेकर किवाड़ोंपर प्रहार करनेके लिए सात-आठ कदम पीछे हटा। कारण,—

"मनागपसरत्येव प्रजिहीर्षुर्गजोपि हि।"

[हाथी भी प्रहार करनेकी इच्छासे कुछ पीछे हटता है।] फिर सेनापतिने वज्ररत्नसे किवाड़ोंपर आघात किया और बाजेकी तरह उस गुफाको गुँजा दिया। तत्कालही, वैताढ्यपर्वतके अच्छी तरह मुँदे हुए नेत्रोंके समान मजबूतीसे बंद वज्रके बने हुए वे कपाट (किवाड़) खुल गए। दंडके आघातसे खुलते हुए उन किवाड़ोंसे ऐसी आवाज आ रही थी, मानों वे रो रहे हैं। उत्तर-दिशाके भरतखंडको जीतने जानेके लिए मंगलरूप उन किवाड़ोंके खुलनेकी बात सेनापतिने जाकर चक्रवर्तीसे कही। इससे हस्तिरत्नपर सवार होकर महान पराक्रमी महाराजाने चंद्रमाकी तरह तमिस्रा गुफामें प्रवेश किया। (२८४-२९९)

प्रवेश करते समय नरपतिने, चार अंगुल प्रमाणवाला और सूर्यके समान प्रकाशमान मणिरत्न ग्रहण किया। एक हजार यक्षोंसे वह अधिष्ठित था अर्थात एक हजार यक्ष उसकी सेवा करते थे। उस रत्नको सरपर चोटीकी तरह बाँध लेनेसे, तिर्यंच, मनुष्य और देवताओंका उपसर्ग (उत्पात) नहीं होता। फिर उस रत्नके प्रभावसे, (सूरजसे) अंधकारकी तरह, सभी दुःख नष्ट हो जाते हैं और शस्त्रके आघातकी तरह सारे रोग भी नष्ट हो जाते हैं। सोनेके कलशपर जैसे सोनेका ढक्कन लगाते हैं वैसे उस रिपुनाशक राजाने वह रत्न हाथीके दाहिने कुंभ-स्थलपर

रखा। पीछे चलती हुई चतुरंग सेना सहित, चक्रका अनुसरण करनेवाले, केसरी सिंहकी तरह गुफामें प्रवेश करनेवाले नरकेसरी चक्रीने, चार अंगुल प्रमाणवाला दूसरा कांकिणीरत्न भी ग्रहण किया। वह सूरज, चाँद और आगके समान कांतिवाला था। उसका आकार अधिकरणीके समान था। हजार यक्ष उसके अधिष्ठित(रक्षक) थे। आठ सोनैयाके समान उसका प्रमाण था। उसमें छः पत्ते थे, बारह कोने थे, नीचेका भाग समतल था। वह मान, उन्मान और प्रमाण-युक्त था। उसके आठ कर्णिकाएँ (पखुड़ियाँ) थीं। बारह योजन तकका अँधेरा दूर करनेमें वह समर्थ था। गुफाके अंदर दोनों तरफ एक एक योजनपर, गोमूत्रिकाके आकारसे (यानी एक दाहनी तरफ और दूसरा बाईं तरफ) कांकिणीरत्नके द्वारा मंडल बनाते हुए चक्रवर्ती चलने लगे। हरेक मंडल पाँचसौ धनुप विस्तारवाला और एक योजन में प्रकाश करनेवाला था। इन मंडलोंकी संख्या उनचास थी। जब तक महीतलपर कल्याण करनेवाले चक्रवर्ती जीवित रहते हैं तबतक गुफाके किवाड़ खुले रहते हैं। (३००-३१०)

चक्रके पीछे चलनेवाले, चक्रवर्तीके पीछे चलनेवाली, उसकी सेना मंडलके प्रकाशमें बेरोक आगे बढ़ने लगी। चक्रवर्तीकी चलती हुई सेनासे वह गुफा, जैसे असुरादिकी सेनासे रत्नप्रभाका मध्यभाग शोभता है वैसे, शोभने लगी। मथानीसे जैसे मथनीमें आवाज होती है वैसेही, चलते हुए चक्र-चमूसे (चक्र और सेनासे) वह गुफा गूँजने लगी। अनरौंदा गुफाका रस्ता रथोंके पहियोंसे लीक-वाला होनेसे और घोड़ोंके खुरोंसे उसके कंकर उखड़ जानेसे वह नगरके रस्ते जैसा हो गया।

सेनाके लोगोंसे वह गुफा लोकनासिका की तरह निरुच्छ्वासत्व-को प्राप्त हुई (टेढ़ी-मेढ़ी हो गई)। क्रमशः चक्रवर्ती तमिस्रा-गुफाके मध्यभागमें, नीचेके कपड़ेके ऊपर रहनेवाली कटिमेखला (कंदोरा) के समान, उन्मग्ना और निमग्ना नामकी दो नदियोंके समीप पहुँचे। वे नदियाँ ऐसी मालूम होती थीं मानों दक्षिण और उत्तर भरतार्द्धमेंसे आनेवाले लोगोंके लिए, नदियोंके बहाने वैताढ्यपर्वतने दो आज्ञा-रेखाएँ बनाई हैं। उनमेंकी उन्मग्नामें पत्थरकी शिलाएँ भी तूँबोंकी तरह तैरती हैं और निमग्नामें तूँबी भी पत्थरकी तरह डूब जाती है। वे दोनों नदियाँ तमिस्रगुफाकी पूर्व दीवारसे निकलती हैं और पश्चिम दीवारमें होकर सिंधु नदीमें मिल जाती हैं। उन नदियोंपर वार्द्धकी रत्नने एक अच्छा पुल बनाया। वह एकांतमें वैताढ्यकुमारदेवकी विशाल शैयाके समान मालूम होता था। वार्द्धकी रत्नने क्षण-भरमें वह पुल तैयार कर लिया, कारण, गेहाकार कल्पवृक्षके जितना समय भी उसको नहीं लगता है। उस पुलपर पत्थर इस तरह जड़े हुए थे कि वह सारा पुल एकही पत्थरका मालूम होता था। उसकी जमीन हाथके समान समतल और वज्रके समान मजबूत होनेसे वह पुल गुफाके किवाड़ोंसे बना हुआसा जान पड़ता था। उन दुस्तर नदियोंको चक्रवर्ती, सेना सहित इस तरह आरामसे पार कर गया जैसे पैदल चलनेवाला (साफ रस्तेको) पार करता है। सेनाके साथ चलते हुए महाराज, अनुक्रमसे उत्तर-दिशाके मुखके समान गुफाके उत्तरद्वारके पास आ पहुँचे। उसके दोनों किवाड़, मानो दक्षिण द्वारके किवाड़ों-की आवाज सुनकर डर गए हों वैसे, अपने आप तत्कालही

खुल गए। उन किंवाड़ोंसे जो सर-सर की आवाज निकली वह मानो सेनासे जानेकी बात कह रही थी। गुफाके (दरवाजेके पास) दीवारोंसे चिपककर किंवाड़ खड़े थे, वे ऐसे मालूम होते थे मानो वहाँ वे पहले कभी नहीं थीं ऐसी अगलाएँ हैं। फिर सूरज जैसे बादलोंमेंसे निकलता है ऐसे पहले चक्रीके आगे चलनेवाला चक्र गुफामेंसे निकला। उसके पीछे पृथ्वीपति भरत ऐसे निकले जैसे पातालके विवरमेंसे बलींद्र (एक इंद्र) निकलता है। फिर विंध्याचलकी गुफाकी तरह उस गुफामेंसे निःशंक लीलायुक्त गमन करते (झूमते) हुए हाथी निकले। समुद्रमेंसे निकलते हुए सूर्यके घोड़ोंका अनुसरण करनेवाले सुंदर घोड़े अच्छी चालसे चलते हुए निकले। धनाढ्य लोगोंकी रथशाला-ओंमेंसे निकलते हों ऐसे अपने शब्दोंसे गगनको गुँजाते हुए रथ निकले और स्फटिकमणिके बिलोंमेंसे जैसे सर्प निकलते हैं ऐसेही वैताढ्यपर्वतकी उस गुफाके मुखमेंसे बलवान प्यादे भी निकले (३११-३३४)

इस तरह पचास योजन लंबी गुफाको लाँघ कर महाराजा भरतेशने, उत्तर भरतार्द्धको विजय करनेके लिए उत्तर खंडमें प्रवेश किया। उस खंडमें 'आपात' जातिके अति मस्त भील बसते थे। मानों भूमिपर दानव हों ऐसे वे धनवान, बलवान और तेजस्वी थे। उनके पास अपरिमित बड़ी बड़ी हवेलियाँ थीं, शयन, (बिस्तर) आसन व वाहन थे; और चांदी-सोना था; इनसे वे कुबेरके गोत्रवाले हों ऐसे जान पड़ते थे। उनके कुटुंब बड़े बड़े थे; उनके पास बहुतसे दासी दास थे और देवताओंके बगीचेकी वृक्षोंकी तरह कोई उनका पराभव (नाश) नहीं कर

सकता था। बड़े शकट (छकड़े) का भार खींचनेवाले बड़े बैलोंकी तरह वे सदा अनेक लड़ाइयोंमें अपने बलका उपयोग करते थे। जब भरतपतिने जबर्दस्ती यमराजकी तरह उनपर चढ़ाई की तब, उनको अनिष्ट की सूचना करनेवाले, अनेक उत्पात होने लगे। चलती हुई चक्रवर्तीकी सेनाके भारसे दुखी हुई हो ऐसे घरोंके बगीचोंको हिलाती हुई जमीन काँपने लगी। चक्रवर्तीके दिशाओंमें फैले हुए महान प्रतापसे हों ऐसे, दिशाओंमें दावानलके समान आग जलने लगी। उड़ती हुई बहुत अधिक धूलिसे दिशाएँ पुष्पिणी (रजस्वला) स्त्रियोंकी तरह नहीं देखने लायक हो गई। क्रूर और कर्णकटु शब्द करनेवाले मगर जैसे समुद्रमें लड़ते-टकराते हैं वैसे दुष्ट पवन परस्पर टकराते हुए बहने लगे। जलती हुई मशालोंकी तरह सभी म्लेच्छ वाघों-को डरानेवाला, आकाशमें उल्कापात होने लगा। क्रोधसे उठकर मानों जमीनपर हाथ पछाड़ रहा हो ऐसी डरावनी आवाज-वाली बिजलियाँ चमकने लगीं और मानों मृत्युलक्ष्मीके छत्र हों ऐसे चीलों और कौओंके समूह आकाशमें जहाँ तहाँ उड़ने लगे। (३३५-३४०)

उस तरफ सोनेके कवच, कुल्हाड़ी और भालोंके फलोंकी किरणोंसे आकाशमें रहनेवाले हजार किरणोंवाले सूरजको करोड़ किरणोंवाला बनानेवाले, उद्दंड दंड, धनुष और मुद्गरोंसे आकाश को बड़े बड़े दाँतोंवाला बनानेवाले, ध्वजाओंमें बनी हुई बाघों, सिंहों और साँपोंकी तस्वीरोंसे आकाशमें फिरनेवाली खेचरी स्त्रियोंको डरानेवाले, और बड़े बड़े हाथियोंरूपी बादलोंसे दिशा-ओंके मुखभागको अंधकारपूर्ण करनेवाले भरत राजा आगे

बढ़ने लगे। उनके रथके अगले भागपर बने हुए मगरोंके मुँह यमराजके मुँहकी स्पर्द्धा करते थे। वे घोड़ोंके खुरोंके आघातोंसे मानों जमीनको तोड़ते हों और जयके बाजोंपर गिरते आघातों से मानों आकाशको फोड़ते हों ऐसे मालूम होते थे; और आगे चलनेवाले मंगलके तारेसे जैसे सूरज भयंकर लगता है वैसेही आगे चलनेवाले चक्रसे भरत भयंकर लगते थे।(३४८-३५१½)

उनको आते देख भील लोग बहुत नाराज हुए और क्रूर ग्रहोंकी मित्रताका अनुसरण करनेवाले वे सब जमा हो गए और मानों चक्रवर्तीका हरण करनेकी इच्छा रखते हों ऐसे वे क्रोध के साथ कहने लगे, "साधारण आदमीकी तरह लक्ष्मी, लाज, धीरज और कीर्ति-रहित यह कौन पुरुप है जो अल्पबुद्धि बालक-की तरह मौतकी इच्छा करता है! जिसकी पुण्य चतुर्दशी क्षीण हुई है (अर्थात वदी चौदसके चाँदकी तरह जिसका पुण्य क्षीण हो गया है) ऐसा और लक्षणहीन यह, ऐसा जान पड़ता है कि, मृग जैसे सिंहकी गुफामें जाता है वैसेही, हमारे देशमें आया है। महा पवन जैसे बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देता है वैसेही उद्धत आकारवाले इस फैलते हुए पुरुपको हम दशों दिशाओंमें (छिन्न भिन्न करके) फेंक दें।"

इस तरह जोर जोरसे बातें करते हुए वे, शरभ (अष्टापद नामका पशु) जैसे मेघके सामने गर्जता और दौड़ता है वैसेही, भरतके साथ युद्ध करनेकी तैयारी करने लगे। किरातपतियोंने, कछुओंकी पीठोंकी हड्डियोंके टुकड़ोंसे बने हुए हों ऐसे, अभेद्य कवच पहने, सरोंपर खड़े केशोंवाले, निशाचरोंकी शिरलक्ष्मीको बतानेवाले रीछोंके बालोंवाले शिरस्त्राण उन्होंने धारण किए।

लड़ाईकी उमंगमें उनके शरीर ऐसे फूलने लगे कि उससे उनके कवचोंके तार टूटने लगे। उनके खड़े केशोंवाले सरोंपरसे शिरस्त्राण सरक जाते थे; ऐसा जान पड़ता था, मानों मस्तक दुखसे कह रहे थे कि हमारी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। कई क्रोधमें आए हुए किरात, यमराजकी भ्रकुटीके समान टेढ़े और सींगके बनाए हुए धनुष आसानीसे चढ़ाकर, धारण करने लगे, कई मानों जयलक्ष्मीकी लीलाकी शैया हो ऐसी रणमें दुर्वार और भयंकर तलवारें म्यानोंसे खींचने लगे; कई यमराजके छोटे भाईके जैसे दंडोंको ऊँचे उठाने लगे; कई धूमकेतुकी तरह भालोंको आकशमें नचाने लगे; कई रणोत्सवोंमें आमंत्रित प्रेत राजाओंको प्रसन्न करनेके लिए, मानों शत्रुओंको शूलपर चढ़ाना हो ऐसे, त्रिशूल धारण करने लगे; कई शत्रु रूपी चिड़ियोंके प्राण लेनेवाले बाज पक्षीकी तरह लोहेके शल्य हाथोंमें लेने लगे और कई, मानों आकाशके तारोंको तोड़ना चाहते हों ऐसे, अपने उद्धत हाथोंसे तत्काल मुद्गर फिराने लगे। इस तरह लड़ाई करनेकी इच्छासे सबने तरह तरहके हथियार बाँधे। एकभी आदमी बिना हथियारका न था। युद्धरसकी इच्छावाले वे, मानों एक आत्मावाले हों ऐसे, सभी एक साथ भरतकी सेनापर चढ़ आए। ओले गिरानेवाले प्रलयकालके मेघकी तरह, शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए म्लेच्छ, भरतकी सेनाके अगले भागके साथ जोरोंसे युद्ध करने लगे। मानों पृथ्वीमेंसे, दिशाओंके मुखसे और आकाशसे पड़ते हों वैसे चारों तरफसे हथियार गिरने लगे। दुर्जनकी उक्तिसे जैसे सभीमें भेद हो जाता है ऐसेही भरतकी सेनामें कोई ऐसा न रहा जो भीलोंके बाणोंसे भिदा न

हो। म्लेच्छ लोगोंके आक्रमणसे चक्रवर्तीके अगले घुड़सवार, समुद्रकी लहरोंद्वारा नदीके अगले भागकी लहरोंकी तरह पीछे हटे और घबरा उठे। म्लेच्छरूपी सिंहोंके बाणरूपी सफेद नाखूनोंसे, घायल हुए चक्रवर्तीके हाथी, दुखी स्वरमें चिंघाड़ने लगे। म्लेच्छ वीरोंके प्रचंड दंड-युद्धके द्वारा बार बार किए गए आघातोंसे, भरतकी पैदल सेनाके लोग गेंदकी तरह उछल उछल कर गिरने लगे। वज्राघातसे पर्वतोंकी तरह, यवनसेनाने गदा-प्रहारसे चक्रवर्तीकी अगली सेनाके रथोंको तोड़ दिया। संग्रामरूपी सागरमें, तिमिंगल जातिके मगरोंसे जैसे मछलियोंका समूह ग्रस्त (पीड़ित) होता है वैसेही म्लेच्छ लोगोंसे चक्रवर्तीकी सेना ग्रस्त और त्रस्त हुई। (३५१६-३७७)

अनाथकी तरह हारी हुई अपनी सेनाको देख, राजाकी आज्ञाकी तरह, गुस्सेने सेनापति सुषेणको उत्तेजित किया। उसके नेत्र और मुँह लाल सुर्ख हो गए और क्षणभरमें वह मनुष्यके रूपमें साक्षात आगके समान दुर्निरीक्ष्य (जिसकी तरफ देखा न जा सके ऐसा) हो उठा। राक्षसपतिकी तरह वह सभी दूसरोंकी सेनाका ग्रास करनेके लिए तैयार हो गया। शरीरमें उत्साह आनेसे उसका सोनेका कवच बड़ी कठिनतासे पहना गया और वह ऐसा चुस्त बैठा कि दूसरी चमड़ीसा मालूम होने लगा। कवच पहनकर साक्षात जयके समान वह सुषेण सेनापति कमलापीड़ नामके घोड़े पर सवार हुआ। उस घोड़ेकी ऊँचाई अस्सी अंगुल, उसका विस्तार निन्यानवे अंगुल और लंबाई एकसौआठ अंगुल थी। उसका सर सदा बत्तीस अंगुलकी ऊँचाईपर रहता था। उसके बाहु (अगले पैर) चार अंगुलके

थे; इसकी जाँघें सोलह अंगुलकी थीं; उसके घुटने चार अंगुलके थे; और उसके खुर चार अंगुल ऊँचे थे। उसका मध्यभाग गोलाकार और झुका हुआ था; उसकी पीठ विशाल, जरा झुकी हुई और खुशी पैदा करनेवाली थी; उसके रोम रेशमके सूतके समान कोमल थे; उसके शरीरमें श्रेष्ठ बारह आवर्त (भँवरियाँ) थे; उसमें सभी अच्छे लक्षण थे और उसकी कांति अच्छी तरहसे जवानीमें आए हुए तोतेके पंखोंसी हरी थी। उसको कभी चाबुक लगा न था; वह हमेशा सवारकी इच्छाके अनुसार चलता था। रत्न और स्वर्णमय लगामके बहाने, लक्ष्मीने अपने दोनों हाथ उसके गलेमें डाले हों, ऐसा जान पड़ता था। उसपर सोनेकी घुंघरूमाला खन-खन आवाज कर रही थी, इससे मालूम होता था कि मधुरध्वनिवाले मधुकरोंसे सेवित कमलोंकी मालासे वह पूजा गया है। उसका मुख ऐसा मालूम होता था मानों वह पाँचरंगकी मणियोंसे मिले हुए सोनेके गहनोंकी किरणों द्वारा पताकाओंके चिह्नोंसे अंकित है। मंगलके तारेसे मंडित आकाशकी तरह सोनेके कमलका उसके ललाटपर तिलक था और उसके पहने हुए चामरोंके आभूषणोंसे वह ऐसा शोभता था मानों उसने दूसरे कान धारण किए हैं। वह, चक्रवर्तीके पुण्यसे खिंचकर आए हुए, सूर्यके उच्चैश्रवा नामक घोड़ेसा सुशोभित होरहा था। उसके पैर टेढ़े गिरते थे इससे वह खेलतासा जान पड़ता था। उसमें एक क्षणमें सौ योजन लाँघ जानेकी शक्ति थी; इससे वह साक्षात गरुड़ या पवन मालूम होता था। वह कीचड़, जल, पत्थर-कंकर और खड्डोंवाले विषम महास्थलको (स्थानको) और पहाड़, गुफा वगैरा दुर्गम स्थलों-

को पार कर जानेकी ताक़त रखता था। चलते समय उसके पैर भूमिपर बहुतही कम गिरते थे, इससे जान पड़ता था कि वह आकाशमें उड़ रहा है। वह बुद्धिमान और नम्र था। पाँच तरहकी गतिसे उसने श्रमको जीता था। उसका श्वास कमलके समान सुगंधवाला था। (३७७-३६५)

ऐसे घोड़ेपर सवार होकर सेनापतिने यमराजकी तरह खड्गरत्न ग्रहण किया। यह शत्रुओंके लिए पत्र (मृत्युपत्र) के समान था। खड्ग पचास अंगुल लंबा, सोलह अंगुल विस्तृत (चौड़ा) और आध अंगुल मोटा था। उसका सोनेका म्यान रत्नोंसे मढ़ा हुआ था। वह म्यानसे बाहर निकाला हुआ था, इससे काँचलीसे मुक्त सर्पके समान मालूम होता था। उसकी धार तेज थी। वह मानों दूसरा वज्र हो ऐसा मजबूत था और विचित्र कमलोंकी श्रेणीके समान दिखाई देनेवाले रंगोंसे वह शोभता था। इस खड्गको धारण करनेसे वह सेनापति ऐसा जान पड़ता था, मानों वह पंखोंवाला अहींद्र (शेषनाग) हो या कवचधारी केसरी सिंह हो। आकाशमें चमकती हुई बिजलीकी चपलतासे खड्ग घुमाते हुए उसने अपने घोड़ेको रणभूमिकी तरफ दौड़ा दिया। वह, जलकांतमणि जैसे जलको चीरती है ऐसे, रिपुदलको चीरता हुआ रणभूमिमें जा पहुँचा।

(३९६-४०१)

सुषेणके आक्रमणसे कई शत्रु मृगोंकी तरह व्याकुल हो गए; कई जमीनपर पड़े हुए खरगोशकी तरह आँखें बंद करके बैठ गए; कई रोहित मृगकी तरह थके हुए-से वहीं खड़े हो रहे और कई बंदरोंकी तरह दुर्गम स्थानोंमें जा बैठे। कइयोंके हथियार पेड़के

पत्तेकी तरह जमीनपर गिर गए, कइयोंके छत्र, यशकी तरह भूमिसात हो गए. कइयोंके घोड़े मंत्रसे स्थिर किए हुए सर्पोंकी तरह स्थिर हो रहे, और कइयोंके रथ इस तरह टूट गए मानों वे मिट्टीके बने हुए थे। कई अपरिचितोंकी तरह इधर उधर भाग गए; वे अपने आदमियोंके आनेकी राह भी न देख सके। सभी म्लेच्छ अपने प्राण लेकर दशों दिशाओंमें भाग गए। पानीकी बाढ़से जैसे वृक्ष खिंचकर बह जाते हैं ऐसेही सुषेणरूपी जलकी बाढ़से म्लेच्छ बहकर चले गए। फिर वे कौओंकी तरह एक जगह जमा हो, थोड़ी देर सोच-विचार कर, आतुर बालक जैसे माताके पास जाते हैं ऐसेही महानदी सिंधुके पास आए, और मृत्यु-स्नान करनेको तैयार हुए हों ऐसे, बालुके समूहके बिस्तर बिछाकर उनपर बैठे। वहाँ उन्होंने नग्न ऊँचे मुँह कर मेघमुख वगैरा नागकुमार जातिके अपने कुलदेवताका मनमें ध्यान कर अट्ठम तप किया। अट्ठम तपके अंतमें मानों चक्रीके चक्रसे डर लगा हो ऐसे नागकुमार देवताओंके आसन कांपे। अवधिज्ञानसे म्लेच्छ लोगोंको दुखी देख, पिता संतानके दुःखसे दुखी होता है ऐसे दुखी हो वे उनके सामने आकर प्रकट हुए और आकाशमें रहकर उनसे उन्होंने पूछा, "तुम मनचीती किस बातकी सफलता चाहते हो?" (४०२-४१३)

आकाशमें स्थित उन मेघमुख नागकुमारोंको देख, मानों बहुत प्यासे हों ऐसे, उन्होंने हाथ जोड़, मस्तकपर रख कहा- "हमारे देशपर आज तक किसीने हमला नहीं किया था, अब कोई आया है, आप ऐसा कीजिए कि जिससे वह यहाँसे चला जाए। (४१४-४१५)

देवोंने कहा, "हे किरातो! यह भरत नामका चक्रवर्ती राजा है। यह इंद्रकी तरह अजेय है। देव, असुर या मनुष्य कोई भी उसे नहीं जीत सकता। टाँकियोंसे जैसे पर्वतके पत्थर भेदे नहीं जा सकते वैसेही, पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा मंत्र, तंत्र, विष, शस्त्र और अन्य विद्याओंके अगोचर होता है, कोई उस तक पहुँच नहीं सकता। फिर भी तुम्हारे आग्रहसे हम उसको हानि पहुँचानेकी कोशिश करेंगे।" यों कह कर वे चले गए।

(४१६-४१८)

क्षणभरमें मानो पृथ्वीपरसे उछलकर समुद्र आकाशमें आए हों वैसे काजलके समान कांतिवाले मेघ आकाशमें पैदा हुए। बिजलीरूपी तर्जनी अंगुलीसे चक्रवर्तीकी सेनाका तिरस्कार करते हों और घोर गर्जनासे बार बार क्रोधकर उसका अपमान करते हों ऐसे वे दिखाई देने लगे। सेनाको चूर्ण करनेके लिए उतनेही प्रमाणवाली (अर्थात सेनाके विस्तार जितनीही लंबी-चौड़ी) ऊपर आई हुई वज्रशिलाके जैसे मेघ, महाराजाकी छावनीपर तत्कालही चढ़ आए और मानों लोहेके टुकड़ेके तीखे अगले भाग हों, मानों बाण हों, मानों दंड हों ऐसी धारासे वे बरसने लगे। सारी जमीन चारों तरफ मेघके पानीसे भर गई और उसमें रथ नौकाओंकी तरह और हाथी वगैरह मगर-मच्छोंके समान मालूम होने लगे। सूरज मानों किसी तरफ चला गया हो और पर्वत मानों कहीं भाग गया हो ऐसे मेघोंके अंधकारसे कालरात्रिके समान दृश्य दिखाई देने लगा। उस समय चारों तरफ पृथ्वीपर अंधकार और जलही जल हो गया। ऐसा मालूम होने लगा मानों पृथ्वीपर फिरसे युग्मधर्म आ गया है।

ऐसी अरिष्टकारक-दुख देनेवाली बारिश देखकर चक्रवर्ती-ने कृपापात्र नौकरकी तरह अपने हाथसे चर्मरत्नको स्पर्श किया। उत्तरदिशाके पवनसे जैसे मेघ फैलते हैं वैसे चक्रवर्तीका हाथ लगनेसे चर्मरत्न बारह योजन तक फैल गया। समुद्रके बीचमें पानीके ऊपर जैसे जमीन होती है वैसेही चर्मरत्नपर सारी सेना सहित महाराज बैठ गए। फिर विद्रुम (मूँगा) से जैसे क्षीरसमुद्र शोभता है वैसे सुन्दर कांतिवाली सोनेकी निन्यानवे-हजार शलाकाओंसे (छातेकी तीलियोंसे) सुशोभित, व्रण और ग्रंथी (गाँठ) से रहित कमलनालकी तरह सीधा सोनेकी सुन्दर डंडीवाला और पानी, धूप, हवा और धूलिसे बचानेमें समर्थ ऐसे छत्ररत्नको राजाने स्पर्श किया, इससे वह भी चर्मरत्नकी तरह फैल गया। उस छत्रकी डंडीके ऊपर अंधकारका नाश करने केलिए राजाने सूरजके समान मणिरत्न रक्खा। छत्ररत्न और चर्मरत्नका वह संपुट तैरते हुए अंडेके समान शोभने लगा। तभीसे लोगोंमें ब्रह्मांडकी कल्पना उत्पन्न हुई। गृहीरत्नके प्रभाव से उस चर्मरत्नमें अच्छे खेतकी तरह सवेरे बोया हुआ धान्य साँझको उत्पन्न होता है; चंद्रके प्रासादकी तरह उसमें सवेरे बोए हुए कूष्मांड (कुम्हड़े), पालक और मूली वगैरा शामको फल देनेवाले होते हैं; और सवेरे बोए हुए आम, केले वगैरा फलोंके वृक्ष भी साँझको, महान पुरुषोंके आरंभ किए हुए काम जैसे सफल होते हैं वैसेही सफल होते हैं। उस (संपुट) में रहे हुए लोग ऊपर बताए हुए धान्य, शाक-पात और फलोंका भोजन करके प्रसन्न थे, उद्यानमें खेलकूद करने गए हों ऐसे उनको फौज-का श्रम भी मालूम नहीं होता था। मानों महलमें रहते हों ऐसे

मध्यलोकके (मर्त्यलोकके) पति भरत राजा चर्मरत्न और छत्ररत्नके बीचमें परिवार सहित आरामसे रहने लगे। (इस तरह भरत और उनकी सेना रह रही थी। और) कल्पांतकालकी तरह वहाँ पानी बरसते हुए नागकुमार देवताओंने सात दिन-रात बिताए। (४१८-४३६)

फिर राजाको विचार आया, "वह पापी कौन है जो मुझे इस तरह तकलीफ दे रहा है?" राजाका यह विचार जानकर सदा उसके पास रहनेवाले और महापराक्रमी सोलहहजार यक्ष (तकलीफ मिटानेको) तैयार हुए। उन्होंने भाथे बाँधे, धनुषों के चिल्ले चढ़ाए और मानों वे अपनी क्रोधरूपी आगसे शत्रुओंको जला डालना चाहते हों ऐसे मेघमुख नागकुमारोंके पास आए और बोले, "हे दुष्टो! मूर्खकी तरह क्या तुम इन पृथ्वीके स्वामी भरत चक्रवर्तीको नहीं जानते? जो सारी दुनियामें अजेय हैं उन राजाको तकलीफ देनेके लिए कीगई कोशिश तुमको इसी तरह दुःख देगी जिस तरह पर्वतोंमें अपने दाँतोंका प्रहार करनेसे हाथियोंको होती है। तो भी अब खटमलकी तरह तुम यहाँसे चले जाओ, नहीं तो ऐसी बुरी मौत मरोगे जैसे पहले कोई नहीं मरा है। (४४०-४५)

यह बात सुनकर मेघमुख नागकुमार घबराए और उन्होंने क्षणभरमें मेघबलको (वर्षाको) इस तरह समेट लिया जिस तरह जादूगर जादूके खेलको समेट लेता है। फिर वे किरात लोगोंसे यह कहकर अपने स्थानपर चले गए कि तुम भरत राजा की शरणमें जाओ।

देवताओंके वचनसे निराश बने हुए म्लेच्छ लोग और

कोई आश्रय न रहनेसे आश्रय देने योग्य भरत राजाकी शरणमें गए। उन्होंने, मानों मेरुपर्वतका सार हो ऐसा स्वर्णका ढेर और मानों अश्वरत्नके प्रतिबिंब हों ऐसे लाखों घोड़े भरत राजाके भेट किए। फिर वे हाथ जोड़, सर झुका, सुन्दर वचनोंसे गर्भित वाणीसे, मानों वे बंदीजनों (चारणों) के सगे भाई हों ऐसे, बोले, "हे जगत्पति! अखंड प्रचंड पराक्रमी! आपकी जय हो। छः खंड पृथ्वीमें आप इंद्रके समान हैं। हे राजा! हमारे प्रदेशके किलेके समान वैताढ्यपर्वतका गुफाद्वार आपके सिवा दूसरा कौन खोल सकता था? हे विजयी राजा! आकाशमें ज्योतिश्चक्रकी तरह जलपर सारी सेनाकी छावनी रखनेकी शक्ति किसमें है? हे स्वामी! अद्भुत शक्तिके कारण आप देवताओंसे भी अजेय हैं; यह बात हम अब समझे हैं। इसलिए हम अज्ञानियोंके सारे अपराध क्षमा कीजिए। हे नाथ! नया जीवन देनेवाले आप अपना हाथ हमारी पीठपर रखिए! आजसे हम आपकी आज्ञामें रहेंगे।" कृत्यवित (कामका विचार करनेवाले) भरत महाराजने उन्हें अपने अधीन माना और उनको, सत्कार कर, विदा किया। कहा है—

"......उत्तमानां हि प्रणामावधयः क्रुधः।"

[उत्तम पुरुषोंका क्रोध प्रणामकी अवधि तक ही रहता है। अर्थात विरोधी जब तक झुक नहीं जाता तभी तक उत्तम पुरुष उसपर नाराज रहते हैं।] चक्रवर्तीकी आज्ञासे सेनापति सुषेण गिरि तथा समुद्रकी मर्यादावाले सिंधुके उत्तर निष्कुट (द्वार) तक सबको जीत आया। चक्रवर्ती भरत सुख भोग भोगते हुए वहाँ बहुत समय तक रहे; मानों वे अपनी बगलमें

अनार्य लोगोंको आर्य बनाना चाहते थे। (४४६-४५६)

एक दिन दिग्विजयमें जमानतके समान, तेजस्वी विशाल चक्ररत्न राजाकी आयुधशालामेंसे निकला और क्षुद्र हिमवंत पर्वतकी तरफ पूर्व दिशाके मार्गसे चला। जैसे जलका प्रवाह नालेके रस्तेसे होता है वैसेही, चक्रवर्ती भी चक्रके पीछे पीछे चले। गजेंद्रकी तरह लीलासे चलते हुए महाराज कई दिनोंकी मुसाफिरीके बाद क्षुद्रहिमाद्रिके दक्षिण भागके पास आए। भोजपत्र, तगर और देवदारु के वृक्षोंसे भरे हुए उस प्रदेशके पांडुकवनमें महाराजने इंद्रकी तरह, छावनी डाली। वहाँ क्षुद्रहिमाद्रिकुमारदेवके उद्देशसे ऋषभात्मजने (भरतने) अष्टम तप किया। कारण—

"..........कार्यसिद्धेस्तपोमंगलमादिमम्।"

[काम सिद्ध करनेके लिए तपस्या आरंभका मंगल है।] रातके अंतमें सूरज जैसे पूर्व समुद्रसे बाहर निकलता है वैसे अष्टम पूर्ण होनेपर सवेरेही तेजस्वी महाराज रथमें बैठकर छावनी रूपी समुद्रसे बाहर निकले और आटोप (अभिमान) सहित जल्दी जाकर महाराजाओंके अग्रणीने अपने रथके अगले भागके (डंडेसे) क्षुद्र हिमालय पर्वतपर तीन बार आघात किया। धनुर्धरकी वैशाख-आकृतिमें[1] रहकर महाराजने अपने नामसे अंकित बाण हिमाचलकुमार देवपर चला दिया। पक्षीकी तरह बहत्तर योजन तक आकाशमें उड़ता हुआ बाण देवके सामने जाकर गिरा। अंकुशको देखकर जैसे उन्मत्त हाथी बिगड़ता है

१—बाण चलाते समय होनेवाली आकृतिविशेष।

ऐसेही शत्रुके बाणको देखकर हिमाचलकुमार देवकी आँखें लाल हो गईं। मगर जब उसने बाणको उठाकर देखा और उसपर लिखे हुए अक्षरोंको पढ़ा तब उसका गुस्सा इसी तरह शांत हो गया जिस तरह सर्पको देखकर दीपक शांत हो जाता है। उससे प्रधानपुरुषकी तरह वह बाणको भी साथमें रख भेंट ले भरतेश्वर-के पास आया। आकाशमें ठहर, जय जय शब्दोंका उच्चारण कर उसने, पहले बाण बनानेवालेकी तरह बाण भरतको दिया और फिर देववृक्षके फूलोंसे गुँथी माला गोशीर्षचंदन, सर्वौषधि और द्रहका जल, ये सब चीजें चक्रवर्तीको भेंट कीं, कारण उसके पास वेही चीजें साररूप थीं। कड़े, बाजूबंद और दिव्य वस्त्र भेटके बहाने उसने महाराजको दंडमें दिये और कहा, "हे स्वामी! मैं उत्तरदिशाके अंतमें आपके नौकरकी तरह रहूँगा।" यों कह-कर जब वह चुप हुआ तब, चक्रवर्तीने उसको, सत्कार करके विदा किया। फिर उन्होंने, मानों हिमालयका शिखर हो ऐसे और मानों शत्रुओंका मनोरथ हो ऐसे अपने रथको लौटाया।

(४४६-४७६)

वहाँसे ऋषभपुत्र ऋषभकूट गए और, जैसे हाथी अपने दाँतोंसे पर्वतपर प्रहार करता है वैसे, उन्होंने अपने रथके अगले भागसे तीन बार ऋषभकूटपर आघात किया। फिर सूर्य जैसे किरणकोशको ग्रहण करता है ऐसेही चक्रवर्तीने, रथको वहीं ठहरा, काँकिणीरत्न ग्रहण किया और काँकिणीरत्नसे पर्वतके पूर्व शिखरपर लिखा, "अवसर्पिणीकालके तीसरे आरे के अंतिम भागमें मैं भरत नामक चक्रवर्ती हुआ हूँ।" ये अक्षर लिख चक्रवर्ती अपनी छावनीमें आए, और उन्होंने उसके लिए किया

हुआ अष्टम तपका पारणा किया। फिर हिमालयकुमारकी तरह, ऋषभकूट पतिके लिए चक्रीकी सम्पत्तिके योग्य अष्टाह्निका उत्सव किया। (४७७-४८१)

गंगा और सिंधु नदियोंके बीचकी भूमिमें, मानों समाते न हों इससे, आकाशमें उछलनेवाले घोड़ोंसे, सेनाके बोझसे घबराई जमीनको छिड़कनेकी इच्छा रखते हों ऐसे मदजलके प्रवाहवाले गंधहस्तियोंसे, कठोर पहियोंकी धाराओं द्वारा लीकोंसे पृथ्वीको अलंकृत करते हों ऐसे उत्तम रथोंसे और नराद्वैत (नरके सिवा और कुछ नहीं है ऐसी स्थिति)को बतानेवाले अद्वितीय पराक्रम-वाले, भूमिपर फैले हुए करोड़ों प्यादोंसे घिरे हुए चक्रवर्ती, अश्ववार (महावत) की इच्छानुसार चलनेवाले कुलीन मतंगजकी तरह, चक्रके पीछे चलकर वैताढ्यपर्वतपर आए और उस पर्वत-के उत्तरभागमें जहाँ शबरों (भीलों) की स्त्रियाँ आदीश्वरके अनिंदित गीत गाती थीं, महाराजाने छावनी डाली। वहाँ रहकर उन्होंने नमि-विनमि नामके विद्याधरोंके पास दंडको माँगनेवाला बाण भेजा। बाणको देखकर वे दोनों विद्याधरपति, गुस्से हुए और आपसमें विचार करने लगे। एक बोला,—(४७७-४८६)

"जंबूद्वीपके भरत खंडमें यह भरत राजा प्रथम चक्रवर्ती हुआ है। यह ऋषभकूट पर्वतपर चंद्रबिंबकी तरह अपना नाम लिखकर, लौटते समय यहाँ आया है। हाथीके आरोहककी तरह उसने वैताढ्यपर्वतके पार्श्वभागमें (पासमें) छावनी डाली है। वह सब जगह जीता है, उसे अपने भुजबलका अभिमान हो गया है, वह हमें भी जीतना चाहता है और इसी लिए, मैं मानता हूँ कि उसने यह उद्दंड दंडरूप बाण हमारे पास फेंका है।"

फिर सोच-विचार कर दोनों युद्धके लिए तैयार हो, अपनी सेनासे पर्वतके शिखरको ढकने लगे। सौधर्म और ईशानपति-की देव-सेनाकी तरह, दोनोंकी आज्ञासे विद्याधरोंकी सेना आने लगी। उनकी किल-किल आवाजसे मालूम होता था मानों वैताढ्यपर्वत हँस रहा है, गर्ज रहा है, फट रहा है। विद्याधरेंद्रों-के सेवक वैताढ्यपर्वतकी गुफाकी तरह सोनेका बहुत बड़ा ढोल बजाने लगे। उत्तर और दक्षिण तरफके शहरों, कसबों और गाँवोंके मालिक, रत्नाकरके पुत्र हों ऐसे, तरह तरहके रत्नोंके आभूषण पहनकर, मानों गरुड़ हों ऐसे, अस्खलित गतिसे आकाशमें फिरने लगे। नमि-विनमिके साथ चलते हुए वे उनके प्रतिबिंबसे मालूम होते थे। कई विचित्र माणिक्योंकी प्रभासे दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले विमानोंमें बैठकर, वैमानिक देवताओंसे भिन्न न दिखाई दें ऐसे चलने लगे कई, पुष्करावर्त-के मेघकी तरह, मदबिंदुओंकी वर्षा करनेवाले और गर्जना करनेवाले, गंधहस्तियोंपर सवार होकर चले; कई सूरज और चाँदके तेजसे भरे हुए हों ऐसे, सोने और रत्नसे बनाए हुए रथमें बैठकर चले; कई आकाशमें अच्छी चालसे चलते और अति वेगसे शोभते, मानों वायुकुमार देवता हों ऐसे घोड़ोंपर सवार हो, जाने लगे और कई हाथोंमें हथियार लिए, वज्रके कवच पहने, बंदरोंकी तरह कूदते फाँदते पैदलही चले। इस तरह विद्याधरोंकी सेनासे घिरे हुए और लड़ाईके लिए तैयार नमि-विनमि वैताढ्यपर्वतसे उतर भरतपतिके सामने आए।

(४९०–५०५)

आकाशसे उतरती हुई विद्याधरोंकी सेना ऐसी मालूम

होती थी, मानों वह आकाशको, मणिमय विमानों द्वारा, अनेक सूर्योंवाला बना रही है; मानों चमकते हुए हथियारोंसे विद्युत-मय बना रही है; मानों बड़े जोरसे बजते हुए नगारोंकी आवाज-से गूँजता हुआ बना रही है। "अरे दंडार्थी ! क्या तू हमसे दंड लेगा ?" यूँ कहते हुए विद्यासे उन्मत्त बने हुए उन दोनों विद्याधरोंने भरतपतिको युद्ध करनेके लिए पुकारा। फिर दोनों तरफकी सेनाएँ अनेक तरहके हथियार चलाती हुई युद्ध करने लगीं। कारण,—

"......युद्धैर्युद्धार्ज्या यज्जयश्रियः ।"

[जयलक्ष्मी लड़ाईसेही पाने योग्य है-यानी लड़ाईसेही जयलक्ष्मी मिलती है।] बारह बरस तक लड़ाई हुई। अंतमें विद्याधर हारे और भरत जीते। तब उन्होंने हाथ जोड़कर भरत-को प्रणाम किया और कहा, "हे कुलस्वामी ! जैसे सूर्यसे अधिक तेजवाला दूसरा कोई नहीं है, वायुसे अधिक वेगवाला दूसरा कोई नहीं है और मोक्षसे अधिक सुख दूसरा कोई नहीं है, ऐसेही तुमसे अधिक वीर दूसरा कोई नहीं है। हे ऋषभ स्वामीके पुत्र ! आपको देखकर हम अनुभव करते हैं कि हमने साक्षात ऋषभस्वामीको ही देखा है। अज्ञानतावश हमने आपको जो तकलीफ पहुँचाई है उसके लिए आप हमें क्षमा कीजिए; कारण, आज आपहीने हमें अज्ञानके (अंधकारसे) बाहर निकाला है। पहले हम जैसे ऋषभस्वामीके नौकर थे वैसेही, अब हम आपके नौकर हैं; कारण, स्वामीकी तरहही स्वामीके पुत्रकी सेवा भी लज्जाजनक नहीं होती। हे महाराज ! दक्षिण और उत्तर भरतार्द्धके मध्यमें स्थित वैताढ्यके दोनों भागोंमें हम

दुर्गपालकी तरह आपकी आज्ञामें रहेंगे।"

फिर राजा विनमिने यद्यपि वह महाराजको कुछ भेट करना चाहता था, तथापि मानों वह कुछ माँगना चाहता हो ऐसे, नमस्कार कर, हाथ जोड़-स्थिर लक्ष्मीके समान, स्त्रियोंमें रत्नरूप अपनी सुभद्रा नामकी कन्या चक्रीको भेट की।

(५०६-५१५)

उसकी आकृति ऐसी समचौरस थी मानों वह नापकर बनाई गई हो; उसकी कांति ऐसी तेज थी, मानों वह तीनलोकके माणिकोंका पुंज हो; जवानीसे और सदा रहनेवाले सुंदर केशों और नखोंसे वह ऐसी शोभती थी मानों वह कमल सेवकोंसे घिरी हुई हो; दिव्य औषधकी तरह वह सब रोगोंको शांत करनेवाली थी; दिव्य जलकी तरह वह इच्छानुकूल शीत और उष्ण स्पर्शवाली थी। वह तीन स्थानोंपर श्याम, तीन स्थानोंपर सफेद, तीन स्थानों पर ताम्र (लाल), तीन स्थानोंपर उन्नत, तीन स्थानोंपर गंभीर, तीन स्थानोंपर विस्तीर्ण, तीन स्थानोंपर दीर्घ और तीन स्थानोंपर कृश थी। अपने केशकलापसे (केशोंके समूहसे) वह मोरके कलापको (पंखसमूहको) जीतती थी और ललाटसे अष्टमीके चंद्रको हराती थी। उसकी आँखें रति और प्रीतिकी क्रीडावापिकाएँ थीं; उसकी दीर्घ नासिका ललाटके लावण्य (सौंदर्य) की जलधाराके समान थी; उसके सुंदर गाल नवीन दर्पणोंके समान थे; उसके कंधों तक पहुँचते हुए दोनों कान मानों दो झूले थे; उसके होंठ एक साथ पके हुए बिंबफलोंके समान थे; उसके दाँत हीराकणियोंकी श्रेणीकी शोभाको पराभव करनेवाले थे; उसका कंठकमल (गला) पेटकी तरह

तीन रेखाओंवाला था; उसकी भुजाएँ कमलकी डंडीके समान सीधी और बिस (कमल) के समान कोमल थीं; उसके स्तन कामदेवके दो कल्याण-कलशोंके समान थे; स्तनोंने मानों मोटापा हर लिया हो, इससे कृश बना हो ऐसा उसका कृश और कोमल उदर था; उसका नाभिमंडल नदीकी भँवरीके समान था; उसकी रोमावली नाभिरूपी बावड़ीके किनारे उगी हुई दूर्वा हो ऐसी थी; उसके बड़े बड़े नितंब मानों कामदेवकी शय्या हो ऐसे थे; उसके ऊरुदंड (जाँघें) झूलेके दो सोनेके डंडे हों ऐसे सुंदर थे; उसकी पिंडलियाँ हरिणीकी जाँघोंका तिरस्कार करनेवाली थीं। उसके पैर भी हाथोंकी तरह कमलोंका तिरस्कार करनेवाले थे। ऐसा मालूम होता था मानों वह, हाथ-पैरोंकी उँगलियों रूपी पत्तोंसे विकसित, लता (बेल) है, या प्रकाशित नखरूपी रत्नोंसे रत्नाचलकी तटी (किनारा) है, या हिलते हुए विशाल, स्वच्छ, कोमल और सुंदर वस्त्रोंसे, मृदुपवनके द्वारा तरंगित सरिता है। स्वच्छ कांतिसे चमकते हुए सुंदर अवयवोंसे वह अपने सोने और रत्नमय आभूपणोंको सुशोभित करती थी; छायाकी तरह पीछे चलनेवाली छत्रधारिणी स्त्री उसकी सेवा करती थी; दो हंसोंसे कमलिनीकी तरह हिलते हुए दो चामरोंसे वह शोभती थी और जैसे लक्ष्मी अनेक अप्सराओंसे और गंगा अनेक नदियोंसे शोभती है वैसेही वह सुंदरी बाला समान वयवाली हजारों सखियोंसे शोभती थी।

(५१६-५३४)

नमि राजाने भी महा मूल्यवान रत्न उसको भेट किए। कारण,—

"गृहागते स्वामिनि हि किमदेयं महात्मनाम् ।"

[स्वामी जब घर आते हैं तब महात्मा सबकुछ उनको भेट करते हैं; कोई चीज उनके लिए अदेय नहीं होती है।] फिर भरतपतिने उनको विदा किया। वे घर आए और अपने पौत्रोंको राज दे, विरक्त हो, भगवान ऋषभदेवके चरणोंमें गए। वहाँ उन्होंने व्रत ग्रहण किया। (५३५-५३६)

महानतेजस्वी भरत चक्रवर्ती वहाँसे चक्ररत्नके पीछे चलते हुए गंगाके तटपर आए। जाह्नवी (गंगा) किनारेसे बहुत दूर भी नहीं और बहुत निकट भी नहीं, ऐसे स्थानपर पृथ्वीके इंद्रने अपनी सेनाकी छावनी डाली। महाराजाकी आज्ञासे सुषेण सेनापतिने सिंधुकी तरहही गंगा पार कर उसके उत्तर-निष्कुट (प्रदेश) को जीता। फिर भरत चक्रवर्तीने अट्ठम तप कर गंगादेवीकी साधना की।

"उपचारः समर्थानां सद्यो भवति सिद्धये ।"

[समर्थ पुरुषोंका उपचार तत्कालही सिद्धि देनेवाला होता है।] गंगादेवीने प्रसन्न होकर दो रत्नमय सिंहासन और एक-हजार आठ रत्नमय कुंभ भरतको दिए। रूपलावण्यसे कामदेवको भी किंकरके समान बनानेवाले भरत राजाको देखकर गंगादेवी क्षुब्ध हुई। उसने सारे शरीरपर वदन (मुख) रूपी चंद्रका अनुसरण करनेवाले मनोहर तारागण हों ऐसे मोतियोंके आभूषण धारण किए थे; केलेके अंदरकी त्वचा (छाल) के समान वस्त्र पहने थे, वे ऐसे मालूम होते थे मानों उसका जलप्रवाह वस्त्र के रूपमें बदल गया है; रोमांचरूपी कंचुकी (चोली) से उसके

स्तनपरकी कंचुकी चर्र चर्र फटती थी और मानों स्वयंवरकी माला हो ऐसी धवल (सफेद) दृष्टिको वह बार बार भरतपर डालती थी। इस स्थितिको प्राप्त गंगादेवी क्रीडा करनेकी इच्छासे, प्रेमभरी गद्गद् वाणीमें भरत राजासे अत्यंत प्रार्थना करके उनको अपने रतिगृहमें (शयन घरमें) ले गई। वहाँ भरत राजाने विविध भोग भोगते हुए एक हजार बरस, एक दिनकी तरह बिताए। फिर किसी तरहसे देवीको समझा, उसकी आज्ञा ले, भरत वहाँसे निकले और अपनी प्रबल सेनाके साथ खंडप्रपाता गुफाकी तरफ चले। (५३७-५४८)

केसरी सिंह जैसे एक वनसे दूसरे वनकी तरफ जाता है वैसेही अखंड पराक्रमी चक्रवर्ती खंडप्रपाता गुफाके पास पहुँचे। गुफासे थोड़ी दूरीपर उस बलवान राजाने अपनी फौजकी छावनी डाली। वहाँ उस गुफाके अधिष्ठायक नाट्यमालदेवको मनमें धारण कर अट्ठम तप किया। इससे उस देवका आसन काँपा। अवधिज्ञानसे भरत राजाका आगमन जान वह, कर्जदार जैसे कर्जदाताके पास जाता है ऐसेही, भेटें लेकर भरत राजाके पास आया। महान भक्तिवाले उस देवने छः खंड भूमिके आभूषण-रूप भरत महाराजको आभूषण भेट किए, और उनकी सेवा स्वीकार की। नाटक करनेवाले नटकी तरह नाट्यमालदेवको, विवेकी चक्रवर्तीने प्रसन्न होकर विदा किया और फिर पारणा कर उस देवका अष्टाह्निका उत्सव किया।

अब चक्रीने सुषेण सेनापतिको आज्ञा दी, "खंडप्रपाता गुफा खोलो।" सेनापतिने मंत्रकी तरह नाट्यमालदेवका मन-में ध्यान कर, अट्ठम तप कर पौषधशालामें जा पौषधव्रत ग्रहण

किया। अष्टमके अंतमें उसने पौषधशालामेंसे निकल प्रतिष्ठामें जैसे श्रेष्ठ आचार्य बलिविधान करते हैं वैसेही, बलिविधान किया। फिर प्रायश्चित्त वा कौतुक मंगल कर बहु-मूल्यवान थोड़े वस्त्र धारण कर हाथमें धूपदानी ले, वह गुफाके पास गया। गुफाको देखतेही पहले उसने उसको नमस्कार किया; फिर उसके दरवाजे की ओर वहाँ अष्ट मांगलिक बनाए। तब किवाड़ खोलनेके लिए सात-आठ कदम पीछे हट उसने दरवाजेको सोनेकी चाबी हो ऐसे दंडरत्नको उठाया और उससे दरवाजेपर आघात किया। सूर्यकी किरणोंसे जैसे कमलकोश खिल जाता है वैसेही, दंडरत्न-के आघातसे दोनों किवाड़ खुल गए। (५४६–५६१)

गुफाका दरवाजा खुलनेकी बात सेनापतिने चक्रवर्तीसे कही। इससे भरतने हाथीपर बैठ, उसके दाहिने कंधेपर ऊँची जगहपर मणिरत्न रख, गुफामें प्रवेश किया। भरत राजा अंध-कारको नाश करनेके लिए, तमिस्रा गुफाकी तरहही इस गुफामें भी कांकिणीरत्नसे मंडल बनाते जाते थे और सेना उनके पीछे पीछे चली जाती थी। जैसे दो सखियाँ तीसरी सखीसे मिलती हैं वैसेही इस गुफाकी पश्चिम दिशाकी दीवारमेंसे निकलकर पूर्व तरफकी दीवारके नीचे बहकर उन्मग्ना और निमग्ना नामकी दो नदियाँ गंगासे मिलती हैं। वहाँ पहुँचकर तमिस्रागुफाकी नदियों की ही तरह इन नदियोंपर पुल बनाकर, भरत चक्रवर्तीने सेना सहित उन नदियोंको पार किया। सेनाकी धूलसे घबराए हुए वैताढ्यने प्रेरणा की हो इस तरह गुफाका दक्षिण-द्वार तत्काल अपने-आपही खुल गया। केसरी सिंहकी तरह नरकेसरी गुफाके बाहर निकले और गंगाके पश्चिम तटपर उन्होंने छावनी

डाली। (५६२-५६७)

वहाँ नवनिधियोंके उद्देश्यसे पृथ्वीपतिने, पहले किए हुए तपसे मिली हुई लब्धियों द्वारा होनेवाले लाभके मार्गको बतानेवाला, अट्ठम तप किया। अट्ठमके अंतमें नौनिधियाँ प्रकट हुई और महाराजाके पास आईं। हरेक निधि एक एक हजार यक्षोंसे अधिष्ठित थी। उनके नाम थे—नैसर्प, पांडुक, पिंगल, सर्वरत्नक, महापद्म, काल, महाकाल, माणव और शंखक[1]। ये आठ चक्रोंपर रखी हुई थीं। इनकी ऊँचाई आठ योजन, चौड़ाई नौ योजन और लंबाई दस योजन थी। वैडूर्यमणिके किवाड़ोंसे उनके मुँह ढके हुए थे। उनकी आकृति समान थी तथा वे सोने व रत्नोंसे भरे हुए थे। वे चंद्र और सूर्यके चिह्नवाले थे। निधियोंके नामके अनुसारही उनके नाम थे। पल्योपमकी आयुवाले नागकुमार जातिके देव उनके अधिष्ठायक थे। (५६८-५७३)

उनमेंके नैसर्ग नामकी निधिसे छावनी, पुर (किला) गाँव खान, द्रोणमुख (४०० गाँवोंमें एक उत्तम गाँव), मंडप और पत्तन (नगर) वगैरा स्थानोंका निर्माण होता है। पांडुक नामकी निधिसे मान, उन्मान और प्रमाण इन सबका गणित होता है और धान्य व बीज उत्पन्न होते हैं। पिंगल नामकी निधिसे नर, नारी, हाथी और घोड़ोंके सब तरहके आभूषणोंकी विधि मालूम

१—हिंदूधर्मशास्त्रोंमें इन निधियोंके नाम ये हैं—महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और खर्व। ये कुबेरके खजाने कहलाते हैं।

होती है। सर्वरत्नक नामकी निधिसे चक्ररत्न वगैरा सात एकेंद्रिय और सात पंचेंद्रिय रत्न उत्पन्न होते हैं। महापद्म नामकी निधिसे सब तरहके शुद्ध व रंगीन वस्त्र होते हैं। काल नामकी निधिसे वर्तमान भूत और भविष्य तीनों कालोंका, कृषि वगैरा कर्मोंका और दूसरे शिल्पादिका ज्ञान होता है। महाकाल नामकी निधिसे प्रवाल, चाँदी, सोना, मोती, लोहा तथा लोहादिककी खानें उत्पन्न होती हैं। माणव नामकी निधिसे योद्धा, आयुध और कवचकी संपत्तियाँ तथा युद्धनीति व दंडनीति उत्पन्न होती हैं। नवीं शंख नामकी महानिधिसे चार तरहके काव्यकी सिद्धि, नाट्य-नाटककी विधि और सब तरहके बाजे उत्पन्न होते हैं। इन गुणोंवाली नवों निधियाँ आकर कहने लगीं, "हे महाभाग ! हम गंगाके मुखमें मगधतीर्थकी रहनेवाली हैं। तुम्हारे भाग्यसे हम तुम्हारे पास आई हैं। अपनी इच्छानुसार हमारा उपयोग करो-कराओ। शायद समुद्र क्षय हो जाए (सूख जाए) मगर हमारी शक्ति कभी क्षय नहीं होती।" यों कहकर सारी निधियाँ आज्ञाधारककी तरह खड़ी रहीं।

इससे निर्विकारी राजाने पारणा किया और फिर निधियोंके निमित्तसे अष्टाहिका उत्सव किया। सुषेण भी गंगाके दक्षिण प्रांतको, छोटे गाँवकी तरह, खेलही खेलमें जीतकर आगया। पूर्वापर समुद्रको लीलासे आक्रांत करनेवाले, मानों दूसरे वैताढ्य हों ऐसे महाराज वहाँ बहुत समयतक रहे। (५७४-५८७)

एक दिन सारे भरतक्षेत्रके विजेता भरतपतिका चक्र अयोध्याकी तरफ चला। महाराज भी स्नान कर, कपड़े पहिन, बलिकर्म, प्रायश्चित्त और कौतुकमंगल कर इंद्रकी तरह गजेंद्र-

पर सवार हुए। मानों कल्पवृत्त हों ऐसी नवनिधियोंसे भरेहुए भंडारवाले, सुमंगलाके चौदह स्वप्नोंके जुदा जुदा फल हों ऐसे चौदह-रत्नोंसे सदा घिरे रहनेवाले, राजाओंकी कुललक्ष्मीके समान और असूर्यंपश्या (जिन्होंने कभी सूरज भी नहीं देखा ऐसी) अपनी विवाहिता बत्तीस हजार रानियोंसे युक्त, और बत्तीस हजार देशोंमेंसे व्याही हुई दूसरी बत्तीस हजार अप्सराओंसे समान सुंदर स्त्रियोंसे शोभित, मानों प्यादे हों ऐसे अपने आश्रित बत्तीस हजार राजाओंसे सेवित, विंध्यपर्वतके समान चौरासी लाख हाथियोंसे सुशोभित, और मानों सारी दुनियामेंसे चुन चुनकर लाए हों ऐसे चौरासी लाख घोड़ों, उतनेही (चौरासी लाख) रथों और भूमिको ढकनेवाले छियानवे-करोड़ सुभटोंसे घिरा हुआ चक्रवर्ती, अयोध्यासे निकला। उस दिनसे साठहजार वर्षके बाद, चक्रके मार्गका अनुसरण करता हुआ अयोध्याकी तरफ चला। (५७४-५९६)

मार्गमें चलती हुई चक्रवर्तीकी सेनासे उड़ी हुई धूल लगनेसे मलिन बने हुए खेचर (पक्षी) ऐसे मालूम होते थे, मानों वे जमीनपर लोटे हैं। पृथ्वीके मध्य-भागमें रहनेवाले भवनपति और व्यंतरदेव इस शंकासे डर रहे थे कि चक्रवर्तीकी फौजके भारसे कहीं पृथ्वी न फट जाए। प्रत्येक गोकुलमें (गोशालामें) विकसित नेत्रोंवाली गोपांगनाओं (महियारियों) के द्वारा भेट किए हुए मक्खनरूपी अर्घ्यको अमूल्य समझ, चक्री मानसहित स्वीकार करते थे। हरेक वनमें हाथियोंके कुंभस्थलोंसे मिले हुए मोती वगैरहकी भेटें किरात लोग लाते थे, उन्हें महाराज ग्रहण करते थे। अनेक बार हरेक पर्वतपर पर्वतराजाओंके द्वारा

लाकर सामने रखे हुए रत्नों और सोनेकी खानके महान सारको राजा अंगीकार करते थे। गाँव गाँवमें, उत्कंठित बंधुके समान, गाँवोंके वृद्धपुरुष उपायन (भेंट) लाते थे, उन्हें प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर चक्री उनको अनुगृहीत करते थे। वे खेतोंमें घुसनेवाली गायोंकी तरह चारों तरफ गाँवोंमें फैले हुए सैनिकोंको अपने आज्ञारूपी उग्रदंडसे रोक रखते थे। वे बंदरोंकी तरह वृक्षोंपर चढ़कर अपनेको आनंद सहित देखनेवाले गाँवोंके बालकोंको पिताकी तरह प्यारसे देखते थे। धन-धान्यसे पूर्ण और जीवनसे निरुपद्रवी गाँवोंकी सम्पत्तिको अपनी नीतिरूपी लताके फलकी तरह देखते थे। वे सरिताओंको पंकिल (कीचड़-वाली) करते थे, सरोवरोंको सुखाते थे और वापिकाओं तथा कूओंको पाताल-विवर (छिद्र) की तरह खाली करते थे। इस तरह, अविनयी शत्रुको दंड देनेवाले महाराज, मलयाचलके पवनकी तरह लोगोंको सुख देते हुए धीरे धीरे चलकर अयोध्याके पास पहुँचे। महाराजाने अयोध्याके पासकी भूमिमें स्कंधवार (पड़ाव) डलवाया; वह मानों अयोध्याका अतिथिरूप सहोदर (सगा भाई) हो ऐसा जान पड़ता था। फिर राजशिरोमणि भरतने राजधानीका मनमें ध्यान कर निरुपद्रवकी प्रतीति (विश्वास) करानेवाला अष्टम तप किया। अष्टमभक्तके अंतमें पौषधशालासे बाहर निकल चक्रवर्तीने, दूसरे राजाओंके साथ दिव्य भोजनसे पारणा किया। (५९७–६१०)

इधर अयोध्यामें, जगह जगहपर दिगंतसे आई हुई लक्ष्मीके लिए झूलनेके झूले ऐसे, ऊँचे ऊँचे तोरण बाँधे जाने लगे। भगवानके जन्मके समय देवता जैसे सुगंधित जलकी वर्षा करते

हैं ऐसेही, नगरके लोग हरेक रस्तेपर केसरके जलसे छिड़काव करने लगे। मानों निधियाँ अनेक रूप धारण करके पहलेहीसे आई हों ऐसे, मंच स्वर्ण-स्तंभोंसे बाँधे जाने लगे। उत्तरकुरुमें पाँच द्रहोंके दोनों तरफ खड़े हुए दस दस सोनेके पर्वत जैसे शोभते हैं वैसेही, मार्गके दोनों तरफ आमने-सामने बँधे हुए मंच शोभने लगे। हरेक मंचपर बँधे हुए रत्नमय तोरण इंद्रधनुषकी श्रेणी-की शोभाको पराभव करते थे, और गंधर्वोंकी सेना जैसे विमान में बैठती है उसी तरह, गायन करनेवाली स्त्रियाँ मृदंग और वीणाओंको बजानेवाले गंधर्वोंके साथ उन मंचोंपर बैठने लगीं। उन मंचोंपरके चंदोवोंके साथ बँधी हुई मोतीकी झालरें, लक्ष्मी के निवास घरकी तरह कांतिसे दिशाओंको प्रकाशित करने लगीं। मानों प्रमोद (आनंद) पाई हुई नगरदेवीके हास्य हों ऐसे, चँवरोंसे, स्वर्गमंडनकी रचनावाले चित्रोंसे, कौतुकसे आए हुए नक्षत्र हों ऐसे दर्पणोंसे, खेचरोंके हाथके रूमाल हों ऐसे, सुंदर वस्त्रोंसे और लक्ष्मीकी मेखलाके समान विचित्र मणिमालाओं-से नगर-जन, ऊँचे बाँधे हुए खंभोंसे दुकानोंकी शोभा बढ़ाने लगे। लोगोंके द्वारा बाँधी गईं, घुँघरुओंवाली पताकाएँ सारस-पक्षीकी मधुरध्वनिवाली शरद-ऋतुका समय बताने लगीं। व्यापारी दुकानों और मंदिरोंको यक्षकर्दमसे[1] पोतकर उनके आँगनोंमें मोतियोंके स्वस्तिक पूरने लगे। स्थान स्थानपर रखे हुए अगर चंदनके चूर्णसे भरी हुई धूपदानियोंसे निकलकर जो धुआँ ऊपर जाता था, ऐसा मालूम होता था, मानों वह स्वर्गको भी धूपित करना चाहता है। (६११-६२३)

१—कपूर, अगर, कस्तूरी और ककोलके चूर्णसे बनाया गया लेप।

इस तरह सजाई हुई नगरीमें प्रवेश करनेकी इच्छासे पृथ्वीके इंद्र चक्रवर्ती शुभ मुहूर्तमें मेघके समान गर्जना करनेवाले हाथीपर सवार हुए। जैसे आकाश चंद्रमंडलसे शोभता है वैसेही, कपूरचूर्णके समान सफेद छत्रोंसे वे शोभते थे। दो चामर ढुल रहे थे, ऐसा मालूम होता था मानों गंगा और सिंधु भक्तिवश, अपने शरीर छोटे करके चामरोंके बहाने सेवा कर रही हैं। स्फटिकपर्वतकी शिलाओंका सार लेकर बनाए हुए हों ऐसे उजले, अति बारीक, कोमल और घने बुने हुए वस्त्रोंसे वे सुशोभित थे। मानों रत्नप्रभा पृथ्वीने, प्रेमसे अपना सार अर्पण किया हो ऐसे विचित्र रत्नालंकारोंसे उनका सारा शरीर अलंकृत हो रहा था फनोंपर मणियोंको धारण करनेवाले नागकुमारदेवोंसे घिरे हुए नागराजकी तरह वे माणिक्यमय मुकुटवाले राजाओंसे सेवित थे। चारण देवता जैसे इंद्रके गुणगान करते हैं ऐसे, चारण-भाट जय जय शब्द बोलकर सबको आनंदित करते हुए भरतके अद्‌भुत गुणोंका कीर्तन करते थे और ऐसा मालूम होता था कि मांगलिक बाजोंकी आवाजकी प्रतिध्वनिके बहाने आकाशभी उनका मंगल गान कर रहा था। तेजमें इंद्रके समान और पराक्रमके भंडार महाराजाने रवाना होनेके लिए गजेंद्रको आगे बढ़ाया। बहुत दिनोंसे लौटे हुए अपने राजाको देखनेके लिए गाँवोंसे और शहरोंसे इतने लोग आए थे मानों वे स्वर्गसे उतर आए हैं या जमीनसे फूट निकले हैं। महाराजकी सारी सेना और देखनेको आए हुए लोगोंके समूहको निरखकर ऐसा मालूम होता था कि सारा मृत्युलोक एकही जगह जमा हो गया है। उस समय चारों तरफ नरमुंड दिखाई देते थे; एक तिल

रखनेको भी वहाँ जगह नहीं रही थी। हर्षसे उत्साहित बने हुए कई लोग भाटोंकी तरह महाराजकी स्तुति कर रहे थे; कई अपने वस्त्रांचलसे पवन डाल रहे थे, मानों वस्त्र चंचल चामर (पंखे) हों; कई हाथ जोड़, ललाटपर रख, सूर्यको नमस्कार करते हैं ऐसे, महाराजको नमस्कार करते थे; कई बागवानकी तरह फल और पुष्प अर्पण करते थे; कई कुलदेवताकी तरह वंदना करते थे और कई गोत्रके वृद्ध मनुष्यकी तरह असीस देते थे। (६२४-६३८)

प्रजापति भरतने चार दरवाजोंवाले अपने नगरमें पूर्वके दरवाजेसे, इस तरह प्रवेश किया जिस तरह भगवान ऋषभ-देव समवसरणमें प्रवेश करते हैं। शुभ लग्नकी घड़ीके समय जैसे एक साथ बड़े जोरोंसे बाजे बजते हैं वैसे, उस समय नगर-में बँधे हुए हरेक मंचपर संगीत होने लगा। महाराज आगे चले तब राजमार्गके मकानोंमें रही हुई नगरनारियाँ आनंदसे नजर की तरह लाजा (खीले) फेंक-फेंक कर उनका स्वागत करने लगीं। पुरजनोंने फूल बरसा-बरसा कर हाथीको चारों तरफसे ढक दिया, इससे वह हाथी पुष्पमय रथ जैसा हो गया। उत्कं-ठित लोगोंकी अकुंठ (न रुकनेवाली) उत्कंठा सहित चक्रवर्ती धीरे धीरे राजमार्गपर चलने लगे। लोग हाथीसे न डर कर महाराजाके समीप आने लगे और उनको फलादिक भेट करने लगे। कारण,—

"..........प्रमोदो बलवान् खलु।

[आनंदही बलवान होता है।] राजा हस्तिको, अंकुश मार-

कर, हरेक मंचके पास खड़ा रखते थे। उस समय दोनों तरफके मंचोंपर आगे खड़ी हुईं सुंदर स्त्रियाँ, एक साथ, कपूरसे चक्रवर्तीकी आरती उतारती थीं। दोनों तरफ आरती उतरती थी इससे महाराज, दोनों तरफ जिसके सूरज और चाँद हैं ऐसे, मेरुपर्वतकी शोभा धारण करते थे। अक्षतोंकी तरह मोतियोंसे भरे थाल ऊँचे रख, चक्रवर्तीका स्वागत करनेके लिए, दुकानोंके अगले भागोंमें खड़े हुए वणिकजन, दृष्टिसे उनका आलिंगन करते थे। राजमार्गपर स्थित हवेलियोंके दरवाजोंमें खड़ी हुईं कुलीन सुंदरियोंके किए हुए मांगलिकको, महाराज अपनी बहनोंके किए हुए मांगलिककी तरह स्वीकार करते थे। दर्शनकी इच्छासे भीड़में पिलते हुए लोगोंको देख, महाराजा अपना, अभयदाता हाथ ऊँचा कर छड़ीदारोंसे उनकी रक्षा करवाते थे। इस तरह अनुक्रमसे चलते हुए महाराजाने अपने पिताके सात मंजिले महलमें प्रवेश किया। (६३६–६५७)

उस राजमहलकी आगेकी जमीनपर दोनों तरफ दो हाथी बँधे हुए थे; वे राजलक्ष्मीके क्रीड़ापर्वतके समान मालूम होते थे। सोनेके कलशोंसे उसका बड़ा द्वार ऐसे शोभता था जैसे दो चक्रवाकोंसे (चकवोंसे) सरिता शोभती है। आमके पत्तोंसे बने सुंदर तोरणसे वह महल ऐसा शोभता था जैसे इंद्रनीलमणिके कंठहारसे ग्रीवा शोभती है। उसमें किसी जगह मोतियोंके, किसी जगह कपूरके चूर्णके और किसी जगह चंद्रकांतमणियोंके स्वस्तिक–मंगल बने हुए थे। वह कहीं चीनांशुकों (रेशमी वस्त्रविशेषों)से, कहीं रेशमी वस्त्रोंसे और कहीं देवदूष्य (देवताओंके द्वारा लाए हुए) वस्त्रोंसे बनी पताकाओंकी श्रेणीसे

वह सुशोभित हो रहा था। उसके आँगनमें कहीं कपूरके पानीसे, कहीं पुष्पोंके रससे और कहीं हाथियोंके मदजलसे छिड़काव किया गया था। उसके शिखर पर बँधा हुआ कलश ऐसा मालूम होता था मानों उसके बहाने सूरजने वहाँ आकर निवास किया है। ऐसे सजे हुए उस राजमहलके आँगनमें बनी हुई अग्रवेदी (हाथीसे उतरनेके लिए बनी चबूतरी) पर पैर रख छड़ीदारके हाथका सहारा लेकर, महाराज हाथीसे नीचे उतरे। फिर उनने जैसे पहले आचार्यकी पूजा की जाती है वैसे, अपने अंगरक्षक सोलह हजार देवताओंको, उनकी पूजा कर विदा किया; इसी तरह बत्तीस हजार राजाओं, सेनापतियों, पुरोहितों, गृहपतियों और वर्द्धकीको विदा किया; हाथियोंको, जैसे आलानस्तंभपर बाँधनेकी आज्ञा दी जाती है वैसेही, तीन सौ तिरेसठ रसोइयोंको अपने अपने घर जानेकी आज्ञा दी; उत्सवके अंतमें अतिथिकी तरह सेठोंको, अठारह श्रेणी प्रश्रेणीको,[1] दुर्गपालोंको और सार्थवाहोंको भी छुट्टी दी। फिर, इंद्राणीके साथ जैसे इंद्र जाता है ऐसे, स्त्रीरत्न सुभद्राके साथ, बत्तीस हजार राजकुलोंमें जन्मी हुई रानियोंके सात और उतनीही यानी बत्तीसहजार देशके नेताओंकी कन्याओंके साथ और बत्तीस-बत्तीस पत्रोंवाले उतनेही नाटकोंके साथ, मणिमय शिलाओंकी पंक्तिपर नजर डालते हुए महाराजाने यक्षपति कुबेर जैसे कैलाशमें जाता है

१—नौ तरहके कारीगर और नौ तरहके, हल्की जातियोंके लोग; ऐसे अठारह श्रेणियाँ हुईं। हलकी जातियोंको नवशायक कहते हैं।

नव शायक—ग्वाला, तेली, माली, जुलाहा, हलवाई, बढ़ई, कुम्हार, कमकर और नाई।

वैसेही उत्सवके साथ राजमहलमें प्रवेश किया। वहाँ कुछ देरके लिए पूर्वकी तरफ मुँहवाले सिंहासनपर बैठ, सत्कथाएँ सुन, वे स्नानागारमें गए। हाथी जैसे सरोवरमें स्नान करता है वैसेही स्नान करके उन्होंने परिवारके साथ बैठ अनेक तरहके रसवाला भोजन किया। पीछे, योगी जैसे योगमें समय बिताता है वैसे-ही राजाने नवरसके नाटक देखनेमें और मनोहर संगीत सुननेमें कुछ काल बिताया (६५८-६६८)

एक बार सुर-नरोंने आकर विनती की, "हे महाराज! आपने विद्याधरों सहित छःखंड पृथ्वीको जीत लिया है इसलिए हे इंद्रके समान पराक्रमी महाराज! हमें आज्ञा दीजिए कि हम आपका महाराज्याभिषेक करें।" महाराजाने आज्ञा दी, तब देवताओंने नगरके बाहर ईशानकोणमें, सुधर्मा सभाका एक खंड हो ऐसा मंडप बनाया। वे द्रहों, नदियों, समुद्रों और दूसरे तीर्थोंसे जल, औषधि और मिट्टी लाए।

महाराजाने पौषधशालामें जा अट्टम तप किया। कारण-

"राज्यं तपःप्राप्तमपि तपसैव हि नंदति।"

[तपस्याके द्वारा पाया हुआ राज्य तपस्यासेही सुखमय रहता है।] अट्टम तप पूरा होनेपर अंतःपुर (पत्नियों) और परिवारके लोगोंके साथ हाथीपर सवार हो चक्रवर्ती उस दिव्य-मंडपमें गए। फिर अंतःपुर और हजारों नाटकोंके साथ उन्होंने उत्तम प्रकारसे बनाए हुए अभिषेक-मंडपमें प्रवेश किया। वहाँ वे सिंहके आसनवाले स्नानपीठपर बैठे हुए ऐसे मालूम होते थे मानों हाथी पर्वतके शिखर पर चढ़ा है; मानों इंद्रकी प्रीतिके लिए हो ऐसे वे पूर्व दिशाकी तरफ मुँह करके बैठे; मानो थोड़ेसे

हों इस तरह बत्तीस हज़ार राजा उत्तर तरफकी सीढ़ियोंसे स्नानपीठपर चढ़े और चक्रवर्ती थोड़ी दूर भूमिपर, भद्रासनोंपर बैठे। वे विनयी राजा ऐसे हाथ जोड़कर बैठे जैसे देवता (इंद्रके सामने) बैठते हैं। सेनापति, गृहपति, वर्द्धकि (बढ़ई) पुरोहित और सेठ वगैरा दाहिनी तरफकी सीढ़ियोंसे स्नानपीठ पर चढ़े और अपने योग्य आसनोंपर इस तरह हाथ जोड़कर बैठे मानों वे चक्रीसे कुछ विनती करना चाहते हों।

फिर, आदिदेवका अभिषेक करनेके लिए जैसे इंद्र आते हैं वैसेही, इन नरदेवका अभिषेक करनेके लिए उनके आभियोगिक देवता आए। जलसे पूर्ण होनेसे मेघके समान, मुखभागपर कमल होनेसे चक्रवाक पक्षियोंके समान और अंदरसे पानी गिरनेसे आवाज होती है इससे बाजेकी ध्वनिका अनुसरण करनेवाले शब्दोंवालोंके समान स्वाभाविक रत्नकलशोंसे वे आभियोगिक देव महाराजका अभिषेक करने लगे। फिर मानों अपने नेत्र हों ऐसे, जलसे भरे हुए कुँभोंसे बत्तीस हजार राजाओंने शुभमुहूर्तमें उनका अभिषेक किया और अपने मस्तकपर कमलकोशके समान हाथ जोड़, "आपकी जय हो! आपकी जय हो!" बोलते हुए चक्रीको बधाई देने लगे (मुबारकबाद देने लगे)। उनके बाद सेठ वगैरह जलसे अभिषेक कर, उस जलके समानही उज्ज्वल वाक्योंसे स्तुति करने लगे। फिर उन्होंने पवित्र, रोयाँदार, कोमल और गंधकषायी वस्त्रसे माणिक्यकी तरह चक्रीके अंगको पोंछा तथा गेरु जैसे सोनेको चमकदार बनाता है वैसेही महाराजके शरीरको(तेजस्वी—सुंदर बनानेके लिए) गोशीर्षचंदनके रसका लेप किया। देवताओंने, इंद्रके

द्वारा दिया गया ऋषभ स्वामीका मुकुट, उस अभिषिक्त और राजाओंके अग्रणी चक्रवर्तीके मस्तकपर रखा; उसके दोनों कानोंमें रत्नकुंडल पहनाए; वे चंद्रमाके पास रहनेवाले चित्रा और स्वाति नक्षत्रके समान मालूम होते थे; धागेमें पिरोए बिना एक साथ हारके रूपमें एक मोतीही उत्पन्न हुआ हो ऐसे सीपके मोतीका एक हार उनके गलेमें पहनाया; मानो सभी अलंकारोंके हार रूप राजाका युवराज हो ऐसा एक सुंदर अर्धहार उनकी छातीपर आरोपण किया; उज्ज्वल व कांतिसे सुशोभित दो देवदूष्य वस्त्र राजाको पहनाए; ऐसा जान पड़ता था मानों वे कांतिमान अभ्रकके संपुट हों; एक सुंदर फूलोंकी माला महाराजाको गलेमें धारण कराई; ऐसा जान पड़ता था मानो वह लक्ष्मीके उरस्थलरूपी मंदिरका कांतिमान किला था। इस तरह कल्पवृक्षकी तरह अमूल्य वस्त्र और माणिक्यके आभूषण धारण करके महाराजाने, स्वर्गके खंडके समान उस मंडपको मंडित किया। फिर सर्व पुरुषोंमें अग्रणी और महान बुद्धिमान महाराजाने छड़ीदारके द्वारा सेवक पुरुषोंको बुलाकर आज्ञा की, "हे अधिकारी पुरुषो! तुम हाथियोंपर सवार होकर सारे नगरमें ढिंढोरा पिटवाकर बारह बरस तकके लिए विनितानगरीको मेहसूल (भूमिकर) जकात (आयातकर), दंड, कुदंड और भयसे मुक्त करके आनंदपूर्ण बनाओ।" अधिकारियोंने तत्कालही ढिंढोरा पिटवाकर राजाकी आज्ञापर अमल किया। कहा है—

"रत्नं पंचदशं ह्याज्ञा चक्रिणः कार्यसिद्धिषु।"

[कामको सफल बनानेमें चक्रवर्तीकी आज्ञा पंद्रहवें रत्नके समान है।] (६९८-७००)

फिर महाराज रत्नसिंहासनसे उठे, उनके साथही मानों उनके प्रतिबिंब हों वैसे सभी उठे। जैसे पर्वतपरसे उतरते हैं वैसेही भरतेश्वर स्नानपीठसे उसी मार्गसे नीचे उतरे जिस मार्गसे वे ऊपर चढ़े थे। दूसरे भी जिस मार्गसे वे आए थे उसी मार्गसे नीचे उतर गए। पीछे, मानों अपना असह्य प्रताप हो ऐसे उत्तम हाथीपर सवार होकर चक्री अपने महलमें गए। वहाँ स्नानगृहमें जा उत्तम जलसे स्नान कर अष्टमभक्त (अट्ठम तप) का पारणा किया। इस तरह बारह बरसमें अभिषेकोत्सव पूर्ण हुआ; तब चक्रवर्तीने स्नान, पूजा, प्रायश्चित और कौतुक मंगल कर बाहरके सभास्थानमें आ, सोलह हजार आत्मरक्षक देवताओंका सत्कार कर उनको विदा किया। फिर विमानमें रहनेवाले इंद्रकी तरह महाराज अपने उत्तम महलमें रहकर विषय-सुख भोगने लगे। (७०१-७०७)

महाराजाकी आयुधशालामें चक्र, खड्ग, छत्र और दंड चार एकेंद्रिय रत्न थे; रोहणाचलमें माणिक्यकी तरह उनके लक्ष्मीगृहमें काँकिणीरत्न, चर्मरत्न, मणिरत्न और नवनिधियाँ थीं; अपनेही नगरमें जन्मे हुए सेनापति, गृहपति, पुरोहित और वर्द्धकि ये चार नररत्न थे; वैताढ्य-पर्वतके मूलमें जन्मे हुए गजरत्न और अश्वरत्न थे और विद्याधरकी श्रेणीमें जन्मा हुआ एक स्त्रीरत्न था। नेत्रोंको आनंद देनेवाली मूर्तिसे वे चंद्रके समान शोभते थे; दुःसह प्रतापसे सूर्यके समान लगते थे; पुरुषके रूपमें जन्मा हुआ समुद्र हो वैसे उनका मध्यभाग (हृदयका आशय) जाना नहीं जाता था। कुबेरकी तरह उन्होंने मनुष्यका स्वामित्व प्राप्त किया था। जंबूद्वीप जैसे गंगा और सिंधु

वगैरा नदियोंसे शोभता है वैसेही वे पूर्वोक्त चौदह रत्नोंसे शोभते थे। विहार करते समय जैसे ऋषभप्रभुके चरणोंके नीचे नौ सोनेके कमल रहते हैं वैसेही उनके चरणोंके नीचे नौ निधियाँ रहती थीं। बहुत बड़ी कीमत चुका कर खरीदे हुए आत्मरक्षक हों ऐसे सोलह हजार पारिपार्श्वक देवताओंसे वे घिरे रहते थे। बत्तीस हजार राजकन्याओंकी तरह बत्तीस हजार राजा निर्भर भक्तिसे उनकी उपासना करते थे। बत्तीस हजार नाटकोंकी तरह बत्तीस हजार देशकी दूसरी बत्तीस हजार कन्याओंके साथ वे रमण करते थे। जगतमें वह श्रेष्ठ राजा तीनसौतिरेसठ रसोइयोंसे ऐसे शोभता था जैसे तीनसौ तिरेसठ दिनोंसे वत्सर(बरस) शोभता है। अठारह लिपियाँ चलानेवाले ऋषभदेव भगवान-की तरह अठारह श्रेणी-प्रश्रेणीके द्वारा उन्होंने पृथ्वीपर व्यवहार चलाया था। वे चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख रथ और छियानवे करोड़ गाँवोंसे तथा उतनेही प्यादोंसे शोभते थे। वे बत्तीसहजार देशों और बहत्तरहजार बड़े नगरोंके[1] मालिक थे। निन्यानवे हजार द्रोणमुखों[2] और अड़तालीस हजार किलेवाले शहरोंके वे ईश्वर थे। आडंबरयुक्त लक्ष्मीवाले चौबीस

१ नगर—जो परिखा (खाई) गोपुरों (दरवाजों) अटारियों, कोट (किला) प्राकारसे (चहारदीवारीसे) सुशोभित हो, जिसमें अनेक भवन बने हुए हों, जिसमें तालाब और बगीचे हों, जो उत्तम स्थानपर बसा हुआ हो, जिसके पानीका प्रवाह पूर्व-पश्चिम दिशाके बीचवाली ईशान दिशाकी ओर हो और जो प्रधान पुरुषोंके रहनेकी जगह हो, उसे पुर या नगर कहते हैं। २—द्रोणमुख—जो किसी नदीके किनारे हो।

हजार खर्वटों[1] और चौवीस हजार मंडवों[2] और बीस हजार आकरोंके[3] वे स्वामी थे। सोलह हजार खेटोंके[4] वे शासनकर्ता थे। चौदह हजार संवाहोंके[5] तथा छप्पन द्वीपों (टापुओं) के वे प्रभु थे और उनंचास कुराज्योंके वे नायक थे। इस तरह सारे भरतक्षेत्रके वे शासनकर्ता-स्वामी थे। (७०८-७२७)

अयोध्या नगरी में रहते हुए अखंड अधिकार चलानेवाले वे महाराज, अभिषेक उत्सव समाप्त हो जानेपर, एक दिन जब अपने संबंधियोंको याद करने लगे; तब अधिकारी पुरुषोंने, साठ

१—खर्वट—जो पर्वतसे घिरा हो और जिसमें दोसौ गाँव हों। २—मंडव—जो पाँच सौ गाँवसे घिरा हो। ३—आकर—जहाँ सोने चाँदी आदिकी खानें हों। ४—खेट—जो नगर नदी और पर्वतोंसे घिरा हो। ५—संवाह—जहाँ मस्तक पर्यंत ऊँचे ऊँचे धान्यके ढेर लगे हों।

[बस्तियोंके अन्य भेद भी माने गये हैं। वे यहाँ दिए जाते हैं। १. ग्राम—जिसमें बाड़ोंसे घिरे घर हों, खेत और तालाब हों और अधिकतर किसान और शूद्र रहते हों। (क) छोटा गाँव—जिसमें सौ घर हों, और जिसकी सीमा एक कोसकी हो। (ख) बड़ा गाँव—जिसमें पाँचसौ घर हों, जिसकी सीमा दो कोसकी हो और जिसके किसान धनवान हों। २. पत्तन—जो समुद्रके किनारे हो अथवा जिसमें गाँवके लोग नावोंसे आते जाते हों। ३. राजधानी—एक राजधानीमें आठसौ गाँव होते हैं। ४. संग्रह—दस गाँवोंके बीच जो एक बड़ा गाँव होता है और जिसमें सभी वस्तुओंका संग्रह होता है। ५. घोष—जहाँ बहुतसे घोष (अहीर) रहते हैं। (आदिपुराण सोलहवाँ पर्व: श्लोक १६४ से १७०)]

हजार वर्षके विरहसे महाराजाके दर्शनोंको उत्सुक बने हुए सभी संबंधियोंको उनके सामने उपस्थित किया। उनमें सबसे पहले बाहुबलीके साथ जन्मी हुई गुणोंसे सुंदर ऐसी सुंदरीका नाम-सहित परिचय कराया। वह सुंदरी गरमीके मौसमसे आक्रांत हुई नदीकी तरह दुबली हो रही थी। हिमके संपर्कसे जैसे कमलिनी मुर्झा जाती है वैसेही वह मुर्झाई हुई थी। हेमंत ऋतुके चंद्रमाकी कलाकी तरह उसका रूप-लावण्य नष्ट हो गया था और सूखे हुए पत्तोंवाले केलेकी तरह उसके गाल फीके और कृश हो गए थे।

सुंदरीकी हालत इस तरह बदली हुई देख महाराज गुस्से हुए और उन्होंने अपने अधिकारी पुरुषोंसे कहा, "क्योंजी ? क्या हमारे घरमें अच्छा अनाज नहीं है ? लवण समुद्रमें लवण (नमक) नहीं रहा ? पौष्टिक चीजें बनानेवाले रसोइए नहीं हैं? या वे लापरवाह और आजीविकामें तस्करके समान हो गए हैं ? दाखें और खजूर वगैरा खाने लायक मेवा अपने यहाँ नहीं है ? सोनेके पर्वतमें सोना नहीं है ? बगीचोंमें वृक्षोंने फल देना बंद किया है ? नंदनवनमें भी वृक्ष नहीं फलते ? घड़ोंके समान थनोंवाली गाएँ क्या दूध नहीं देतीं ? कामधेनुके स्तनका प्रवाह क्या सूख गया है ? अथवा सब चीजोंके होते हुए भी क्या सुंदरी बीमार हो गई थी इससे कुछ खाती न थी ? अगर शरीरकी सुन्दरताको चुरानेवाला कोई रोग उसके शरीरमें हो गया था (उसको मिटानेवाले वैद्य नहीं रहे थे?) क्या सभी वैद्य कथावशेष[1]

१—कथाओंमें जिनके नाम आते हों; मगर जिनका अब अस्तित्व न रहा हो ऐसे।

हो गए हैं ? शायद अपने घरमें दवा समाप्त हो गई थी, तो क्या हिमाद्रि पर्वत भी औषधि-रहित हो गया है ? हे अधिकारियो, दरिद्रीकी लड़कीके समान सुंदरीको दुर्बल देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है। तुमने मुझे शत्रुओंकी तरह धोखा दिया है ! (७२८-७४२)

भरतपतिकी ऐसी गुस्सेभरी बातें सुन अधिकारी प्रणाम कर कहने लगे, "महाराज ! स्वर्गपतिके जैसे आपके सदनमें सभी चीजें मौजूद हैं; परंतु जबसे आप दिग्विजय करनेको पधारे तबसे सुंदरी आंबिल[1] तप कर रही हैं। सिर्फ प्राणोंको टिका कर रखनेहीके लिए थोड़ा खाती हैं। आप महाराजने इनको दीक्षा लेनेसे रोका, इसलिए ये भाव-दीक्षा लेकर समय बिता रही हैं।"

यह बात सुनकर कल्याणकारी महाराजने सुंदरीकी तरफ देखकर पूछा, "हे कल्याणी ! क्या तुम दीक्षा लेना चाहती हो ?" सुंदरीने कहा, "हाँ महाराज ! ऐसाही है।" (७४३-७४६)

यह सुनकर भरत राजा बोले, "अफसोस ! प्रमादसे या सरलतासे मैं अबतक इसके व्रतमें विघ्नकारी बना रहा हूँ। यह पुत्री तो अपने पिताके समान हुई और हम पुत्र हमेशा विषयमें आसक्त तथा राज्यमें अतृप्त रहनेवाले हुए। आयु जलतरंगके समान नाशवान है, तो भी विषयमें फँसे हुए लोग इस बातको नहीं समझते। (अँधेरेमें) चलते नष्ट हो जानेवाली बिजलीकी चमकमें रस्ता देख लिया जाता है वैसेही इस गत्वर (नाश होनेवाली) आयुसे साधुजनकी तरह मोक्षकी साधना कर

१—दिन भरमें केवल एकही धान एक बार खानेका तप।

लेनाही योग्य है। मांस, विष्टा, मूत्र, मल, पसीना और रोगोंसे भरे हुए इस शरीरको सजाना घरकी मोरी सजानेके समान है। हे बहिन ! तुम धन्य हो कि इस शरीरसे मोक्षरूपी फल देनेवाला व्रत ग्रहण करना चाहती हो। चतुर लोग लवणसमुद्रमेंसे भी रत्न ग्रहण करते हैं।" प्रसन्नचित्त महाराजाने यों कहकर सुंदरीको दीक्षाकी आज्ञा दी। तपसे दुबली सुंदरी यह सुनकर अति प्रसन्न हुई, वह मानों पुष्ट हो ऐसी उत्साहपूर्ण जानपड़ी। (७४७-७५३)

उसी अरसेमें जगतरूपी मोरके लिए मेघके समान भगवान ऋषभदेव विहार करते हुए अष्टापद गिरिपर आए। वहीं उनका समवसरण हुआ। रत्न, सोने और चाँदीके द्वितीय पर्वतके समान उस पर्वतपर देवताओंने समवसरणकी रचना की। और उसमें बैठकर प्रभु देशना देने लगे। गिरिपालकोंने तत्कालही जाकर भरतपतिको इसकी सूचना दी। मेदिनीपतिको (जमीनके मालिकको) यह सुनकर इतनी खुशी हुई जितनी खुशी उसको छःखंड पृथ्वी जीतनेपर भी नहीं हुई थी। स्वामीके आनेकी खबर देनेवाले नौकरोंको उसने साढ़े बारह करोड़ सोनैयोंका इनाम दिया और सुंदरीसे कहा, "तुम्हारे मनोरथोंकी मूर्तिमान सिद्धि हों ऐसे, जगद्गुरु विहार करते हुए यहाँ आए हैं।" फिर, दासियोंकी तरह अंतःपुरकी स्त्रियोंसे, सुंदरीका निष्क्रमणाभिषेक[१] कराया। सुंदरीने स्नान करके पवित्र विलेपन किया। फिर मानों दूसरा विलेपन किया हो ऐसे पल्लेवाले उज्ज्वल वस्त्र

१—घर छोड़कर व्रती बननेके लिए जानेसे पहले किया जानेवाला स्नानादि कृत्य।

और उत्तम रत्नालंकार पहने। यद्यपि उसने शीलरूपी अलंकार धारण किया था; तो भी व्यवहार सँभालनेके लिए उसने दूसरे अलंकार स्वीकार किए। उस समय रूपसंपत्तिसे सुशोभित सुंदरीके सामने स्त्रीरत्न सुभद्रा दासीके समान लगती थी। शील द्वारा वह सुंदर बाला, जंगम-चलती फिरती-कल्पलताकी तरह, याचकोंको जितनी (धन-दौलत) वे माँगते थे देती थी। हंसिनी जैसे कमलिनीपर बैठती है वैसेही वह कपूरकी रजके समान सफेद वस्त्रोंसे सुशोभित हो एक शिविका (पालकी) में बैठी। हाथियों, घुड़सवारों, प्यादों और रथोंसे पृथ्वीको ढकते हुए महाराज भरत, मरुदेवीकी तरह सुंदरीके पीछे पीछे चले। उसके दोनों तरफ चामर ढुल रहे थे, मस्तकपर सफेद छत्र शोभता था और चारण-भाट, उसने संयमको जो दृढ़ आश्रय दिया था उसकी तारीफ करते थे। भाभियाँ दीक्षाके उत्सवके मांगलिक गीत गाती थीं और उत्तम स्त्रियाँ पद-पदपर लवण उतारती थीं। इस तरह साथ चलनेवाले अनेक पूर्ण पात्रोंसे शोभती, वह प्रभुके चरणोंसे पवित्र बनी हुई अष्टापद पर्वतकी भूमिपर पहुँची। चंद्रसहित उदयाचलकी तरह, प्रभु जिसपर विराजमान हैं ऐसे पर्वतको देख भरत तथा सुंदरी बहुत खुश हुए। स्वर्ग और मोक्षमें जानेकी मानों सीढ़ी हो ऐसे विशाल शिलाओं वाले उस पर्वतपर वे दोनों चढ़े और संसारसे डरे हुए लोगोंके लिए शरणके समान, चार दरवाजों वाले और छोटी बनाई हुई जंबूद्वीपकी जगति (कोट) हो ऐसे, समवसरणके पास पहुँचे। उन्होंने उत्तरद्वारसे समवसरणमें यथाविधि प्रवेश किया। फिर हर्ष और विनयसे अपने शरीरको उच्छ्वसित (चिंतामुक्त) तथा

संकुचित करते हुए प्रभुको तीन प्रदक्षिणा दे, पंचांगसे भूमिको स्पर्श कर, नमस्कार किया। उस समय, ऐसा मालूम होता था मानों वे भूतलमें गए हुए रत्न हैं जो प्रभुके बिंबको देखना चाहते हैं। फिर चक्रवर्तीने भक्तिसे पवित्र बनी हुई वाणी द्वारा प्रथम धर्मचक्री (तीर्थंकर) की स्तुति करना आरंभ किया,—

(७५४-७७६)

"हे प्रभो! असत्—न होनेवाले गुणोंको भी कहनेवाले लोग दूसरे लोगोंकी स्तुति कर सकते हैं; मगर मैं तो आपके जो गुण हैं उनको कहनेमें भी असमर्थ हूँ; इससे मैं आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ? तो भी, जैसे दरिद्र आदमी भी जब वह लक्ष्मी-वानके पास जाता है तब उसे कुछ भेट करता है ऐसेही, हे जगन्नाथ! मैं भी आपकी स्तुति करूँगा। हे प्रभो! जैसे चाँदकी किरणोंसे शेफाली जातिके वृक्षोंके पुष्प गल जाते हैं ऐसेही, तुम्हारे चरणोंके दर्शन मात्रसे मनुष्योंके अन्य जन्मोंमें किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। हे प्रभो! सन्निपात रोग असाध्य (जिसकी कोई दवा नहीं ऐसा) होता है; परंतु आपकी अमृत-रसके समान औषधरूपी वाणी महामोहरूपी सन्निपात ज्वरको मिटा देती है। हे नाथ! वर्षाके जलकी तरह चक्रवर्ती और गरीब दोनोंपर समान भाव रखनेवाली आपकी दृष्टि, प्रीति-संपत्तिका एक कारणरूप होती है। हे स्वामी! क्रूर कर्मरूपी बरफके गोलेको पिघला देनेमें सूर्यके समान आप हमारे जैसोंके पुण्योदयसेही पृथ्वीपर विचरण करते हैं। हे प्रभो! व्याकरणमें व्याप्त संज्ञा सूत्रके जैसी उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यमय, आपकी कही हुई त्रिपदी जयवंती वर्तती है। हे भगवान! जो आपकी

स्तुति करते हैं उनके लिए यह भव प्रतिम होता है, तब जो आपकी सेवा-भक्ति करते हैं, आपका ध्यान करते हैं, उनकी तो बातही क्या कही जा सकती है? (७७७-७८४)

इस तरह भगवानकी स्तुति कर उनको नमस्कार कर भरतेश्वर ईशान कोनमें अपने योग्य स्थानपर बैठा। फिर सुंदरी भगवान वृषभध्वजको वंदना कर, हाथ जोड़ गद्गद् अक्षरोंवाली वाणीमें बोली, "हे जगत्पति! इतने काल तक मैं आपको मनसे देखती थी; मगर आज बड़े पुण्यसे और भाग्योदयसे आपके प्रत्यक्ष दर्शन हुए हैं। इस मृगतृष्णाके समान मिथ्या सुखवाले संसाररूपी मरुदेशमें (रेतीले प्रदेशमें) अमृतके सरोवरके समान आप लोगोंको, उनके पुण्यसेही, प्राप्त हुए हैं। हे जगन्नाथ! आप ममतारहित हैं, तो भी लोगोंपर आप वात्सल्य (प्रीति) रखते हैं; अगर ऐसा नहीं होता तो इस महान दुःखके समुद्रसे उनका उद्धार क्यों करते? हे प्रभो! मेरी बहन ब्राह्मी, मेरे भतीजे और उनके पुत्र, ये सभी आपके मार्गका अनुसरण कर कृतार्थ हुए हैं। भरतके आग्रहसे मैंने अबतक व्रत ग्रहण न किया इससे मैं खुदही ठगी गई हूँ। हे विश्वतारक! अब मुझ दीनका निस्तार कीजिए! निस्तार कीजिए! सारे घरको प्रकाशित करनेवाला दीपक क्या घड़ेको प्रकाशित नहीं करता? करताही है। इसलिए हे विश्वकी रक्षा करनेमें वत्सल, आप प्रसन्न हूजिए और मुझे संसार समुद्रको पार करनेमें जहाजके समान दीक्षा दीजिए।" (७८५-७९३)

सुंदरीके ऐसे वचन सुन "हे वत्से तू धन्य है!" कहकर सामायिक सूत्रोच्चार पूर्वक प्रभुने उसको दीक्षा दी। फिर उसे

महात्रतरूपी वृक्षोंके बागमें अमृतकी धाराके समान शिक्षामय देशना दी। उसे सुनकर उसने माना कि उसको मोक्ष मिल गया है। फिर वह महामना साध्वी, साध्वियोंके समूहमें, उनके पीछे जाकर बैठी। प्रभुकी देशना सुन, उनके चरणकमलोंमें नमस्कार कर महाराजा भरत खुशी-खुशी अयोध्या नगरीमें गए। (७६४-६७)

वहाँ अपने सभी स्वजनोंको देखनेकी इच्छा रखनेवाले महाराजाने अधिकारियोंने आगए संबंधियोंका परिचय कराया और जो नहीं आए उनका स्मरण कराया। फिर अपने भाइयों-को-जो उत्सवमें भी नहीं आए थे-बुलानेके लिए महाराजाने दूत भेजे। दूतोंने जाकर उनसे कहा, "यदि तुम्हें राज्यकी इच्छा हो तो भरत-राजाकी सेवा करो।"

दूतोंकी बातें सुन, उन्होंने सोचविचारकर जवाब दिया, "पिताजीने भरतको और हमको सबको राज्य बाँट दिए हैं। अब भरतकी सेवा करनेसे वह हमें अधिक क्या देगा? क्या वह मौतके आनेपर उसे रोक सकेगा? क्या वह देहको पकड़नेवाली जरा-राक्षसीको दंड दे सकेगा? क्या वह पीड़ा पहुँचानेवाले रोगरूपी व्याधोंको मार सकेगा? या वह उत्तरोत्तर बढ़नेवाली तृष्णाका नाश कर सकेगा? अगर सेवाका इस तरहका फल, देनेमें भरत असमर्थ हो तो सर्व सामान्य मनुष्यतामें कौन किसके लिए सेवा करने लायक है? उसके पास बहुत राज्य हैं तो भी, यदि उसे इतनेसे संतोष न हो, और वह अपने बलसे हमारा राज्य लेना चाहता हो तो हम भी उसकेही पिताके पुत्र हैं। इस लिए हे दूतो! हम पिताजीसे कहे बगैर तुम्हारे स्वामीके साथ

जो कि हमारा भी बड़ा भाई है, युद्ध करना नहीं चाहते।"

इस तरह दूतोंसे कह ऋषभदेवजीके वे ६८ पुत्र अष्टापद पर्वतपर समवसरणमें विराजमान ऋषभस्वामीके पास गए। वहाँ पहले तीन प्रदक्षिणा दे उन्होंने परमेश्वरको प्रणाम किया। फिर वे हाथ जोड़, मस्तकपर रख, इस तरह स्तुति करने लगे,—
(७६८-८०८)

"हे प्रभो! जब देवता भी आपके गुणोंको नहीं जान सकते हैं तब आपकी स्तुति करनेमें दूसरे कौन समर्थ हो सकते हैं? तो भी, बालकके समान चपलतावाले, हम आपकी स्तुति करते हैं। जो हमेशा आपको नमस्कार करते हैं वे तपस्वियोंसे भी अधिक हैं और जो आपकी सेवा करते हैं वे योगियोंसे भी ज्यादा हैं। हे विश्वको प्रकाशित करनेवाले सूर्य! प्रतिदिन नमस्कार करनेवाले जिन पुरुषोंके मस्तकोंपर, आपके चरणोंके नाखूनोंकी किरणें आभूषणके समान होती हैं, उन पुरुषोंको धन्य है। हे जगत्पति! आप साम या बल किसी तरह भी किसीसे कुछ नहीं लेते, तो भी आप तीन लोकके चक्रवर्ती हैं। हे स्वामी! जैसे सभी जलाशयोंके जलमें चंद्रका प्रतिबिंब रहता है ऐसेही, आप एकही सारे जगतके चित्तमें निवास करते हैं। हे देव आपकी स्तुति करनेवाला पुरुष सबके लिए स्तुति करने योग्य बनता है; आपको पूजनेवाला सबके लिए पूज्य होता है; और आपको नमस्कार करनेवाला सबके लिए नमस्कार करने लायक होता है, इससे आपकी भक्ति महान फल देनेवाली कहलाती है। दुःखरूपी दावानलसे जलनेवाले पुरुषोंके लिए आप

मेघके समान हैं, और मोहांधकारसे मूढ़ बने हुए लोगोंके लिए आप दीपकके तुल्य हैं। मार्गके छायावाले वृक्षकी तरह आप गरीब, अमीर, मूर्ख और गुणी-सबका उपकार करनेवाले हैं।"

इस तरह स्तुति करनेके बाद सभी एकत्र हो भौंरेकी तरह प्रभुके चरणकमलोंमें दृष्टि रख विनय करने लगे, "हे प्रभो! आपने हमको और भरतको योग्यताके अनुसार अलग अलग राज्य बाँट दिए हैं, हम पाएहुए राज्योंसे संतुष्ट हैं; कारण, स्वामी की बनाई हुई मर्यादा विनयी लोगोंके लिए अनुलंघ्य होती है; परंतु हे भगवन! हमारे बड़े भाई भरत अपने राज्यसे और दूसरोंसे छीने हुए राज्योंसे भी जलसे बडवानलकी तरह, संतुष्ट नहीं हो रहे हैं। वे, जैसे उन्होंने दूसरोंके राज्य छीन लिए हैं वैसेही हमारे राज्य भी छीन लेना चाहते हैं। भरत राजाने दूसरोंकी तरह हमारे पास भी दूत भेजकर हमसे कहलाया है कि या तो मेरी सेवा करो या राज्यका त्याग करो। हे प्रभो! अपनेको बड़ा माननेवाले भरतके वचनमात्रसे हम, कायरकी तरह, पिताके दिए हुए राज्यका त्याग कैसे कर सकते हैं? इसी तरह हम अधिक ऋद्धिकी इच्छा न रखनेवाले भरतकी सेवा भी क्यों करें? जो मनुष्य अतृप्त होता है वही स्वमानका नाश करने वाली दूसरोंकी सेवा अंगीकार करते हैं। हमें न राज्य छोड़ना है और न सेवाही करनी है, तब युद्ध करनाही हमारे लिए स्वतः सिद्ध है; तो भी हम आपसे पूछे बिना कोई काम करना नहीं चाहते।" (८०६-८१४)

पुत्रोंकी बात सुनकर, जिनके निर्मल केवलज्ञानमें सारा जगत दिखाई देता है, ऐसे कृपालु भगवान आदीश्वरनाथने उन-

को यह आज्ञा दी, "हे वत्सो ! पुरुष-व्रतधारी वीर पुरुषोंको तो अत्यंत द्रोह करनेवाले दुश्मनोंके साथही युद्ध करना चाहिए। राग, द्वेष, मोह और कषाएँ जीवोंको, सैकड़ों जन्मोंमें भी नुकसान पहुँचानेवाले दुश्मन हैं। राग (स्नेह) सद्गतिमें जानेसे रोकनेके लिए लोहेकी बेड़ीके समान बाँधनेवाला है और द्वेष नरकवासमें निवास करानेकी बलवान जमानत है। मोह संसार-समुद्रके भँवरमें डालनेका पण (प्रतिज्ञा) रूप है और कषाय आगकी तरह अपने आश्रित लोगोंको ही जलाती है; इसलिए पुरुषोंको चाहिए कि वे अविनाशी उन उन उपायरूपी अस्त्रोंसे निरंतर युद्ध करके वैरीको जीतें और सत्य शरणभूत धर्मकी सेवा करें, जिससे शाश्वत आनंदमय पदकी प्राप्ति सुलभ हो। यह राज्यलक्ष्मी, अनेक योनियोंमें गिरानेवाली, अति पीड़ा पहुँचानेवाली, अभिमानरूप फल देनेवाली और नाशमान है। हे पुत्रो ! पहले स्वर्गके सुखोंसे भी तुम्हारी तृष्णा पूरी नहीं हुई है, तो कोयले बनानेवालोंकी तरह मनुष्य संबंधी भोगोंसे तो वह कैसे पूर्ण हो सकती है ? कोयले बनानेवालेकी बात इस तरह है,– (८२६–८३४)

कोई कोयले बनानेवाला पुरुष पानीकी मशक लेकर निर्जल जंगलमें, कोयले बनानेके लिए गया। वहाँ दुपहरकी धूपसे और अंगारोंकी गरमीसे उसे प्यास लगी। इससे वह घबराया और साथमें लाई हुई मशकका सारा पानी पी गया; फिर भी उसकी प्यास नहीं बुझी। इससे वह सो गया। सपनेमें मानों वह घर गया। वहाँ मटका, गागर और कलसा वगैराका सारा पानी पीगया, तो भी जैसे तेलसे अग्निकी तृषा शांत नहीं होती वैसे-

ही, उसकी प्यास नहीं बुझी। तब उसने बावड़ी, कुए और सरोवरोंको, उनका जल पीकर, सुखाया; तथा सरिता और समुद्रका जल पीकर उनको भी सुखाया, तो भी नारकी जीवोंकी तृषा-वेदनाकी तरह उसकी प्यास नहीं बुझी। पश्चात मरुदेशके (रेगिस्तानके) कुएमें जाकर रस्सीसे दूबका पूला बाँध, जलके लिए उसमें डाला। कहा है—

"किमार्तः कुरुते नहि ?"

[दुखी आदमी क्या नहीं करता ?] कूएमें जल बहुत गहरा था इसलिए, दर्भका पूला कूएमेंसे निकालते हुए बीचहीमें झर गया; तो भी द्रमक (भिखारी) जैसे तेलका पोता निचोड़कर भी चूसता है वैसेही, वह उसे निचोड़कर पीने लगा, मगर जो प्यास समुद्रके जलसे भी नहीं बुझी वह पूलेके जलसे कैसे बुझ सकती थी ?

इसी तरह तुम्हारी तृष्णा-जो स्वर्गके सुखोंसे भी नहीं गई-राज्यलक्ष्मीसे कैसे जाएगी ? इसलिए हे पुत्रो ! तुम विवेकियोंको चाहिए कि तुम अमंद आनंदके झरनेके समान और मोक्ष पानेके कारणरूप संयम-साम्राज्यको ग्रहण करो।"

(८३५-८४३)

स्वामीके ऐसे वचन सुनकर उन अट्ठानवे पुत्रोंके मनपर तत्कालही संवेगका रंग चढ़ा और उसी समय उन्होंने भगवानसे दीक्षा ले ली। "आश्चर्य है इनके धैर्यपर, सत्वपर और इनकी वैराग्य-बुद्धिपर !" इस तरह विचार करते हुए दूतोंने आकर चक्रीको सारा हाल सुनाया; तब चक्रवर्तीने उन सबके राज्योंको इस तरह स्वीकार कर लिया जैसे चंद्रमा ताराओंकी

ज्योतिको स्वीकार करता है, जैसे सूरज अग्नियोंके तेजको स्वीकार करता है और जैसे समुद्र प्रवाहोंके–नदीनालोंके जल-को स्वीकार करता है। (८४४–८४६)

श्री हेमचंद्राचार्यविरचित त्रिपष्टिशलाका-पुरुपचरित्र
महाकाव्यके प्रथम पर्वका चतुर्थ सर्ग समाप्त
हुआ। इसमें भरत चक्रोत्पत्ति, दिग्विजय,
राज्याभिपेक और उसके ९८ भाइयों-
का व्रत ग्रहण करना, वर्णन
किया गया है।



सर्ग पाँचवाँ

भरत-बाहुबलीका वृत्तांत

एक बार भरतेश्वर जिस समय सुखसे सभामें बैठे थे, उस समय सुषेण सेनापतिने आकर नमस्कार किया और कहा, "हे महाराज ! आपने दिग्विजय कर लिया है तो भी आपका चक्र, जैसे मदोन्मत्त हाथी आलानस्तंभपर (हाथी बाँधनेके खंभे पर) नहीं जाता है वैसेही, नगरमें नहीं आता है।"

भरतेश्वरने पूछा, "हे सेनापति ! इस छःखंड भरतक्षेत्रमें कौन ऐसा रहा है जो अब तक मेरी आज्ञा नहीं मानता ?"

उस समय मंत्रीने कहा, "हे स्वामी ! मैं जानता हूँ कि आप महाराजने क्षुद्र हिमालय तक सारा भरतक्षेत्र जीत लिया है, आप दिग्विजय करके आए हैं, आपके जीतने लायक अब कौन शेष रह गया है ? कारण,—

"भ्रमद् घरट्टपतितास्तिष्ठंति चणकाः किमु।"

[चलती चक्कीमें गिरा हुआ दाना क्या साबुत रह सकता है ?] तो भी चक्र शहरमें प्रवेश न कर यह सूचित करता है कि, अब तक कोई उन्मत्त पुरुष ऐसा है, जिसे आपको जीतना है। हे प्रभो ! (मनुष्योंमें तो क्या) देवताओंमें भी कोई पुरुष आपके जीतने लायक नहीं रहा है। मगर, हाँ ! मुझे मालूम हुआ है कि, दुनियामें एक दुर्जय पुरुष रहा है, जो आपके जीतने योग्य है। वह है ऋषभस्वामीका पुत्र और आपका छोटा भाई

बाहुबली। वह महा बलवान है और बलवान पुरुषोंके बलको नाश करनेवाला है। जैसे, सभी शस्त्र एक तरफ और चक्र एक तरफ, उसी तरह सभी राजा एक तरफ और बाहुबली एक तरफ। जैसे आप ऋषभदेवजीके लोकोत्तर पुत्र हैं वैसेही, वे भी हैं। जबतक आप उनको नहीं जीतेंगे तब आपने किसीको नहीं जीता,ऐसाही माना जाएगा। यद्यपि इस छःखंड भरतक्षेत्रमें आपके समान कोई नहीं दिखता, तथापि उनको जीतनेसे आपका अत्यंत उत्कर्ष होगा। बाहुबली जगतके मानने योग्य आपकी आज्ञाको नहीं मानते, इसलिए उनको नहीं जीतनेसे चक्र, मानों लज्जित हुआ हो ऐसे, नगरमें प्रवेश नहीं करता है।

'उपेक्षितव्यो न परः स्वल्पोप्यामयवद्यतः।"

[थोड़ेसे रोगकी तरह छोटेसे शत्रुकी उपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए।] इसलिए देर किए बगैर उनको जीतनेका शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिए।" (१–१३)

मंत्रीकी ये बातें सुनकर, दावानल और मेघकी वृष्टिसे पर्वतकी तरह, तत्कालही कोप और शांतिसे आश्लिष्ट होकर (अर्थात पहले क्रुद्ध और फिर शांत बनकर) भरतेश्वरने कहा, "एक तरफ छोटा भाई आज्ञा नहीं मानता, यह शरमकी बात है और दूसरी तरफ छोटे भाईके साथ लड़ाई करना भी दुःखदायी है। जिसकी आज्ञा अपने घरमें नहीं चलती उसकी आज्ञा बाहर भी उपाहासास्पद (दिल्लगीके लायक) होती है; इसी तरह छोटे भाईके अविनयको सहना भी अपवादरूप है। घमंड करनेवाले को सजा देना राजधर्म है और भाइयोंके साथ अच्छी तरह रहना चाहिए यह भी व्यवहार है; इस तरह अफसोस है कि

मैं एक संकटमें फँसगया हूँ।" (१५-१७)

अमात्यने कहा, "हे महाराज! आपके इस संकटको आप-हीके महत्वसे आपके छोटे भाई, टालेंगे। कारण,—सामान्य गृहस्थोंमें भी यह व्यवहार है कि बड़े भाई आज्ञा दें और छोटे भाई उसका पालन करें। इसलिए सामान्य रीतिके अनुसार संदेश पहुँचानेवाला दूत भेजकर, छोटे भाईको आज्ञा कीजिए। हे देव! केसरी-सिंह जिस तरह जीन बरदाश्त नहीं करता वैसे ही, वीर-अभिमानी आपका छोटा भाई अगर सारे जगतके लिए मान्य आपकी आज्ञा न माने तो फिर इंद्रके समान परा-क्रमी आप उन्हें दंड दीजिए। इस तरह करनेसे लोकाचारका पालन होगा और आपको भी कोई दोष नहीं देगा। (१८-२२)

महाराजाने मंत्रीकी यह बात मान ली। कारण,—

"उपादेया शास्त्रलोकव्यवहारानुगा हि गीः।"

[शास्त्र और लोकव्यवहारके अनुसार जो बात हो उसे माननी चाहिए।] फिर उन्होंने नीतिज्ञ, दृढ़ और वाचाल (बात-चीत करनेमें चतुर) एक सुवेग नामके दूतको सीख देकर बाहुबलीके पास भेजा। अपने स्वामीकी श्रेष्ठ सीखको, दूत-पनकी दीक्षाकी तरह, अंगीकार कर, रथमें सवार हो, सुवेग तक्षशिला नगरकी तरफ चला। (२३-२५)

सुवेग सारी सेना ले, वेगवान रथमें बैठ, जब विनीता नगरीके बाहर निकला तब, ऐसा जान पड़ता था, मानों वह भरतपतिकी शरीरधारिणी आज्ञा है। रास्तेमें चलते समय शुक-सेही, मानों वह विधाताको विपरीत देखता हो इस तरह, बार

बार उसकी बाईं आँख फड़कने लगी; अग्निमंडलके बीचमें, फूँक मारनेवाली नाड़ी (धोंकनी) में जैसे फूँक मारता है और धोंकनी चलती है वैसेही, उसकी दाहिनी नाड़ी रोगके बिनाही जल्दी जल्दी चलने लगी। तुतला बोलनेवाला आदमी जैसे असंयुक्त अक्षर बोलनेमें भी अटकता है वैसेही उसका रथ सीधे मार्गमें भी बार बार रुकने लगा। काला मृग, जिसे उसके घुड़-सवारोंने आगे जाकर भगा दिया था तो भी, किसीका भेजा हुआ हो ऐसे, उसकी दाहिनी तरफसे बाईं तरफको गया। कौआ सूखे हुए काँटेदार वृक्षपर बैठकर चोंचरूपी शस्त्रको पत्थरकी तरह घिसता हुआ कटु स्वरमें, उसके आगे बोलने लगा। उसके प्रयाणको रोकनेके लिए भाग्यने मानों अर्गला डाली हो इस तरह, लंबा साँप उसके आगेसे गुजरा; मानों पश्चात विचार करने में विद्वान सुवेगको वापस लोटाता हो ऐसे, प्रतिकूल वायु, रज उड़ाकर उसकी आँखोंमें डालती हुई बहने लगी। आटेकी लुगदी लगाए बिनाके या फूटेहुए मृदंगकी तरह विरस शब्द करता हुआ गधा उसकी दाहिनी तरफ रहकर रेंकने लगा। इन अप-शकुनोंको सुवेग अच्छी तरह जानता था; तो भी वह आगे चला। कारण,—

"सद्भृत्याः स्वामिनः क्वापि कांडवत्प्रस्खलंति न।"

[अच्छे नौकर स्वामीके काममें बाणकी तरह (सीधे जाते हैं, रस्तेमें) कभी नहीं रुकते।] अनेक गाँवों, नगरों, मंडियों और आकरों (खानों) से गुजरता हुआ, वहाँके निवासियोंको, थोड़ी देरके लिए वह आँधीके समान लगा। स्वामीके कार्यमें लगे हुए आदमीके पीछे तोत्र (कोड़ा) होनेसे, जैसे वह

निरंतर काम करता रहता है वैसेही, सुवेग वृक्षोंके कुंडमें, सरोवर या सिंधुतट वगैरा स्थानोंमें भी विश्राम नहीं लेता था। इस तरह चलता हुआ मानों वह मृत्युकी एकांत रति-भूमि हो ऐसे बीहड़ जंगलमें पहुँचा। राक्षसोंके जैसे, धनुष चढ़ाकर हाथियोंका निशाना बनानेवाले, और चमुरु जातिके मृगोंके चमड़ोंके कवच बनाकर पहननेवाले भीलोंसे वह जंगल भरा हुआ था। मानों यमराजके सगोत्रीय हों ऐसे चमुरुमृगों, चीतों, बाघों, सिंहों और शरभों (अष्टापदों) वगैरा क्रूर हिंसक पशुओं-से वह वन व्याप्त था। परस्पर लड़नेवाले साँपों और नकुलोंके बिलोंसे वह वन भयंकर लगता था। रीछोंके केश धारण करने-में व्यग्र छोटी छोटी भीलनियाँ वहीं फिरती थीं। भैंसे आपसमें लड़कर उस जंगलके पुराने वृक्षोंको तोड़ते थे। शहद लेनेवाले आदमियोंके द्वारा उड़ाई हुई, शहदकी मक्खियोंसे उस जंगलमें जाना कठिन हो रहा था। आकाश तक ऊँचे पहुँचे हुए वृक्षोंके समूहसे वहाँ सूरज भी दिखाई नहीं देता था। पुण्यवान जैसे विपत्तियोंको लाँघता है वैसेही, वेगवान रथमें बैठा हुआ सुवेग उस घोर जंगलको आसानीसे पार कर गया। (वहाँसे वह बहली देशमें जा पहुँचा।) (७५-८३)

उस देशमें मार्गके किनारे, वृक्षोंके नीचे, अलंकार धारण करके आराममें बैठी हुई मुसाफिरोंकी स्त्रियाँ यह सूचित करती थीं कि, यहाँ सुराज्य है। हरेक गोकुल गाँवमें, पेड़ोंके नीचे बैठे हुए, हर्षित गोपाल ऋषभचरित्र गाते थे। मानों भद्रशाल वनमें-से लाकर लगाए हों ऐसे, फलदार और बहुत बड़ी संख्यावाले सघन वृक्षोंसे सभी गाँव अलंकृत थे। वहाँ हरेक गाँवमें और

हरेक घरमें, दान देनेमें दीक्षित, गृहस्थ लोग याचकोंकी खोज करते थे। भरत राजासे सताए जाकर उत्तर भरतार्द्धमेंसे भाग कर आए हों ऐसे, गरीब यवन लोग कई गाँवोंमें बसे हुए थे। वह भरतक्षेत्रसे एक अलग क्षेत्र ही मालूम होता था। वहाँ कोई भरत राजाकी आज्ञाको जानता-मानता न था। ऐसे उस बहली देशमें जाते हुए सुवेग, रास्तेमें मिलनेवाले लोगोंसे जो बाहुबली-के सिवा किसी दूसरे राजाको जानते न थे और जिन्हें वहाँ कोई दुःख नहीं था-बार बार बातचीत करता था। पर्वतोंमें फिरनेवाले दुर्मद और शिकारी जानवर भी उसे पंगु बनेसे मालूम होते थे। प्रजाके अनुराग-भरे वचनोंसे और महान समृद्धिसे वह बाहुबलीकी नीतिको अद्वैत सुख देनेवाली मानने लगा। भरत राजाके छोटे भाई बाहुबलीके उत्कर्षकी बातें सुन सुनकर अचरजमें पड़ता हुआ और अपने स्वामीके संदेशेको याद करता हुआ सुवेश तक्षशिला नगरके पास पहुँचा। नगर-के बाहरी भागमें रहनेवाले लोगोंने, आंख उठाकर मामूली तौर-से एक मुसाफिरकी तरह उसे देखा। खेलके मैदानमें धनुर्विद्या-का खेल खेलनेवाले सुभटोंकी भुजाओंकी आवाजोंसे उसके घोड़े चमकने लगे। इधर-उधर शहरके लोगोंकी समृद्धि देखने-में लगे हुए सारथीका मन अपने काममें न रहा, इससे उसका रथ किसी दूसरे रस्ते चलकर रुक गया। बाहरी बागोंके पास सुवेगने उत्तम हाथियोंको बँधे देखा; उसे ऐसा जान पड़ा कि सभी द्वीपोंके, चक्रवर्तियोंके गजरत्न यहाँ लाकर जमा किए गए हैं। मानों ज्योतिष्क देवताओंके विमान छोड़कर आए हों ऐसे, उत्तम अश्वोंसे भरी हुई अश्वशालाएँ उसने देखीं। भरतके छोटे

भाईके आश्चर्यकारक ऐश्वर्यको देखकर, सरमें दर्द हो गया हो ऐसे, बार बार सर धुनते हुए दूतने तक्षशिलामें प्रवेश किया। मानों अहमिंद्र हों ऐसे, स्वच्छंद वृत्तिवाले और अपनी अपनी दुकानोंपर बैठे हुए, धनिक व्यापारियोंको देखता हुआ वह राजद्वारपर आया। (५५-६०)

मानों सूरजके तेजको छेदकर बनाए गए हों ऐसे चमकदार भाले हाथोंमें लिए प्यादोंकी सेनाके लोग वहाँ खड़े थे। कई स्थानोंमें गन्नोंके पत्तोंके अगले भागोंसी तेज बरछियाँ लेकर खड़े हुए सिपाही वीरतारूपी वृक्ष पल्लवित हुए हों, ऐसे जान पड़ते थे। कहीं पत्थरोंको फोड़ देनेवाली लोहेकी मजबूत गुर्जें लेकर खड़े हुए सुभट एकदंती हाथियोंसे मालूम होते थे। कई स्थानोंपर नक्षत्रों तक बाण फेंकनेवाले और शब्दवेधी निशाना मारनेवाले धनुर्धारी पुरुष, भाथे पीठपर बाँधे और हाथोंमें काल धनुष लिए, खड़े थे। मानों द्वारपाल हों ऐसे दोनों तरफ सूँडें ऊँची उठाए खड़े हुए दो हाथियोंसे राज्यद्वार, दूरसे बहुत डरावना मालूम होता था। उस नरसिंह (बाहुबली) का सिंहद्वार (महलोंमें घुसनेका मुख्य दरवाजा) देखकर सुवेगका मन विस्मित हुआ। अंदर जानेकी आज्ञा पानेके लिए वह दरवाजेपर रुका; कारण, राजमहलोंका यही दस्तूर है। उसके कहनेसे द्वारपालने अंदर जाकर बाहुबलीसे निवेदन किया कि आपके बड़े भाईका सुवेग नामक एक दूत बाहर खड़ा है। राजाने ले-आनेकी आज्ञा दी। छड़ीदार, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सुवेग नामके दूतको, सूर्यमंडलमें बुधकी तरह, सभामें ला खड़ा किया। (६१-६८)

वहाँ विस्मित सुवेगने सिंहासनपर बैठे हुए तेजके देवताके

समान बाहुबलीको देखा। मानों आकाशसे सूर्य उतरकर आए हों ऐसे रत्नमय मुकुट धारण करनेवाले तेजस्वी राजा उसकी सेवा करते थे। अपने स्वामीकी विश्वास रूपी सर्वस्व-वल्लीके संतानरूपी मंडपके समान, और परीक्षा द्वारा शुद्ध पाए गए प्रधानोंका समूह उसके पास बैठा था। प्रदीप्त मुकुटोंवाले और जगतके लिए असह्य हों ऐसे, नागकुमारोंके जैसे, राजकुमार उसके आस-पास उपस्थित थे। बाहर निकाली हुई जीभोंवाले सर्पोंके समान खुले हथियार हाथमें लेकर खड़े हुए हजारों शरीर-रक्षकोंसे वह मलयाचलकी तरह भयंकर मालूम होता था। चमरीमृग जैसे हिमालय पर्वतको, वैसेही अति सुंदर वारांगनाएँ उसको चामर डुलाती थीं। बिजली सहित शरद्‌ऋतुके मेघकी तरह पवित्र वेषवाले और छड़ीवाले छड़ीदारोंसे वह शोभता था। सुवेगने शब्द करती हुई सोनेकी लंबी जंजीरवाले हाथीकी तरह ललाटसे पृथ्वीको स्पर्श कर बाहुबलीको प्रणाम किया। तत्कालही महाराजाके द्वारा आँखके इशारेसे मँगाकर (बिछवाए हुए) आसनको प्रतिहारने उसे बताया। वह उसपर बैठा।

फिर कृपारूपी अमृतसे धोईहुई उजली दृष्टिसे सुवेगकी तरफ देखते हुए राजा बाहुबली बोले, "हे सुवेग! आर्य भरत सकुशल हैं? पिताजीके द्वारा लालित-पालित अयोध्याकी सारी प्रजा सकुशल है? कामादिक छः शत्रुओंकी[1] तरह छः खंडोंको भरत महाराजने निर्विघ्नरूपसे जीता है न? साठ हजार बरस तक

१—जीवके छः शत्रु हैं; काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। ये छःवर्गके नामसे भी पहचाने जाते हैं।

बड़े बड़े युद्ध करके सेनापति वगैरह सभी लोग सकुशल वापस आए हैं न? सिंदूरसे लाल किए हुए कुंभस्थलों द्वारा, आकाश को संध्याके समान बनाती हुई महाराजके हाथियोंकी घटा सकुशल है न? हिमालय तक पृथ्वीको रौंदकर आए हुए महाराजा के सभी उत्तम घोड़े स्वस्थ हैं न? अखंड आज्ञावाले और सभी राजाओंके द्वारा सेवित आर्य भरतके दिन सुखसे बीत रहे हैं न?" (७०-८५)

इस तरह पूछकर वृषभात्मज बाहुबली जब मौन हुए, तब घबराहट-रहित हो, हाथ जोड़, सुवेग बोला, "सारी पृथ्वीको सकुशल (सुखी) बनानेवाले भरतरायकी कुशलता तो स्वतः सिद्धही है। जिनकी रक्षा करनेवाले आपके बड़े भाई हैं, उन नगरी, सेनापति, हाथियों और घोड़ों वगैरहको तकलीफ पहुँचानेकी शक्ति तो विधातामें भी नहीं है। भरत राजासे अधिक या उनके समानही दूसरा कौन है जो उनके छःखंड-विजयमें विघ्न डालता? यद्यपि सभी राजा उनकी आज्ञाका अखंड पालन करते हैं और उनकी सेवा करते हैं, तथापि महाराजाके मनमें सुख नहीं है; कारण जो दरिद्र होते हुए भी अपने कुटुंबसे सेवित होता है वह ईश्वर है; मगर जिसकी कुटुंब सेवा नहीं करता उसको ऐश्वर्यका सुख कैसे हो सकता है? साठ हजार वर्षके अंतमें आए हुए आपके बड़े भाई उत्कंठासे अपने सभी छोटे भाइयोंके आनेकी राह देखते थे। सभी संबंधी और मित्रादि वहाँ आए और उन्होंने उनका महाराज्याभिषेक किया। उस समय उनके पास इंद्रादि देव सभी आए थे; मगर उनमें अपने छोटे भाइयोंको न देख महाराजा सुखी नहीं हुए। बारह बरस

तक राज्याभिषेक चला। उसमें अपने भाइयोंको न आते देख उन्होंने सबके पास दूत भेजे; कारण,—'उत्कंठा बलवान होती है।' मगर वे न जाने क्या सोचकर, भरत महाराजके पास न आए और पिताजीके पास चले गए। वहाँ उन्होंने दीक्षा ले ली। अब वे मोह-ममता रहित हो गए हैं; उनके लिए न कोई अपना है और न कोई पराया है, इसलिए उनसे महाराज भरतकी भाईसे प्रेम करनेकी इच्छा पूर्ण नहीं होती, अतः यदि आपके मनमें बंधुताका प्रेम हो तो आप वहाँ चलिए और महाराजके हृदयको प्रसन्न कीजिए। आपके बड़े भाई चिरकालके बाद घर लौटे हैं, तो भी आप बैठे हुए हैं (उनसे मिलनेको नहीं गए), इससे मैं कल्पना करता हूँ कि आपका हृदय वज्रसे भी कठोर है। आप बड़े भाईकी अवज्ञा करते हैं, इससे जान पड़ता है कि आप निर्भीकसे भी निर्भीक हैं। नीतिमें कहा है कि—

"शूरैरपि वर्त्तितव्यं गुरौ हि सभयैरिव।"

[शूर-वीरोंको भी चाहिए कि वे गुरुजनोंसे डरते रहें।] एक तरफ जगतको जीतनेवाला हो और दूसरी तरफ गुरुकी विनय करनेवाला हो, तो उनमेंसे किसकी प्रशंसा करनी चाहिए? इसका विचार करनेकी पर्षदा (सभा) के लिए आवश्यकता नहीं है। कारण,—गुरुकी विनय करनेवालाही प्रशंसा करनेके योग्य होता है। आपकी ऐसी अविनय, सबकुछ सहनेवाले, महाराज सहन करेंगे; मगर पिशुन (निंदक) लोगोंको बेरोक मौका मिलेगा; आपकी अविनयका प्रकाश करनेवाले, पिशुन लोगोंकी वाणीरूपी छाछके छींटे धीरे धीरे महाराजाके दूधके समान दिल-को दूषित करेंगे। स्वामीके संबंधमें अपना छोटासा छिद्र हो,

यह भी रक्षणीय है; कारण,—

"छिद्रेण लघुनाप्यंभः सेतुमुन्मूलयत्यहो ।"

[छोटेसे छेदके द्वारा भी पानी बाँधका नाश कर डालता है ।] आप ऐसी शंका न कीजिए कि मैं अबतक नहीं गया, अब कैसे जासकता हूँ ? आप चलिए । कारण,—

"......सुस्वामी गृह्णाति स्खलितं नहि ।"

[अच्छे स्वामी भूलको ग्रहण नहीं करते हैं—उसकी उपेक्षा करते हैं ।] आकाशमें सूर्योदय होनेसे जैसे हिम (कुहरा) नष्ट हो जाता है वैसेही, आपके वहाँ जानेसे पिशुन लोगोंके मनोरथ नष्ट हो जाएँगे । पर्वणी (पूर्णिमा) के दिन जैसे सूरजसे चाँद-को तेज मिलता है वैसेही, उनसे मिलनेसे आपके तेजमें वृद्धि होगी । स्वामीकी तरह आचरण करनेवाले अनेक बलवान पुरुष अपना सेव्यपन छोड़कर महाराजकी सेवा कर रहे हैं । जैसे देवताओंके लिए इंद्र सेव्य है वैसेही, कृपा और सजा करनेमें समर्थ चक्रवर्ती भी सभी राजाओंके लिए सेवा करने योग्य हैं । आप केवल चक्रवर्तीपनका पक्ष लेकर ही उनकी सेवा करेंगे तो आप उससे अद्वितीय भ्रातृप्रेमको भी प्रकाशित करेंगे । शायद आप यह सोचकर कि वे तो मेरे भाई हैं, वहाँ न जायें, तो यह भी उचित न होगा । कारण, आज्ञाको मुख्य जाननेवाले राजा ज्ञाति-भावसे भी निग्रह करते हैं—यानी ज्ञातिवालोंसे भी अपनी आज्ञा पलवाते हैं । लोहचुंबकसे लोहेकी तरह उनके उत्कृष्ट तेज से खिंचे हुए देव, दानव और मनुष्य सभी भरतपतिके पास आते हैं । जब इंद्र भी, महाराज भरतको अपना आधा आसन

देकर इनका मित्र बन गया है, तब आप सिर्फ उनके पास आकर ही उनको अपने अनुकूल क्यों नहीं बना लेते हैं ? यदि आप वीरताके अभिमानसे महाराजका अपमान करेंगे तो, आप सेना-सहित उनके पराक्रमरूपी समुद्रमें, मुट्ठीभर बिगड़े हुए धान्यके आटेके समान, विलीन हो जाएँगे। मानों चलते-फिरते पर्वत हों ऐसे ऐरावतके समान उनके चौरासी लाख हाथियोंको आते हुए कौन सहन कर सकता है-रोक सकता है ? और प्रलय-के समुद्रके कल्लोलकी तरह सारी पृथ्वीको भिगोते हुए उतने-ही यानी, चौरासी लाख घोड़ों और चौरासी लाख रथोंको रोक-नेकी ताकत किसमें है ? छियानवे करोड़ गाँवोंके मालिक महा-राजाके छियानवे करोड़ प्यादे सिंहकी तरह किसको भयभीत नहीं कर देते हैं ? उनका सुषेण नामका एक सेनापतिही, अगर हाथमें दंड लेकर आता हो तो, देव या दानव भी उसका मुका-बला नहीं कर सकते हैं। सूर्यके लिए अँधेरा जैसे किसी गिनती-में नहीं है ऐसेही, चक्रधारी भरतचक्रीके लिए तीन लोक भी किसी गिनतीमें नहीं है। इसलिए हे बाहुबली ! तेज और वय दोनोंमें बड़े महाराजा, राज्य और जीवनकी इच्छा रखनेवाले आपके लिए सेव्य हैं।" (८६-१२०).

सुवेगकी बातें सुनकर अपने बलसे जगतके बलको नाश करनेवाले बाहुबली, दूसरे समुद्र हों ऐसे, गंभीर वाणीमें बोले, "हे दूत तुम धन्य हो ! तुम वाक्‌नीतियोंमें अग्रणी हो इसीसे मेरे सामने ऐसे वचन बोलनेमें समर्थ हुए हो। बड़े भाई भरत हमारे पिताके समान हैं। वे बंधुसमागम-भाईसे मिलना चाहते हैं, यह बात उनके योग्यही है; मगर हम इसलिए उनके पास नहीं

आए कि सुर, असुर और राजाओंकी लक्ष्मीसे ऋद्धिवान बने हुए वे,हम अल्प वैभववालोंसे लज्जित होंगे। साठ हजार बरस-तक दूसरोंके राज्य लेनेमें लगे रहे; यह बातही उनके लिए अपने छोटे भाइयोंका राज्य लेनेकी व्यग्रताका कारण है। अगर भ्रातृस्नेहका कारण होता तो वे अपने भाइयोंको एक एक दूत भेजकर यह बात क्यों कहलाते कि राज्य छोड़ो अर्थात हमारी सेवा स्वीकार करो या लड़ाई करो। लोभी मगर बड़ा भाई। उसके साथ कौन लड़ाई करे? यह सोचकरही मेरे सत्ववंत सभी छोटे भाई अपने पिताके पदचिन्हों पर चले हैं। उनके राज्योंको ले लेनेसे छिद्र देखनेवाले तुम्हारे स्वामीकी वक्र-चेष्टा अब प्रगट हो गई है। इसी तरह और ऐसाही स्नेह बतानेके लिए, भरतने तुम्हें वाणीके प्रपंचमें विशेष चतुर समझकर, यहाँ भेजा है। उन छोटे भाइयोंने अपना राज्य दे, व्रत ग्रहण कर, जैसा आनन्द उसको दिया है वैसा आनंद क्या मेरे आनेसे उस राज्यके लोभीको होगा? नहीं होगा। मैं वज्रसे भी कठोर हूँ, और थोड़े वैभववाला हूँ, तोभी बड़े भाई-का अपमान होगा इस डरसे उनकी सम्पत्ति लेना नहीं चाहता हूँ। वे फूलोंसे भी कोमल हैं, मगर मायाचारी हैं; इसलिए निंदा-से डरकर व्रत ग्रहण करनेवाले अपने छोटे भाइयोंके राज्य उनने ले लिए हैं। हे दूत! भाइयों के राज्य ले लेनेवाले भरतकी हमने उपेक्षा की; इसलिए हम सचमुचही निर्भयोंसे भी निर्भय हैं और

"गुरौ प्रगल्भो विनयो गुरुर्यदि गुरुर्भवेत।
गुरौ गुरुगुणैर्हीने विनयोपि त्रपास्पदम्॥"

[गुरुका विनय करना अच्छी बात है अगर गुरु गुरु हों; मगर गुरु यदि गुणहीन हों तो उनका विनय करना लज्जाजनक है।] गुरु अगर अभिमानी हो, कार्य-अकार्यका जाननेवाला न हो और उलटे रस्ते चलनेवाला हो तो ऐसे गुरुका त्याग करनाही उचित है। तुम कहते हो कि भरत सर्वसह-सब कुछ सहनेवाला राजा है, मगर हमने क्या उसके अश्वादि छीन लिए हैं या उसके नगरोंको लूट लिया है, कि हमारे इस अविनय-को उन्होंने सह लिया। हम तो दुर्जनोंका प्रतिकार करनेके लिए (भी) ऐसे काम नहीं करते; (इसलिए कहा है कि) —

"विमृश्यकारिणः संतः किं दूष्यंते खलोक्तिभिः।"

[विचारपूर्वक काम करनेवाले सज्जन क्या दुष्ट लोगोंके कहनेसे दूषित होते हैं ?] इतने समयतक हम आए नहीं थे। क्या वे कहीं निस्पृह होकर चले गए थे (सो लौटकर आए हैं) इसलिए अब हमें उनके पास जाना चाहिए। वे भूतकी तरह छिद्रको ढूँढ़नेवाले हैं तोभी हम सब जगह सावधान और निर्लोभ रहनेवालोंकी कौनसी भूलको ग्रहण करेंगे ? (अर्थात हमारी भूलकी उपेक्षा करेंगे ?) हमने भरतेश्वरसे न कोई देश लिया है और न कोई दूसरी चीजही ली है तब वे हमारे स्वामी कैसे होंगे ? जब हमारे और उनके भगवान ऋषभदेवही स्वामी हैं, तब हमारे और उनके सेवक और स्वामी-का संबंध कैसे संभव है ? मैं तेजका कारणरूप हूँ। मेरे वहाँ आनेसे उनका तेज कैसे रहेगा ? कारण,—

"तेजोऽभ्युदितवत्यर्के, तेजस्वी नहि पावकः।"

[तेजस्वी सूर्यके उदय होनेपर आगका तेज नहीं रहता है।]

असमर्थ राजा खुद स्वामी होते हुए भी उन्हें (भरतको) स्वामी मानकर उनकी सेवा करते हैं, कारण उन निर्बल राजाओंको पुरस्कार देने या सजा करनेमें भरत समर्थ हैं। यदि मैं भ्रातृस्नेहके वश होकर उनकी सेवा करूँ तो भी उस सेवाका संबंध उनके चक्रवर्तीपनसेही लगाया जाएगा। कारण,–

"......यत् अबद्ध मुखो जनः।"

[लोगोंके मुँह बंद नहीं किए जासकते]मैं उनका निर्भय भाई हूँ और वे मुझे आज्ञा करने योग्य हैं, मगर जातिस्नेहका इसमें क्या काम है?—

"......वज्रं वज्रेण न विदार्यते।"

[वज्रका वज्रसे नाश नहीं होता।] वह भले सुर, असुर और नरोंकी सेवासे प्रसन्न हों; मुझे इससे क्या मतलब है? सजा हुआ रथ भी सीधे रस्तेपर ही चल सकता है। अगर वह खराब रस्तेपर चलता है तो टूट जाता है। इंद्र पिताजीका भक्त है, इसलिए भरतको पिताजीका बड़ा लड़का समझकर अपने आधे आसनपर बिठाता है, इसमें भरतके लिए अभिमान करनेकी कौनसी बात है? यह सच है कि भरतरूपी समुद्रमें दूसरे राजा सेना सहित मुट्ठीभर सड़े अनाजके आटेके समान हुए हैं; मगर मैं, असह्य तेजवान तो उस समुद्रमें बड़वानलके समान हूँ। सूर्यके तेजमें जैसे तेजमात्र लीन हो जाते हैं उसी तरह भरत राजा अपने घोड़ों, हाथियों, प्यादों और सेनापति सहित मुझमें लय हो जाते हैं। बचपनमें हाथीकी तरह मैंने अपने हाथमें उनका पैर पकड़कर उन्हें

मिट्टीके ढेलेकी तरह आकाशमें उछाल दिया था। आकाशमें बहुत ऊँचे जानेपर फिर नीचे गिरकर मर न जाएँ इस खयालसे, नीचे आते समय मैंने उन्हें फूलकी तरह झेल लिया था; मगर इस समय उनके द्वारा जीते गए राजाओंके चाटु भाषणोंसे, मानों दूसरा जन्म पाए हों इस तरह, वे सभी बातें भूल गए हैं। परंतु वे सभी चाटुकार भग जाएँगे और उनको अकेलेही बाहुबलीकी भुजाओंसे होनेवाली वेदना सहनी पड़ेगी। हे दूत! तुम यहाँसे चले जाओ। राज्य और जीवनकी इच्छासे वे भले यहाँ आवें। मैं, पिताजीने जो राज्य दिया है उसीसे संतुष्ट हूँ। उनके राज्यकी मुझे इच्छा नहीं है; इसीलिए मैं वहाँ आनेकी जरूरत भी नहीं देखता।" (१२१–१५४)

बाहुबलीके इस तरह कहनेसे, स्वामीके दृढ़ आज्ञारूपी बंधनमें बँधे हुए, चित्र-विचित्र शरीरवाले दूसरे राजा भी क्रोधसे आँखें लाल करके सुवेगको देखने लगे। राजकुमार गुस्सेसे 'मारो! मारो! कहते हुए और होठोंको हिलाते हुए एक अनोखेही ढंगसे उसको देखने लगे। अच्छी तरहसे कमर कसे और तलवारें हिलाते हुए अंग-रक्षक,मानों मार डालना चाहते हों इस तरह, आँखें तरेर कर सुवेगको देखने लगे; और मंत्री यह चिंता करने लगे, कि महाराजका कोई साहसी सिपाही इस दूतको मार न डाले। उसी समय छड़ीदारका कदम उठा और हाथ ऊँचा हुआ,ऐसा लगा मानों छड़ीदार दूतकी गरदन पकड़नेको उत्सुक है (मगर नहीं)छड़ीदारने उसे हाथ पकड़ आसनसे उठा दिया। इस व्यवहारसे सुवेगके मनमें क्षोभ हुआ; क्रोध आया मगर वह धैर्य धरकर सभासे बाहर निकला। कुपित बाहुबलीके कठोर शब्दों-

के अनुमानसे राजद्वारपर खड़े हुए प्यादे क्षुब्ध हो उठे। उनमें-से कई ढालें ऊँचीनीची करने लगे, कई तलवारें घुमाने लगे, कई फेंकनेके लिए चक्र तैयार करने लगे, कई मुद्गरें उठाने लगे, कई त्रिशूलें झनझनाने लगे, कई भाथे बाँधने लगे, कई दंड ग्रहण करने लगे और कई परशुओंको आगे बढ़ाने लगे। सब प्यादों-को इस तरहकी चेष्टाएँ करते देख, चारों तरफ पद पदपर उसे अपनी मौत सामने दिखाई देने लगी। घबराहटसे उसके पैर सीधे नहीं पड़ते थे। इस तरह सुवेग नरसिंहके (बाहुबलीके) सिंहद्वारसे बाहर निकला। वहाँसे रथमें बैठकर नगरके लोगों-की आपसमें होती हुई नीचे लिखी बातचीत उसने सुनी। (१५५-१६४)

—"राजद्वारमेंसे यह नया आदमी कौन निकला?

—यह भरत राजाका दूत मालूम होता है।

—क्या पृथ्वीपर बाहुबलीके सिवा दूसरा भी कोई राजा है?

—हाँ, बाहुबलीके बड़े भाई भरत अयोध्यामें राजा हैं।

—इस दूतको उन्होंने यहाँ क्यों भेजा?

—अपने भाई राजा बाहुबलीको बुलाने।

—इतने समयतक हमारे स्वामीके भाई राजा कहाँ गए थे?

—भरतक्षेत्रके छ:खंडको जीतने गए थे।

—अभी उन्हें अपने भाईको बुलानेकी इच्छा क्यों हुई?

—दूसरे मामूली राजाओंकी तरह सेवा कराने।

—सब राजाओंको जीतकर वह अब इस लोहेके कीले-पर (शूलीपर) क्यों चढ़ना चाहता है ?

—इसका कारण अखंड चक्रवर्तीपनका अभिमान है।

—छोटे भाईसे हारा हुआ वह राजा अपना मुँह कैसे दिखा सकेगा ?

—सब जगह जीतनेवाला आदमी भावीमें होनेवाली हार-को नहीं जानता।

—भरत राजाके मंत्रियोंमें क्या कोई चूहेके समान भी नहीं है ?

—उसके कुलक्रमसे बने हुए अनेक बुद्धिमान मंत्री हैं।

—तब मंत्रियोंने भरतको सर्पका मस्तक खुजानेसे क्यों नहीं रोका ?

—उन्होंने उसको रोका तो नहीं प्रत्युत उत्साहित किया है। होनहारही ऐसा है।" (१६५-१७४)

नगरनिवासियोंकी ऐसी बातें सुनता हुआ सुवेग नगरसे बाहर निकला। नगरद्वारके पास, मानों देवताओंने फैलाई हो ऐसे ऋषभदेवजीके पुत्रोंकी युद्धकथा उसे इतिहासकी तरह सुनाई दी। क्रोधके मारे सुवेग जैसे जैसे वेगसे आगे बढ़ने लगा वैसेही वैसे, मानों स्पर्द्धा करती हो ऐसे युद्धकथा भी बड़े वेगसे फैलने लगी। केवल बातें सुनकर ही, राजाकी आज्ञाकी तरह, हरेक गाँवमें और हरेक शहरमें,वीर सुभट लड़ाईके लिए तैयार होने लगे। योगी जैसे शरीरको मजबूत बनाते हैं वैसेही, कई लड़ाईके रथ, शालाओंमेंसे निकालकर उनमें नवीन धुरियाँ

वगैरह डालकर मजबूत बनाने लगे; कई अपने घोड़ोंको घुड़-शालाओंमेंसे निकाल, घोड़ोंको सिखानेके मैदानमें ले जा, उनको पाँच तरहकी गतियोंसे चला, रणके योग्य बना उनका श्रम दूर करने लगे। कई, मानों प्रभुकी तेजोमय मूर्ति हों ऐसे, अपने खड्ग वगैरा आयुधोंको सान पर चढ़ा. तीक्ष्ण बनाने लगे। कई अच्छे सींग लगा नवीन ताँत बाँध यमराजकी भृकुटीके समान अपने धनुषोंको तैयार करने लगे। कई प्रयाणके समय स्वर निकालते रहनेसे, मानों प्राणवाले बाजे हों ऐसे, जंगली ऊँटोंको कवच वगैरा उठाकर लेजानेके लिए लाते थे। तार्किक पुरुष जैसे सिद्धांतको दृढ़ करते हैं ऐसे, कई अपने बाणोंको, कई बाणोंके माथोंको, कई शिरस्त्राणों (खोदों या टोपों) को और कई कवचोंको, (वे मजबूत थे तो भी) विशेष मजबूत बनाते थे। और कई गंधर्वोंके भवन हों ऐसे, खड़े हुए तंबुओं और कनातोंको चौड़े कर देखने लगे थे। मानों एक दूसरेकी स्पर्द्धा करते हों ऐसे, बाहुबली राजामें भक्ति रखनेवाले उस देशके लोग इस तरह युद्धके लिए तैयार होते थे। राजभक्तिकी इच्छा रखनेवाला कोई आदमी लड़ाईमें जानेके लिए तैयार होता था, उसके किसी कुटुंबीने आकर उसे रोका इससे वह कुटुंबीपर इस तरह नाखुश हुआ, मानों वह उसका कोई नहीं है। अनुरागवश अपने प्राण देकर भी राजाका भला करनेकी इच्छा रखनेवाले, लोगोंका यह उद्योग रस्तेसे गुजरनेवाले सुवेगने देखा। युद्धकी बातें सुनकर, लोगोंमें चलती तैयारी देखकर, बाहुबलीमें पूर्ण भक्ति रखनेवाले कई पर्वतोंके राजा भी बाहुबलीके पास जाने लगे। गवालका शब्द सुनकर जैसे गाएँ दौड़ आती हैं ऐसेही, उन

राजाओंके बजाए हुए शृंगीकी आवाज सुनकर हजारों किरात निकुंजोंमेंसे निकल निकलकर जाने लगे। इन शूर-वीर किरातोंमेंसे कई बाघोंकी पूँछोंकी चमड़ियोंसे,कई मोरपंखोंसे और कई लताओंसे शीघ्रताके साथ अपने केश बाँधने लगे। कई साँपोंकी चमड़ियोंसे, कई वृक्षोंकी छालोंसे और कई गायोंकी त्वचाओंसे,अपने शरीरपर लपेटे हुए मृगचर्मोंको बाँधने लगे। बंदरोंकी तरह कूदते हुए वे अपने हाथोंमें पत्थर और धनुष लेकर स्वामीभक्त श्वानकी तरह अपने स्वामीके आसपास आकर खड़े होने लगे। वे आपसमें कह रहे थे, कि हम भरतकी संपूर्ण सेनाका नाश कर अपने महाराज बाहुबलीकी कृपाका बदला चुकाएँगे।
(१७५–१६३)

इस तरहका उनका सकोप प्रारंभ देखकर, सुवेग विवेकबुद्धिसे मनमें सोचने लगा, "अहो ! ये बाहुबलीके वशमें रहे हुए उनके देशके लोग, ऐसी शीघ्रतासे लड़ाईकी तैयारियाँ कर रहे हैं, मानों उनके पिताका वैर लेना है। बाहुबलीकी सेनाके पहले, लड़ाईकी इच्छा रखनेवाले ये किरात लोग भी,इस तरफ आनेवाली हमारी सेनाका नाश करनेके लिए उत्साहित हो रहे हैं। यहाँ मुझे एक भी ऐसा आदमी दिखाई नहीं देता जो लड़नेको तैयार न हो; और एक भी ऐसा नहीं दिखता जो बाहुबलीकी भक्ति न रखता हो। इस देशमें हल पकड़नेवाले किसान भी वीर और स्वामीभक्त हैं। यह इस भूमिका प्रभाव है या बाहुबलीके गुणका ? सामंत और प्यादे वगैरा तो खरीदे जा सकते हैं; मगर यह जमीन तो बाहुबलीके गुणोंसे खिंचकर, उसकी पत्नीसी हो गई है। मुझे ऐसा लगता है कि, बाहुबली-

की सेनाके सामने चक्रीकी सेना, आगके सामने घासकी गंजीके समान है; बाहुबलीकी सेनाके सामने चक्रीकी सेना तुच्छ है; इन महावीर बाहुबलीके सामने चक्रवर्ती ऐसे जान पड़ते हैं, मानों अष्टापदके सामने हाथीका बच्चा; यद्यपि भूमिमें चक्रवर्ती और स्वर्गमें इंद्र बलवान माने जाते हैं; मगर मुझे तो भगवान ऋषभदेवजीका यह छोटा पुत्र बाहुबली दोनोंका अंतरवर्ती या दोनोंसे ऊर्ध्ववर्ती-अधिक मालूम होता है; बाहुबलीके एक तमाचेके सामने चक्रीका चक्र और इंद्रका वज्र निष्फल हैं। इस बाहुबलीसे विरोध करना मानों रीछको कानसे या सर्पको मुट्ठीमें पकड़ना है। बाघ जैसे एक मृगको पकड़कर संतुष्ट रहता है वैसेही, इतनेसे भूमिभागको लेकर संतोषसे बैठे हुए बाहुबलीको, अपमान करके, व्यर्थही शत्रु बनाया गया है। अनेक राजाओंकी सेवाओंसे संतुष्ट न होकर बाहुबलीको, सेवाके लिए बुलाना, मानों केसरीसिंहको सवारीके लिए बुलाना है। स्वामीके हितकी इच्छा रखनेवाले मंत्रियोंको और साथही मुझे भी धिक्कार है कि, हमने शत्रुकी तरह आचरण किया। लोग मेरे लिए कहेंगे कि, सुवेगने जाकर बाहुबलीसे लड़ाई कराई। अहो! गुणको दूषित करनेवाले इस दूत-कर्मको धिक्कार है!" रस्तेमें इस तरहके विचार करता हुआ सुवेग कई दिनोंके बाद अयोध्या आ पहुँचा। दरबान उसे सभामें ले गया। वह प्रणाम कर हाथ जोड़ सभामें बैठा, तब चक्रवर्तीने आदरके सहित उससे पूछा,- (१६४-२१०)

"हे सुवेग! मेरे छोटे भाई बाहुबली सकुशल तो हैं? तुम जल्दी आए इसलिए मुझे क्षोभ हो रहा है? या बाहुबलीने

तुम्हारा अपमान किया है कि जिससे तुम जल्दी लौट आए हो ? मेरे बलवान भाईकी यह वीरवृत्ति दूषित होते हुए भी उसके योग्यही है।" (२११–२१२)

सुवेग बोला, "हे देव ! आपके समानही अतुल पराक्रम रखनेवाले बाहुबलीको हानि पहुँचानेकी शक्ति दैवमें भी नहीं है। वे आपके छोटे भाई हैं यह सोचकर मैंने पहले उनको स्वामीकी सेवाके लिए आनेके, हितकारी वचन, विनय सहित कहे। बादमें दवाकी तरह तीव्र मगर परिणाममें हितकारी ऐसे कठोर वचन कहे; मगर उन्होंने आपकी सेवा न मीठे वचनोंसे स्वीकार की और न कडुवे वचनोंसेही की। कारण,जब मनुष्यको सन्निपातका रोग हो जाता है तब कोई दवा उसको फायदा नहीं पहुँचाती। बलवान बाहुबालीको इतना घमंड है कि, वे तीन लोकको तिनकेके समान समझते हैं और सिंहकी तरह किसी-को अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं मानते। जब मैंने आपके सुषेण सेना-पतिका और आपका वर्णन किया तब "वे किस गिनतीमें हैं।" कहकर उन्होंने इसतरह नाक सिकोड़ी जैसे दुर्गंधसे सिकोड़ते हैं। जब मैंने बताया कि आपने छः खंड पृथ्वी जीती है तब, उसे पूरी तरहसे सुनते हुए अपने भुजदंडकी तरफ देखा और कहा, "हम पिताजीके दिए हुए राज्यसेही संतुष्ट होकर बैठे रहे, हमने दूसरी तरफ ध्यान नहीं दिया, इसीलिए भरत छः खंड पृथ्वी जीत सके हैं। सेवा करनेकी बात तो दूर रही उलटे वे तो आपको, निर्भय होकर, बाघनको दुहनेके लिए बुलाया जाता है ऐसे, आपको लड़ाईके लिए बुलाते हैं। आपके भाई ऐसे परा-क्रमी, मानी और महाभुज (बलवान) हैं कि वे गंधहस्तिकी

तरह असह्य हैं; किसी दूसरेकी वीरताको वे सह नहीं सकते हैं। उनकी सभामें इंद्रके सामानिक देवताओंकी तरहही, सामंत राजा भी महापराक्रमी हैं, इसलिए उनके अभिप्रायसे इनका अभिप्राय भिन्न नहीं है। उनके राजकुमार भी राजतेजके अत्यंत अभिमानी हैं। उनकी भुजाओंमें लड़ाईकी खुजली चल रही है, इसलिए मालूम होता है कि वे बाहुबलीसे भी दस गुने अधिक बलवान हैं। उनके अभिमानी मंत्री भी उन्हींके समान विचार रखते हैं। कहा है कि—

"यादृशो भवति स्वामी परिवारोऽपि तादृशः।"

[जैसे स्वामी होते हैं वैसाही उनका परिवार (कुटुंबी और सेवक वगैरा) भी होता है।] सती स्त्रियाँ जैसे परपुरुषको सहन नहीं करती हैं वैसेही, उनकी अनुरागी प्रजा भी यह नहीं जानती कि दुनियामें कोई दूसरा राजा भी है। कर देनेवाले, बेगार करनेवाले और देशके दूसरे सभी लोग भी अपने राजा की भलाईके लिए प्राण तक देनेकी इच्छा रखते हैं। सिंहोंकी तरह वनोंमें और पर्वतोंमें रहनेवाले वीर भी उनके वशमें हैं और चाहते हैं कि उनके राजाका मान किसी तरह कम न हो। हे स्वामी! अधिक क्या कहूँ वे महावीर दर्शनकी इच्छासे नहीं मगर लड़ाईकी इच्छासे आपको देखना चाहते हैं। अब आप जैसा चाहें वैसा करें। कारण दूतलोग मंत्री नहीं होते वे सिर्फ सत्य संदेश पहुँचानेके लिएही होते हैं। (२१३-२३०)

ये बातें सुन भरत राजा, सूत्रधार (नट) की तरह एकही समयमें, अचरज, कोप, क्षमा और हर्षका अभिनय कर, बोले, "मैंने बचपनमें खेलते समय यह अनुभव किया है कि बाहुबली

के समान जगतमें सुर, असुर या नर कोई नहीं है। तीन लोकके नाथका पुत्र और मेरा छोटा भाई बाहुबली तीनलोकको तिनकेके समान समझता है। यह उसकी (झूठी) तारीफ नहीं सत्य बात है। ऐसे छोटे भाईके कारण मैं भी प्रशंसा पाने योग्य हूँ; कारण एक हाथ छोटा हो और दूसरा बड़ा हो तो वे नहीं शोभते। यदि सिंह बंधनको स्वीकार करे और अष्टापद वशमें हो जाए तो बाहुबली भी वशमें आ जाए; अगर ये वशमें आजाएँ तो फिर कमी किस बातकी रहे? उसके अविनयको मैं सहन करूँगा। ऐसा करनेसे शायद लोग मुझे कमजोर कहेंगे तो भले कहें। सभी चीजें पुरुपार्थसे या धनसे मिल सकती हैं; मगर भाई और खास करके ऐसा भाई किसी तरहसे भी नहीं मिल सकता। हे मंत्रियो! ऐसा करना मेरे लिए योग्य है या नहीं? तुम वैरागीकी तरह क्यों मौन धारे हो? जो यथार्थ बात हो सो कहो।" (२३१-२३८)

बाहुबलीके अविनयकी और अपने स्वामीकी ऐसी क्षमाकी बातें सुनकर, मानों वह प्रहारसे दुखी हुआ हो ऐसे, सेनापति सुषेण बोला, "ऋषभस्वामीके पुत्र भरतराजाके लिए क्षमा करना योग्य है; मगर वह करुणाके पात्र आदमीको करना योग्य है। जो जिसके गाँवमें रहता है वह उसके वशमें रहता है; मगर बाहुबली एक देशका राज्य करते हुए भी वचनसे भी आपके वशमें नहीं है। प्राणोंका नाश करनेवाला होते हुए भी प्रतापको बढ़ानेवाला दुशमन अच्छा; मगर अपने भाईके प्रतापका नाश करनेवाला भाई भी बुरा। राजा भंडार, सेना, मित्र, पुत्र और शरीरसे भी (यानी इनका बलिदान करके भी) अपने

तेजकी रक्षा करते हैं। कारण, तेजही उनका जीवन होता है। आपके लिए अपना राज्य क्या कम था कि, आपने छ:खंड पृथ्वीको जीता ? यह सिर्फ तेजके लिए था। जिस तरह एक बार शील रहित बनी हुई सती भी असतिही कहलाती है, इसी तरह एक जगह नाश पाया हुआ तेज सभी जगह नष्ट हुआ ही समझा जाता है। गृहस्थोंमें द्रव्य सभी भाइयोंको समान दिया जाता है; मगर तेजको ग्रहण करनेवाले भाईकी दूसरे भाई कभी उपेक्षा नहीं करते। सारे भरतखंडको जीतनेके बाद यहाँ आपका पराजय होना, समुद्रको पार करके गड्ढेमें डूबनेके समान होगा। कहीं यह सुना या देखा गया है कि, कोई राजा चक्रवर्तीका प्रतिस्पर्द्धी होकर राज्य करता है ? हे प्रभो ! अविनयीके लिए भ्रातृस्नेहका संबंध रखना एक हाथसे ताली बजाना है। वेश्याओंके समान स्नेहरहित बाहुबली पर भरत राजा स्नेह रखते हैं, यह बात कहनेसे आप हमें भले रोकें, मगर 'सब शत्रुओंको जीतनेके बादही मैं अंदर आऊँगा' इस निश्चयके साथ नगरके बाहर खड़े हुए चक्रको आप कैसे समझाएँगे ? भाईके बहाने शत्रुभावसे रहनेवाले बाहुबलीकी उपेक्षा करना किसी तरहसे भी उचित नहीं है। इस संबंधमें आप दूसरे मंत्रियोंसे भी पूछिए।" (२३९–२५२)

सुषेणकी बातें सुननेके बाद महाराजने दूसरे मंत्रियोंकी तरफ देखा; इससे वाचस्पतिके समान मुख्य मंत्री बोला, "सेनापतिने जो कुछ कहा है वह योग्य है और ऐसा कहनेका साहस किसी दूसरेमें कहाँ है ? जो पराक्रममें और प्रयत्नमें भीरु होते हैं वेही स्वामीके तेजकी उपेक्षा करते हैं। स्वामी अपने तेजके

लिए जब आज्ञा करते हैं तब अधिकारी प्रायः स्वार्थके अनुसार उत्तर देते हैं और व्यसनको बढ़ाते हैं; मगर सेनापति तो, पवन जैसे आगको बढ़ानेके लिए होता है वैसेही, आपका तेज बढ़ाने के लिएही हैं। हे स्वामी ! सेनापति, चक्ररत्नकी तरह, बचे हुए एक भी शत्रुको पराजित किए बगैर संतुष्ट नहीं होगा। इस-लिए अब देर न कीजिए। जैसे आपकी आज्ञासे हाथमें दंड लेकर सेनापति शत्रुका ताड़न करता है वैसेही, प्रयाण-भंभा (रवाना होनेका बाजा) बजवाइए। सुघोषा (देवताओंका एक बाजा) के बजनेसे जैसे देवता जमा हो जाते हैं वैसेही,भंभाकी आवाजसे वाहनों और परिवारोंके साथ सैनिक लोग जमा हों और सूर्यकी तरह, उत्तर दिशामें रही हुई तत्तशिलाकी तरफ आप, तेजकी वृद्धिके लिए प्रयाण करें। आप खुद जाकर भाई-का स्नेह देखिए और सुवेगके कहे हुए वचन सत्य हैं या मिथ्या इसकी जाँच कीजिए।" (२५३–२६१)

'ऐसाही हो।' कहकर भरतने मुख्य मंत्रीकी सलाह मान ली। कारण—

"युक्तं वचोऽपरस्यापि मन्यंते हि मनीषिणः।"

[बुद्धिमान लोग युक्ति-संगत पराएके वचनको भी मानते हैं।] फिर शुभ दिन और मुहूर्त देख, यात्रा-मंगल कर महाराज प्रयाणके लिए पर्वतके समान ऊँचे हाथीपर सवार हुए। मानों दूसरे राजाकी सेना हों ऐसे रथों, घोड़ों और हाथियोंपर सवार होकर हजारों सेवक विदाईके बाजे बजाने लगे। एक समान तालके शब्दसे संगीतकारोंकी तरह विदाईके बाजे सुनकर सारी फौज जमा हो गई। राजाओं, मंत्रियों, सामंतों और सेनापतियों

द्वारा घिरे हुए महाराजा, मानों अनेक मूर्तियोंवाले हों ऐसे, नगरसे बाहर निकले। एक हजार यक्षोंसे अधिष्ठित चक्ररत्न, मानों सेनापति हो ऐसे, सेनाके आगे चला। महाराजाके विदा होनेकी बातको सूचित करता हुआ धूलिका समूह उड़ उड़कर चारों तरफ फैल गया; ऐसा मालूम होता था कि वह शत्रुओं-का गुप्तचर-समूह है। उस समय लाखों हाथियोंके चलनेसे ऐसा मालूम होता था कि, हाथियोंको पैदा करनेवाली भूमिमें हाथी नहीं रहे हैं; और घोड़ों, रथों, खच्चरों और ऊँटोंके समूहसे मालूम होता था कि पृथ्वीपर अब कहीं वाहन नहीं रहे हैं। समुद्र देखनेवालेको जैसे सारा जगत जलमय मालूम होता है, ऐसेही, प्यादोंकी सेना देखकर सारी पृथ्वी मनुष्यमय मालूम होती थी। रस्ते चलते हुए महाराज हरेक शहरमें, हरेक गाँवमें और हरेक रस्तेपर लोगोंमें होती हुई इस तरहकी बातचीत सुनने लगे। इन राजाने एक क्षेत्र (प्रदेश) की तरह सारे भरतक्षेत्रको जीता है; और मुनि जैसे चौदह पूर्व प्राप्त करते हैं, ऐसेही इन्होंने चौदह रत्न पाए हैं। आयुधोंकी तरह नव निधियाँ इनके वश हुई हैं। इतना होनेपर भी महाराज किस तरफ और क्यों जाते हैं? शायद अपना देश देखनेको जा रहे हैं; मगर शत्रुओंको जीतनेका कारणरूप चक्ररत्न इनके आगे आगे क्यों चल रहा है? मगर दिशा देखनेसे तो अनुमान होता है कि वे बाहुबली पर चढ़ाई करने जा रहे हैं। ठीकही कहा गया है कि—

"अहो अखंडप्रसराः कषाया महतामपि।"

[अहो! महान पुरुषोंमें भी महान वेगवान कषाएँ होतीहैं।]

सुना जाता है, कि बाहुबली देवताओं और असुरोंके लिए भी

अजेय है। इससे जान पड़ता है कि उसको जीतनेकी इच्छा करनेवाले ये राजा अँगुलीसे मेरुको धारण करनेकी इच्छा रखते हैं। इस काममें-छोटे भाई बड़े भाईको जीतेंगे तो भी और बड़े छोटेको जीतेंगे तो भी-दोनों तरहसे महाराजाकाही महान अपयश होगा।" (२६२-२७८)

सेनासे उड़ती हुई धूलिके पूरसे; मानों विंध्यपर्वत बढ़ रहा हो ऐसे, चारों तरफ अंधकारको फैलाते, घोड़ोंके हिनहिनाने, हाथियोंके चिंघाड़ने, रथोंकी चीं चीं और प्यादोंके खम ठोकने-इस तरह चार तरहकी सेनाके शब्दोंसे, आनक नामके बाजेकी तरह दिशाओंको गुँजाते, गरमीके मौसमके सूरजकी तरह रस्तेकी सरिताओंको सुखाते, जोरकी हवाकी तरह रस्तेके वृक्षोंको गिराते, सेनाकी ध्वजाओंके वस्त्रोंसे आकाशको बकमय बनाते, सेनाके भारसे तकलीफ पाती हुई पृथ्वीको हाथियोंके मदसे शांत करते और हर रोज चक्रके अनुसार चलते महाराज, सूर्य जैसे दूसरी राशिमें जाता है ऐसेही, बहली देशमें पहुँचे और देशकी सीमापर छावनी डाल समुद्रकी तरह मर्यादा बना वहाँ रहे। (२७९-२८४)

उस समय सुनंदाके पुत्र बाहुबलीने, राजनीतिरूपी घरके खंभेके समान जासूसोंसे चक्रीका आगमन जाना। इसलिए उसने भी रवाना होनेकी भंभा बजवाई; उसकी आवाज मानों स्वर्गको भंभा-ध्वनिरूप बनाती हो ऐसी मालूम हुई। प्रस्थान-मंगल करके वह मूर्तिमान कल्याण हो ऐसे भद्र गजेंद्रपर उत्साहकी तरह सवार हुआ। बड़े बलवान, बड़े उत्साही, समान काम-

में लगनेवाले, दूसरोंसे अभेद्य मानों उसीके (बाहुबलीके) अंश हों ऐसे राजकुमारों, प्रधानों और वीर पुरुषोंसे घिरा हुआ बाहुबली देवताओंसे घिरे हुए इंद्रके समान सुशोभित हुआ। मानों उसके मनमें बसे हुए हों ऐसे, कई हाथियोंपर सवार हो, कई घोड़ोंपर सवार हो, कई रथोंमें बैठ और कई पैदल-ऐसे लाखों योद्धा तत्काल एक साथ बाहर निकले। अपने बढ़िया हथियारों से कैसे बलवान वीर पुरुषोंसे मानों एक वीरमय पृथ्वी बनाते हों ऐसे, अचल निश्चयवाले बाहुबली रवाना हुए। हरेक चाहता था कि जीतमें कोई दूसरा हिस्सेदार न हो इसलिए उसके वीर सुभट आपसमें कहने लगे, "मैं अकेला हूँ तो भी सब शत्रुओंको जीत लूँगा।" रोहणाचलके सभी कंकर मणियाँ होते हैं ऐसेही, सेनामें रणके बाजे बजानेवाले भी अभिमानी वीर थे। चंद्रके समान कांतिवाले उसके मांडलिक राजाओंसे छत्रोंसे आकाश, श्वेत कमलवाला हो ऐसा दिखाई देने लगा। हरेक पराक्रमी राजाको देखते और उन्हें अपनी भुजाएँ मानते वे आगे बढ़े। मार्गमें चलते हुए बाहुबली मानों सेनाके भारसे पृथ्वीको और जीतके बाजोंके शब्दोंसे आकाशको फोड़ने लगे। उनके देशकी सीमा दूर थी, तो भी वे तत्कालही वहाँ आ पहुँचे। कारण—

"वायुतोऽपि भृशायंते समरोत्कंठिताः खलु।"

[युद्धके लिए उत्सुक (वीर पुरुष) वायुसे भी अधिक वेगवान होते हैं।] बाहुबलीने जाकर गंगाके तटपर ऐसी जगह छावनी डाली जो भरतकी छावनीसे बहुत दूर भी नहीं थी और बहुत पास भी नहीं थी। (९७९–९८८)

सवेरेही (दोनों नरफके) चारणभाटोंने अतिथिकी तरह

उन दोनों ऋषभ कुमारोंको, युद्धोत्सवके लिए आपसमें आमंत्रण दिया। रातको बाहुबलीने सभी राजाओंकी सलाहसे, अपने सिंहके समान बलवान पुत्र सिंहरथको सेनापति बनाया, और मस्त हाथीकी तरह उसके मस्तकपर मानों प्रकाशमान प्रताप हो ऐसा देदीप्यमान सोनेका एक रणपट्ट आरोपण किया। वह राजाको प्रणाम कर, रणका उपदेश पा, मानों पृथ्वी मिली हो ऐसे खुश खुश अपने डेरे पर गया। महाराज बाहुबलीने दूसरे राजाओंको भी युद्धके लिए आज्ञा दे विदा किया। वे खुदही लड़ाईकी इच्छा रखते थे तो भी, उन्होंने स्वामीकी आज्ञाको सत्काररूप माना। (२९९-३०४)

उस तरफ भरत महाराजने भी रातहीको राजकुमारों, राजाओं और सामंतोंके मतसे श्रेष्ठ आचार्यकी तरह सुषेणको रणदीक्षा दी, यानी सेनापति बनाया। सिद्धि-मंत्रकी तरह स्वामीकी आज्ञा स्वीकार कर चकवेकी तरह सवेरेकी राह देखता हुआ सुषेण अपने डेरेपर गया। कुमारोंको, मुकुटधारी राजाओं-को और सभी सामंतोंको बुलाकर भरत राजाने आज्ञा दी, "शूर-वीरो ! मेरे छोटे भाईके साथ होनेवाली लड़ाईमें, सावधानीके साथ मेरी मानते हो वैसीही सुषेण सेनापतिकी भी आज्ञा मानना। हे पराक्रमी वीरो ! जैसे महावत हाथियोंको वशमें करते हैं वैसे-ही तुमने अनेक पराक्रमी और दुर्मद राजाओंको वशमें किया है और वैताढ्यपर्वतको लांघकर, जैसे देव असुरोंको जीतते हैं ऐसेही, दुर्जय किरातोंको तुमने अपने पराक्रमसे अच्छी तरह हराया है; मगर उनमेंसे एक भी ऐसा नहीं था जो तक्षशिलाके राजा बाहुबलीके प्यादेकी भी समानता कर सकता। बाहुबली-

का बड़ा पुत्र सोमयशा अकेलाही, सारी सेनाको दशों दिशाओं-में उड़ा देनेमें इस तरह समर्थ है जैसे हवा रूईको उड़ा देनेमें समर्थ होती है। इसका कनिष्ट (छोटा) भाई सिंहरथ उम्रमें छोटा है मगर पराक्रममें अकनिष्ट (श्रेष्ठ) है। वह शत्रुओंकी सेनामें दावानलके समान है। अधिक क्या कहा जाए उसके दूसरे पुत्रों और पौत्रोंमेंका हरेक एक एक अक्षौहिणी सेनामें मलके समान और यमराजके दिलमें भी भय पैदा करनेवाला है। उस-के स्वामीभक्त सामंत मानों उसके प्रतिबिंब हों ऐसे बलमें उस-की समानता करनेवाले हैं। दूसरोंकी सेनाओंमें जैसे एक अग्रणी महाबलवान होता है मगर उसकी सेनामें सभी महाबलवान हैं। लड़ाईमें महाबाहु बाहुबली तो दूर रहा उसका एक सेना-व्यूह भी अभेद्य होता है। इसलिए वर्षा ऋतुके मेघके साथ जैसे पूर्व दिशाकी हवा चलती है ऐसेही युद्धके लिए जाते हुए सुषेण-के साथ तुम भी जाओ।" (३०५-३१७)

अपने स्वामीकी अमृतके समान बातोंसे, मानों भर गए हों ऐसे उनके शरीर पुलकावलीसे व्याप्त हो गए; अर्थात उन सबके शरीर रोमांचित हो आए। महाराजाने उनको विदा किया। वे सभी इस तरह अपने अपने डेरोंपर गए मानों वे विरोधी वीरोंकी जयलक्ष्मीको जीतनेके लिए स्वयंवर-मंडपमें जा रहे हों। दोनों ऋषभपुत्रोंके कृपाके ऋणरूपी समुद्रको तैरनेकी, यानी कृपाका जो ऋण है उसको चुकानेकी, इच्छा रखनेवाले दोनों तरफके वीर श्रेष्ठ युद्धके लिए तैयार हुए। वे अपने कृपाण, धनुष, भाथा, गदा और शक्ति वगैरा आयुधोंको देवताओंकी तरह पूजने लगे। उत्साहसे नाचते हुए अपने चित्तके साथ ताल

वे रहे हों ऐसे, वे महावीर आयुधोंके सामने जोर जोरसे बाजे बजाने लगे। फिर मानों अपना निर्मल यश हो ऐसा नया और सुगंधित उपटन अपने शरीरपर मलने लगे। सर पर बाँधे हुए वीरपट्टके जैसीही कस्तूरीकी ललाटिका (बिंदु) अपने अपने मस्तकों पर करने लगे। दोनों दलोंमें लड़ाईकीही बातें हो रही थीं इसलिए शस्त्र संबंधी जागरण करनेवाले वीर भटोंको, मानों डर गई हो ऐसे, नींद आई ही नहीं। सवेरेही होनेवाले युद्धमें वीरता दिखानेका उत्साह रखनेवाले वीर सुभटोंको वह तीन-पहरकी रात सौ पहरवाली हो ऐसी मालूम हुई; उन्होंने जैसे-तैसे वह रात बिताई। (३१८-३२६)

सवेरेही मानों ऋषभपुत्रोंकी रणक्रीड़ाका कुतूहल देखना चाहता हो वैसे सूर्य उदयाचलके शिखरपर आरूढ़ हुआ। इससे दोनों सेनाओंमें (सवेरा हुआ जान) लड़ाईके बाजे जोर जोर-से बजने लगे। वह आवाज, मंदराचलसे क्षोभ पाए हुए समुद्र-के जलके समान यानी समुद्रकी गर्जनाके समान, प्रलयकालके समय होनेवाले पुष्करावर्त मेघकी गर्जनाके समान अथवा वज्र-के आघातसे पर्वतोंसे उठनेवाली आवाजके जैसी थी। लड़ाईके बाजोंकी फैलती हुई आवाजसे दिग्गजोंके हाथी घबराए और उनके कान खड़े हो गए; जलजंतु भयभ्रांत हो गए; समुद्र क्षुब्ध हो उठा, क्रूर प्राणी चारों तरफसे भाग कर गुफाओंमें घुसने लगे; बड़े बड़े सर्प बाँबियोंमें जाने लगे; पर्वत काँपे और उनके शिखर टूट टूटकर गिरने लगे, पृथ्वीको उठाने वाले कूर्मराज भयभीत होकर अपने कंठ और चरणोंको समेटने लगे, आकाश ध्वंस होने लगा और ऐसा जान पड़ने लगा मानों जमीन फटने

लग रही है। राजाके दरबानकी तरह, लड़ाईके बाजोंसे प्रेरित, दोनों तरफके सिपाही लड़ाईके लिए तैयार हो गए। लड़ाईकी उमंगसे शरीरमें उत्साहसे फूलने लगे, इससे कवचोंके तार टूटने लगे और वीर सिपाही उन्हें निकाल निकालकर नए कवच पहनने लगे; कई वीरोंने अपने घोड़ोंको बख्तर पहनाने लगे; कारण,—

"स्वतोपि अधिकां रक्षां भटाः कुर्वंति वाहने।"

[वीर पुरुष अपनेसे भी अधिक अपने वाहनोंकी रक्षा करते हैं।] कई अपने घोड़ोंकी परीक्षा करनेके लिए सवार होकर उनको चलाने लगे, कारण—

"दुःशिक्षितो जडश्चाश्वः शत्रवत्येव सादिनो।"

[दुःशिक्षित और जड़ घोड़े अपने सवारके लिए शत्रुके समान हो जाते हैं।] बख्तर पहननेके बाद हिनहिनानेवाले घोड़ोंकी कई सुभट देवकी तरह पूजा करने लगे। कारण—

"......युद्धे हेषा हि जयसूचिनी।"

[लड़ाईमें हेषा, यानी घोड़ोंका हिनहिनाना ही जयकी सूचना करनेवाली होती है।] किन्हींको बख्तर रहित घोड़े मिले इससे वे अपने कवच भी उतार उतारकर रखने लगे; क्योंकि पराक्रमी पुरुषोंका रणमें ऐसाही वीरव्रत होता है। कइयोंने अपने सारथियोंसे कहा, "समुद्रमें मछलीकी तरह, रणमें भ्रमण करते हुए ऐसी चतुराई बताना कि जिससे कहीं रुकना न पड़े।" मुसाफिर लोग रस्तेके लिए जैसे पूरा पाथेय लेकर चलते हैं वैसेही कई वीर, यह सोचकर कि लड़ाई बहुत समय तक

चलेगी, अपने रथोंको हथियारोंसे भरने लगे; कई दूरसेही पह-चाने जासकें इससे वे अपने चिह्नवाली ध्वजाओंके खंभोंको मजबूतीसे बाँधने लगे; कई अपने मजबूत धुरीवाले रथोंमें, शत्रुसेनारूपी समुद्रमें रस्ता बनानेके लिए, जलकांत रत्नके[1] समान, घोड़े जोड़ने लगे; कई अपने सारथियोंको मजबूत कवच देने लगे। कारण,—

"सरथ्या अपि हि रथा निःफलाः सारथिं विना।"

[घोड़े जुड़ा हुआ रथ भी सारथीके बिना बेकार होता है।] कई मजबूत लोहेके कंकणोंकी श्रेणीके संपर्कसे–यानी हाथियोंके दाँतोंमें लोहेकी चूड़ियाँ पहनाई जाती हैं इससे-कठोर बने हुए हाथियोंके दाँतोंको अपनी भुजाओंकी तरह पूजने लगे; कई मानों मिलनेवाली जयलक्ष्मीका निवास-स्थान हो इस तरहके, ध्वजाओंवाले होदे हाथियोंपर बाँधने लगे; कई सुभट, हाथीके गंडस्थलसे, तत्कालही निकले हुए मदसे, 'यह शकुन है' कहकर, कस्तूरीकी तरह तिलक करने लगे; कई दूसरे हाथियोंके मदकी गंधसे भरी हुई हवा भी सहन नहीं करनेवाले, मनके समान महान दुर्धर हाथियोंपर चढ़ने लगे; और सभी महावत मानों रणोत्सवके शृंगारवस्त्र हों ऐसे, सोनेके कंटक (कड़े) हाथियों-को पहनाने लगे; कइयोंने हाथियोंकी सूँड़ोंसे ऊँची नालवाली, और नीलकमलकी लीलाको धारण करनेवाली, यानी नील-कमलके समान दिखाई देनेवाली, लोहेकी मुद्गरें भी हाथियों-के (दाँतोंपर) बाँधीं और कई महावत काले लोहेके तीक्ष्ण (कीलों वाले) कोश (आच्छादन) हाथियोंके दाँतोंमें पहनाने

1—ऐसा रत्न जो हवाकी तरह पानीको हटाता है।

लगे, वे यमराजके दाँतोंसे जान पड़ते थे। (३२७–३४१)

उस समय राजाके अधिकारी आज्ञा देने लगे, "सेनाके पीछे हथियारोंसे भरी गाड़ियाँ और लदे ऊँट शीघ्र लेजाओ, अन्यथा बड़ी तेजीसे हथियार चलानेवाले वीरोंके पास हथियार नहीं रहेंगे; कवचों (बख्तरों) से लदे हुए ऊँट भी लेजाओ; कारण लगातार युद्ध करते रहनेवाले सुभटोंके पहलेसे पहने हुए कवच टूट जाएँगे, रथी पुरुषोंके पीछे दूसरे तैयार रथ ले जाओ; कारण शस्त्रोंसे रथ इसी तरह टूट जाएँगे जैसे पर्वतसे रथ टूट जाते हैं। पहलेके घोड़े थक जाएँ तो सवार दूसरे घोड़ोंपर सवार होकर युद्ध चालू रख सकें, इसके लिए सैकड़ों घोड़े सवारोंके पीछे लेजानेके लिए तैयार करो। हरेक मुकुटबंध राजाके पीछे जानेके लिए हाथी तैयार रखो; कारण एक हाथीसे, लड़ाईमें उनका काम नहीं चलेगा। सिपाहियोंके पीछे पानी लेजानेवाले भैंसे तैयार रखो; कारण लड़ाईके श्रमरूपी ग्रीष्म ऋतुसे तपकर घबराए हुए वीरोंके लिए वे प्याउओंका काम देंगे; औषधिपति चंद्रमाके भंडार जैसी और हिमगिरिके सार जैसी नाना व्रणसंरोहिणी (घाव मिटानेवाली) दवाइयोंकी बोरियाँ उठवाओ।"

इस तरहके उनके कोलाहलसे लड़ाईके बाजोंके शब्दरूपी महासमुद्रमें ज्वार आगया। उस समय सारी दुनिया, चारों तरफ होनेवाली ऊँची आवाजोंसे मानों शब्दमय हो ऐसी और चमकते हुए हथियारोंसे मानों लोहमय हो ऐसी, मालूम होने लगी। मानों नित्र आँखोंसे देखा हो इस तरह प्राचीन पुरुषोंके चरित्रोंका स्मरण करनेवाले व्यासकी तरह रणनिर्वाहका यानी

अच्छी तरह लड़ाई करनेका फल बतानेवाले, और नारद ऋषि-की तरह वीर सुभटोंको उत्साहित करनेके लिए, मुकाबिलेमें आए हुए शत्रु-वीरोंकी आदर सहित तारीफ करनेवाले, चारण भाट हरेक हाथी, हरेक रथ और हरेक घोड़ेके पास पर्व दिनकी तरह जाने और उच्च स्वरमें प्रशंसाके गीत ऊँचे सुरमें गाते रणमें निर्भय होकर फिरने लगे। (३५२–३६३)

इधर राजा बाहुबली स्नान करके देवपूजा करनेके लिए देवालयमें गया। कारण—

"..........गरीयांसः कार्ये मुह्यन्ति न क्वचित् ।"

[महापुरुष कभी भी (कोई विशेष काम आनेपर) घबराते नहीं हैं। (अपना दैनिक आवश्यक धर्म क्रिया वगैरा करते-ही रहते हैं।)] देवमंदिरमें जाकर, जन्माभिषेकके समय इंद्र जैसे स्नान कराता है वैसे, उसने ऋषभस्वामीकी प्रतिमाको सुगंधित जलसे स्नान कराया। फिर कषाय रहित और परम श्राद्ध (श्रावक) बाहुबलीने, दिव्य गंधवाले काषाय वस्त्रसे, मन-की तरह श्रद्धा सहित, उस प्रतिमाको मार्जन किया (पोंछा); दिव्य वस्त्रमय चोलक (कवच) की रचना करता हो ऐसे यक्ष-कर्दमका लेप किया और सुगंधसे देववृक्षके फूलोंकी मालाकी सहोदरा (सगी बहन) हो ऐसी, विचित्र फूलोंकी मालासे प्रभु-की पूजा की। सोनेकी धूपदानीमें उसने दिव्य धूप किया। उस-के धुँएसे ऐसा मालूम हुआ मानों वह कमलमय पूजा कर रहा है। फिर उसने, मकरराशिमें सूर्य आया हो ऐसे, उत्तरीय वस्त्र कर, प्रकाशमान आरतीको, प्रतापकी तरह लेकर, प्रभुकी आरती उतारी। अंतमें हाथ जोड़, आदीश्वर भगवानको प्रणाम कर,

उसने भक्तिपूर्वक इस तरह स्तुति करना आरंभ किया,—
(२६४-२७०)

"हे सर्वज्ञ! मैं अपने अज्ञानको दूर कर आपकी स्तुति करता हूँ; कारण आपकी दुर्वार भक्ति मुझे वाचाल बनाती है। हे आदि तीर्थेश! आपकी जय हो! आपके चरणोंके नखोंकी कांति, संसाररूपी शत्रुसे दुखी प्राणियोंके लिए वज्रके पिंजरेके समान होती है। हे देव! आपके चरणकमलोंको देखनेके लिए राजहंसकी तरह, जो प्राणी दूरसे भी आते हैं वे धन्य हैं। सरदीसे घबराए हुए जीव जैसे सूरजकी शरणमें जाते हैं वैसेही इस भयंकर संसारके दुःखसे पीड़ित विवेकी पुरुष सदा एक आपहीकी शरणमें आते हैं। हे भगवान! जो अपने अनिमेष नेत्रोंसे हर्ष सहित आपको देखते हैं उनके लिए परलोकमें अनिमेषपन (देव होना) दुर्लभ नहीं है। हे देव! जैसे काजलसे लगी हुई रेशमी वस्त्रकी मलिनता दूधसे धोनेसे मिटती है वैसेही जीवोंका कर्ममल आपके देशनारूपी जलसे जाता है। हे स्वामी! सदा 'ऋषभदेव' इस नामका जप किया जाता है तो वह जप सभी सिद्धियोंको आकर्षण करनेवाले मंत्रके समान होता है। हे प्रभो! जो आपका भक्तिरूपी कवच धारण कर लेता है उस मनुष्यको न वज्र भेद सकता है न त्रिशूलही छेद सकता है।"
(२७१-२७९)

ऐसे भगवानकी स्तुति कर; पुलकित शरीरसे प्रभुको नमस्कार कर वह नृपशिरोमणि देवगृहसे बाहर आया। (२८०)

फिर उसने, सोने-माणिक्यसे मढ़ा हुआ वज्रका कवच धारण किया; वह विजयलक्ष्मीको ब्याहनेके लिए धारण किए

हुए कंचुकके समान मालूम होता था। वह देदीप्यमान कवचसे ऐसा शोभता था जैसे घनविद्रुम (सघन प्रवालोंसे) समुद्र शोभता है। फिर उसने, पर्वतके शिखरपर बादलोंके मंडलकी तरह शोभनेवाला, शिरस्त्राण धारण किया; बड़े बड़े लोहेके बाणोंसे भरे हुए दो भाथे उसने पीठपर बाँधे, वे ऐसे जान पड़ते थे मानों सर्पोंसे भरे पातालविवर (बड़ी बड़ी बाँबियाँ) हैं; और उसने अपने बाएँ हाथमें धनुष धारण किया, वह ऐसा जान पड़ता था मानों प्रलयकालके समय उठाया हुआ यमराजका दंड है। इस तरहसे तैयार बाहुबली राजाको, स्वस्तिवाचक पुरुष "आपका कल्याण हो" ऐसा आशीर्वाद देने लगे; गोत्रकी बूढ़ी स्त्रियाँ "जीओ! जीओ" कहने लगीं; बूढ़े कुटुंबी लोग कहने लगे, "खुश रहो! खुश रहो!" और चारण-भाट "चिरजीवी हो! चिरजीवी हो!" ऐसे ऊँचे स्वरसे पुकारने लगे। ऐसे सबकी शुभ कामनाके शब्द सुनता हुआ महाभुज बाहुबली, आरोहकके (सवार करानेवालेके) हाथका सहारा लेकर इस तरह हाथीपर चढ़ा जैसे स्वर्गपति मेरुपर्वत पर चढ़ता है।

(३८१–३८८)

इस तरफ पुण्यबुद्धि भरत राजा भी शुभ लक्ष्मीके भांडारके समान अपने देवालयमें गया। वहाँ महामना भरत राजाने आदिनाथकी प्रतिमाको, दिग्विजयके समय लाए हुए पद्मद्रहादि तीर्थोंके जलसे स्नान कराया। उत्तम कारीगर जैसे मणिका मार्जन करता है वैसे देवदूष्य वस्त्रसे उसने उस अप्रतिम प्रतिमाका मार्जन किया; अपने निर्मल यशसे पृथ्वीकी तरह, हिमाचल कुमार वगैरा देवोंके दिए हुए गोशीर्षचंदनसे उस प्रतिमा-

पर लेप किया, लक्ष्मीके घरके समान खिले हुए कमलोंसे उसने पूजामें नेत्रस्तंभनकी औषधिरूप आँगी रची; धूम्रवल्लीसे, मानों कस्तूरीकी पत्रावली चित्रित करते हों ऐसे, प्रतिमाके सामने उसने धूप किया, मानों सभी कर्मरूपी समिधाका, बड़ा अग्निकुंड हो ऐसे जलते हुए दीपकोंकी आरती उठाकर प्रभुकी आरती की और हाथ जोड़, नमस्कार कर, अंजलि सरपर रख इस तरह स्तुति की,— (३८६-३९६)

"हे जगन्नाथ ! मैं अज्ञान हूँ तो भी मैं अपनेको युक्त (योग्य) मानकर आपकी स्तुति करता हूँ। कारण,—

"लब्धा अपि हि बालानां युक्ता एव गिरो गुरौ ।"

[बालकोंकी नहीं समझमें आनेवाली वाणी भी गुरुजनोंके सामने योग्यही होती है।] हे देव ! जैसे सिद्धरसके छूनेसे लोहा सोना हो जाता है ऐसेही आपका आश्रय लेनेवाला प्राणी भारी कर्मोंवाला होनेपर भी सिद्ध हो जाता है। हे स्वामी ! वे प्राणीही धन्य हैं और अपने मन, वचन और कायका फल पाते हैं जो आपका ध्यान करते हैं, आपकी स्तुति करते हैं और आपकी पूजा करते हैं। हे प्रभो ! पृथ्वीमें विहार करते समय जमीनपर पड़ी हुई आपकी चरणरज पुरुषोंके पापरूपी वृक्षोंको उखाड़नेमें हाथीके समान आचरण करती है। हे नाथ ! स्वाभाविक मोहसे जन्मांध बनेहुए सांसारिक प्राणियोंको विवेकरूपी दृष्टि देनेमें एक आपही समर्थ हैं। जैसे मनके लिए मेरुपर्वत दूर नहीं है, वैसेही आपके चरणकमलोंमें, भौंरेकी तरह, रहनेवाले लोगोंके लिए मोक्ष दूर नहीं है। हे देव ! जैसे मेघके जलसे जामुन वृक्षके फल गिर जाते हैं ऐसेही, आपकी देशना-

रूपी वाणीसे प्राणियोंके कर्मरूप बंधन गिर जाते हैं। हे जगन्नाथ! मैं बार बार प्रणाम करके आपसे इतनीही याचना करता हूँ कि आपकी कृपासे, समुद्रके जलकी तरह आपकी भक्ति सदा मेरे हृदयमें कायम रहे।" इस तरह आदिनाथकी स्तुति की और तब उन्हें भक्ति सहित प्रणाम करके चक्रवर्ती देवगृहसे बाहर निकला। (३९७-४०५)

फिर बार बार साफ करके उज्ज्वल बनाया हुआ कवच चक्रीने अपने उत्साहित शरीरमें पहना। शरीरपर दिव्य और मणिमय कवच धारण करनेसे भरत ऐसा शोभने लगा जैसे माणिक्यकी पूजासे देवप्रतिमा शोभती है। बीचमेंसे ऊँचा और छत्रकी तरहका गोल स्वर्ण-रत्नका शिरस्त्राण उसने धारण किया; वह दूसरे मुकुटसा मालूम होता था। सर्पके समान अत्यंत तेज बाणोंसे भरे हुए दो भाथे उन्होंने अपनी पीठपर बाँधे और इंद्र जैसे ऋजुरोहित धनुष ग्रहण करता है, ऐसे उन्होंने शत्रुओंके लिए विषम ऐसे कालपृष्ठ धनुषको अपने बाएँ हाथमें लिया। फिर सूरजकी तरह दूसरे तेजस्वियोंके तेजको ग्रास करनेवाले, भद्र गजेंद्रकी तरह लीलासे कदम रखनेवाले, सिंहकी तरह शत्रुओंको तिनकेके समान गिननेवाले, सर्पकी तरह दुःसह दृष्टिसे भयभीत बनानेवाले और इंद्रकी तरह चारणरूपी देवोंने जिनकी स्तुति की है ऐसे, भरत राजा निस्तंद्र (ताजा दम) गजेंद्रपर सवार हुए। (४०६-४१३)

कल्पवृक्षकी तरह याचकोंको दान देते, हजार आँखोंवाले इंद्रकी तरह चारों तरफसे आई हुई अपनी सेनाको देखते, राजहंस कमलनालको ग्रहण करता है ऐसे एक एक बाण लेते,

विलासी रतिवार्ता करता है ऐसे लड़ाईकी बातें करते, आकाश-में आए हुए सूर्यके समान बड़े उत्साह और पराक्रमवाले दोनों ऋषभपुत्र अपनी अपनी सेनाके बीचमें आए। उस समय अपनी अपनी सेनाके बीचमें स्थित भरत और बाहुबली जंबूद्वीपके बीचमें स्थित मेरुपर्वतकी शोभाको धारण करते थे। उन दोनों सेनाओंके बीचकी जमीन, निषध और नीलवंत पर्वतके बीचमें आए हुए महाविदेह क्षेत्रकी जमीनके जैसी मालूम होती थी। कल्पांतकालके समयमें जैसे पूर्व और पश्चिम समुद्र आमने सामने बढ़ते हैं वैसेही, दोनों तरफकी सेनाएँ पंक्तिबद्ध होकर आमने-सामने चलने लगीं। सेतुबंध जैसे जलके प्रवाहको इधर उधर जाते रोकता है वैसेही, द्वारपाल पंक्तिसे बाहर निकलकर इधर उधर जाते हुए सैनिकोंको रोकते थे। तालके द्वारा संगीत-में एक ही तालपर गानेवालोंकी सभी सुभट राजाकी आज्ञासे एकसे पैर रखकर चलते थे। वे शूरवीर अपने स्थानका उल्लंघन किए बगैर चलते थे, इससे दोनों तरफकी सेनाएँ एकही शरीरवाली हों ऐसे शोभती थीं। वीर सुभट भूमिको लोहवाले चक्रोंसे फाड़ते थे, लोहेकी कुदाली जैसे, घोड़ोंके तेज खुरोंसे खोदते थे; लोहेके अर्द्धचंद्र हों ऐसे ऊँटोंके खुरोंसे भेदते थे, प्यादोंके जोड़ोंके वज्रके समान नालोंसे खूँदते थे, क्षुरप्र[1] बाण-के जैसे भैंसों और बैलोंके खुरोंसे खंडन करते थे और मुद्गरके समान हाथियोंके पैरोंसे चूर्ण करते थे। अंधकारके समान रज-समूहसे वे आकाशको ढकते थे और सूरजकी किरणोंके समान चमकते हुए शस्त्रोंसे चारों तरफ प्रकाश फैलाते थे। वे अपने

१—घोड़ेके खुरके आकारका बाण।

अति भारसे कूर्म (कछुए) की पीठको तकलीफ पहुँचाते थे, महा वराहकी ऊँची डाढ़को झुकाते थे, और शेषनागके फणके गर्वका खर्व करते थे। वे ऐसे मालूम होते थे मानों सभी दिग्गजोंको कुब्ज बना रहे हैं; वे सिंहनादसे ब्रह्मांडरूपी पात्रको ऊँची आवाजवाला करते थे, उनके ताल ठोकनेकी उच्च ध्वनिसे ब्रह्मांडको फोड़ते हों ऐसा मालूम होता था। प्रसिद्ध ध्वजाओंके चिह्नोंसे पहचानकर, पराक्रमी अपने प्रतिवीरका नाम लेकर उसका वर्णन करते थे और अभिमानी और शौर्यवान वीर आपसमें लड़ाईके लिए ललकारते थे। इस तरह दोनों सेनाओंके मुख्य मुख्य वीर मुख्य मुख्य वीरोंके सामने खड़े हुए। मगर जैसे मगरके सामने आता है वैसे हाथीवाले हाथीवालोंके सामने हुए, तरंगें जैसे तरंगोंकेसे टकराती हैं ऐसेही सवार सवारोंके सामने आए; वायु वायुकी तरह रथीपुरुष रथियोंके सामने आए और सींगवाले जैसे सींगवालोंके सामना करते हैं वैसे प्यादे प्यादोंके सामने हुए। इस तरह सभी वीर भाले, तलवारें, मुद्गर और दंड वगैरा आयुध आपसमें मिलाकर क्रोध सहित एक दूसरेके सामने आए। (४१४-४३४)

उसी समय तीन लोकके नाशकी शंकासे डरे हुए देवता आकाशमें जमा हुए और उन्होंने सोचा, दो ऋषभ पुत्रोंकी अपने दोनों हाथोंकी तरह आपसहीमें लड़ाई क्यों हो रही है ?" फिर उन्होंने दोनों तरफके सैनिकोंसे कहा, "हम जबतक तुम्हारे मनस्वी स्वामियोंको उपदेश देते हैं तबतक तुम लोग लड़ाई न करो, अगर कोई करेगा तो उसे ऋषभदेवजीकी आन है, शपथ है।" देवोंने ऋषभदेवजीकी आन दिलाई इसलिए दोनों तरफ-

के उत्साही सैनिक चित्रलिखितसे हो रहे। वे सोचने लगे ये देवता बाहुबलीकी तरफके हैं या भरतके पक्षके।

"ऐसा कोई मार्ग निकालना चाहिए जिससे काम न बिगड़े और लोगोंका कल्याण हो।" यों सोचते हुए देवता पहले चक्रवर्तीके पास गए। वहाँ 'जय जय' शब्दोंके साथ आशीर्वाद देकर प्रियभाषी देवता, मंत्रियोंकी तरह युक्ति सहित इस तरह बोले,-(४३५-४४१)

"हे नरदेव ! इंद्र जैसे पूर्वदेवोंको (दैत्योंको) जीतता है वैसेही आपने छःखंड भरतक्षेत्रके सभी राजाओंको जीता है, यह आपने ठीकही किया है। हे राजेंद्र ! पराक्रम और तेजसे सभी राजारूपी मृगोंमें आप शरभ (अष्टापद) के समान हैं। आपका प्रतिस्पर्द्धी कोई नहीं है। घड़ेमें पानीका मंथन करनेसे जैसे मक्खनकी श्रद्धा पूरी नहीं होती अर्थात मक्खन नहीं मिलता उसी तरह आपकी रणकी इच्छा पूरी नहीं हुई, इसलिए आपने अपने भाईके साथ लड़ाई शुरू की है; मगर यह लड़ाई ऐसी है मानों अपने एक हाथसे दूसरे हाथको मारना। बड़ा हाथी जैसे बड़े वृक्षसे अपना गंडस्थल खुजाता है; इसका कारण उसके गंडस्थलमें उठी हुई खुजली है; वैसेही भाईसे युद्ध करनेका कारण लड़ाईके लिए चलती हुई आपके हाथकी खुजलीही है। वनके उन्मत्त हाथियोंके तूफानसे जैसे वनका नाश होता है ऐसेही आपके भुजाओंकी खुजलीसे जगतका नाश होगा। मांस खानेवाले लोग, जैसे अपनी जीभके स्वादको तृप्त करनेके लिए (गरीब) पशु-पक्षियोंको मारते हैं ऐसेही, आपने अपने खेलके लिए जगतका संहार करनेकी बात क्यों शुरू की है ? जैसे

चंद्रमासे आग बरसना उचित नहीं है ऐसेही, जगत-त्राता और दयालु ऋषभदेव स्वामीके पुत्रके लिए भी भाईसे लड़ना उचित नहीं है। हे पृथ्वीरमण ! जैसे संयमी पुरुष भोगोंसे मुख मोड़ लेता है ऐसेही, आप लड़ाईसे मुँह मोड़कर अपने स्थानपर वापस जाइए। आप यहाँ आए हैं, इसलिए आपका छोटा भाई बाहु-बली भी सामने आया है।

"..........कार्यं हि खलु कारणात् ।"

[कारणसेही कार्य होता है।] जगतको नाश करनेके पाप-को रोकनेसे आपका कल्याण होगा; लड़ाई बंद होनेसे दोनों तरफकी सेनाओंका कुशल होगा; आपकी सेनाके भारसे भूमिका काँपना बंद होगा, इससे पृथ्वीके गर्भमें रहनेवाले भवनपति वगै-रहको आराम मिलेगा; आपकी सेनाके द्वारा होनेवाले मर्दनके अभावमें पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, प्रजाजन और सभी प्राणियोंका डर दूर होगा और आपकी लड़ाईसे होनेवाले विश्वके नाशकी शंका मिट जानेसे सभी देवता सुखसे रहेंगे। (४४२-४५५)

इस तरह कामकी बातें देवता कह चुके तब महाराजा भरत मेघके समान गंभीर वाणीमें बोले, "हे देवताओ ! आपके सिवा जगतकी भलाईकी बातें कौन कहे ? प्रायः लोग तमाशा देखनेके इच्छुक बनकर ऐसे कामोंसे उदास रहते हैं। आपने भलाई की इच्छासे लड़ाईके जिस कारणकी कल्पना की है वह वास्त-विक नहीं है; कारण अलग है। किसी कार्यका मूल जाने बगैर यदि कोई बात कही जाती है, तो वह निष्फलही होती है, चाहे वह बृहस्पतिके द्वाराही क्यों न कही गई हो। मैं बलवान हूँ यह समझकर मैंने सहसा लड़ाई करनेका निश्चय नहीं किया। कारण,

अधिक तेल होनेसे वह पर्वतपर नहीं लगाया जाता। भरतखंड की छ:खंड पृथ्वीके राजाओंको जीत लेनेसे मेरा कोई प्रतिस्पर्द्धी नहीं रहा ऐसा मैं नहीं मानता, कारण कि शत्रुके समान प्रतिस्पर्द्धी, और हार-जीतके कारणभूत बाहुबलीके और मेरे बीच भाग्यसे जातिभेद (विरोध) हुआ है। पहले निंदासे डरनेवाला, लज्जालु, विवेकी, विनयी और विद्वान बाहुबली मुझे पिताकी तरह मानता था; मगर साठ हजार वर्षके बाद मैं दिग्विजय करके आया तब मैंने देखा कि बाहुबली बहुत बदल गया है; अब वह दूसरा ही हो गया है। ऐसा होनेका कारण मेरे खयालसे इतने समयतक हमारा आपसमें नहीं मिलना है। बारह बरस तक राज्याभिषेकका उत्सव रहा, वह नहीं आया। मैंने समझा, आलस करके नहीं आया है। फिर उसको बुलानेके लिए दूत भेजा, तो भी वह नहीं आया। तब मैंने सोचा, इसमें मंत्रियोंके विचारका दोष होगा। मैं उसको कोपसे या लोभसे नहीं बुला रहा था; मगर चक्र उस समय तक शहरमें नहीं घुसता जबतक एक भी राजा चक्रवर्तीके आधीन हुए बिना रह जाता है। इसलिए मैं किंकर्तव्यमूढ़ हो रहा हूँ। इधर चक्र नगरमें नहीं घुसता और उधर बाहुबली नहीं झुकता। ऐसा ज्ञान पड़ता है मानों दोनों स्पर्द्धा कर रहे हैं; मैं तो बड़े संकटमें हूँ। मेरा मनस्वी भाई एक बार मेरे पास आवे और अतिथिकी तरह पूजा ग्रहण करे; इच्छानुसार दूसरी भूमि मुझसे ले। चक्रके नगरप्रवेश न करनेहीसे मुझे लड़ना पड़ रहा है। लड़ाईका दूसरा कोई कारण नहीं है। और उस न झुकनेवाले भाईसे मुझे किसी तरहका मान पानेकी इच्छा भी नहीं है।" (४५६–४७०)

देवताओंने कहा, "राजन् ! लड़ाईका सबब कोई बड़ाही होगा, कारण, आपके समान पुरुष छोटीसी बातके लिए कभी ऐसी प्रवृत्ति नहीं करते। अब हम बाहुबलीके पास जाकर उनको उपदेश देंगे और युगके क्षयकी तरह इस होनेवाले जननाशकी रक्षा करेंगे। शायद वे भी आपकीही तरह लड़ाईके दूसरे कारण बताएँगे; तो भी आपको ऐसा अधम युद्ध नहींही करना चाहिए। महान पुरुषोंको तो दृष्टि, वाणी, बाहु और दंडादिकसे (आपसहीमें) लड़ाई करनी चाहिए कि जिससे निरपराध हाथी (व मनुष्य) वगैरा प्राणियोंका नाश न हो।"

(४७१-४७४)

भरत चक्रवर्तीने देवताओंका यह कथन स्वीकार किया। तब वे दूसरी सेनामें बाहुबलीके पास गए और (उसे देखकर) आश्चर्यसे विचार करने लगे कि अहो ! यह बाहुबली तो दृढ़ गुणोंवाली मूर्तिहीसे अजित है; फिर कहने लगे—

"हे ऋषभनंदन ! हे जगत-नेत्ररूपी चकोरके लिए आनंद देनेवाले चंद्र ! आप चिरकालतक विजयी हों और आनंदमें रहें। आप समुद्रकी तरह कभी मर्यादा नहीं छोड़ते और कायर आदमी, जैसे लड़ाईसे डरते हैं ऐसेही, आप अवर्णवाद (निंदा) से डरते हैं। आपको संपत्तिका अभिमान नहीं है, दूसरोंकी दौलतसे आपको ईर्षा नहीं है, दुर्विनीत आदमियोंको आप दंड देनेवाले हैं और जगतको अभय बनानेवाले ऋषभस्वामीके आप योग्य पुत्र हैं। इसलिए इन दूसरे लोगोंके नाश करनेका काम करना आपके लिए योग्य नहीं है। आपने अपने बड़े भाईसे भयंकर लड़ाई ठानी है; यह उचित नहीं है। और अमृतसे जैसे

मौत संभव नहीं है ऐसेही, आपसे यह संभव भी नहीं है। अब-तक भी कुछ बिगड़ा नहीं है, इसलिए दुष्ट पुरुषकी मित्रताके समान इस लड़ाईको छोड़ दीजिए। हे वीर! जैसे मंत्रोंसे बड़े बड़े सर्प पीछे लौटाए जाते हैं ऐसेही, अपनी आज्ञासे इन वीर पुरुषोंको लड़ाईसे वापस लौटाइए और अपने बड़े भाई भरतके पास जाकर उनकी अधीनता स्वीकार कीजिए। ऐसा करके आप ऐसी प्रशंसा पाएँगे कि शक्तिशाली होते हुए भी आप विनयी बने। भरत राजाके प्राप्त किए हुए छःखंड भरत क्षेत्रको आप अपने उपार्जन किए हुए क्षेत्रकी तरहही उपभोग कीजिए। कारण, आप दोनोंमें कोई अंतर नहीं है।" (४७५-४८५)

ऐसा कहकर वे जब मेघकी तरह शांत हुए तब, बाहुबली-ने कुछ हँसकर गंभीर वाणीमें कहा, "हे देवताओ! हमारी लड़ाई जिसलिए आरंभ हुई है उसका कारण आप नहीं जानते। आप अपने स्वच्छ मनसे यों कह रहे हैं। आप पिताजीके भक्त हैं, हम उनके पुत्र हैं। इस तरह आप-का और हमारा संबंध है, इसीलिए आप ऐसा कहते हैं। यह योग्यही है। पहले दीक्षाके समय पिताजीने जैसे याचकोंको सुवर्णादि दिया इसी तरह हमको और भरतको राज्य बाँट दिए थे। मैं पिताजीने मुझे जो कुछ दिया उसीसे संतुष्ट हूँ; कारण, केवल धनके लिए कोई किसीसे दुश्मनी क्यों करे? परंतु समुद्रमें जैसे बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियोंको निगल जाती हैं वैसेही भरतखंडरूपी समुद्रमें छोटी मछलियोंके समान रहने-वाले राजाओंको बड़ी मछलीके समान भरत खा गया। खाऊ आदमी जिस तरह भोजनसे संतुष्ट नहीं होता वैसे इतने राज्यों-को जीतनेके बाद भी वह संतुष्ट नहीं हुआ और उसने अपने

भाइयोंके राज्य छीन लिए। अपने छोटे भाइयोंके राज्य छीन-कर अपनी गुरुता उन्होंने अपने आपही खो दी है। गुरुता सिर्फ उम्रसे नहीं (गुरु तुल्य) आचरणसे मानी जाती है। भाइयोंको राज्यसे हटानाही क्या उनकी गुरुता है! अबतक मैंने भ्रांतिसे, लोग जैसे पीतलको सोना और काचको मणि समझते हैं ऐसे-ही, भरतको अपना गुरुजन माना था। पिताके द्वारा दी गई या अपने वंशके किन्हीं पूर्वज द्वारा दी गई जमीन, अपने छोटों-से कोई साधारण राजा भी उस समयतक नहीं छीनता जब-तक वे कोई अपराध नहीं करते; तब भरतने ऐसा क्यों किया? छोटे भाइयोंका राज्य छीननेकी शरम भरतमें नहीं है। इसी-लिए उसने मेरा राज्य लेनेके लिए मुझे भी बुलाया है। जहाज जैसे समुद्रको पारकर अंतमें किसी किनारेके पर्वतसे टकरा जाता है ऐसेही वह अब, सारे भरतखंडके राजाओंको जीतकर मुझसे टकराया है। लोभी, मर्यादाहीन और राक्षसके समान निर्दय उस भरतको मेरे भाइयोंने शरमसे नहीं माना, तब मैं उसके कौनसे गुणसे उसको मानूँ? हे देवताओ! आप सभासद-की तरह मध्यस्थ होकर कहिए। भरत यदि अपने बलसे मुझे वश-में करना चाहता है तो भले करे। यह क्षत्रियोंका स्वाधीन मार्ग है। इतना होनेपर भी विचारपूर्वक वापस चला जाना चाहता हो तो वह सकुशल जा सकता है। मैं उसके समान लोभी नहीं हूँ कि उस लौटते हुएको मैं किसी तरह कोई नुकसान पहुँचाऊँ। यह कैसे हो सकता है कि उसके दिए हुए सारे भरतक्षेत्रका मैं उपभोग करूँ? क्या केसरीसिंह कभी किसीका दिया हुआ खाते हैं? कभी नहीं। उसको भरतक्षेत्र जीतनेमें साठ हजार

बरस बीते हैं; मगर मैं लेना चाहूँ तो तत्कालही ले लूँ। मगर इतने वर्षोंकी मेहनतसे उसे मिले हुए भरतक्षेत्रके वैभवको, धनवालेके धनकी तरह मैं भाई होकर कैसे लूँ? चंपेके फल खानेसे जैसे हाथी मदांध होजाता है वैसेही, भरत यदि छ:खंडके राजाओंको जीतकर अंधा हो गया है तो वह सुखसे रहनेमें समर्थ नहीं है। मैं उसके वैभवको छीना हुआ ही देखता हूँ, मगर मैंने जानबूझकरही उसकी उपेक्षा की है। इस समय, मानों मुझे देनेको जामिन हों ऐसे, उसके मंत्री, उसके भंडार, हाथी, घोड़े आदि और यशको मेरे अर्पण करनेके लिएही, भरतको यहाँ लाए हैं। इसलिए हे देवताओ! यदि आप उसके हितैषी हों तो उसको युद्धसे रोकिए। अगर वह न लड़ेगा तो मैं भी हरगिज नहीं लड़ूँगा। (४८६-५०१)

मेघकी गर्जनाके समान उसके इस तरहके उत्कट (अभिमानपूर्ण) वचन सुनकर देवता विस्मित हुए और वे पुन: उससे कहने लगे, "एक तरफ चक्रवर्ती अपने युद्धका कारण चक्रका शहरमें नहीं घुसना बताता है; इससे गुरु भी, न उसको रोक सकते हैं और न निरुत्तरही कर सकते हैं। दूसरी तरफ आप कहते हैं "मैं लड़ाई करनेवालेहीसे लड़ूँगा।" इससे इंद्र भी आपको युद्ध करनेसे रोकनेमें असमर्थ हैं। आप दोनों ऋषभस्वामीके दृढ़ संसर्गसे सुशोभित हैं, महाबुद्धिमान हैं, विवेकी हैं, जगतके रक्षक हैं और दयावान हैं; तो भी जगतके दुर्भाग्यसे यह लड़ाईका उत्पात प्राप्त हुआ है। फिर भी हे वीर! आप प्रार्थना पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षके समान हैं, इसलिए आपसे प्रार्थना है कि, आपको उत्तम युद्ध करना चाहिए, अधम युद्ध

नहीं। कारण, आप दोनों बड़े तेजस्वी हैं इसलिए अधम युद्धमें अनेक लोगोंका नाश होनेसे असमयमेंही प्रलय हुआ है, ऐसा समझा जाएगा। इसलिए आपको चाहिए कि आप दोनों दृष्टि-युद्ध वगैरा युद्ध करें। इससे आपके मानकी सिद्धि होगी और लोग नाशसे बच जाएँगे।" (५१०–५१७)

बाहुबलीने देवताओंकी बात स्वीकार की। इसलिए उनकी लड़ाई देखनेके लिए, नगरजनोंकी तरह देवता भी उनके पास-ही खड़े रहे। (५१८)

उसके बाद एक बलवान छड़ीदार, बाहुबलीकी आज्ञासे गजपर सवार हो, गजकीसी गर्जना कर, बाहुबलीके सैनिकोंसे कहने लगा, "हे वीर सुभटो! आप एक लंबे अरसेसे चाहते थे वह, स्वामीका काम, वाँछित पुत्रलाभकी तरह, मिला था; मगर तुम्हारे पुण्यकी कमीके कारण देवताओंने अपने राजासे भरत-के साथ द्वंद-युद्ध करनेकी प्रार्थना की; स्वामी खुद भी द्वंद-युद्ध चाहते हैं, ऊपरसे देवताओंने प्रार्थना की, फिर तो कहना ही क्या था? इसलिए इंद्रके समान पराक्रमी महाराज बाहुबली तुमको लड़ाई न करनेकी आज्ञा देते हैं। देवताओंकी तरह तुम भी तटस्थ रहकर हस्ति-मल्ल (ऐरावत) के जैसे एकाँगमल्ल (महापराक्रमी) अपने स्वामीको युद्ध करते देखो और वक्र बने हुए ग्रहोंकी तरह तुम अपने रथों, घोड़ों और पराक्रमी हाथियों-को वापस करदो। सर्प जैसे करंडिकाओंमें डाले जाते हैं वैसे-ही, तुम अपनी तलवारें म्यानोंमें डालो, केतुओंके समान अपने भालोंको उनके कोशोंमें डालो, हाथियोंकी सूँडोंके जैसे अपने मुद्गरोंको हाथोंमें न रखो; ललाटसे जैसे भृकुटी उतारी जाती

है वैसेही, अपने धनुषोंके चिह्नोंको उतार दो; भंडारोंमें धन डाला जाता है वैसेही अपने बाणोंको भाथोंसे डाल दो और बिजली, जैसे मेघमें समा जाती है वैसेही, तुम अपने क्रोधको रोक लो।" (५१६-५२७)

छड़ीदारकी बातें वज्रकी आवाजके समान बाहुबलीके सैनिकोंने सुनीं। उनके मन भ्रमितसे होगए। वे आपसमें इस तरह बातें करने लगे, "ये देवता होनेवाले युद्धसे बनियोंकी तरह डर गए हैं।" "ऐसा जान पड़ता है कि इन्होंने भरतके सैनिकोंसे रिश्वत ली है।" "शायद ये हमारे पूर्वजन्मके बैरी हैं इसीलिए स्वामीसे प्रार्थना कर इन्होंने हमारा युद्धोत्सव रोक दिया है।" "अरे! भोजन करनेके लिए बैठे हुए आदमीके सामनेसे जैसे कोई परोसी हुई थाली उठाले, प्यार करनेको उद्यत मनुष्यकी गोदमेंसे जैसे कोई बालकको हटाले, कुँएमेंसे निकलते हुए पुरुषके हाथमेंसे जैसे कोई, सहारेके लिए डाली हुई रस्सी खींच ले वैसेही आए हुए हमारे रणोत्सवको देवोंने बंद कर दिया।" "भरत राजाके जैसा दूसरा कौनसा शत्रु मिलेगा कि जिसके साथ युद्ध करके हम अपने बाहुबली महाराजका ऋण चुका सकेंगे!" "दायादों यानी सगोत्री भाई-बंधुओं, चोरों और पिताके घर रहनेवाली पुत्रवती स्त्रीकी तरह हमने व्यर्थही बाहुबली महाराजसे धन लिया।" "हमारी भुजाओंकी शक्ति ऐसेही व्यर्थ गई जैसे जंगलके वृक्षके फूलोंकी सुगंध व्यर्थ जाती है।" "नपुंसक आदमीके द्वारा एकत्र की गई स्त्रियोंके यौवनकी तरह हमारा शस्त्रसंग्रह बेकार गया।" "शुक (तोते) के किए हुए शास्त्राभ्यासकी तरह हमारा शस्त्र सीखना व्यर्थ हुआ।"

"तपस्वियोंका प्राप्त किया गया कामशास्त्रका ज्ञान जैसे निष्फल होता है वैसेही, हमारा सैनिक बनना निष्फल हुआ।" 'हम अज्ञानी थे कि, हमने हाथियोंको माराभ्यास (लड़ाईमें स्थिर रहनेका अभ्यास) और घोड़ोंको श्रम जीतनेका अभ्यास कराया, कारण इनका उपयोग नहीं हुआ।" "शरद ऋतुके मेघोंकी तरह हमने व्यर्थ गर्जना की।" "महिषियोंकी तरह हमने व्यर्थ ही विकट कटाक्ष किए।" "सामग्री बतानेवालोंकी तरह हमारी तैयारियाँ बेकार हुईं।" 'और युद्धदोहद (युद्धकी इच्छा) पूर्ण नहीं हुआ इसलिए हमारा अहंकार करना धूलमें मिल गया।" (५२८-५४०)

इस तरह सोचते विचारते (कहते-सुनते) दुःखरूपी ज़हर-से घुटते, साँपोंके फूत्कारकी तरह निःश्वास डालते सैनिक वापस चले। क्षात्रव्रतरूपी धनवाले भरत राजाने भी, जैसे समुद्रका पानी भाटा आनेसे लौटता है ऐसेही, अपनी सेनाको वापस लौटाया। पराक्रमी चक्रवर्तीके द्वारा वापस लौटाए गए सैनिक पद पद पर जमा होकर विचार करके लगे, "अपने स्वामी भरत-ने मंत्रीके बहाने वैरीके जैसे किस मंत्रीकी सलाहसे दो भुजाओं-से होनेवाला द्वंद्वयुद्धही स्वीकार किया? मट्ठेके भोजनकी तरह स्वामीने इस तरहकी लड़ाई मंजूर करली तब हमारी जरूरतही क्या रह गई? छःखंड पृथ्वीके राजाओंमेंसे हमने कौनसे राजा-को परास्त नहीं किया कि जिससे भरत राजा हमको युद्धसे रोकते हैं। जब अपने बहादुर भाग जाएँ, हार जाएँ या मर जाएँ तभी स्वामीको युद्ध करना चाहिए। कारण, लड़ाईकी गति विचित्र होती है। यदि बाहुबलीके सिवा कोई दूसरा शत्रु होता

तो हमें अपने स्वामीके द्वंद्व युद्धमें जीतनेके बारेमें कोई शंका नहीं होती; मगर बलवान बाहुवाले बाहुबलीके साथ (द्वंद्व) युद्धमें जीतनेकी इंद्रको भी शंका रहती है, तो दूसरोंकी तो बात ही क्या है? बड़ी नदीके पूरकी तरह दुःसह वेगवाले बाहुबलीके साथ पहले युद्ध करना स्वामीके लिए योग्य नहीं है। पहले हम लड़ लें, उसके बादही स्वामीके लिए लड़ाईमें जाना ठीक है। कारण—

"पूर्वमश्वदमैर्दांते वाजिनीवाधिरोहणम्।"

[पहले अश्वदम यानी चाबुक सवार घोड़ोंको दमन करते हैं, उसके बादही उनपर सवारी की जाती है।] इस तरह बातें करते और सोचते वीरोंके इशारोंसे उनके भावोंको चक्रवर्तीने समझा, इसलिए उनको बुलाकर कहा, "हे वीर पुरुषो! जैसे अँधेरेका नाश करनेके लिए सूरजकी किरणें आगे चलनेवाली होती हैं वैसेही, शत्रुओंका नाश करनेमें तुम मेरे अग्रेसर हो। गहरी खाईमें गिरकर जैसे कोई हाथी किलेतक नहीं पहुँच सकता वैसेही तुम्हारे उपस्थित रहने से कभी कोई भी शत्रु मुझतक नहीं पहुँचा। पहले तुमने कभी मेरा युद्ध नहीं देखा, इसीलिए तुम्हारे मनमें व्यर्थकी शंकाएँ हो रही हैं। कारण,—

"..........भक्तिर्ह्यपदेऽपीक्ष्यते भयम्।"

[भक्ति जहाँ शंकाका कारण नहीं होता वहाँ भी शंका पैदा करती है।] इसलिए वीर सुभटो! तुम सब एकत्र होकर मेरी भुजाओंका बल भी देखो, जिससे रोगके क्षय होनेसे जैसे दवाके गुणकी शंका होती है वह मिट जाती है वैसेही, तुम्हारी

(मेरे जीतनेके बारेमें जो शंका है वह) शंका मिट जाएगी।"
(५४१-५५६)

इसके बाद चक्रवर्तीने सेवकोंसे एक बहुत लंबा, चौड़ा और गहरा खड्डा खुदवाया। दक्षिण समुद्रके तीरपर जैसे सह्य (सह्याद्रि) समर्थ पर्वत रहता है वैसे उस खड्डेके किनारे भरतेश्वर बैठे और वटवृक्षकी लटकती हुई लंबी लंबी जटाओंकी तरह, भरतेश्वरने अपने बाएँ हाथपर, एकके ऊपर एक, मजबूत साँकलें बँधवाईं। किरणोंसे जैसे सूर्य शोभता है और लताओंसे जैसे वृक्ष शोभता है वैसेही एक हजार साँकलोंसे महाराज शोभने लगे। उसके बाद उन्होंने सैनिकोंसे कहा, "हे वीरो! जैसे बैल गाड़ीको खींचते हैं वैसेही तुम मुझे अपने बल और वाहनसे निर्भय होकर खींचो। तुम सब अपने एकत्रित बलसे खींचकर मुझे इस खड्डेमें डाल दो। स्वामीकी भुजाओंकी परीक्षामें स्वामीका अपमान होगा यह सोचकर छल न करना। मैंने ऐसा बुरा सपना देखा है, इससे तुम उसका नाश करो। कारण,-

"स हि मोघीभवेद्देव चरितार्थी कृतः स्वयम्।"

[जिसे सपना आता है वह खुदही यदि सपनेको सार्थक करता है अर्थात वैसा आचरण कर लेता है तो फिर सपना निष्फल होता है।] चक्रीने इस तरह बार बार कहा तब सैनिकोंने बड़ी कठिनतासे उसकी यह बात मानी (माननी पड़ी) कारण—

"...स्वाम्याज्ञा हि बलीयसी।"

[स्वामीकी आज्ञा बलवान होती है।] फिर देवों और

असुरोंने जैसे पर्वतके नेत्र (मथानीमें लगाई जानेवाली रस्सी) के समान बने हुए सर्पको (शेषनागको) खींचा था वैसेही, चक्रीके हाथमें बँधी हुई साँकलोंको पकड़कर सैनिक खींचने लगे। चक्रीकी भुजाके साथ बँधी हुए साँकलोंको पकड़नेसे सैनिक ऐसे मालूम होते थे जैसे ऊँचे वृक्षकी शाखाओंपर बैठे हुए बंदर हों। पर्वतको भेदनेकी कोशिश करनेवाले हाथियोंकी (जैसे पर्वत उपेक्षा करता है उसी) तरह अपनेको खींचनेवाले सैनिकोंकी चक्रीने थोड़ी देर उपेक्षा की। फिर उन्होंने अपने सामने किया हुआ हाथ खींचकर छातीसे लगा लिया; इससे सभी सैनिक इस तरह गिर पड़े जिस तरह पंक्तिमें एक साथ बाँधे हुए घड़े (खिंचनेसे) गिर पड़ते हैं। उस समय चक्रवर्तीका हाथ लटकते हुए सैनिकोंसे ऐसे शोभने लगा जैसे खजूरका पेड़ खजूरके फलोंसे शोभता है। अपने स्वामीके ऐसे बलको देखकर सैनिक आनंदित हुए और उन्होंने पहले जो कुशंका की थी उसे और उसीकी तरह भुजाकी साँकलोंको भी तुरंत खोल दिया। (५५७-५७०)

फिर गायन करनेवाला जिस स्वरमें गायन आरंभ करता है उसी स्वरको पुन: पकड़ता है ऐसेही चक्रवर्ती हाथीपर सवार होकर रणभूमिमें आया। गंगा और यमुनाके बीचमें जैसे वेदिप्रदेश (दो आबा) शोभता है वैसेही दोनों तरफकी सेनाओंके बीचकी भूमि शोभती थी। जगतका संहार रुक जानेसे जैसे किसीने प्रेरणा की हो ऐसे पवन पृथ्वीकी रजको धीरे धीरे दूर करने लगा। देवता समवसरणकी भूमिकी तरहही उस रणभूमिमें सुगंधित जलकी वृष्टिसे छिड़काव करने लगे और मांत्रिक

(मंत्र जाननेवाले) पुरुष जैसे मंडलकी भूमिमें (मंत्री हुई जमीनमें) फूल बरसाते हैं ऐसेही. देवोंने रणभूमिमें फूल बरसाए। फिर कुंजरकी तरह गर्जना करते हुए दोनों राजकुंजरोंने, हाथियोंसे उतर कर, रणभूमिमें प्रवेश किया। महा बलवान और लीलासे चलनेवाले वे पद-पद पर कूर्मेंद्रको, उसके प्राणोंकी शंकामें डालने लगे। (५७१-५७७)

पहले उन्होंने दृष्टि-युद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की; और मानो दूसरे इंद्र और ईशानेंद्र हों इस तरह अनिमेष नेत्रोंसे एक दूसरेको देखते हुए खड़े रहे। लाल आँखोंवाले दोनों वीर आमने सामने खड़े हुए एक दूसरेका मुँह देख रहे थे; वे उस समय, आमने सामने खड़े हुए, सूरज और चाँदकी तरह शोभते थे। वे ध्यान करनेवाले योगियोंकी तरह, निश्चल नेत्रोंसे, बहुत देरतक स्थिर खड़े रहे। अंतमें, सूरजकी किरणोंसे आक्रांत नीलकमलकी तरह, ऋषभस्वामीके बड़े पुत्र भरतकी आँखें बंद हो गईं, ऐसा मालूम हुआ मानो छ:खंड भरतद्वीपको जीतनेसे जो कीर्ति महाराज भरतको मिली थी उसे, उनकी आँखोंने पानी देनेके बहाने अश्रुजलके द्वारा मिटा दिया। सवेरेही जैसे वृक्ष हिलते हैं वैसे देवताओंने उस समय सर धुने और महाराज बाहुबली पर फूल बरसाए। सूर्योदयके समय पक्षियोंकी तरह, बाहुबलीकी जीत होनेसे सोमप्रभा आदि ने हर्षध्वनि की। कीर्तिरूपी नर्तकीने जैसे नाचना शुरू किया हो ऐसे बाहुबलीके सैनिकोंने जीतके बाजे बजाए। भरत राजाके सुभट ऐसे शिथिल हो गए मानो वे मूर्छित हो गए हों, सो गए हों या बीमार हों। अंधकार और प्रकाशवाले मेरुपर्वतकी दोनों बाजुओंकी तरह

दोनों सेनाओंमें अफसोस और आनंद दिखाई दिए। उस समय बाहुबलीने कहा, "ऐसा न कहना कि काकतालीय-न्यायसे[1] जीत गए हो। अगर ऐसा हो तो बाहु-युद्ध भी कर लो।" बाहुबली-की यह बात सुनकर पैरोंसे कुचले हुए सर्पकी तरह चक्रीने गुस्सेसे कहा, "इस युद्धमें भी भले तुम विजयी बनो।"

(५८७-५८८)

फिर जैसे ईशानेंद्रका बैल नाद करता है, सौधर्मेंद्रका हाथी गर्जना करता है, और मेघ स्तनित (गर्जना) करता है ऐसेही, भरत राजाने बड़ा सिंहनाद किया। वह सिंहनाद आकाशमें चारों तरफ ऐसे व्याप्त हो गया जैसे बड़ी नदीके दोनों किनारों-पर बाढ़ आनेपर पानी फैल जाता है। मालूम होता था, मानो वह लड़ाई देखने आए हुए देवताओंके विमान गिराता हो; आकाशमेंसे ग्रह-नक्षत्र व ताराओंको भ्रष्ट करता हो, पर्वतोंके ऊँचे शिखरोंको हिलाता हो और समुद्रका जल उछालता हो। उस सिंहनादको सुनकर जैसे कुबुद्धिवाले पुरुष गुरुकी आज्ञा न मानते हों ऐसे रथके घोड़े रश्मि (लगाम) की उपेक्षा करने लगे; और जैसे सद्वाणी (उपदेश) को नहीं मानते ऐसेही, हाथी अंकुशोंको न मानने लगे; कफके रोगी जैसे कटु पदार्थ नहीं जानते ऐसे, घोड़े लगामको न गिनने लगे; विट (वेश्या-प्रेमी) जैसे लाज-शरम नहीं गिनते ऐसेही, ऊँट नाककी डोरीको

१—अचानक जैसे कौएके बैठनेसे ताड़ नहीं गिरता मगर कभी गिर जाता है; ऐसेही जिसके बार होनेकी संभावना नहीं होती; मगर कभी हो जाता है, तो ऐसे समयमें यह कहा जाता है कि 'काकतालीय न्यायसे' यह काम हो गया।

नहीं गिनने लगे; भूताविष्ट (जिनको भूत-बाधा हुई है ऐसे) लोगोंकी तरह खच्चर चाबुकोंकी मारकी अवज्ञा करने लगे। इस तरह भरत चक्रवर्तीके सिंहनादसे घबराकर कोई भी स्थिर न रह सका। (५६०–५६६)

उसके बाद बाहुबलीने सिंहनाद किया। सर्पोंने वह आवाज सुनी। उन्होंने समझा गरुड़ नीचे उतर रहा है और वह उसके पंखोंकी आवाज है। इसलिए वे पातालसे भी पातालमें घुस जाना चाहते हों ऐसे हो गए। समुद्रके जलजंतुओंने इस सिंहनादकी आवाजको, मंदराचलको समुद्रमें डालकर समुद्र-मंथन करनेकी आवाज समझा। इससे वे भयभीत हो गए। कुलपर्वत[1] उस आवाजको सुनकर इंद्रके वज्रके शब्दकी भ्रांतिसे अपने नाशकी आशंका कर बार बार काँपने लगे। मृत्युलोकमें रहनेवाले सभी मनुष्य उस शब्दको सुन, पुष्करावर्त नामक मेघकी छोड़ी हुई विद्युत्ध्वनि (बिजलीकी आवाज) के भ्रमसे पृथ्वीपर इधर-उधर लोटने लगे। देवताओंको उस दुःश्रव (कर्णकटु) शब्दको सुनकर, भ्रम हुआ कि असमयमेंही दैत्योंका उपद्रव आरंभ हुआ है, उसीका यह कोलाहल है; इससे वे घबरा उठे। यह दुःश्रव सिंहनाद-शब्द मानों लोकनलिकाके साथ स्पर्द्धा करता हो ऐसे क्रमशः बढ़ने लगा। (५६७–६०२)

बाहुबलीका सिंहनाद सुनकर भरतने फिरसे ऐसा सिंहनाद

---

[1] भारतवर्षमें ७ प्रधान पर्वत हैं। वे सब या उनमेसे एक। नाम ये हैं—महेंद्र, मलय, सह्य, शुक्ति,ऋक्ष, विंध्य और पारियात्र। साधारणतया ये 'कुलाचल' कहलाते हैं।

किया कि उसे सुनकर देवताओंकी स्त्रियाँ हरिणीकी तरह भय-भीत हो गई। मानो मध्यलोकको क्रीड़ाद्वारा भयभीत करनेवाले हों ऐसे चक्री और बाहुबलीने क्रमशः सिंहनाद किए। ऐसा करते करते हाथीकी सूँडकी तरह और सर्पके शरीरकी तरह भरत राजाके सिंहनादकी आवाज क्रमशः कम होती गई और नदीके प्रवाहकी तरह एवं सज्जनके स्नेहकी तरह बाहुबलीका सिंहनाद अधिकाधिक बढ़ता गया। इस तरह शास्त्रार्थके वादमें जैसे वादी प्रतिवादीको जीतता है वैसेही वाग्युद्धमें भी बाहुबलीने भरत राजाको जीत लिया। (६०३-६०७)

फिर दोनों भाई, बद्धकक्ष (साँकलोंसे बँधे) हाथियोंकी तरह, बाहु-युद्धके लिए बद्धपरिकर हुए (कमर कसी)। उस समय उछलते हुए समुद्रकी तरह गर्जना करता बाहुबलीका, सोनेकी छड़ी धारण करनेवाला, मुख्य छड़ीदार बोला, "हे पृथ्वी! वज्रके कीलोंके जैसे पर्वतोंको पकड़ और अपना सारा बल जमाकर तू स्थिर हो। हे नागराज! चारों तरफसे पवनको ग्रहण कर, उसे रोक, पर्वतकी तरह दृढ़ हो पृथ्वीको सँभाल। हे महावराह! समुद्रके कीचमें लोट, पहलेकी थकानको मिटा, ताजा हो पृथ्वीको गोदमें रख। हे कमठ! अपने वज्रके समान अंगको चारों तरफसे सिकोड़ पीठको मजबूत बना पृथ्वीको उठा। हे दिग्गजो! पहलेकी तरह प्रमादसे या मदसे झपकियाँ न लो, सब तरहसे सावधान हो वसुधाको धारण करो। कारण, यह वज्रसार बाहुबली, वज्रसार भुजाओंसे चक्रीके साथ मल्लयुद्ध करनेको खड़ा होता है।" (६०८-६१५)

फिर दोनों मल्लोंने तालें ठोकीं। उनकी आवाजें ऐसी

मालूम हुई जैसी तत्काल पर्वतपर बिजली गिरनेसे होती है। लीलासे पदन्यास करते (कदम रखते) और कुंडलको (अपने आसपासकी जमीनको) कंपित करते दोनों आमने-सामने चलने लगे; उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो वे धातकी खंडसे आए हुए, दोनों तरफ जिनके सूरज और चाँद हों ऐसे, छोटे मेरुपर्वत हैं। बलवान हाथी मदमें आकर जैसे अपने दाँत आमने-सामने टकराते हैं ऐसेही वे अपने हाथ आपस-में टकराने लगे। क्षणमें एक साथ होते और क्षणमें अलग होते वे दोनों वीर ऐसे मालूम होते थे, मानो महान पवनके द्वारा प्रेरित दो बड़े पेड़ हों। दुर्दिनमें उन्मत्त हुए समुद्रके पानीकी तरह वे क्षणमें उछलते व क्षणमें नीचे गिरते थे। मानो स्नेहसे भेटते हों ऐसे क्रोधसे दौड़कर दोनों महाभुज एक एक अंगसे एक दूसरेको दबाते और आलिंगन करते थे और कर्मके वश-से जीवोंकी तरह, युद्ध-विज्ञानके वश वे कभी नीचे और कभी ऊँचे जाते थे। जलमें मछलीकी तरह वेगसे बार बार बदलते रहनेसे उनको देखनेवाले लोग यह नहीं जान सकते थे कि कौन ऊपर है और कौन नीचे है। बड़े सर्पकी तरह एक दूसरेके लिए बंधनरूप होते थे और चपल बंदरोंकी तरह तत्कालही अलग हो जाते थे। बार बार पृथ्वीपर लोटनेसे दोनों धूलिधूसर हो गए थे, इससे ऐसे जान पड़ते थे, मानो धूलिमदवाले हाथी हों। चलते हुए पर्वतके समान उनका भार सहन करनेमें असमर्थ होकर पृथ्वी, उनके पदाघातके बहाने मानो चिल्ला रही हो, ऐसी मालूम होती थी। अंतमें क्रोधमें आए हुए और महान पराक्रम-

२७

बलते बाहुबलीने शरभ (अष्टापद पशु) जैसे हाथीको उठा लेता है ऐसेही भरतको अपने हाथोंमें उठा लिया और, हाथी जैसे (किसी छोटे) जानवरको अपनी सूँडसे आकाशमें उछाल देता है ऐसेही, उसे आकाशमें उछाल दिया। —

"अहो निरवधिः सर्गो बलिनो बलिनामपि।"

[बलवानोंमें भी बलवानोंकी उत्पत्ति निरवधि है। अर्थात महाबलवानसे भी कोई अधिक बलवान पैदा होता ही है।] धनुषसे छूटे हुए बाणकी तरह या यंत्रसे फेंके गए पत्थरकी तरह, भरत राजा आकाशमें बहुत दूर तक गए। इंद्रके चलाए हुए वज्रकी तरह, नीचे गिरते हुए चक्रीको देखकर, लड़ाई देखनेको आए हुए सभी खेचर भाग गए, और उस समय दोनों सेनाओंमें हाहाकार हो गया। कारण—

"कस्य दुःखाकरो न स्यान्महतां ह्यापदागमः।"

[जब महापुरुषोंपर आपत्ति आती है तब किसे दुःख नहीं होता है ?] (६१६–६२१)

(फेंके हुए भरतको आकाशमें देख) बाहुबली सोचने लगे, "अरे ! (मैंने यह क्या किया ?) मेरे बलको धिक्कार है ! मेरे बाहुको धिक्कार है ! मुझ सहसा काम करनेवालेको धिक्कार है ! और ऐसे कामकी उपेक्षा करनेवाले मंत्रियोंको भी धिक्कार है ! अथवा इस समय ऐसी निंदा करनेकी क्या जरूरत है ? मगर क्यों नहीं मैं अपने बड़े भाईको, आकाशसे पृथ्वीपर गिरकर टुकड़े टुकड़े हो जाए इसके पहलेही, अपने हाथोंपर झेल लूँ ?" ऐसा विचार कर बाहुबलीने अपनी दोनों भुजाएँ शैयाकी तरह फैला दीं। ऊँचे हाथ करके खड़े हुए व्रती-

पुरुषकी तरह, ऊँचे हाथ करके खड़े हुए बाहुबली, क्षणभर सूर्यकी तरफ देखते रहनेवाले तपस्वीकी तरह, भरतकी तरफ देखते रहे। मानो उड़ना चाहते हों ऐसे रूपमें पंजोंपर खड़े होकर उसने गिरते हुए भरतको गेंदकी तरह झेल लिया। उस समय दोनों सेनाओंको उत्सर्ग और अपवादकी तरह, चक्रीके ऊपर उछाले जानेसे खेद और उसकी रक्षासे हर्ष हुआ। ऋषभ-देवजीके पुत्रने भाईकी रक्षा करनेका जो विवेक दिखाया उससे लोग उसके विद्या, शील और गुणकी तरह पराक्रमकी भी तारीफ करने लगे। देवता ऊपरसे फूल बरसाने लगे। मगर वीरव्रत धारण करनेवाले पुरुषको उससे क्या ? उस समय, धुएँ और ज्वालासे जैसे आग जुड़ जाती है ऐसेही, भरत राजा इस घटनाके कारण खेद और क्रोधसे युक्त हो गया।

(६३२–६४०)

उस समय लज्जासे अपने मुखकमलको नीचे झुका भाई-का खेद मिटानेके विचारसे बाहुबली गद्गद स्वरमें बोले, "हे जगतपति ! हे महावीर्य ! हे महाभुज ! आप अफसोस न करें। कभी कभी विजयी पुरुषोंको भी दूसरा जीत लेता है; मगर इस कृतिसे मैंने न आपको जीता है और न मैं विजयीही हुआ हूँ। मैं मानता हूँ कि यह बात 'घुणाक्षर न्याय'[1] के समान हो गई है। हे भुवनेश्वर ! अब तक आप एकही वीर हैं। कारण—

"अमरैर्मथितोप्यब्धिरब्धिरेव न दीर्घिका।"

१—जो बात बगैर प्रयासके सरलतासे हो जाती है उसे 'घुणाक्षर न्याय' कहते हैं।

[देवताओंके मंथन करनेपर भी समुद्र समुद्रही रहा; वह बावड़ी न बना।] फाल (छलांग) से गिरे हुए व्याघ्रकी तरह आप खड़े क्यों हैं ? लड़ाईके लिए तैयार होइए।

(६४१-६४५)

"यह मेरा भुजदंड मुक्केको तैयार कर अपने दोषको मिटाएगा।" इस तरह कह, फणीश्वर सर्प फन फैलाता है ऐसे मुट्ठी बाँध, गुस्सेसे आँखें लाल कर, चक्रवर्ती तत्कालही बाहु-बलीकी तरफ दौड़ा और, हाथी जैसे अपने दाँतोंसे किवाड़ोंपर आघात करता है वैसेही, उसने बाहुबलीकी छातीपर मुट्ठीका प्रहार किया। जैसे ऊसर जमीनमें बारिश, बहरे पुरुषके कान-में निंदा, चुगलखोरका सत्कार, असतपात्रमें दान, अरण्यमें संगीत और बरफके समूहमें अग्नि बेकार होती है वैसेही, बाहु-बलीकी छातीमें किया गया वह मुष्टिप्रहार बेकार हुआ। उसके बाद "यह क्या हमसे नाराज हुआ है ?" ऐसी आशंकासे देव-ताओंके द्वारा देखा गया सुनंदापुत्र मुट्ठी बाँधकर भरतकी तरफ चला और उसने चक्रीकी छातीमें इस तरह मुक्का मारा जैसे महावत अंकुशसे हाथीके कुंभस्थलपर प्रहार करता है। वज्रके पर्वतपर हुए प्रहारकी तरहके प्रहारसे घबराकर भरतपति मूर्च्छित हो जमीनपर गिरा। पतिके गिरनेसे कुलांगनाकी तरह, भरतके गिरनेसे पृथ्वी काँप उठी और भाईके गिरनेसे भाईकी तरह, पर्वत चलित हो उठे! (६४६-६५४)

अपने भाईको, इस तरह मूर्च्छित हो गिरते देख, बाहु-बली मनमें विचार करने लगे, "क्षत्रियोंके वीरव्रतके आग्रहमें यह बात बहुत बुरी है कि, जिसके कारणसे अपने भाईकी भी जान

ले लेने तककी लड़ाई होती है। अगर यह मेरा बड़ा भाई जीवित न रहे तो फिर मेरा जीना भी व्यर्थ है।" इस तरह सोचते, नेत्रजलसे उसका सिंचन करते बाहुबली अपने उत्तरीय वस्त्रसे पंखेकी तरह भरतरायपर हवा करने लगे। ठीकही कहा है,—

"..........योबंधुर्बंधुरेव सः।"

[भाई आखिर भाईही होता है।] थोड़ी देरमें सोके उठे-हुए आदमीकी तरह चक्रवर्ती होशमें आया, और वह उठ बैठा। उसने देखा कि उसका छोटा भाई बाहुबली दासकी तरह सामने खड़ा है। उस समय दोनों सिर झुकाए रहे। —

"पराजयो जयश्चापि लज्जायै महतामहो।"

[अहो! महापुरुषोंके लिए जीत और हार दोनोंही लज्जाका कारण होती हैं।] फिर चक्रवर्ती जरा पीछे हटे, कारण युद्धकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंका यह लक्षण है। बाहुबलीने सोचा, अब भी आर्य भरत किसी तरहका युद्ध करना चाहते हैं। कारण—

"नोज्झंती मानिनो मानं यावज्जीवं मनागपि।"

[स्वाभिमानी पुरुष, जबतक जीवित रहते हैं तबतक, अपने अभिमानको थोड़ासा भी नहीं छोड़ते हैं।] परंतु भाईकी हत्यासे मेरी बहुत बदनामी होगी; और वह अंततक शांत नहीं होगी। इस तरह बाहुबली सोचही रहा था कि चक्रवर्तीने यमराजकी तरह दंड ग्रहण किया। (६५५-६६३)

शिखरसे जैसे पर्वत शोभता है और छायापथ (आकाश-

गंगा)से जैसे आकाश शोभता है वैसेही, उठाए हुए दंडसे चक्रवर्ती शोभने लगा। धूमकेतुका भ्रम पैदा करनेवाले उस दंडको राजा भरतने एक पलके लिए आकाशमें घुमाया, फिर जवान सिंह जैसे अपनी पूँछ जमीनपर पछाड़ता है वैसेही, उसे बाहुबलीके सरपर दे मारा। उस दंडके प्रहारसे ऐसे जोरका शब्द पैदा हुआ जैसे सह्याद्रि पर्वतसे समुद्रकी वेला (ज्वारके समय उठती तरंगें) टकरानेसे होता है; ऐरन पर रखा हुआ लोहा, जैसे लोहेके घनके आघातसे चूर्ण हो जाता है वैसेही, बाहुबलीके मस्तकपर रखा हुआ मुकुट दंडके आघातसे चूर्ण हो गया; और पवनके हिलानेसे जैसे पेड़ोंकी टहनियोंसे फूल गिरते हैं वैसेही, मुकुटके रत्न-खंड जमीनपर गिर पड़े। उसके प्रहारसे क्षणभरके लिए बाहुबलीकी आँखें मिच गईं और उसकी भयंकर आवाजसे लोकसमूह भी, वैसाही हो गया यानी लोगोंकी आँखें भी मुँद गईं। फिर आँखें खोलकर बाहुबलीने संग्रामके हाथीकी तरह लोहेका उदंड दंड उठाया। उस समय आकाशको शंका हुई कि क्या यह मुझे गिरा देगा? और जमीनको शंका हुई कि क्या यह मुझे उखाड़ देगा? पर्वतके अगले भागकी बाँबीमें रहे हुए सर्पकी तरह बाहुबलीकी मुट्ठीमें वह विशाल दंड शोभने लगा। दूरसे बुलानेके लिए मानों झंडा हो ऐसे, लोहदंडको बाहुबली घुमाने लगा। लकड़ीसे श्रीजान्नकी तरह बहलीपतिने उस दंडसे चक्रीकी छातीपर निर्दयतापूर्वक आघात किया। चक्रीका कवच बहुत मजबूत था तो भी, उस आघातसे मिट्टीके घड़ेकी तरह चूर चूर हो गया। कवच रहित चक्री बादलहीन सूरज और धूम्र रहित अग्निकी तरह मालूम होने लगे। सातवीं

मदावस्थाको प्राप्त हाथीकी तरह राजा भरत क्षणभरके लिए घबरा गए; वे कुछ भी न सोच सके। थोड़ी देरके बाद प्रिय-मित्रकी तरह अपनी भुजाओंके बलका सहारा लेकर फिरसे दंड उठा वे बाहुबलीकी तरफ दौड़े। दाँतोंसे ओंठ पीस, भ्रकुटी चढ़ा भयंकर बने हुए भरतने, वडवानलके आवर्त (चक्र) की तरह, दंडको खूब घुमाया, और कल्पांत (प्रलय) के समय मेघ जैसे विद्युतदंडसे (विजलीके डंडेसे) पर्वतपर प्रहार करता है वैसे ही, उसका बाहुबलीके सरपर आघात किया। लोहेकी ऐरनमें वज्रमणिकी तरह उस आघातसे बाहुबली घुटनों तक जमीनमें घुस गया। मानों अपने अपराधसे भयभीत हुआ हो ऐसे चक्रीका दंड वज्रसारके समान बाहुबलीपर प्रहार करके विशीर्ण (टुकड़े टुकड़े) हो गया। घुटनोंतक जमीनमें घुसे हुए बाहुबली, पर्वतमें स्थिर पर्वतके समान और जमीनसे बाहर निकलनेके लिए, अवशेष शेषनागकी तरह शोभने लगे। मानो बड़े भाईके पराक्रमसे अंतःकरणमें चमत्कार पाए हों ऐसे, उस आघातकी वेदनासे बाहुबली सर धुनने लगे और आत्माराम योगीकी तरह क्षणभर उन्होंने कुछ नहीं सुना। फिर नदीके किनारे सूखे हुए कीचड़मेंसे जैसे हाथी निकलता है वैसेही, बाहुबली जमीनमेंसे बाहर निकले; और लाक्षारस (लाख) के समान दृष्टिसे, मानो अपनी भुजाओंका तिरस्कार करते हों ऐसे, वे क्रोधियोंमें अग्रणी अपने भुजदंड व दंडको देखने लगे। फिर तक्षशिलापति बाहुबली, तक्षक नागके समान दुःप्रेक्ष्य (जिसपर नजर नहीं ठहरती ऐसे) दंडको एक हाथसे घुमाने लगे। अतिवेगसे बाहुबलीके द्वारा घुमाया गया वह दंड राधावेधमें फिरते चक्रकी

शोभाको धारण करता था। प्रलयकालके समुद्रके आवर्तमें फिरते हुए मत्स्यावतारी विष्णुकी तरह, फिरते हुए उस दंडको देख, देखनेवाले लोगोंकी आँखोंमें भी भ्रम हो जाता था। उस समय सेनाके सभी लोग और देवता शंका करने लगे कि अगर बाहुबलीके हाथसे गिरकर दंड उड़ेगा तो वह सूरजको काँसेके बरतनकी तरह तोड़ देगा; चंद्रमंडलको भरंड पक्षीके अंडेकी तरह चूर्ण कर देगा, तारोंको आँवलोंके फलोंकी तरह गिरा देगा; वैमानिक देवताओंके विमानोंको पक्षियोंके घोंसलोंकी तरह छिन्न कर देगा, पर्वतोंके शिखरोंको वल्मीक (दीमकोंके रहनेकी जगह) की तरह भंग कर देगा, बड़े बड़े पेड़ोंको छोटी कुंजोंकी घासकी तरह मसल देगा, और पृथ्वीको कच्ची मिट्टीके गोलेकी तरह चूर्ण कर देगा। इस तरह शंकापूर्ण नजरोंसे देखे गए उस दंडको बाहुबलीने चक्रीके सरपर मारा। उस दंडके आघातसे चक्री, घनके आघातसे ठुके हुए कीलेकी तरह, पृथ्वीमें गलेतक धुस गया; और उसके साथ उसके सैनिक भी, दुखी होकर जमीनपर गिर गए; मानों वे यह याचना कर रहे थे कि, हमारे स्वामीको दिया हुआ विवर (बिल) हमें भी दो। राहुके द्वारा ग्रसित सूर्यकी तरह जब चक्री भूमिमें धुस गया तब आसमानमें देवताओंका और जमीनपर मनुष्योंका कोलाहल सुनाई दिया। जिसकी आँखें मुँद गई और मुँह श्याम हो गया है ऐसा भरतपति मानों लज्जित हुआ हो इस तरह थोड़ी देर जमीनमें स्थिर रहा; और फिर तत्कालही वह, इस तरह जमीनमेंसे बाहर निकला जैसे रातके अंतमें सूरज देदीप्यमान और तीव्र होकर बाहर निकलता है। (६६४-७०१)

उस समय चक्री विचार करने लगा, "जैसे अंधा जुआरी हरेक तरहके जुएमें हार जाता है उसी तरह मैं बाहुबलीसे हरेक युद्धमें हार गया हूँ, इससे गाय जैसे घास-दाना खाती है और उससे होनेवाला दूध गाय दुहनेवालेके उपयोगमें आता है उसी तरह मेरे जीते हुए भरतक्षेत्रका उपभोग क्या यह बाहुबली करेगा ? एक म्यानमें दो तलवारोंकी तरह इस भरतक्षेत्रमें एक-ही समयमें दो चक्रवर्ती किसीने न कभी देखे हैं और न सुनेही हैं। गधेके सींगकी तरह, देवताओंसे इंद्रका और राजाओंसे चक्रवर्तीका जीता जाना पहले कभी नहीं सुना गया। तब बाहु-बलीके द्वारा पराजित मैं क्या चक्रवर्ती नहीं बनूँगा ? और मेरे द्वारा न जीता गया और दुनियासे भी न जीता जा सके ऐसा बाहुबली चक्रवर्ती बनेगा ?' (७०२-७०६)

चक्रवर्ती इस तरह सोच रहा था तब चिंतामणिरत्नके समान यक्ष राजाओंने चक्र लाकर उसके हाथमें दिया। उससे भरतको विश्वास हुआ कि मैं चक्रवर्तीही हूँ और वह, बवंडर जैसे आकाशमें धूलको घुमाता है इस तरह, चक्रको आकाशमें घुमाने लगा। ज्वालाओंके जालसे विकराल बना हुआ चक्र ऐसा जान पड़ा मानों वह अकालमें कालाग्नि हो; मानों वह दूसरा वडवानल हो; मानो वह अकस्मात पैदा हुआ वज्राग्नि हो; मानों वह ऊँचा बिजलीका पुंज हो; मानो वह गिरता हुआ सूरजका बिंब हो; मानों वह बिजलीका गोला हो। चक्रवर्तीने प्रहार करनेके लिए घुमाए हुए चक्रको देखकर मनस्वी बाहुबली अपने मनमें सोचने लगे, "अपनेको पिताका-ऋषभस्वामीका-पुत्र माननेवाले भरत राजाको धिक्कार है ! और उसके क्षात्र-

धर्मको भी धिक्कार है कि मैंने दंड-आयुध लिया है और उसने चक्र लिया है। उसने देवताओंके सामने उत्तम युद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की थी; मगर इस तरहका व्यवहार करके उसने बालक-की तरह प्रतिज्ञा तोड़ी है। इससे उसे धिक्कार है! तपस्वी जैसे तेजोलेश्या (का भय) बताता है वैसेही गुस्से होकर, उसने चक्र बताकर जैसे सारे विश्वको डराया था उसी तरह मुझे भी डराना चाहता है; मगर जिस तरह उसे अपने भुजदंडकी शक्ति मालूम हो गई उसी तरह अब उसके चक्रकी शक्ति भी उसे मालूम हो जाएगी।" जब बलशाली बाहुबली इस तरहके विचार कर रहा था तब भरतने अपने पूरे बलसे उसपर चक्र चलाया। (७०७-७१६)

चक्रको अपनी तरफ आते देख तक्षशिलापति विचार करने लगा, "जीर्ण बरतनकी तरह मैं इसका चूर्ण कर डालूँ? गेंदके खेलकी तरह इसपर आघात करके इसे फेंक दूँ? खेलसे पत्थर-के टुकड़ेकी तरह इसे आकाशमें उछाल दूँ? अथवा शिशुनाल की तरह इसे जमीनमें गाड़ दूँ? या चपल चिड़ियाके बच्चेकी तरह इसे पकड़ लूँ? या वधके लायक अपराधीकी तरह इसे दूरहीसे छोड़ दूँ? या चक्कीमें पड़े हुए धानकी तरह इसके अधिष्ठायक देवोंको दंडसे शीघ्रही पीस डालूँ? अथवा ये सब बातें पीछे होंगी, पहले इसका बल तो जान लूँ?" वह इस तरह सोच रहा था तब चक्रने आकर, शिष्य गुरुको देता है इसी तरह भरतके प्रदक्षिणा दी,-कारण चक्रीका चक्र सामान्य सगोत्री मनुष्योंपर भी आघात नहीं कर सकता है, तब चरमशरीरी सगोत्रीपर तो उसका असर हो ही क्या सकता था? इसलिए

पक्षी जैसे घोंसलेमें आता है और अश्व जैसे घुड़सालमें आता है वैसेही चक्र लौटकर भरतके हाथमें आगया।

(७१७-७२४)

"मारनेकी क्रियामें विषधारी सर्पके विषयके समान अमोघ अस्त्र एक चक्रही भरतके पास था। अब इसके समान दूसरा कोई अस्त्र भरतके पास नहीं है, इसलिए चक्र चला कर अन्याय करनेवाले इस भरतको तथा इसके चक्रको मुष्टिप्रहार कर कुचल डालूँ।" इस तरह गुस्सेसे सोचते हुए सुनंदाके पुत्र बाहुबली यमराजकी तरह भयंकर मुट्ठी ऊँची कर चक्रीकी तरफ दौड़े। सूँड़में मुद्गरवाले हाथीकी तरह मुक्केवाले करसे दौड़ते हुए बाहुबली भरतके पास पहुँचे; मगर समुद्र जैसे मर्यादाभूमिमें रहता है ऐसेही, वे महासत्त्व (महान शक्तिशाली) कुछ कदम पर खड़े रह गए और सोचने लगे, "अहो! इस चक्रवर्तीकी तरह मैं भी राज्यका लोभी होकर अपने बड़े भाईका वध करनेको तैयार हुआ हूँ, इसलिए मैं शिकारीसे भी विशेष पापी हूँ। जिसमें पहले भाई-भतीजोंको मार डालना पड़े, ऐसे शाकिनीमंत्रीकी तरह राज्यके लिए कौन कोशिश करे? राजाको राज्यश्री मिलती है। इच्छाके अनुसार उसका उपभोग करता है तो भी, जैसे शराबीको कभी शराबसे संतोष नहीं होता, उसी तरह राजाओंको (प्राप्त) राज्यलक्ष्मीसे संतोष नहीं होता। आराधना पूजा करते हुए भी छोटासा छिद्र देखकर ही, दुष्ट देवताकी तरह राज्यलक्ष्मी क्षणभरमें मुँह मोड़ लेती है। अमावसकी रातकी तरह वह गाढ़ अंधकारवाली है। (इसीलिए पिताजीने इसका त्याग किया है।) अगर ऐसा न होता तो पिताजी इसको क्यों

छोड़ते ? मैं उन्हीं पिताका पुत्र हूँ तो भी बहुत समयके बाद मैंने इसको पहचाना है, तब दूसरा कौन इसे ऐसे रूपमें जान सकता है? इसलिए यह राज्यलक्ष्मी सर्वथा त्याग करने लायक ही है।" ऐसा विचार कर बड़े दिलवाले बाहुबलीने चक्रवर्तीसे कहा, "हे क्षमानाथ! हे भाई! केवल राज्यके लिए मैंने शत्रुकी तरह आपको सताया, क्षमा कीजिए। इस संसाररूपी बड़े सरोवरमें सेवालके तंतुओंके पाशकी तरह भाई, पुत्र और कलत्रादिक तथैव राज्यसे मुझे कोई मतलब नहीं है। मैं तीन जगतके स्वामी और जगतको अभयदान देनेके व्रतवाले पिताजीके मार्गमें पांथ (मुसाफिर) की तरह चलूँगा। (७२५-७२६)

यों कहकर साहसी पुरुषोंमें अग्रणी, महा सत्त्ववाले बाहुबलीने उठाई हुई मुट्ठीसेही अपने मस्तकके केशोंका लोच कर डाला। उस समय देवताओंने 'साधु! साधु!' कहकर उसपर फूल बरसाए। फिर पांच महाव्रत धारण कर वे मनमें सोचने लगे, "मैं अभी पिताजीके चरणकमलोंमें नहीं जाऊँगा। कारण, यदि मैं इस समय जाऊँगा तो मेरे छोटे भाइयोंसे, जिन्होंने मुझसे पहले व्रत लिया है और जो ज्ञानी हैं, मैं लघु माना जाऊँगा, इसलिए अभी तो मैं यहीं रहकर ध्यानरूपी अग्नि जलाऊँगा और तब उससे घाती कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त करूँगा तब स्वामीकी पर्षदामें जाऊँगा।"

इस तरहका निश्चय कर मनस्वी बाहुबली अपने दोनों हाथ लंबे कर रत्नप्रतिमाकी तरह वहीं कायोत्सर्ग करके रहे। अपने भाईकी इस स्थितिको देख भरत राजा अपने कुकर्मोंका विचार कर मानों पृथ्वीमें धँस जाना चाहता हो इस तरह सर

झुकाए खड़ा रहा। फिर मानो मूर्तिमान शांत-रस हों ऐसे अपने भाईको, थोड़े गरम आँसुओंसे, मानो बाकी रहे हुए क्रोधको भी बहा देता हो ऐसे, भरत राजाने प्रणाम किया। प्रणाम करते समय बाहुबलीके नखरूपी दर्पणोंमें उसके प्रतिबिंब दिखाई देते थे, वे ऐसे जान पड़ते थे मानो भरतने अधिक उपासना करनेकी इच्छासे अनेक रूप धारण किए हैं। फिर भरत बाहुबलीके गुणस्तवन और अपवादरूपी रोगकी दवाके समान आत्मनिंदा करने लगा:—

“ (हे भाई !) तुमको धन्य है कि तुमने मुझपर अनुकंपा (दया) करके राज भी छोड़ दिया। मैं पापी और दुर्मद हूँ कि, मैंने असंतुष्ट होकर तुमको इस तरह सताया। जो अपनी शक्तिसे अजान हैं, जो अन्यायी हैं और जो लोभके वशमें हैं उनमें मैं धुरंधर (मुख्य) हूँ। जो पुरुष इस राज्यको संसाररूपी वृक्षका बीज नहीं समझते वे अधम हैं। मैं उनसे भी अधिक अधम हूँ; कारण यह जानते हुए भी मैं इस राज्यको नहीं छोड़ता। तुम पिताजीके सच्चे पुत्र हो कि, तुमने उन्हींका मार्ग अंगीकार किया। यदि मैं भी तुम्हारे समान बनूँ तो पिताजीका वास्तविक पुत्र कहलाऊँ।”

इस तरह पश्चात्तापरूपी जलसे विषादरूपी कीचड़को धो, भरत राजाने बाहुबलीके पुत्र चंद्रयशाको राजगद्दीपर बिठाया। उन्हींसे चंद्रवंश शुरू हुआ और उसकी सैकड़ों शाखाएँ फैलीं। वह ऐसे पुरुषरत्नोंकी उत्पत्तिका हेतुरूप हो गया।

(७४०–७५५)

फिर भरत राजा बाहुबली मुनिको नमस्कार कर अपने

परिवार सहित स्वर्ग राज्यलक्ष्मीकी सहोदराके समान अपनी अयोध्या नगरीमें गया। (७५६)

भगवान बाहुबली मानों पृथ्वीमेंसे निकले हों अथवा आकाशसे उतरे हों ऐसे वहाँ अकेलेही कायोत्सर्ग ध्यानमें रहे। ध्यानमें लीन बाहुबलीकी दोनों आँखें नासिकाके अग्र-भागपर स्थिर थीं और मानों दिशाओंको साधनेका (वशमें करनेका) शंकु (स्तंभ) हों ऐसे स्थिर खड़े हुए वे महात्मा मुनि शोभते थे। आगकी चिनगारियोंके समान गरम रेता फेंकनेवाले गरमी-के मौसमकी आँधियोंको वे, वनवृक्षकी तरह सहते थे। अग्नि-कुंडके समान दुपहरीका सूरज उनके सरपर तपता था, तो भी ध्यानरूपी अमृतमें लीन उन महात्मापर उसका कोई असर नहीं होता था। सरसे पैर तक लगी धूलि पसीनेसे कीचड़के समान हो रही थी; इससे वे कीचड़से निकले हुए वराहके समान शोभते थे। वर्षा ऋतुमें पानीकी झड़ियोंवाली हवासे, और वृक्षोंको कंपित करनेवाली मूसलाधार बारिशमें भी, वे विचलित नहीं हुए थे; पर्वतकी तरह स्थिर रहे थे। पर्वतोंके शिखरोंको कँपा देनेवाली भयंकर आवाजके साथ गिरती थी, तो भी वे कायोत्सर्गसे यानी ध्यानसे विचलित नहीं होते थे। जंगलकी वापिकाकी सीढ़ियों पर जैसे काई जम जाती है ऐसेही, उनके पैरोंपर बहते हुए पानी-से काई जम गई थी। सरदीके मौसममें, नदीका पानी जम गया था, इससे वह नदी मनुष्योंका नाश करनेवाली हो उठी थी; मगर ध्यानरूपी अग्निसे कर्मरूपी ईंधनको जलानेकी कोशिश करते हुए बाहुबली वहाँ आरामसे खड़े थे। बरफसे वृक्षोंको जलानेवाली हेमंत ऋतुओंकी रातोंमें भी, बाहुबलीका धर्मध्यान,

कुंद (कनेर) के फूलोंकी तरह बढ़ता था। बनैले भैंसे बड़े पेड़के तनेकी तरह, उनके ध्यानमग्न शरीरपर टक्करें मारते थे और इससे शरीरको घिसकर अपनी खुजली मिटाते थे। बाघिनें, उनके शरीरको पर्वतकी तलहटीका निचला भाग समझकर, उसके सहारे सुखसे रातें बितातीं थीं। वनके हाथी, सल्लकी (चीड़) वृक्षोंकी डालोंकी भ्रांतिसे उन महात्माके हाथ-पैर खींचते थे; मगर वे खिंचते नहीं थे। इससे हाथी वैलक्ष्य (लज्जित) होकर चले जाते थे। चमरी गाएँ निर्भय होकर वहाँ आती थीं और ऊँचा मुँह कर, करवतके समान अपनी काँटोंदार भयंकर जीभों से उन महात्माके शरीरको चाटती थीं। उनके शरीरपर सैकड़ों शाखाओंवाली लताएँ इस तरह लिपट रही थीं, जिस तरह मृदंग पर चमड़ेके पट्टे लिपटे रहते हैं। उनके शरीरपर चारों तरफ सरकंडेके तंब (पौधे) उगे हुए थे, वे ऐसे शोभते थे मानों पूर्व-स्नेहके कारण आए हुए बाणोंवाले भाथे हों। वर्षाऋतुके कीचड़ में डूबे हुए उनके चरणोंको वेधकर चलती हुई, सौ पैरोंवाली डाभकी शूलें उग आईं थीं। बेलोंसे भरे हुए उनके शरीरमें बाजों और चिड़ियोंने, अविरोध भावसे, घोंसले बनाए थे। वनके मोरोंकी आवाजोंसे घबराए हुए हजारों मोर वेलोंसे गहन बने हुए उन महात्माके शरीरपर चढ़ रहे थे। शरीरपर चढ़कर लटकते हुए सर्पोंसे महात्मा बाहुबली हजार हाथोंवाले मालूम होते थे। उनके चरणोंपर बनी हुई बांबियोंसे निकलकर पैरोंमें लिपटे हुए सर्प कड़ोंसे मालूम होते थे। (७५७–७७७)

इस तरह ध्यानमें लीन बाहुबलीको आहारके बिना, एक बरस तक विहार करनेवाले भगवान ऋषभदेवकी तरह, एक

बरस बीत गया। जब वर्ष पूरा हुआ तब विश्ववत्सल ऋषभस्वामीने ब्राह्मी और सुंदरीको बुलाकर कहा, "इस समय बाहुबली अपने बहुत कर्मोंको खपाकर शुक्लपक्षकी चाँदसकी तरह अंधकाररहित हुए हैं; परंतु परदेके पीछे रखाहुआ पदार्थ जैसे दिखाई नहीं देता वैसेही मोहनीय कर्मके अंशरूप मानसे उसको केवलज्ञान नहीं हो रहा है। अब तुम दोनोंके वचन सुनकर वह अपना मान छोड़ देगा, इसलिए तुम उपदेश देनेके लिए उसके पास जाओ। उपदेश देनेका यह योग्य समय है।"

(७७८-७८२)

प्रभुकी उस आज्ञाको सरपर चढ़ा, उनके चरणोंमें नमस्कार कर-ब्राह्मी और सुंदरी बाहुबलीके पास जानेको रवाना हुई। महाप्रभु ऋषभदेवजी पहलेहीसे बाहुबलीके मानको जानते थे; तो भी एक बरस तक उन्होंने उसकी उपेक्षा की थी। कारण—

"अमूढलक्ष्या अर्हंतः समये ह्युपदेशकाः॥"

[अर्हंत अमूढ़ (स्थिर) लक्ष्यवाले होते हैं, इसलिए वे समय पर ही उपदेश देते हैं।] (७८३-७८४)

आर्या ब्राह्मी और सुंदरी उस देशमें गई; मगर धूलिसे ढके हुए रत्नकी तरह अनेक लताओंसे वेष्टित (लपेटे हुए) वे महामुनि उनको दिखाई नहीं दिए। बहुत ढूँढ-खोजके बाद आर्याओंने वृक्षके समान बने हुए उन महात्माको किसी तरह पहचाना। बहुत चतुराईके साथ उनको अच्छी तरह जानकर दोनों आर्याओंने महामुनि बाहुबलीको, तीन प्रदक्षिणा दे वंदना की और इस तरह कहा, "हे ज्येष्ठ आर्य ! अपने पिता भगवान ऋषभदेवने हमारे द्वारा आपको कहलाया है कि—

"हस्तिस्कंधाधिरूढानामुत्पद्येत न केवलम्।"

[हाथीपर सवार पुरुषोंको केवलज्ञान कभी नहीं होता।]

(७८५-७८८)

इतना कहकर दोनों भगवतियाँ जैसे आई थीं वैसेही चली गईं। इस वचनसे महात्मा बाहुबलीके मनमें अचरज हुआ और वे इस तरह सोचने लगे, "मैंने सभी सावद्ययोगोंका त्याग किया है। मैं वृक्षकी तरह कायोत्सर्ग करके वनमें खड़ा हूँ। फिर मेरे लिए हाथीकी सवारी कैसी ? ये दोनों आर्याएँ भगवानकी शिष्याएँ हैं। ये कभी झूठ नहीं बोल सकतीं,तब इसका मतलब क्या है ? अरे हाँ, अब बहुत दिनोंके बाद मेरी समझमें आया है कि मैं सोचता रहा हूँ कि जो व्रतमें बड़े होते हुए भी उम्रमें मुझसे छोटे हैं मैं उनको नमस्कार कैसे करूँ ? यह मेरा अभिमान है; यही हाथी है। इसीपर मैं निर्भय होकर सवार हूँ। मैंने तीन लोकके स्वामीकी चिरकालतक सेवा की; तो भी मुझे विवेकज्ञान इसी तरह नहीं हुआ जिस तरह पानीमें रहनेवाले कर्कट (केकड़े) को तैरना नहीं आता है। और इसीलिए मुझसे पहले व्रत ग्रहण करनेवाले महात्मा भाइयोंको 'ये छोटे हैं सोचकर' वंदना करनेकी इच्छा नहीं हुई। अब मैं इसी समय जाकर उन महामुनियोंको वंदना करूँगा। (७८९-७९५)

इतना सोचकर उन महासत्व (महाशक्तिशाली) बाहुबलीने अपना कदम उठाया; उस समय उनके शरीरसे जैसे लताएँ टूटने लगीं ऐसेही उनके घातिकर्म भी नाश होने लगे और उसी समय उनको केवलज्ञान हो गया। हुआ है केवल-

दर्शन और केवलज्ञान जिनको ऐसे सौम्य दर्शनवाले महात्मा बाहुबली चले जैसे सूरजके पास जाता है वैसेही, ऋषभस्वामी-के पास गए। तीर्थंकरको प्रदक्षिणा दे और तीर्थको नमस्कार कर, जगत्पूज्य बाहुबली मुनि प्रतिज्ञाको तैर कर केवलियोंकी पर्षदामें जा बैठे। (७८६-७८८)

आचार्य श्री हेमचंद्रविरचित, त्रिषष्टिशलाका पुरुष-
चरित्र महाकाव्यके प्रथम पर्वका, बाहुबली-
संग्राम, दीक्षा-केवलज्ञान कीर्तन नामका
पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ।



सर्ग छठा

भगवान ऋषभनाथका वृत्तांत

त्रिदंडी (परिव्राजक) साधुओंकी उत्पत्ति

भगवान ऋषभदेवका शिष्य अपने नामकी तरह ग्यारह-अंगोंका पढ़नेवाला, साधुओंके गुणोंसे युक्त और हस्तिपतिके साथ जैसे कलभ (हाथीका बच्चा) रहता है वैसे निरंतर स्वामीके साथ विचरण करनेवाला भरत-पुत्र मरीचि गरमीके मौसममें स्वामीके साथ विहार करता था। एक दिन दुपहरका समय था, चारों तरफ मार्गकी रज सूर्यकी किरणोंसे ऐसी गरम हो रही थी, मानो लोहारोंने धोंकनीसे धोंककर उसे गरम किया हो, मानो अदृश्य अग्निकी ज्वाला हो,ऐसे बहुत गरम ववंडरसे मार्ग कीलित हो गए थे (रुक गए थे), उस समय अग्निसे तपे हुए जरा गीले ईंधनकी तरह उसका शरीर सरसे पैरतक पसीनेकी धाराओंसे भर गया था। जलसे छींटे हुए सूखे चमड़ेकी गंधकी तरह पसीनेसे भीगे हुए वस्त्रोंके कारण उसके शरीरके मलसे दुःसह दुर्गंध आ रही थी। उसके पैर जल रहे थे, इससे उसकी स्थिति तपे हुए भागमें स्थित नकुलके जैसी मालूम होती थी और गरमीके कारण वह प्यासके मारे घबरा रहा था। उस समय मरीचि व्याकुल होकर सोचने लगा, (७)

"अहो! केवलज्ञान और केवलदर्शनरूपी सूर्य और चंद्र-के द्वारा मेरुपर्वतके समान और तीन लोकके गुरु ऋषभ-

स्वामीका मैं पौत्र हूँ और अखंड, छःखंड सहित पृथ्वीमंडलके इंद्र और विवेकके अद्वितीय निधिरूप भरत राजाका मैं पुत्र हूँ। चतुर्विध संघके सामने ऋषभस्वामीके पाससे पंच महाव्रतोंके उच्चारणपूर्वक मैंने दीक्षा ली है; इसलिए जैसे लड़ाईमेंसे भाग जाना वीर पुरुषके लिए उचित नहीं है वैसेही इस स्थानसे हटकर घर जाना भी उचित नहीं है; लज्जास्पद है। परंतु बड़े पर्वतकी तरह भारी कठिनतासे उठाने लायक इस चारित्ररूपी भारको एक पलके लिए भी उठानेमें मैं असमर्थ हूँ। मेरे लिए व्रत पालना कठिन है और उसे छोड़कर घर जानेसे कुल मलिन होगा, इससे 'एक तरफ नदी और दूसरी तरफ सिंह' इस न्यायमें मैं आ पड़ा हूँ; मगर मुझे मालूम हुआ है कि, पर्वतपर चढ़नेके लिए जैसे पगडंडी होती है वैसेही, इस कठिन मार्गमें भी एक सुगम मार्ग है। (८-१४)

ये साधु मनदंड, वचनदंड और कायदंडको जीतनेवाले हैं और मैं तो इनसे जीता गया हूँ, इसलिए मैं त्रिदंडी बनूँगा। ये श्रमण इंद्रियोंको जीतकर और केशोंका लोच कर मुंडित होकर रहते हैं; मैं मुंडन कराऊँगा और शिखा रखूँगा। ये स्थूल और सूक्ष्म दोनों तरहके प्राणियोंके वधसे विरक्त हुए हैं और मैं केवल स्थूल प्राणियोंके वधसे विरत हूँगा। ये अकिंचन रहते हैं और मैं स्वर्णमुद्रादिक रखूँगा। इन्होंने उपानहका (जूतोंका) त्याग किया है और मैं उपानह धारण करूँगा। ये अठारह हजार शीलके अंगोंको धारनेसे अति सुगंधवाले हैं; मैं उनसे रहित होनेसे दुर्गंधपूर्ण हूँ, इसलिए चंदन आदि ग्रहण करूँगा। ये श्रमण मोहरहित हैं और मैं मोहसे घिरा हुआ हूँ; इसके चिह्न-

स्वरूप छत्र मस्तकपर धारण करूँगा। ये कषाय रहित होनेसे (क्रोध, मान, माया, लोभसे रहित होनेसे) सफेद कपड़े पहनते हैं और मैं कषायसे कलुषित हूँ; उसकी स्मृतिके लिए काषाय (गेरुआ) वस्त्र धारण करूँगा। इन मुनियोंने पापसे डरकर बहुत जीवोंवाले सचित्त जलका त्याग किया है, पर मेरे लिए तो परि-मित जलसे स्नान और पान होगा।" (१४-२२)

इस तरह अपनी बुद्धिसे अपने वेषकी कल्पना कर मरीचि ऋषभस्वामीके साथ विहार करने लगा। खच्चर जैसे घोड़ा या गधा नहीं कहलाता मगर दोनोंके अंशोंसे उत्पन्न होता है वैसे-ही मरीचि भी न मुनि था न गृहस्थ, वह दोनोंके अंशवाला नवीन वेषधारी हुआ। हंसोंमें कौएकी तरह, साधुओंमें विकृत साधुको देख बहुतसे लोग कौतुकसे उससे धर्म पूछते थे। उसके उत्तरमें वह मूल और उत्तरगुणोंवाले साधु-धर्मकाही उपदेश देता था। अगर कोई पूछता कि तुम इसके अनुसार क्यों नहीं चलते हो, तो वह उत्तर देता था कि मैं असमर्थ हूँ। इस तरह उपदेश देनेसे अगर कोई भव्यजीव दीक्षा लेनेकी इच्छा करता था तो वह उसे प्रभुके पास भेज देता था और उससे प्रतिबोध पाकर आनेवाले भव्य प्राणियोंको, निष्कारण उपकार करनेवाले बंधुके समान, भगवान खुद दीक्षा देते थे। (२३-२८)

इस तरह प्रभुके साथ विहार करते हुए मरीचिके शरीरमें, एक दिन, लकड़ीमें जैसे घुन लगता है ऐसे, बहुत बड़ा रोग उत्पन्न हुआ। यूथभ्रष्ट कपिकी तरह व्रतभ्रष्ट मरीचिका उनके साथके साधुओंने प्रतिपालन नहीं किया। गन्नेका खेत जैसे बिना रक्षकके शूकरादि पशुओं द्वारा अधिक खराब किया जाता है

वैसेही इलाजके बिना मरीचिके लिए यह रोग अधिक दुःख-दायी हुआ। बड़े जंगलमें सहायनाहीन पुरुषकी तरह घोर रोगमें पड़ा हुआ मरीचि अपने मनमें विचार करने लगा, "अहो! मेरे इस भवमेंही किसी अशुभकर्मका उदय हुआ है, इसलिए अपने साधु भी पराएकी तरह मेरी उपेक्षा करते हैं; परंतु उल्लू जैसे दिनमें नहीं देख सकता, इसमें प्रकाश करनेवाले सूर्यका कोई दोष नहीं है वैसेही, मेरे बारेमें भी, अप्रीतिका आचरण करनेवाले इन साधुओंका कुछ भी दोष नहीं है। कारण, जैसे उत्तम कुलवाले म्लेच्छकी सेवा नहीं करते ऐसेही, पापकर्मोंके त्यागी साधु, मुझ पापकर्म करनेवालेकी सेवा कैसे करेंगे? और उनसे सेवा कराना भी मेरे लिए योग्य नहीं है। कारण, व्रत-भंग करनेसे मुझे जो पाप लगा है, उनसे सेवा करानेसे उसमें वृद्धिही होगी। मुझे अपने इलाजके लिए किसी अपने समान मंद धर्मवाले पुरुषकीही तलाश करनी चाहिए, कारण कि मृगके साथ मृगहीका मेल हो सकता है।" इस तरह विचार करता हुआ कुछ समय बाद मरीचि रोगमुक्त हुआ। कहा है,—

कालादनूपरत्वं हि व्रजत्यूषरभूरपि।

[ऊसर जमीन भी किसी समय आपही उपजाऊ हो जाती है।] (२६-३८)

एक समय प्रभु ऋषभस्वामी, विश्वका उपकार करनेमें वर्षा-ऋतुके मेघके समान, देशना दे रहे थे। वहाँ कपिल नामका कोई दूर-भव्य राजकुमार आया और उसने धर्म सुना। उसे भगवान-का बताया हुआ धर्म इसी तरह अच्छा नहीं लगा जिस तरह चकवाकको चाँदनी, उल्लूको दिन, भाग्यहीन रोगीको दवा, वातरोग-

वालेको शीतल पदार्थ और बकरेको बादल अच्छे नहीं लगते हैं। दूसरी तरहका धर्म सुननेकी इच्छासे कपिलने इधर-उधर देखा। उसे स्वामीके शिष्योंमें अनोखे वेषवाला मरीचि दिखाई दिया। वस्तु खरीद करनेकी इच्छा रखनेवाला बालक जैसे बड़ी दुकानसे छोटी दुकानपर जाता है ऐसेही, दूसरा धर्म सुननेकी इच्छा रखनेवाला कपिल स्वामीके पाससे उठकर मरीचिके पास गया। उसने मरीचिसे धर्मका मार्ग पूछा। मरीचिने जवाब दिया, "मेरे पास धर्म नहीं है। यदि धर्म चाहते हो तो स्वामीकाही आश्रय ग्रहण करो।" मरीचिकी बात सुनकर कपिल वापिस प्रभुके पास आया और पहिलेकी तरहही धर्मोपदेश सुनने लगा। उसके जानेके बाद मरीचिने विचार किया, "अहो! स्वकर्म-दूषित इस पुरुषको स्वामीका धर्म अच्छा नहीं लगा। गरीब चातकको संपूर्ण सरोवरसे भी क्या लाभ? (३९-४७)

थोड़ी देरके बाद कपिल पुनः मरीचिके पास आया और बोला, "क्या तुम्हारे पास जैसा-तैसा धर्म भी नहीं है? अगर धर्म न हो तो व्रत कैसे हो सकता है?" मरीचिने सोचा, "दैव-योगसे यह भी मेरेही समान मालूम होता है! बहुत कालके बाद समान विचारवालोंका मेल हुआ है। इसलिए मुझ असहायका यह सहायक हो।" फिर वह बोला, "वहाँ भी धर्म है और यहाँ भी धर्म है।" उसने अपने इस एक दुर्भाषणसे (उत्सूत्र भाषणसे) कोट्यानुकोटि सागरोपम प्रमाणका उत्कट संसार बढ़ाया। फिर उसने कपिलको दीक्षा देकर अपना सहायक बनाया। तभीसे परिव्राजकपनका पाखंड शुरू हुआ।

(४८-५२)

विश्वोपकारी भगवान ऋषभदेवजी ग्राम, आकर, पुर, द्रोण-मुख, खर्वट, पत्तन मंडप, आश्रम और खेट आदिसे भरी हुई भूमिपर विहार करते थे।

तीर्थंकरोंके कुछ अतिशय

विहारके समयमें (१) अपनी चारों दिशाओंमें सवासौ योजन तक लोगोंकी व्याधियोंको मिटाकर, वर्षाऋतुके मेघकी तरह जगतके जीवोंको शांति देते थे; (२) राजा जैसे अनीति मिटाकर प्रजाको सुख देता है ऐसेही पतंग (टिड्डी), चूहे और शुक वगैरा उपद्रव करनेवाले प्राणियोंकी प्रवृत्तिको रोककर सबकी रक्षा करते थे; (३) सूर्य जैसे अंधकारका नाश कर प्राणियोंको सुख पहुँचाता है ऐसेही वे प्राणियोंके किसी कारण-वश जन्मे हुए अथवा शाश्वत वैरको मिटाकर सबको प्रसन्न करते थे; (४) पहले जैसे सबको सुख पहुँचानेवाली व्यवहार प्रवृत्तिसे लोगोंको आनंदित किया था वैसेही अब विहारकी प्रवृत्तिसे सबको आनंदित करते थे; (५) दवासे जैसे अजीर्ण या अति क्षुधा मिटती है ऐसेही वे अतिवृष्टि और अनावृष्टिके उपद्रवोंको मिटाते थे; (६) अंत:शल्य (हृदयकी शूल) की तरह इनके आनेसे स्वचक्र और परचक्रका डर तत्कालही दूर होता था, इससे सुखी लोग बड़े उत्साहके साथ इनका स्वागतोत्सव करते थे; और (७) मांत्रिक पुरुष जैसे भूतों और राक्षसोंसे रक्षा करते हैं ऐसेही वे संहारकारक घोर दुर्भिक्षसे सबकी रक्षा करते थे। ऐसे उपकारोंसे सभी लोग इन महात्माकी स्तुति करते थे। (८) अंदर न समा सकनेसे बाहर आई हुई अनंत ज्योति हो ऐसा और सूर्यमंडलको जीतनेवाला भामंडल उन्होंने धारण

किया था। (९) आगे चलते हुए चक्रसे जैसे चक्रवर्ती शोभता है वैसेही आकाशमें उनके आगे चलते हुए धर्मचक्रसे वे शोभते थे। (१०) सब कर्मोंको जीतनेसे ऊँचे जयस्तंभके जैसा छोटी-छोटी हजारों ध्वजाओंवाला एक धर्मध्वज उनके आगे चलता था। (११) मानो उनका प्रयाणोचित कल्याण मंगल करता हो ऐसा अपने आपही महान शब्द करता हुआ दिव्य दुंदुभि उनके आगे बजता था; (१२) वे मानों अपना यश हो ऐसे, आकाशमें स्थित, पादपीठ सहित स्फटिक रत्नके सिंहासनसे शोभते थे; (१३) देवताओंके बिछाए हुए सोनेके कमलोंपर राजहंसकी तरह वे लीलासे चरण-न्यास करते थे (कदम रखते थे); (१४) उनके भयसे मानों रसातलमें घुस जाना चाहते हों ऐसे, नीचे मुखवाले तीक्ष्ण दंडरूप काँटोंसे उनका परिवार (साधु-साध्वियाँ) आश्लिष्ट नहीं होता था। (यानी साधु-साध्वियोंको काँटे नहीं चुभते थे।); (१५) छहों ऋतुएँ एकही समयमें उनकी उपासना करती थीं, मानों उन्होंने कामदेवको सहायता देनेका जो पाप किया था उसका वे प्रायश्चित्त करती हैं; (१६) मार्गके चारों तरफसे नीचे झुकते हुए वृक्ष, यद्यपि वे संज्ञारहित हैं तथापि, ऐसे जान पड़ते थे मानों वे प्रभुको नमस्कार करते हैं; (१७) पंखेके पवनकी तरह मृदु, शीतल और अनुकूल पवन उनकी सेवा निरंतर करता था; (१८) स्वामीके प्रतिकूल चलने वालों-का कल्याण नहीं होता है, यह सोचकर पक्षी नीचे उतर उनकी प्रदक्षिणा दे दाहिनी तरफसे जाते थे; (१९) चपलतरंगोंसे जैसे सागर शोभता है वैसे, आने जानेवाले जघन्यसे (कमसे कम) करोड़ जितनी संख्यावाले सुरों और असुरोंसे वे शोभते थे;

(२०) भक्तिवश हो दिनमें भी प्रभा सहित चंद्रमा स्थित हो ऐसे आकाशमें रहे हुए छत्रसे वे शोभते थे; (२१) और मानो चंद्रके जुदा किए हुए सर्वस्व किरणोंके कोश हों ऐसे, गंगाकी तरंगोंके समान सफेद चामर उनपर ढुलते थे। (२२) तपसे प्रदीप्त और सौम्य लाखों उत्तम साधुओंसे प्रभु ऐसे शोभते थे जैसे तारोंसे चंद्रमा शोभता है; (२३) जैसे सूरज हरेक सागरके और सरोवरके कँवलोंको प्रबोध (प्रफुल्लित) करता है ऐसेही महात्मा हरेक गाँव और शहरके भव्य जनोंको प्रतिबोध (उपदेश) देते थे।[1]

भगवानका अष्टापद पर्वतपर पहुँचना

इस तरह विचरण करते हुए भगवान ऋषभदेव एक बार अष्टापद पर्वतपर पहुँचे। (५३–७७)

वह पर्वत ऐसा मालूम होता था, मानो अत्यंत सफेदीके कारण शरदऋतुके बादलोंका एक जगहपर लगा हुआ ढेर हो; या क्षीरसमुद्रकी जमकर बरफ बनी हुई तरंग-राशिका लाकर रखा हुआ ढेर हो अथवा प्रभुके जन्माभिषेकके समय इंद्रके

१—तीर्थंकर जिस स्थानपर होते हैं (१) उसके चारों तरफ सवा सौ योजनतक रोग नहीं होते; (२) प्राणियोंके आपसी वैरका नाश होता है; (३) धान्यादि ध्यानको चीजें नाश करनेवाले जंतु नहीं होते; (४) मरी वगैरा रोग नहीं होते; (५) अतिवृष्टि नहीं होती; (६) अनावृष्टि नहीं होती; (७) दुष्काल नहीं पड़ता; (८) स्वचक्र या परचक्रका भय नहीं रहता; और (९) प्रभुके पीछे भामंडल रहता है। ये प्रभुको केवलज्ञान होनेके बाद उत्पन्न होनेवाले, अतिशयोंमेंके देवकृत अतिशय हैं।

वैक्रिय किए हुए (बनाए हुए) चार वृषभों (बैलों) मेंका ऊँचे शृंगवाला एक वृषभ हो और वह पर्वत ऐसा शोभता था मानो नंदीश्वर द्वीपकी बावड़ियोंमें स्थित दधिमुख पर्वतोंमेंका आया हुआ एक पर्वत हो; जंबूद्वीपरूपी कमलकी एक नाल हो; या पृथ्वीका श्वेत रत्नमय मुकुट हो। वह निर्मल तथा प्रकाशवाला था, इससे ऐसा जान पड़ता था कि मानों देवता उसे हमेशा स्नान कराते हों और वस्त्रोंसे उसे पोंछते हों। वायुके द्वारा उड़ाए गए कमलकी रेणुसे उसके निर्मल स्फटिक मणिके तटको स्त्रियाँ नदीके जलके समान देखती थीं। उसके शिखरोंकें अग्रभागपर विश्राम लेनेकेलिए बैठी हुई विद्याधरोंकी स्त्रियोंको वह वैताढ्य और क्षुद्र हिमालय पर्वतका स्मरण कराता था। ऐसा जान पड़ता था मानों वह स्वर्गभूमिका दर्पण हो; दिशाओंका अतुल हास्य हो या ग्रह-नक्षत्रोंको निर्माण करनेकी मिट्टीका अक्षय स्थल हो। उसके शिखरोंके मध्यभागमें क्रीडासे थकें हुए मृग बैठे थे, उनसे वह अनेक मृगलांछनों (चंद्रों) का भ्रम पैदा करता था। निर्झरणोंकी पंक्तियोंसे ऐसा शोभता था मानों वह निर्मल अर्द्ध वस्त्रको छोड़ देता हो या मानों सूर्यकांत मणियोंकी फैलती हुई किरणोंसे ऊँची पताकाओंवाला हो। उसके ऊँचे शिखरके अगले भागमें सूर्यका संक्रमण होता था, इससे वह सिद्ध लोगोंकी मुग्ध स्त्रियोंको उदयाचलका भ्रम कराता था। मानो मयूरपंखोंसे बनाए हुए बड़े छत्र हों ऐसे अति आर्द्रपत्रों (हरे पत्तों) वाले वृक्षोंसे उसपर निरंतर छाया रहती थी।

खेचरोंकी स्त्रियां कौतुकसे मृगोंके बच्चोंका लालन-पालन

करती थीं, इससे हरिणियोंके झरते हुए दूधसे उसका सारा लतावन सिंचित होता था। केलोंके पत्तोंके आधे वस्त्रोंवाली शबरियोंका नाच देखनेके लिए वहाँ नगरकी स्त्रियाँ नेत्रोंकी श्रेणी करके रहती थीं (अर्थात एक टक नाच देखती थीं)। रतिसे थकी हुई सर्पिणियाँ वहाँ वनका मंद मंद पवन पीती थीं। उसके लतावनको पवनरूपी नट क्रीड़ासे नचाता था। किन्नरोंकी स्त्रियाँ रतिके आरंभसे उसकी गुफाओंको मंदिररूप बनाती थीं; और अप्सराओंके स्नान करते समयकी कल्लोलोंसे सरोवरका जल तरंगित हो रहा था। यक्ष कहीं चौपड़-पासा खेल रहे थे; कहीं पानगोष्ठी कर रहे थे (शराब पी रहे थे?) और कहीं बाजी खेल रहे थे; इससे उसका मध्यभाग कोलाहल-पूर्ण हो रहा था। उस पर्वतपर किसी जगह किन्नरोंकी स्त्रियाँ, किसी जगह भीलोंकी स्त्रियाँ और किसी जगह विद्याधरोंकी स्त्रियाँ क्रीड़ाके गीत गा रही थीं। किसी जगहपर पकी हुई दाखों-के फल खाकर उन्मत्त बने हुए शुक पक्षी कलरव करते थे, किसी स्थानपर आमोंके अंकुर खाकर उन्मत्त बनी हुई कोकिलाएँ पंचम स्वरमें अलाप रही थीं; किसी स्थानपर कमलतंतुओंके स्वादसे मस्त बने हुए हंस मधुर शब्द कर रहे थे; किसी सरिता-के तटपर मदमस्त बने हुए क्रौंच पक्षी केंकार शब्द कर रहे थे। किसी जगह पर निकटमें रहे हुए मेघसे उन्मत्त होकर मोर केकारव कर रहे थे; और किसी जगह सरोवरमें फिरते हुए सारस पक्षियोंके शब्द सुनाई देते थे; इनसे वह गिरि मनोहर मालूम होता था। वह पर्वत किसी जगह लाल अशोक वृक्षके पत्तोंसे मानो कसूँबी वस्त्रवाला हो ऐसा; किसी जगह तमाल,

ताल और हिंतालके वृक्षोंसे मानो श्याम वस्त्रवाला हो ऐसा; किसी जगह सुंदर पुष्पवाले ढाकके वृक्षोंसे मानो पीले वस्त्रवाला हो ऐसा और किसी जगह मालती और मल्लिकाके समूहसे मानो श्वेत वस्त्रवाला हो ऐसा मालूम होता था। उसकी ऊँचाई आठ योजन होनेसे वह आकाश तक ऊँचा मालूम होता था। ऐसे उस अष्टापद पर्वतपर, गिरिके समान गरिष्ठ (सबसे सम्मानित) जगतगुरु आरूढ़ हुए। पवनसे गिरते हुए फूलों और निर्झरणोंके जलसे ऐसा मालूम होता था कि पर्वत प्रभुको अर्घ्यपाद दे रहा है। प्रभुके चरणोंसे पवित्र बना हुआ वह पर्वत, प्रभुके जन्मस्नात्रसे पवित्र बने हुए मेरुसे अपनेको न्यून न मानता था। हर्षित कोकिलादिकके शब्दोंके बहाने मानो वह पर्वत जगतपतिके गुण गा रहा हो ऐसा मालूम होता था।
(७८-१०४)

झाड़ू लगानेवाले सेवकोंकी तरह वायुकुमार देवोंने उस पर्वतपर एक योजन भूमिके तृण-काष्ठादि दूर किए। मेघकुमार देवोंने पानी लेजानेवाले भैंसोंके समान बादल बनाकर सुगंधित जलसे उस जमीनपर छिड़काव किया। फिर देवताओंने बड़ी बड़ी स्वर्णरत्नोंकी शिलाओंसे, उस जमीनको जड़कर दर्पणतलके समान समतल बना दिया। व्यंतर देवोंने उस जमीनपर इंद्रधनुषके खंडके समान पाँच वर्णके फूल इतने बरसाए कि उनमें घुटनोंतक पैर धँस जाएँ; जमना नदीकी तरंगोंकी शोभाको धारण करनेवाले वृक्षोंके आर्द्रपत्रोंके चारों दिशाओंमें तोरण बाँधे; चारों तरफ स्तंभोंपर बाँधे हुए मकराकृति तोरण सिंधुके दोनों किनारे रहे हुए मगरोंकी शोभाको धारण करते थे। उस-

के बीचमें मानों चारों दिशाओंकी देवियोंके रूपेके दर्पण हों ऐसे चार छत्र थे और आकाशगंगाकी चपल तरंगोंकी भ्रांति उत्पन्न करनेवाली, पवनके द्वारा फर्राई हुई ध्वजा-पताकाएँ सुशोभित हो रही थीं। उन तोरणोंके नीचे बनाए हुए मोतियोंके स्वस्तिक 'सब जगतका यहाँ कल्याण है' ऐसी चित्रलिपिका भ्रम पैदा करते थे। वैमानिक देवताओंने बाँधे हुए भूमितलपर रत्नाकर-की शोभाके सर्वस्व समान, रत्नमय गढ़ बनाया और उस गढ़-पर मानुषोत्तर पर्वतकी सीमापर स्थित चाँद सूरजकी किरणोंकी माला जैसी माणिक्यके कंगूरोंकी मालाएँ बनाईं। फिर ज्योतिष देवोंने, वलयाकार (परिधिवाला) बनाया हुआ हेमाद्रि पर्वतका शिखर हो ऐसा, निर्मल स्वर्णका मध्यम गढ़ बनाया; और उस-पर रत्नमय कंगूरे बनाए। वे कंगूरे उनमें प्रतिबिंब पड़नेसे, चित्रवाले हों ऐसे मालूम होते थे। उसके बाद भुवनपतियोंने, कुंडलाकार बने हुए शेषनागके शरीरका भ्रम पैदा करनेवाला चाँदीकी अंतिम गढ़ बनाया और उसपर, क्षीरसागरके जलके किनारेपर रही हुई गरुड़ोंकी श्रेणी हो ऐसी, सोनेके कंगूरोंकी श्रेणी बनाई। फिर जैसे अयोध्या नगरीके गढ़में बनाए थे वैसेही, यक्षोंने हरेक गढ़में चार चार दरवाजे बनाए और उन दरवाजों-पर माणिक्योंके तोरण बाँधे; अपनी फैलती हुई किरणोंसे, वे तोरण सौगुने हों ऐसे मालूम होते थे। व्यंतरोंने हरेक दरवाजेपर आँखकी रेखामें रही हुई काजलकी रेखाकी तरह मालूम होती धूएँरूपी ऊर्मियोंको धारण करनेवाली, धूपदानियाँ रखी थीं। बिचले गढ़की ईशान दिशामें, घरमें देवालयके जैसा, प्रभुके विश्राम करनेके लिए एक देवछंद बनाया। व्यंतरोंने, जहाजके

बीचमें जैसे कूपक (मस्तूल) होता है ऐसा, समवसरणके बीचमें तीन कोस ऊँचा चैत्यवृक्ष बनाया। उस चैत्यवृक्षके नीचे अपनी किरणोंसे मानो वृक्षको मूलसेही पल्लवित करती हो ऐसी, एक रत्नोंकी पीठ बनाई और उस पीठपर चैत्यवृक्षकी शाखाओंके अंतके पत्तोंसे बार बार साफ होता हो ऐसा,एक रत्नछंद बनाया। उसके बीचमें पूर्वकी तरफ विकसित कमलकोशके मध्यमें, कर्णिका (करनफूल) के जैसा, पादपीठ सहित एक रत्नसिंहासन बनाया और उसपर, मानो गंगाकी आवृत्ति किए हुए तीन प्रवाह हों ऐसे, तीन छत्र बनाए। इस तरह, मानो वह पहलेहीसे कहीं तैयार रखा हो और उसे वहाँसे उठाकर यहाँ लाकर रख दिया हो ऐसे, क्षणभरमें देव और असुरोंने मिलकर वहाँ समवसरण की रचना की। (१०५-१२६)

जगतपतिने, भव्यजनोंके हृदयकी तरह मोक्षद्वार रूप उस समवसरणमें पूर्वद्वारसे प्रवेश किया। तत्काल जिसकी शाखाओंके प्रांतपल्लव (अंतिम पत्तें) उसके आभूषणरूप होते थे ऐसे, अशोक वृक्षकी उन्होंने प्रदक्षिणा दी। फिर प्रभु पूर्व दिशाकी तरफ आ, 'नमस्तीर्थाय' कह, राजहंस जैसे कमलपर बैठता है ऐसेही, सिंहासनपर विराजमान हुए। व्यंतर देवोंने तत्कालही, शेष तीन दिशाओंके सिंहासनोंपर भगवानके तीन रूप बनाए। फिर साधु,साध्वी और वैमानिक देवोंकी स्त्रियोंने पूर्वद्वारसे प्रवेश कर भक्ति सहित जिनेश्वर और तीर्थको नमस्कार किया। प्रथम गढ़में, प्रथम धर्मरूपी उद्यानके वृक्षरूपी साधु पूर्व और दक्षिण दिशाके मध्यमें बैठे। उनकी पिछली तरफ वैमानिक देवताओं-की स्त्रियाँ खड़ी रहीं और उनके पीछे वैसी तरह साध्वियोंका

समूह खड़ा रहा। भुवनपति, ज्योतिषी और व्यंतरोंकी स्त्रियाँ दक्षिण द्वारसे प्रवेश कर, पूर्व विधिके अनुसार प्रदक्षिणा और नमस्कार कर, नैऋत्य दिशामें बैठीं और तीनों जातियोंके देव, पश्चिम द्वारसे प्रवेश कर, उसी तरह नमस्कार कर, अनुक्रमसे वायव्य दिशामें बैठे। इसतरह प्रभुको समवसरणमें विराजमान हुए जान, अपने विमानोंके समूहसे आकाशको ढकता हुआ इंद्र शीघ्रही वहाँ आया और उसने उत्तर द्वारसे समवसरणमें प्रवेश किया। भक्तिवान इंद्र स्वामीको तीन प्रदक्षिणा दे, नमस्कार कर इस तरह स्तुति करने लगा,—(१३०–१४०)

"हे भगवान! जब आपके गुणोंको सब तरहसे जाननेमें उत्तम योगी भी असमर्थ हैं, तब आपके स्तुति करने लायक गुण कहाँ और नित्य प्रमादी स्तुति करनेवाला मैं कहाँ ? तो भी हे नाथ! मैं यथाशक्ति आपके गुणोंका स्तवन करूँगा। क्या लँगड़े मनुष्यको मार्गपर चलनेसे कोई रोकता है ? हे प्रभो! इस संसाररूपी गरमीसे घबराए हुए प्राणियोंके लिए आपके चरणोंकी छाया जैसे छत्रकी छायाका काम करती है वैसेही आप हमारी भी रक्षा कीजिए। हे नाथ! सूरज जैसे परोपकारके लिए उगता है वैसेही, आप लोक-कल्याणके लिएही विहार करते हैं। आप धन्य हैं! कृतार्थ हैं! मध्याह्नके सूर्यसे जैसे देहकी छाया संकुचित हो जाती है वैसेही, आपके उदयसे प्राणियोंके कर्म चारों तरफसे सुकड़ जाते हैं। वे पशु भी धन्य हैं जो सदा आपके दर्शन करते हैं! और वे स्वर्गके देवता भी अधन्य हैं जो आपके दर्शन नहीं पाते हैं। हे तीन लोकके नाथ! जिनके हृदयरूपी चैत्योंमें आप अधिदेवता विराजमान हैं, वे भव्य

जीव उत्कृष्टोंमें भी उत्कृष्ट हैं। मेरी आपसे एकही प्रार्थना है कि, गाँव गाँव और नगर नगर विहार करते हुए भी आप मेरे हृदय (सिंहासन) का कभी त्याग न करें।" (१४१-१४८)

इस तरह स्वर्गपति इंद्र प्रभुकी स्तुति कर, पंचांगसे भूमि-स्पर्शके साथ प्रभुको प्रणाम कर पूर्व और उत्तर दिशाके मध्यमें बैठा। प्रभु अष्टापद पर्वतपर पधारे हैं, यह समाचार शैलरक्षक पुरुषोंने तत्कालही जाकर चक्रीको सुनाया; कारण वे लोग इसी कामके लिए वहाँ रखे गए थे। दाता चक्रीने भगवानके आनेकी वधाई देनेवाले पुरुषोंको, साढ़े बारह कोटिका सोना दिया। ऐसे प्रसंगोंमें जो कुछ दिया जाता है वह कमही है। फिर महाराज सिंहासनसे उठे और उन्होंने सात-आठ कदम अष्टापदकी दिशाकी तरफ चलकर प्रभुके उद्देशसे प्रणाम किया। उसके बाद वे पुनः जाकर अपने सिंहासनपर बैठे। उन्होंने, प्रभुको वंदना करने जानेके लिए, अपने सैनिकोंको बुलाया। भरतकी आज्ञासे चारों तरफके राजा आकर, इस तरह अयोध्यामें जमा हुए जिस तरह समुद्रके किनारे तरंगें आती हैं। उच्च स्वरसे हाथी गर्जने और घोड़े हिनहिनाने लगे; ऐसा मालूम होता था कि वे अपने सवारोंसे जल्दी चलनेको कह रहे हैं। पुलकित अंगवाले रथी और पैदल लोग बड़े आनंदसे तत्कालही चलने लगे। कारण, भगवानके पास जानेमें राजाकी आज्ञा उनके लिए सोनेमें सुगंधके समान हो पड़ी थी। जैसे बाढ़का पानी बड़ी नदीमें भी नहीं समाता है ऐसेही, अयोध्या और अष्टापदके बीचमें वह सेना समाती न थी। आकाशमें, सफेद छत्र और मयूर छत्रके

एक साथ होनेसे, गंगा जमुनाके संगमसी शोभा हो रही थी। सवारोंके हाथोंके भालोंकी चमकती किरणोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो उन्होंने (भालोंने) दूसरे भाले ऊँचे कर रखे हैं। हाथियोंके ऊपर सवार वीर कुंजर हर्षसे उच्च स्वरमें गर्जना कर रहे थे; ऐसा जान पड़ता था मानो हाथियोंपर दूसरे हाथी सवार हैं। सारे सैनिक जगतपतिको नमस्कार करनेके लिए भरतसे भी अधिक उत्सुक हो रहे थे। कारण,—

"असिकोशस्तदसितो नितांतं निशितोऽभवत्"

[तलवारका म्यान तलवारसे भी अधिक तीक्ष्ण होता है।] उन सबके कोलाहलने द्वारपालकी तरह, मध्यमें स्थित भरत राजासे निवेदन किया कि, सभी सैनिक जमा हो उए हैं। फिर मुनीश्वर जैसे राग-द्वेषको जीतकर मनको पवित्र बनाते हैं वैसेही, महाराजाने स्नान करके अंगको स्वच्छ किया और, प्रायश्चित्त तथा कौतुक-मंगल करके अपने चरित्रके समान, उजले वस्त्र पहने। मस्तकपर रहे हुए सफेद छत्रसे और दोनों तरफके श्वेत चामरोंसे सुशोभित महाराज अपने मंदिर (महल) के बाहरके चबूतरे पर गए और वहाँसे वे इस तरह हाथीपर सवार हुए जिस तरह सूर्य आकाशमें आता है। भेरी, शंख और आनक (ढोलविशेष) वगैरा उत्तम बाजोंकी ऊँची आवाजोंसे, फव्वारेके पानीकी तरह, आकाशको व्याप्त करते, मेघकी तरह हाथियोंके मदजलसे दिशाओंको भरते, तरंगोंसे सागरकी तरह, तुरंगोंसे पृथ्वीको ढकते और कल्पवृक्षसे जुड़े हुए युगलियोंकी तरह हर्ष और शीघ्रतासे युक्त महाराज अपने अंतःपुर और परिवार सहित, थोड़ेही समयमें अष्टापद पर जा पहुँचे। (१४९–१६६)

संयम लेनेकी इच्छा रखनेवाला पुरुष जैसे गृहस्थ धर्मसे उतरकर ऊँचे चारित्रधर्मपर आरूढ़ होता है वैसेही, महाराजा भरत महागजसे उतरकर महागिरि पर चढ़े। उत्तर दिशाके द्वारसे उन्होंने समवसरणमें प्रवेश किया। वहाँ आनंदरूप अंकुरको उत्पन्न करनेमें मेघके समान प्रभु उनको दिखाई दिए। भरतने प्रभुको तीन प्रदक्षिणा दे, उनके चरणोंमें नमस्कार कर, मस्तकपर अंजली रख, इस तरह स्तुति की, "हे प्रभो! मेरे जैसोंका तुम्हारी स्तुति करना मानो घड़ेसे समुद्रको पीनेका प्रयत्न करना है; तथापि मैं स्तुति करूँगा। कारण,—मैं भक्तिसे निरंकुश हो गया हूँ। हे प्रभो! दीपके संपर्कसे जैसे वत्ती भी दीपकपनको प्राप्त होती है वैसेही, तुम्हारे आश्रित भविक जन भी तुम्हारेही समान हो जाते हैं। हे स्वामी! मदमत्त बने हुए इंद्रियरूपी हाथियोंको निर्मद बनानेमें औषधरूप और (भूले-भटकोंको) मार्ग बतानेवाला आपका शासन विजयी होता है। हे तीन भुवनके ईश्वर! आप चार घाति कर्मोंका नाश कर बाकीके चार कर्मोंकी उपेक्षा कर रहे हैं; इसका कारण मेरे खयालसे आपकी लोककल्याणकी भावनाही है। हे प्रभो! जैसे गरुड़के पंखोंमें रहा हुआ पुरुष समुद्रका उल्लंघन करता है वैसेही आपके चरणोंमें लीन भव्यजन इस संसार-समुद्रको लाँघ जाते हैं। हे नाथ! अनंतकल्याणरूपी वृक्षको प्रफुल्लित करनेमें दोहदरूप और विश्वको मोहरूपी महानिद्रासे जगानेवाले प्रातःकालके समान आपके दर्शनका (तत्त्वज्ञानका) जयजयकार होता है। आपके चरणकमलोंके स्पर्शसे प्राणियोंके कर्मोंका नाश हो जाता है। कारण,—चाँदकी कोमल किरणोंसे भी हाथीके दाँत

फूटते हैं। हे नाथ! मेघ-वृष्टिकी तरह और चंद्रकी चंद्रिकाके समान, आपकी कृपा सबपर एकसी रहती है।" (१७०-१८०)

इस तरह प्रभुकी स्तुति कर, उनको नमस्कार कर भरत-पति सामानिक देवताओंकी तरह इंद्रके पीछे जाकर बैठा। देवताओंके पीछे सभी पुरुष बैठे और पुरुषोंके पीछे सभी स्त्रियाँ खड़ी रहीं। प्रभुके निर्दोष शासनमें जैसे चतुर्विध धर्म रहता है वैसेही, समवसरणके प्रथम किलेमें इस तरह चतुर्विध संघ बैठा; दूसरे प्राकारमें (परकोटेमें), सब तिर्यंच परस्पर विरोधी स्वभाव-वाले होते हुए भी स्नेहवाले सहोदर हों ऐसे, आनंद सहित बैठे। समवसरणके तीसरे परकोटेमें आगत राजाओंके सभी वाहन (हाथी-घोड़े वगैरा) देशना सुननेके लिए ऊँचे कान करके खड़े रहे। फिर त्रिभुवनपतिने, सभी भाषाओंवाले समझ जाएँ ऐसी भाषामें और मेघके समान गंभीर वाणीमें देशना देनी आरंभ की। देशना सुनते हुए तिर्यंच, मनुष्य और देवता ऐसे हर्षित हुए, मानो वे अति अधिक बोझसे छुटकारा पा गए हैं; मानो वे इष्टपदको पा गए हैं; मानो उन्होंने कल्याण अभिषेक किया है; मानो वे ध्यानमें लीन हैं; मानो उन्होंने अहमिंद्रपद पाया है; मानो उन्होंने परब्रह्मको पाया है। देशना समाप्त होने-पर महाव्रतका पालन करनेवाले अपने भाइयोंको देख, मनमें दुखी हो, भरत इस तरह विचार करने लगा। (१८१-१८६)

"अफसोस! मैंने यह क्या किया? मैं सदा आगकी तरह अतृप्त मनवाला हूँ, इसीलिए मैंने भाइयोंका राज्य ले लिया। अब यह भोग-फलवाली लक्ष्मी, दूसरोंको दे देना मेरे लिए इसी तरह निष्फल है जिस तरह किसी मूर्खका राखमें घी होमना निष्फल

होता है। कौए भी दूसरे कौओंको बुलाकर अन्नादिक भक्षण करते हैं; मगर मैं अपने भाइयोंके बिना भोग भोग रहा हूँ, इसलिए कौओंसे भी हीन हूँ। मासक्षपणक (एक महिनेका उपवास करनेवाले) जैसे किसी दिन भिक्षा ग्रहण करते हैं वैसे अगर मैं भोग्य संपत्ति अपने भाइयोंको दूँ तो क्या वे मेरे पुण्यसे उसे ग्रहण करेंगे ?" इस तरह सोच, प्रभुके चरणोंमें बैठ भरतने हाथ जोड़ अपने भाइयोंको भोग भोगनेके लिए आमंत्रण दिया।

(१९०-१९४)

उस समय प्रभुने कहा, "हे सरल अंत:करणवाले राजा! ये तेरे बंधु महासत्ववाले हैं और इन्होंने महाव्रत पालनेकी प्रतिज्ञा की है; इसलिए ये संसारकी असारता जानकर पहले त्यागे हुए भोगोंको वमन किए हुए अन्नकी तरह वापिस ग्रहण नहीं करेंगे।" इस तरह भोगसे संबंध रखनेवाले आमंत्रणका जब प्रभुने निषेध किया, तब पश्चाताप युक्त चक्रीने सोचा, "ये मेरे त्यागी बंधु भोग कभी नहीं भोगेंगे, फिर भी प्राणधारण करनेके लिए आहार तो लेंगेही।" ऐसा सोचकर उन्होंने पाँचसौ बड़ी बड़ी बैलगाड़ियाँ भरकर आहार मँगवाया और अपने अनुज बंधुओंको पूर्वकी तरहही आहार लेनेका आमंत्रण दिया।

तब प्रभुने कहा, "हे भरतपति! वह आधाकर्मी (मुनियोंके लिए बनाकर लाया गया आहार) आहार मुनियोंके लिए ग्राह्य नहीं है।" इसप्रकार प्रभुके निषेध करनेपर उन्होंने अकृत और अकारित (न मुनियोंके लिए तैयार किए हुए न तैयार कराए हुए) अन्नके लिए मुनियोंको आमंत्रण दिया, क्योंकि—

"..........शोभते सर्वमार्जवे।"

[सरलतामें सब शोभा देता है।] उस समय "हे राजेंद्र! मुनियोंके लिए राजपिंड ग्राह्य नहीं है" ऐसा कहकर धर्मचक्री प्रभुने चक्रवर्तीको फिरसे रोका। प्रभुने सब तरहसे मुझे मना किया, यों सोचकर, चंद्र जैसे राहुसे दुखी होता है वैसेही, महाराजा भरत पश्चातापसे दुखी होने लगे। भरतको इस प्रकार उलझनमें पड़े हुए देखकर इंद्रने प्रभुसे पूछा, "हे स्वामी! अवग्रह (रहने व फिरनेके लिए आज्ञा लेनी पड़े ऐसे स्थान) कितने प्रकारके हैं?"

प्रभुने कहा, "इंद्र संबंधी, चक्री संबंधी, राजा संबंधी, गृहस्थ संबंधी और साधु संबंधी—ऐसे पाँच प्रकारके अवग्रह होते हैं। ये अवग्रह उत्तरोत्तर पूर्व पूर्वके बाधक होते हैं। उनमें पूर्वोक्त और परोक्त विधियोंमें पूर्वोक्त विधि बलवान है।"

इंद्रने कहा, "हे देव! जो मुनि मेरे अवग्रहमें विहार करते हैं उन्हें मैंने मेरे अवग्रहकी आज्ञा की है।"

इंद्र ऐसा कह, प्रभुके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर खड़ा रहा। यह सुन भरत राजाने पुनः सोचा "यद्यपि उन मुनियोंने मेरे अन्नादिकका आदर नहीं किया, तथापि अवग्रहके अनुग्रहकी आज्ञासे तो मैं धन्य हो सकता हूँ।" ऐसा विचारकर श्रेष्ठ हृदयवाले चक्रीने इंद्रकी तरहही प्रभुके चरणोंके पास जाकर अपने अवग्रहकी भी आज्ञा की। फिर उसने अपने सहधर्मी इंद्रसे पूछा, "अभी यहाँ लाए हुए अन्नादिकका अब मुझे क्या करना चाहिए?"

इंद्रने कहा, "वह सब विशेष गुणवाले पुरुषोंको दे दो।"

भरतने सोचा, "साधुओंके सिवा दूसरे विशेष गुणवान

पुरुष कौन हो सकते हैं ? हाँ ! अब मेरी समझमें आया। निरपेक्ष (वैराग्यवाले) श्रावक भी ऐसेही गुणवान होते हैं, इसलिए यह सब उन्हेंही दे देना योग्य है।" (१९५-२१३)

ऐसा निश्चय करनेके बाद चक्रीने स्वर्गपति इंद्रके प्रकाशमान और मनोहर आकृतिवाले रूपको देखकर आश्चर्यसे पूछा, "हे देवपति ! क्या आप स्वर्गमें भी इसी रूपमें रहते हैं या किसी दूसरे रूपमें ? क्योंकि देवता तो कामरूपी (इच्छित रूप बनानेवाले) कहलाते हैं।"

इंद्रने कहा, "राजन् ! स्वर्गमें हमारा रूप ऐसा नहीं होता, वहाँ जो रूप होता है उसे तो मनुष्य देख भी नहीं सकते।"

भरतने कहा, "आपके उस रूपको देखनेकी मेरी प्रबल इच्छा है, इसलिए हे स्वर्गपति ! चंद्र जैसे चकोरको प्रसन्न करता है, वैसेही आप, अपनी दिव्य आकृतिसे दर्शन देकर मेरे नेत्रोंको प्रसन्न कीजिए।"

इंद्रने कहा, "हे राजा ! तुम उत्तम पुरुष हो, तुम्हारी प्रार्थना व्यर्थ न होनी चाहिए, इसलिए मैं तुम्हें मेरे एक अंगका दर्शन कराऊँगा।" फिर इंद्रने उचित अलंकारोंसे सुशोभित और जगतरूपी मंदिरमें एक दीपके समान अपनी एक उँगली भरतराजाको बताई। प्रकाशित तथा कांतिमान उस उँगलीको देखकर, पूर्णिमाको देखकर जैसे समुद्र उल्लसित होता है वैसेही मेदिनीपति भरत भी उल्लसित हुए। इसप्रकार भरतराजाका मान रखकर, भगवानको प्रणाम कर, संध्याके बादलकी तरह इंद्र तत्काल अंतर्धान हो गए।

चक्रवर्ती भी स्वामीको नमस्कार कर, करनेके कार्योंका

मनमें चिंतन कर, इंद्रकी तरहही अपनी अयोध्या नगरीमें आए। रातको उन्होंने इंद्रकी उँगलीकी स्थापना कर वहाँ अष्टाह्निका उत्सव किया। कहा है—

"भक्तौ स्नेहे च सतां कर्तव्यं तुल्यमेव हि।"

[सज्जनोंका कर्तव्य भक्ति और स्नेह दोनोंहीमें रहता है।] तभीसे लोगोंने इंद्रस्तंभ रोपकर, सर्वत्र इंद्रोत्सव करना आरंभ किया। वह अब भी प्रचलित है। (२१४-२२५)

सूर्य जैसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाता है वैसेही भव्यजनरूपी कमलोंको प्रबोध करनेके लिए भगवान श्री ऋषभस्वामीने अष्टापद पर्वतसे दूसरी जगह विहार किया। (२२६)

ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति

इधर अयोध्यामें भरत राजाने सभी श्रावकोंको बुलाकर कहा, "आप लोग सभी भोजन करनेके लिए मेरे घर सदा आनेकी कृपा कीजिए, कृषि वगैरा काम छोड़िए और निरंतर स्वाध्यायमें लीन रहकर अपूर्व ज्ञान ग्रहण करनेमें तत्पर रहिए। भोजन करके हर रोज मेरे पास आइए और इस तरह बोलिए—

"जितो भवान् वर्द्धते भीस्तस्मान्मा हन मा हन।"

[आप हारे हुए हैं, भय बढ़ता है इसलिए, 'मत मारिये मत मारिये' (अर्थात आत्मगुणोंका नाश मत कीजिए।)]
(२२७-२२९)

चक्रीकी यह बात मानकर वे सदा चक्रीके घर आने लगे और हररोज भोजन करके ऊपर बताए हुए वचन बड़ी तत्परताके साथ स्वाध्यायकी तरह बोलने लगे। देवताओंकी तरह रतिमें मग्न और प्रमादी चक्रवर्ती उन शब्दोंको सुनकर इस

तरह विचार करता, "अरे! मैं किससे हारा हूँ; मेरे लिए किसका भय बढ़ रहा है? हाँ, समझा,—मैं कषायोंसे पराजित हुआ हूँ और कषायोंका भय ही मेरे लिए बढ़ रहा है। इसलिए ये विवेकी मुझे नित्य याद दिला रहे हैं कि आत्माका हनन न करो, न करो! तो भी मैं कैसा प्रमादी और विषय-लोलुप हूँ! मेरी धर्मके प्रति कैसी उदासीनता है! इस संसारपर मेरा कितना मोह है! और महापुरुषके योग्य मेरे इस आचारमें कैसा विपर्यय है! (कैसी गड़बड़ी है!)" इस तरहके विचारोंसे उस प्रमादी राजाका हृदय, गंगाके प्रवाहकी तरह, थोड़ी देरके लिए धर्मध्यानमें प्रवेश करता, परंतु पुनः वह शब्दादिक इंद्रियार्थमें आसक्त हो जाता। कारण,—

"कर्मभोगफलं कोऽपि नान्यथा कर्तुमीश्वरः।"

[कर्मके भोगफलको मिटानेमें कोई भी समर्थ नहीं है।]

(२३०–२३६)

एक दिन रसोइयोंके मुखियेने आकर महाराजसे विनती की, "आजकल भोजन करनेवालोंकी संख्या बहुत अधिक हो गई है; इसलिए यह जानना कठिन हो गया है कि, कौन श्रावक है और कौन नहीं है।" यह सुनकर भरतने कहा, "तुम भी श्रावक हो, इसलिए आजसे तुम परीक्षा करके भोजन दिया करो।" इसके बाद रसोइयोंका मुखिया भोजन करनेके लिए आनेवालोंसे पूछने लगा, "तुम कौन हो? और कितने व्रत पालते हो?" जो कहते कि हम श्रावक हैं और पाँच अणुव्रतों तथा सात शिक्षाव्रतोंका पालन करते हैं उनको वह भरत राजाके पास ले जाता; तब महाराजा भरत ज्ञान, दर्शन और चारित्र-

के चिह्नवाली तीन रेखाएँ, कांकिणीरत्नसे वैकक्ष[1] की तरह, उनकी शुद्धि बतानेवाली, बनने लगे। इसी तरह हर छठे महिने श्रावकोंकी परीक्षा की जाती थी और कांकिणीरत्नसे (उनकी छातीपर) रेखाएँ बनाई जाती थीं। उस चिह्नसे वे भोजन पाते थे और उच्च स्वरसे 'जितो भवान्' इत्यादि (वाक्य) बोलते थे। इससे वे 'महान' नामसे प्रसिद्ध हुए। वे अपने बालक साधुओं-को देने लगे। उनमेंसे कई विरक्त होकर स्वेच्छासे व्रत ग्रहण करने लगे और कई परिसह सहन करनेमें असमर्थ होनेसे श्रावक बनने लगे। कांकिणीरत्नसे चिह्नित उनको भी निरंतर भोजन मिलने लगा। राजा इन्हें भोजन कराता था, इससे दूसरे लोग भी इनको भोजन कराने लगे। कारण—

"पूजितैः पूजितो यस्मात्केन केन न पूज्यते।"

[पूज्य पुरुष जिसको पूजते हैं उसको कौन कौन नहीं पूजता है? अर्थात सभी उसको पूजते हैं।] उनके स्वाध्यायके लिए चक्रीने अर्हतोंकी स्तुति मुनियों तथा श्रावकोंकी समाचा-रीसे पवित्र ऐसे चार वेद रचे। क्रमशः वे 'माहना' के बदले 'ब्राह्मण' इस नामसे प्रसिद्ध हुए और कांकिणी रत्नसे जो रेखाएँ बनाई जाती थीं वे यज्ञोपवीतके रूपमें पहिचानी जाने लगीं। भरत राजाकी जगह जब उनका पुत्र 'सूर्ययशा' गद्दीपर बैठा तब उसके पास कांकिणी रत्न[2] न रहा; इसलिए उसने (तीन तारोंवाला) सोनेका यज्ञोपवीत बनवाकर देना आरंभ

१—अनेककी तरहका एक हार। २—कांकिणी रत्न केवल चक्रवर्तीके पासही रहता है।

किया। सूर्ययशाके बाद महायशा वगैरा राजा हुए;उन्होंने चाँदी-के यज्ञोपवीत बनवाए। उनके बाद दूसरोंने पट्टसूत्रमय (रेशमके धागोंके) यज्ञोपवीत बनवाए और अंतमें रुईके सूतके (धागों-के) यज्ञोपवीत बनवाए जाने लगे। (२२६-२५०)

भरत सूर्ययशा,महायशा,अतिबल,बलभद्र,बलवीर्य, कीर्ति-वीर्य, जलवीर्य और दंडवीर्य-ऐसे क्रमशः आठ पुरुषों तक ऐसा ही आचार रहा। इन्होंने इस भरतार्द्धके राज्यका उपभोग किया और इंद्रके बनाए हुए राज्यमुकुटको भी धारण किया। फिर दूसरे राजा हुए; मगर मुकुट महाप्राण (बहुत वजनदार) होनेसे वे उसे धारण नहीं कर सके। कारण,—

"हस्तिभिर्हस्तिभारो हि वोढुं शक्येत नापरैः।"

[हाथीका वजन हाथीही उठा सकते हैं, दूसरे नहीं उठा सकते।] नवें और दसवें तीर्थंकरोंके बीचमें साधुओंका विच्छेद हुआ और उसी तरह उनके बादमें सात तीर्थंकरोंके अंतरमें शासनका विच्छेद हुआ। उस समयमें अर्हंतकी स्तुति और यतियों तथा श्रावकोंके धर्ममय वेद-जिनकी भरत चक्रवर्तीने रचना की थी-बदले गए। उसके बाद सुलभा और याज्ञवल्क्य आदिके द्वारा अनार्य वेद रचे गए।" (२५१-२५६)

भावी तीर्थंकर, चक्री आदिका वर्णन

चक्रधारी भरत राजा श्रावकोंको दान देते और कामक्रीड़ा संबंधी विनोद करते हुए दिन बिताने लगे। एक बार चंद्र जैसे आकाशको पवित्र करता है वैसेही अपने चरणोंसे पृथ्वीको पवित्र करते हुए भगवान आदीश्वर अष्टापद पर्वतपर पधारे।

देवताओंने तत्कालही वहाँ समवसरणकी रचना की और भगवान उसमें बैठकर धर्मदेशना देने लगे। अधिकारी पुरुषोंने, पवनवेगसे आकर, भरतको प्रभुके पधारनेके समाचार दिए। भरतने पहलेके जितनाही इनाम उन पुरुषोंको दिया। कहा है कि—

"दिने दिने कल्पतरुर्ददानो न हि हीयते।"

[कल्पवृक्ष प्रति दिन देता रहे तो भी क्षीण नहीं होता।] फिर भरत, अष्टापद पर्वतपर समोसरे (पधारे) हुए प्रभुके पास आ, प्रदक्षिणा दे, नमस्कार कर, स्तुति करने लगा।

"हे जगतपति! मैं अज्ञ हूँ तो भी, आपके प्रभावसे आपकी स्तुति करता हूँ। कारण,—

"शशिनं पश्यतां दृष्टिर्मंदापि हि पटूयते।"

[चंद्रको देखनेवाले पुरुषकी मंददृष्टि भी सामर्थ्यवान होती है।] हे स्वामी! मोहरूपी अंधकारमें डूबे हुए इस जगतको प्रकाश देनेमें दीपकके समान और आकाशकी तरह अनंत आपका केवलज्ञान सदा विजयी है। हे नाथ! प्रमादरूपी निद्रामें मग्न मेरे जैसे पुरुषोंके कार्यके लिए आप सूर्यकी तरह वार वार गमनागमन करते हैं। जैसे समय पाकर पत्थरकी तरह जमा हुआ घी आगसे पिघल जाता है वैसेही लाखों जन्मोंमें उपार्जन किए हुए कर्म आपके दर्शनोंसे नाश हो जाते हैं। हे प्रभो! एकांत सुषमकाल (दूसरे आरे) से सुषम दुःखम काल (तीसरा आरा) अच्छा है कि जिस कालमें कल्पवृक्षसे भी अधिक फल देनेवाले आप उत्पन्न हुए हैं। हे सर्वभुवनोंके

स्वामी ! जैसे राजा गाँवों और भुवनोंसे अपनी नगरीको उन्नत करता है वैसेही आप इस भुवनको (भरतखंडको) भूषित करते हैं। जैसा हित पिता, माता, गुरु और स्वामी सब मिलकर भी नहीं कर सकते, वैसा हित आप एक होते हुए भी अनेककी तरह करते हैं। जैसे चाँदसे रात शोभती है, हंसोंसे सरोवर शोभता है और तिलकसे मुख शोभता है वैसेही आपसे यह भुवन शोभता है।"

इस तरह यथाविधि भगवानकी स्तुति करके विनयी भरत राजा अपने योग्य स्थानपर बैठा। (२५७-२७१)

फिर भगवानने एक योजनतक सुनाई देनेवाली और सभी भाषाओंमें समझी जा सके ऐसी, विश्वके उपकारके लिए देशना दी। देशना समाप्त होनेपर भरत राजाने प्रभुको नमस्कार कर रोमांचित हो, हाथ जोड़ निवेदन किया, "हे नाथ ! इस भरत खंडमें जैसे आप विश्वके हितकारी हैं वैसे दूसरे कितने धर्मचक्री होंगे ? और कितने चक्रवर्ती होंगे ? हे प्रभो ! उनके नगर, गोत्र, माता-पिताके नाम, आयु, वर्ण, शरीरका मान, परस्पर अंतर, दीक्षा-पर्याय और गति,ये सब बातें आप बताइए।" (२७२-२७५)

भगवानने कहा, १–"हे चक्री ! इस भरतखंडमें मेरे बाद दूसरे तेईस तीर्थंकर होंगे और तुम्हारे बाद दूसरे ग्यारह चक्रवर्ती होंगे। उनमेंसे बीसवें और बाईसवें तीर्थंकर गौतम गोत्री होंगे और दूसरे कश्यप गोत्री होंगे। वे सभी मोक्षगामी होंगे।

२-अयोध्यामें जितशत्रु राजा और विजया रानीके पुत्र दूसरे अजित नामके तीर्थंकर होंगे। उनकी आयु बहत्तरलाख पूर्वकी,

कांति सोनेके जैसी, काया साढ़े चार सौ धनुष ऊँची और दीक्षा-पर्याय एक पूर्वांग (चौरासी लाख वर्ष) कम एक लाख पूर्व होगी। मेरे और अजितनाथके निर्वाणकालमें पचास लाख कोटि सागरोपमका अंतर होगा। (२७६-२८०)

३-जितारी राजा और सेना रानीके पुत्र तीसरे संभव नामके तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति सोनेके जैसी, आयु साठ लाख पूर्वकी, काया चार सौ धनुष ऊँची और दीक्षा-पर्याय चार पूर्वांग (तीन सौ छत्तिस लाख वर्ष) कम एक लाख पूर्व होगी। और अजितनाथ तथा उनके निर्वाणके बीचमें तीस लाख करोड़ सागरोपमका अंतर होगा। (२८१-२८२)

४-विनीतापुरी (अयोध्या) में संवर राजा और सिद्धार्था रानीके पुत्र अभिनंदन नामक चौथे तीर्थंकर होंगे। उनकी आयु पचास लाख पूर्वकी, काया सोनेके रंग जैसी, साढ़े तीन सौ धनुषकी; और दीक्षा-पर्याय आठ पूर्वांग (६ करोड़ ७२ लाख वर्ष) कम एक लाख पूर्वकी होगी। संभवनाथ और अभिनंदन-नाथके निर्वाणके बीचमें दस लाख करोड़ सागरोपमका अंतर होगा। (२८३-२८४)

५-अयोध्यामें मेघ राजा और मंगला रानीके पुत्र सुमति नामके पाँचवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति सुवर्णके जैसी; आयु चालीस लाख पूर्वकी, काया तीन सौ धनुपकी और दीक्षापर्याय द्वादश पूर्वांग (दस करोड़ आठ लाख वर्ष) कम एक लाख पूर्व-की होगी। अभिनंदननाथ और सुमतिनाथके निर्वाणकालका अंतर नौ लाख कोटि सागरोपमका होगा। (२८५-२८६)

६–कोशांबी नगरीमें धर राजा और सुसीमादेवीके पुत्र पद्मप्रभ नामक छठे तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति लाल, आयु तीस लाख पूर्वकी, काया ढाईसौ धनुषकी और व्रत पर्याय सोलह पूर्वांग (तेरह करोड़ चवालीस लाख बरस) कम एक लाख पूर्वकी होगी। सुमतिनाथ और पद्मप्रभके निर्वाणकालका अंतर नब्बे हजार कोटि सागरोपमका होगा। (२८७–२८८)

७-वाराणसी (बनारस) नगरीमें प्रतिष्ठ राजा और पृथ्वी रानीके पुत्र सुपार्श्व नामक सातवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति सोनेके जैसी, आयु वीस लाख पूर्वकी, काया दो सौ धनुषकी और दीक्षापर्याय वीस पूर्वांग (१६ करोड़ ८० लाख बरस) कम एक लाख पूर्व होगी। पद्मप्रभके और सुपार्श्वनाथके निर्वाणकालका अन्तर नौ हजार कोटि सागरोपमका होगा। (२८९–९०)

८–चंद्रानन नगरमें महासेन राजा और लक्ष्मणादेवीके पुत्र चंद्रप्रभ नामक आठवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति सफेद, आयु दस लाख पूर्व, काया डेढ़ सौ धनुष और व्रतपर्याय चौबीस पूर्वांग (दो करोड़ सोलह लाख बरस) कम एक लाख पूर्व होगी। सुपार्श्वनाथ और चंद्रप्रभुके निर्वाणकालका अंतर नौ सौ कोटि सागरोपमका होगा। (२९१–२९२)

९–काकंदी नगरीमें सुग्रीव राजा और रामादेवीके पुत्र सुविधि नामक नवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति श्वेत, आयु दो लाख पूर्व, काया एक सौ धनुष और व्रतपर्याय अठाईस पूर्वांग (तेईस करोड़ बावन लाख बरस) कम एक लाख पूर्व

होगी। चंद्रप्रभुके और सुविधिनाथके निर्वाणकालका अंतर नब्बे कोटि सागरोपमका होगा। (२६३-२६४)

१०-भद्दिलपुरमें दृढरथ राजा और नंदादेवीके पुत्र शीतल नामक दसवें तीर्थंकर होंगे। उनका वर्ण सोनेके जैसा और शरीर नब्बे धनुषका होगा। उनकी आयु एक लाख पूर्व और दीक्षापर्याय पचीस हजार पूर्व होगी। सुविधिनाथके और शीतलनाथके निर्वाणका अंतर नौ कोटि सागरोपमका होगा।
(२६५-२६६)

११-विष्णुपुरीमें विष्णु नामके राजा और विष्णुदेवी नामकी रानीके श्रेयांस नामक पुत्र ग्यारहवें तीर्थंकर होंगे। उनकी आयु चौरासी लाख वर्षकी और व्रतपर्याय इक्कीस लाख वर्षकी होगी। उनका वर्ण सोनेके जैसा, शरीर अस्सी धनुषका और शीतलनाथके और श्रेयांसनाथके निर्वाणकालका अन्तर छत्तीस हजार छासठ लाख तथा सौ सागरोपम कम, एक करोड़ सागरोपमका होगा। (२६७-२६६)

१२-चंपापुरीमें वसुपूज्य राजा और जयादेवी रानीके वासुपूज्य नामक पुत्र बारहवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति लाल, आयु बहत्तर लाख बरसकी, काया सत्तर धनुष प्रमाणकी और दीक्षापर्याय चौवन लाख वर्षकी होगी। श्रेयांसनाथ और वासुपूज्यके निर्वाणकालका अन्तर चौवन सागरोपमका होगा।
(३००-३०१)

१३-कंपिल नामक नगरमें कृतवर्मा राजा और श्यामादेवी-के विमल नामक पुत्र तेरहवें तीर्थंकर होंगे। उनकी आयु साठ-

लाख वर्षकी, कांति सोनेके जैसी, काया साठ धनुषकी और व्रत-पर्याय पंद्रह लाख वर्षकी होगी। वासुपूज्य और विमलनाथके निर्वाणकालका अंतर तीस सागरोपमका होगा। (३०२-३०३)

१४-अयोध्यामें सिंहसेन राजा और सुयशादेवीके अनंत नामक पुत्र चौदहवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति सुवर्णके समान, आयु तीस लाख वर्ष, काया पचास धनुष प्रमाण, और व्रत-पर्याय साढ़े सात लाख वर्ष होगी। विमलनाथके और अनंत-नाथके निर्वाणकालका अंतर नौ सागरोपमका होगा।

(३०४-३०५)

१५-रत्नपुरमें भानु राजा और सुव्रतादेवीके धर्म नामक पुत्र पंद्रहवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति स्वर्णके समान, आयु दस लाख वर्षकी, काया पैंतालीस धनुषकी और व्रतपर्याय ढाई लाख वर्षकी होगी। अनंतनाथ और सुव्रतनाथके निर्वाणकाल-का अंतर चार सागरोपमका होगा। (३०६-३०७)

१६-गजपुर नगरमें विश्वसेन राजा और अचिरादेवीके शांति नामक पुत्र सोलहवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति सुवर्णके समान, आयु आठ लाख बरसकी, काया चालीस धनुषकी और व्रतपर्याय पचीस हजार बरसकी होगी। धर्मनाथ और शांति-नाथके निर्वाणकालका अंतर पौन पल्योपम कम तीन साग-रोपमका होगा। (३०८-३०९)

१७-गजपुरमें शूर राजा और श्रीदेवी रानीके कुंथु नामक पुत्र सत्रहवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति सुवर्णके समान, काया पैंतीस धनुष प्रमाणकी, आयु पचानवे हजार बरसकी और

दीक्षापर्याय तेईस हजार साढ़े सात सौ वरसकी होगी। शांतिनाथ और कुंथुनाथके निर्वाणकालका अन्तर आधे पल्योपमका होगा। (३१०-३११)

१८-उसी गजपुरमें सुदर्शन राजा और देवी रानीके अर नामक पुत्र अठारहवें तीर्थंकर होंगे। इनकी कांति सुवर्णके समान, आयु चौरासी हजार वरसकी, काया तीस धनुषकी और व्रतपर्याय इक्कीस हजार वरसकी होगी। कुंथुनाथ और अरनाथके निर्वाणकालमें एक हजार करोड़ वर्ष कम पल्योपमके चौथे भागका अन्तर होगा। (३१२-३१३)

१९-मिथिला नगरीमें कुंभ राजा और प्रभावती देवीके मल्लीनाथ नामकी पुत्री उन्नीसवीं तीर्थंकर होंगी। इनकी कांति नीलवर्णकी, आयु पचानवे हजार वरसकी, काया पच्चीस धनुषकी और व्रतपर्याय बीस हजार नौ सौ वरसकी होगी। अरनाथ और मल्लीनाथके निर्वाणकालका अंतर एक हजार कोटि वरसका होगा। (३१४-३१५)

२०-राजगृह नगरमें सुमित्र राजा और पद्मादेवीके सुव्रत नामक बीसवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति कृष्णवर्णकी, आयु तीस हजार वरसकी, काया बीस धनुषकी और दीक्षापर्याय साढ़े सात हजार वरसकी होगी। मल्लीनाथ और सुव्रतनाथके निर्वाणकालका अंतर चौवनलाख वरसका होगा। (३१६-३१७)

२१-मिथिला नगरीमें विजय राजा और वप्रादेवी रानीके नमि नामक पुत्र इक्कीसवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति सुवर्णके समान, आयु दस हजार वरस, काया पंद्रह धनुष और

व्रतपर्याय ढाई हजार बरस होगी। मुनिसुव्रत स्वामी और नमिनाथके निर्वाणकालका अंतर छः लाख वर्ष होगा।

(३१८-३१९)

२२-शौर्यपुरमें समुद्रविजय राजा और शिवादेवी रानीके नेमि नामक पुत्र बाईसवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति श्याम-वर्णकी, आयु हजार बरसकी, काया दस धनुषकी और दीक्षा-पर्याय सात सौ बरसकी होगी। नमिनाथ और नेमिनाथके निर्वाणकालका अंतर पाँच लाख बरसका होगा। (३२०-३२१)

२३-वाराणसी (काशी) नगरीमें अश्वसेन राजा और वामादेवी रानीके पार्श्वनाथ नामक पुत्र तेईसवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति नीलवर्णकी, आयु सौ बरसकी, काया नौ हाथकी और व्रतपर्याय सत्तर बरसकी होगी। नेमिनाथ और पार्श्व-नाथके निर्वाणकालका अंतर तिरासी हजार साढे सात सौ बरसका होगा। (३२२-३२३)

२४-क्षत्रियकुंड गाँवमें सिद्धार्थ राजा और त्रिशलादेवी रानीके पुत्र वर्द्धमान अपर नाम महावीर नामक चौवीसवें तीर्थंकर होंगे। उनकी कांति सुवर्णके जैसी, आयु बहत्तर बरसकी, काया सात हाथकी और व्रतपर्याय बयालीस बरसकी होगी। पार्श्वनाथ और महावीर स्वामीके निर्वाणकालका अंतर ढाई-सौ बरस का होगा। (३२४-३२५)

चक्रवर्ती

चक्रवर्ती सभी कश्यप गोत्रके होंगे। उनकी कांति सोनेके समान होगी। उनमेंसे आठ मोक्षमें जाएँगे, दो स्वर्गमें जाएँगे

और दो नरकमें जाएँगे।

१-तुम (पहले चक्रवर्ती) मेरे समयमें हुए हो।

२-अयोध्या नगरीमें अजितनाथ तीर्थंकरके समयमें सगर नामक दूसरा चक्रवर्ती होगा। वह सुमित्र राजा और यशोमती-रानीका पुत्र होगा। उसकी काया साढ़े चार सौ धनुषकी और आयु बहत्तर लाख पूर्वकी होगी।

३-श्रावस्ती नगरीमें समुद्रविजयराजा और भद्रा रानीके मघवा नामक पुत्र तीसरे चक्रवर्ती होंगे। उनकी काया साढ़े-बयालीस धनुषकी और आयु पाँच लाख बरसकी होगी।

४-हस्तिनापुरमें अश्वसेन राजा और सहदेवी रानीके सनत्कुमार नामक पुत्र चौथे चक्रवर्ती होंगे। उनकी काया साढ़े-उनचालीस धनुष प्रमाणकी और आयु तीन लाख बरसकी होगी।

ये दोनों चक्रवर्ती धर्मनाथ और शांतिनाथके अंतरमें होंगे और तीसरे देवलोकमें जाएँगे।

५, ६, ७-शांति, कुंथु और अर, ये तीन तीर्थंकर, चक्रवर्ती भी होंगे।

८-उनके बाद हस्तिनापुरमें कृतवीर्य राजा और तारा-रानीके पुत्र सुभोम नामक आठवें चक्रवर्ती होंगे। उनकी आयु साठ हजार बरसकी और काया अठाईस धनुषकी होगी। ये अरनाथ और मल्लीनाथके समयमें होंगे और सातवें नरकमें जाएँगे।

९–वाराणसीमें (बनारसमें) पद्मोतर राजा और ज्वाला रानीके पद्म नामक पुत्र नवें चक्रवर्ती होंगे। उनकी आयु तीस-हजार बरसकी और काया वीस धनुषकी होगी।

१०-कांपिल्य नगरमें महाहरि राजा और मेरादेवीके पुत्र हरिषेण नामक दसवें चक्रवर्ती होंगे। उनकी आयु दस हजार-बरसकी और काया पंद्रह धनुषकी होगी।

ये दोनों (पद्म और हरिषेण) चक्रवर्ती मुनिसुव्रत और नमिनाथ अर्हंतके समयमें होंगे।

११–राजगृह नगरमें विजय राजा और वप्रादेवीके जय नामक पुत्र ग्यारहवें चक्रवर्ती होंगे। उनकी आयु तीन हजार-वरसकी और काया बारह धनुषकी होगी। वे नमिनाथ और नेमिनाथके अंतरमें होंगे।

वे तीनों (पद्म, हरिषेण और जय) चक्री मोक्षमें जाएँगे।

१२–कांपिल्य नगरमें ब्रह्म राजा और चुलनी रानीके ब्रह्मदत्त नामक पुत्र बारहवें चक्रवर्ती होंगे। उनकी आयु सातसौ वरसकी और काया सात धनुषकी होगी। वे नेमिनाथ और पार्श्व-नाथके अंतरमें होंगे और रौद्र ध्यानमें मरकर सातवीं नरक-भूमिमें जाएँगे। (३२६–३३७)

वासुदेव और बलदेव

ऊपर कहे अनुसार तीर्थंकरों और चक्रवर्तियोंकी बातें कहकर प्रभुने, भरतके न पूछनेपर भी, कहा–"चक्रवर्तियोंसे आधे पराक्रमवाले और तीन खंड पृथ्वीका उपभोग करनेवाले

नौ वासुदेव कृष्णवर्णवाले होंगे। उनमेंसे एक, आठवें वासुदेव कश्यपगोत्री और बाकीके आठ गौतमगोत्री होंगे। उनके सापत्न भ्राता(सौतले भाई)भी नौ होंगे। उनके वर्ण श्वेत होंगे। वे वलदेव कहलाएँगे।

१–पोतनपुर नगरमें प्रजापति राजा और मृगावती रानीके त्रिपृष्ट नामक प्रथम वासुदेव होंगे। उनका शरीर अस्सी धनुषका होगा। जब श्रेयांस जिनेश्वर पृथ्वीपर विचरण करते होंगे तब वे (त्रिपृष्ट) चौरासी लाख वरसकी आयु पूर्ण कर अंतिम नरकमें जाएँगे।

२-द्वारका नगरीमें ब्रह्म राजा और पद्मावती देवीके द्विपृष्ट नामक पुत्र दूसरे वासुदेव होंगे। उनकी सत्तर धनुषकी काया और वहत्तर लाख वर्षकी आयु होगी। वे वासुपूज्य जिनेश्वरके विहारके समयमें होंगे और अंतमें छठी नरकभूमिमें जाएँगे।

३–द्वारकामें भद्र राजा और पृथ्वीदेवीके पुत्र स्वयंभू नामक तीसरे वासुदेव होंगे। उनकी आयु साठ लाख वरसकी और काया साठ धनुषकी होगी। वे विमल प्रभुको वंदना करनेवाले (अर्थात विमलनाथ तीर्थंकरके समयमें) होंगे। वे अंतमें आयु पूर्ण कर छठी नरकभूमिमें जाएँगे।

४–उसी नगरीमें यानी द्वारकमें सोम राजा और सीतादेवीके पुरुषोत्तम नामक पुत्र चौथे वासुदेव होंगे। उनकी काया पचास धनुषकी और उम्र तीस लाख वरसकी होगी। वे अनंतनाथ प्रभुके समयमें होंगे और मरकर छठी नरकभूमिमें जाएँगे।

५–अश्वपुर नगरमें शिवराज राजा और अमृतादेवी रानी-

के पुरुषसिंह नामक पुत्र पाँचवें वासुदेव होंगे। उनकी काया चालीस धनुषकी और आयु दस लाख बरसकी होगी। वे धर्मनाथ जिनेश्वरके समयमें होंगे और आयु पूर्ण कर छठी नरकभूमिमें जाएँगे।

६–चक्रपुरी नगरीमें महाशिर राजा और लक्ष्मीवती रानी के पुरुषपुंडरीक नामक पुत्र छठे वासुदेव होंगे। उनकी काया उन्तीस धनुषकी और आयु पैंसठ हजार बरसकी होगी। वे अरनाथ और मल्लीनाथके अंतरमें होंगे और आयु पूर्ण कर छठी नरकभूमिमें जाएँगे।

७–काशी नगरीमें अग्निसिंह राजा और शेषवती रानीके दत्त नामक पुत्र सातवें वासुदेव होंगे। उनकी काया छब्बीस धनुषकी और आयु छप्पन हजार बरसकी होगी। वे भी अरनाथ व मल्लीनाथ स्वामीके मध्यवर्ती समयमेंही होंगे और आयु पूर्ण कर पाँचवीं नरकभूमिमें जाएँगे।

८–अयोध्यामें दशरथ राजा और सुमित्रा रानीके नारायण नामसे प्रसिद्ध लक्ष्मण नामक पुत्र आठवें वासुदेव होंगे। उनकी काया सोलह धनुषकी और आयु बारह हजार बरसकी होगी। वे मुनिसुव्रत और नमि तीर्थंकरके मध्यवर्ती समयमें होंगे और आयु पूर्णकर चौथी नरकभूमिमें जाएँगे।

९–मथुरा नगरीमें वसुदेव राजा और देवकी रानीके कृष्ण नामक नवें वासुदेव होंगे। उनकी काया दस धनुषकी और आयु एक हजार बरसकी होगी। नेमिनाथके समयमें होंगे और मरकर तीसरी नरकभूमिमें जाएँगे। (३३८–३५७)

[नीचे बलभद्रोंके चरित्र दिए गए हैं। इनके पिताओंके नाम, उनकी कायाका प्रमाण और उनके उत्पन्न होनेके नगर सब वासुदेवोंके समानही होते हैं। इसलिए यहाँ नहीं दिए गए हैं। हरेक बलदेव क्रमशः वासुदेवके समयमेंही हुए हैं।]

१–भद्रा नामकी माताके अचल नामक पुत्र पहले बलदेव होंगे। उनकी आयु पचासी लाख बरसकी होगी।

२–सुभद्रा माताके विजय नामक पुत्र दूसरे बलदेव होंगे। उनकी आयु पचहत्तर लाख बरसकी होगी।

३–सुप्रभा माताके भद्र नामक तीसरे बलदेव होंगे। उनकी आयु पैंसठ लाख बरसकी होगी।

४–सुदर्शना माताके सुप्रभ नामक चौथे बलदेव होंगे। उनकी आयु पचपन लाख बरसकी होगी।

५–विजया माताके सुदर्शन नामक पाँचवें बलदेव होंगे। उनकी आयु सत्तर लाख बरसकी होगी।

६–वैजयंती माताके आनंद नामक पुत्र छठे बलदेव होंगे। उनकी आयु पचासी हजार बरसकी होगी।

७–जयंती माताके नंदन नामक सातवें बलदेव होंगे। उनकी आयु पचास हजार बरसकी होगी।

८–अपराजिता (प्रसिद्ध नाम कौशल्या) माताके पद्म (प्रसिद्ध नाम रामचंद्र) नामक पुत्र आठवें बलदेव होंगे। उनकी आयु पंद्रह हजार बरसकी होगी।

९–रोहिणी माताके राम (प्रसिद्ध नाम बलभद्र) नामक

नवें वलदेव होंगे। उनकी आयु बारह सौ वरसकी होगी। (३५८-३६६)

इनमेंसे आठ वलदेव मोक्षमें जाएँगे और नवें बलदेव पाँचवें देवलोकमें जाएँगे और वहाँसे आगामी उत्सर्पिणीमें इसी भरतक्षेत्रमें उत्पन्न होकर कृष्ण नामक तीर्थंकरके तीर्थमें सिद्ध होंगे। (३६७)

अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधु, निष्कुंभ, वलि, प्रह्लाद, रावण, और मगधेश्वर (प्रसिद्ध नाम जरासंध) ये नौ प्रतिवासुदेव[1] होंगे। वे चक्रसे प्रहार करनेवाले यानी चक्रके शस्त्रवाले होंगे और उनको उन्हींके चक्रसे वासुदेव मार डालेंगे। (३६८-३६९)

इस तरह प्रभुकी वातें सुनकर और भव्य जीवोंसे भरी हुई सभाको देख, आनंदित हो भरतपतिने प्रभुसे पूछा, "हे जगत्पति! मानो तीनों लोक जमा हुए हों इस तरह इस तिर्यंच, नर और देवमय सभामें कोई ऐसा आत्मा भी है जो आप भगवानकी तरहही तीर्थकी स्थापना कर, इस भरतक्षेत्रको पवित्र करेगा। (३७०-३७२)

प्रभुने कहा, "यह तुम्हारा मरीचि नामक पुत्र—जो प्रथम परिव्राजक (त्रिदंडी) हुआ है—आर्त और रौद्रध्यानसे रहित हो, सम्यक्त्वसे सुशोभित हो, चतुर्विध धर्मध्यानका एकांतमें ध्यान करके रहता है। इसका जीव कीचड़से रेशमी वस्त्रकी तरह और निःश्वाससे दर्पणकी तरह अवतक कर्मसे मलिन है।

१—प्रतिवासुदेव नरकमेंही जाते हैं।

यही जीव अग्निसंयोग[1] से स्वच्छ हुए वस्त्रकी तरह या जातिवंत (उत्तम) सोनेकी तरह शुक्लध्यानरूपी अग्निके संयोगसे क्रमशः शुद्ध होगा। यह पहले तो इसी भरतक्षेत्रमें पोतनपुर नामके नगरमें त्रिपृष्ट नामका प्रथम वासुदेव होगा। फिर अनुक्रमसे पश्चिम महाविदेहमें धनंजय और धारणी नामक दंपतिका पुत्र, प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती होगा। फिर चिरकालतक संसारमें भ्रमण करके इसी भरतक्षेत्रमें महावीर नामक चौबीसवाँ तीर्थंकर होगा। (३७३-३७९)

यह सुन स्वामीकी आज्ञाले भरतेश भगवानकी तरह मरीचिको भी वंदना करने गए। वहाँ जा वंदना करते हुए भरतने कहा, "आप त्रिपृष्ट नामक प्रथम वासुदेव और महाविदेहक्षेत्रमें प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती होंगे; मगर मैं न आपके वासुदेवपनको वंदना करता हूँ और न चक्रवर्तीपनको ही। इसी तरह आपकी इस परिव्राजकताको भी वंदना नहीं करता। मैं वंदना इसलिए करता हूँ कि आप भविष्यमें चौबीसवें तीर्थंकर होंगे।" यों कह तीन प्रदक्षिणा दे, मस्तकपर अंजलि जोड़ भरतेश्वरने मरीचिको वंदना की। पश्चात पुनःजगत्पतिको वंदना कर, सर्पराज जैसे भोगवतीमें जाता है वैसेही, भरतेश्वर अयोध्यामें गया। (३८०-३८४)

मरीचिका कुलमद और नीच गोत्रका बंध

भरतेश्वरके जानेके बाद, उनके वचनोंसे हर्षित हो मरीचिने तीन बार ताली बजा, आनंदकी अधिकतासे इस तरह

१—यहाँ 'अग्निसंयोगसे' अभिप्राय रेशमी वस्त्र साफ करने के लिए की जानेवाली क्रियासे है।

बोलना आरंभ किया, "अहो ! मैं सर्व वासुदेवोंमें पहला वासुदेव हूँगा, विदेहमें चक्रवर्ती हूँगा और (भरतमें) अंतिम तीर्थंकर वनूँगा। मेरे सभी (मनोरथ) पूर्ण हुए। सभी तीर्थंकरोंमें मेरे दादा प्रथम तीर्थंकर हैं, चक्रवर्तियोंमें मेरे पिता प्रथम चक्रवर्ती हैं और वासुदेवोंमें मैं पहला वासुदेव हूँगा। इससे मेरा कुल श्रेष्ठ है। हाथियोंमें जैसे ऐरावत हाथी श्रेष्ठ है, सभी ग्रहोंमें जैसे सूर्य श्रेष्ठ है और सभी तारोंमें जैसे चंद्र श्रेष्ठ है वैसेही सभी कुलोंमें एक मेरा कुलही श्रेष्ठ है।" मकड़ी जैसे अपनी लारसे तार निकाल कर जाला वनाती है और फिर स्वयंही उसमें फँस जाती है वैसेही मरीचिने अपने कुलका मद करके नीच गोत्र वाँधा।

(३८५-३९०)

भगवान ऋषभस्वामी गणधरों सहित विहारके वहाने पृथ्वीको पवित्र करनेके लिए वहाँसे रवाना हुए। कोशल देशके लोगोंको पुत्रकी तरह कृपासे धर्ममें कुशल करते हुए, मानो परिचित हों ऐसे मगध देशके लोगोंको तपमें प्रवीण वनाते हुए, कमलके कोशको जैसे सूर्य विकसित करता है वैसेही काशी देशके लोगोंको प्रवोध देते हुए, समुद्रको चंद्रमाकी तरह, दशार्ण देशको आनंदित करते हुए, मूर्च्छितों (अज्ञानमें वेहोश पड़े हुओं) को सावधान करते हों ऐसे चेदी देशको सचेत करते, वड़े वत्सों (वैलों) की तरह मालव देशसे धर्मधुराको वहन कराते, देवताओंकी तरह गुर्जर देशको पापरहित आशयवाला वनाते और वैद्यकी तरह सौराष्ट्र देशवासियोंको पटु (चतुर) वनाते महात्मा ऋषभदेव शत्रुंजय पर्वतपर पधारे।

(३९१-३९५)

शत्रुंजय गिरि

चाँदीके शिखरोंसे मानो विदेशसे आया हुआ वैताढ्यपर्वत हो, कई सोनेके शिखरोंसे मानो मेरुके शिखर वहाँ आए हों, रत्नोंकी खानोंसे मानो दूसरा रत्नाचल हो, और औषध समूह-से मानो दूसरी जगह आकर रहा हुआ हिमाचल पर्वत हो, ऐसा वह शत्रुंजय पर्वत मालूम होता था। आसक्त होते हुए (बिलकुल पास आए हुए) बादलोंसे मानो उसने सफेद वस्त्र धारण किए हों, और निर्झरणोंके जलसे मानो उसके कंधोंपर अधोवस्त्र लटकते हों ऐसा वह सुशोभित होता था। दिनमें निकट आए हुए सूरजसे मानो उसने ऊँचा मुकुट पहना हो और रातमें पासमें आए हुए चाँदसे मानो उसने चंदनरसका तिलक किया हो ऐसा वह जान पड़ता था। गगनको रोकनेवाले शिखरोंसे मानो अनेक मस्तकोंवाला हो, और ताड़के वृक्षोंसे मानो अनेक भुजदंडवाला हो ऐसा वह मालूम होता था। वहाँ नारियलोंके वनोंमें, उनके पकनेसे पीली पड़ी हुई लुंबोंमें (गुच्छोंमें) अपने बच्चोंके भ्रमसे बंदरोंके झुंड इधरसे उधर दौड़ते थे और आमों-के फलोंको तोड़नेके काममें लगी हुई सौराष्ट्रदेशकी स्त्रियोंके मीठे गायनोंको मृग ऊँचे कान करके सुनते थे। ऊपरी भागकी भूमि, ऊँची शूलोंके बहाने केतकीके पलित (सफेद) केस आए हों वैसे, केतकीके जीर्ण वृक्षोंसे परिपूर्ण थी। हर जगह श्रीखंड (चंदन) वृक्षके रसकी तरह पीले पड़े हुए सिंदुवार (निर्गुंडी)के वृक्षोंसे मानो उसने सारे शरीरपर मांगलिक तिलक किए हों ऐसा वह पर्वत मालूम होता था। वहाँ शाखाओंमें बैठे हुए बंदरोंकी पूछोंसे गुँथे हुए इमलीके वृक्ष, पीपल और वट वृक्षों

जैसे मालूम होते थे। अपनी विशालताकी सम्पत्तिसे, मानो हर्षित हुए हों ऐसे निरंतर फलते हुए पनसके वृक्षोंसे वह पर्वत शोभता था। अमावसकी रात्रिके अंधकारके समान श्लेष्मांतक वृक्षोंसे (लिसोड़ोंके पेड़ोंसे), मानो अंजनाचलकी चूलिकाएँ (शिखर) वहाँ आई हों ऐसा, वह मालूम होता था। तोतेकी चोंचके समान लाल फूलोंवाले किंशुक (पलास) के वृक्षोंसे वह, कुंकुमके तिलकोंवाले बड़े हाथीके समान, शोभता था। किसी जगह दाखकी शराब, किसी जगह खजूरकी शराब और किसी जगह ताल (ताड़) की शराब पीती हुई भील लोगोंकी स्त्रियाँ, उस पर्वतपर-पान गोष्ठियाँ (शराबियोंकी मंडलियाँ) बनाती थीं। सूर्यके अस्खलित किरणरूपी बाणोंसे भी अभेद्य, ऐसे तांबूलोंकी लताओंके मंडपोंसे वह ऐसा मालूम होता था मानो उसने कवच धारण किया हो। वहाँ हरी भरी दूबके अंकुरोंके स्वादसे आनंदित, मृगोंके मंडल बड़े बड़े वृक्षोंके नीचे बैठकर रोमंथ (जुगाली) करते थे। जातिवंत वैडूर्यमणि हों ऐसे, आम्र-फलोंके स्वादमें, जिनकी चोंचें मग्न हैं ऐसे, शुकपक्षियोंसे वह पर्वत मनोहर लगता था। केतकी, चमेली, अशोक, कदंब और बोरसलीके वृक्षोंमेंसे पवनके द्वारा उड़ाए हुए परागसे उसकी शिलाएँ रजोमय (धूलवाली) हो रही थीं और मुसाफिरोंके द्वारा फोड़े हुए नारियलोंके पानीसे उसकी उपत्यका (तराई) पंकिल (कीचवाली) हो रही थी। भद्रशाल आदि वनोंमेंका कोई एक वन वहाँ लाया गया हो, ऐसी विशालतासे सुशोभित अनेक वृक्षोंवाले वनसे वह वन सुंदर लगता था। मूलमें पचास योजन, शिखरमें दस योजन और ऊँचाईमें आठ योजन ऐसे उस शत्रुंजय

पर्वतपर भगवान ऋषभदेव आरूढ़ हुए-चढ़े। (३९६-४१६)

वहाँ देवताओंके द्वारा बनाए गए समवसरणमें सर्वहित-कारी प्रभु बैठे और देशना देने लगे। गंभीर गिरासे देशना देते हुए प्रभुकी वाणीसे उस गिरिमेंसे प्रतिध्वनि होती थी, उससे ऐसा जान पड़ता था कि वह पर्वत प्रभुके पीछे अपनी गुफामें बैठा हुआ बोल रहा है। चौमासेके अंतमें मेघ जैसे वर्षासे विराम पाता है वैसेही, प्रथम पौरुषी पूर्ण होनेके बाद प्रभु देशनासे विराम पाए और वहाँसे उठकर मध्यगढ़में देवोंके द्वारा बनाए गए देवछंदमें जाकर बैठे। फिर मांडलिक राजाके पास जैसे युवराज बैठता है वैसेही, सभी गणधरोंमें मुख्य श्री पुंडरीक गणधर स्वामीके मूलसिंहासनके नीचेकी पादपीठपर बैठे और पूर्वकी तरहही सारी सभा बैठी। तब वे (पुंडरीक) भगवानकी तरहही धर्मदेशना देने लगे। प्रातःकालमें जैसे पवन ओसरूपी अमृतका सिंचन करता है वैसेही दूसरी पोरसी (पहर) समाप्त होने तक उन महात्मा गणधरने देशना दी। प्राणियोंके उपकारके लिए इसी तरह देशना देते हुए प्रभु अष्टापदकी तरह कुछ समय तक वहीं रहे। एक बार विहार करनेकी इच्छासे जगद्गुरुने गणधरोंमें पुंडरीक (कमल) के समान पुंडरीकको आज्ञा दी, "हे महामुनि ! हम यहाँसे दूसरी जगह विहार करेंगे और तुम कोटि मुनियोंके साथ यहीं रहो। इस क्षेत्रके प्रभावसे, परिवार सहित तुमको थोड़ेही समयमें केवलज्ञान होगा। और शैलेशी ध्यान करते हुए तुम परिवार सहित इसी पर्वतपर मोक्ष पाओगे।"

प्रभुकी आज्ञा अंगीकार कर, प्रणाम कर पुंडरीक गणधर कोटि मुनियोंके साथ वहीं रहे। जैसे उद्वेल (मर्यादासे अधिक

ज्वारवाला) समुद्र किनारोंके खड्डोंमें रत्न समूहको डालकर चला जाता है वैसेही प्रभु, पुंडरीकादिको यहीं छोड़कर,परिवार सहित दूसरी जगह विहार कर गए। जैसे उदयाचल पर्वतपर नक्षत्रोंके साथ चंद्रमा रहता है वैसेही दूसरे मुनियोंके साथ पुंड-रीक गणधर उसी पर्वतपर रहे। फिर अतिसंवेगवान (परम त्यागी) वे प्रभुके समान मधुर वाणीसे दूसरे श्रमणोंसे इस तरह कहने लगे,— (४१७–४३२)

"हे मुनियो ! जयकी इच्छा रखनेवालोंको जैसे सीमावर्ती किला (सहायक होता है) वैसेही मोक्षकी इच्छा रखनेवालों-को यह पर्वत क्षेत्रके प्रभावसे सिद्धि देनेवाला है; तब हमें अब मुक्तिकी, दूसरी साधनाके समान संलेखना करनी चाहिए। यह संलेखना द्रव्य और भाव, ऐसे दो तरहकी है। साधुओंका सब तरहके उन्मादों और महारोगोंके कारणोंका नाश करना द्रव्य संलेखना है, और राग-द्वेष, मोह और सभी कषाय-रूपी स्वाभाविक शत्रुओंका विच्छेद करना भाव संलेखना है।" इस तरह कहकर पुंडरीक गणधरने कोटि श्रमणोंके साथ पहले सब तरहके सूक्ष्म और बादर अतिचारोंकी आलोचना की और फिर अति शुद्धिके लिए फिरसे महाव्रतका आरोपण किया। कारण—

"क्षौमस्य क्षालितं द्वित्रिर्यातिनैर्मल्यकारणम् ।"

[वस्त्रको दो तीन वार धोना जैसे निर्मलताका कारण है (वैसेही अतिचार लेकर पुनः साधुताका उच्चारण करना-विशुद्ध होना विशेष निर्मलताका कारण है।)]

फिर उन्होंने—

"जीवाः क्षाम्यंतु सर्वे मे तेषां च क्षांतवानहम् ।
मैत्री मे सर्वभूतेषु वैरं मम न केनचित् ॥"

[मुझे सभी जीव क्षमा करें; मैं सबको क्षमा करता हूँ। मेरी सभी जीवोंसे मित्रता है। मेरा किसीसे वैर नहीं है।] इस तरह कहकर आगार (छूट) रहित और दुष्कर ऐसा भव-चरिम (इस जीवनका अंतिम) अनशन व्रत, उन्होंने सब श्रमणोंके साथ ग्रहण किया। क्षपक श्रेणीमें चढ़े हुए उन परा-क्रमी पुंडरीक गणधरके सभी घाति कर्म, जीर्ण डोरीकी तरह चारों तरफसे क्षय हो गए। दूसरे, कोटि साधुओंके कर्म भी तत्कालही क्षय हो गए। कारण—

"……सर्वसाधारणं तपः ।"

[तप सबके लिए साधारण होता है।] एक महीनेकी संलेखनाके अंतमें चैत्र महीनेकी पूर्णिमाके दिन प्रथम पुंडरीक गणधरको केवलज्ञान हुआ। और फिर दूसरे सभी साधुओंको भी केवलज्ञान हुआ। शुक्लध्यानके चौथे पाएमें स्थित उन अयोगी केवलियोंने बाकी बचे हुए अघाति कर्मोंका नाश कर, मोक्षपद पाया। उस समय स्वर्गसे आकर देवताओंने मरुदेवी माताकी तरह भक्ति सहित उन सबके मोक्ष जानेका उत्सव किया। भगवान ऋषभदेव जैसे प्रथम तीर्थंकर हुए उसी तरह यह पर्वत भी उसी समयसे प्रथम तीर्थरूप हुआ। जहाँ एक साधु सिद्ध होते हैं वह स्थान भी जब पवित्र तीर्थ माना जाता है तब जहाँ (कोटि) मुनि सिद्ध हुए हैं, वहाँकी पवित्रताकी उत्कृष्टताके संबंध-में तो कहनाही क्या है? (४४३–४८०)

भरत राजाने इस शत्रुंजय गिरिपर, मेरुपर्वतके शिखर-की स्पर्द्धा करनेवाला रत्नशिलामय एक चैत्य बनवाया; और उसमें, अंत:करणमें जैसे चेतना रहती है ऐसे, पुंडरीक गणधरकी प्रतिमा सहित भगवान ऋषभस्वामीकी प्रतिमा स्थापन की। (४४८-४४९)

भगवानका निर्माण

भगवान ऋषभदेव जुदा जुदा देशोंमें विहार करके, जैसे अंधोंको आँखें दी जाती हैं वैसेही, भव्यजीवोंको बोधिबीजके (सम्यक्त्वके) दानका अनुग्रह करते थे। प्रभुको केवलज्ञान हुआ तबसे लेकर प्रभुके परिवारमें चौरासी हजार साधु, तीन लाख साध्वियाँ, तीन लाख पचास हजार श्रावक और पाँच लाख चौवन हजार श्राविकाएँ; चार हजार सात सौ पचास चौदह पूर्वी, नौ हजार अवधिज्ञानी, बीस हजार केवलज्ञानी, छ: सौ वैक्रिय लब्धिवाले, बारह हजार छ: सौ पचास मन:-पर्ययज्ञानी, उतनेही वादी और बाईस हजार अनुत्तर विमान-वासी महात्मा हुए। प्रभुने जैसे व्यवहारमें प्रजाकी स्थापना की थी वैसेही, धर्ममार्गमें इस तरह चतुर्विध संघकी स्थापना की। दीक्षा समयसे एक लाख पूर्व बीता तब, इन महात्माने अपना मोक्षकाल निकट जान अष्टापदकी तरफ विहार किया। उस पर्वतके पास आए हुए प्रभु, परिवार सहित मोक्षरूपी महलकी सीढ़ीके समान, उस पर्वतपर चढ़े। वहाँ दस हजार मुनियोंके साथ भगवानने चतुर्दश तप (छ: उपवास) करके पादपोपगमन[1]

१—पादप=वृक्ष; उपगमन=प्राप्त करना। अर्थात वृक्षकी तरह स्थिर रहकर अनशन किया।

अनशन किया। (४४८-४६१)

पर्वतपालकोंने, प्रभुको इस तरह रहते देख, तत्कालही ये समाचार भरतको दिए। प्रभुने चतुर्विध आहारका त्याग किया है, यह बात सुनकर भरतेशको ऐसा दुख हुआ जैसा शूल चुभनेसे होता है; और जैसे वृक्ष जलबिंदु छोड़ते हैं वैसेही अति शोकसे पीड़ित वे आँसू गिराने लगे। फिर वे दुर्वार दुःखसे पीड़ित परिवार सहित पैदलही अष्टापदकी तरफ चले। रस्तेके कठोर कंकरोंकी भी उन्होंने परवाह नहीं की। कारण,—

"वेद्यते वेदना नैव हर्षेणेव शुचापि यत्।"

[हर्षकी तरह शोकमें भी तकलीफ मालूम नहीं होती।] पैरोंमें कंकरोंके चुभनेके कारण रक्त टपकने लगा; उससे उनके पैरोंके चिह्न जमीनपर इस तरह बन गए जिस तरह अलता[१] के निशान होते हैं। पर्वतपर चढ़नेकी गतिमें लेशमात्र भी कमी न हो, इस ख्यालसे वे सामने आते हुए लोगोंकी भी परवाह किए बगैर आगे बढ़ते जाते थे। उनके सरपर छत्र था तो भी, चलते हुए उनको बहुत गरमी मालूम हो रही थी। कारण—

"न तापो मानसो जातु सुधावृष्ट्यापि शाम्यति।"

[मनकी चिंताका ताप अमृतकी वर्षासे भी शांत नहीं होता।] शोकमें मग्न चक्रवर्ती हाथका सहारा देनेवाले सेवकों-को भी, मार्गमें आनेवाले वृक्षोंकी शाखाओंके अगले भागकी तरह एक तरफ हटाते थे। नदियोंमें चलती हुई नौका जैसे किनारेके पेड़ोंको पीछे छोड़ती हुई आगे बढ़ती है वैसेही, सरिता

१—औरतोंके पैरोंमें लगाया जानेवाला एक तरहका लाल रंग।

आगे चलते हुए छड़ीदारोंको वेगसे पीछे हटाते थे। चित्तके वेगकी तरह चलनेमें उत्सुक भरतेश, पद पदपर पिछड़ जानेवाली, चामरधारिणियोंकी राह भी नहीं देखते थे। वेगसे चलनेके कारण उछल उछलकर छातीसे टकरानेके कारण टूटे हुए मोतियोंके हारकी भी उनको खबर न थी। उनका मन प्रभुके ध्यानमें था, इसलिए वे पासके गिरिपालकोंको छड़ीदारोंसे, बार बार बुलाते थे और उनसे प्रभुके समाचार पूछते थे। ध्यानमें लीन योगीकी तरह भरतेश न कुछ देखते थे और न किसीकी बातही सुनते थे; वे केवल प्रभुका ध्यानही करते थे। वेगने मानो मार्गको कम कर दिया हो ऐसे, वे क्षणभरमें अष्टापदके पास जा पहुँचे। साधारण आदमीकी तरह पादचारी होते हुए भी परिश्रमकी परवाह न करनेवाले चक्री अष्टापद पर्वतपर चढ़े। शोक और हर्षसे व्याकुल उन्होंने पर्यंकासनमें बैठे जगत्पतिको देखा। प्रभुको प्रदक्षिणा दे, वंदना कर, देहकी छायाकी तरह पासमें बैठ, चक्रवर्ती उपासना करने लगा। (४६२–४७६)

प्रभुका ऐसा प्रभाव है तो भी इंद्र हमपर कैसे बैठा हुआ है ?' मानो यह सोचकर इंद्रोंके आसन काँपे। अवधिज्ञानसे आसनोंके काँपनेका कारण जान चौसठों इंद्र उस समय प्रभुके पास आए। जगत्पतिको प्रदक्षिणा दे, दुखी हो वे प्रभुके पास इस तरह निश्चल बैठे मानो चित्रलिखित (पुतले) हों।

(४८०–४८२)

उस दिन इस अवसर्पिणीके तीसरे आरेके निन्यानवे पक्ष बाकी रहे थे; माघ महीनेकी वदी १३ का दिन था; पूर्वाह्नका[1]

१—सवेरेसे दोपहर तकके समयको पूर्वाह्न कहते हैं।

समय था; अभिचि नक्षत्रमें चंद्रका योग आया था, उस समय पर्यंकासनमें बैठे उन प्रभुने बादरकाययोगमें रह, बादरकाययोग और बादरवचनयोगको रोका। फिर सूक्ष्मकाययोगका आश्रय कर बादरकाययोग, सूक्ष्ममनोयोग तथा सूक्ष्मवचनयोगको रोका। अंतमें सूक्ष्मकाययोगको भी समाप्त कर सूक्ष्मक्रिया नामक शुक्लध्यानके तीसरे पाएके अंतमें प्राप्त हुए। उसके बाद उच्छिन्नक्रिय नामक शुक्लध्यानके चौथे पाएका, जिसका काल पाँच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारण जितनाही है, आश्रय लिया। फिर केवलज्ञानी, केवलदर्शनी, सर्व दुःखोंसे रहित, आठ कर्मोंको क्षीण कर सर्व अर्थको निष्ठित (सिद्ध) करनेवाले, अनंत वीर्य, अनंत सुख और अनंत ऋद्धिवाले प्रभु, बंधके अभावसे ऐरंड फलके बीजकी तरह, ऊर्ध्वगतिवाले होकर, स्वाभाविक सरल मार्गके द्वारा लोकाग्रको (मोक्षको) प्राप्त हुए। दस हजार श्रमणोंको भी, अनशन व्रत ले क्षपकश्रेणीमें चढ़नेपर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ; और मन, वचन और कायके योगोंको सब तरहसे रोककर, वे भी स्वामीकी तरह तत्कालही परमपदको पाए–मोक्ष गए। (४८२–४९२)

प्रभुके निर्वाण-कल्याणकके समय, सुखका लेश भी नहीं जाननेवाले, नारकियोंकी दुःखाग्नि भी क्षणभरके लिए शांत हुई। उस समय महाशोकसे आक्रांत चक्रवर्ती, वज्रसे पर्वतकी तरह, तत्कालही मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिरे। भगवानके विरहका महादुःख आ पड़ा; मगर उस समय दुःखको शिथिल करनेके कारणरूप रुदनको कोई जानता न था; इसलिए चक्रवर्तीने इस बातको बतानेके लिए, तथा उसके हृदयका भार कम

करनेके लिए, इंद्रने चक्रीके पास बैठकर बड़े जोरसे रोना शुरू किया। इंद्रके साथ सब देवोंने भी रोना आरंभ किया। कारण,—

"समा हि समदुःखानां चेष्टा भवति देहिनाम् ।"

[समान दुःखवाले प्राणियोंकी चेष्टाएँ एकसीही होती हैं।] इन सबका रोना सुन, होशमें आ, चक्रीने भी मानो ब्रह्मांडको फोड़ डालते हों ऐसे ऊँचे स्वरसे रोना शुरू किया। बड़े प्रवाहके वेगसे जैसे पालीबंध (बाँधकी पाल), टूट जाता है वैसेही, उस रुदनसे महाराजाकी बड़ी शोकग्रंथी भी टूट गई। उस समय देवों, असुरों और मनुष्योंके रुदनसे ऐसा मालूम होता था कि तीनों लोकोंमें करुणारसका एकछत्र राज्य है। उस समयसे जगतमें प्राणियोंके शोकसे जन्मे हुए शल्य (शूल) को विशल्य करनेवाले (शोककी शूलको निकालनेवाले—दुःख मिटानेवाले) रुदनका प्रचार हुआ। भरत राजा स्वाभाविक धैर्यका भी त्याग कर, दुःखी हो, तिर्यंचोंको भी रुलाते हुए इस तरह विलाप करने लगे,—

"हे तात ! हे जगद्‌बंधु ! हे कृपारससागर ! हम अज्ञानियोंको इस संसाररूपी अरण्यमें कैसे छोड़ दिया ? दीपकके बगैर जैसे अंधकारमें रहा नहीं जा सकता वैसेही, केवलज्ञानसे सब जगह प्रकाश करनेवाले आपके सिवा हम इस संसारमें कैसे रह सकेंगे ? हे परमेश्वर ! आपने छद्मस्थ प्राणीकी तरह मौन कैसे धारण किया है ? मौनको छोड़कर देशना दीजिए। अब देशना देकर क्या मनुष्योंपर कृपा नहीं करेंगे ? हे भगवान ! आप मोक्ष जा रहे हैं इसलिए नहीं बोलते हैं; मगर मुझे दुखी

जानकर भी मेरे ये बंधु मुझसे क्यों नहीं बोलते हैं ? हाँ ! हाँ ! मैं समझा। ये तो स्वामीकेही अनुगामी हैं। जब स्वामीही नहीं बोलते हैं तो ये भी कैसे बोलेंगे ? अहो ! मेरे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है जो आपका अनुयायी नहीं हुआ हो। तीन लोककी रक्षा करनेवाले आप, बाहुबली वगैरा मेरे छोटे भाई, ब्राह्मी और सुंदरी बहनें, पुंडरीक वगैरा मेरे पुत्र, श्रेयांस वगैरा मेरे पौत्र,—ये सभी कर्मरूपी शत्रुओंका नाश कर मोक्ष गए हैं; मगर मैं अब भी इस जीवनको प्रिय मानता हुआ जिंदा हूँ।"

(४८३-५०६)

ऐसे शोकसे निर्वेद (वैराग्यवान) मानो मरनेको तैयार हो ऐसी दशामें चक्रीको देखकर इंद्रने उसे समझाना आरंभ किया, "हे महासत्त्व भरत! अपने ये स्वामी स्वयं संसार-समुद्र को तैरे हैं और दूसरोंको भी इन्होंने तारा है। किनारेके द्वारा महानदी की तरह, इनके चलाए हुए शासन (धर्म) द्वारा संसारी जीव संसार-समुद्रको तैरेंगे। ये प्रभु खुद कृतकृत्य हुए हैं और दूसरे लोगोंको कृतार्थ करनेके लिए लक्ष पूर्व तक दीक्षावस्थामें रहे हैं। हे राजा! सब लोगोंपर अनुग्रह करके मोक्ष गए हुए इन जगत्पतिके लिए तुम शोक क्यों करते हो? शोक उनके लिए करना चाहिए जो मरकर महादुःखके घररूप चौरासी लाख योनियोंमें अनेक बार भ्रमण करते हैं; मगर मोक्षस्थानमें जानेवालोंके लिए शोक करना किसी भी तरह योग्य नहीं है। हे राजा! साधारण मनुष्यकी तरह प्रभुके लिए शोक करते तुम्हें लाज क्यों नहीं आती? शोक करनेवाले तुमको और शोचनीय (जिनके लिए शोक किया जाय ऐसे) प्रभुको, शोक करना

किंसी भी तरह उचित नहीं है। जो एक वार प्रभुकी देशना सुन लेता है वह हर्ष या शोक किसीसे भी पराभूत नहीं होता है; तब तुमने तो कई बार प्रभुकी देशना सुनी है, फिर भी तुम कैसे शोकके वशमें हो रहे हो ? जैसे वड़े समुद्रके लिए क्षोभ, मेरुपर्वतके लिए कंप, पृथ्वीके लिए उद्वर्तन (उड़ना), वज्रके लिए कुंठत्व (मोथरापन), अमृतके लिए विरसता और चंद्रके लिए उष्णता असंभव है, वैसेही तुम्हारे लिए रुदन करना भी असंभव है (असंभव होना चाहिए।) हे धराधिपति ! तुम धीरज धारण करो और अपने आत्माको जानो; तुम तीन जगतके स्वामी और धैर्यवान भगवानके पुत्र हो।" इस तरह गोत्रके वृद्ध मनुष्यकी तरह इंद्रने भरत राजाको प्रबोध दिया इससे, जल जैसे शीतल होता है वैसेही, भरतने अपना स्वाभाविक धैर्य धारण किया। (५१०-५२१)

फिर इंद्रने तत्कालही, प्रभुके अंगका संस्कार करनेके लिए साधन लानेकी आभियोगिक देवोंको आज्ञा की। वे नंदनवनमेंसे गोशीर्षचंदनकी लकड़ी ले आए। इंद्रके आदेशसे देवताओंने पूर्व दिशामें, गोशीर्षचंदनकी, प्रभुके शरीरके लिए एक गोलाकार चिता बनाई, इक्ष्वाकुवंशमें जन्मे हुए दूसरे महर्षियोंके लिए दक्षिण दिशामें दूसरी त्रिकोणाकार चिता रची और दूसरे साधुओंके लिए पश्चिम दिशामें तीसरी चौरस चिता चुनी। फिर मानो पुष्करावर्त मेघ हों ऐसे देवताओंके पाससे इंद्रने शीघ्रही क्षीर समुद्रका जल मँगवाया। उस जलसे प्रभुके शरीरको स्नान कराया और गोशीर्षचंदनके रसका उसपर लेप किया; पीछे हंस लक्षणवाले (सफेद) देवदुष्य वस्त्रोंसे

परमेश्वरके शरीरको ढका और दिव्य माणिक्यके आभूषणोंसे देवाग्रणी इंद्रने उसे चारों तरफसे विभूषित किया। दूसरे देवताओंने, दूसरे मुनियोंके शरीरोंकी इंद्रकी तरहही भक्तिसे स्नानादिक सभी क्रियाएँ कीं। फिर देवताओंने मानो अलग अलग लाए हों ऐसे तीन जगतके सार-सार रत्नोंसे, हजार पुरुष उठाकर ले जा सकें ऐसी, तीन शिबिकाएँ तैयार कीं। इंद्रने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम कर, स्वामीके शरीरको मस्तकपर उठा शिबिकामें रखा। दूसरे देवताओंने दूसरी शिबिकामें, मोक्षमार्गके अतिथिरूप, इक्ष्वाकुवंशके मुनियोंको, मस्तकपर उठाकर रखा और अन्य सभी साधुओंके शरीरोंको तीसरी शिबिकामें रखा। प्रभुके शरीरवाली शिबिकाको इंद्रने खुद उठाया और दूसरी शिबिकाओंको देवताओंने उठाया। उस समय अप्सराएँ, एक तरफ तालके साथ रास कर रही थीं और दूसरी तरफ मधुर स्वरमें गायन कर रही थीं। शिबिकाओंके आगे देव, धूपदानियाँ लेकर चल रहे थे। धूपदानियोंके धूँएके बहाने मानो वे रोते हों ऐसे मालूम होते थे। कई देवता शिबिकाओंपर फूल डालते थे और कई प्रसादकी तरह उन फूलोंको ले लेते थे। कई आगेकी तरफ देवदूष्यके तोरण बनाते थे और कई यक्षकर्दमसे आगे आगे छिड़काव करते जाते थे। कई गोफनसे फेंके हुए पत्थरकी तरह शिबिकाके आगे लोटते थे और कई मानो मोहचूर्णसे मारे गए हों ऐसे पीछे दौड़ते थे। कई "हे नाथ! हे नाथ!" ऐसे शब्द पुकारते थे और कई "अरे! हम अभागे मारे गए।" ऐसा कहकर आत्मनिंदा करते थे। कई याचना करते थे, "हे नाथ! हमें शिक्षा दीजिए।" और कई कहते थे,

"हे प्रभो ! अब हमारे धर्मसंशयोंको कौन मिटाएगा ?" कई "हम अंधोंकी तरह अब कहाँ जाएँगे ?" कहकर पश्चात्ताप करते थे। और कई कहते थे, "हे पृथ्वी ! हमें मार्ग बता। हम तुझमें समा जाएँ।" (५२२-५४४)

इस तरह व्यवहार करते और बाजे बजाते हुए देवता व इंद्र शिविकाओंको चिताओंके पास लाए। वहाँ कृतज्ञ इंद्रने, पुत्र जैसे पिताके शरीरको रखता है वैसे, प्रभुके शरीरको धीरे धीरे पूर्व दिशाकी चितापर रखा; दूसरे देवताओंने, सहोदरकी तरह इक्ष्वाकु कुलके मुनियोंके शरीरोंको दक्षिण दिशाकी चितापर रखा और योग्य बात जाननेवाले दूसरे देवताओंने, अन्य मुनियोंके शरीरोंको पश्चिम दिशाकी चितामें रखा। फिर इंद्रकी आज्ञासे अग्निकुमार देवोंने उन चिताओंमें आग लगाई और वायुकुमार देवोंने हवा चलाई। इससे चारों तरफसे आग उठी और (चिताएँ) जलने लगीं। देव चिताओंमें घड़े भर भरके घी, शहद और कपूर डालने लगे। जब अस्थियोंके सिवा बाकी सभी धातु जल गईं तब मेघकुमार देवोंने, क्षीरसमुद्रके जलसे चिताकी आगको ठंडा किया। सौधर्मेंद्रने अपने विमानमें प्रतिमाकी तरह पूजा करनेके लिए प्रभुकी ऊपरकी दाहिनी डाढ़ ग्रहण की, ईशानेंद्रने प्रभुकी ऊपरकी बाईं डाढ़ ग्रहण की; चमरेंद्रने निचली दाहिनी डाढ़ ली और बलींद्रने नीचेकी बाईं डाढ़ ली; दूसरे इंद्रोंने प्रभुके दूसरे दाँत ग्रहण किए और अन्य देवोंने प्रभुकी अस्थियां लीं। उस समय जो श्रावक आग माँगते थे उनको देवताओंने तीन कुंडोंकी आग दी। उस आगको लेनेवाले (श्रावक) अग्निहोत्र ब्राह्मण हुए। वे अपने घर जाकर

प्रभुकी चिताग्निको सदा पूजने लगे और धनपति जैसे निर्वात प्रदेशमें (जहाँ हवा न हो ऐसी जगहमें) लक्षदीपकी रक्षा करते हैं वैसे वे उस आगकी रक्षा करने लगे। इक्ष्वाकुवंशके मुनियोंकी चिताग्नि यदि शांत होने लगती थी तो उसे स्वामीकी चिताग्निसे जलाते थे; और दूसरे साधुओंकी चिताग्निको, अगर ठंडी होती थी तो, इक्ष्वाकुवंशके साधुओंकी चिताग्निसे जलाते थे; मगर वे दूसरे साधुओंकी चिताग्निको, दो (प्रभुकी और इक्ष्वाकुकुलके मुनियोंकी) चिताग्नियोंके साथ, संक्रमण नहीं करते थे। यह विधि ब्राह्मणोंमें अब भी चल रही है। कई प्रभुकी चिताग्निकी राख लेकर उसको भक्ति सहित वंदना करते थे और शरीरपर लगाते थे। तभीसे भस्मभूषणधारी तापस हुए। (५४५-५६१)

फिर मानो अष्टापद गिरिके नए तीन शिखर हों ऐसे, उन चिताओंके स्थानमें, देवताओंने रत्नके तीन स्तूप बनाए। वहाँसे उन्होंने नंदीश्वरद्वीप जाकर, शाश्वत प्रतिमाके समीप अष्टाह्निका उत्सव किया और फिर इंद्र सहित सभी देवता अपने अपने स्थानोंपर गए। वहाँ वे अपने अपने विमानोंमें सुधर्मा सभाओंके अंदर माणवक स्तंभपर वज्रमय गोल डिब्बोंमें प्रभुकी डाढ़ें रखकर प्रतिदिन उनकी पूजा करने लगे। इसके प्रभावसे उनके लिए हमेशा विजयमंगल होने लगे। (५६२-५६५)

भरतका अष्टापदपर मंदिर बनवाना

भरत राजाने प्रभुके संस्कारके समीपकी भूमिपर तीन कोस ऊँचा और मानो मोक्षमंदिरकी वेदिका हो ऐसा 'सिंहनिषद्या'

(सिंहोंकीसी बैठकवाला) नामका प्रासाद (मंदिर) रत्नमय पाषाणसे, वार्द्धकि रत्नके पाससे वनवाया। उसकी चारों तरफ, प्रभुके समवसरणकी तरह, स्फटिक रत्नके चार रमणीक द्वार वनवाए और हरेक द्वारके दोनों तरफ शिवलक्ष्मीके भंडारके जैसे रत्नचंदनके सोलह कलश वनवाए। हरेक द्वारपर मानो साक्षात पुण्यवल्ली हो ऐसे सोलह सोलह रत्नमय तोरण वनवाए। प्रशस्तिलिपिके जैसी अष्टमंगलकी सोलह सोलह पंक्तियाँ रचीं, और मानो चार दिग्पालोंकी सभाओंको वहाँ लाए हों ऐसे विशाल मुख्य मंडप करवाए। उन चार मुख्य मंडपोंके आगे चलते हुए श्रीवल्ली मंडपके अंदर चार प्रेक्षासदन (नाटकगृह) मंडप कराए। उन प्रेक्षामंडपोंके बीचमें सूर्यबिंबका उपहास करनेवाले वज्रमय अक्षवाट (जूआ खेलनेके स्थान) वनवाए। और हरेक अक्षवाटके बीचमें कमलमें कर्णिका (करनफूल) की तरह एक एक मनोहर सिंहासन वनवाया। प्रेक्षामंडपके आगे एक एक मणिपीठिका रचाई। उनपर रत्नोंके मनोहर चैत्यस्तूप वनवाए। हरेक चैत्यस्तूपमें आकाशको प्रकाशित करनेवाली, हरेक दिशामें, बड़ी मणिपीठिकाएँ रचीं। उन मणिपीठिकाओं-के ऊपर, चैत्यस्तूपके सामने, पाँच सौ धनुप प्रमाणवाली रत्न-निर्मित अंगोंवाली ऋषभानन, वर्द्धमान, चंद्रानन, व वारिषेण इन चार शाश्वत नामोंकी जिनप्रतिमाएँ स्थापन कीं; पर्यंकासन-में बैठी, मनोहर, नेत्ररूपी कमलिनीके लिए चंद्रिकाके समान वे प्रतिमाएँ ऐसी थीं जैसी नंदीश्वर महाद्वीपके चैत्यके अंदर हैं। हरेक चैत्यस्तूपके आगे अमूल्य, माणिक्यमय, विशाल, सुंदर पीठिका (चबूतरी) वनवाई। हरेक पीठिकापर एक एक

चैत्यवृक्ष बनवाया। हरेक चैत्यवृक्षके पास दूसरी एक एक मणिपीठिका बनवाई; और प्रत्येकपर एक एक इंद्रध्वज बनवाया। वे इंद्रध्वज ऐसे जान पड़ते थे मानो हरेक दिशामें धर्मने अपने जयस्तंभ रोपे हों। हरेक इंद्रध्वजके आगे तीन सीढ़ियों और तोरणोंवाली नंदा नामक पुष्करिणी (बावड़ी) बनवाई। स्वच्छ, शीतल जलसे भरी हुई और विचित्र कमलोंसे सुशोभित वे बावड़ियाँ दधिमुख पर्वतकी आधारभूत पुष्करिणीके समान मनोहर मालूम होती थीं। (५६६-५८५)

उस सिंहनिषद्या नामक महाचैत्यके मध्यभागमें बड़ी मणिपीठिका बनवाई और समवसरणकी तरहही उसके मध्यभागमें विचित्र रत्नमय एक देवछंदक रचा। उसपर अनेक तरहके रंगोंके वस्त्रका चंदोवा बनवाया। वह असमयमें भी संध्या समयके बादलोंकी शोभा उत्पन्न करता था। उस चंदोवेके अंदर और बाजूमें भी वज्रमय अंकुश बनवाए थे; तो भी चंदोवेकी शोभा तो निरंकुश हो रही थी। उन अंकुशोंमें कुंभके समान गोल आँवलेके फल जैसे मोटे मोतियोंके, अमृतधाराके जैसे, हार लटक रहे थे। उन हारोंके प्रांत (अगले) भागोंमें निर्मल मणिमालिकाएँ बनाई थीं; मणियाँ ऐसी मालूम होती थीं मानो वे तीन लोकमें रही हुई मणियोंकी खानोंमेंसे नमूनेके लिए लाई हुई हों। मणिमालिकाओंके अगले भागोंमें रही हुई निर्मल वज्रमालिकाएँ, सखियोंकी तरह, अपनी कांतिरूपी भुजाओंसे, परस्पर आलिंगन करती हों ऐसी मालूम होती थीं। उस चैत्यकी दीवारोंमें विचित्र मणिमय गवाक्ष (झरोखे) बनवाए थे। उनकी प्रभापटलसे (प्रकाशसमूहसे) ऐसा मालूम

होता था मानो उनमेंसे यवनिकाएँ (परदे) उत्पन्न हुई हैं। उनमें जलते हुए अगरके धूपके धूँएके समूह, उन पर्वतपर नई बनी हुई नीलचूलिकाका भ्रम कराते थे। (५८६-५६४)

पूर्वोक्त मध्य देवछंदके ऊपर शैलेशी ध्यानमें रत हों ऐसी हरेक प्रभुके अपने अपने देहके प्रमाण जितनी, अपने अपने देहके वर्णवाली, मानो हरेक प्रभु आपही विराजमान हों ऐसी ऋषभस्वामी वगैरा चौबीस अर्हंतोंकी निर्मल रत्नमय प्रतिमाएँ बनवाकर स्थापन की गईं। उनमें सोलह प्रतिमाएँ रत्नकी, दो प्रतिमाएँ राजवर्त रत्नकी (श्याम), दो स्फटिक रत्नकी (श्वेत), दो वैडूर्य मणिकी (नीली) और दो शोणमणिकी (लाल) थीं। उन सब प्रतिमाओंके रोहिताक्ष मणिके (लाल) आभासवाले अंकरत्नमय (सफेद) नख थे और नाभि, केशके मूल, जीभ, तालु, श्रीवत्स, स्तनभाग तथा हाथ-पैरोंके तलुए, ये स्वर्णके (लाल) थे; बरौनी (पलकोंके केश,) आँखकी पुतलियाँ, रोम, भौंहें और मस्तकके केश रीष्टरत्नमय (श्याम) थे। ओंठ प्रवालमय (लाल) थे, दाँत स्फटिक रत्नमय (सफेद) थे, मस्तकका भाग वज्रमय था और नासिका अंदरसे रोहिताक्ष मणि (लाल) के प्रतिसेक (आभास) वाली-स्वर्णकी थी। प्रतिमाओंकी आँखें लोहिताक्ष मणिके प्रांतभागवाली और अंकमणिसे बनी हुई थीं। इस तरह अनेक प्रकारकी मणियोंसे बनी हुई वे प्रतिमाएँ अत्यंत शोभती थीं। (५६५-६०२)

हरेक प्रतिमाके पीछे, यथायोग्य मानवाली (प्रमाणके अनुसार) छत्रधारिणी, रत्नमय एक एक पुतली थी। हरेक

पुतलीके हाथमें कुरंटक[1] पुष्पोंकी मालाओंसे युक्त मोतियों तथा प्रवालोंसे गुँथा हुआ और स्फटिकमणिके दंडवाला सफेद छत्र था। हरेक प्रतिमाकी दोनों तरफ रत्नकी, चामरधारिणी, दो दो पुतलियाँ थीं; और सामने नाग, यक्ष, भूत और कुंडधारिणी दो दो पुतलियाँ थीं। हाथ जोड़के खड़ी हुई और सारे शरीरमें उजली वे नागादिक देवोंकी रत्नमय पुतलियाँ ऐसी शोभती थीं, मानो नागादि देवही वहाँ बैठे हों। (६०३-६०७)

देवछंदके ऊपर उजले रत्नोंके चौबीस घंटे, संक्षिप्त किए हुए सूर्यबिंबके जैसे माणिक्योंके दर्पण, उनके पास योग्य स्थानोंपर रखी हुई सोनेकी दीवटें, रत्नोंके करंडिए, नदीमें उठनेवाली भँवरीके समान गोलाकार फूलोंकी चँगेरियाँ, उत्तम अंगोछे, आभूषणोंकी पेटियाँ, सोनेकी धूपदानियाँ व आरतियाँ, रत्नोंके मंगलदीपक, रत्नोंकी झारियाँ, मनोहर रत्नमय थाल, सोनेके पात्र, रत्नोंके चंदनकलश, रत्नोंके सिंहासन, रत्नोंके अष्टमंगलीक, तेलके सोनेके गोल डिब्बे, धूप रखनेके लिए सोनेके पात्र, और सोनेके उत्पलहस्तक[2], ये सारी चीजें चौबीसों अर्हंतोंकी प्रतिमाओंके पास-प्रत्येक प्रतिमाके पास ये सभी सत्रह सत्रह चीजें रखी थीं। इस तरह, तरह तरहके रत्नोंका तीन लोकमें अति सुंदर चैत्य, भरत चक्रीकी आज्ञा होते ही, सब तरहकी कलाओंको जाननेवाले वर्द्धकी रत्नने, तत्कालही विधिके अनुसार बना दिया। मानो मूर्तिमान धर्म हो ऐसे चंद्रकांत मणिके गढ़से, तथा दीवारोंपर चित्रित किए गए ईहामृगों (भेड़ियों), बैलों, मगरों,

---

१—कुरंटक या कुरंटिका=एक पीले फूलोंवाला पौधा। इसे कटसरैया भी कहते हैं। २—सोनेके कमलोंके बने हुए करवाल।

घोड़ों, मनुष्यों, किन्नरों, पक्षियों, बालकों, रुरुमृगों (काले हिरनों), अष्टापदों, चमरीमृगों (सुरा गायों), हाथियों, वनलताओं और कमलोंके चित्रोंसे, विचित्र और अद्भुत रचनावाला, वह चैत्य घने वृक्षोंवाले उद्यानके समान शोभता था। उसके आस पास रत्नोंके खंभे थे। मानो आकाशगंगाकी तरंगें हों ऐसी पताकाओंसे वह चैत्य मनोहर लगता था। ऊँचे सोनेके ध्वजदंडोंसे वह उन्नत मालूम होता था। निरंतर प्रसरती (हवामें उड़ती) पताकाओंकी घुघरियोंकी आवाज विद्याधरोंकी कटि-मेखलाओं (कंदोरों) की ध्वनिका अनुसरण करती थीं। उसके ऊपर विशाल कांतिवाले, पद्मराग मणिके अंडोंसे वह चैत्य माणिक्य जड़ी हुई मुद्रिकावाला हो ऐसा शोभता था। किसी जगह वह पल्लवित हो, किसी जगह वह बख्तरवाला हो और किसी जगह वह रोमांचित हो और कहीं किरणोंसे लिप्त हो ऐसा मालूम होता था। गोरूचंदनके रसमय तिलकोंसे वह चिह्नित किया गया था। उसकी चुनाईका हरेक जोड़ ऐसा मिला हुआ था कि वह चैत्य एकही पत्थरका बना हुआसा मालूम होता था। उस चैत्यके नितंबभागपर विचित्र हाव-भावोंसे मनोहर दिखाई देती माणिक्यकी पुतलियाँ रखी थीं, उनसे वह अप्सराओंसे अधिष्ठित मेरुपर्वतके जैसा शोभता था। उसके द्वारके दोनों तरफ चंदनरससे पुते हुए दो कुंभ रखे थे; उनसे वह द्वारपर खिले हुए दो श्वेतकमलोंसे अंकित हो ऐसा मालूम होता था। धूपित करके तिरछी बाँधी हुई, लटकती मालाओंसे वह रमणीक (सुंदर) जान पड़ता था। पाँच रंगोंके फूलोंसे, उसके तलभाग-पर, सुंदर प्रकर (गुलदस्ते) बने हुए थे। यमुना नदीसे जैसे

कलिंदपर्वत प्लावित (भीगा हुआ) रहता है वैसेही कपूर, अगर और कस्तूरीसे बनाए गए धूपके धूँएसे वह सदा व्याप्त (भरा) रहता था। अगली दोनों तरफ और पीछे सुंदर चैत्यवृक्ष तथा माणिक्यकी पीठिकाएँ रची हुई थीं; उनसे वह आभूषणोंकी तरह सुशोभित होता था। और अष्टापद पर्वतके शिखरपर, मानो मस्तकके मुकुटका माणिक्यभूषण हो तथा नंदीश्वरादि चैत्योंकी मानो स्पर्द्धा करता हो ऐसा वह पवित्र जान पड़ता था। (६०८-६२९)

उस चैत्यमें भरत राजाने अपने निन्यावे भाइयोंकी दिव्य रत्नमय प्रतिमाएँ भी बैठाई और प्रभुकी सेवा करती हुई एक अपनी प्रतिमा भी वहाँ स्थापित की। यह भी भक्तिमें अतृप्तिका एक चिह्न है। चैत्यके बाहर भगवानका एक स्तूप (चरणपादुकाका छोटासा मंदिर) बनवाया। उसके पासही अपने निन्यानवे भाइयोंके स्तूप भी बनवाए। वहाँ आने जानेवाले पुरुष उनकी आसातना न करें यह सोचकर लोहेके यंत्रमय आरक्षक (चौकीदार) पुरुष वहाँ खड़े किए। उन लोहेके यंत्रमय पुरुषोंके कारण वह स्थान मृत्युलोकसे बाहर हो ऐसे मनुष्योंके लिए अगम्य हो गया। फिर चक्रवर्तीने दंडरत्नसे उस पर्वतके दंदाने-दाँत बना दिए, इसलिए वह पर्वत सीधा और ऊँचा खंभेसा हो गया; और लोगोंके चढ़ने जैसा न रहा। फिर चक्रवर्तीने उस पर्वतके चारों तरफ मेखलाके समान और मनुष्य जिनको न लाँघ सकें ऐसे, एक एक योजनके अंतरसे आठ सोपान (जीने) बनाए। तभीसे उस पर्वतका नाम अष्टापद प्रसिद्ध हुआ। अन्य लोग उसे हराद्रि (महादेवका पर्वत), कैलाश और स्फटिकाद्रिके नामसे भी जानने लगे। (६३०-६३७)

इस तरह चैत्यनिर्माण करा, उसमें प्रतिष्ठा करा, चंद्र जैसे बादलोंमें प्रवेश करता है वैसेही, चक्रवर्तीने सफेद वस्त्र धारण कर, उसमें प्रवेश किया। परिवार सहित प्रदक्षिणा दे महाराजाने उन प्रतिमाओंको, सुगंधित जलसे स्नान कराया और देवदुष्य वस्त्रसे पोंछा; इससे वे प्रतिमाएँ रत्नके आदर्शकी तरह अधिक उज्ज्वल हुईं। फिर उसने चंद्रिकाके समूहसे निर्मल गाढ़ और सुगंधित गोरुचंदनके रससे प्रतिमाओंपर विलेपन किया और विचित्र रत्नोंके आभूषणों, दिव्य मालाओं और देवदुष्य वस्त्रोंसे उनकी अर्चना की। घंटा बजाते हुए धूप दिया जिसके धुएँकी श्रेणियोंसे उस चैत्यका अंतर्भाग, मानो नीलवल्लीसे अंकित हो ऐसा मालूम होने लगा। उसके बाद, मानो संसाररूपी शीतके भयसे डरे हुए मनुष्यके लिए जलता अग्निकुंड हो ऐसी कपूरकी आरती उतारी। (६३८-६४४)

इस तरह पूजा कर, ऋषभस्वामीको नमस्कार कर, शोक और भयसे आक्रांत हो (अर्थात अति शोक और भयभीत हो) चक्रवर्तीने इस तरह स्तुति की, "हे जगत्सुखाकर ! हे तीन लोकके नाथ ! पाँच कल्याणकोंसे नारकियोंको भी सुख देनेवाले ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ। सूर्यकी तरह विश्वका हित करनेवाले हे स्वामी ! आपने हमेशा विहार करके इस चराचर जगतके ऊपर अनुग्रह किया है। आर्य और अनार्य इन दोनोंपर प्रीति होनेसे आप सदा विहार करते थे, इससे (जान पड़ता है कि) पवनकी और आपकी गति परोपकारके लिए ही है। हे प्रभो ! इस लोकमें मनुष्योंका उपकार करनेके लिए आपने

बहुत समयतक विहार किया था, मगर मुक्तिमें किसका उपकार करनेके लिए आप गए हैं ? आप जिस लोकाग्रमें गए हैं वह सचमुचही लोकाग्र (मोक्ष) हुआ है। और आपने जिसे छोड़ दिया है वह मर्त्यलोक वास्तवमें मर्त्यलोक (मर जाने योग्य) हुआ है। हे नाथ ! जो विश्वका उपकार करनेवाली आपकी देशनाको याद करते हैं वे भव्य प्राणी अब भी आपको साक्षात–सामनेही देखते हैं और जो आपका रूपस्थ (आकृतिका) ध्यान करते हैं उन महात्माओंके लिए भी आप प्रत्यक्ष ही हैं। हे परमेश्वर ! जैसे आपने ममता–रहित होकर सारे संसारका त्याग किया है उसी तरह अब मेरे मनका त्याग कभी न कीजिए।"
(६४५–६५३)

१–इस तरह आदीश्वर भगवानकी स्तुति करनेके बाद हरेक जिनेंद्रकी भी, उनको वंदना कर करके इस तरह स्तुति की।

२–विषय-कषायोंसे अजित, विजयामाताकी कोखमें माणिक्यरूप और जित राजाके पुत्र हे जगतके स्वामी अजितनाथ ! आपकी जय हो !

३-संसाररूपी आकाशका अतिक्रमण करनेमें (लाँघनेमें) सूर्यरूप, श्रीसेनादेवीके गर्भोत्पन्न जितारि राजाके पुत्र हे संभवनाथ ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

४–संवर राजाके वंशमें आभूषणरूप, सिद्धार्था देवीरूपी पूर्व दिशामें सूर्यके समान और विश्वके लिए आनंददायी हे अभिनंदन स्वामी ! आप हमको पवित्र कीजिए।

५–मेघराजाके वंशरूपी वनमें मेघके समान और मंगला

मातारूपी मेघमालामें मोतीरूप हे सुमतिनाथ ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

६–धर राजारूपी समुद्रके लिए चंद्रमाके समान और सुसीमादेवीरूपी गंगा नदीमें कमलके समान हे पद्मप्रभो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

७–श्रीप्रतिष्ठ राजाके कुलरूपी घरके प्रतिष्ठास्तंभरूप और पृथ्वी मातारूपी मलयाचलमें चंदनके समान हे सुपार्श्वनाथ ! मेरी रक्षा कीजिए।

८–महसेन राजाके वंशरूपी आकाशमें चंद्रमाके समान और लक्ष्मादेवीकी कोखरूपी सरोवरमें हंसके समान हे चंद्रप्रभो ! आप हमारी रक्षा कीजिए।

६–सुग्रीव राजाके पुत्र और श्रीरामादेवीरूप नंदनवनकी भूमिमें कल्पवृक्षरूप हे सुविधिनाथ ! हमारा कल्याण शीघ्र कीजिए।

१०–दृढरथ राजाके पुत्र, नंदादेवीके हृदयके आनंदरूप और जगतको आह्लादित करनेमें चंद्रमाके समान हे शीतलस्वामी ! आप हमारे लिए आनंददायी हूजिए।

११–श्रीविष्णुदेवीके पुत्र, विष्णु राजाके वंशमें मोतीके समान और मोक्षरूपी लक्ष्मीके भर्तार हे श्रेयांसप्रभो ! आप हमारे कल्याणका कारण बनिए।

१२–वसुपूज्य राजाके पुत्र, जयादेवी रूपी विदूर पर्वतकी भूमिमें रत्नरूप और जगतके लिए पूज्य हे वासुपूज्य ! आप मोक्षलक्ष्मी दीजिए।

१३–कृतवर्म राजाके पुत्र और श्यामादेवीरूप शमीवृक्ष-मेंसे प्रकटी हुई अग्निके समान हे विमलस्वामी ! आप हमारा मन निर्मल कीजिए।

१४–सिंहसेन राजाके कुलमें मंगलदीपक और सुयशादेवी-के पुत्र हे अनंतभगवान ! आप हमें अनंत सुख दीजिए।

१५–सुव्रतादेवीरूप उदयाचलकी तटी (नदी)में सूर्यरूप और भानु राजाके पुत्र हे धर्मनाथ प्रभो ! मेरी बुद्धिको धर्ममें स्थापन कीजिए।

१६–विश्वसेन राजाके कुलमें आभूषणरूप और अचिरा-देवीके पुत्र हे शांतिनाथ भगवान ! आप हमारे कर्मोंकी शांति-का कारण बनिए।

१७– शूर राजाके वंशरूप आकाशमें सूर्यके समान, श्री-देवीके उदरसे जन्मे हुए और कामदेवका उन्मन्न (वध) करने-वाले हे जगत्पति कुंथुनाथ ! आपकी जय हो।

१८–सुदर्शन राजाके पुत्र और देवी–मातारूप शरदलक्ष्मी-में कुमुदके समान हे अरनाथ ! आप मुझे संसार पार करनेरूप वैभव दीजिए

१९–कुंभराजारूप समुद्रमें अमृतकुंभके समान और कर्मों-का क्षय करनेको महामल्लके समान,प्रभावती देवीसे जन्मे हुए हे मल्लिनाथ ! आप मोक्षलक्ष्मी दीजिए।

२०–सुमित्र राजारूपी हिमाचलमें पद्मद्रहके समान और पद्मावती देवीके पुत्र हे मुनिसुव्रत प्रभो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

२१–वप्रादेवीरूप वज्रखानकी पृथ्वीमें वज्रके समान, विजय राजाके पुत्र और जिनके चरणकमल जगतके लिए पूज्य हैं ऐसे हे नमि प्रभो! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

२२–समुद्र (विजय) को आनंदित करनेमें चंद्रमाके समान, शिवा देवीके पुत्र और परम दयालु, मोक्षगामी हे अरिष्टनेमि भगवान! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

२३–अश्वसेन राजाके कुलमें चूड़ामणिरूप और वामादेवीके पुत्र हे पार्श्वनाथ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

२४–सिद्धार्थराजाके पुत्र, त्रिशला माताके हृदयके आश्वासनरूप और सिद्धिप्राप्तिके अर्थको सिद्ध करनेवाले हे महावीर प्रभो! मैं आपको वंदना करता हूँ। (६५४–६७७)

इस तरह प्रत्येक तीर्थंकरको स्तुतिपूर्वक नमस्कार करके महाराजा भरत उस सिंहनिषद्या चैत्यसे बाहर निकले और प्रियमित्रकी तरह उस सुंदर चैत्यको पीछे फिर फिरकर देखते हुए अष्टापद पर्वतसे नीचे उतरे। उनका मन उस पर्वतमें लगा हुआ था इसलिए, मानो वस्त्रका पल्ला कहीं अटक गया हो ऐसे अयोध्यापति मंदगतिसे अयोध्याकी तरफ चले। शोकके पूरकी तरह सेनासे उड़ी हुई रजके द्वारा दिशाओंको आकुल करते हुए, शोकार्त चक्रवर्ती अयोध्याके पास पहुँचे। मानो चक्रीके सहोदर हों ऐसे, उनके दुःखसे अत्यंत दुःखी बने हुए नगरजनोंकी आँसूभरी आँखोंसे सन्मानित महाराज विनीता नगरीमें पहुँचे। फिर भगवानको याद कर-करके वर्षाके बाद शेष बचे हुए मेघकी तरह, अश्रुबिंदु डालते हुए वे अपने राजमहलमें

गए। जिसका द्रव्य लुट जाता है वह मनुष्य रातदिन जैसे धन-का ही ध्यान किया करता है ऐसे ही प्रभुरूपी धनके चले जानेसे वे उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते, और बाहर-अंदर रात-दिन प्रभुका ही ध्यान करने लगे। किसी भी कारणसे अष्टापद पर्वतकी तरफसे आनेवाले पुरुषोंको, मानो वे प्रभुके कुछ समाचार देने आए हों ऐसे, पहले ही की तरह सन्मान करने लगे। (६७८-६८५)

इस तरह महाराजको शोकाकुल देख मंत्री उनसे कहने लगे, "हे महाराज! आपके पिता श्रीऋषभदेव प्रभुने पहले गृहवासमें रहकर भी, पशुओंके समान अज्ञानी लोगोंको व्यवहारनीतिमें चलाया; इसके बाद दीक्षा ली और थोड़े ही काल बाद केवलज्ञानी हुए। केवलज्ञान पाकर इस जगतके लोगोंको, भवसमुद्रके उद्धार करनेके लिए, उन्हें धर्ममें लगाया। अंतमें स्वयं कृतार्थ हो औरोंको कृतार्थ कर वे परमपदको पाए। ऐसे परम प्रभुका आप शोक क्यों करते हैं?" इसतरह नेक सलाह पाए हुए चक्रवर्ती धीरे धीरे राजके कामकाज करने लगे।
(६८६-६८९)

राहुसे मुक्त चंद्रमाकी तरह धीरे धीरे शोकमुक्त बने हुए भरत चक्री बाहर विहारभूमिमें विचरण करने लगे। विंध्याचलको याद करनेवाले गजेंद्रकी तरह प्रभुके चरणोंका स्मरण कर करके विषाद करनेवाले महाराजके पास आकर रिश्तेदार उन्हें सदा प्रसन्न करने लगे। इससे कई बार परिवारके आग्रहसे वे विनोद उत्पन्न करनेवाली उद्यानभूमिमें जाने लगे और वहाँ मानो स्त्रियोंका ही राज्य हो ऐसे सुंदर स्त्रियोंके समूहके साथ

लतामंडपकी रमणीक शय्याओंमें रमण करने लगे। वहाँ कुसुम हरण करनेवाले विद्याधरोंकी तरह युवान पुरुषोंकी पुष्पचयन-की क्रीड़ाको वे कौतुकसे देखने लगे; कामदेवकी पूजा करती हों ऐसे, वारांगनाएँ फूलोंकी पोशाकें गूँथ गूँथकर महाराजको भेट करने लगीं; मानो उनकी उपासना करनेके लिए असंख्य श्रुतियाँ एकत्रित हुई हों ऐसे, नगरनारियाँ सारे शरीरमें फूलोंके गहने पहन कर उनके आसपास क्रीड़ा करने लगीं, और ऋतुदेव-ताओंके एक अधिदेवता (रक्षक) हों ऐसे सारे शरीरपर फूलोंके आभूषण पहनकर, उन सबके बीचमें महाराजा भरत शोभने लगे। (६६०–६६७)

कभी कभी वे अपने स्त्रीवर्गको साथ साथ लेकर राजहंस-की तरह क्रीड़ावापीमें,स्वेच्छासे क्रीड़ा करनेके लिए जाने लगे। हाथी जैसे नर्मदा नदीमें हथिनियोंके साथ क्रीड़ा करताहै वैसे-ही वहाँ वे सुंदरियोंके साथ जलक्रीड़ा करने लगे। जलकी तरंगें, मानो उन्होंने सुंदरियोंसे शिक्षा ली हो ऐसे, क्षणमें कंठ-में, क्षणमें भुजामें और क्षणमें हृदयमें, उनका आलिंगन करने लगीं; इससे उस समय, कमलके कर्णाभरण और मोतियोंके कुंडल धारण करनेवाले महाराजा, मानो साक्षात वरुणदेव हों ऐसे जलमें शोभने लगे; मानो लीलाविलासके राज्यपर महा-राजाका अभिषेक करती हों ऐसे, "मैं पहली! मैं पहली!" सोचती हुई स्त्रियाँ उनपर जलका सिंचन करने लगीं। मानो अप्सराएँ हों, मानो जलदेवियाँ हों, ऐसे चारों तरफ रही हुई और जलक्रीड़ामें तत्पर ऐसी उन रमणियोंके साथ चक्रीने बहुत समयतक क्रीड़ा की। अपनी स्पर्द्धा करनेवाले कमलोंके

दर्शनसे मानो गुस्से हुईं हों ऐसे मृगाक्षियोंकी आँखें लाल हो गईं, और अंगनाओंके अंगोंसे गल गलके उतरे गाढ़े अंगरागसे कीचड़वाला बना हुआ वह जल यक्षकर्दमसा हो गया। इसी तरह चक्रवर्ती बार बार क्रीड़ा करते थे। (६९७-७०५)

एक बार इसी तरह जलक्रीड़ा करके महाराजा भरत इंद्रकी तरह संगीत करानेके लिए विलासमंडपमें गए। वहाँ वेणु बजानेवाले उत्तम पुरुष मंत्रोंमें ॐकारकी तरह संगीत कर्मसें प्रथम ऐसे मधुर स्वर वेणुमें भरने लगे। वीणा बजानेवाले, कानोंको सुख देनेवाले और व्यंजन धातुओंसे स्पृष्ट ऐसे पुष्पादिक स्वरों द्वारा ग्यारह तरहकी वीणा बजाने लगे। सूत्रधार अपने कविपनका अनुसरण करते हुए, नृत्य तथा अभिनयकी माताके समान प्रस्तार-सुंदर नामकी ताल देने लगे। मृदंग और प्रणव नामके बाजे बजानेवाले, प्रियमित्रकी तरह परस्पर थोड़ासा भी संबंध छोड़े वगैर अपने वाद्य बजानेलगे। 'हा हा' और 'हू हू' नामक देवताओंके गंधर्वोंका अहंकार मिटानेवाले गायक स्वरगीतिसे सुंदर ऐसे नई नई शैलियों (तर्जों) के रागोंको गाने लगे। नृत्य और तांडवमें चतुर नटियाँ विचित्र प्रकारके अंगविक्षेपोंसे सबको अचरजमें डालती हुईं नाचने लगीं। महाराजा भरतने ये देखने योग्य नाटक निर्विघ्नरूपसे देखे। कारण, समर्थ पुरुष चाहे कैसाही व्यवहार करें उनको कौन रोक सकता है? इस तरह संसारका सुख भोगते हुए भरतेश्वरने प्रभुके मोक्ष जानेके बाद पाँच लाख पूर्व बिताए। (७०६-७१४)

भरतका वैराग्य, केवलज्ञान व मोक्ष

एक दिन भरतेश्वर स्नान कर, बलिकर्मकी कल्पना कर,

देवदूष्य वस्त्रसे शरीरको साफ कर, केशोंमें पुष्पमाला गूँथ, गोशीर्षचंदनका सारे शरीरमें लेप कर, अमूल्य और दिव्य रत्नोंके आभूषण सारे शरीरमें धारण कर, अंत:पुरकी अनेक स्त्रियोंके साथ, छड़ीदारके बताए हुए मार्गसे अंत:पुरके अंदरके रत्नमय आदर्शगृहमें गए। वहाँ आकाश और स्फटिकमणिके जैसे निर्मल तथा अपने सारे अंगका प्रतिबिंब देखा जा सके ऐसे मनुष्यकी आकृतिके जितने बड़े दर्पणमें अपने स्वरूपको देखते हुए महाराजाकी अँगुलीमेंसे मुद्रिका निकल पड़ी। जैसे कला करते समय मोरका एकाध पंख गिर पड़े और उसे पता भी न चले वैसे ही महाराजाको, उनकी अँगुलीसे गिरी हुई अँगूठीका पता न चला। धीरे धीरे शरीरके सारे भागको देखते हुए, उन्होंने दिनमें चंद्रिका बिनाकी चंद्रकलाकी तरह अपनी अँगूठीरहित अँगुलीको कांतिहीन देखा। "अरे! यह अँगुली शोभारहित कैसे है?" यों सोचते हुए भरत राजाने जमीनपर पड़ी हुई मुद्रिका देखी। वे विचार करने लगे, "क्या दूसरे अंग भी बिना आभूषणोंके इसी तरह शोभाहीन मालूम होते होंगे?" फिर उन्होंने धीरे धीरे दूसरे आभूषण भी उतारने आरंभ किए।

(७१५-७२३)

पहले मस्तकसे माणिक्यका मुकुट उतारा, इससे मस्तक रत्नविनाकी मुद्रिका जैसा दिखाई दिया। कानोंसे माणिक्यके कुंडल उतारे, इससे दोनों कान चाँद और सूरजहीन पूर्व और पश्चिम दिशाओंके समान मालूम होने लगे। कंठाभूषण हटानेसे उनका गला जल बिनाकी नदीके समान शोभाहीन मालूम

होने लगा। वक्षस्थल (छाती) से हार हटा दिया, इससे वह तारोंरहित आकाशसा शून्य दिखने लगा। भुजबंध निकालनेसे दोनों हाथ लताके वेष्टनसे रहित दो सालवृक्षोंके समान मालूम होने लगे। हाथोंके मूलमेंसे कड़े निकाल डाले, इससे वे आमल-सारक बिनाके प्रासादकी तरह मालूम होने लगे।

दूसरी सभी अँगुलियोंसे अँगूठियाँ निकाल डालीं, इससे वे मणिरहित सर्पके फनके जैसी मालूम होने लगीं। पावोंसे पाद-कटक[1] निकाल दिए, इससे पैर राजहस्तिके स्वर्णकंकड़ोंरहित दाँतोंके समान दिखने लगे। सभी आभूषण निकाल देनेसे उनका शरीर पत्रहीन वृक्षकी तरह दिखने लगा। इस तरह अपने शरीर-को शोभाहीन देखकर महाराजा विचार करने लगे, "अहो! इस शरीरको धिक्कार है! जैसे चित्र बनाकर दीवारकी कृत्रिम शोभा कीजाती है, ऐसेही शरीरकी भी आभूषणोंसे कृत्रिम शोभा की जाती है। अंदर विष्टादिके मलसे और बाहर मूत्रादि के प्रवाहसे मलिन इस शरीरमें, विचार करनेसे, कुछ भी शोभनीय नहीं मालूम होता। खारी जमीन जैसे वर्षाके जलको दूषित करती है वैसेही यह शरीर, विलेपन किए हुए कपूर और कस्तूरी वगैराको भी दूषित करता है। जो विषयोंका त्याग कर मोक्षफल देनेवाला तप तपते हैं वे तत्वके जानकार पुरुषही इस शरीरका फल ग्रहण करते हैं।" इस तरह विचार करते हुए सम्यक् प्रकारसे अपूर्वकरणके अनुक्रमसे क्षपकश्रेणीमें आरूढ़ हुए और शुक्लध्यानको पाए हुए उन महाराजको, जैसे बादलों-

१—पैरोंका एक आभूषण।

के मिटनेसे सूर्य प्रकाशित होता है वैसेही, घातिकर्मोंके नाशसे केवलज्ञान प्रकट हुआ। (७२३-७३८)

उस समय तत्कालही इंद्रका आसन काँपा। कारण,—

"महद्भ्यो महतामृद्धिमपि शंसंत्यचेतनाः ॥"

[अचेतन वस्तुएँ भी महान पुरुषोंकी महान समृद्धि बता देती हैं।] अवधिज्ञानसे जानकर इंद्र भरत राजाके पास आया। भक्त पुरुष स्वामीकी तरह स्वामीके पुत्रकी भी सेवा करते हैं; मगर जब पुत्रको भी केवलज्ञान उत्पन्न हो गया तब वे क्या न करें ? इंद्रने वहाँ आकर कहा, "हे केवलज्ञानी ! आप द्रव्यलिंग स्वीकार कीजिए जिससे मैं आपको वंदना करूँ और आपका निष्क्रमण (गृहत्याग) उत्सव करूँ।" भरतने भी उसी समय बाहुबलीकी तरह पाँच मुट्ठी केशलोचन रूप दीक्षाका लक्षण अंगीकार किया और देवताओंके द्वारा दिए गए रजोहरण वगैरा उपकरणोंको स्वीकार किया। उसके बाद इंद्रने उनको वंदना की। कारण,—

"न जातु वंद्यते प्राप्तकेवलोपि ह्यदीक्षितः।" (७४४)

[केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर भी अदीक्षित पुरुषको वंदना नहीं की जाती।] उसी समय भरत चक्रीके आश्रित दस हजार राजाओंने भी दीक्षा ली। कारण, वैसे स्वामीकी सेवा परलोकमें भी सुख देनेवाली होती है। (७३६-७४५)

फिर पृथ्वीका भार सहन करनेवाले भरत चक्रवर्तीके पुत्र आदित्ययशाका इंद्रने राज्याभिषेक किया। (७४६)

केवलज्ञान होनेके बाद महात्मा भरत मुनिने, ऋषभस्वामी की तरह, गाँवों, खानों, नगरों, अरण्यों, गिरियों, द्रोणमुखों, वगैरामें धर्मदेशनासे भव्य प्राणियोंको प्रतिबोध करते हुए साधु-परिवार सहित एक लाख पूर्व तक विहार किया। अंतमें उन्होंने भी अष्टापद पर्वतपर जाकर विधिसहित चतुर्विध आहारका प्रत्याख्यान किया। एक मासके अंतमें चंद्र जब श्रवण नक्षत्रका था तब अनंत चतुष्क (अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्य) प्राप्त हुए हैं जिनको ऐसे महर्षि भरत सिद्धि-क्षेत्र (मोक्ष) को प्राप्त हुए। (७४७-७५०)

इस तरह भरतेश्वरने सतहत्तर पूर्व लक्ष राजकुमारकी तरह बिताए। उस समय भगवान ऋषभदेवजी पृथ्वीका पालन करते थे। भगवान दीक्षा लेकर छद्मस्थावस्थामें एक हजार बरस तक रहे, ऐसे उन्होंने (भरतने) एक हजार वर्ष मांडलिक राजाकी तरह बिताए। एक हजार वर्ष कम छःलाख पूर्व तक वे चक्रवर्ती रहे। केवलज्ञान उत्पन्न होनेके बाद विश्वपर उपकार करनेके लिए दिनमें सूरजकी तरह उन्होंने एक पूर्व तक पृथ्वीपर विहार किया। इस तरह चौरासी पूर्व लाख आयुका उपभोग कर महात्मा भरत मोक्ष गए। उस समय तत्कालही हर्षित देवताओंके साथ स्वर्गपति इंद्रने उनका मोक्ष-गमनोत्सव किया।

(७५१-७५५)

इस प्रथम पर्वमें, श्री ऋषभदेव प्रभुके पूर्वभवका वर्णन, कुलकरकी उत्पत्ति, प्रभुका जन्म, विवाह, व्यवहार दर्शन, राज्य, व्रत और केवलज्ञान, भरत राजाका चक्रवर्तीपन, प्रभुका और

चक्रीका मोक्षगमन–ये बातें, जो क्रमशः वर्णन की गई हैं, तुम्हारे सभी पर्वों (उत्सवों) का विस्तार करें। (अर्थात तुम्हारे लिए सदा कल्याणकारी हों।)

['आचार्य श्री हेमचंद्राचार्य विरचित 'त्रिषष्टिशलाका
पुरुष चरित्र' नामक महाकाव्यके प्रथम पर्वमें,
मरीचिभव, भावी शलाका पुरुष
भगवन्निर्वाण-वर्णन नामका,
छठा सर्ग समाप्त हुआ।]



श्रीमदर्हते नमः

श्री त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

पर्व दूसरा

श्री अजितनाथ-चरित्र

जयंत्यजितनाथस्य, जितशोणमणिश्रियः ।
नम्रेंद्रवदनादर्शाः पादपद्मद्वयीनखाः ॥१॥

[लाल मणियोंकी शोभाको जीननेवाले और नमस्कार करते हुए इंद्रोंके मुखोंके लिए दर्पणके समान श्री अजितनाथके दोनों चरण-कमलोंके नखोंकी (सदा) जय होती है।]

कर्माहिपाशनिर्नाश—जांगुलिमंत्रसन्निभम् ।
अजितस्वामिदेवस्य चरितं प्रस्तवीम्यतः ॥२॥

[अब (यानी ऋषभदेवस्वामीका चरित्र लिखनेके बाद) मैं (हेमचंद्राचार्य) कर्मरूपी पाशका नाश करनेमें जांगुलीमंत्रके समान भगवान अजितनाथस्वामीके चरित्रका वर्णन करता हूँ।]

प्रथम भव

सब द्वीपोंके बीचमें नाभिके समान जंबूद्वीपके मध्यभागमें, जहाँ दुःषमसुषमा नामक चतुर्थ आरा निरंतर रहता है, महाविदेह नामका क्षेत्र है। उस क्षेत्रमें सीता नामकी महानदीके दक्षिण किनारे पर बहुत समृद्धिवान वत्स नामका देश है। स्वर्गप्रदेशका एक भाग पृथ्वीमें स्थित हो ऐसी अद्भुत सुंदरताको धारण करता हुआ वह देश सुशोभित होता है। उसमें गाँवपर गाँव और शहरपर शहर बसे हुए होनेकी वजहसे शून्यता सिर्फ आकाशमेंही थी। गाँवों और शहरोंमें संपत्ति समान होनेसे उनमें भेद मात्र राजाके आश्रयसेही मालूम होता था। वहाँ, जगह जगह, मानो क्षीर समुद्रमेंसे निकलकर आती हुई धाराओंसे भर गई हों ऐसी, स्वच्छ और मीठे जलकी वापिकाएँ थीं; महात्माओंके अंतःकरणोंके जैसे स्वच्छ, विशाल और जिनके मध्य-भागोंकी गहनता जानी न जा सके ऐसे तालाब थे, और पृथ्वी रूपी देवीके पत्रवल्लीके[1] विलासको विस्तृत बनानेवाले, हरी लताओंवाले बगीचे स्थित थे। गाँव गाँवमें मुसाफिरोंकी तृषाको मिटानेवाले गन्नेके खेत, रसरूपी जलके घड़ों जैसे, गन्नोंसे शोभित थे। प्रत्येक गोकुलमें मानों शरीरधारिणी दूधकी नदियाँ हों ऐसी, दूधका झरना बहानेवाली गाएँ पृथ्वीको भिगोती थीं; और प्रत्येक मार्गपर जैसे जुगलिए लोगोंसे कुरु

१—मुखपर बेल-बूटे आदि, केसर चंदन वगैरासे बनाना।

देशके कल्पवृक्ष शोभित होते हैं, उसी प्रकार, नीचे बैठे हुए मुसाफिरोंसे फलवाले वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। (३-१३)

उस देशमें पृथ्वीके तिलकरूप और दौलतके भंडाररूप, यथा नाम तथा गुण वाली, सुसीमा नामकी नगरी थी। असाधारण समृद्धिसे मानो पृथ्वीके मध्यभागमें कोई असुरदेवोंका नगर प्रगट हुआ हो ऐसा वह नगररत्न सुशोभित था। उस नगरीके घरोंमें यद्यपि स्त्रियाँ अकेली फिरती थीं तथापि रत्नमय दीवारोंमें उनके प्रतिबिंब पड़ते थे इससे ऐसा जान पड़ता था कि वे अपनी सखियोंके साथ हैं। उनके चारों तरफ समुद्रके समान खाईवाला और विचित्र रत्नमय शिलाओंसे युक्त, जगतीके कोटके समान किला शोभता था। मदजल बरसाते हुए हाथियोंके फिरनेसे शहरके रस्तोंकी धूलि, वर्षाऋतुके जलके गिरनेसे जैसे शांत हो जाती है वैसेही, शांत रहती थी। कुलवान स्त्रियोंके घूँघटोंमें सूरजकी किरणें इसी तरह प्रवेश नहीं कर पाती थीं जैसे वे कमलिनीके कोशमें नहीं जा सकती हैं। वहाँ चैत्योंके ऊपर फरीती हुई पताकाएँ मानो हाथोंके इशारोंसे सूर्यको कह रही थीं कि तू प्रभुके मंदिरपर होकर मत जा। आकाशको श्याम करनेवाले और पृथ्वीको जलसे पूरनेवाले उद्यान, जमीनपर आए हुए बादलोंके समान जान पड़ते थे। आकाश तक ऊँचे शिखरवाले स्वर्ण और रत्नमय हजारों क्रीड़ापर्वत मेरु पर्वतके कुमारके समान शोभते थे। वह नगर ऐसा शोभता था मानो धर्म अर्थ और कामने क्रीड़ा करनेके लिए एक ऊँचे प्रकारका संकेतस्थान बनाया हो। ऊपर और नीचे—आकाश और पातालमें स्थित अमरावती और भोगावतीके मध्य-

में रही हुई यह नगरी, अतुल संपत्तिवाली उनकी सहोदरा (सगी बहन) हो ऐसी मालूम होती थी। (१४-२४)

उस नगरमें चंद्रमाके समान निर्मल और गुणरूपी किरणों-से विमल आत्मावाला विमलवाहन नामका राजा राज्य करता था। वह राजा, प्रजाको अपनी संतानके समान पालता था, पोसता था, उनकी उन्नति करता था और उनको गुणवान बनाता था। वह राजा अपनेसे हुए अन्यायको भी सहन नहीं करता था। कारण,—

"चिकित्स्यते हि निपुणैरंगोद्भवमपि व्रणम् ।"

[चतुर लोग अपने शरीरमें हुए फोड़ेकी भी चिकित्सा करते हैं।] वह राजा महापराक्रमी था। अपने आस-पासके राजाओंके मस्तकोंको लीलामात्रहीमें इस तरह झुका देता था जिस तरह हवा वृक्षोंकी डालियोंको झुकाती है। तपोधन महात्मा जैसे अनेक तरहके प्राणियोंकी रक्षा करते हैं उसी तरह, वह परस्पर अबाधित रूपसे त्रिवर्गका (धर्म, अर्थ और कामका) पालन करता था। वृक्ष जैसे बागको सुशोभित करते हैं वैसेही; उदारता, धीरज, गंभीरता और क्षमा वगैरा गुण उसे सुशोभित करते थे। सौभाग्य धुरंधर और फैलते हुए उसके गुण, बहुत समयके बाद आए हुए मित्रकी तरह, सबसे गले मिलते थे। पवनकी गतिकी तरह पराक्रमी उस राजाका शासन पर्वतों, जंगलों और दुर्गादि प्रदेशोंमें भी रुकता न था। सभी दिशाओं-को आक्रांत कर, जिसका तेज फैल रहा है ऐसे, उस राजाके चरण, सूर्यकी तरह, सभी राजाओंके मस्तकोंपर टकराते थे।

जैसे सर्वज्ञ भगवान उसके एकमात्र स्वामी थे उसी तरह, सभी राजाओंका वह एकमात्र स्वामी था। इंद्रकी तरह शत्रुओंकी शक्तिका नाश करनेवाला वह पराक्रमी राजा अपना मस्तक मात्र साधु पुरुषोंके सामनेही झुकाता था। उस विवेकी राजाकी शक्ति, जैसे बाहरके शत्रुओंको जीतनेमें अतुल थी वैसेही, काम-क्रोधादि अंतरंग शत्रुओंको जीतनेमें भी अतुल थी। अपने बलसे वह, जैसे उन्मार्गगामी (सीधे रस्ते न चलनेवाले) और दुर्मद हाथी, घोड़ों वगैराका दमन करता था वैसेही, उन्मार्गगामिनी अपनी इंद्रियोंका भी दमन करता था। पात्रको दिया हुआ दान सीपमें पड़े हुए मेघजलकी तरह बहुत फलदायी होता है; यह सोचकर वह दानशील राजा यथाविधि पात्रकोही दान देता था। जैसे परपुरमें सावधानीके साथ प्रवेश करता हो ऐसे वह धर्मात्मा राजा सब जगह प्रजाके लोगोंको धर्ममार्गपरही चलाता था। चंदनके वृक्ष जैसे मलयाचलकी पृथ्वीको सुगंधमय बनाते हैं उसी तरह वह अपने पवित्र चरित्रसे सारे जगतको सुवासित करता था। शत्रुओंको जीतनेसे, पीड़ित प्राणियोंकी रक्षा करनेसे, और याचकोंको प्रसन्न करनेसे वह राजा युद्धवीर, दयावीर और दानवीर कहलाता था। इस तरह वह, राजधर्ममें रह, बुद्धिको स्थिर रख, प्रमादको छोड़, सर्पराज जैसे अमृतकी रक्षा करता है वैसेही, पृथ्वीकी रक्षा करता था। (२५-४२)

कार्य और अकार्यको जाननेवाले और सार व असारको खोजनेवाले उस राजाके मनमें एक दिन संसारके वैराग्यका भाव उत्पन्न हुआ और वह इस तरह सोचने लगा, "अहो! लाखों योनिरूपी महान भँवरोंमें गिरनेके क्लेशसे भयंकर इस संसार-

समुद्रको धिक्कार है! यह बात कैसे खेदकी है कि संसारमें स्वप्नजालकी तरह क्षणमें दिखाई देने और क्षणमें नाश होनेवाले पदार्थोंसे सभी जंतु मोहित होते हैं। यौवन हवाके द्वारा हिलाए हुए, पताकाके पल्लेकी तरह चंचल है और आयु कुशाके पत्तेपर रहे हुए जलबिंदुकी तरह नाशमान है। इस आयुका बहुतसा भाग, गर्भावासमें, नरकावासकी तरह, दुःखमें बीतता है; और उस स्थितिके महीने पल्योपमके समान लंबे मालूम होते हैं। जन्म होनेके बाद आयुका बहुतसा भाग, बचपनमें अंधेकी तरह, पराधीनतामेंही चला जाता है; जवानीमें आयुका बहुतसा भाग, इंद्रियोंको आनंद देनेवाले स्वादिष्ट पदार्थोंका उपभोग करनेमें और (विषय सेवनमें) उन्मत्त आदमीकी तरह व्यर्थ जाता है; और वृद्धावस्थामें त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ व काम) की साधना करनेमें अशक्त बने हुए शरीरवाले प्राणीकी बाकी आयु सोते हुए मनुष्यकी तरह बेकार जाती है। विषयके स्वादसे लंपट बना हुआ मनुष्य रोगीकी तरह रोगके लिए ही कल्पित किया जाता है; यह जानते हुए भी संसारी जीव संसारमें भ्रमण करनेके लिएही कोशिश करते हैं। आदमी जवानीमें जैसे विषयसेवनके लिए यत्न करता है वैसेही, वह अगर मुक्तिके लिए प्रयत्न करे तो (उसके लिए) किस चीजकी कमी रह सकती है? अहो! मकड़ी जैसे अपनीही लारके तंतुओंसे बने हुए जालमें फँस जाती है वैसेही, प्राणी भी अपनेही कर्मोंसे बनाए हुए जालमें फँस जाते हैं। समुद्रमें युगशमिला प्रवेश[1] न्यायकी तरह

१—स्वयंभूरमण समुद्रके अंदर अलग अलग दिशाओंमें बहुत दूरीपर एक धुरा और उसमें डालनेके कीले डाले जाएँ और वे लहरों-

प्राणी पुण्यके योगसे बहुत मेहनत करनेके बाद मनुष्यजन्म पाता है; उसमें भी आर्यदेशमें जन्म, अच्छे कुलकी प्राप्ति और गुरुकुलसेवा (सद्गुरुओंकी सेवा) जैसे कठिनतासे मिलनेवाले साधन पाकर भी जो प्राणी अपना कल्याण करनेकी कोशिश नहीं करता है वह रसोई तैयार होनेपर भी भूखा बैठे रहनेवाले मनुष्यके समान है। ऊर्ध्वगति (स्वर्ग वगैरा) या अधोगति (नरकादि) पाना अपनेही वसमें हैं; तो भी जड़बुद्धिवाले प्राणी पानीकी तरह नीचेकी तरफही जाते हैं। "मैं समय आएगा तब धर्मके काम करूँगा" ऐसा विचार करनेवाले प्राणीको यमराजके दूत इसी तरह ले जाते हैं, जैसे जंगलमें लुटेरे (असहाय) आदमीको लूट ले जाते हैं। पाप करके भी जिनका पालन-पोषण किया था उन सभी परिवारके लोगोंके सामनेही काल, रंकके समान असहाय प्राणीको आकर ले जाता है। फिर नरकगतिमें गया हुआ प्राणी वहाँ अनंत दुःख उठाता है। कारण कर्जकी तरह कर्म भी जन्म जन्ममें प्राणीके साथ जानेवाले हैं। यह मेरी माँ है! ये मेरे पिता हैं! यह मेरी पत्नी है! यह मेरा पुत्र है! इस तरहकी जो ममताबुद्धि है वह मिथ्या है। कारण, (जब) यह शरीर भी अपना नहीं है (तब दूसरोंकी तो बातही क्या है ?) जुदी जुदी गतियोंसे आए हुए माता पिता आदिकी हालत उन पक्षियोंके जैसी है जो अलग अलग दिशाओं और स्थानोंसे आकर एक वृक्षपर बैठते हैं (और सवेरा होनेपर

से टकराते हुए दैवयोगसे बहुत समयके बाद एक साथ आ जाएँ और उसमें खीले अपने आपही पिरोए जाएँ, इस न्यायको 'युगशमिला न्याय' कहते हैं।

अलग अलग दिशाओंमें उड़ जाते हैं।) अथवा उन मुसाफिरों-के जैसी है जो अलग अलग दिशाओंसे आकर एक स्थानपर (मुसाफिरखानेमें) रहते हैं और सवेरे अलग अलग स्थानोंपर ले जानेवाले रास्तोंपर चल पड़ते हैं। इसी तरह मातापिता भी जुदी जुदी गतियोंमें चले जाते हैं। कुँएके रहँटकी तरह इस संसारमें जाने आनेवाले प्राणियोंके लिए अपना या पराया कोई नहीं है। इसलिए कुटुंबादिका जो त्याग करने लायक है, पहले-हीसे त्याग करना चाहिए और स्वार्थके लिए (आत्महितके लिए) प्रयत्न करना चाहिए। कहा है—

"............... स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता।"

[स्वार्थसे भ्रष्ट होनेका नामही मूर्खता है।] निर्वाण (मोक्ष) लक्षणवाला यह स्वार्थ एकांत और अनेक सुखोंका देने-वाला है और वह मूलोत्तर[1] गुणोंके द्वारा सूर्यकी किरणोंकी तरह प्रकट होता है।" (४३-६६)

राजा इस तरह विचार कर रहा था, उसी समय चिंता-मणि रत्नके समान श्रीमान <u>अरिंदम</u> नामक सूरि महाराज उद्यानमें आए। उनके आनेकी बात सुनकर उसको अमृतका घूँट पीनेमें जितना आनंद हुआ। तत्कालही, मयूरपत्रोंके छत्रों-से मानो आकाशको मेघयुक्त बनाता हो ऐसे, वह सूरिजी महा-राजको वंदना करने चला। मानो लक्ष्मीदेवीके दो कटाक्ष हों

१—मोक्षकी प्राप्तिके पक्षमें मूलगुण पंचमहाव्रतादि और उत्तर-गुण पिंडविशुद्धि वगैरा और सूर्यकिरणोंकी वृद्धिके पक्षमें मूल और उत्तरा नक्षत्र।

ऐसे, दो चामर उसके दोनों तरफ डुलने लगे। सोनेके कवच-वाले होनेसे मानो सोनेकी पाँखोंवाले हों ऐसे, और गतिके द्वारा पवनको जीतनेवाले वेगवान घोड़ोंसे वह सभी दिशाओंको भरने लगा। मानो अंजनाचलके चलते-फिरते शिखर हों ऐसे बड़े हाथियोंके भारसे वह पृथ्वीको झुकाने लगा। अपने स्वामीके मनकी बात जाननेसे उनको मनःपर्ययज्ञान हुआ हो ऐसे सामंत राजा, भक्तिद्वारा उनके साथ हो लिए। बंदी (चारण) लोगोंके कोलाहलकी मानो स्पर्द्धा करते हों ऐसे, आकाशमें फैलते हुए मंगल तूर्य (तुरही) के शब्द दूरहीसे उसके आगमनकी सूचना देने लगे। हथिनियोंपर बैठी हुई शृंगाररसकी नायिका रूप हजारों वारांगनाएँ उसके साथ थीं। इस तरह हाथीपर सवार उस राजाकी सवारी वृक्षोंके स्थानरूप नंदनवनके समान उद्यान-के पास पहुँची। फिर राजाओंमें कुंजरके समान उस राजाने, हाथीसे उतरकर, सिंह जैसे पर्वतकी गुफामें प्रवेश करता है ऐसे ही, उद्यानमें प्रवेश किया। (६७–७७)

वहाँ उसने दूरहीसे, वज्रके कवचकी तरह कामदेवके बाणोंसे अभेद्य, रागरूपी रोगमें दवाके समान, द्वेषरूपी शत्रुके लिए द्विषंतप(शत्रुओंको तपानेवाले) के समान क्रोधरूपी अग्नि-के लिए नवीन मेघके समान, मानरूपी वृक्षके लिए गजके समान, मायारूपी सर्पिणीके लिए गरुड़के समान, लोभरूपी पर्वतके लिए वज्रके समान, मोहरूपी अंधकारके लिए सूर्यके समान, तपरूपी अग्निके लिए अरणिके समान, क्षमामें पृथ्वीके समान और बोधिबीजरूपी जलकी एक धाराके समान, आत्माराम महामुनि आचार्य अरिंदमको देखा। उनके आसपास साधुओं-

का समुदाय बैठा था। कई उत्कटिक आसनसे, कई वीरासनसे-कई वज्रासनसे, कई पद्मासनसे, कई गोदोहिक आसनसे, कई भद्रासनसे, कई दंडासनसे कई वल्गुलिक आसनसे, कई क्रौंचपक्षी आसनसे, कई हंसासनसे, कई पर्यंकासनसे, कई उष्ट्रासनसे, कई गरुड़ासनसे, कई कपालीकरण आसनसे, कई आम्रकुब्जासनसे, कई स्वस्तिकासनसे, कई दंड पद्मासनसे, कई सोपाश्रय आसनसे, कई कायोत्सर्ग आसनसे और कई वृषभासनसे बैठे थे। रणभूमिके सुभटोंकी तरह विविध उपसर्गोंको सहन करते हुए वे अपने शरीरकी भी परवाह न करके, निज प्रतिश्रव (अंगीकार किए हुए संयम) का निर्वाह करते थे, अंतरंग शत्रुओंको जीतते थे, परिसहोंको सहते थे और तप-ध्यानमें समर्थ थे। (७८-८८)

राजाने आचार्यके पास आकर वंदना की। उसका शरीर आनंदसे रोमांचित हो गया। रोमांचके बहाने अंकुरित भक्तिको धारण करता हो ऐसा वह मालूम होने लगा। आचार्य महाराजने मुखके पास मुखवस्त्रिका(मुँहपत्ती) रखकर सर्व कल्याणोंकी मातारूप 'धर्मलाभ' ऐसी असीस दी। फिर राजा कछुएकी तरह शरीरको सिकोड़, अवग्रह भूमिको छोड़, हाथ जोड़, गुरु महाराजके सामने बैठा। उसने ध्यानपूर्वक, इंद्र जैसे तीर्थंकरकी देशना सुनता है वैसेही, आचार्य महाराजकी देशना सुनी। जैसे शरद् ऋतुसे चंद्रमा विशेष उज्वल होता है वैसेही, आचार्य महाराजकी देशनासे राजाको अधिक वैराग्य हुआ। फिर आचार्य महाराजकी चरण-वंदना कर, हाथ जोड़, विनययुक्त वाणीमें राजाने कहा,— (८९-९५)

"हे भगवंत ! मनुष्यको संसाररूपी विषवृक्षके अनंत दुःखरूपी फलोंका अनुभव करते हुए भी, वैराग्य नहीं होता, मगर आपको वैराग्य हुआ और आपने दुनियाका त्याग कर दिया। इसका कोई कारण होना चाहिए, कृपा करके बताइए।" (९५-९६)

राजाके इस तरह पूछनेपर, अपने दाँतोंकी किरणोंकी चंद्रिकासे आकाशतलको उज्ज्वल करते हुए आचार्य महाराज प्रसन्न होकर बोले, "हे राजा! इस दुनियाके सभी कार्य, बुद्धिमानके लिए वैराग्यकेही कारण होते हैं। उनमेंसे कोई एक संसारका त्याग करनेके लिए मुख्य होता है। मैं पहले गृहवासमें था तब एक बार हाथी, घोड़े, रथ और प्यादोंके साथ दिग्विजय करनेके लिए रवाना हुआ। मार्गमें चलते हुए एक बहुतही सुंदर बगीचा मैंने देखा। वृक्षोंकी घनी छायासे मनोहर वह बगीचा, जगतमें भ्रमण करनेसे थकी हुई लक्ष्मीका विश्रामस्थान जैसा मालूम होता था। वह कंकोल वृक्षोंके चंचल पल्लवोंसे मानो नाचता हो, मल्लिकाके विकसित पुष्पगुच्छोंसे मानो हँसता हो, खिले हुए कदंबपुष्पोंके समूहसे मानो रोमांचित हुआ हो, फूले हुए केतकीके पुष्परूपी नेत्रोंसे मानो देखता हो, शाल और ताड़के वृक्षोंरूपी ऊँची भुजाओंसे मानो दूरहीसे सूर्यकी तपी हुई किरणोंको वहाँ गिरनेसे रोकता हो, वटवृक्षोंसे मानो मुसाफिरोंको गुप्त स्थान बताता हो, नालोंसे मानो पद-पदपर पाद्य (पैर धोनेका पानी) तैयार करता हो, झरते पानीके रहँट-यंत्रोंसे मानो बारिशको शृंखलाबद्ध करता हो, गुंजार करते हुए भँवरोंसे मानो पथिकोंको बुलाता हो; और तमाल,

ताल, हिंताल और चंदनके वृक्षोंसे मानो सूर्यकिरणोंके त्राससे अंधकारने उसका आश्रय लिया हो ऐसा मालूम होता था। आम, चमेली, नागकेसर और केशरके वृक्षोंसे सुगंध-लक्ष्मीके एकछत्र राज्यका वह विस्तार करता हो; तांबूल, चिरोंजी और द्राक्षकी बेलोंके अति विस्तारसे वह तरुण पथिकोंके लिए बगैर-ही यत्नके रतिमंडपोंका विस्तार करता हो; और मेरुपर्वतकी तलहटीसे मानो भद्रशाल वन वहाँ आया हो ऐसा उस समय वह वन अत्यंत सुंदर मालूम होता था। (९७-१०९)

बहुत समयके बाद जब मैं सेना सहित दिग्विजय करके लौटकर उस बगीचेके पास आया और कौतुकके साथ वाहनसे उतरकर उस बगीचेके अंदर सपरिवार गया तब उस बगीचेको मैंने अलगही रूपमें देखा। मैं सोचने लगा, क्या मैं भ्रमसे दूसरे बगीचेमें आगया हूँ? या यह बगीचा बिलकुलही बदल गया है? यह इंद्रजाल तो नहीं है? कहाँ सूर्यकी किरणोंको रोकने-वाली वह पत्रलता और कहाँ तापकी यह एकछत्ररूप अपत्रता (पत्तोंका अभाव)? कहाँ कुंजोंके अंदर विश्राम करनेवाली रमणियोंकी रमणीयता और कहाँ निद्रित पड़े हुए अजगरोंकी दारुणता? कहाँ मोरों और कोकिलाओंका वह मधुर आलाप और कहाँ चपल कौओंके कर्णकटु शब्दोंसे बढ़ी हुई व्याकुलता? कहाँ वह लंबे लटकते और भीगे हुए वल्कल वस्त्रोंकी सघनता और कहाँ इन सूखी हुई शाखाओंपर लटकते हुए भुजंग? कहाँ सुगंधित पुष्पोंसे बनाई हुई ये दिशाएँ और कहाँ चिड़ियाँ, कौए, कपोत आदि पक्षियोंकी बीटसे दुर्गंधमय बना हुआ यह स्थान? कहाँ पुष्परसके झरनोंसे छिड़काव की हुई

वह भूमि और कहाँ जलती हुई भट्टीपर सेकी हुई रेतीवाली संतापकारी यह भूमि ? कहाँ फलोंके भारसे झुके हुए वे वृक्ष और कहाँ दीमकके खानेसे खोखले बने हुए ये वृक्ष ? कहाँ अनेक लताओंके वलयों (घेरों) से सुंदर बनी हुई वे बाड़ें और कहाँ सर्पोंके द्वारा छोड़ी हुई कंचुलियोंके घेरोंसे भयंकर बनी हुई ये बाड़ें ? कहाँ वृक्षोंके नीचे लगा हुआ फूलोंका वह ढेर और कहाँ उगे हुए काँटोंका यह समूह ? इस तरह उस बगीचे-को असुंदर देखकर मैं सोचने लगा, जैसे यह बगीचा इस समय भिन्नही प्रकारका (असुंदर) हो गया है वैसेही सभी संसारी जीवोंकी भी स्थिति है। जो मनुष्य अपनी सुंदरतासे कामदेवके समान लगता है वही मनुष्य जब भयंकर रोगग्रस्त होता है तब बहुत कुरूप मालूम होता है। जो मनुष्य छटादार वाणीसे बृहस्पतिके समान उत्तम भाषण कर सकता है वही जीभ रुक जानेसे सर्वथा गूँगा बन जाता है; जो आदमी अपनी सुंदर चाल और गतिसे जातिवान घोड़ेसा आचरण करता है वही कभी वायु वगैरा रोगोंसे पीड़ित होकर सर्वथा पंगु बन जाता है; जो आदमी अपने पराक्रमी हाथोंसे हस्तिमल्लके समान काम करता है वही आदमी रोगादिसे हाथोंकी शक्ति खोकर टूँठा बन जाता है; जो आदमी कभी गीधके समान दूरकी चीजें देखने-की नेत्रशक्ति रखता है वही आँखोंकी बीनाई खोकर दूसरोंको देखनेमें असमर्थ-अंधा बन जाता है। अहो ! प्राणियोंके शरीर क्षणमें सुंदर, क्षणमें असुंदर, क्षणमें समर्थ, क्षणमें असमर्थ, क्षणमें दृष्ट (देखा) और क्षणमें अदृष्ट (न देखा) हो जाता है। इस तरह विचार करते हुए मुझे, जप करनेवालेको मंत्रशक्ति-

की तरह, संसार वैराग्य धाराधिरूढ़ हुआ–प्राप्त हुआ। फिर मैंने महामुनिके पाससे, तृणके लिए आगके समान और निर्वाण प्राप्तिके लिए चिंतामणि रत्नके समान, महाव्रत ग्रहण किया–मुनिदीक्षा ली।" (११०–१३०)

उनकी बातें सुनकर फिरसे आचार्यवर्य अरिंदमको प्रणाम करके विवेकी और भक्तिवान राजा बोला, "निरीह और ममता-हीन आपके समान पूज्य सत्पुरुष हमारे जैसोंके पुण्यसेही इस पृथ्वीपर विहार करते हैं। सघन तृणोंसे ढके हुए अंधकूपमें जैसे पशु गिरते हैं वैसेही लोग इस अति घोर संसारके विषय-सुखोंमें गिरते हैं; (और दुख उठाते हैं) उन दुखोंसे बचानेहीके लिए आप दयालु भगवान प्रतिदिन, घोषणाकी तरह देशना देते हैं। इस असार संसारमें गुरुकी वाणीही परम सार है; अति प्रिय स्त्री,पुत्र और बंधु साररूप नहीं हैं। अब मुझे बिजलीके समान चंचल लक्ष्मी, सेवनमें सुखदायक मगर परिणाममें भयंकर विषके समान विषय और केवल इस भवके लिएही मित्रके समान स्त्री-पुत्रोंकी जरूरत नहीं है। इसलिए हे भगवान! मुझपर कृपा कीजिए और संसारसमुद्रको तैरनेमें नौकाके समान दीक्षा मुझे दीजिए। मैं नगरमें जाऊँ व अपने पुत्रको राज्य सौंपकर आऊँ तबतक आप दयालु, पूज्यपाद इसी स्थानको अलंकृत करें (ऐसी मेरी प्रार्थना है।) (१३१–१३८)

आचार्यश्रीने उत्साहवर्द्धक वाणीमें कहा, "हे राजन! तुम्हारी इच्छा उत्तम है। पूर्वजन्मके संस्कारोंके कारण तुम पहलेहीसे तत्त्वोंको जाननेवाले हो, इसलिए तुमको देशना देना, दृढ़ मनुष्यको हाथका सहारा देनेके समान, हेतुमात्र है। गोपा-

लकको विशेषतासे जैसे गाय कामधेनुके समान होती है वैसेही तुम्हारे समान मनुष्योंके द्वारा ग्रहण की हुई दीक्षा 'तीर्थंकरपद' तकके फलको देती है। तुम्हारी इच्छा पूर्ण करनेके लिए हम यहीं रहेंगे। कारण, मुनि भव्यजनोंके उपकारके लिएही विचरण करते हैं।" तब, आचार्य महाराजकी वाणी सुनकर राजाओंमें सूर्यके समान वह राजा उनको प्रणाम करके खड़ा हुआ। कारण,—

"...............निश्चिते कार्ये नालसंति मनस्विनः।"

[मनस्वी पुरुष निश्चित कार्यमें आलस्य नहीं करते।]
यद्यपि राजाका चित्त आचार्यके चरणकमलोंमें लगा हुआ था तो भी वह, जैसे कोई जबर्दस्ती दुर्भगा स्त्रीके पास जाता है वैसे-ही, अपने महलमें गया। वहाँ उसने सिंहासनपर बैठ अपने राज्यरूपी भवनके स्तंभ समान मंत्रियोंको बुलाया और उनसे कहा, (१३६-१४५)

"हे मंत्रियो! आम्नायसे (परंपरासे) जैसे इस राज्यरूपी घरमें हम राजा हैं वैसेही, स्वामीके हितके लिए एक महाव्रत-वाले तुम मंत्री हो। तुम्हारे मंत्रबलसेही मैंने पृथ्वी जीती है। इसमें हमारी भुजाओंके बलका उपक्रम (तैयारी) तो निमित्त-मात्र है। भूमिका भार जैसे घनवात, घनोदधि और तनुवातने धारण कर रखा है वैसेही तुमने मेरे राज्यका भार धारण कर रखा है। मैं तो देवताकी तरह प्रमादी होकर, रातदिन विषयोंमें-ही विविध क्रीड़ाओंके रसमेंही लीन रहा हूँ। रातके समय जैसे दीपकसे खड्डा दिखाई देता है वैसेही, अनंत भवोंमें दुख देने-वाला यह प्रमाद, गुरुकी कृपारूपी दीपकसे मुझे दिखाई दिया

है। मैंने अज्ञानके कारण चिरकालतक इस आत्माको आत्मासेही वंचित रखा है; कारण—फैलते हुए गाढ़ अंधकारमें आँखोंवाला पुरुष भी क्या कर सकता है ? अहो ! इतने समय तक ये दुर्दम इंद्रियाँ तूफानी घोड़ेकी तरह मुझे उन्मार्गपर ले गई थीं। मैं दुष्टबुद्धि विभितक (भिलावेंके) पेड़की छायाके सेवनकी तरह परिणाममें अनर्थ करनेवाली विषयवासनाकी सेवा अबतक करता रहा हूँ। गंधहस्ति जैसे दूसरे हाथियोंको मारता है वैसेही, दूसरोंके पराक्रमको नहीं सहन करनेवाले मैंने, दिग्विजयमें अनेक निरपराधी राजाओंको मारा है। मैं दूसरे राजाओंके साथ संधि आदि छ:गुणोंको निरंतर जोड़नेवाला हूँ; मगर उसमें ताड़वृक्षकी छायाकी तरह सत्यवाणी कितनी है ? अर्थात बिलकुल नहीं है। मैंने जन्मसेही दूसरे राजाओंके राज्यको छीनलेनेमें अदत्तादान-ग्रहणकाही आचरण किया है; मुझ रतिसागरमें डूबेहुएने, कामदेवका शिष्य होऊँ इस तरह निरंतर अब्रह्मचर्यकाही सेवन किया है। मैं प्राप्त अर्थोंसे अतृप्त था और अप्राप्त अर्थोंको पानेकी इच्छा रखता था, इससे अबतक महान मूर्च्छावश था। जैसे कोई भी चांडाल, स्पर्श करनेसे स्पृश्यता पैदा करता है वैसेही, हिंसा आदि पाप कार्योंमेंसे एक भी कार्य दुर्गतिका कारण होता है; इसलिए आज मैं वैराग्यके द्वारा प्राणातिपात (हिंसा) वगैरा पाँचों पापोंका गुरुके समक्ष त्याग करूँगा (और गुरुसे पाँच महाव्रत ग्रहण करूँगा।) साँझके समय सूरज जैसे अपना तेज अग्निमें आरोपण करता है वैसेही, मैं अपना राज्यकारभार कवचहरकुमारपर आरोपण करूँगा (राजकुमारको राज्य दूँगा।) तुम इस कुमारके साथ भी भक्ति-

भावका व्यवहार करना। अथवा तुम्हें ऐसी सलाह देनेकी जरूरतही नहीं है; कारण, कुलवानोंका तो ऐसा स्वभावही होता है।
(१४६-१६२)

मंत्रियोंने कहा, "हे स्वामी! दूरमोक्ष (जिनके मोक्ष जानेका समय अभी दूर है ऐसे) प्राणियोंके मनमें कभी ऐसे भाव पैदा नहीं होते। आपके पूर्वज, इंद्रके समान अपने पराक्रमसे, जन्महीसे अखंड शासन द्वारा पृथ्वीको अपने वशमें रखते थे; मगर जब वे अनिश्चित शक्तिवाले होते थे तब वे थूँककी तरह इस राज्यको छोड़कर तीन रत्नोंसे पवित्र बने हुए व्रतको ग्रहण करते थे। आप महाराज इस पृथ्वीको अपने भुजबलसे धारण किए हुए हैं; इसमें हम तो सिर्फ, घरमें केलेके स्तंभकी तरह, शोभाके समान हैं। यह साम्राज्य जैसे आपको कुल परंपरासे मिला है वैसेही, अवदान (पराक्रम) सहित और निदान (कारण) रहित व्रतको ग्रहण करना भी आपको परंपरासे प्राप्त है। आपका दूसरा चैतन्य हो इस तरह यह राज्यकुमार पृथ्वीके भारको कमलकी तरह सरलतासे, उठानेमें समर्थ है। आप मोक्षफल देनेवाली दीक्षा ग्रहण करना चाहते हैं तो प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कीजिए। आप स्वामी उच्च प्रकारकी उन्नति करें, हमारे लिए तो यही बात बड़े आनंदकी है। पूर्ण न्याय-निष्ठावाले और सत्व तथा पराक्रमसे सुशोभित इन कुमारके द्वारा, आपकी तरहही, यह पृथ्वी राजावाली बने।" (१६३-१७०)

ऐसे उनके आज्ञापालकताके वचन सुनकर पृथ्वीपति प्रसन्न हुआ और छड़ीदारके द्वारा उसने राजकुमारको बुलाया। मानो मूर्तिमान कामदेव हो ऐसा वह राजकुमार राजहंसकी

तरह कदम रखता हुआ वहाँ आया। साधारण प्यादेकी तरह उसने भक्तिभावसे राजाको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर वह उचित स्थानपर बैठा। अमृतरसके समान सारदृष्टिसे मानो सिंचित करते हों ऐसे आनंद सहित कुमारको देखते हुए राजा बोला,—(१७१–१७४)

"हे वत्स! अपने वंशके पहलेके राजा, दयाबुद्धिसे लोभ रहित होकर वनमें अकेली रही हुई गायकी तरह इस पृथ्वीका पालन करते थे। जब उनके पुत्र समर्थ होते थे तब वे उनपर इसी तरह पृथ्वीको पालनेका भार रख देते थे जैसे बैलपर धुरा खींचनेका रखा जाता है और खुद तीनों लोकोंमें रही हुई वस्तुओंका, अनित्य समझ, उनका त्याग कर शाश्वतपद (मोक्ष) के लिए तैयार होते थे, अपने कोई पूर्वज इतने समय तक गृहवासमें नहीं रहे जितने समय तक मैं रहा हूँ। यह मेरा कितना बड़ा प्रमाद है। हे पुत्र! अब तू इस राज्यभारको ग्रहण कर; तू मेरा भार लेलेगा तब मैं व्रत ग्रहणकर, संसारसमुद्रको पार करूँगा।" (१७४–१७६)

राजाकी बात सुनकर कुमार इसी तरह कुम्हला गया जैसे कमल हिमसे कुम्हलाता है। वह अपने नेत्रकमलोंमें पानी भर कर बोला, "हे देव! मेरा ऐसा कौनसा अपराध हुआ है कि जिससे आप मुझपर इस तरह नाराज हुए हैं; आप अपने आत्माके प्रतिबिंबको—आपके प्यादेके समान पुत्रको इस तरहकी आज्ञा करते हैं? अथवा इस पृथ्वीने कोई ऐसा अपराध किया है कि जिसको आप इसको—जिसका अबतक आप पालन करते थे तिनकेकी तरह छोड़ रहे हैं। आप पूज्य पिताके बिना मैं यह

राज्य नहीं चाहता; कारण, यदि सरोवर जलसे भरा हो, मगर उसमें कमल न हों तो वह भँवरोंके लिए किस कामका है? हाय! आज दैव मेरे लिए प्रतिकूल हुआ है। मेरा दुर्भाग्य आज प्रकट हुआ है। इसी लिए पत्थरके टुकड़ेकी तरह मेरा त्याग करके पिताजी मुझे इस तरहकी आज्ञा कर रहे हैं। मैं किसी भी तरह इस पृथ्वीको ग्रहण नहीं करूँगा। और इस तरह गुरुजनोंकी आज्ञा उल्लंघन करनेका जो अपराध होगा उसके लिए प्रायश्चित करूँगा।" (१८०-१८५)

पुत्रकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाली, मगर सत्त्व और स्नेहपूर्ण वाणी सुनकर राजा दुखी भी हुआ व प्रसन्न भी हुआ। वह बोला, "तू मेरा पुत्र है, साथही समर्थ, विद्वान और विवेकी भी है, फिर भी स्नेहमूल अज्ञानके कारण बे-सोचे इस तरह क्यों बोल रहा है? कुलीन पुत्रोंके लिए गुरुजनोंकी आज्ञा विचार करने लायक नहीं होती (मानने लायकही होती है); तब मेरा कथन तो युक्तिसंगत है, इसलिए तू विचार करके भी इसको स्वीकार कर। जब पुत्र योग्य होता है तब वह पिताका बोझा उठाताही है; सिंहनी अपने पुत्रके कुछ बड़ा होतेही निर्भय होकर सुखसे सोती है। हे वत्स! तेरी इच्छाके बगैर भी मैं मोक्षकी प्राप्तिके लिए इस पृथ्वीका त्याग कर दूँगा। मैं तेरा बंधा हुआ नहीं हूँ; तब तुझे इस बिलखती हुई पृथ्वीका स्वीकार तो करनाही पड़ेगा; मगर साथही मेरी आज्ञाका उल्लंघन करनेके पापका भार भी उठाना पड़ेगा। इसलिए हे पुत्र! मुझमें भक्ति रखनेवाले तुझे विचार करके या बगैर विचार किएही मुझे सुखी बनानेवाली, मेरी यह बात माननीही पड़ेगी।"
(१८६-१९२)

मंत्रियोंने कहा, " हे कुमार ! आप स्वभावसे ही विवेकी हैं। आपका कथन यद्यपि योग्य है तथापि, पिताने जो आज्ञा दी है उसे आपको स्वीकार करनाही चाहिए। कारण,

"गुर्वाज्ञाकरणं सर्वगुणेभ्यो ह्यतिरिच्यते ।"

[गुरुकी आज्ञा माननेका गुण दूसरे सभी गुणोंसे श्रेष्ठ है।] आपके पिताने भी उनके पिताका वचन माना था। यह बात हम जानते हैं। जिसकी आज्ञा पालनीही चाहिए ऐसा, पिताके सिवा इस लोकमें दूसरा कौन है ?" (१६३–१६५)

पिताके तथा मंत्रियोंके वचन सुनकर राजकुमारने सर झुका लिया और गद्गद् वाणीमें कहा, "मुझे स्वामीकी आज्ञा अंगीकार है। उस समय राजा अपनी आज्ञा माननेवाले पुत्रसे इसतरह खुश हुआ, जिस तरह चंद्रमासे कुमुद और मेघसे मोर प्रसन्न होता है। इसतरह प्रसन्न बनेहुए राजाने अभिषेक करने योग्य अपने कुमारको निज हाथोंसे सिंहासनपर बैठाया। फिर उनकी आज्ञासे सेवक लोग, मेघकी तरह तीर्थोंके पवित्र जल लाए। मंगलवाद्य बजने लगे और राजाने तीर्थजलसे कुमारके मस्तकपर अभिषेक किया। उस समय दूसरे सामंत राजा भी आकर अभिषेक करने लगे और भक्तिभावसे नवीन उगे हुए सूरजकी तरह उसे नमस्कार करने लगे। पिताकी आज्ञासे उसने सफेद वस्त्र धारण किए। उनसे वह ऐसा शोभने लगा,जैसे शरद ऋतुके सफेद बादलोंसे पर्वत शोभता है। फिर वारांगनाओंने आकर, चंद्रिकाके पूरके समान गोशीर्ष चंदनका, उसके सारे शरीरपर लेप किया। उसने मोतियोंके आभूषण धारण

किए; वे ऐसे जान पड़ते थे, मानों आकाशसे तारोंको लाकर धागोंमें पिरोकर, आभूषण बनाए गए हैं। राजाने मानो अपना महाप्रचंड प्रताप हो ऐसा, माणिक्योंके तेजसे चमकता हुआ मुकुट उसके मस्तकपर रखा; और क्षण-मात्रहीमें मानो यश प्रकट हुआ हो ऐसा, निर्मल छत्र उसके मस्तकके ऊपर रखा गया। दोनों तरफ वारांगनाएँ मानो राज्यसंपत्ति रूपी लताके पुष्पोंको सूचित करते हों ऐसे चमर डुलाने लगीं। फिर महाराजाने अपने हाथोंसे उसके ललाटमें, उदयाचलकी चूलिकापर रहे हुए चंद्रके समान, चंदनका तिलक किया। इसतरह राजाने कुमारको बड़े आनंदसे राज्यगद्दीपर बिठाकर लक्ष्मीकी रक्षाका मानो मंत्र हो ऐसा यह उपदेश दिया, (१६६–२०६)

"हे वत्स! अब तू पृथ्वीका आधार हुआ है। तेरा आधार कोई नहीं है, इसलिए प्रमाद छोड़कर अपने आत्मासे उसको धारण करना। आधार शिथिल होनेसे आधेय (जिसे आधार दिया जाता है वह) भ्रष्ट होता है, इसलिए विषयोंके अति सेवनसे होनेवाली शिथिलतासे तू अपनी रक्षा करना। कारण,—

"यौवनं विभवो रूपं स्वाम्यमेकैकमप्यतः।
प्रमादकारणं विद्धि बुद्धिमत्कार्यसिद्धिभित् ॥"

[यौवन, धन, रूप और स्वामीपन, इनमें एक एक भी प्रमादके कारण हैं और बुद्धिमानकी कार्यसिद्धिका नाश करने वाले हैं, यह समझना।] कुलपरंपरासे आई होनेपर भी दुराराध्य (कठिनतासे प्रसन्न होनेवाली) और छिद्र ढूँढनेवाली यह लक्ष्मी राक्षसीकी तरह प्रमादी पुरुषोंको दगा देती है। बहुत

पुराना स्नेह भी इस लक्ष्मीकी स्थिरताका कारण नहीं होता, इसलिए इसे जब अवसर मिलता है तभी, सारिका(मैना,)की तरह यह तत्कालही अन्यत्र जली जाती है। इसे कुलटा नारीकी तरह बदनामीका डर भी नहीं होता। यह कुलटाकी तरह जागते हुए भी प्रमादमें पड़े हुए पतिको छोड़ जाती है। लक्ष्मीको कभी इस बातका विचार नहीं आता कि मेरी चिरकालसे यहाँ रक्षा हुई है। यह तो मौका पातेही वंदरीकी तरह कूदकर चली जाती है। निर्लज्जता, चपलता और स्नेहहीनताके सिवा दूसरे भी अनेक दोष इसमें हैं। और जलकी तरह नीचकी तरफ जाना तो इसका स्वभावही है। ऐसे, लक्ष्मी सब दुर्गुणोंवाली है तो भी, सभी लोग इसको पानेकी कोशिश करते हैं। इंद्र भी लक्ष्मीमें आसक्त है तब दूसरोंकी तो बातही क्या है? उसको स्थिर रखनेके लिए तू चौकीदारकी तरह नीति और पराक्रमसे सम्पन्न होकर सदा सावधान रहना। लक्ष्मीकी इच्छा रखते हुए भी अलुब्ध (निर्मोही) की तरह सदा इसका पालन करना। कारण,—

"अगृध्नोरनुगा लक्ष्म्यः सुभगस्येव योषितः।"

[स्त्रियाँ जैसे सुंदर पुरुषकी अनुगामिनी होती हैं वैसेही लक्ष्मी सदा निर्लोभीके पीछे चलती है।] गरमीके सूरजकी तरह अति प्रचंड होकर कभी दुःसह करके भारसे पृथ्वीको पीड़ित मत करना। जैसे उत्तम वस्त्र,जरासा जलनेपर भी, छोड़ दिया जाता है वैसेही, थोड़ासा अन्याय करनेवाले पुरुषको भी अपने पास मत रखना। शिकार, जूआ और शराबको तू सर्वथा बंद करना। कारण,—

"......पापानां नृपो भागी तपस्वितपसामिव ।"

[जैसे राजा तपस्वीके तपका हिस्सेदार होता है वैसेही प्रजाके सभी पापोंका भी वह हिस्सेदार होता है।] तू काम-क्रोधादि अंतरंग शत्रुओंको जीतना; कारण, इनको जीते बगैर बाहरी शत्रुओंको जीतना या न जीतना समान है। दक्षिण (चतुर) नायक जैसे अनेक पत्नियोंका यथासमय सेवन करता है वैसेही तू धर्म, अर्थ और कामका यथाअवसर सेवन करना, एकको दूसरेका बाधक न होने देना। इन तीनोंकी साधना इस तरह करना कि, जिससे चौथे पुरुषार्थ-मोक्षकी साधनामें कोई विघ्न न आवे; तेरा उत्साह भंग न हो।" (२१०-२२६)

यूँ कहकर राजा विमलवाहन जब चुप रहा तब कुमारने 'ऐसाही होगा' कहकर उस उपदेशको अंगीकार किया। फिर कुमारने सिंहासनसे उठकर, व्रत ग्रहण करनेके लिए तैयार होते हुए अपने पिताको हाथका सहारा दिया। इस तरह छड़ीदारसे भी अपनेको छोटा माननेवाले पुत्रके हाथका सहारा लिए हुए राजाने अनेक कलशोंसे भूषित स्नानगृहमें प्रवेश किया। वहाँ उसने मगरके मुखवाली सोनेकी झारियोंसे निकलते हुए, मेघ-की धाराके समान जलमें स्नान किया, कोमल रेशमी वस्त्रसे शरीरको पोंछा और उसपर गोशीर्ष चंदनका लेप किया। गूँथना जाननेवाले पुरुषोंने, नील कमलके समान श्याम और पुष्पगर्भके जैसे,राजाके केशपाशको चंद्रगर्भित मेघकी तरह सुशो-भित किया। विशाल, निर्मल, स्वच्छ और अपने समान उत्तम गुणवाले, दिव्य और मांगलिक दो वस्त्र राजाने धारण किए। फिर सब राजाओंमें मुकुटके समान उस राजाने, कुमारके द्वारा

लाए गए स्वर्ण और माणिक्यके मुकुटको मस्तकपर धारण किया।

गुणरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले उस राजाने हार, भुजबंध और कुंडल वगैरा दूसरे आभूषण पहने। मानो दूसरा कल्पवृक्ष हो इस तरह उस राजाने रत्न, सोना, चाँदी, वस्त्र और दूसरी जो चीजें याचकोंने माँगीं, वे दीं। फिर कुबेर जैसे पुष्पक विमानमें बैठता है वैसे नरकुंजर (मनुष्योंमें हाथीके समान) विमलवाहन राजा, सौ पुरुषोंसे उठाई जा सके ऐसी शिबिकामें बैठा। साक्षात तीन रत्न (दर्शन, ज्ञान और चारित्र) आकर उसकी सेवा करते हों ऐसे, दो चामर और एक छत्र उसकी सेवा करने लगे। मानो मिले हुए दो मित्र हों ऐसे, चारण-भाटोंका कोलाहल और बाजोंका तार शब्द पुरुषोंको प्रसन्न करने लगा। ग्रहोंसे जैसे ग्रहपति (सूर्य-चंद्र) शोभता है वैसेही, आगे, पीछे और आसपासमें चलते हुए श्रीमानों और सामंतोंसे वह सुशोभित होने लगा। झुके हुए वृंत (बौंडी) वाले कमलकी तरह, झुके हुए सरवाले और आज्ञा चाहनेवाले द्वारपालकी तरह राजकुमार आगे चलने लगा। भरे हुए घड़ेको ग्रहण करनेवाली नगरकी स्त्रियाँ, कदम कदमपर मंगल कर, क्रमसे उसे देखने लगीं। विचित्र प्रकारके मंचोंसे व्याप्त, पताकाओंकी पंक्तियोंसे भारवाले और यक्षकर्दमसे पंकिल (कीचवाले) बने हुए राजमार्गोंको पवित्र करता हुआ वह चलने लगा।

हरेक मंचपरसे, गंधर्व वर्गके समान गीत गाती हुई वनिताएँ आरती उतार उतार कर जो मंगल करती थीं उनको

वह स्वीकार करता था। मानो चित्रोंमें चित्रित हों ऐसे आनंदित और निश्चल नेत्रोंसे नगरके नर-नारी दूरहीसे अदृष्टपूर्व (पहले कभी न देखा हो ऐसे) की तरह उसे देख रहे थे। मानो मंत्र-बलसे आकर्षित हुए हों, या जादूसे बँधे हुए हों ऐसे, लोग उसके पीछे पीछे चल रहे थे। इस तरह पुण्यके वासरूप वह राजा जब अरिंदम आचार्यके चरणोंसे पवित्र बने हुए, उद्यानके समीप आया तब, वह शिविकासे नीचे उतरा और तपस्वियोंके मनकी तरह उद्यानमें घुसा। उस राजाने, भुजाओंसे पृथ्वीके भारकी तरह सभी आभूषणोंको शरीरसे उतार दिया। कामदेव-के शासनकी तरह, उसने मस्तकपर चिरकालसे धारण की हुई माला निकाल दी। फिर उसने आचार्यकी बाई तरफ रह, चैत्य-वंदन कर आचार्यके दिए हुए रजोहरणादि मुनिचिह्नोंको स्वीकार किया। "मैं सभी सावद्य योगोंका प्रत्याख्यान करता[१] हूँ" यों कहकर उसने पंचमुष्टिसे केशलोच किया। वह बड़े मनवाला राजा तत्काल ग्रहण किए हुए व्रतलिंगसे ऐसा शोभने लगा मानो वह बचपनहीसे व्रतधारी हो। पश्चात उसने गुरुको तीन प्रद-क्षिणा देकर वंदना की और गुरुने धर्मदेशना देना आरंभ किया,—(२२७-२४४)

"इस अपार संसारमें, समुद्रके अंदर दक्षिणावर्त शंखकी तरह, मनुष्यजन्म कठिनतासे मिलता है। यदि मनुष्यजन्म मिल जाता है तो बोधिबीज (सम्यक्त्व) मिलना बहुत कठिन है। यदि वह मिल जाए तो भी महाव्रत (चारित्र) का योग तो पुण्ययोगसेही प्राप्त होता है। जहाँ तक वर्षाऋतुके मेघ नहीं

१—मैं उन सभी कामोंको छोड़ता हू जिनसे हिंसा होती है।

आते तभी तक, पृथ्वीपर सूरजका संताप रहता है; जहाँ तक केसरीसिंह नहीं आता तभी तक हाथी वनको नष्ट-भ्रष्ट करते हैं; जहाँ तक सूरज नहीं उगता तभी तक जगत अंधकारसे अंधा रहता है; जहाँ तक पक्षियोंका राजा गरुड़ नहीं आता तभी तक प्राणियोंको सर्पका डर लगता है और जब तक कल्पवृक्ष नहीं मिलता तभी तक प्राणी दरिद्री रहते हैं। इसी तरह जब तक महाव्रत प्राप्त नहीं होता तभी तक प्राणियोंको संसारका भय लगता है। आरोग्य, रूप, लावण्य, दीर्घ आयु, महान समृद्धि, हुकूमत, ऐश्वर्य प्रताप, साम्राज्य, चक्रवर्तीपन, देवपन, सामानिक देवपन, इंद्रपन, अहमिंद्रपन, सिद्धपन और तीर्थंकर-पन, ये सभी बातें इस महाव्रतकेही फल हैं। एक दिनके लिए भी अगर कोई मनुष्य निर्मोही बनकर व्रतका पालन करता है तो वह, अगर उसी भवमें, मोक्षमें नहीं जाता है तो स्वर्गमें तो जरूर जाता है; तब जो भाग्यवान लक्ष्मीको तिनकेके समान छोड़कर दीक्षा ग्रहण करता है और चिरकाल तक चारित्र पालता है उसकी तो बातही क्या है?" (२५५-२६३)

इस तरह देशना देकर, अरिंदम महामुनि अन्यत्र विहार कर गए। कारण, मुनि एक स्थानपर नहीं रहते। विमलवाहन मुनिने भी ग्राम, शहर, आकर, द्रोणमुख[1] आदि स्थानोंमें गुरुके साथ छायाकी तरह विहार किया।

पाँच समितियाँ

१-ईर्या समिति:—सूर्यका प्रकाश चारों तरफ फैल जाने-

१—चार सौ गाँवोंके बीचमें एक बड़ा शहर।

पर जीवरक्षाके लिए युग मात्र (चार हाथ नीचे रस्तेपर) नजर रख ईर्याविचक्षण(हरेक चीजमें पूरी तरह ध्यान देनेमें सावधान) वे ऋषि विहार करते थे।

२–भाषा समिति:—में चतुर वे मुनि निरवद्य (जिससे किसीको दुःख न हो), मित (मर्यादित) और सभी लोगोंका हित करनेवाली वाणी बोलते थे।

३–एषणा समिति:—एषणानिपुण[1] वे महामुनि बयालीस दोषोंको टालकर पारनेके दिन आहार-पानी ग्रहण करते थे।

४–आदाननिक्षेपणा समिति:—ग्रहण करनेमें चतुर वे मुनि आसन वगैराको देखकर सावधानीसे उसकी प्रतिलेखना करके रखते या उठाते थे।

५–परिष्ठापनिका समिति:—सर्व प्राणियोंपर दया रखनेवाले वे महामुनि कफ,मूत्र और मल निर्जीव पृथ्वीपर डालते थे।

तीन गुप्तियाँ

१–मन गुप्ति:—कल्पनाजालसे मुक्त और समता भावोंमें रहे हुए उन महामुनिने अपने मनको गुणरूपी वृक्षोंवाले आराम (बगीचे) में आत्माराम किया था (आत्मध्यानमें लगाया था)।

२–वचन गुप्ति:—प्रायः वे मौन रहते थे। इशारोंसे भी बात नहीं करते थे। यदि कभी किसी अनुग्राह्य (जिसपर कृपा करनी चाहिए ऐसे) पुरुषके आग्रहसे कुछ बोलते थे तो मित वचनही बोलते थे।

१—अच्छी तरह देख–भाल करना।

३-काय गुप्तिः—(जब वे कायोत्सर्ग कर ध्यानमें खड़े होते थे तब) महिष वगैरा पशु, कंधे या शरीरकी खुजली मिटानेके लिए मुनिको खंभा समझकर उनके शरीरसे अपने शरीरको घिसते थे तो भी वे कायोत्सर्गको छोड़ते न थे। आसन डालनेमें, उठानेमें और संक्रमण (विहार करने) के स्थानोंमें चेष्टारहित होकर नियम करते थे।

इसतरह वे महामुनि चारित्ररूपी शरीरको उत्पन्न करनेमें, उसकी रक्षा करनेमें और शोधन करनेमें (दोष मिटानेमें) माताके समान पाँच समिति और तीन गुप्तिरूपी आठ प्रवचन-माताको धारण करते थे। (२६४-२७५)

बाईस परिसह

१-क्षुधा परिसहः—भूखसे पीड़ित होनेपर भी शक्तिवान बनकर एषणाको लाँघे बगैर अदीन और व्याकुल हुए बगैर वे विद्वान मुनि संयम यात्राके लिए उद्यम करते हुए विचरण करते थे।

२-तृषा परिसहः—रस्ते चलते हुए प्यास लगती थी तो भी वे तत्त्ववेत्ता मुनि दीन बनकर कच्चा पानी पीनेकी इच्छा न कर प्रासुक जल पीनेकीही इच्छा करते थे।

३-शीत परिसहः—सरदीसे तकलीफ पाते हुए और चमड़ीके रक्षण-रहित होते हुए भी वे महात्मा अकल्प्य (ग्रहण न करने लायक) वस्त्र लेते न थे और न आग जलाते थे, न जलती हुई आगसे तापतेही थे।

४-उष्ण परिसहः—गरमियोंमें धूपसे तपते हुए भी वे मुनि

न धूपकी निंदा करते थे और न छायाकी ही याद करते थे; न किसी समय पंखेका उपयोग करते थे, न कभी स्नान या (चंदन आदिका) विलेपनही करते थे।

५-दंस-मशक परिसह:—डाँस और मच्छर वगैरा काटते थे तो भी वे महात्मा सबकी भोजनलोलुपताको जानते थे इससे उनपर न नाराज होते थे, न उनको उड़ाते थे और न उनको निराशही करते थे। वे उपेक्षा करके रहते थे।

६-अचेलक परिसह:—न वे यह सोचते थे कि वस्त्र नहीं है और न वे यही विचारते थे कि यह वस्त्र खराब है। वे दोनों तरहसे वस्त्रकी उपेक्षा करते थे। वे लाभालाभकी विचित्रताको जानते थे। वे कभी समाधि (ध्यान) में बाधा नहीं पड़ने देते थे।

७-अरति परिसह:—धर्मरूपी आराम (बगीचे) में प्रीति रखनेवाले वे महामुनि कभी अरति (असंतोष) न करते थे। वे चलते, खड़े रहते या बैठते हुए सदा संतुष्टही रहते थे।

८-स्त्रीपरिसह:—जिनका, संगतिरूपी कीच कभी धोया न जा सके ऐसा होता है, और जो मोक्षरूपी दरवाजेकी अर्गलाके समान होती हैं उन स्त्रियोंका वे कभी विचार भी नहीं करते थे। कारण, उनका विचार भी धर्मनाशका कारणही होता है।

९-चर्या परिसह:—ग्रामादिमें नियमित रूपसे नहीं रहनेवाले, इससे स्थानबंधसे वर्जित वे मुनि महाराज दो प्रकारके अभिग्रह सहित अकेलेही विचरण करते थे।

१०-निषद्या परिसह:—स्त्रीरूपी कंटकसे रहित आसनादि

पर बैठनेवाले वे इष्ट और अनिष्ट उपसर्गोंको निःस्पृह और निर्भय होकर सहन करते थे।

११–शय्या परिसहः—यह संथारा (बिस्तर) सवेरेही छोड़ना पड़ेगा यह सोचकर वे मुनि अच्छे-बुरे संथारेमें, सुख-दुःख न मानते, रागद्वेष छोड़कर सोते थे।

१२–आक्रोश परिसह—अपनी क्षमाश्रमणताको जाननेवाले वे मुनि, गुस्सा करके बुरा भला कहनेवाले पर भी गुस्सा नहीं करते थे, वरन वे उसका उपकार मानते थे।

१३–वध-बंधन परिसह—उनको कोई मारता था (बाँधता था) तो भी जीवका नाश न करनेके कारणसे, क्रोधकी दुष्टता जाननेसे, क्षमावान होनेसे और गुणोंके उपार्जनसे वे किसीपर हाथ नहीं उठाते थे–किसीको नहीं मारते थे।

१४–याचना परिसह—दूसरोंके द्वारा दिए गए पदार्थ पर जीवननिर्वाह करनेवाले यतियोंको याचना करनेपर भी यदि कुछ न मिले तो क्रोध न करना चाहिए, यह समझकर वे न याचना-दुःखकी परवाह करते थे, न (वापस) गृहस्थ बन जानेकी ही इच्छा रखते थे।

१५–अलाभ परिसह—वे अपने लिए और दूसरेके लिए भी अन्नादिक पदार्थ पाते थे; कभी नहीं भी पाते थे, परंतु वे न तो पानेपर प्रसन्न होते थे और न न पानेपर अप्रसन्नही होते थे। लाभ होनेपर न मद करते थे और न अलाभ होनेपर अपनी या पराई निंदाही करते थे।

१६–रोग परिसह—वे न रोगसे घबराते थे और न इलाज

करानेकीही इच्छा करते थे। वे शरीरसे आत्माको भिन्न समझ अदीन हृदयसे रोगके दुःखको सहन करते थे।

१७-तृणस्पर्श परिसह—थोड़े और बारीक वस्त्र बिछानेसे बिछे हुए बिस्तरमेंसे तृणादिक आते और चुभते थे; उस चुभन-का दुःख वे सहते थे; मगर कभी मुलायम (या मोटे) बिस्तरकी इच्छा नहीं करते थे।

१८-मल परिसह—गरमियोंके तापसे सारे शरीरका मल भीग जाता था तो भी, वे न स्नान करनेकी इच्छा करते थे, न उद्वर्तन (लेप वगैरा करके मल निकालना) ही चाहते थे।

१९-सत्कार परिसह—(मुनिके आनेपर) सामने खड़े होना, (मुनिकी) पूजा करना और (मुनिको) दान देना आदि सत्कार-क्रियाओंकी वे चाह नहीं करते थे। वे न सत्कारके अभावमें दुखी होते थे और न सत्कार होनेपर प्रसन्नताही दिखाते थे।

२०-प्रज्ञा परिसह—वे न ज्ञानीका ज्ञान और अपना अज्ञान देखकर दुखी होते थे, न अपने ज्ञानकी उत्कर्षता देखकर अभि-मान ही करते थे।

२१-अज्ञान परिसह—ज्ञान और चारित्रसे युक्त होनेपर भी अब तक मैं छद्मस्थही हूँ, इस भावनासे उत्पन्न होनेवाले दुःखको वे यह सोचकर सहते थे कि ज्ञानकी प्राप्ति धीरे धीरेही होती है।

२२-सम्यक्त्व परिसह—जिनेश्वर, उनका कहा हुआ शास्त्र, जीव, धर्म, अधर्म और भवांतर, ये परोक्ष हैं तो भी वे

शुद्धदर्शनी (सम्यक्त्वी) मुनि उनको मिथ्या नहीं मानते थे।

इस तरह मन, वचन और कायाको वशमें रखनेवाले वे मुनि अपने आप पैदा हुए या दूसरोंके द्वारा किए गए शारीरिक और मानसिक सभी परिसहोंको सहन करते थे।

(२७६-२९८)

श्रीमान अर्हंत स्वामीके ध्यानमें निरंतर लीन रहकर उन मुनिने अपने चित्तको चैत्यवत (मूर्तिकी तरह) स्थिर बना लिया। सिद्ध, गुरु, बहुश्रुत, स्थविर, तपस्वी, श्रुतज्ञान और संघपर उनके मनमें भक्ति थी, इससे उन स्थानकोंका तथा दूसरे भी तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन करानेवाले स्थानकोंका-जिनकी आराधना करना महान आत्माओंके विना दूसरोंके लिए दुर्लभ है-उन्होंने सेवन किया और एकावली, कनकावली, रत्नावली और ज्येष्ठ किंवा कनिष्ठित सिंहनिष्क्रीडित वगैरा उत्तम तप उन्होंने किए। कर्मोंकी निर्जरा करनेके लिए उन्होंने मासोपवाससे आरंभ कर अष्टमासोपवास तकके तप किए। समताधारी उन महात्माओंने इसतरह महान तप कर अंतमें दो तरहकी संलेखना तथा अनशन करके, तत्परतासहित पंचपरमेष्ठीका स्मरण करते हुए अपने शरीरका इस तरह त्याग कर दिया जिस तरह मुसाफिर विश्रामस्थानका त्याग कर देते हैं। (२९९-३०५)

दूसरा भव

वहाँसे उनका जीव विजय नामक अनुत्तर विमानमें तेतीस सागरोपमकी आयुवाला देवता हुआ। उस विमानके देवताओंका शरीर एक हाथ प्रमाणका और चंद्रमाकी किरणोंके समान

उजला होता है। अहंकाररहित, सुंदर आभूषणोंसे भूषित और अहमेंद्रके समान वे देवता सदा प्रतिकाररहित होकर सुख-शय्यामें सोते रहते हैं। शक्ति होते हुए भी उत्तरवैक्रिय निर्माण करके किसी दूसरे स्थानपर नहीं जाते। अपनी अवधिज्ञानकी संपत्तिसे वे सारी लोकनालिकाका अवलोकन किया करते हैं। उनको आयुके सागरोपमकी संख्या जितने पक्षोंसे यानी तेंतीस पक्षोंके बाद एक बार श्वास लेना पड़ता है और उतने हजार वर्षके यानी तेंतीस हजार वर्षके बाद भोजनकी इच्छा होती है। इस तरहका उत्तम सुख देनेवाले उस विमानमें उत्पन्न होनेसे वे निर्वाण-सुखके समान उत्तम सुखका अनुभव करते थे। इस तरह रहते हुए जब आयुके छः महीने बाकी रहे तब दूसरे देवोंकी तरह उनको मोह न हुआ, मगर पुण्योदयके निकट आनेसे उनका तेज बढ़ा। अमृतके सरोवरमें हंसकी तरह अद्वैत सुखके विस्तारमें मग्न उस देवने उस स्थानपर तेंतीस सागरोपम प्रमाण की आयु एक दिनकी तरह पूर्ण की (३०६-३१२)

आचार्य श्री हेमचंद्राचार्य विरचित त्रिषष्टिशलाका
पुरुष चरित्र नामक महाकाव्यके दूसरे पर्वमें,
श्री अजितस्वामीके पूर्वभव-वर्णन
नामका प्रथम सर्ग समाप्त।

卐

सर्ग दूसरा

तीसरा भव-तीर्थंकर पर्याय

इसी जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें, मानो पृथ्वीकी सिरमौर हो ऐसी विनीता (अयोध्या) नामकी नगरी थी। उसमें तीन जगतके स्वामी आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेवजीके मोक्षकालके बाद, उनके इक्ष्वाकुवंशमें असंख्य राजा हुए। वे अपने शुभ भावों द्वारा सिद्धिपदको पाए या सर्वार्थसिद्धि विमानमें गए। उनके बाद जितशत्रु नामका राजा हुआ। इक्ष्वाकुवंशमें फैलाए हुए छत्रके समान वह राजा विश्वके संतापको हरनेवाला था। फैले हुए उज्ज्वल यशसे, उसके उत्साहादि गुण, चंद्रसे नक्षत्रोंकी तरह, सनाथता पाए थे। वह समुद्रकी तरह गंभीर, चंद्रकी तरह सुखकारी, शरणार्थीके लिए वज्रके घरके समान, और लक्ष्मीरूपी लताका मंडप था। सभी मनुष्यों और देवोंके दिलोंमें जगह बनानेवाला वह राजा, समुद्रमें चंद्रमाकी तरह, एक होते हुए भी अनेकके समान मालूम होता था। दिशाओंके चक्रको आक्रांत करनेवाले (घेरनेवाले) अपने दुःसह तेजसे वह मध्याह्नके सूर्यकी तरह सारे जगतके ऊपर तप रहा था। पृथ्वीपर राज्य करनेवाले उस राजाके शासनको, सभी राजा मुकुटकी तरह मस्तकपर धारण करते थे। मेघ जैसे पृथ्वीपरसे (समुद्रमेंसे) जल ग्रहण करके वापस पृथ्वीको देता है वैसेही वह पृथ्वीमेंसे द्रव्य ग्रहण करके दुनियाकी भलाईके लिए वापस दे देता था। नित्य वह धर्मका विचार करता था, धर्मके लिए बोलता था और धर्मके लिए ही कार्य करता था। इस तरह मन, वचन

और कायामें उसको धर्मके लिएही बंधन थे। उसके सुमित्रविजय नामका एक छोटा भाई था। वह असाधारण पराक्रमी था। वही युवराज भी था। (१-१२)

उसके विजयादेवी नामकी रानी थी। वह पृथ्वीपर आई हुई मानो देवी थी। दो हाथों, दो नेत्रों और मुखसे मानो विकास पाए हुए कमलके, खंडमय भागोंसे बनी हो वैसे वह देवी शोभती थी। वह पृथ्वीका आभूषण थी और उसका आभूषण शील था। उसके शरीरपर आभूषणोंका भार था, वह केवल प्रक्रिया (व्यवहार) के लिए ही था। वह सभी कलाओंको जानती थी और सारे संसारमें शोभती थी, इससे ऐसा मालूम होता था कि मानो सरस्वती या लक्ष्मी पृथ्वीपर निवास करनेके लिए आई है। राजा सर्वपुरुषोंमें उत्तम था और रानी सर्व स्त्रियोंमें उत्तम थी, इसलिए उन दोनोंका मेल गंगा और सागरके संगम सा उत्तम था। (१३-१७)

विमलवाहन राजाका जीव विजय नामक विमानसे च्यव कर, रत्नकी खानके समान विजयादेवीके गर्भमें, वैशाख सुदी १३ के दिन, चंद्रका योग रोहिणी नक्षत्रमें आया था तब, तीन ज्ञानको (मति, श्रुति और अवधि) धारण करनेवाले पुत्ररूपमें, आया। उनके गर्भवासमें आनेसे एक क्षणके लिए नारकी जीवोंको भी सुख हुआ। उस रातके अति पवित्र चौथे पहरमें विजयादेवीने चौदह सपने देखे।

तीर्थंकरकी माताके चौदह स्वप्न

१–हस्ति—पहले सपनेमें उसने मदकी सुगंधसे भौंरोंका

समूह जिसपर भ्रमण कर रहा था ऐसा, गर्जनासे मेघको भी लाँघ जानेवाला और ऐरावतके समान एक हाथी देखा।

२–वृषभ— दूसरे सपनेमें उसने ऊँचे सींगोंके कारण सुंदर, शरद ऋतुके मेघके समान सफेद और सुंदर पैरोंवाला मानो चलता-फिरता कैलाश पर्वत हो ऐसा वृषभ (बैल) देखा।

३–केसरीसिंह—तीसरे सपनेमें उसने चंद्रकलाके जैसा वक्र, नाखूनोंसे तथा कुंकुम और केसरके रंगको लाँघ जानेवाली केशर (अयाल) से प्रकाशित जवान केसरीसिंह देखा।

४–लक्ष्मीदेवी—चौथे सपनेमें उसने, दो हाथियों द्वारा दोनों तरफ दो पूर्ण कुंभोंको ऊँचा कर, जिसपर अभिषेक किया जा रहा है ऐसी और कमलके आसनवाली लक्ष्मीदेवी देखी।

५–फूलोंकी माला—पाँचवें सपनेमें उसने खिले हुए फूलोंकी सुगंध द्वारा दिशाओंके भागको सुगंधमय बनानेवाली, आकाशमें रही हुई, मानो आकाशका ग्रैवेयक आभूषण हो ऐसी फूलोंकी माला देखी।

६–चंद्रमा—छठे सपनेमें उसने संपूर्ण मंडलवाला होनेसे असमयमेंही पूर्णिमाको बतानेवाला और किरणोंसे आकाशको तरंगित करनेवाला चंद्रमा देखा।

७–सूर्य—सातवें सपनेमें उसने फैलती हुई किरणोंसे अंधकारके समूहको नाश करता हुआ और रातमें भी दिवसका विस्तार करता हुआ सूरज देखा।

८–ध्वज—आठवें सपनेमें उसने कल्पवृक्षकी शाखा हो

ऐसी और रत्नगिरिका मानो शिखर हो ऐसी आकाशगामिनी पताकासे अंकित रत्नमय ध्वज देखा।

९-पूर्णकुंभ—नवें सपनेमें उसने, खिले हुए कमलोंसे जिसका मुख ढका हुआ है ऐसा, मंगल-गृहके समान सुंदर पूर्णकुंभ देखा।

१०-पद्मसरोवर—दसवें सपनेमें उसने लक्ष्मीदेवीके मानो आसन हों ऐसे, कमलोंसे चारों तरफ सुशोभित, स्वच्छ जलकी तरंगोंसे मनोहर पद्मसरोवर देखा।

११-समुद्र—ग्यारहवें सपनेमें उसने उछलती हुई तरंगोंसे और एकके बाद एक उठती हुई लहरोंसे मानो आकाशमें स्थित चंद्रमाका आलिंगन करना चाहता हो ऐसा समुद्र देखा।

१२-विमान—बारहवें सपनेमें उसने मानो अनुत्तर देवलोकके विमानोंमेंसे उतरकर आया हो ऐसा, एक रत्नमय विचित्र विमान देखा।

१३-रत्नपुंज—तेरहवें सपनेमें उसने रत्नगर्भा (पृथ्वी) ने मानो रत्नोंके सर्वस्वको जन्म दिया हो ऐसा, बहुत कांतिके समूहवाला उन्नत रत्नपुंज देखा।

१४-निर्धूम अग्नि—चौदहवें सपनेमें उसने तीनलोकमें रहे हुए सभी तेजस्वी पदार्थोंका मानो तेजपुंज जमा किया हो ऐसी, निर्धूम अग्नि (जिसमें धुआँ न उठता हो ऐसी आग) देखी।

इस तरहसे परिपाटीके अनुसार इन चौदह सपनोंको क्रमशः अपने मुखकमलमें भ्रमरोंकी तरह प्रवेश करते हुए

विजयादेवीने देखा। (१८-३६)

इंद्रका आगमन

उस समय इंद्रका आसन काँपा, इससे उसने हजार आँखोंसे भी अधिक नेत्ररूपी अवधिज्ञानसे देखा। देखनेसे उसे तीर्थंकर महाराजका गर्भप्रवेश मालूम हुआ। इससे रोमांचित शरीरवाला इंद्र विचार करने लगा कि जगतके लिए आनंदके हेतुरूप परमेश्वर विजय नामके दूसरे अनुत्तर विमानसे च्यव कर, अभी जंबूद्वीपके दक्षिणार्द्ध भरतखंडके मध्यभागमें आई हुई विनीतापुरीमें जितशत्रु राजाकी विजयादेवी नामक रानीके गर्भमें आए हैं। इस अवसर्पिणीमें, करुणारसके समुद्रके समान, ये दूसरे तीर्थंकर होंगे। यों सोच वे, आदरके साथ, सिंहासन, पादपीठ, और पादुकाओंका त्याग कर, खड़े हुए। फिर तीर्थंकरकी दिशाकी तरफ सात-आठ कदम चल, उत्तरासंग (उत्तरीय वस्त्र) धारण कर, दाहिना घुटना जमीन पर रख, बायाँ घुटना जरा झुका, मस्तक और हाथसे जमीनको छू उसने भगवानको नमस्कार किया। फिर शक्रस्तव पूर्वक जिनवंदन कर वह सौधर्मेंद्र, विनीता नगरीमें जितशत्रु राजाके घर आए। दूसरे इंद्र भी आसनोंके काँपनेसे अर्हतके अवतारको जानकर भक्तिसे तत्कालही वहाँ आए। वे शक्रादि इंद्र, कल्याणकारी भक्तिवाले होकर, स्वामिनी श्री विजयादेवीके शयनगृहमें आए।

उस समय उस शयनगृहके आँगनमें आँवलोंके जैसे मोटे समवर्तुल (एकसे गोल) निर्मल और अमूल्य मोतियोंके स्वस्तिक (साँथिए) बने हुए थे। नीलमणिकी पुतलियोंसे अंकित स्वर्णके स्तंभोंसे और मर्कतमणिके पत्रोंसे, उसके द्वार

पर तोरण रचे हुए थे। बारीक तारोंवाले, पचरंगी, अखंड दिव्य वस्त्रोंका, संध्यामेघसे आकाशकी तरह, चारोंतरफ उल्लोच (चंदोवा) बँधा हुआ था। उसके चारों तरफ, स्थापित यष्टियों (खंभों) के समान, सोनेकी धूपदानियोंमेंसे धूएँकी घटाएँ निकल रही थीं। उस घरमें, दोनों तरफ ऊँची, बीचके भागमें जरा नीची, हंसकी रोमलताकी रूईसे भरी हुई, तकियोंसे सुशोभित और उज्ज्वल चद्दरेवाली सुंदर शय्या थी। उसपर विजयादेवी, गंगाके तीरपर बैठी हुई हंसिनीके समान शोभती थीं। उन्हें इंद्रोंने देखा। उन्होंने, अपना परिचय दे, देवीको नमस्कार कर, तीर्थंकरके जन्मकी सूचना देनेवाला सपनोंका फल बताया। फिर सौधर्मेंद्रने कुबेरको आज्ञा दी "जिस तरह ऋषभदेवके राज्यके आदिमें तुमने रत्नादिसे इस नगरीको पूर्ण किया था वैसेही; वसंत मास जैसे नए पल्लवादिसे उद्यानको नया बना देता है वैसेही, नए घरों वगैरासे इस नगरीको नया बनाओ और मेघ जैसे जलसे पृथ्वीको पूर्ण करता है वैसेही, सोना, धन, धान्य और वस्त्रोंसे इस नगरीको चारों तरफसे भर दो।

यों कह शक्र और दूसरे इंद्र नंदीश्वरद्वीप गए। वहाँ उन्होंने शाश्वत जिन-प्रतिमाओंका अष्टाह्निका उत्सव किया। फिर वहाँसे वे अपने स्थानोंपर गए। कुबेर भी इंद्रकी आज्ञानुसार विनीता नगरीको बना अपनी अलकापुरीमें गया। मानो मेरुपर्वतके शिखर हों ऐसे ऊँचे सोनेके ढेरोंसे, मानो वैताढ्य पर्वतके शिखर हों ऐसी चाँदीकी राशियोंसे, मानो रत्नाकरके सर्वस्व हों ऐसे रत्नोंके समूहोंसे, मानो जगतके हर्ष हों ऐसे सत्रह तरहके धान्योंसे, मानो सभी कल्पवृक्षोंसे लाए गए हों

ऐसे वस्त्रोंसे, मानो ज्योतिष्क देवताओंके रथ हों ऐसे अति सुंदर वाहनोंसे; इसी तरह हरेक घर, हरेक दुकान और हरेक चौक नया बनाया गया था। इससे धन देकर पूर्ण की गई वह नगरी अलकापुरीके समान सुशोभित होने लगी। (३७-६४)

चक्रवर्तीकी माताके चौदह स्वप्न

उसी रातको सुमित्रकी स्त्री वैजयंतीने-जिसका दूसरा नाम यशोमती भी था, वेही चौदह सपने देखे। कुमुदिनीकी तरह अधिक हर्ष धारण करती हुई उन विजया और वैजयंतीने बाकी रात जागते हुएही बिताई। सवेरेही स्वामिनी विजयाने सपनेकी बात जितशत्रु राजासे कही और वैजयंतीने सुमित्रविजयसे कही। विजयादेवीके उन सपनोंका सरल मनसे विचार कर उनका फल राजा जितशत्रु इसतरह कहने लगे, "महादेवी! गुणोंसे जैसे यशकी वृद्धि होती है, शास्त्रोंका अभ्यास करनेसे जैसे विशेष ज्ञानकी सम्पत्ति मिलती है और सूरजकी किरणोंसे जैसे जगतमें प्रकाश फैलता है वैसेही,इन सपनोंसे तुम्हारे एक उत्तम पुत्ररत्न पैदा होगा।" (६५-७०)

इस तरह राजा जब सपनोंका फल कह रहे थे तभी प्रतिहारी (छड़ीदार) ने आकर सुमित्रविजयके आनेके समाचार दिए। सुमित्रविजय वहाँ आ पंचांगसे जमीन छू, राजाको देवता की तरह नमस्कार कर, यथायोग्य स्थानपर बैठा। थोड़ी देरके बाद पुनः भक्ति सहित हाथ जोड़, वह कुमार इस तरह कहने लगा,—

"आज रातके अंतिम प्रहरमें आपकी बहू वैजयंतीने, मुखमें प्रवेश करते हुए चौदह सपने देखे हैं। वे इस प्रकार हैं,—

(१) गर्जनासे दिग्गजोंको भी जीतनेवाला हाथी। (२) ऊँची ककुद और उजली (व सुंदर) आकृतिवाला वृषभ। (३) ऊँची केशावलीकी पंक्तिसे प्रकाशित मुखवाला केसरी। (४) दोनों तरफ जिनके दो हाथी अभिषेक कर रहे हैं ऐसी लक्ष्मी। (५) इंद्रधनुषके समान पचरंगी फूलोंकी माला। (६) अमृतकुंडके जैसा संपूर्ण मंडलवाला चंद्रमा। (७) सारे विश्वके प्रतापको एकत्र किया हो ऐसा प्रतापवाला सूर्य। (८) झूलती पाताकाओंवाला दिव्य रत्नमय महाध्वज। (९) नए सफेद कमलोंसे जिसका मुख ढका हुआ है ऐसा पूर्णकुंभ। (१०) मानो हजारों आँखोंवाला हो ऐसा, विकसित कमलोंसे शोभता पद्मसरोवर। (१२) तरंगोंसे मानो आकाशको डुबाना चाहता हो ऐसा समुद्र। (१३) मानो रत्नाचलका सार हो ऐसी, लकलक करती हुई कांतिवाला रत्नपुंज और (१४) अपनी शिखाओंसे पल्लवित करती हुई निर्धूम अग्नि। ऐसे चौदह सपने उसने देखे हैं। उनके फलतत्वको आप जानते हैं और उनको पानेवाले भी आपही हैं।"

(७१–८२)

स्वप्नोंका फल

राजाने कहा, "देवी विजयाने भी ये ही सपने रात्रिके अंतिम प्रहरमें, साफ तौरसे देखे हैं। यद्यपि ये महा सपने साधारण रीतिसे भी महान फल देनेवाले और चाँदकी किरणोंके समान आनंददायक हैं तथापि सपनोंके विशेष फलोंको जाननेवाले पंडितोंसे इन सपनोंका फल पूछना चाहिए। कारण चंद्रमा-

की कांतिकी तरह इन विद्वानोंमें कुवलयको[1] आनंद देनेके गुण होते हैं।" कुमारके हाँ कहनेपर राजाने आदर सहित स्वप्न-शास्त्र जाननेवाले पंडितोंको बुला लानेके लिए प्रतिहारको भेजा। (८३-८६)

फिर प्रतिहारने जिनके आनेके समाचार दिए हैं ऐसे, व (स्वप्न शास्त्रको जाननेवाले) साक्षात ज्ञानशास्त्रके रहस्य हों ऐसे नैमित्तिक उस राजाके सामने आए। स्नानसे उनकी कांति निर्मल थी और उन्होंने धोए हुए स्वच्छ वस्त्र पहने थे; इससे वे पर्वणी (पूर्णिमा) के चाँदकी कांतिसे आच्छादित तारे हों ऐसे लगते थे। मस्तकपर दूर्वाके अंकुर डाले थे इससे मानो मुकुट धारण करते हों ऐसे और केशोंमें फूल थे इससे वे मानो हंस और कमलों सहित नदियोंका समूह हों ऐसे मालूम होते थे। ललाटपर उन्होंने गोरोचनके चूर्णसे तिलक किया था इससे वे अम्लान (पूर्ण तेजवाली) ज्ञानरूपी दीपशिखाओंसे शोभते थे और अमूल्य और थोड़े आभूपण उनके शरीरपर थे उनसे वे सुगंधित और थोड़े थोड़े फलोंवाले चैत्रमुखद्रुमों[2] के समान शोभते थे। उन्होंने राजाके पास आकर, (राजा व कुमारको) भिन्न भिन्न और एक साथ भी आर्यवेदोक्त[3] मंत्रोंसे आशीर्वाद दिया; और राजापर कल्याणकारी दूर्वा, अक्षतादि इस तरह

१—चाँदके पक्षमें 'कुवलय' का अर्थ है चंद्रमासे विकसित होनेवाला कमल और दूसरे पक्षमें कुवलयका अर्थ है पृथ्वीका वलय (मंडल) २—चैत्र मास यानी वसंत ऋतु आरंभ होनेके पहले खिले हुए थोड़े फूलोंवाले वृक्ष। ३—संस्कृत त्रिषष्टि श० पु० च० में टिप्पणमें इसका अर्थ 'जैनवेदोक्त' दिया है।

हाले जिस तरह बगीचोंमें पवन फूल गिराते हैं; फिर वे प्रतिहारके द्वारा बताए गए भद्रासनोंपर इस तरह बैठे जिस तरह हंस कमलिनीके पत्तोंपर बैठते हैं। राजाने अपनी रानीको और पुत्रवधूको परदेके अंदर इस तरह बैठाया जिस तरह मेघोंके अंदर चंद्रलेखा रहती है और तब मानो साक्षात स्वप्नफल हों ऐसे पुष्प और फल अंजलीमें लेकर अपनी रानी व पुत्रवधूके सपने उन नैमित्तिकोंको बताए। उन्होंने आपसमें, वहीं एकांतमें विचार-विमर्श-सलाह-मशवरा करके स्वप्नशास्त्रके अनुसार सपनोंका अभिप्राय इस तरह कहना आरंभ किया,— (८७–९७)

"हे देव! स्वप्नशास्त्रमें बहत्तर सपने बताए गए हैं। उनमें ज्योतिष्क देवोंमें ग्रहकी तरह तीस सपने उत्कृष्ट कहे गए हैं। उन तीस सपनोंमें भी इन चौदह सपनोंको उस शास्त्रके चतुर विद्वान महास्वप्न कहते हैं। जब तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती गर्भमें आते हैं तब उनकी माता रातके चौथे पहरमें अनुक्रमसे इन सपनोंको देखती हैं। इनमेंसे सात सपने वासुदेवकी माता देखती है, चार सपने बलभद्रकी माता देखती है और एक सपना मंडलेश्वरकी माता देखती है। एक साथ (एकही माताके) दो तीर्थंकर या दो चक्रवर्ती नहीं होते। एक माताके पुत्र तीर्थंकर और दूसरी माताके पुत्र चक्रवर्ती होते हैं। ऋषभदेवके समयमें भरत चक्रवर्ती हुए हैं और अजितनाथके समयमें सुमित्रके पुत्र सगर राजा चक्रवर्ती होंगे। जितशत्रु राजाके पुत्र दूसरे तीर्थंकर होंगे। उनका नाम अजितनाथ होगा। यह बात हमने अर्हत आगमसे (जिनभाषित शास्त्रसे) जानी है। इससे विजयादेवीके पुत्र तीर्थंकर होंगे और वैजयंतीके पुत्र षटखंड भरतके

अधिपति चक्रवर्ती होंगे।"

इस तरह सपनोंका फल सुनकर राजा संतुष्ट हुआ और उसने नैमित्तिकोंको गाँव, जागीर, अलंकार और वस्त्र उपहारमें दिए।

"महापुमांसो गर्भस्था अपि लोकोपकारिणः।"

[महापुरुष गर्भावासमें भी लोगोंके लिए उपकारकर्ता होते हैं।] कारण, स्वप्नशास्त्रके जानकारोंने महापुरुषोंके जन्मकी बात कही,इसीसे उनकी दरिद्रता उनके जीवनभरके लिए नष्ट हो गई। कल्पवृक्षोंकी तरह वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित वे राजाकी आज्ञासे अपने अपने घर गए। गंगा और सिंधु जैसे समुद्रमें जाती हैं वैसेही विजया और वैजयंती भी खुश खुश अपने अपने महलोंमें गईं। (६८–१०८)

फिर इंद्रकी आज्ञासे देवों (वैमानिक देवों) और असुरों (भुवनपति देवों) की स्त्रियोंने विजयादेवीकी सेवा करना आरंभ किया। वायुकुमार देवोंकी रमणियाँ हर रोज आकर उनके घरसे रज (धूलि), तिनके और काष्ठ आदि दूर करने लगीं; मेघकुमारकी देवियाँ दासियोंकी तरह उनके आँगनकी जमीनको गंधोदकसे छिड़कने लगीं; छः ऋतुओंकी अधिष्ठाता देवियाँ, मानो गर्भस्थ प्रभुको अर्ध्य देनेके लिए तैयार हुई हों ऐसे हमेशा पाँच रंगोंके फूलोंकी बारिश करने लगीं; महादेवीके भावोंको जाननेवाली ज्योतिष्क देवियाँ समयके अनुकूल और सुखकर मालूम हों ऐसा प्रकाश करने लगीं; वनदेवियाँ दासियोंकी तरह तोरणादिक रचने लगीं और दूसरी देवियाँ चारण–भाटोंकी स्त्रियोंकी तरह विजयादेवीकी स्तुति करने लगीं। इस तरह सभी

देवियाँ अपने अधिदेवता (रक्षक, ईश्वर) की तरह विजयादेवी की, अधिक अधिक सेवा करने लगीं। मेघघटा जैसे सूर्यके बिंबको और पृथ्वी जैसे निधान (धनके खजाने) को धारण करती है वैसेही, विजया देवी और वैजयंती देवी गर्भको धारण करने लगीं। जलसे भरी हुई तलाई जैसे बीचमें उगे हुए स्वर्ण-कमलसे अधिक शोभती है वैसेही स्वाभाविक सुंदरतावाली वे देवियाँ गर्भ धारण करनेसे अधिक शोभने लगीं। स्वर्णकी कांतिके समान उनके गोरे मुखकमल, हाथीके दाँतके छेदनेसे होनेवाली कांतिके जैसे पीलापनको धारण करने लगे। कुदरती तौरसेही कानोंतक फैले हुए उनके नेत्र, शरद ऋतुके कमलकी तरह अधिक विकसित होने लगे। तुरत धोकर उजाली हुई सोनेकी शलाकाके समान उनकी सुंदरता अधिकाधिक होने लगी। सदा मंथरगति (धीमी चाल) से चलनेवाली वे देवियाँ मदसे आलसी बनी हुई राजहंसिनीकी तरह बहुत आहिस्ता आहिस्ता चलने लगीं। दोनोंके सुखदायक गर्भ, नदीमें उगे हुए कमल-नालकी तरह और सीपोंमें पैदा हुए मौक्तिक रत्नकी तरह अति गूढ़ रीतिसे बढ़ने लगे। (१०६-१२२)

जन्म

इस तरह नौ महीने और साढ़े आठ दिन बीते तब माघ महीनेकी सुदि आठमके दिन, शुभ मुहूर्त्तमें, सभी ग्रह उच्चस्थान-में आए थे तब रोहिणी नक्षत्रमें, सत्य और प्रिय वाणी जैसे पुण्यको जन्म देती है उसी तरह विजयादेवीने गज-लक्षणवाले एक पुत्रको जन्म दिया। देवीको या पुत्रको-किसीको-प्रसव-संबंधी कोई दुःख नहीं हुआ। कारण,—तीर्थंकरोंका यह स्वा-

भाविक प्रभाव है। उस समय असमयमें उद्भूत (जन्मे हुए) मेघ विनाकी बिजलीके प्रकाशकी तरह क्षणभरके लिए तीनों लोकमें प्रकाश हुआ। शरद ऋतुमें पथिकोंको बादलोंकी छाया-का जैसा सुख मिलता है वैसाही सुख क्षणभरके लिए नारकि-योंको भी हुआ। शरद ऋतुमें जलकी तरह सर्व दिशाओंमें प्रसन्नता फैल गई; और प्रातःकालमें कमलोंकी तरह सभी लोगों-के मन खिल उठे। भूमिमें फैलता हुआ दक्षिण पवन, मानो भूतलमेंसे उत्पन्न हुआ हो ऐसे, अनुकूल हो मंद-मंद बहने लगा। चारों तरफ शुभसूचक शकुन होने लगे; कारण महा-त्माओंके जन्मसे सभी बातें अच्छीही होती हैं। (१२३-१३०)

छप्पन दिक्कुमारियोंका आना

उस समय प्रभुके पास जानेकी इच्छासे मानो उत्सुक हुए हों ऐसे, दिक्कुमारियोंके आसन कंपित हुए। सुंदर मुकुटमणि-की कांतिके प्रसारके वहाने उन्होंने उज्ज्वल कसूँबी वस्त्रके बुरखे डाले हों ऐसे वे दिशाकुमारियाँ शोभने लगीं। अमृत ऊर्मियोंसे उभरते मानो सुधाकुंड हों ऐसे, अपनेही प्रभावसे पूरी तरहसे भरे हुए मोतियोंके कुंडल उन्होंने पहने थे; कुंडलाकार होनेसे इंद्रधनुषकी शोभाका अनुसरण करनेवाले और विचित्र मणियों-से रचे हुए कंठाभरण (गलेके जेवर) उन्होंने धारण किए थे; रत्नगिरिके शिखरसे गिरते हुए निर्झरणोंकी शोभाको हरने-वाले, स्तनपर स्थित मोतियोंके हारोंसे वे मनोहर मालूम होती थीं; कामदेवके रखे हुए मानो सुंदर भाथे हों ऐसे माणिक्यके कंकणोंसे उनकी भुजवल्लियाँ (भुजारूपी वेलें) शोभती थीं; जगतको जीतनेकी इच्छा करनेवाले कामदेवके लिए मानो चिल्ला

तैयार किया हो ऐसी अमूल्य रत्नोंसे बनी हुई कटिमेखलाएँ उन्होंने पहनी थीं; उनके शरीरकी किरणोंके द्वारा जीते गए सभी ज्योतिष्क देवोंकी किरणें मानो उनके चरणकमलोंमें आकर पड़ी हों ऐसे रत्नोंके नूपुरोंसे वे शोभती थीं। उनमेंसे किन्हींके शरीरकी कांति प्रियंगु (काली कँगनी) के समान श्याम थी, कई बालसूर्यके समान अपनी कांति फैलाती थीं, कई चाँदनीके समान अपनी कांतिसे अपनी आत्माको स्नान कराती थीं, कई अपनी कांतिसे दिशाओंको कनकसूत्र देती थीं और कई मानो वैडूर्यमणिकी पुतलियाँ हों ऐसी कांतिमान मालूम होती थीं।

गोलाकार स्तनोंसे मानो वे चकवेकी जोड़ी सहित नदियाँ हों; लीलायुक्त गतिसे मानो वे राजहंसिनियाँ हों; कोमल हाथोंसे मानो वे पत्तोंसहित लताएँ हों, सुंदर आँखोंसे मानो वे विकसित पद्मवाली पद्मिनियाँ हों, सुंदरताके पूरसे मानो वे जलसहित वापिकाएँ हों और लावण्यसे मानो वे कामदेवकी अधिदेवता (इष्ट देव) हों, ऐसी शोभती थीं। इस तरहका रूप धारण करनेवाली उन छप्पन दिशाकुमारियोंने, अपने आसनको काँपते देख, अवधिज्ञानसे तुरत मालूम किया कि विजयादेवीकी कोखसे तीर्थंकरका पवित्र जन्म हुआ है; उन्होंने जाना कि,—इस जंबूद्वीपके दक्षिण भरतार्द्धके मध्य भागमें विनीता नगरीके अंदर, इक्ष्वाकु कुलका राजा है। उसका नाम जितशत्रु है। उसकी धर्मपत्नीका नाम विजयादेवी है। उन्हींकी कोखसे, इस अवसर्पिणीमें तीन ज्ञानको धारण करनेवाले श्रीमान दूसरे तीर्थंकर भगवान पैदा हुए हैं। यह जान आसनसे उठ, हर्ष

सहित आठ दस कदम तीर्थंकरकी दिशाकी तरफ चल, मानो मनको आगे किया हो ऐसे, प्रभुको नमस्कार कर, सबने शक्रस्तवसे भक्तिपूर्वक वंदना की। फिर सबने निज निज सिंहासनोंपर बैठकर अपने अपने आभियोगिक देवताओंको इस तरह आज्ञा की—(१३१–१५२)

"हे देवताओ ! दक्षिण भरतार्धमें दूसरे तीर्थंकरका जन्म हुआ है। आज हमें उनका सूतिका-कर्म करनेके लिए वहाँ जाना है। इसलिए बहुत बड़े लंबे चौड़े विविध रत्नोंके विमान हमारे लिए तैयार करो।" उनकी यह आज्ञा सुनकर महान शक्तिशाली उन देवताओंने तत्काल विमानोंकी रचना कर उनको बतलाया। वे विमान हजारों स्वर्णकुंभोंसे उन्नत थे; पताकाओंसे वैमानिक देवताओंके, मानों वे पल्लव हों ऐसे मालूम होते थे; तांडवश्रमसे थकी हुई नर्तकियोंके मानो समूह हों ऐसी पुतलियोंवाले मणिस्तंभोंसे वे सुंदर लगते थे; घंटाओंके घोषके आडंबरसे वे हाथियोंका अनुसरण करते थे; आवाज करती हुई घुघरियोंके समूहसे वे वाचाल मालूम होते थे; मानो लक्ष्मीके आसन हों ऐसी वज्रवेदिकाओंसे वे सुशोभित थे; और उनसे फैलती हुई हजारों किरणोंसे वे ऐसे मालूम होते थे मानो सूर्यबिंब हों; उनकी, चारों तरफकी, दीवारों और खंभोंपर रत्नमय ईहामृग (भेड़िए), बैल, घोड़े, पुरुष, रुरुमृग (काले मृग), मगर, हंस, शरभ (अष्टापद), चामर, हाथी, किन्नर, वनलता और पद्मलताके समूह बने हुए थे। (१५३–१६१)

प्रथम अधोलोकमें बसनेवाली, देवदुष्यवस्त्र धारण करनेवाली और जिनके केशपाश पुष्पोंसे अलंकृत हैं ऐसी-भोगंकरा,

भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, तोयधारा, विचित्रा, पुष्पमाला, और अनिंदिता ये आठ दिक्कुमारिकाएँ विमानोंमें सवार हुईं। हरेकके साथ चार चार हजार सामानिक देवियाँ, चार महत्तरा देवियाँ, सात महा अनीकें (फौजें), सात सेनापति, सोलह हजार आत्मरक्षक देवियाँ, अनेक व्यंतर देवता तथा बड़ी ऋद्धि-वाली देवियाँ थीं। ये सब मनोहर गीत—नाच कर रही थीं। उनका विमान ईशान दिशाकी तरफ चला। अब उन्होंने वैक्रिय समुद्घात करके असंख्य योजनका एक दंड बनाया। वैडुर्यरत्न, वज्ररत्न, लोहित, अंक, अंजन, अंजन पुलक, पुलक, ज्योतिरस, सौगंधिक, अरिष्ट, स्फटिक, जातरूप और हंसगर्भ वगैरा अनेक तरहके उत्तम रत्नोंके तथा मसारगल्ल वगैरा मणियोंके स्थूल पुद्-गलोंको दूर करके उनमेंसे सूक्ष्म पुद्गल ग्रहण किए और उनसे अपना उत्तर वैक्रिय रूप बनाया। कहा है—

"देवतानां जन्मसिद्धाः खलु वैक्रियलब्धयः।"

[देवताओंको जन्मसेही वैक्रियलब्धि[1] सिद्ध होती है।] फिर उत्कृष्ट, त्वरित, चल, प्रचंड, सिंह, उद्धत, यतना, छेक और दिव्य ऐसी देवगतियोंसे, सर्व ऋद्धि तथा सर्व बल सहित वे अयोध्यामें, जितशत्रु राजाके भवनमें आ पहुँची। ज्योतिष्क देव अपने बड़े विमानोंसे मेरु पर्वतको प्रदक्षिणा देते हैं वैसेही उन्होंने तीर्थंकरके सूतिकागृहको तीन प्रदक्षिणा दीं; और फिर विमानों-को पृथ्वीसे चार अंगुल ऊँचे, जमीनको न छुएँ ऐसे ईशान कोनमें खड़ा किया। फिर (विमानोंसे उतरकर) वे सूतिकागृह-

१—वैक्रियलब्धिवाले इच्छानुसार अपने शरीरको बदल सकते हैं।

में जा, जिनेंद्र और जिनमाताको तीन प्रदक्षिणा दे, हाथ जोड़, इस तरह कहने लगीं,—(१६२–१७७)

"सर्व स्त्रियोंमें श्रेष्ठ, उदरमें रत्नको धारण करनेवाली, और जगतमें दीपकके समान पुत्रको जन्म देनेवाली हे जगन्माता ! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप जगतमें धन्य हैं ! पवित्र हैं ! उत्तम हैं ! इस मनुष्यलोकमें आपका जन्म सफल है। कारण, पुरुषोंमें रत्नरूप, दयाके समुद्र, तीन लोकमें वंदनीय, तीन लोकके स्वामी, धर्मचक्रवर्ती, जगतगुरु, जगतबंधु, विश्वपर कृपा करनेवाले और इस अवसर्पिणीमें जन्मे हुए दूसरे तीर्थंकरकी आप जननी हैं। हे माता ! हम अधोलोकमें रहनेवाली दिशाकुमारियाँ हैं और तीर्थंकरका जन्मोत्सव करनेके लिए यहाँ आई हैं। आप हमसे भयभीत न हों।"

यों कह, प्रणाम कर, वे ईशान दिशाकी तरफ गईं और उन्होंने वैक्रिय-समुद्घातके द्वारा, अपनी शक्तिरूपी संपत्तिसे, क्षणभरमें संवर्तक नामकी वायुको उत्पन्न किया। सर्व ऋतुओंके पुष्पोंकी सर्वस्व सुगंधको वहन करनेवाले सुखकारी, मृदु, शीतल और तिरछा वहनेवाले उस पवनने सूतिकागृहकी चारों तरफ एक योजन तक तृणादि दूर कर भूमितलको साफ किया। फिर वे कुमारिकाएँ भगवान और उनकी माताके समीप गीत गाती हुईं हर्षसहित खड़ी रहीं। (१७८–१८७)

फिर ऊर्द्धरुचकमें स्थितिवाली, नंदनवनके कूटपर रहनेवाली और दिव्य अलंकारोंको धारण करनेवाली मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, सुवत्सा, वत्समित्रा, वारिषेणा और बलाहका नामक आठ दिशाकुमारियाँ, पहलेके अनुसारही

महत्तरा, सामानिक, अंगरक्षिका, सेना और सेनापतियोंके सहित वहाँ आई। उन्होंने स्वामीके जन्मसे पवित्र बने हुए सूतिकागृहमें जाकर जिनेंद्र और जिनमाताको तीन बार प्रदक्षिणा दी और पहलेकी देवियोंकी तरह ही अपना परिचय दे, विजयादेवीको प्रणाम, तथा स्तुति कर मेघको विकुर्वित किया। (यानी आकाशमें बादल बनाए।) उसने भगवानके जन्मस्थानसे (चारों तरफ) एक एक योजन तक-न कम न ज्यादा-गंधोदककी वर्षा की। तपसे जैसे पापकी शांति होती है और पूर्णिमाकी चाँदनीसे जैसे अंधकार मिटता है वैसेही, तत्कालही उस वर्षासे रजकी शांति हो गई। (यानी धूल उड़नी बंद हो गई।) उसके बाद उन्होंने, रंगभूमिमें रंगाचार्यकी तरह, तत्कालही विकसित, और विचित्र पुष्प वहाँ फैला दिए; इसी तरह कपूर तथा अगरकी धूपसे, मानो लक्ष्मीका निवासगृह हो ऐसे, उस भूमिको सुगंधित बना दिया। फिर वे तीर्थंकर और उनकी मातासे थोड़ी दूरीपर भगवानके निर्मल गुणोंका गायन करती हुई खड़ी रहीं। (१८८-१९७)

इसके बाद नंदा, नंदोत्तरा, आनंदा, आनंदवर्द्धना, विजया, वैजयंती, जयंती और अपराजिता नामकी पूर्व रुचकाद्रिमें निवास करनेवाली आठ दिक्कुमारियाँ अपनी सर्व ऋद्धि और अपने पूर्ण बल सहित वहाँ आई। पूर्वकी तरह वे परिवार सहित सूतिकागृहमें गई और स्वामी तथा उनकी माताको प्रणाम कर, तीन प्रदक्षिणा कर, स्वामीको अपना परिचय दे, पूर्ववत नमन व स्तुति कर, रत्नके दर्पण हाथमें ले गायन करती हुई पूर्व दिशामें खड़ी रहीं। (१९८-२०१)

दक्षिण रुचकाद्रिमें रहनेवाली, सुंदर आभूषण, दिव्य वस्त्र और मालाएँ धारण करनेवाली समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता तथा वसुंधरा नामों-को धारण करनेवाली और पूर्ववत परिवारवाली आठ दिक्कु-मारियाँ प्रभुके मंदिरमें आईं और स्वामिनीको प्रदक्षिणापूर्वक नमस्कार कर, अपना परिचय दे, भगवान और उनकी माताके दक्षिण तरफ, मधुर शब्दों द्वारा मंगलगीत गाती हुई हाथोंमें कलश लेकर खड़ी रहीं। (२०२–२०५)

पश्चिम रुचकाद्रिमें बसनेवाली आठ दिशाकुमारियां उतनाही परिवार लेकर वहाँ आईं। उनके नाम इलादेवी, सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मावती, एकनासा, नवमिका, भद्रा और सीता हैं। वे पूर्ववत अपना परिचय दे, प्रदक्षिणा कर, जिन और जिनमाताके पश्चिम तरफ अपने हाथोंमें सुंदर पंखे लिए गायन करती हुई खड़ी रहीं। (२०६–२०८)

उत्तर रुचकाद्रि में निवास करनेवाली अलंबुसा, मिश्रकेशी, पुंडरीका, वारुणी, हासा, सर्वप्रभावा, श्री और ह्री नामकी आठ दिक्कुमारियाँ पूर्वचत परिवार सहित वहाँ आईं और अपना परिचय दे, प्रदक्षिणापूर्वक भगवान और उनकी माताको नमस्कार कर, हाथमें सुंदर चमर ले, गायन करती हुई उत्तर दिशाकी तरफ खड़ी रहीं।। (२०९–२११)

विदिक्रुचकाद्रिमें रहनेवाली चित्रा, चित्रकनका, सुतेरा और सौत्रामणी नामकी चार कुमारियाँ वहाँ आईं और प्रदक्षि-

गापूर्वक जिनेश्वर और उनकी माताको नमस्कार कर, अपना परिचय दे, दोनोंके विपुल गुणोंका गायन करती हुई, हाथोंमें दीपिका ले, ईशान कोनमें खड़ी रहीं। (२१२-२१४)

रुचक द्वीपके मध्यमें रहनेवाली रूपा, रूपांशिका, सुरूपा और रूपकावती नामकी चार कुमारियाँ भी हरेक पूर्वकी तरह-ही परिवार सहित बड़े विमानमें सवार हो अर्हतके जन्मनगर-में आई। पहले उन्होंने विमानों सहित घरकी प्रदक्षिणा दी व विमानोंको योग्य स्थानपर रखा। फिर वे पैदल चलकर जन्म-गृहमें आई और भगवान तथा उनकी माताको, भक्तिसहित प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम करके, इस तरह कहने लगीं—"विश्वको आनंद देनेवाली हे जगन्माता! आपकी जय हो! आप चिर-जीवी हों। आपके दर्शनसे आज हमारा अच्छा मुहूर्त हुआ है। रत्नाकर, रत्नशैल और रत्नगर्भा—ये सब निरर्थक नामधारी हैं। रत्नभूमि तो आप एकही हैं; क्योंकि आपने (इन रत्नोंमें श्रेष्ठ) पुत्ररत्नको जन्म दिया है। हम रुचकद्वीपके मध्यमें रहने-वाली दिक्कुमारियाँ हैं; अर्हतके जन्मकृत्य करनेके लिए हम यहाँ आई हैं, इसलिए आप हमसे जरा भी भयभीत न हों।"

यों कहकर उन्होंने प्रभुका नाभिनाल चार अंगुल रखा और बाकी काट दिया। फिर उस कटे हुए नालको, भूमिमें खड्डा खोदकर निधिकी तरह रखा और रत्न तथा हीरोंसे खड्डे-को पूर दिया। तत्काल उत्पन्न हुई दूबसे उस खड्डेपर पीठिका बाँध ली। देवताओंके प्रभावसे तत्कालही बगीचा भी बन जाता है। फिर उन्होंने सूतिकागृहकी तीनों दिशाओंमें, क्षणभरमें लक्ष्मीके गृहरूप तीन कदलीगृह तैयार किए। उनमेंसे हरेकके

बीचमें चतुःशाल (चबूतरा) बना उनके बीचमें एक एक बड़ा रत्नसिंहासन रचा। फिर वे कुमारियाँ प्रभुको हाथोंमें और माताको भुजाओंपर उठाकर दक्षिण कदलीगृहमें गईं। वहाँ चतुःशालके अंदर उत्तम रत्नसिंहासनपर स्वामीको और माताको आरामसे बिठाया और खुद मालिश करनेवाली बनकर शतपाकादि तेलसे दोनोंके, धीरे धीरे मालिश की; सुगंधी द्रव्य और बारीक उवटनसे क्षणभरमें रत्नदर्पणकी तरह उन दोनोंके शरीरका मैल निकाल दिया। फिर वहाँसे वे उनको पूर्ववत पूर्व दिशाके कदलीगृहमें ले गईं। वहाँ चतुःशालमें रत्नके उत्तम सिंहासनपर प्रभुको और माताको, आरामसे बिठाकर गंधोदक, पुष्पोदक और शुद्धोदकसे उन्होंने, मानो जन्महीसे वे (इस काममें) तालीम पाई हुई हों ऐसे, स्नान कराया। चिरकालके बाद उपयोगमें आई हुई अपनी शक्तिसे कृतार्थताका अनुभव करती हुई उन्होंने उनको विचित्र रत्नोंके अलंकार पहनाए। फिर पहलेकीही तरह उनको लेकर वे उत्तर-दिशाके मनोहर कदलीगृहमें गईं। वहाँ उन्होंने उनको चतुःशालके सिंहासनपर बिठाया। उस समय वे दोनों पर्वतपर बैठी हुई सिंहिनी और उसके पुत्रकी शोभाको धारण करते थे। वहाँ कुमारियोंने आभियोगिक देवोंसे, क्षणभरमें, क्षुद्रहिमाचलपरसे, गोशीर्षचंदनकी लकड़ियाँ मँगवाईं। फिर अरणीकी लकड़ीको घिसकर आग पैदा की। चंदनकी लकड़ियोंको घिसनेसे भी आग पैदा होती है। चारों तरफसे गोशीर्पचंदनके समिध करके, उन देवियोंने आहिताग्नि (अग्निहोत्री) की तरह उस आगको प्रज्वलित किया। उस अग्निके होमसे भूतिकर्म (जन्मसंस्कार)

करके, भक्तिसे उन्नत बनी हुई उन देवियोंने, जिनेंद्रको रक्षा-बंधन बाँधा और उनके कानोंमें "तुम पर्वतके समान आयुवाले हो" कहकर आपसमें रत्नपाषाणके दो गोले टकराए। फिर वे प्रभुको हाथोंपर और विजयादेवीको भुजाओंपर उठाकर सूतिकागृहमें ले गईं और वहाँ उन्होंने उनको शैयापर लिटा दिया। फिर वे स्वामी और उनकी माताके उज्ज्वल गुणोंका अच्छी तरहसे गान करती हुई थोड़ी दूरीपर खड़ी रहीं।

(२१५-२४३)

इंद्रोंका आना

सौधर्मदेवलोकमें शक्रेंद्र अपने सिंहासनपर बैठा था। वह महा वैभवशाली था। कोटि देवता और कोटि अप्सराएँ उसकी सेवामें थीं; कोटि चारण उसकी स्तुति कर रहे थे, गंधर्व अनेक तरहसे उसके गुणसमूहका गान कर रहे थे; वारांगनाएँ उसकी दोनों तरफ खड़ी होकर उसपर चमर डुला रही थीं; मस्तकके ऊपर रहे हुए सफेद छत्रसे वह सुशोभित हो रहा था और सुधर्मा सभामें उसका सुखकारी सिंहासन था। उस समय (भगवानका जन्म हुआ उस समय) उसका सिंहासन काँपा। सिंहासनके काँपनेसे वह गुस्सेके मारे चंचल हो उठा। उसके ओंठ काँपने लगे, इससे वह हिलती हुई ज्वालावाली आग हो ऐसा मालूम होने लगा; उसकी चढ़ी हुई प्रचंड भृकुटिसे वह धूमकेतुवाला आकाश हो ऐसा भयंकर मालूम होने लगा; मदमस्त हाथीकी तरह उसका मुँह ताँबेके रंगसा हो गया और उछलते हुए तरंगवाले समुद्रकी तरह उसका ललाट त्रिवलीसे अंकित हो गया। इस स्थितिमें उसने अपने शत्रुनाशक वज्रकी तरफ देखा।

उसको इस तरह गुस्सेमें देखकर उसका नैगमिषी नामक सेनापति खड़ा हुआ और वह हाथ जोड़कर कहने लगा, "हे स्वामी! मैं आपका आज्ञाकारी हाजिर हूँ, तो भी आपका यह आवेश किसपर है? सुर, असुर और मनुष्योंमें न कोई आपसे बढ़कर है, न कोई आपके समानही है। आपके आसन-कंपका जो हेतु हुआ हो उसका विचार करके आप उसे अपने इस दंडकारी सेवकको बताइए।" (२४४–२५३)

सेनापतिकी यह बात सुनकर इंद्रने अवधान करके (ध्यान लगाकर) तत्कालही अवधिज्ञानसे देखा तो उसे दूसरे तीर्थंकर-का जन्म होना इसी तरह मालूम हो गया जिस तरह जैन प्रव-चनसे धर्म और दीपकसे अँधेरेमें वस्तु मालूम हो जाती है। वह सोचने लगा, "जंबूद्वीपके भारतवर्षमें विनीता नामकी नगरी है। उसमें जितराजाकी रानी विजयादेवीके गर्भसे इस अवस-र्पिणी कालमें दूसरे तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं। इसीसे मेरा यह आसन काँपा है। मुझे धिक्कार है कि, मैंने उलटी बात सोची। मैंने ऐश्वर्यसे मत्त होकर दुष्कृत किया है, वह मिथ्या हो।"

(२५४–२५८)

इस तरह विचार कर वह अपना सिंहासन, पादपीठ और पादुकाका त्याग कर खड़ा हुआ। शीघ्रतासे उसने, तीर्थं-करकी दिशाकी तरफ, मानो प्रस्थान करता हो इस तरह, कई कदम रखे; फिर जमीनपर दाहिना घुटना रख, बायाँ घुटना जरा झुका, हाथ और सरसे भूमिको छू, स्वामीको नमस्कार किया। वह शक्रस्तवसे वंदना कर, वेलातटसे (भाटेकी तरह किनारेसे) लौटे हुए समुद्रकी तरह वापस जाकर अपने सिंहा-

सनपर बैठा। फिर गृहस्थ मनुष्य जैसे स्वजनोंको बताता है वैसेही, तीर्थंकरके जन्मकी बात सब देवताओंको बतलानेके और उनको उत्सवमें बुलानेके लिए, मानो मूर्तिमान हर्ष हो ऐसा रोमांचित शरीरवाले इंद्रने अपने नैगमेषी सेनापतिको आज्ञा दी। उसने इंद्रकी आज्ञाको इसी तरह सादर शिरोधार्य किया जिस तरह प्यासा मनुष्य जल ग्रहण करता है। वह वहाँसे रवाना हुआ और सुधर्मा सभारूपी गायके गलेका घंटा हो ऐसे, योजन-मंडलवाले सुघोषा नामक घंटेको उसने तीन बार बजाया। मथन किए जानेवाले समुद्रमेंसे उठनेवाली आवाजकी तरह, उसको बजानेसे उससे, सारे विश्वके कानोंके लिए अतिथिके समान, महानाद उत्पन्न हुआ। इससे एक कम बत्तीस लाख घंटे, तत्कालही इसी तरह बज उठे जिस तरह गायके बोलनेके बाद बछड़े बोलते हैं। उन घंटोंके महानादसे सारा सौधर्म कल्प शब्दाद्वैतमय[1] हो गया। बत्तीस लाख विमानोंमेंके नित्य प्रमादी ऐसे देवता भी उस नादको सुननेसे, गुफाओंमें सोते हुए सिंहोंकी तरह जाग्रत हुए। इंद्रकी आज्ञासे किसी देवने, घोषणारूपी नाटकके नांदीरूप[2] इस सुघोषा घंटेको बजाया है, इस लिए इंद्रकी आज्ञा बतानेवाली घोषणाको अवश्य सुनना चाहिए; यह सोचकर सभी देवता कान देकर सुननेको तत्पर हुए। घंटाकी आवाज बंद हुई तब इंद्रके सेनापतिने बुलंद आवाजमें इस तरह कहना आरंभ किया,—"हे सौधर्म स्वर्गवासी देवताओ! सुनो! स्वर्गपति इंद्र तुमको आज्ञा

१—शब्द-आवाजके सिवा वहाँ और कुछ नहीं रहा।

२—मंगलाचरणके समान।

देता है कि, जंबूद्वीपमें भरतखंडके अंदर, अयोध्या नगरीके जितशत्रु राजाकी विजया रानीकी कोखसे, जगतके गुरु और विश्वपर कृपा करनेवाले दूसरे तीर्थंकरका,दुनियाके भाग्योदयसे, आज जन्म हुआ है। अपने आत्माको पवित्र करनेके लिए प्रभुका जन्माभिषेक करनेके निमित्त हमें परिवार सहित वहाँ जाना चाहिए। इसलिए तुम सब, अपनी ऋद्धि और अपने बल सहित मेरे साथ चलनेके लिए, तत्कालही यहाँ आओ।" मेघ-गर्जनासे जैसे मोर प्रसन्न होता है वैसेही, यह घोषणा सुनकर सभी देव बहुत प्रसन्न हुए। तत्काल मानो स्वर्गीय प्रवहण (जहाज) हों ऐसे, विमानोंमें बैठ बैठकर आकाशसमुद्रको पार करते हुए वे सभी इंद्रके पास आ पहुँचे।

(२५६-२८०)

इंद्रने अपने पालक नामके आभियोगिक देवताको आज्ञा दी कि "स्वामीके पास जानेके लिए एक विमान बनाओ।" इससे उसने एक लाख योजन लंबा-चौड़ा, मानो दूसरा जंबूद्वीप हो ऐसा, और पाँच सौ योजन ऊँचा एक विमान बनाया। उसके अंदरकी रत्नमय दीवारोंसे मानो वह उछलते हुए प्रवालोंवाला समुद्र हो, सोनेके कलशोंसे मानो वह खिलेहुए कमलोंवाला समुद्र हो, लंबी ध्वजाओंके कपड़ोंसे मानो वह शरीरमें तिलक लगाए हुए हो, विचित्र रत्नशिखरोंसे मानो वह अनेक मुकुटोंवाला हो, अनेक रत्नमय स्तंभोंसे मानो वह लक्ष्मीकी हथिनीका आलानस्तंभवाला हो, और रमणीक पुतलियोंसे मानो वह दूसरी अप्सराओंवाला हो ऐसा मालूम होता था। वह तालको ग्रहण करनेवाले नटकी तरह किंकिणीजालसे मंडित था, नक्षत्र सहित आकाशकी तरह वह

मोतियोंके साँथियोंसे अंकित था और ईहामृग, अश्व, बैल, नर, किन्नर, हाथी, हंस, वनलता और पद्मलताओंके चित्रोंसे वह सजा हुआ था। मानो महागिरिसे उतरते और विस्तृत होते हुए निर्झरणोंकी तरंगें हों ऐसी, विमानमें तीन तरफ सोपानपंक्तियाँ (सीढ़ियाँ) थीं। सोपानपंक्तियोंके आगे इंद्रके अखंड धनुषकी श्रेणीके मानो सहोदर हों ऐसे, तोरण थे। उसका निचला भाग आपसमें मिले हुए पुष्करमुख (कमलमुख) और उत्तम दीपकश्रेणीके जैसा समानतलवाला (फर्शवाला) और कोमल था। सुस्पर्शवाले और कोमल कांतिवाले पंचवर्णी चित्रोंसे विचित्र बना हुआ वह भूमिभाग, मानो मोरके पंखोंसे छाया हुआ हो ऐसा शोभता था। उसके मध्यभागमें मानो लक्ष्मीका क्रीड़ागृह हो और नगरीमें मानो राजगृह हो ऐसा, प्रेक्षा-गृह-मंडप (नाटक घर) था। उसके बीचमें लंबाई और विस्तारमें आठ योजन प्रमाणवाली और ऊँचाईमें चार योजन प्रमाणवाली एक मणिपीठिका थी। उसपर, अंगूठीमें जड़े हुए बड़े माणिकके समान, एक उत्तम सिंहासन था। उस सिंहासनपर, स्थिर हुई शरद ऋतुकी चंद्रिकाके प्रसारका भ्रम पैदा करनेवाला चाँदीके जैसा उजला उल्लोच (चँदोवा) था। उस उल्लोचके बीजमें एक वज्रमय अंकुश लटकता था। उसके पास एक मोतियोंकी हाँडियोंका हार लटकता था और उसके चारों कोनोंपर, मानो छोटी बहनें हों ऐसी, उससे आधे आकारवाली मोतियोंकी हाँडियोंके चार हार लटक रहे थे। मंद पवनसे हार धीरे धीरे हिल रहे थे, वे मानो इंद्रकी लक्ष्मीके खेलनेके झूलेकी शोभाको चुरा रहे थे। इंद्रके मुख्य सिंहासनके ईशान कोनमें,

उत्तर दिशामें और वायव्य कोनमें चौरासी हज़ार सामानिक देवोंके चौरासी हज़ार सुंदर रत्नमय भद्रासन बिछे हुए थे। पूर्व-में इंद्रकी आठ इंद्राणियोंके आसन थे। वे ऐसे शोभते थे मानो लक्ष्मीके क्रीड़ा करनेकी माणिक्य वेदिकाएँ (खुले मंडप) हों। अग्निकोनमें अभ्यंतर पर्षदाके (सभाके) बारह हज़ार देवताओं-के आसन थे, दक्षिण दिशामें मध्य पर्षदाके चौदह हज़ार देव-ताओंके आसन थे, नैऋत्य कोनमें बाह्य पर्षदाके सोलह हज़ार देवताओंके आसन थे, इंद्रके सिंहासनके पश्चिममें सात सेना-पतियोंके सात आसन ज़रा ऊँचाईपर थे और आसपास चारों दिशाओंमें चौरासी चौरासी हज़ार आत्मरक्षक देवताओंके सिंहासन थे (२८९-३०६)

इंद्रकी आज्ञासे तत्कालही इस तरहका विमान तैयार किया गया।

"निष्पद्यंते सुमनसां मनसा हीष्टसिद्धयः।"

[मनसे ही देवताओंकी इष्टसिद्धि होती है; अर्थात देवताओं-की इच्छा होते ही, उनकी इच्छा पूरी हो जाती है।] प्रभुके सामने जानेको उत्सुक बने हुए शक्रेंद्रने तत्कालही विचित्र आभूषण धारण करनेवाला उत्तर वैक्रिय रूप बनाया। फिर सुंदरतारूपी अमृतकी वेलोंके समान अपनी आठ इंद्राणियोंके साथ और बड़ी नाट्यसेना और गंधर्वसेना के साथ आनंदमें लीन इंद्र विमानकी प्रदक्षिणा देकर पूर्व तरफकी रत्नमय सीढ़ियोंसे विमानपर चढ़ा और बीचके रत्नसिंहासनपर पूर्व-की तरफ मुँह करके, सिंह जैसे पर्वतके शिखरकी शिलापर बैठता है वैसे, बैठा। कमलिनियोंके पत्तोंपर जैसे हंसिनियाँ

बैठती हैं वैसेही, इंद्राणियाँ अनुक्रमसे अपने अपने आसनोंपर बैठीं। (३०७-३१२)

चौरासी हजार सामानिक देव, उत्तर दिशाकी सीढ़ीसे, विमानपर चढ़े और अपने अपने भद्रासनोंपर बैठे। वे रूपसे इंद्रके प्रतिबिंबसे जान पड़ते थे। दूसरे देवी-देवता भी दक्षिण तरफकी सीढ़ीसे चढ़कर अपने अपने योग्य स्थानोंपर बैठे। सिंहासनपर बैठे हुए इंद्रके आगे, मानो एक एक इंद्राणीने मंगल किए हों ऐसे, आठ मांगलिक चले। उनके बाद छत्र, झारी और पूर्ण कुंभादिक चले, कारण ये स्वर्गराजके चिह्न हैं और छायाकी तरह उसके सहचारी हैं। उनके आगे हजार योजन ऊँचा महाध्वज चला। सैकड़ों छोटी छोटी पताकाओंसे वह, पत्तोंसे वृक्ष शोभता है वैसे; शोभता था। इनके आगे इंद्रके पांच सेनापति और अधिकारमें (अपने काममें) कभी प्रमाद नहीं करनेवाले आभियोगिक देवता चले। (३१३-३१६)

इस तरह असंख्य महान ऋद्धियोंवाले देवता जिसकी सेवामें हैं ऐसा, चारणगण जिसकी ऋद्धियोंकी स्तुति कर रहा है ऐसा, जिसके सामने नाट्यसेना, गंधर्वसेना, नाट्य, गीत और नृत्य कर रहे हैं ऐसा, पाँच सेनाओंने जिसके आगे महाध्वज चलाया है ऐसा और उसके आगे बजनेवाले बाजोंसे मानो वह ब्रह्मांडको फोड़ता हो ऐसा मालूम होता हुआ इंद्र, सौधर्म देवलोककी उत्तर तरफ, तिरछे रस्तेसे, पालक विमानके द्वारा, पृथ्वीपर उतरनेकी इच्छासे, रवाना हुआ। कोटि देवोंसे परिपूर्ण चलता हुआ पालक विमान, मानो चलता हुआ सौधर्म कल्प हो ऐसा, सुशोभित होने लगा। उसका वेग मनकी गतिसे भी अधिक

था। वह असंख्य द्वीप-समुद्रोंको लाँघकर, मानो सौधर्मकल्प हो ऐसा, देवताओंके लिए क्रीडा करनेके स्थान रूप नंदीश्वर द्वीप पहुँचा। वहाँ उसने, अग्निकोनमें रहे हुए रतिकर नामके पर्वतपर जाकर, विमानको छोटा बनाया। फिर वह वहाँसे विदा होकर विमानको अनुक्रमसे छोटा करते हुए जंबूद्वीपमें, भरत-खंडकी विनीता नगरीमें आया और वहाँ उसने विमान सहित, स्वामीकी परिक्रमा देते हैं ऐसे, सूतिकागृहकी तीन बार परिक्रमा दी। कारण—

"......स्वामिवत्स्वामिभूरुयपि।"

[स्वामीके समान स्वामीकी (जहाँ स्वामी निवास करते हैं वह) भूमि भी वंदनीय होती है।] फिर, सामंत जैसे राजाके महलमें प्रवेश करते समय अपनी सवारी एक तरफ खड़ी करता है वैसेही, उसने अपना विमान ईशान कोनमें खड़ा किया और कुलीन नौकरकी तरह अपने शरीरको संकुचित करके भक्ति सहित सूतिकागृहमें प्रवेश किया। (३२०-३३१)

अपनी आँखोंको धन्य माननेवाले इंद्रने तीर्थंकर और उनकी माताको, देखतेही प्रणाम किया। फिर दोनों की तीन प्रदक्षिणा दे, नमस्कार सहित वंदना कर हाथ जोड़, वह इस तरह बोला, "अपने उदरमें रत्न धारण करनेवाली, विश्वको पवित्र करनेवाली और जगत-दीपक (जगतके लिए दीपकके समान पुत्र) को देनेवाली हे जगन्माता! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे माता! आपही धन्य हैं कि, जिन्होंने, कल्पवृक्षको उत्पन्न करनेवाली पृथ्वीकी तरह, दूसरे तीर्थंकरको जन्म दिया है। हे माता! मैं सौधर्म देवलोकका स्वामी हूँ और प्रभुका

जन्मोत्सव करनेके लिए यहाँ आया हूँ। इससे आपको मुझसे डरनेकी जरूरत नहीं है।" (३३२-३३६)

यों कह, माताको अवस्वापिनी निद्रामें सुला, तीर्थंकरका दूसरा रूप बना, उसे माताकी बगलमें सुला, उसने अपने पाँच रूप बनाए। कामरूप देव एक होते हुए भी अनेक रूप धारण कर सकते हैं। उनमेंसे एकने पुलकित हो, भक्तिसे मनकी तरह शरीरसे भी शुद्ध हो, नमस्कार कर, "हे भगवन ! आज्ञा दीजिए" यों कह गोशीर्षरससे लिप्त अपने हाथों में प्रभुको ग्रहण किया; दूसरे इंद्रने पीछे रहकर पर्वतके शिखरपर रहे हुए पूर्णिमाके चाँदका भ्रम पैदा करनेवाला सुंदर छत्र प्रभुपर रखा; दो इंद्रोंने दोनों तरफ रहकर साक्षात पुण्य के समूह हों ऐसे दो चँवर हाथोंमें लिए और एक इंद्र प्रतिहार की तरह वज्रको उछालता और अपनी गरदन जरा टेढ़ी कर बार बार प्रभुको देखता, आगे चला। जैसे भौंरे कमलको घेर लेते हैं वैसेही, सामानिक पर्षदाके देव, त्रायस्त्रिंश देव और दूसरे सभी देव प्रभुके आसपास जमा हो गए। फिर इंद्र जन्मोत्सव करनेकी इच्छासे, प्रभुको यत्नपूर्वक हाथ पर उठाए, मेरु पर्वतकी तरफ चला। नादके पीछे मृगोंकी तरह, परस्पर टकराते हुए, देवता प्रभुके पीछे अहंपूर्विका (होड़) से दौड़ने लगे।

प्रभुको दूरसे देखनेवालोंके दृष्टिपातसे, सारा आकाश, खिले हुए नीलकमलोंसे भरा बन हो ऐसा मालूम होने लगा। धनवान जैसे अपने धनको देखता है वैसेही, देवता बार बार आकर प्रभुको देखने लगे। भीड़में एक दूसरे पर गिरते हुए और आपसमें टकराते हुए देवता ऐसे मालूम होते थे, मानो आपसमें

समुद्रकी तरंगें टकरा रही हैं। आकाशमें इंद्र रूपी वाहनपर सवार होकर जाते हुए प्रभुके आगे चलते हुए ग्रह, नक्षत्र और तारे पुष्प-समूहताको प्राप्त होने लगे। एक मुहूर्तमें इंद्र मेरु पर्वत के शिखरकी दक्षिण दिशामें रही हुई, अतिपांडुकवला नामकी शिलाके पास आया और वहाँ प्रभुको गोदमें लेकर, पूर्वकी तरफ मुख करके रत्नसिंहासन पर बैठा। (३३७–३५२)

उसी समय ईशान देवलोकके इंद्रका आसन काँपा। उसने अवधिज्ञानसे श्रीमान सर्वज्ञका जन्म जाना। उसने भी पहले इंद्रकी तरह सिंहासन छोड़, पाँच सात कदम प्रभुके सूतिका-गृहकी तरफ चल, प्रभुको नमस्कार किया। उसकी आज्ञासे लघुपराक्रम नामके सेनापतिने ऊँचे स्वरवाले महाघोष नामका घंटा बजाया। उसकी आवाजसे, अट्ठाईस लाख विमान इसी तरह भर गए जैसे, हवासे उछलते हुए और बढ़ते हुए समुद्रकी आवाजसे किनारेके पर्वतकी गुफा भर जाती है। सवेरे बजनेवाले शंखकी आवाजसे जैसे सोते हुए राजा जागते हैं वैसेही, उन विमानोंके देवता जाग गए। महाघोषा घंटेकी आवाज जब शांत हुई तब सेनापतिने मेघके समान गंभीर आवाजमें यह घोषणा की,—"जंबूद्वीपमें भरत खंडके अंदर विनीतापुरी (अयोध्या) में जितशत्रु राजाकी विजया नामकी रानीसे दूसरे तीर्थंकर उत्पन्न हुए हैं। उनके जन्माभिषेकके लिए तुम्हारे स्वामी इंद्र मेरु पर्वतपर जाएँगे इसलिए हे देवताओ! आप लोग सभी स्वामीके साथ चलनेके लिए तैयार हों।" यह घोषणा सुनकर सभी देव इस तरह ईशानपतिके पास पहुँच गए, जिस तरह मंत्रसे आकर्षित आदमी पहुँचते हैं। फिर हाथमें त्रिशूल लेकर,

अनेक रत्नके आभूषणोंसे वह चलते हुए रत्नके पर्वतके समान, सफेद वस्त्रवाला, पुष्पमाला धारण किए हुए, बड़े बैलोंका वाहनवाला, सामानिक वगैरे करोड़ों देवताओंसे सेवित उत्तरार्द्ध स्वर्गका स्वामी. पुष्पक नामके विमानमें बैठकर, दक्षिण तरफके ईशान कल्पके रस्ते परिवार सहित विदा हुआ। थोड़ेही समयमें असंख्य द्वीप समुद्रोंको लाँघकर वह नंदीश्वर महाद्वीप पहुँचा। वहाँ उसने ईशान कोणके रतिकर पर्वतपर, अपने विमानको हेमंत ऋतुके दिनकी तरह छोटा किया। वहाँसे वह समय खोए वगैर क्रमसे विमानको छोटा बनाता हुआ मेरु पर्वतपर, शिष्यके समान (नम्र होकर) प्रभुके पास आया। (३५३-३६७)

दूसरे सनत्कुमार, ब्रह्म, शुक्र और प्राणतके इंद्रोंने भी सुघोषा घंटा बजवाकर नैगमेषीके द्वारा देवताओंको कहलाया। देवता आए। उनके साथ विमानमें बैठकर वे शक्रेंद्रकी तरह उत्तर दिशाके मार्गसे नंदीश्वर द्वीप आए और वहाँ अग्निकोणके रतिकर पर्वतपर अपने विमानोंको छोटा बनाकर वहाँसे तत्काल ही मेरुपर्वत पर, इंद्रकी गोदमें विराजमान, प्रभुके पास आए, और चन्द्रके पास नक्षत्रोंकी तरह खड़े रहे। (३६८-३७०)

माहेंद्र, लांतक, सहस्रार और अच्युत नामके इंद्रोंने भी महाघोषा घंटा बजवाकर लघुपराक्रम सेनापतिके द्वारा देवताओंको बुलाया। इनके साथ वे विमानोंमें सवार होकर ईशान इंद्रकी तरह, दक्षिण मार्गसे, नंदीश्वर द्वीप आए; और वहाँ ईशान दिशाके रतिकर पर्वतपर अपने विमानोंको छोटा बनाकर, मुसाफिर लोग जैसे वनके फले-फूले वृक्षोंकी तरफ जाते हैं वैसेही, वे मेरु पर्वतके शिखरपर स्वामीके पास पहुँचे। (३७१-३७३)

उसी समय दक्षिण श्रेणीके आभूषणरूप चरमचंचा पुरीमें सुधर्मा सभाके अंदर चमरेंद्रका आसन काँपा। उसने अवधि-ज्ञानसे तीर्थंकरका पवित्र जन्म जाना। उसने सिंहासनसे उठ सात आठ कदम (तीर्थंकरके जन्मस्थानकी दिशामें) सामने चलकर वंदना की। उसकी आज्ञासे तत्कालही, द्रुम नामके पैदल (सेनाके) सेनापतिने सुस्वरवाला ओघस्वर नामक घंटा बजाया। उसका स्वर शांत होनेपर पूर्ववत (ईशान देवलोकके सेनापतिकी तरह द्रुमने) घोषणा की। इससे पक्षी संध्याके समय जैसे वृक्षके पास आते हैं वैसेही सभी देव चमरेंद्रके पास आए। इंद्रकी आज्ञासे उसके अभियोगिक देवताने आधे लाख योजन प्रमाणवाला एक विमान बनाया। पाँच सौ योजन ऊँचे इंद्रध्वजसे सुशोभित वह विमान, कूपक (मस्तूल) सहित, जहाजके समान मालूम होता था। चौंसठ हजार सामानिक देवता, तेतीस त्रायस्त्रिंश देवता, चार लोकपाल, तीन पर्षदाएँ, सात बड़ी सेनाओंके सात सेनापतियों, सामानिक देवोंसे चौगुने (अर्थात् २५६०००) आत्मरक्षकों, दूसरे असुरकुमार देवों व देवियों, पाँच महिषियों और अन्य परिवार सहित चमरेंद्र उस विमानमें सवार हुआ। क्षणभरमें वह नंदीश्वर द्वीप पहुँचा; वहाँ उसने अपने रतिकर पर्वतपर शक्रेंद्रकी तरह विमानको छोटा बनाया, और पूर्व समुद्रमें जैसे गंगाका प्रवाह पहुँचता है उसी तरहके वेगसे वह मेरुपर्वतके शिखर पर प्रभुचरणके समीप पहुँचा। (३७४–३८४)

उत्तर श्रेणीके आभूषणरूप बलिचंचा नामक नगरी है। उसमें बलि नामका इंद्र राज्य करता है। उसका सिंहासन काँपा

इससे, उसने अवधिज्ञानके द्वारा अर्हतका जन्म जाना। उसने महद्रुम नामके प्यादा सेनाके सेनापतिको आज्ञा दी। उसने आज्ञानुसार महौघस्वर नामका घंटा तीन बार बजाया। घंटेकी आवाज बंद होनेपर उसने असुरोंके कानोंके लिए अमृत-प्रवाहके समान (दूसरे तीर्थंकरके जन्मकी) बात सुनाई। उसको सुनकर सभी देवता, मेघकी गर्जना सुनकर हंस जैसे मानसरोवर पर जाते हैं वैसे बलींद्रके पास आए। साठ हजार सामानिक देवों, इनसे चार गुने (२४००००) आत्मरक्षक देवों और दूसरे चमरेंद्रके साथ जितने देवताओं और परिवारकी संख्या थी उतनी देवताओं व परिवारकी संख्याके साथ, चमरेंद्रके समानही बड़े और सभी साधनवाले विमानमें बैठकर वह नंदीश्वरद्वीपके रतिकर पर्वतपर अपने विमानको छोटा बनाकर मेरुपर्वतके शिखरपर (प्रभुचरणोंमें) आया। (३८५-३९०)

उसके बाद नागकुमार, विद्युतकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार, मेघकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिशाकुमार नामक दक्षिण श्रेणीमें रहे हुए देवलोकोंके क्रमशः स्वामी धरणींद्र, हरि, वेणुदेव, अग्निशिख, वेलंब, सुघोष, जलकांत, पूर्ण; और अमित नामके इंद्रोंने तथा उत्तर श्रेणीके भूतानंद, हरिशिख, वेणुदारी, अग्निमाणव, प्रभंजन, महाघोष, जलप्रभ, अवशिष्ट और अमितवाहन इंद्रोंने आसनकंपसे अवधिज्ञान द्वारा अर्हत-जन्म जाना। धरणींद्रादिकका घंटा भद्रसेन नामके सेनापतिने बजाया और भूतानंदादिकका घंटा दक्ष नामके सेनापतिने बजाया। इससे दोनों श्रेणियोंके

मेघस्वर, क्रौंचस्वर, हंसस्वर, मंजुस्वर, नंदीस्वर, नंदीघोष, सुस्वर, मधुस्वर और मंजुघोष नामके घंटे बजे। घंटोंकी आवाज सुनकर उन उन भुवनपतियोंके दोनों श्रेणियोंके देवता, इसी तरह अपने अपने इंद्रोंके पास चले आए जिस तरह घोड़े अपने अपने स्थानोंमें चले जाते हैं। इंद्रोंकी आज्ञाओंसे उनके आभियोगिक देवताओंने रत्नों और स्वर्णसे विचित्र पचीस-हजार योजन विस्तारवाले विमान और ढाई सौ योजन ऊँचे इंद्रध्वज बनाए। हरेक इंद्र छः महिषियों, छःहजार सामानिक देवताओं, इनसे चौगुने (२४००० हजार) अंगरक्षकों और चमरेंद्रकी तरह दूसरे त्रायस्त्रिंशादिक देवोंके साथ, अपने विमान-में बैठ, मेरु पर्वतपर प्रभुके पास आए। (४६१-५०२)

पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर किंपुरुष, महोरग और गंधर्वोंके अधिपति काल, स्वरूप, पूर्णभद्र, भीम, किन्नर, सत्पु-रुष, अतिकाय और गीतरति इन नामोंके दक्षिण श्रेणीमें रहने-वाले तथा महाकाल, प्रतिरूप, माणिभद्र, महाभीम, किंपुरुष, महापुरुष, महाकाय और गीतयशा उत्तर श्रेणीमें रहनेवाले, ऐसे दोनों श्रेणियोंके स्वामियोंने अपने आसनोंके कंपसे स्वामीका जन्म जाना। उन्होंने अपने अपने सेनापतियोंसे मंजुस्वर और मंजुघोष नामके घंटे बजवाए। घंटोंकी आवाजोंके बंद होनेपर सेनापतियोंने प्रभुके जन्मकी घोषणा की। इससे पिशाच वगैरा निकाय (समूहों) के व्यंतर अपने अपने इंद्रोंके पास आए। उन इंद्रोंके साथ त्रायस्त्रिंश और लोकपाल नामके देवता नहीं थे। कारण,-उनके पास सूर्य और चंद्रकी तरह त्रायस्त्रिंश और

लोकपाल नामक देवता नहीं होते। प्रत्येक इंद्र अपने चार हजार सामानिक देवों और सोलह हजार आत्मरक्षक देवोंके साथ, आभियोगिक देवताओंके द्वारा बनाए हुए विमानोंमें बैठकर मेरुपर्वतपर प्रभुके पास आए। (२०३-२११)

इसी तरह दक्षिण श्रेणी और उत्तर श्रेणीमें रहनेवाले अणपन्निकादिक वाणव्यंतरोंकी आठ आठ निकायोंके सोलह इंद्रोंने भी, पिशाचादिके इंद्रोंकी तरह, आसनोंके काँपनेसे, अवधिज्ञान द्वारा भगवानका जन्म जाना। उन्होंने अपने अपने सेनापतियोंसे मंजुस्वर और मंजुघोष नामके घंटे बजवाए, और (प्रभुके जन्मकी) घोषणा करवाई। फिर वे आभियोगिक देवताओंके द्वारा बनाए हुए विमानोंमें, अपने अपने व्यंतरों और पूर्ववत परिवार सहित, बैठकर मेरु पर्वतपर प्रभुके पास आए। (२१२-२१५)

असंख्य चंद्र और सूरज भी अपने अपने परिवारोंके साथ, पुत्र जैसे पिताके पास जाते हैं वैसे, प्रभुके पास आए। सभी चौसठ इंद्र, भक्तिके आधार स्तंभकी तरह, प्रभुका जन्मोत्सव मनानेके लिए मेरुपर्वतपर आए। (२१६-२१७)

इंद्रोंका स्नात्रोत्सव करना

अब ग्यारहवें और बारहवें देवलोकके अच्युत नामक इंद्रने स्नात्र करनेके साधन (लानेकी) आभियोगिक देवताओंको आज्ञा दी। उन्होंने ईशान दिशामें जा एक प्रकारका वैक्रिय समुद्घात कर,—सोनेके, चाँदीके, रत्नोंके, सोने चाँदीके, सोने-रत्नोंके चाँदी-रत्नोंके, सोना-चाँदी व रत्नोंके, और मिट्टीके,—प्रत्येक

तरहके एक हज़ार आठ कलश बनाए (अर्थात सब मिलाकर आठ हजार चौसठ कलश बनाए)। इनके साथही इतनीही झारियाँ, दर्पण, कटोरे, कटोरियाँ, डिब्बे, रत्नकी करंडिकाएँ और पुष्पोंकी चँगेरियाँ तत्कालही बनाईं। ऐसा जान पड़ता था कि ये सब चीजें भंडारमें रखी थीं सो निकाल ली हैं। वे निरालसी देव, कलश लेकर इसी तरह क्षीरसागरपर गए जिस तरह पनिहारियाँ सरोवरपर जाती हैं। वहाँसे उन्होंने, मानो मंगल-शब्द करते हों ऐसे बुदबुद शब्द करते हुए कुंभोंमें क्षीरोदक भरा। इसी तरह पुंडरीक, पद्म, कुमुद, उत्पल, सहस्रपत्र और शतपत्र जातिके कमल भी उन्होंने लिए। वहाँसे वे पुष्करवर समुद्रपर गए। वहाँसे उन्होंने, यात्री द्वीपमेंसे जैसे ग्रहण करते हैं वैसे, पुष्कर (नील कमल) आदि ग्रहण किए; भरत और ऐरावत क्षेत्रोंके मगधादि तीर्थोंका जल वगैरा ग्रहण किया; और तपे हुए पथिकोंकी तरह, गंगादिक नदियोंसे तथा पद्मादिक द्रहोंसे उन्होंने मिट्टी, जल और कमल ग्रहण किए। सभी कुल-पर्वतोंसे, सभी वैताढ्योंसे, सभी विजयोंसे, सभी वक्षारा (मध्यवर्ती) पर्वतोंसे, देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रोंसे, सुमेरुकी परिधिके भागमें रहे हुए भद्रशाल, नंदन, सौमनस और पांडुक वनोंसे, इसी तरह मलय, दर्दुरादि पर्वतोंसे, श्रेष्ठ श्रेष्ठ औषधियाँ, गंध, पुष्प और सिद्धार्थादि (सरसों आदि) ग्रहण किए। वैद्य जैसे दवाएँ जमा करता है और गंधी जैसे सुगंधित पदार्थ एकत्रित करता है वैसेही देवताओंने सभी चीजें जमा कीं। आदर सहित सभी चीजें लेकर वे इतने वेगसे स्वामीके पास आए मानो वे अच्युतेंद्रके मनके साथ स्पर्द्धा कर रहे हैं।
(४१८-४३४)

फिर अच्युतेंद्र दस हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंश देवों, सात सेनाओं, इनके सात सेनापतियों और चालीस हजार आत्मरक्षक देवोंके साथ उत्तरीय वस्त्र धारण कर, प्रभुके पास आ, पुष्पांजलि रख, चंदनसे चर्चित और विकसित कमलोंसे आच्छादित मुखवाले एक हजार आठ कुंभ अच्युतेंद्रने उठाए; फिर भक्तिके उत्कर्षसे अपनीही तरह झुकाए हुए मुखवाले कुंभोंसे प्रभुका अभिषेक आरंभ किया। यद्यपि वह जल पवित्र था तथापि सोनेके आभूषणोंमें जैसे मणि अधिक प्रकाशित होती है वैसेही, प्रभुके संगसे जल अधिक पवित्र हुआ। जलधाराकी ध्वनिसे कलशोंसे आवाज निकल रही थी; ऐसा जान पड़ता था मानो वे प्रभुकी स्नानविधिमें मंत्रपाठ कर रहे हैं। कुंभोंमेंसे गिरता हुआ जलका प्रवाह प्रभुकी लावण्यसरितामें मिलकर, त्रिवेणी-संगमकी छटा दिखा रहा था। प्रभुके सोनेके समान गोरे अंगमें फैलता हुआ वह पानी, स्वर्णमय हेमवंत पर्वतके कमलखंडमें फैलते हुए गंगाके जलके समान शोभता था। सारे शरीरमें फैलते हुए उस मनोहर और निर्मल जलके द्वारा प्रभु वस्त्र धारण किए हुए हों ऐसे मालूम होते थे। वहाँ भक्तिभावके भारसे आकुल बने हुए देवता-कई स्नान कराते हुए इंद्र और देवोंके हाथसे कुंभ खींच लेते थे, कई प्रभुपर छत्र धरते थे, कई चमर डुलाते थे, कई धूपदान लेकर खड़े थे, कई पुष्पगंध धारण करते थे, कई स्नात्रविधि बोल रहे थे, कई जय जय शब्द कर रहे थे, कई हाथोंमें डंडे लेकर नगारे बजा रहे थे, कई शंख बजा रहे थे-इससे उनके गाल और मुँह फूल रहे थे, कई काँसेकी ताल (झाँझ) बजा रहे थे, कई अखंडित

रत्नडंडोंसे झालरें बजा रहे थे, कई डमरू बजा रहे थे, कई डिंडिम (डुगडुगी) पीट रहे थे, कई नर्तककी तरह ताल-स्वरके साथ ऊँचे प्रकारका नाच कर रहे थे, कई विट (धूर्त) और चेट (भाँड) की तरह हँसानेके लिए विचित्र प्रकारकी चेष्टाएँ कर रहे थे, कई व्यवस्थित रूपसे गवैयोंकी तरह गायन गा रहे थे, कई गवालोंकी तरह गले फाड़ फाड़कर गा रहे थे, कई बत्तीस पात्रोंसे नाटकके अभिनय बताते थे, कई गिरते थे, कई कूदते थे, कई रत्नोंकी बारिश करते थे, कई सोना बरसाते थे, कई आभूषण बरसा रहे थे, कई चूर्ण (कपूर, चंदन इत्यादिका चूरा) उछाल रहे थे, कई मालाएँ, फूल और फल बरसा रहे थे, कई चतुराईसे चल रहे थे, कई सिंहनाद कर रहे थे, कई घोड़ोंकी तरह हिन-हिना रहे थे, कई हाथियोंकी तरह गर्ज रहे थे, कई रथ-घोष (चलते हुए रथकी आवाजके समान आवाज) कर रहे थे, कई तीन नाद (ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतका शब्द) कर रहे थे, कई पाद-प्रहारसे मंदराचलको हिला रहे थे, कई चपेटे (तमाचे) से पृथ्वीको चूर्ण कर रहे थे, कई आनंदकी अधिकतासे बार बार कोलाहल कर रहे थे, कई मंडल बनाकर रास कर रहे थे, कई बनावटी रूपसे जल जाते थे, कई कौतुकसे आवाज करते थे, कई मेघके समान बड़े जोरोंसे गर्जना करते थे और कई बिजलीकी तरह चमकते थे। इस तरह देवता आनंदके साथ अनेक तरहकी चेष्टाएँ कर रहे थे। उस समय अच्युतेंद्रने बड़े आनंदके साथ भगवानका अभिषेक किया।
(४३५-४५६)

फिर निष्कपट भक्तिवाले उस इंद्रने, मस्तकपर मुकुटके

समान दोनों हाथोंसे अंजली बनाकर बड़े जोरोंसे जय जय शब्दका उच्चारण किया; फिर चतुर संवाहक (स्नान करानेवाले सेवक) की तरह, सुखस्पर्श हाथसे, देवदूष्य वस्त्र द्वारा प्रभुका शरीर पोंछा। नट जैसे नाटक करता है वैसेही, उसने भी, देवताओंके साथ, प्रभुके सामने अभिनय किया। पश्चात आरणाच्युत कल्पके इंद्रने गोशीर्ष चंदनके रससे प्रभुका विलेपन किया; दिव्य और भूमिसे उद्भूत फूलोंसे प्रभुकी पूजा की; चाँदीके स्वच्छ और अखंड अक्षतों (पूजाके चावलों) से प्रभुके आगे कुंभ, भद्रासन, दर्पण, श्रीवत्स, स्वस्तिक, नंद्यावर्त, वर्धमान और मत्स्ययुग-अष्ट मंगल बनाए; और संध्याके आकाशकी कणिका (बूँद) के समान पाँच वर्णोंके फूलोंका ढेर प्रभुके सामने लगाया। वह ढेर घुटनोंतक पहुँचे इतना था। धुएँकी रेखाओंसे मानो स्वर्गको तोरणवाला बनाता हो ऐसे उसने धूपकी अग्निको धूपित किया। धूपदानीको ऊँचा करते समय देवता बाजे बजाते थे; उन बाजोंकी आवाज ऐसी मालूम होती थी मानो उसने बुलंद आवाजवाले महाघोष नामक घंटेको भी छोटा बना दिया है। फिर ज्योतिर्मंडलकी लक्ष्मीका अनुसरण करनेवाली और ऊँचे शिखामंडलवाली आरती उतार, सात-आठ कदम पीछे हट, प्रणाम कर, रोमांचित शरीरवाले अच्युतेंद्रने, इस तरह स्तुति की,—(४६१-४७०)

"हे प्रभो! खरे सोनेके छेद (टुकड़े) के समान छविसे आकाशके भागको ढकनेवाले, और प्रक्षालनके बिना पवित्र तुम्हारी काया किसपर आक्षेप न करे? (अर्थात दूसरी सभी चीजोंकी तुलनामें आपका शरीर सुंदर और पवित्र है।) सुगं-

धित पदार्थोंका विलेपन किए बगैरही आपका शरीर नित्य सुगंधित रहता है। उसमें मंदारकी[1] मालाकी तरह, देवताओं-की स्त्रियोंके नेत्र भ्रमरपनको पाते हैं। (अर्थात जैसे मंदार-पुष्पोंकी मालापर भौंरे मंडराते हैं उसी तरह देवांगनाओंकी आँखें आपके शरीरपर फिरा करती हैं—आपकोही देखा करती हैं।) हे नाथ! दिव्य अमृतरसके स्वादके पोपणसे मानो नष्ट हो चुके हों ऐसे रोगरूपी सर्पोंके समूह आपके शरीरमें प्रवेश नहीं कर सकते हैं। (अर्थात आपके शरीरपर किसी रोगका असर नहीं होता।) दर्पण-तलमें लीन हुए प्रतिबिंबके समान आपके शरीरमें, झरते हुए पसीनेकी लीनताकी बात कैसे संभव हो सकती है? (अर्थात आपके शरीरमें कभी पसीना नहीं आता।) हे वीतराग! आपका केवल अंतःकरणही रागरहित नहीं है; मगर आपके शरीरका खून भी दूधकी धाराके जैसा सफेद है। आपमें दूसरी भी (कई बातें) दुनियासे अनोखी हैं। यह बात हम कह सकते हैं। कारण,—आपका मांस भी अच्छा है, अबीभत्स है और सफेद है। जल और स्थलमें उत्पन्न होने-वाले फूलोंकी मालाओंको छोड़कर भौंरे आपके निःश्वासकी सुगंधका अनुसरण करते हैं। आपकी संसारस्थिति भी लोकोत्तर चमत्कार करनेवाली है। कारण,—आपका आहार (भोजन करना) और नीहार (टट्टी और पेशाब करना) आँखोंसे दिखाई नहीं देता है।"* (४७१–४७८)

१—स्वर्गका एक पेड़ तथा उसके फूल।

*[सूचना—इस स्तवनमें, अरिहंतोंके चौंतीस अतिशयोंमेंसे आरंभ-

इस तरह इंद्रने उनकी, अतिशयगर्भित, स्तुति की। फिर वह थोड़ा पीछे हटा और हाथ जोड़कर प्रभुकी भक्ति करनेवाला वह इंद्र सुश्रूषा करनेको तत्पर होकर रहा। तब दूसरे बासठ इंद्रोंने भी, अपने परिवार सहित, अच्युतेंद्रकी तरह, प्रभुका अभिषेक किया। अभिषेकके बाद स्तुति-नमस्कार कर जरा पीछे हटे, हाथ जोड़, दासकी तरह तैयार होकर, वे प्रभुकी उपासना करने लगे। (४७६-४८१)

फिर सौधर्म देवलोकके इंद्रकी तरह, ईशान कल्पके इंद्रने अति भक्ति सहित अपने शरीरके पाँच रूप बनाए। फिर वह अपने एक रूपसे अर्धचंद्रके समान आकृतिवाली, अतिपांडुक-बला नामकी शिलापर ईशान कल्पकी तरह, सिंहासनपर बैठा। जिनभक्तिमें प्रयत्नवान उसने, प्रभुको शक्रेंद्रकी गोदसे इसी तरह अपनी गोदमें लिया जिस तरह किसीको एक रथसे दूसरे रथमें लेते हैं। दूसरे रूपसे, उसने प्रभुके मस्तकपर छत्र धरा, तीसरे और चौथे रूपोंसे, वह प्रभुके दोनों तरफ चमर लेकर खड़ा रहा और पाँचवें रूपसे, वह हाथमें त्रिशूल लेकर जगतपतिके सामने खड़ा रहा। उस समय उदार आकारवाला,

---

के चार जन्मजात होते हैं उनकी, बात कही गई है। वे ये हैं—

१—तीर्थंकर अति सुंदर होते हैं और उनके शरीरमें पसीना न मैल नहीं होता।

२—उनका लोहू-मांस दुर्गंधहीन और दूधसा सफेद होता है।

३—उनके आहार और निहार आँखोंसे नहीं दिखते।

४—उनके श्वासोच्छ्वासमें कमलके समान सुगंध होती है।]

प्रतिहारीकी तरह, वह बड़ा सुंदर लगता था। फिर उस सौधर्म कल्पके इंद्रने अपने आभियोगिक देवतासे तत्कालही अभिषेकके उपकरण मँगवाए। उसने भगवानके चारों तरफ, मानो स्फटिकमणिके दूसरे पर्वत हों ऐसे, स्फटिकमय चार बैल बनाए। उन चार बैलोंके आठ सींगोंसे, जलकी चंद्रमाकी उज्ज्वल किरणोंके समान, आठ धाराएँ निकलीं। वे ऊपरकी ऊपरही मिलकर, जगतपतिके समुद्रके समान मस्तक पर गिरने लगीं। उसने इस तरह अलगही तरहसे प्रभुका अभिषेक किया। कारण,—

"भंग्यंतरेण कविवत् शक्ताः स्वं ज्ञापयंति हि।"

[शक्तिवान पुरुष, कवियोंके समान, तरह तरहकी रचनाओंसे-भावभंगियोंसे अपने आपको प्रकट करते हैं।] अच्युतेंद्रकी तरहही उसने भी मार्जन, विलेपन, पूजा, अष्टमंगलका आलेखन और आरती-ये सब काम विधिपूर्वक किए; फिर शक्रस्तवसे जगतपतिको वंदना-नमस्कार कर हर्षभरे गद्गद स्वरमें इस तरह स्तुति की-(४८२-४९३)

"हे त्रिभुवनके नाथ! विश्वैकवत्सल! (सारी दुनियाकी हितकामना करनेवाले और जगतके जीवोंपर स्नेह रखनेवाले!) पुण्यलताको उत्पन्न करनेमें नवीन मेघके समान हे जगतप्रभो! आपकी जय हो! हे स्वामी! जैसे पर्वतसे सरिताकी धारा निकलती है वैसेही, आप दुनियाको खुश करनेके लिए विजय नामके विमानसे आए हैं। मोक्षरूपी वृक्षके मानो बीज हों ऐसे, उजले तीन ज्ञान (मति, श्रुति और अवधि ज्ञान), जैसे जलमें ठंडक होती है ऐसे, आपको जन्महीसे प्राप्त हैं। हे तीन भुवनके अधीश्वर! दर्पणके सामने प्रतिबिंबकी तरह जो लोग आपको

हृदयमें धारण करते हैं उनके सामने सब तरहकी लक्ष्मी सदा खड़ी रहती है। भयंकर कर्मरूपी रोगसे पीड़ित प्राणियोंको रोगसे छुड़ानेके लिए, उनके भाग्योदयसे, आप वैद्यके समान उत्पन्न हुए हैं। हे स्वामी! मरुस्थल (रेगिस्तान) के मुसाफिरकी तरह, आपके दर्शनरूपी अमृतके उत्तम स्वादसे, हमें जरासी भी तृप्ति नहीं होती है। हे प्रभो! सारथीसे जैसे रथ (सीधा चलता है) और कर्णधार (माँझी) से जैसे नौका (सीधी चलती है) वैसेही, आपके समान नायकके उत्पन्न होनेसे जगतके लोग सन्मार्गपर चलें। हे भगवन! आपके चरण-कमलकी सेवा हमें मिली, इससे हमारा ऐश्वर्य अब कृतार्थ हुआ है।"

(४६४-५०१)

इसी तरहके (भावोंवाले) एक सौ आठ श्लोकोंसे उसने स्तुति की। इंद्रने पहलेहीकी तरह अपने पाँच रूप बनाए। उसने एक रूपसे प्रभुको हाथमें उठाया, दूसरे रूपसे प्रभुके मस्तकपर छत्र रखा, तीसरे और चौथे रूपोंसे हाथोंमें चमर लिए और पाँचवें रूपसे वह वज्र लेकर प्रभुके सामने खड़ा रहा। फिर अपनी इच्छाके अनुसार वह नम्रात्मा यथायोग्य परिवार सहित विनीता नगरीमें जितशत्रु राजाके घर आया। वहाँ उसने पहले विजयादेवी माताके पास रखे हुए तीर्थंकरके प्रतिबिंबको उठा लिया और तीर्थंकरको सुला दिया। उसने प्रभुके सिरहाने सूर्य-चंद्रके समान उज्ज्वल कुंडलकी जोड़ी और कोमल तथा शीतल देवदूष्य वस्त्र रखे। उल्लोचमें,[1] आकाशसे उतरती हुई किरणोंके समान चमकदार सोनेकी बँगड़ीवाला, सुसज्जित

१—चंदोवा।

श्रीदामगंड (फूलोंकी मालाओंका गुच्छा) बाँधा; प्रभुकी आँखों-को आनंदित करनेके लिए मणिरत्न-सहित हार और अर्धहार वहाँ लटकाए। फिर. चंद्रमा जैसे कुमुदिनीकी और सूर्य जैसे पद्मिनीकी निद्रा हर लेते हैं वैसेही, उसने विजयादेवीको दी हुई निद्रा हर ली। इंद्रकी आज्ञासे कुबेरकी सूचनानुसार जृंभक जातिके देवताओंने जितशत्रु राजाके घरमें उस समय बत्तीस कोटि (मूल्य वाले) सोने, चाँदी और रत्नोंकी अलग अलग वर्षा की; बत्तीस नंदभद्रासन (सिंहासन–विशेष) बरसाए; मण्यंग[1] कल्पवृक्षोंकी तरह उन्होंने आभूषणोंकी वर्षा की; अनग्न[2] कल्पवृक्षोंकी तरह वस्त्रोंकी वर्षा की; और भद्रशालिक वनमेंसे चुन चुन कर लाए हुए हों ऐसे, पत्तों, पुष्पों और फलों-की चारों तरफ वृष्टि की। चित्रांग नामके कल्पवृक्षकी तरह उन्होंने विचित्र वर्णोंकी फूलमालाओंकी वर्षा की; ऐलादिक चूर्णको उड़ानेवाले दक्षिण पवनकी तरह गंधवृष्टि और पवित्र चूर्ण-वृष्टि की। इसी तरह पुष्करावर्त मेघ जैसे जलधार बर-साता है वैसेही अति उदार वसुधारा–वृष्टि[3] की। फिर शक्रेंद्र-की आज्ञासे उसके आभियोगिक देवोंने यह उद्घोषणा की–ढिंढोरा पीटा,—

"हे वैमानिक, भुवनपति, ज्योतिष्क और व्यंतर देवताओ! तुम सब सावधान होकर सुनो। जो अर्हंत और उनकी माताका अशुभ करनेका विचार करेगा उसका मस्तक अर्जक[4] की मंजरीकी तरह सात तरहसे छेदा जाएगा।" (५०२–५१६)

१–जेवर देनेवाले कल्प वृक्ष। २–वस्त्र देनेवाले कल्प वृक्ष।
३—धनकी वृष्टि। ४—तुलसी।

इधर दूसरे सभी इंद्र देवताओंके साथ, आनंदपूर्ण हृदय सहित मेरुपर्वतसे नंदीश्वर द्वीप गए। सौधर्मेंद्र भी, भगवानको नमस्कार कर जितशत्रु राजाके घरसे निकल कर, तत्काल ही नंदीश्वर द्वीप पहुँचे। उसने दक्षिण अंजनाद्रिके शाश्वत चैत्यमें शाश्वत अर्हंतोंकी प्रतिमाके पास अष्टाह्निका उत्सव किया; और उसके चार लोकपालोंने, अंजनाद्रिके चारों तरफके चार दधि-मुख पर्वतों पर चैत्योंमें हर्षके साथ उत्सव किया। ईशानेंद्रने उत्तरके अंजनाद्रि पर्वतपरके शाश्वत चैत्यमें शाश्वत जिनप्रतिमा-का अष्टाह्निका उत्सव किया। उसके चार लोकपालोंने अंजना-द्रिके चारों तरफके चार दधिमुख पर्वतोंपरके चैत्योंमें ऋषभादि-की प्रतिमाका उत्सव किया। चमरेंद्रने पूर्व अंजनाद्रिपर और बलींद्रने पश्चिम अंजनाचलपर अष्टाह्निका उत्सव किया। चमरेंद्रके लोकपालोंने पूर्वके अंजनाद्रिके चारों तरफके चार दधिमुख पर्वतोंपर और बलींद्रके लोकपालोंने पश्चिम अंजना-चलके चारों तरफके चार दधिमुख पर्वतोंपर,चैत्योंमें प्रतिमाओं-का उत्सव किया। फिर संकेत-स्थानकी तरह उस द्वीपसे सभी सुर व असुर अपनेको कृतकृत्य मानते हुए अपने अपने स्थानों-को गए। (५२०-५२८)

सगरका जन्म

उसी रातको प्रभुके जन्मके बादही वैजयंतीने भी गंगा जैसे स्वर्ण-कमलको पैदा करती है वैसेही, सुखपूर्वक एक पुत्र-को जन्म दिया।

राज्यमें पुत्रजन्मका उत्सव

पत्नी और वधू-ऐसे विजया और वैजयंतीके परिवारने,

जितशत्रु राजाको पुत्रोत्पत्तिकी बधाई दी। इसे सुनकर राजाने उनको ऐसा इनाम दिया कि जिससे उनके कुलमें भी लक्ष्मी, कामधेनुकी तरह, अविच्छिन्न हुई। इस समाचारसे उसका शरीर ऐसा प्रफुल्लित हुआ जैसे घनके आगमनसे सिंधु नदी और चंद्रमाके आगमनसे समुद्र होता है। उस समय राजाने पृथ्वीके साथ उच्छ्वास,¹ आकाशके साथ प्रसन्नता और पवनके साथ तृप्ति प्राप्त की। उसने उसी समय अपने जेलखाने खोल दिए, अपने शत्रुओंको भी मुक्त कर दिया। इससे बंधन केवल हाथी वगैरहके ही रहे। इंद्र जैसे शास्वत जिनबिंबोंकी पूजा करते हैं वैसेही, राजाने चैत्योंमें जिनबिंबोंकी अद्भुत पूजा की। याचकोंको, अपने-पराएका खयाल न करके, धनसे प्रसन्न किया। कारण—

"सर्वसाधारणी वृष्टिर्वारिदस्योद्यतस्य हि।"

[उद्यत हुए (अर्थात आकाशमें आए हुए) मेघकी वृष्टि सबके लिए समानही होती है।] खूँटेसे छूटे हुए बछड़ोंकी तरह उछलते-कूदते विद्यार्थियोंके साथ, उपाध्याय (अध्यापक) सूतमातृकाका पाठ करते हुए वहाँ आए। किसी जगह ब्राह्मणोंकी वेदोदित मंत्रोंकी बड़ी ध्वनि होने लगी; किसी जगह लग्नादिके विचारसे सारवाली मुहूर्त संबंधिनी उक्तियाँ होने लगीं; किसी जगह कुलीन कांताओंके, झुंडके झुंड, हर्ष पैदा करनेवाली ध्वनिसे गीत गाने लगीं; किसी जगह वारांगनाओंकी मांगलिक गीत ध्वनियाँ सुनाई देने लगीं, किसी जगह बंदियोंका (भाटोंका)

१—दादस।

कल्याण-कल्पनाके समान बड़ा कोलाहल होने लगा, किसी जगह चारणोंकी सुंदर द्विपथक असीसें सुनाई देने लगीं; किसी जगह चेटक (सेवक) हर्षके साथ ऊँचे स्वरमें बोलने लगे और किसी जगह याचकोंको बुलानेसे उग्र बने हुए छड़ीदारोंका कोलाहल होने लगा। इस तरह, वर्षाऋतुके मेघोंसे भरे हुए आकाशमें होती हुई गर्जनाकी तरह, राजगृहके आँगनमें तरह तरहके शब्द फैलने लगे। (५२६-५४२)

नगरजन कहीं कुंकुमादिका लेप करने लगे, कहीं रेशमी वस्त्र पहनने लगे, कहीं दिव्य मालाओंके आभूषणोंसे अलंकृत होने लगे, कहीं कपूर डाले हुए पानोंसे प्रसन्न होने लगे; कहीं घरोंके आँगनोंमें, कुंकुम छिड़कने लगे, कहीं नीलकमलके समान मोतियोंसे स्वस्तिक बनाने लगे, कहीं नए केलोंके स्तंभोंसे वंदनवार बनाने लगे और कहीं वंदनवारोंके दोनों तरफ सोनेके कुंभ रख रहे थे। उसी समय, मानो साक्षात ऋतुकी लक्ष्मी हों ऐसी, फूलोंसे गूँथी हुई वेणियोंवाली, पुष्पमालाओंसे मस्तकको लपेटनेवाली और गलोंमें लटकती हुई मालाओंवाली, नगरकी गंधर्वसुंदरियाँ देवांगनाओंकी तरह ताल-स्वरके साथ गायन गाने लगीं। रत्नोंके कानोंके गहनों, भुजबंधों, निष्कों,[1] कंकणों, और नूपुरोंसे वे रत्न-पर्वतकी देवियोंके समान शोभती थीं और दोनों तरफ लटकते और हिलते हुए उत्तरीय वस्त्रोंके पल्लोंसे और श्रेणी-बद्ध परिकर[2]से वे मानो कल्पवृक्षकी लताएँ हों ऐसी मालूम होती थीं। उस समय नगरकी कुलवान स्त्रियाँ भी, पवित्र दूर्वा[3] सहित पूर्ण पात्रोंको हाथमें लेकर वहाँ आने लगीं।

१—निष्क=गलेमें पहननेका आभूषण। २—समूहसे। ३—दूब।

उन्होंने कसूँबेसे रंगे हुए सुंदर उत्तरीय वस्त्रोंके बुरखे डाले थे, इससे वे संध्याके बादलोंसे ढकी हुई पूर्व दिशाके मुखकी लक्ष्मी-की शोभाको हरती थीं। कुंकुमके अंगरागसे शरीरकी शोभाको अधिक बढ़ानेवाली वे विकसित कमलवनके परागसे जैसे नदियाँ शोभतीहैं वैसे शोभती थीं। उनके सर झुके हुए और आँखें जमीनकी तरफ थीं इससे ऐसा जान पड़ता था कि वे ईर्यासमिति पालती थीं और निर्मल वस्त्रोंसे वे निर्मल शीलवान मालूम होती थीं। (५४३-५५४)

कई सामंत अक्षतकी तरह सुंदर मोतियोंसे भरे पात्र, राजाके मंगलके लिए राजाके पास लाने लगे। महर्द्धिक देव जैसे इंद्रके पास आते हैं वैसेही, परम ऋद्धिवाले कई सामंत राजा, रत्नोंके आभूषणोंका समूह लेकर जितशत्रु राजाके पास आने लगे; कई, मानो केलेके रेशोंसे अथवा कमलनालके रेशोंसे बुने हुए हों ऐसे, महामूल्यवान वस्त्र लेकर राजाके पास आए; कईयोंने, जृंभक देवताओं द्वारा बरसाई गई वसुधाराके जैसी, सुवर्णराशि राजाके भेट की; कइयोंने, मानो दिग्गजोंके युवराज हों ऐसे, शौर्यवाले मदमस्त हाथी राजाके भेट किए और कइयोंने, मानो उच्चैश्रवाके[1] बंधु हों और सूर्याश्वके अनुज हों ऐसे, उत्तम घोड़े लाकर अर्पण किए। हर्षसे भरे हृदयकी तरह राजाके महलोंका मैदान बड़ा था, तो भी अनेक राजाओंद्वारा भेट किए गए वाहनोंके कारण वह छोटा मालूम हुआ। राजाने सबको प्रसन्न रखनेके लिए सबकी भेटें स्वीकार कीं; अन्यथा जिसका पुत्र देवोंका भी देव हो उसके घरमें किस चीजकी कमी हो

१—उच्चैश्रवा=इंद्रका घोड़ा।

सकती है ? (५५५-५६२)

राजाके आदेशसे नगरमें स्थान स्थानपर, देवताओंके विमान हों ऐसे, मंच बनाए गए। हरेक घर और हवेलीमें रत्नोंके वासनोंके तोरण बाँधे गए,वे ऐसे मालूम होते थे मानो आए हुए देवके लिए कौतुकसे ज्योतिष्क देवता आकर रहे हों। हरेक मार्गमें, धूल न उड़े इसके लिए केसरके जलका छिड़काव किया गया; वह ऐसा मालूम होता था मानो वह मार्गमें भूमिका मंगलसूचक विलेपन हो। नगरमें जगह जगह नाटक, संगीत और बाजोंकी आवाजें सुनाई देने लगीं। राजाने, दस दिन तकके लिए उस नगरका, कर और दंड बंद करके और सुभटोंका आना रोकके उत्सवको पूर्ण बना दिया। (५६३-५६७)

फिर उन महाराजने पुत्र और भतीजेका नामकरणउत्सव मनानेकी अपने सेवकोंको आज्ञा दी। उन्होंने मोटे और अनेक तहोंवाले कपड़ोंका एक मंडप बनाया। (उसमें सूरजकी किरणें नहीं जा सकती थीं) ऐसा मालूम होता था मानो उसने राजाके डरसे सूर्यकिरणोंको अपने अंदर नहीं आने दिया है। उसके हरेक खंभेके पास अनेक केलोंके खंभे शोभते थे, वे मानो पुष्पोंकी कलियोंसे आकाशमें पद्मखंडका[1] विस्तार करते हों ऐसे जान पड़ते थे। वहाँ विचित्र पुष्पोंसे पुष्पगृह बनाए गए, वे ऐसे मालूम होते थे, मानो रक्त बनी हुई मधुकरी हो ऐसी लक्ष्मीने वहाँ आश्रय लिया है। हंसोंके रोमोंसे गूँथे हुए और रुईसे भरे हुए काष्ठमय आसनोंसे वह मंडप, नक्षत्रोंसे आकाशकी तरह, सनाथ बना हुआ था। इस तरह जैसे इंद्रका विमान आभियो-

१—कमलवन।

गिक देवता तैयार करते हैं वैसे, सेवकोंने तत्कालही राजाका मंडप तैयार किया। फिर मंगलद्रव्य हाथमें लेकर हर्ष सहित वहाँ आनेवाले स्त्री पुरुषोंको, छड़ीदारने यथायोग्य स्थानपर बिठाया और अधिकारियोंने कुंकुमके अंगरागसे[1], तांबूलोंसे और फूलोंसे अपने बंधुकी तरह उनका सम्मान किया। उस समय मंगल बाजे मधुर स्वरमें बजने लगे। कुलीन कांताएँ मंगलगीत गाने लगीं। ब्राह्मण पवित्र मंत्रोच्चार करने लगे और गंधर्वोंने वर्द्धमानादिक गायन गाने आरंभ किए। चारण भाटोंने बगैर तालकेही जय जय शब्द किया, उनकी उच्च प्रतिध्वनिसे ऐसा मालूम होने लगा मानो मंडप बोल रहा है। गर्भमें यह बालक आया उसके बाद इसकी माँको कभी पासोंके खेलमें मैं न हरा सका यह सोचकर राजाने उसका नाम अजित रखा। अपने भाईके पुत्रका 'सगर' ऐसा पवित्र नाम रखा। सैकड़ों उत्तम लक्षणोंसे पहचाने जानेवाले, पृथ्वीका उद्धार करनेकी शक्तिवाले और मानो अपनी दो भुजाएँ हों ऐसे उन दोनों कुमारोंको देखता हुआ वह राजा ऐसा अखंड सुख पाया मानो वह अमृतपानमें मग्न हुआ है। (५६८-५८१)

आचार्य श्री हेमचंद्राचार्य विरचित त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र महाकाव्यके दूसरे पर्वमें अजितस्वामी-दूसरे तीर्थंकर और सगर नामक दूसरे चक्रवर्तीके जन्मोंका वर्णन नामका दूसरा सर्ग समाप्त।

१— सुगंधित लेप या उबटन।

सर्ग तीसरा

अजितकुमार और सगरकुमारका वृत्तांत

इंद्रकी आज्ञासे आई हुई पाँच धाएँ, प्रभुकी और राजाकी आज्ञासे आई हुई धाएँ सगरकुमारका लालन-पालन करने लगीं। इंद्रने अजित प्रभुके हस्तकमलके अंगूठेमें अमृतका संचार किया था। वे उसको पीते थे। कारण,—तीर्थंकर स्तनपान नहीं करते।

बागके पेड़ जैसे नहरका पानी पीते हैं वैसेही सगर कुमार धायका अनिंदित स्तनपान करते थे। पेड़की दो शाखाओंकी तरह या हाथीके दो दाँतोंकी तरह, दोनों राजकुमार प्रति दिन बढ़ने लगे। पर्वतपर जैसे सिंहके बच्चे चढ़ते हैं वैसेही, दोनों राजकुमार बढ़ते हुए राजाकी गोदमें चढ़ने लगे। उनकी मुग्ध करनेवाली हँसीसे माता-पिता खुश होते और उनकी वीरतादर्शक चालसे अचरज करते। केसरी सिंहके-कुमार जैसे पिंजरेमें नहीं पड़े रहते वैसेही, वे दोनों राजकुमार भी धाएँ बार बार पकड़कर उनको अपनी गोदमें बिठाती थीं; मगर वे निकलकर भाग जाते थे। वे स्वच्छंदतापूर्वक इधर उधर दौड़ते थे। धाएँ उनके पीछे दौड़ती थीं और थक जाती थीं। कारण,—

"वयो गौणं महात्मनाम् ।"

[महात्माओंके वयकी बात गौण होती है।] वेगमें वायुकुमारको पीछे छोड़नेवाले, दोनों राजकुमार खेलनेके लिए दौड़-

कर तोता और मोर वगैरा पंखियोंको पकड़ लेते थे। अच्छे हाथीके वच्चेकी तरह स्वच्छंदतासे फिरते-दौड़ते अलग अलग तरहकी चतुराइयोंसे धायोंको भुलावेमें डालते थे। उनके चरण-कमलोंमें पड़े हुए आभूपणोंके झनझनाहट करते हुए घुंघरू (गुरियाँ) भौंरोंकी तरह शोभते थे। उनके गलेमें पड़ी और छातीपर लटकती हुई सोने और रत्नकी ललंतिकाएँ[1] आकाश-में लटकती हुई बिजलीकी तरह शोभती थीं। अपनी इच्छाके अनुसार खेलते हुए उन कुमारोंके कानोंमें पहनाए हुए सोनेके नाजुक कुंडल, जलमें संक्रमण करते हुए—पानीमें दिखाई देते हुए सूर्यके विलासको धारण करते थे। उनके चलनेसे हिलती हुई सरकी चोटियाँ बाल-मयूरोंके नाचसी मालूम होती थीं। जैसे उत्ताल तरंगें राजहंसोंको एक पद्मसे दूसरे पद्मपर ले जाती हैं वैसेही, राजा उनको एक गोदसे दूसरी गोदमें लेता था। जित-शत्रु राजा रत्नके आभूपणकी तरह उन दोनों कुमारोंको गोदमें, छातीपर, हाथोंमें, कंधोंपर और सरपर बार बार बिठाता था। भौंरा जैसे कमलको सूँघता है वैसेही, वह प्रीतिवश उनके मस्तकों-को बार बार सूँघता था, और तृप्त होता था। राजाकी उँगलियों-को पकड़कर दोनों तरफ चलते हुए दोनों राजकुमार मेरु पर्वत-के दोनों तरफ चलते हुए दो सूर्योंसे मालूम होते थे। योगी जैसे आत्मा और परमात्माका ध्यान करते हैं वैसेही, जितशत्रु राजा परम आनंदके साथ दोनों कुमारोंका ध्यान करते थे—दोनोंको याद करते थे। अपने घरमें जन्मे हुए कल्पवृक्षकी तरह राजा बार बार उनको देखता था और चतुर शुककी तरह बार बार

1—गलेमें पहननेका एक आभूपण-विशेष।

उनको बुलाता था। राजाके आनंदके साथ और इक्ष्वाकु कुल-की लक्ष्मीके साथ वे दोनों कुमार क्रमशः अधिकाधिक वृद्धि पाने लगे। (१-२१)

अजितकुमारका विद्या प्राप्त करना

महात्मा अजितकुमार सभी कलाएँ, न्याय और शब्द-शास्त्र वगैरा सभी विद्याएँ अपने आपही सीख गए। कारण,—

"......त्रिज्ञाना हि स्वतो जिनाः।"

[जिनेश्वर स्वतः अर्थात जन्मके समयसेही तीन ज्ञानके (मति, श्रुति और अवधि ज्ञानके) धारक होते हैं।]

सगरकुमारका उपाध्यायसे विद्या प्राप्त करना

अच्छा मुहूर्त देखकर, दिन भर उत्सव किया गया और सगरकुमारको राजाकी आज्ञासे उपाध्यायके पास पढ़नेके लिए बिठाया गया। समुद्र जैसे नदियोंका पान करता है वैसेही, सगरकुमारने भी थोड़ेही दिनोंमें शब्दशास्त्रका पान किया। दीपक जैसे दूसरे दीपकोंसे ज्योति ग्रहण करता है वैसेही, सुमित्राके पुत्र सगरकुमारने भी उपाध्यायसे, बिनाही प्रयासके साहित्यशास्त्रका ज्ञान ग्रहण किया। साहित्यरूपी बेलके पुष्प समान और कानोंके लिए रसायनके समान अपने बनाए हुए नवीन काव्यों द्वारा, वीतराग प्रभुका स्तवन करके, उसने अपनी वाणीको कृतार्थ किया। बुद्धिकी प्रतिभाके समुद्र समान ऐसे प्रमाण-शास्त्रोंको उसने, खुदने रखी हुई सम्पत्तिकी तरह, तत्कालही ग्रहण किया। जितशत्रु राजाने जैसे अमोघ बाणोंसे शत्रुओंको जीत लिया वैसेही, सगरकुमारने भी स्याद्वाद सिद्धांत-

से सभी प्रतिवादियोंको जीत लिया। छः गुण, चार उपाय, और तीन शक्तियाँ इत्यादि प्रयोगरूपी तरंगोंसे आकुल[1] और दुर्गाह[2] ऐसे अर्थशास्त्ररूपी बड़े समुद्रका उसने अच्छी तरहसे अवगाहन[3] किया। औषध, रस, वीर्य और उसके विपाकसे संबंध रखनेवाले ज्ञानके दीपकके समान अष्टांग आयुर्वेदका उसने विना कष्टके अध्ययन किया। चार तरहसे वजनेवाला, चार तरहकी वृत्तिवाला, चार तरहके अभिनयवाला और तीन प्रकारके तूर्यज्ञानका[4] निदानरूप वाद्यशास्त्र भी उसने ग्रहण किया। दंतघात, मदावस्था, अंगलक्षण और चिकित्सासे पूर्ण ऐसा गजलक्षण ज्ञान भी उसने विना उपदेशकेही ग्रहण किया। वाहनविधि और चिकित्सा सहित अश्वलक्षणशास्त्र उसने अनुभवसे और पाठसे हृदयंगम[5] किया। धनुर्वेद और दूसरे शास्त्रोंके लक्षण भी केवल सुननेहीसे, खेलही खेलमें. अपने नामकी तरह उसने हृदयमें धारण कर लिए। धनुष, फलक[6], असि, छुरी, शल्य, परशु, भाला, भिंदिपाल, गदा, कंपण, दंड, शक्ति, शूल, हल, मूसल, यष्टि, पट्टिस, दुस्फोट, मुसंढी, गोफण, कणय, त्रिशूल, शंकु और दूसरे शस्त्रोंसे वह नगरकुमार शास्त्रके अनुमान सहित युद्धकलामें निपुण हुआ। पर्वणीके[7] चंद्रकी तरह वह सभी कलाओंमें कुशल हुआ और आभूषणोंकी तरह विनयादिक गुणोंसे शोभने लगा। (२२-३८)

श्रीमान अजितनाथ प्रभुकी, भक्तिवान इंद्रादि देव आकर,

१—परेशान करनेवाला। २—जिसमें कठिनतासे प्रवेश किया जा सके ऐसा। ३—छानबीन। ४—तुरही, तुरम, मृदंग। ५—सीख लिया। ६—ढाल। ७—पूर्णिमा।

समय समयपर सेवा करने लगे। कई देवता अजितनाथ प्रभु-की लीलाएँ देखनेके लिए उनके समान उम्रवाले बनकर उनके साथ क्रीड़ाएँ करने लगे। प्रभुके वाणीरूपी अमृतके रसका पान करनेकी इच्छासे कई देवता विचित्र नर्मोक्तियोंसे[1] और खुशामद-के वचनोंसे प्रभुके साथ बातचीत करने लगे-प्रभुको बुलाने लगे। आज्ञा नहीं देनेवाले प्रभुकी आज्ञा पानेके उद्देश्यसे क्रीड़ा-द्यूतमें दाव लगाकर, प्रभुके आदेशसे कई देवता अपना धन हार जाते थे। कई प्रभुके छड़ीदार बनते थे, कई मंत्री बनते थे, कई उपानह्धारी[2] और कई खेलते हुए प्रभुके पास अस्त्रधारी होते थे। (३९-४३)

सगरकुमारने भी शास्त्रोंका अभ्यास करके नियोगी[3] पुरुषकी तरह अपनी सेवाएँ अर्पण कीं। अच्छी बुद्धिवाला सगर उन सभी संशयोंको—जिन्हें उपाध्याय नहीं मिटा सके थे, अजित स्वामीसे पूछता था। भरत चक्रवर्ती भी इसी तरह भगवान ऋषभदेवसे पूछकर अपने संशय मिटाता था। अजित-कुमार मति, श्रुति और अवधिज्ञान द्वारा सगरके संदेहोंको इसी तरह मिटा देते थे जिस तरह, सूरज अंधकारको मिटाता है। तीन यत्नोंसे[4] दबाकर आसनको दृढ़ कर अपना बल काममें लाकर सगर, मदमत्त तूफानी हाथीको अपने वशमें कर प्रभुको अपनी शक्तिका परिचय कराता था। सवारीके या सवारीके काममें नहीं आनेवाले घोड़ोंको वह पाँच धाराओंसे[5], प्रभुके

१—कोमल बातोंसे। २—जूते उठानेवाले। ३—सेवाके लिए रखे गए। ४—हाथीको वशमें करनेके तीन तरहके प्रयत्न-विशेष। ५—घोड़ोंको चलानेकी चाल।

आगे चलाता था। वह बाणसे राधावेध, शब्दवेध, जलके अंदर रखा हुआ लक्ष्यवेध और चक्रवेध करके, प्रभुको अपनी बाण-विद्याकी निपुणता बताता था। ढाल और तलवार धारण करने-वाला वह आकाशके मध्यभागमें रहे हुए चंद्रमाकी तरह, फलकमें प्रवेश कर (यानी रंगभूमिके तख्तेपर चढ़कर), अपनी पादगति बताता था (यानी ढाल तलवारके साथ पैंतरे दिखाता था।) वह आसमानमें चमकती हुई बिजलीकी रेखाका भ्रम पैदा करनेवाले भाला, शक्ति और शर्वला[1] को वेगके साथ फेरता था। नर्तक पुरुष जैसे नाच बताता है वैसेही सर्वचारीमें (सभी विषयोंमें) निपुण सगरने अनेक तरहसे छुरी चलानेकी विद्या भी बताई। इसी तरह दूसरे शस्त्रोंको चलानेकी चतुराई भी उसने गुरुभक्तिसे और उपदेश ग्रहण करनेकी इच्छासे, अजित स्वामीको बताई। फिर अजित स्वामीने, सगरकुमारको, वे सब बातें बताईं जिनकी उसकी कलामें कमी थी। वैसे उत्तम पुरुषोंके शिक्षक भी वैसेही उत्तम होते हैं। (४४-५५)

कुमारोंकी युवावस्था

इस तरह दोनों कुमारोंने अपने योग्य खेल कूद करते हुए मुसाफिर जैसे गाँवकी सीमाको पार करता है वैसेही, बालवय-को समाप्त किया। सम चौरस संस्थान[2] और वज्रवृषभनाराच-संहनन[3] से सुशोभित, सोनेके समान कांतिवाले, साढ़े चार

१—तोमर—एक प्राचीन हथियार जिसमें लकड़ीके डंडेमें लोहे-का फल लगा रहता था। २—शरीरकी आकृति-विशेष। ३—शरीर-का गठन-विशेष।

सौ धनुष ऊँचाईवाले, श्रीवत्स चिह्नसे जिनका वक्षस्थल[1], सुशोभित है ऐसे और सुंदर मुकुटसे सुशोभित मस्तकवाले दोनों कुमार शरीरसंपत्तिको बढ़ानेवाली यौवनावस्था ऐसेही पाए जैसे सूरज और चाँद कांतिको अधिक करनेवाली शरद ऋतु पाते हैं। यमुना नदीकी तरंगोंके समान कुटिल और श्याम केशोंसे, व अष्टमीके चंद्रमाके समान ललाटसे वे विशेष शोभने लगे। उनके दोनों गाल ऐसे शोभते थे मानो सोनेके दो दर्पण हों। स्निग्ध और मधुर ऐसे उनके नेत्र नीलकमलके पत्रके समान चमकने लगे। उनकी सुंदर नासिकाएँ दृष्टिरूपी छोटे सरोवरोंके बीचमें पालके समान दिखने लगीं। और उनके दो जोड़ी होठ ऐसे शोभने लगे मानो दो जोड़ी बिंबफल हों। उनके सुंदर आवर्तवाले[2] कान सीपोंके समान मनोहर मालूम होते थे। तीन रेखाओंसे पवित्र बने हुए कंठरूपी कंदल[3] शंखसे शोभते थे। हाथीके कुंभस्थलकी तरह उनके स्कंध[4] उन्नत थे। लंबी और पुष्ट भुजाएँ सर्पराजके समान मालूम होती थीं। छातियाँ सोनेके पर्वतकी शिलाओंके समान शोभती थीं। नाभियाँ मनकी तरह बहुत गंभीर मालूम होती थीं। कमरका भाग वज्रके निचले भागके समान कृश था. बड़े हाथीकी सूँड़के समान उनकी जाँघें सरल और कोमल थीं। मृगीकी जाँघोंके समान उनकी जंघाएँ (पिंडलियाँ) शोभती थीं। उनके चरण सरल और उँगलियोंरूपी पत्तोंसे स्थलकमलका अनुसरण करते थे। स्वभावसेही सुंदर दोनों राजकुमार, लोजनप्रिय बगीचे जैसे वसंत

१—छाती। २—पानीका भँवर। ३—केलेके झाड़का ऊपरी भाग। ४—कंधे।

ऋतुमें अधिक सुंदर लगते हैं वैसेही, यौवनसे अधिक सुंदर लगते थे। अपने रूप और पराक्रमादि गुणोंसे सगरकुमार, देवताओंमें इंद्रकी तरह, सभी मनुष्योंमें ऊँचा स्थान पाता था; और सारे पर्वतोंसे मेरु पर्वत जैसे अधिकता पाया हुआ है वैसेही, देवलोकवासी, ग्रैवेयकवासी और अनुत्तर विमानवासी देवोंसे तथा आहारक शरीरसे भी अजित स्वामी रूपके कारण अधिकता पाए हुए थे। अर्थात वे सबसे अधिक सुंदर थे।

(५६–७१)

कुमारोंका व्याह

एक दिन जितशत्रु राजाने और इंद्रने रागरहित ऐसे अजितनाथ स्वामीसे विवाहके लिए कहा। इनने उन दोनोंके आग्रहसे और अपने भोगफलको जानकर विवाहकी बात मान ली। जितशत्रु राजाने, मानो लक्ष्मीकी प्रतिमूर्तियाँ हों ऐसी सैंकड़ों स्वयंवरा राजकन्याओंके साथ, अजितनाथ स्वामीका व्याह, बड़ी धूम-धामके साथ किया। पुत्रविवाहसे अतृप्त राजाने सगरकुमारका व्याह भी, देवकन्याओंके समान, अनेक राजकुमारियोंके साथ किया। इंद्रियोंसे अपराजित अजितनाथ प्रभु, अपने भोग-कर्मोंका नाश करनेके लिए रामाओंके (स्त्रियोंके) साथ रमते थे। कारण—

"यथाव्याधि हि भेषजम्।"

[जैसा रोग होता है वैसीही दवा दी जाती है।] सगरकुमार भी हथिनियोंके साथ जैसे हाथी क्रीडा करता है वैसेही स्त्रियोंके साथ, अनेक क्रीडास्थानोंमें, तरह तरहसे क्रीडाएँ करता था। (७२–७५)

अजितकुमारका राज्यारोहण

एक दिन अपने छोटे भाई सहित, संसारसे विरक्त बने हुए जितशत्रु राजा, अठारह पूर्व लाख की आयुको पहुँचे हुए अपने पुत्रोंसे कहने लगे, "हे पुत्रो! अपने सभी पूर्वज कई बरसों तक विधिसहित पृथ्वीकी रक्षा करके, पृथ्वी अपने पुत्रोंको सौंपते थे और मोक्षके साधनरूप व्रतको ग्रहण करते थे। कारण—

"तदेव हि निजं कार्यं, परकार्यमतः परं।"

[वही-मुक्तिका साधनही-अपना कार्य है, इससे दूसरा जो कार्य है वह पराया है।] इसलिए हे कुमारो! अब हम व्रत ग्रहण करेंगे। यही हमारे कार्यका हेतु है (यानी हमारे जीवनका उद्देश्य है) और यही अपने वंशका क्रम है। हमारीही तरह तुम दोनों इस राज्यमें राजा और युवराज बनो और हमें दीक्षा लेनेकी आज्ञा दो (७८-८२)

अजितनाथने कहा, 'हे तात! यह आपके लिए योग्य है। भोगकर्मरूप विघ्न न हो तो मेरे लिए भी यह ग्रहण करने योग्य है। विवेकी पुरुष व्रत ग्रहण करनेमें जब किसीके लिए भी विघ्नकर्ता नहीं होते तब समयके अनुसार सब काम करनेवाले आप,-पूज्य पिताके लिए तो मैं विघ्नकर्ता होही कैसे सकता हूँ? जो पुत्र भक्तिके वश होकर भी, अपने पिताके लिए, चौथा-पुरुषार्थ यानी-मोक्ष साधन करनेमें, विघ्नकर्ता होता है वह पुत्र, पुत्रके बहाने शत्रु उत्पन्न हुआ है यों समझना चाहिए। तो भी मैं इतनी प्रार्थना करता हूँ कि मेरे छोटे पिता (काका) राज्यगद्दीपर बैठें। कारण,—आपके ये विनयी छोटे भाई हमसे

अधिक (राजके हकदार) हैं। (८३-८६)

यह सुनकर सुमित्रने कहा, "राज्य लेनेके लिए मैं स्वामीके चरण नहीं छोड़ूँगा। कारण, थोड़े लाभके लिए अधिक लाभ कौन छोड़ता है ? विद्वान राज्यसे, साम्राज्यसे, चक्रवर्तीपनसे और देवपनसे भी अधिक गुरुसेवाको मानते हैं।

(८७-८८)

अजितकुमारने कहा, "आप, यदि राज्य लेना नहीं चाहते हैं तो, हमारे सुखके लिए, भाव-यति होकर घरहीमें रहिए।"

(८९)

उस समय राजाने कहा, "हे बंधो ! तुम आग्रह करनेवाले पुत्रकी बात मानो। कारण—

"............भावतोऽपि यतिर्यतिः।"

[भावसे जो साधु होता है वह भी साधु ही होता है।]

और ये साक्षात तीर्थंकर हैं। इनके तीर्थमें तुम्हारी इच्छा सफल होनेवाली है,इसलिए हे भाई ! तुम इसकी राह देखो और यहीं रहो। जल्दी न करो। एक पुत्रको तीर्थंकर पद और दूसरेको चक्रवर्ती पद प्राप्त होते देखकर तुम्हें सभी सुखोंसे अधिक सुख मिलेगा। (३९-९२)

यद्यपि सुमित्र दीक्षा लेनेको बहुत उत्सुक था तथापि उनकी बात उसने स्वीकार की। कारण,—

"सतां ह्यलंघ्या गुर्वाज्ञा मर्यादेवाम्बुधेरिव।"

[समुद्र-मर्यादाकी तरह गुरुकी आज्ञा, सत्पुरुषोंके लिए अलंघ्य होती है। अर्थात समुद्र जैसे अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता

वैसेही श्रेष्ठ पुरुष भी गुरुजनोंकी आज्ञाको नहीं मोड़ते ।] (९३)

अजित स्वामीका राज्याभिषेक और सगरको युवराज-पद मिलना

फिर प्रसन्नचित्त जितशत्रु राजाने, बड़ी धूम-धामके साथ, निज हाथोंसे अजित स्वामीका राज्याभिषेक किया । उनके राज्याभिषेकसे सारी पृथ्वी प्रसन्न हुई ।

"विश्वत्राणक्षमे नेतर्याप्ते कः प्रीयते न हि ।"

[दुनियाकी रक्षा करनेमें समर्थ नेता मिलनेपर कौन खुश नहीं होता है? अर्थात सभी खुश होते हैं ।] फिर अजित स्वामीने सगरको युवराज पदपर स्थापित किया । इससे उन (अपने भाईके साथ) अधिक प्रीति रखनेवाले अजित स्वामीको ऐसा मालूम हुआ मानो, उन्होंने अपनीही दूसरी मूर्ति वहाँ स्थापित की है । (९४-९६)

अब अजितनाथने बड़ी धूम-धामसे जितशत्रु राजाका निष्क्रमणोत्सव किया । इन्होंने ऋषभ स्वामीके तीर्थमें वर्तमान स्थविर महाराजासे, मुक्तिकी मातारूप दीक्षा ग्रहण की । बाहरी शत्रुओंकी तरह अंतरंग शत्रुओंको जीतनेवाले उन राजर्षिने राज्यकी तरह ही अखंड व्रतका पालन किया । अनुक्रमसे केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर शैलेशी ध्यानमें स्थित वे महात्मा आठ कर्मोंका नाश कर परमपदको प्राप्त हुए–मोक्ष गए । (९७–१००)

इधर अजितनाथ स्वामी सब तरहकी ऋद्धियोंसे, लीलासहित अपनी संतानकी तरह पृथ्वीका पालन करने लगे । वे दंडादिके विनाही सभीकी रक्षा करते थे, इससे प्रजा इस तरह

सन्मार्गपर चलने लगी जिस तरह अच्छे सारथीसे घोड़े मार्ग-पर सीधे चलते हैं। प्रजारूपी मयूरीके लिए मेघके समान और उसका मनोरथ पूर्ण करनेके लिए कल्पवृक्षके समान अजित महाराजके राज्य-शासनमें, चूर्ण अनाजका ही होता था, बंधन पशुओंके लिएही था, वेध मणियोंमेंही होता था, ताड़न बाजोंपर-ही होता था, संताप (भट्टीमें डालकर तपानेका काम) सोनेके लिए ही था, तेज (शाणपर चढ़ाना) शस्त्रही किए जाते थे, उत्ख-नन (खोदना) शाली धानकाही किया जाता था, वक्रता (टेढ़ा-पन) स्त्रियोंकी भौंहोंमेंही थी, मार शब्दका उपयोग चौपड़ खेलते समय सारको पीटते वक्तही होता था, विदारण (काटना) खेत-काही होता था, कैद पक्षियोंको लकड़ीके पिंजरेमें बंद करनेके रूपमेंही थी, निग्रह (रोक-थाम) रोगकाही होता था, जड़दशा कमलोंके लिएही थी, दहन अगरकाही होता था, घर्षण (रगड़ना) श्रीखंड (चंदन) काही होता था, मंथन दहीकाही होता था, पेला गन्नाही जाता था, मधुपान भौंरेही करतेथे, मत्त हाथीही बनते थे, कलह स्नेहप्राप्तिके लिएही होता था, डर निंदाहीका था, लोभ गुणोंको संग्रह करनेहीका था और अक्षमा दोषोंके लिएही थी। अभिमानी राजा भी अपने आपको एक प्यादेके समान समझ अजित स्वामीकी सेवा करते थे। कारण,—

"दासंति ह्यन्यमणयः सर्वे चिंतामणेः पुरः।"

[अन्य सारी मणियाँ चिंतामणिके पास दासीरूपमें ही रहती हैं।] उन्होंने दंडनीति नहीं चलाई थी। इतनाही क्यों? उन्होंने कभी भौंह भी टेढ़ी नहीं की थी। इतना होते हुए भी सारी प्रजा इस तरह उनके वशमें थी जिस तरह भाग्यशाली

पुरुषकी स्त्री उसके वशमें रहती है। सूर्य जैसे अपनी तेज किरणोंसे सरोवरके जलको खींचता है वैसेही, उन्होंने अपने प्रबल प्रतापसे राजाओंकी लक्ष्मीको आकर्षित किया था। उनके आँगनकी भूमि, राजाओं द्वारा भेंट किए गए हाथियोंके मदजलसे सदा पंकिल (कीचड़वाली) रहती थी। उन महाराजके, चतुराईपूर्ण चालोंसे चलते, घोड़ोंसे दिशाओंका, वाह्याली (घोड़ोंके लिए बनी हुई सड़ककी) भूमिकी तरह संक्रमण (प्रवेश) होता था। [अर्थात उनके घोड़े सभी दिशाओंमें सरलतासे जा सकते थे; सभी दिशाओंमें रहनेवाले उनके अधीन थे।] समुद्रकी तरंगोंकी जैसे कोई गिनती नहीं कर सकता है वैसेही, उनकी सेनाके प्यादे और रथादिकी गणना करनेमें कोई समर्थ नहीं था। गजारोही, अश्वारोही (घुड़सवार), रथी और पैदलसेना-सभी अपनी भुजाओंके बलसे सुशोभित उन महाराजके लिए-केवल साधनमात्र थे। उनके पास ऐसा ऐश्वर्य था तो भी उनके मनमें थोड़ासा अभिमान भी न था; अतुल भुजबल रखते हुए भी गर्व उनको छू कर नहीं गया था; अनुपम रूपवान होते हुए भी वे अपने शरीरको सुंदर नहीं समझते थे; विपुल लाभ होते हुए भी उनमें उन्माद नहीं आता था और दूसरे भी उन्मत्त बनानेवाले अनेक कारणोंके होते हुए भी उनके मनमें मद न था। वे इन सबको, अनित्य जानते थे इसलिए, तृणके समान समझते थे। इस तरह राज्यका पालन करते हुए अजितनाथ महाराजने कुमारावस्थासे आरंभ करके तिरपन लाख पूर्वका समय सुखसे बिताया। (१०१-१२०)

एक बार सभी विसर्जन कर एकांतमें बैठे हुए, तीन ज्ञान

(मति, श्रुति और अवधिज्ञान) के धारी अजितनाथ स्वामी अपने आप विचारने लगे, "आज तक मेरे प्राय:, वास्तविक भोग-फल, कर्म भोगे जा चुके हैं; अब मुझे, घरमें रहकर, अपने स्वकार्य (आत्मकार्य) से विमुख नहीं होना चाहिए। कारण— मुझे इस देशकी रक्षा करनी चाहिए, मुझे इस शहरको संभालना चाहिए, मुझे ये गाँव आबाद करने चाहिए, मुझे इन लोगोंका पालन करना चाहिए, मुझे हाथी बढ़ाने चाहिए, मुझे घोड़ोंकी देखभाल करनी चाहिए, मुझे इन नौकरोंका भरण-पोषण करना चाहिए, इन याचकोंको संतुष्ट करना चाहिए, इन सेवकोंका पोषण करना चाहिए, इन शरणागतोंकी रक्षा करनी चाहिए, इन पंडितोंका मान करना चाहिए इन मित्रोंका सत्कार करना चाहिए, इन मंत्रियोंपर अनुग्रह करना चाहिए, इन बंधुओंका उद्धार करना चाहिए, इन स्त्रियोंको खुश करना चाहिए और इन पुत्रोंका लालन-पालन करना चाहिए-ऐसे परकार्योंमें लगा हुआ प्राणी अपने सारे मनुष्य-जीवनको निष्फल खो देता है; इन सब कामोंमें व्यस्त प्राणी युक्त-अयुक्तका विचार नहीं करता; मूर्खतासे पशुकी तरह अनेक तरहके पाप करता है। मोहमें फँसा हुआ पुरुष जब मौतके मार्गपर आगे बढ़ता है तब जिनके लिए उसने पाप किए थे उनमेंसे एक भी उसका साथ नहीं देता। वे सब यहीं रहते हैं। उनकी बात छोड़ो; मगर उसका यह शरीर भी, एक कदम भी उसके साथ नहीं चलता। अफसोस! फिर भी यह आत्मा इस कृतघ्न शरीरके लिए व्यर्थही पापकर्म करता है। इस संसारमें प्राणी अकेलाही जन्मता है, अकेलाही मरता है और भवांतरमें बाँधे हुए कर्मोंका फल अकेलाही भोगता है।

वह पापकर्म करके जिस द्रव्यको कमाता है उसे उसके सगे-संबंधी इकट्ठे होकर भोगते हैं और वह अकेला नरकमें पड़ा हुआ पापकर्मोंका फल-दुःख भोगता है, दुःखरूपी दावानलसे भयंकर बने हुए संसाररूपी महावनमें, वह कर्मके वश होकर अकेलाही भटकता है। संसारसे संबंध रखनेवाले दुःखसे छुटकारा पानेपर उससे जो सुख होता है उसे भी वही भोगता है; उसमें भी कोई उसका हिस्सेदार नहीं होता। जैसे समुद्रमें पड़े हुए प्राणियोंमेंसे जो अपने हाथों, पैरों, बुद्धि और मनका उपयोग नहीं करता वह समुद्रमें डूब जाता है और जो उपयोग करता है वह तैर जाता है वैसेही, जो धन और देहादिक परिग्रहसे विमुख होकर उनका सदुपयोग करता है और निज आत्मस्वरूपमें लीन होता है वह संसारसमुद्रको तैर जाता है। (१२१-१३७)

संसारसे जिनका मन उदास हो गया है ऐसे अजितनाथ स्वामीको इस तरहकी चिंता करते देख सारस्वतादिक लौकांतिक देवता उनके पास आए और कहने लगे, "हे भगवन! आप स्वयंबुद्ध[1] हैं इसलिए हम आपको बोध देने योग्य नहीं हैं, तो भी हम इतना निवेदन करना चाहते हैं कि, अब धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति आरंभ कीजिए।" (१३८-१३९)

इस तरह विनती और प्रभुके चरणोंमें वंदना करके वे अपने ब्रह्मलोकमें इसी तरह चले गए जिस तरह पक्षी संध्याके समय अपने घोंसलोंमें चले जाते हैं। अपने विचारोंके अनुकूल

१—जिनको बिना किसीके उपदेशके ज्ञान-वैराग्य होता है उन्हें स्वयंबुद्ध कहते हैं।

देवोंकी बातें सुनकर उनका संसार-वैराग्य इसी तरह बढ़ा जिस तरह पूर्व दिशाके पवनसे मेघ बढ़ते हैं। (१४०-१४१)

सगरका राज्यारोहण

उन्होंने तत्कालही सगरकुमारको बुलाया और कहा, "मेरी इच्छा संसार-सागरको तैरनेकी है, इसलिए तुम मेरे इस राज्य-भारको ग्रहण करो।" (१४२)

प्रभुकी ऐसी आज्ञा सुनकर सगरकुमारका मुख काला पड़ गया। बूँद बूँद करके बरसते मेघकी तरह उनकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। वे हाथ जोड़कर बोले, "हे देव! मैंने आपकी ऐसी कौनसी अभक्ति की है कि, जिससे आप मुझे अपनेसे अलग होनेकी आज्ञा करते हैं? यदि कोई अपराध हो गया हो तो भी आपको मुझपर अप्रसन्न नहीं होना चाहिए। कारण—

"पूज्यैरभक्तोऽपि शिशुः शिष्यते न तु हीयते।"

[पूज्य अपने अभक्त शिशुको दंड देते हैं, उसका त्याग नहीं करते।] हे प्रभो! आकाशसे ऊँचे मगर बगैर छायाके वृक्षकी तरह, आकाशमें उत्पन्न हुए, मगर नहीं बरसनेवाले, मेघकी तरह, निर्झर रहित बड़े पर्वतकी तरह, सुंदर आकृति-वाले मगर लावण्यविहीन[1] शरीरकी तरह और खिले हुए मगर सुगंधहीन पुष्पकी तरह आपके बिना यह राज्य मेरे किस काम-का है? हे प्रभो! आप निर्मम हैं! निःस्पृह हैं! मुमुक्षु हैं! तो भी मैं आपके चरणोंकी सेवाका त्याग नहीं करूंगा, फिर राज्य

१—[illegible] उत्पन्न होनेवाला तेज।

लेनेकी तो बातही क्या है? मैं राज्य, पुत्र, कलत्र, मित्र और सारा परिवार छोड़ सकता हूँ; मगर आपके चरणोंकी सेवाका त्याग नहीं कर सकता। हे नाथ! जैसे आप राजा बने थे तब मैं युवराज हुआ था वैसेही अब आप व्रतधारी होंगे तब मैं आपका शिष्य बनूँगा। रातदिन गुरुके चरणकी उपासनामें तत्पर रहनेवाले शिष्यके लिए भिक्षा माँगना साम्राज्य (का उपभोग करने) से भी अधिक (सुखदाता) है। मैं अज्ञानी हूँ तो भी, जैसे गवालेका बालक गायकी पूँछ पकड़ कर नदीको पार कर जाता है वैसेही, मैं भी आपके चरणकमलोंका सहारा लेकर संसार-सागरको पार करूँगा। मैं आपके साथ दीक्षा लूँगा, आपके साथ विहार करूँगा, आपके साथ दुःसह परिषह सहूँगा और आपके साथही उपसर्ग भी सहूँगा; मगर मैं यहाँ कदापि नहीं रहूँगा; इसलिए हे जगद्गुरो! आप प्रसन्न हूजिए।"

(१४३–१५५)

इस तरह जिसने सेवा करनेकी प्रतिज्ञा ली है ऐसे सगरकुमारसे अजितनाथ स्वामी अमृतके समान मधुर वाणीमें कहने लगे, "हे वत्स! संयम ग्रहण करनेका तुम्हारा यह आग्रह योग्य है; मगर अबतक तुम्हारा भोगफलकर्म क्षय नहीं हुआ है, इसलिए तुम मेरीही तरह भोगफलकर्मको भोगकर योग्य समयपर मोक्षका साधक व्रत ग्रहण करना। हे युवराज! क्रमसे आए हुए इस राज्यको तुम स्वीकार करो और मैं संयमरूपी साम्राज्यको ग्रहण करूँगा।" (१५६–१५९)

प्रभुकी यह बात सुनकर सगरकुमार मनमें सोचने लगे, "मुझे, एक तरफ प्रभुके वियोगका भय और दूसरी तरफ इन-

की आज्ञा भंग होनेका भय सता रहा है; स्वामीका विरह और उनकी आज्ञाका न मानना दोनों बातें मेरे लिए दुःखकी कारण हो रही हैं। फिर भी विचार करनेपर गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करनाही श्रेष्ठ मालूम होता है।" इस तरह सोचकर महामति सगरकुमारने गद्गद स्वरमें कहा, "प्रभो! आपकी आज्ञा सर आँखोंपर।" (१६०-१६२)

फिर राजाओंमें श्रेष्ठ अजित स्वामीने महात्मा सगरका राज्याभिषेक करनेके लिए तीर्थजल आदि सामग्री लानेकी नौकरोंको आज्ञा दी। मानो छोटे छोटे द्रह हों ऐसे, कमलोंसे ढके हुए मुखवाले कुंभ, स्नान करने योग्य तीर्थके जलसे भरकर, सेवक लोग वहाँ लाए। जैसे राजा भेटें लाते हैं वैसेही, व्यापारी अभिषेकके दूसरे साधन भी, तत्कालही वहाँ ले आए। फिर वहाँ मानो मूर्तिमान प्रताप हों ऐसे अनेक राजा राज्याभिषेक करनेके लिए आए; अपने मंत्रसे (यानी सलाहसे) इंद्रके मंत्रीका भी उल्लंघन करनेवाले मंत्री हाजिर हुए; मानो दिग्पाल हों ऐसे सेनापति आए; हर्षसे जिनका हृदय भरा हुआ है ऐसे बंधु-बांधव एकत्र हुए और मानो एकही घरमेंसे आए हों ऐसे हाथी, घोड़े और अन्य साधनोंके अध्यक्ष भी तत्कालही आ पहुँचे। उस समय नादसे शिखरोंको गुँजाते हुए शंख बजने लगे; मेघके समान मृदंग बजने लगे; दुंदुभि और ढोलोंकी ध्वनि गूँजने लगी; ऐसा जान पड़ता था मानो प्रतिध्वनिसे सारी दिशाओंको मंगल सिखानेवाले ये अध्यापक हैं। समुद्रकी तरंगोंकी तरह झाँझ बजने लगे, झालरोंकी झनझनाहट चारों तरफ सुनाई देने लगी। कई बाजे फूँकोंसे बजाए जा रहे थे, फटोंपर थापें पड़

रही थीं और कई हिलाकर बजाए जा रहे थे। गंधर्व सुंदर स्वरोंसे शुद्ध गीत गा रहे थे, व चारण-भाट और ब्राह्मण वगैरा असीसें दे रहे थे। इस तरह महोत्सवके साथ, अजित स्वामीकी आज्ञासे कल्याणकारी पूर्वोक्त अधिकारियोंने, विधि सहित सगर राजाका राज्याभिषेक किया। उसके बाद, मांडलिक राजाओंने, सामंतोंने और मंत्रियोंने हाथ जोड़कर उगते हुए सूर्यकी तरह सगर राजाको प्रणाम किया। नगरके मुख्य मनुष्य, हाथोंमें उत्तम भेटें ले लेकर सगरके पास आए। उन्होंने नवीन चंद्रकी तरह सगर राजाको,सामने भेटें रख रखकर प्रणाम किया। प्रजाजन यह सोचकर प्रसन्न हुए कि स्वामीने अपनी प्रतिमूर्तिके समान सगरको राज्यगद्दीपर बिठाया है; हमारा त्याग नहीं किया है। (१६३-१७७)

अजितनाथकी दीक्षा

उसके बाद दयाके समुद्ररूप अजित स्वामीने इस तरह दान देना आरंभ किया जिस तरह वर्षा ऋतुका पानी बरसना आरंभ करता है। उस समय तिर्यकजृंभक देवताओंने इंद्रकी आज्ञा और कुबेरकी प्रेरणा पाकर, नष्ट-भ्रष्ट हुए, स्वामी विनाके, चिह्न विनाके, पर्वतकी गुफाओंमें रहे हुए, श्मशानमें या अन्य स्थानोंमें गड़े हुए धनको ला लाकर, चौराहेमें, चौकमें, तिमुहानेमें और आने जानेकी जमीनपर रखा। फिर अजित स्वामीने सारे नगर (और राज्य) में ढिंढोरा पिटवा दिया कि "जिसको धन चाहिए वह आए और इच्छानुसार ले जाए। फिर सूर्योदयसे भोजनके समय तक अजित स्वामी दान देने बैठते थे और जो जितना धन चाहता था उसे उतनाही धन-दान देते

थे। हर रोज एक करोड़ और आठ लाख स्वर्णमुहरें दानमें देते थे। सालभरमें उन्होंने तीन सौ अठासी करोड़ और अस्सी लाख स्वर्णमुद्राएँ दीं। कालके अनुभाव (सामर्थ्य) से और प्रभुके प्रभावसे याचकोंको इच्छित धन दिया जाता था; किंतु वे भाग्यसे अधिक ले नहीं सकते थे। अचिंत्य महिमावाले और दयारूपी धनवाले प्रभुने एक वर्ष तक पृथ्वीको (पृथ्वीके लोगोंको) चिंतामणि रत्नकी तरह धनसे तृप्त किया। (१७८-१८८)

वार्षिक दानके अंतमें इंद्रका आसन काँपा। इससे उसने अवधिज्ञानसे प्रभुका दीक्षा समय जाना। वह भगवानका निष्क्रमणोत्सव करनेके लिए अपने सामानिकादि देवोंके साथ प्रभुके पास जानेको रवाना हुआ। उस समय इंद्र, ऐसा मालूम होता था मानो, वह दिशाओंमें विमानोंसे चलते हुए मंडप बना रहा था; हाथियोंसे उड़ते हुए पर्वत बना रहा था, तरंगोंसे समुद्रकी तरह आकाशपर आक्रमण कर रहा था, अस्खलित गतिवाले रथोंको सूर्यके रथसे टकरा रहा था और घुंघरुओंकी मालाके भारवाले, दिग्गजोंके कर्णतालका (कानोंके हिलनेसे होनेवाली आवाजका) अनुकरण करते हुए ध्वजांकुशोंसे आकाशको तिलकित कर रहा था। कई देवता गांधार स्वरसे उत्तम गायन गाते थे; कई देवता नवीन बनाए हुए काव्योंसे उसकी स्तुति करते थे; कई देवता मुखपर वस्त्र रखके (बीच बीचमें) उससे बातचीत करते थे और कई देवता उसे पूर्वके तीर्थंकरोंके चरित्रोंका स्मरण कराते थे। (१८९-१९५)

इस तरह इंद्र, स्वामीके चरणकमलोंसे पवित्र बनी हुई अयोध्या नगरीको स्वर्गसे भी अच्छी मानता हुआ थोड़ी समय-

में वहाँ आ पहुँचा। उस समय दूसरे सुरेंद्र और असुरेंद्र भी, प्रभुका दीक्षामहोत्सव जान, वहाँ आए। वहाँ अच्युत आदि सुरेंद्रोंने और सगर आदि नरेंद्रोंने अनुक्रमसे प्रभुका दीक्षाभिषेक किया। फिर मणिकार जैसे माणिक्यको साफ करता है वैसेही इंद्रने, स्नानके जलसे भीगे हुए प्रभुके शरीरको देवदूष्य वस्त्रसे मार्जन किया—पोंछा और गंधकार की तरह अपने हाथोंसे सुंदर अंगराग (उबटन) द्वारा प्रभुको चर्चित किया—प्रभुके शरीरपर उबटन लगाया। धर्मभावनारूपी धनवाले इंद्रने, प्रभुके शरीरमें पवित्र देवदूष्य वस्त्र पहनाए। उसने मुकुट, कुंडल, हार, बाजूबंद, कंकण और दूसरे अनेक अलंकार प्रभुको धारण कराए। फूलोंकी दिव्य मालाओंसे जिनके केश सुशोभित हो रहे हैं; तीसरे नेत्रके समान तिलकसे जिनका ललाट शोभायमान है; देवी, दानवी और मानवी स्त्रियाँ विचित्र भाषामें जिनके मधुर मंगलगान कर रही हैं; चारण-भाटोंकी तरह सुरेंद्र, असुरेंद्र और नरेंद्र जिनकी स्तुति कर रहे हैं; सोनेकी धूपदानियाँ लेकर व्यंतर देवता जिनके सामने धूप कर रहे हैं; पद्मद्रहसे हिमवंत पर्वतकी तरह मस्तकपर रहे हुए श्वेत छत्रसे जो सुशोभित हैं; चमर धारण करनेवाले देवता दोनों तरफ जिनके चमर डुला रहे हैं; नम्र छड़ीदारकी तरह इंद्रने जिनको हाथका सहारा दिया है और हर्ष तथा शोकसे मूढ बने हुए सगर राजा, अनुकूल पवनसे झरमर झरमर बरसती हुई वर्षाकी तरह, आँसू बहाते हुए जिनके पीछे चल रहे हैं, ऐसे प्रभु स्थलकमलके समान चरणोंके द्वारा चारों तरफ पृथ्वीको पवित्र करते हुए, हजार पुरुषोंके द्वारा उठाई जाने योग्य सुप्रभा नाम-

की शिविकामें आरूढ़ हुए। उस शिविकाको पहले नरोंने, फिर विद्याधरोंने और फिर देवताओंने उठाया,इससे वह आकाशमें भ्रमण करते हुए ग्रहोंका भ्रम कराने लगी। ऊपर उठाई हुई, और जिसमें जरासा भी धक्का नहीं लगता था ऐसे चलती हुई, वह शिविका समुद्रमें चलते हुए जहाजके समान शोभती थी। शिविका आगे चली तब उसमें सिंहासन पर विराजमान प्रभु पर ईशानेंद्र और सौधर्मेंद्र चमर ढुलाने लगे। दूल्हा जैसे दुलहिनका पाणिग्रहण करनेको उत्सुक होता है वैसेही, दीक्षा ग्रहण करनेको उत्सुक बने हुए जगतपति वनिता नगरीके मध्य मार्गपर चलने लगे। उस समय चलनेसे जिनके कानोंके आभूषण हिल रहे थे,छाती के हार झूल रहे थे, और वस्त्र फड़-फड़ कर रहे थे ऐसे शिविका उठानेवाले पुरुष चलते-फिरते कल्पवृक्षके समान जान पड़ते थे। (१६६–२१४)

उस समय नगरकी स्त्रियाँ भक्तिसे पवित्र मनवाली होकर प्रभुको देखने आईं। उनमेंसे कई अपनी सहेलियोंके पीछे छोड़ आई थीं , कइयोंके छातीपर लटकते, हार टूट रहे थे, कइयोंके कंधोंसे उत्तरीय वस्त्र खिसक रहे थे, कई अपने घरोंके दरवाजे बंद किए बगैर चली आई थीं और कई परदेशसे आए हुए मेह-मानोंको घर बिठा आई थीं, कई घरपर तत्कालके जन्मे हुए पुत्रका जन्मोत्सव मनाना छोड़कर दौड़ आई थीं, कइयोंका तत्कालही लग्नमुहूर्त था, परंतु उसकी उपेक्षा करके चली आई थी, कई स्नान करनेको जाती हुई स्नान करना छोड़कर इधर चली आई थी, कई भोजन करते हुए बीचहीमें आचमन करके उठ आई थी, कइयोंके आधे शरीरपर उबटन लगा हुआ था, कई

आधे जेवर पहनकर और आधे छोड़कर चली आई थीं, कई भगवानके निष्क्रमणकी बात सुनकर जैसे खड़ी थीं वैसेही दौड़ पड़ी थीं, कइयोंने वेणियोंमें फूलोंकी आधी मालाएँ बाँधी थीं, कइयोंके ललाटोंपर आधे तिलक थे, कई घरके काम अधूरे छोड़कर चली आई थीं, कइयोंने नित्यकर्म अधूरे छोड़े थे और कइयोंके वाहन खड़े थे, फिर भी वे पैदलही चल पड़ी थीं। यूथपतिके चारों तरफ फिरनेवाले छोटे हाथियोंकी तरह नगरजन कभी प्रभुके आगे, कभी पीछे और कभी दोनों तरफ आ आकर खड़े होते थे। कई प्रभुके दर्शन अच्छी तरहसे करनेके लिए अपने घरोंकी छतोंपर चढ़ते थे, कई दीवारोंपर चढ़ते थे, कई हवेलियोंकी छतोंपर चढ़ते थे, कई मंचके अगले भागपर चढ़ते थे, कई गढ़के कंगूरोंपर चढ़ते थे, कई वृक्षोंके ऊपरी भाग तक चढ़े थे और कई हाथियोंके होदोंपर खड़े हो रहे थे। आगत आनंदित स्त्रियोंमेंसे कई अपने कपड़ोंके पल्ले चमरोंकी तरह डुला रही थीं, कई मानो पृथ्वीमें धर्मबीज बोती हों ऐसे धाणीसे प्रभुको बधा रही थीं, कई अग्निकी तरह सात शिखाओंवाली आरतियाँ उतार रही थीं, कई मानो मूर्तिमान यश हों ऐसे पूर्ण पात्रोंको प्रभुके आगे रख रही थीं, कई मंगलनिधानके समान पूर्ण कुंभोंको धारण कर रही थीं, कई संध्याके बादलोंके समान वस्त्रोंसे आकाशको अवतीर्ण (आच्छादित) कर रही थीं, कई नाच करती थीं, कई मंगलगीत गाती थीं और कई प्रसन्न होकर सुंदर हास्य करती थीं। (२१५–२३०)

उस समय इधर उधर दौड़ते हुए, मानो गरुड़ोंके समूह हों ऐसे, भक्तिवान विद्याधरों, देवों और असुरोंसे आकाश भर

गया। आत्माको धन्य मानती हुई चौसठ इंद्रोंकी नाट्यसेना स्वामीके सामने अनेक तरहके नाटक करने लगी। सगर राजाके अनुजीवी (सेवक) नाचनेवाले देवोंकी स्पर्द्धासे विचित्र पात्रों द्वारा जगह जगहपर नाटक करने लगे और अयोध्या नगरीके मंडनरूप गंधर्वराज व रमणीगण विश्वकी दृष्टिको बाँधनेवाले प्रेक्षणीय (देखने योग्य) प्रयोग (खेल) करने लगे। उस समय आकाश और पृथ्वीपर होनेवाले नाट्य संगीतके स्वरोंसे, पृथ्वी और आकाशके मध्यभागको भरदे ऐसी, महाध्वनि उत्पन्न हुई। वहाँ (भीड़में) फिरते हुए अनेक राजाओं, सामंतों और साहूकारोंके गलेमें पड़े हुए हारोंके टूटनेसे जमीनपर मोती बिखर गए। इससे वह जमीन मोतियोंके कंकरोंवाली हो गई। स्वर्ग और पृथ्वीके मदमत्त हाथियोंके मदजलसे राजमार्ग पंकिल (कीचड़वाले) हो गए। प्रभुके पास एकत्रित सभी सुरों, असुरों और मनुष्योंसे तीन लोक, एक अधिपति की सत्तामें होनेसे, एक लोकके समान शोभने लगा। (२३१-२३६)

ज्ञानवान प्रभु यद्यपि निःस्पृह थे तथापि, लोगोंकी प्रसन्नताके लिए, उनके मंगलोपचारको पद पदपर स्वीकार करते थे। इसी तरह एक साथ चलते हुए देवताओं और मनुष्योंपर समान कृपादृष्टिसे एकसा अनुग्रह करते थे। इस तरह, सुरों, असुरों और मनुष्योंने जिनका उत्सव किया था वे प्रभु अनुक्रमसे सहसाम्रवन नामके उद्यानमें पहुँचे। उस उद्यानके चारों तरफ फूलोंकी सुगंधसे उन्मत्त बने हुए भौंरोंकी पंक्तियोंसे जिसका अंदरूनी भाग दुःसंचार था ऐसी सघन केतकीके वृक्षोंकी बाड़ बनी हुई थीं; मानो वेगारी हों इस तरह नगरके बड़े बड़े

साहूकारोंके पुत्रोंने खेलनेकी इच्छासे, उस वनकी लताओं और वृक्षोंके बीचकी जमीन साफ की थी; नगरकी स्त्रियाँ क्रीड़ा करनेके लिए वहाँ आकर कुरुवक (एक तरहके पुष्पोंका वृक्ष), बकुल, अशोक इत्यादि वृक्षोंके दोहद पूरे करती थीं; विद्याधरोंके कुमार कौतुकसे मुसाफिरोंकी तरह बैठकर झरनोंका मधुर जल पीते थे; जिनकी चोटियाँ मानो आकाशको छू रही हों ऐसे, ऊँचे वृक्षोंपर खेचरोंकी जोड़ियाँ आकर क्रीड़ाके लिए बैठती थीं; वे जोड़ियाँ हंसोंकी जोड़ियोंसी जान पड़ती थीं; दिव्य कपूर और कस्तूरीके चूर्णके समान, घुटनों तक पड़े हुए कोमल पराग से उस वनकी जमीन चारों तरफ रेतीली जान पड़ती थी; उद्यान पालिकाएँ (मालिनें), खिरणी, नारंगी और करनोंके वृक्षोंके नीचेके आलवालों (थालों) को दूधसे भरती थीं; मालिनोंकी लड़कियाँ विचित्र गूँथनके काममें स्पर्द्धा कर सुंदर फूलोंकी मालाएँ बनाती थीं। अनेक मनुष्य, उत्तम शय्या, आसन और बरतनोंके होते हुए भी केलोंके पत्तोंमें शयन, आसन और भोजन करते थे; लंबी लंबी शाखाओंवाले, फलोंके भारसे झुके हुए, तरह तरहके वृक्ष पृथ्वीको स्पर्श करते थे; आमकी बोरोंके स्वादसे उस वनकी कोकिलाओंका मद उतरता न था; दाडिमके स्वादसे उन्मत्त बने हुए शुक पक्षियोंके कोलाहलसे वह वन भर रहा था और वर्षा ऋतुके बादलोंकी तरह फैले हुए वृक्षोंसे वह उद्यान एक छायावाला जान पड़ता था। ऐसे सुंदर उद्यानमें अजित स्वामीने प्रवेश किया। (२४०-२५४)

फिर रथी जैसे रथसे उतरता है वैसेही, संसारसिंधुको पार करनेके लिए जगद्गुरु भगवान खुद शिबिकारत्नसे नीचे

उतरे; तब देवताओंके लिए भी दुर्लभ ऐसे तीन रत्नों[1] को ग्रहण करनेकी इच्छा रखनेवाले प्रभुने सभी वस्त्र व रत्नालंकार उतार दिए और इंद्रके द्वारा दिया गया अदूषित देवदूष्य वस्त्र, उपधि[2] सहित धर्मको बतानेके लिए (अर्थात् बाह्य साधनोंसे धर्मका परिचय करानेके लिए) ग्रहण किया। (२५५-२५७)

माघ सुदी ६ का दिन था, चंद्रमा रोहिणी नक्षत्रमें आया था। भगवानने अष्टमतप किया था, सायंकालका समय था, सप्तच्छद वृक्षके नीचे प्रभुने स्वयंही, रागादिककी तरह, मस्तकके केशोंका भी पाँच मुष्टीसे लोच कर डाला। सौधर्मेंद्रने उन केशोंको, अपने उत्तरीय वस्त्रके पल्लेमें, प्रसादकी तरह मिले हुए अर्थकी तरह ग्रहण किया और तत्कालही उन्हें लेजाकर इस तरह क्षीर समुद्रमें डाल दिया जिस तरह जहाजसे मुसाफिरी करनेवाले मुसाफिर, समुद्रमें पूजाकी सामग्री डालते हैं। वहाँ सुर, असुर और मनुष्य आनंद कोलाहल कर रहे थे, उसको, इंद्रने शीघ्रही आ, हाथका संकेत कर, बंद किया। तब प्रभु, सिद्धोंको नमस्कार कर सामायिकका उच्चारण करते हुए मोक्षमार्ग पर चलनेके लिए वाहन के समान चारित्ररूपी रथपर आरूढ़ हुए। दीक्षाका सहोदर हो इस तरह, साथही जन्मा हो इस तरह चौथा मनःपर्यय ज्ञान उसी समय प्रभुको उत्पन्न हुआ। उस समय क्षणभरके लिए नारकी जीव भी सुखी हुए और तीनों लोकमें बिजलीके प्रकाशके जैसा प्रकाश हुआ। प्रभुके साथही दूसरे एक हजार राजाओंने भी दीक्षा ली। कारण,—

१—सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र-ये तीन रत्न हैं। २—धर्मके आवश्यक उपकरण।

"स्वामिपादानुगमनव्रतानामुचितं ह्यदः ॥"

[जिन्होंने स्वामीके चरणोंका अनुगमन करनेका व्रत लिया था उनके लिए यही-दीक्षा लेना ही- उचित था।]

इंद्रकृत स्तुति

फिर जगतपतिको प्रदक्षिणा दे, प्रणाम कर, अच्युतादि इंद्र, इस तरह स्तुति करने लगे। (७४८-२६७)

"हे प्रभु ! आपने पूर्व पटु अभ्यासके आदरसे (अर्थात आपको पूर्व भवसेही चारित्र पालनेका अभ्यास है इससे) वैराग्यको इस तरह ग्रहण किया है कि, वह इस जन्ममें जन्मके साथ ही एकात्मभाव हो गया है। मोक्ष-साधनमें प्रवीण हे नाथ ! आपका सुखके (शरीरादि सुखके) हेतु इष्टसंयोगादि-में जैसा उज्ज्वल वैराग्य है वैसाही दुःखके हेतु इष्टवियोगादिमें है। हे प्रभु ! आपने विवेकरूपी सान पर चढ़ाकर वैराग्यरूपी शस्त्रको ऐसा चमकाया है कि मोक्ष प्राप्त करनेमें भी उसका पराक्रम अकुंठित गतिसे उपयोगमें आ रहा है। हे नाथ ! जब आप देवों और राजाओंकी लक्ष्मीका उपभोग करते थे तब भी आपका आनंद तो वैराग्यमय ही था। काममें नित्य विरक्ति रखनेवाले आपको जब प्रौढ़ वैराग्य उत्पन्न हुआ तब आपने सोचा, "कामभोग अब बंद" और आपने योग स्वीकार कर लिया-दीक्षा ले ली। जब आप सुखमें, दुःखमें, संसारमें और मोक्षमें उदासीनताका भाव रखते हैं, तब आपको तो अविच्छिन्न वैराग्यही है। आपको किसमें वैराग्य नहीं है ? दूसरे जीव तो दुःखगर्भित और मोहगर्भित वैराग्यवाले होते हैं; परंतु आपके

हृदयमें तो एकमात्र ज्ञानगर्भित वैराग्यही स्थान पाए हुए है। हमेशा उदासीनता रखते हुए भी जगतका उपकार करनेवाले, सारे वैराग्यका आधार और शरण्य (शरणमें आएकी रक्षा करनेवाले) हे परमात्मा! हम आपको नमस्कार करते हैं।"
(२६८-२७५)

इस तरह जगद्गुरुकी स्तुति करके और उनको नमस्कार करके इंद्र देवताओंके साथ नंदीश्वर द्वीपको गए। वहाँ अंजना-चलादिक पर्वतोंपर शक्रादि इंद्रोंने जन्माभिषेकके कल्याणकी तरह ही शाश्वत अर्हत्प्रतिमाओंका अष्टाह्निका उत्सव किया और यह विचार करते हुए वे देवों सहित अपने अपने स्थानोंको गए कि अब फिर कब हम प्रभुको देखेंगे। (२७६-२७८)

सगरकृत स्तुति

सगर राजा भी, प्रभुको प्रणाम कर, हाथ जोड़, गद्गद स्वरमें विनती करने लगा,—

"तीन लोक रूपी पद्मिनीखंडको[1] विकसित करनेमें सूर्य-के समान हे जगतगुरु अजितनाथ भगवान! आपकी जय हो। हे नाथ! मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञानसे आप इसी तरह शोभते हैं जैसे चार महान समुद्रोंसे पृथ्वी शोभती है। हे प्रभो! आप लीलामात्रमें कर्मोंका नाश कर सकते हैं; आप-का यह जो परिकर[2] है वह लोगोंको मार्ग बतानेके लिए है। हे भगवान! मैं मानता हूँ कि आप सब प्राणियोंके एक अंतरा-

१—कमलिनी समूह। सूर्य कमलखंडको विकसित करनेवाला माना जाता है। २—साधुताके साधन।

त्मा हैं। अगर ऐसा न होता तो उनके अद्वितीय सुखके लिए आप क्यों प्रयत्न करते ? आप दयारूपी जलसे भरे हुए हैं। आप मलकी तरह कषायोंको छोड़कर कमलकी तरह निर्लेप और शुद्ध आत्मावाले हुए हैं। जब आप राज्य करते थे, तब भी न्यायाधीशकी तरह आपके लिए अपने या पराएका भेद नहीं था; तो अभी साम्यका अवसर प्राप्त होनेपर आपमें जो समताभाव आए हैं उनके लिए कहा ही क्या जा सकता है ? हे भगवान ! आपका जो वर्षीदान है वह तीन लोकको अभय-दान देनेके बड़े नाटककी प्रस्तावना है; ऐसा मेरा तर्क है। वे देश, वे नगर, वे कसबे और वे गाँव धन्य होंगे कि जिनमें, मलयानिलकी तरह प्रसन्न करनेवाले, आप विचरण करेंगे।"

(२७६-२८७)

इस तरह प्रभुकी स्तुति करके तथा भक्ति सहित नमस्कार करके आँसुओंसे भरी आँखोंवाला सगर राजा धीरे धीरे चलके अपने शहरमें आया।

प्रभुका विहार

दूसरे दिन प्रभुने, राजा ब्रह्मदत्तके घर खीरसे छट्ठतपका पारना किया। तत्कालही देवोंने ब्रह्मदत्त राजाके घर साढ़ेबारह करोड़ स्वर्णमुद्राओंकी वर्षा की और हवासे हिलाए हुए लता-ओंके पल्लवोंकी शोभाको हरनेवाले बढ़िया वस्त्रोंकी वर्षा की। आकाशमें उन्होंने ऐसा गंभीर दुंदुभिनाद किया जैसा ज्वारके समयमें समुद्रका नाद होता है। उन्होंने चारों तरफ फिरते हुए प्रभुके यशरूपी स्वेदजलका भ्रम करानेवाला सुगंधित जल बर-साया और चारों तरफ मित्रोंकी तरह भौंरोंसे घिरे हुए पाँच

रंगके फूलोंकी वृष्टि की। फिर अहो दान! अहो दान! ऐसे शब्दोंका उच्चारण करते हुए आनंदित मनवाले देवता उच्च प्रकारके जय जय शब्दोंके साथ आकाशमें बोलने लगे, "इन प्रभुको दिए गए श्रेष्ठ दानका फल देखो। इसके प्रभावसे दाता तत्कालही अतुल्य वैभववाला तो होताही है; परंतु इससे भी बढ़कर कोई इसी भवमें मुक्त होता है, कोई दूसरे भवमें मुक्त होता है, कोई तीसरे भवमें मुक्त होता है अथवा कल्पातीत[1] कल्पोंमें उत्पन्न होता है। जो प्रभुको दी जानेवाली भिक्षा देखते हैं वे भी देवताओंकी तरह नीरोग शरीरवाले होते हैं। (२८८-२९८)

हाथी जैसे पानी पीकर सरोवरमेंसे निकलता है वैसेही, प्रभु पारना करके ब्रह्मदत्त राजाके घरसे बाहर निकले। तब ब्रह्मदत्त राजाने यह सोचकर कि कोई प्रभुके खड़े रहनेकी जगह-को न लाँघे, जहाँ प्रभु खड़े रहे थे, वहाँ रत्नोंकी एक पीठ बनवा दी। प्रभु वहाँ विराजमान हैं यह मानता हुआ ब्रह्मदत्त पुष्पादिसे उस पीठकी पूजा करने लगा। चंदन पुष्प और वस्त्रादि द्वारा जब तक पीठकी पूजा न कर लेता था तब तक वह, यह सोचकर भोजन नहीं करता था कि अब तक स्वामी भूखे हैं। (२९९-३०२)

हवाकी तरह बेरोक भ्रमण करनेवाले भगवान अजित स्वामी, अखंड ईर्यासमितिका पालन करते हुए, दूसरी जगह विहार कर गए। मार्गमें कई जगह वे प्रासुक[2], पायसान्न[3],

---

१—ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान कल्पातीत कल्प कहलाते हैं।
२—दोष रहित। ३—दूधमें बना भोजन।

वगैरासे प्रतिलाभित[1] होते थे, किसी जगह सुंदर विलेपनसे उनके चरणकमल चर्चित होते थे, कहीं श्रावकोंके वंदना करनेवाले बालक राह देखते थे, कहीं दर्शनसे अतृप्त लोग उनके पीछे पीछे चलते थे, कहीं लोग उनका वस्त्रोंसे उत्तारण मंगल करते थे। कहीं लोग दही, दूर्वा और अक्षतादिसे उनको अर्घ देते थे, कहीं लोग अपने घर लेजानेके लिए उनको रस्तेमें रोकते थे, कहीं उनके चरणोंमें पृथ्वीपर लोटते हुए लोगोंसे उनका मार्ग रुकता था, कहीं श्रावक अपने मस्तकके बालोंसे उनके चरणोंकी धूलि साफ करते थे और कहीं मुग्धबुद्धिके लोग उनका आदेश माँगते थे। इस तरह निर्ग्रंथ, निर्मम और निःस्पृह प्रभु अपने संसर्गसे गाँवों और शहरोंको तीर्थके समान बनाते हुए वसुधापर विहार करने लगे। (३०३-३०६)

जो उल्लू पक्षियोंके घुत्कार शब्दोंसे भयंकर है, जिसमें सियार अत्यंत फूत्कार कर रहे हैं, जो सर्पोंकी फुंकारसे भयावना हो रहा है, जिसमें मतवाले बिलाव उत्क्रोश कर रहे हैं, उनके शब्द बाघोंसे भी विकराल मालूम होते हैं, जिसमें चमुरु मृग क्रूरताका बरताव कर रहे हैं, जो केसरी सिंहोंकी गर्जनासे प्रतिध्वनित हो रहा है, जिसमें बड़े हाथियोंके द्वारा तोड़े गए वृक्षोंसे उड़े हुए काक पक्षियोंकी काँ काँ हो रही है, सिंहोंकी पूँछोंकी फटकारसे जिसकी पाषाणमय भूमि भी टूटा करती है, जहाँके मार्ग, अष्टापदोंके द्वारा चूर्ण किए गए हाथियोंकी हड्डियोंसे भरे हुए हैं, जहाँ शिकारके उत्सुक भीलोंके धनुषोंकी टंकारोंकी प्रतिध्वनियाँ सुनाई देती हैं, जहाँ रीछोंके कान लेनेके लिए

१—मिलता था।

भीलोंके बालक अधीर हो रहे हैं और जिसमें वृक्षोंकी शाखओं-के अग्रभागोंके संघर्षसे आग उछल रही है, ऐसे पर्वतों और महान अरण्योंमें, इसी तरह गाँवों और शहरोंमें अजितनाथ स्वामी स्थिर मनके साथ इच्छानुसार विहार करते थे। किसी समय पृथ्वीकी तरफ देखनेसे चक्कर आजाएँ ऐसे ऊँचे पर्वत-के शिखरपर मानो दूसरे शिखर हों ऐसे प्रभु कायोत्सर्ग करके स्थिर रहते थे, कभी ऊँची कुलाँचें भरते कपियोंके झुंडोंने जिस-की अस्थिसंधियोंको (कगारोंको) तोड़ डाला है ऐसे महासमुद्रके तटपर वृक्षकी तरह स्थिर रहते थे, कभी क्रीड़ा करते हुए उत्ताल वेतालों, पिशाचों और प्रेतोंसे भरे हुए और जिसमें बवंडरसे धूलि उड़ रही है ऐसे मसानमें कायोत्सर्ग करके रहते थे। इनके सिवा और भी अधिक भयंकर स्थानोंमें स्वभावसे धीर प्रभु लीलामात्रसे, कायोत्सर्ग करके रहते थे। आर्य देशोंमें विहार करते हुए अक्षीण शक्तिवाले भगवान अजितनाथ, कभी चतुर्थ तप करते थे,कभी छट्ठ तप करते थे और कभी अट्ठम तप करते थे, कभी दशम तप, कभी द्वादश तप, कभी चतुर्दश तप, कभी षोडश तप, कभी अष्टादश तप, कभी मासिक तप, कभी द्विमा-सिक तप, कभी त्रिमासिक तप, कभी चतुर्मासिक तप, कभी पंचमासिक तप, कभी षट्मासिक तप, कभी सप्तमासिक तप और कभी अष्टमासिक तप करते थे। कपालको तपा देनेवाले सूर्यके आतापवाली ग्रीष्म ऋतुमें भी देहमें स्पृहा न रखनेवाले प्रभु कभी वृक्षच्छायाकी इच्छा नहीं करते थे, गिरते हिमसमूहसे, जिसमें वृक्षोंका समूह दग्ध होजाता था ऐसी, हेमंत ऋतुमें भी

प्रभु अधिक पित्तवाले पुरुषकी तरह कभी धूप नहीं चाहते थे और वर्षाऋतुमें पवनके वेगसे भी बढ़कर मेघोंकी मूसलधार वर्षासे प्रभु जलचारी हाथीकी तरह जरासा भी घबराते न थे। पृथ्वीकी तरह सबको सहन करनेवाले और पृथ्वीके तिलकरूप प्रभु दूसरे भी अनेक दुःसह परीषहोंको सहते थे। इस तरह विविध प्रकारके उग्र तपोंसे और विविध प्रकारके अभिग्रहोंसे परीषहोंको सहन करते हुए प्रभुने बारह बरस विताए।

(३१०-३२८)

स्वामी अजितनाथको केवलज्ञानकी प्राप्ति

उसके बाद गेंडेकी तरह पृथ्वीपर नहीं बैठनेवाले; गेंढेके सींगकी तरह अकेले विचरण करनेवाले; सुमेरु पर्वतकी तरह कंपरहित; सिंहकी तरह निर्भय; पवनकी तरह अप्रतिबद्धविहारी; सर्पकी तरह एकदृष्टिवाले; अग्निसे सोना जैसे अधिक कांतिवाला होता है वैसेही. तपसे अधिक कांतिवान; वृतिसे[1] सुंदर वृक्षकी तरह तीन गुप्तियोंसे घिरे हुए; पाँच बाणोंसे कामदेवकी तरह पाँच समितियोंको धारण करनेवाले; आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थानका चिंतवन करनेसे चार प्रकारके ध्येयका ध्यान करनेवाले और ध्येयरूप-ऐसे प्रभु प्रत्येक गाँव, शहर और वनमें भ्रमण करते हुए सहस्राम्रवन नामके उद्यानमें आए। वहाँ छत्रकी तरह रहे हुए सप्तच्छद वृक्षके नीचे प्रभुने, तनेकी तरह अकंप होकर कायोत्सर्ग किया। उस समय प्रभु अप्रमत्त-

१—चारों तरफ. गोलाकार बना हुआ लकड़ी आदिका घेरा, बाड़।

संयत नामके सातवें गुणस्थानसे अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थानमें आए। श्रौत अर्थसे शब्दकी तरफ जाते और अर्थसे शब्दमें जाते हुए प्रभु नानाप्रकारके श्रुत विचारवाले शुक्लध्यानके पहले पाएको प्राप्त हुए। फिर जिसमें सभी जीवोंके समान परिणाम होते हैं उस 'अनिवृत्तिबादर' नामके नवें गुणस्थानमें आरूढ हुए। उसके बाद लोभरूपी कषायके सूक्ष्म खंड करनेसे सूक्ष्मसंपराय नामके दसवें गुणस्थानको प्राप्त हुए। उसके बाद तीन लोकके सभी जीवोंके कर्म खपानेमें समर्थ ऐसे वीर्यवाले प्रभु मोहका नाश करके क्षीणमोह नामके बारहवें गुणस्थानमें पहुँचे। इस बारहवें गुणस्थानके अंतिम समयमें प्रभु एकत्वश्रुत-प्रविचार नामक शुक्लध्यानके दूसरे पाएको प्राप्त हुए। इस ध्यानसे तीनों लोकके विषयोंमें रहे हुए अपने मनको इस तरह एक परमाणुपर स्थिर किया जिस तरह सर्प-मंत्रसे सारे शरीरमें फैला हुआ विष सर्पदंशके स्थानमें आ जाता है। ईंधनके समूहको हटानेसे थोड़े ईंधनमें रही हुई आग जैसे आपही बुझ जाती है वैसेही, उनका मनभी सर्वथा निवृत्त हो गया। फिर प्रभुकी ध्यानरूपी आगके जलनेसे, आगसे बरफकी तरह, उनके सभी घातिकर्म नष्ट हो गए, और उनको उज्ज्वल केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उस दिन, प्रभुको छट्ठका तप था, पोस मासकी एकादशी थी और चंद्र रोहिणी नक्षत्रमें आया था। (३२६-३४४)

उस ज्ञानके उत्पन्न होनेसे तीन लोकमें रहे हुए तीनों कालोंके सभी भावोंको, वे इस तरह देखने लगे जिस तरह हाथमें रखी हुई चीज दिखती है। जिस समय प्रभुको केवलज्ञान हुआ उस समय, मानो प्रभुकी अवज्ञाके भयसे कंपित

हुआ हो ऐसे, सौधर्म देवलोकके इंद्रका सिंहासन काँपा। जलाशयके जलकी गहराई जाननेके लिए जैसे मनुष्य पानीमें (नापके चिह्नवाली) रस्सी डालता है वैसेही सौधर्मेंद्रने सिंहासन काँपनेका कारण जाननेके लिए, अवधिज्ञानका उपयोग किया। दीपकके प्रकाशसे जैसे चीजें दिखती हैं वैसेही, सौधर्मेंद्रको अवधिज्ञानसे मालूम हुआ कि भगवानको केवलज्ञान हुआ है। वह तत्कालही रत्नसिंहासन और रत्नकी पादुकाएँ छोड़कर खड़ा हुआ। कारण,—

"......बलवत् स्वाम्यवज्ञाभयं सताम्।"

[सज्जनोंके लिए स्वामीकी अवज्ञाका भय बलवान होता है।] गीतार्थ गुरुका शिष्य जैसे गुरुकी बताई हुई अवग्रह (अनुकूल) भूमिपर कदम रखता है वैसेही, उसने अरिहंतकी दिशाकी तरफ सात आठ कदम रखे व अपने बाएँ घुटनेको कुछ झुकाकर, दाहिना घुटना, दोनों हाथ और मस्तकको पृथ्वीसे छुआ कर, प्रभुको नमस्कार किया। फिर खड़े हो, पीछे फिर, उसने सिंहासनको इस तरह अलंकृत किया जिस तरह केसरीसिंह पर्वतके शिखरको अलंकृत करता है। पश्चात तत्कालही सभी देवताओंको बुलाकर, बड़ी ऋद्धिके साथ भक्तिसहित वह प्रभुके पास आया। दूसरे सभी इंद्र भी, आसनकंपसे स्वामीको केवलज्ञान हुआ है यह बात जानकर, अहंपूर्विकासे[1] प्रभुके पास आए। (३४५-३५४)

[1]—मैं पहले जाऊँ, मैं पहले जाऊँ इस स्पर्द्धा से।

समवसरण

फिर कार्योंके अधिकारी आए। वायुकुमार देवोंने एक योजन प्रमाण भूमिमेंसे कंकर वगैरा दूर किए। उसपर मेघ-कुमार देवोंने, शरदऋतुकी वर्षा जैसे सारी रजको शांत करती है ऐसेही, सुगंधित जलकी वर्षा से वहाँकी रज शाँत की। दूसरे व्यंतर देवोंने, चैत्यके मध्यभागकी तरह, कोमल स्वर्णरत्नोंकी शिलाओंसे उस जमीनका फर्श बनाया। प्रात:कालके पवनोंकी तरह, ऋतुकी अधिष्ठायिका देवियोंने जानुतक खिले हुए फूलों-की वर्षा की। भवनपति देवोंने अंदर मणिस्तूप बना उसके चारों तरफ सोनेके कंगूरेंवाला चाँदीका कोट बनाया। ज्योतिष्क देवोंने उसके अंदर रत्नोंके कंगूरोंवाला और मानो अपनी ज्योति एकत्र की हो ऐसा, कांचनमय दूसरा कोट बनाया। उसके अंदर वैमानिक देवोंने माणिक्यके कगूरोंवाला रत्नोंका तीसरा कोट बनाया। प्रत्येक कोटमें जंबूद्वीपकी जगतीकी (जमीनकी) तरह, मनको विश्राम देनेके धामरूप चार चार सुंदर दरवाजे बनाए। प्रत्येक दरवाजे पर मरकतमणिमय पत्रोंके तोरण बाँधे, तोरणोंके दोनों तरफ मुखोंपर कमलोंवाले श्रेणीबद्ध कुंभ रखे, वे सायंकालको समुद्रकी चारों तरफ रहनेवाले चक्रवाकोंके समान मालूम होते थे। हरेक द्वारपर स्वर्णमय कमलोंसे सुशो-भित, स्वच्छ और स्वादिष्ट जलसे भरी हुई मंगलकलशोंके समान एक एक वापिका बनाई गई। द्वार द्वारपर देवताओंने सोनेकी धूपदानियाँ रखी थीं, वे धुएँसे मरकतमणियोंके तोरणोंका विस्तार करती हुईसी जान पड़ती थीं। बीचके कोट-के अंदर, ईशान कोनमें देवताओंने प्रभुके लिए विश्राम करने-

को एक देवच्छंद बनाया। तीसरे कोटके बीचमें व्यंतर देवोंने एककोस और चौदहसौ धनुष ऊँचा चैत्य वृक्ष बनाया। व्यंतरोंने-ही उसके नीचे प्रभुके बैठनेका सिंहासन, देवच्छंदक, दो दो चँवर और छत्रत्रय[1] भी बनाए। इस तरह देवताओंने, सभी आपत्तियोंको हरनेवाले और संसारसे घबराए हुए पुरुषोंके लिए आश्रयके समान समवसरणकी रचना की। (३७५-३७०)

फिर मानो चारण हों ऐसे, जय जय शब्द करते हुए, देवताओंके द्वारा चारों तरफसे घिरे हुए, और देवताओंके द्वारा बनाए हुए सोनेके नवीन कमलोंपर अनुक्रमसे चरणकमल रखते हुए प्रभुने पूर्वद्वारसे प्रवेश कर चैत्यवृक्षकी प्रदक्षिणा की।

"........आवश्यकविधिर्लंघ्यो महतामपि।"

[महान पुरुष भी आवश्यक विधिका उल्लंघन नहीं करते हैं।] फिर 'तीर्थाय नमः' इस वाक्यसे तीर्थको नमस्कार कर प्रभु पूर्वकी तरफ मुख करके सिंहासनके मध्यभागमें बैठे। उस समय शेषकर्मके अधिकारी व्यंतरदेवोंने बाकी तीनों दिशाओंमें प्रभुके प्रतिबिंब बनाए। स्वामीके प्रभावसे वे प्रतिबिंब प्रभुके रूपके समानही हुए, अन्यथा वे प्रभुके समान प्रतिबिंब बनानेमें समर्थ नहीं हैं। उस समय पीछेके भागमें भामंडल, आगे धर्मचक्र और इंद्रध्वज तथा आकाशमें दुंदुभि-नाद प्रकट हुए। फिर साधु-साध्वियाँ और वैमानिकदेवोंकी देवियाँ—ये तीन पर्षदाएँ—पूर्वद्वारसे प्रवेश कर, प्रभुको तीन प्रदक्षिणा सहित प्रणाम कर, अग्निकोनमें आई। साधु आगे बैठ गए

[1]—एक पर दूसरा और दूसरे पर तीसरा।

और उनके पीछे देवियाँ व देवियोंके पीछे साध्वियाँ खड़ी रहीं। भुवनपति, ज्योतिष्क और व्यंतरोंकी देवियाँ, दक्षिण द्वारसे प्रवेश कर, प्रभुको प्रदक्षिणापूर्वक नमस्कार कर, अनुक्रमसे नैऋत्य दिशामें खड़ी रहीं। भवनपति, ज्योतिष्क और व्यंतर देव, पश्चिम दिशासे प्रवेश कर, प्रभुको प्रदक्षिणापूर्वक नमस्कार कर, अनुक्रमसे वायव्य दिशामें बैठे। इंद्र सहित वैमानिकदेव, उत्तर द्वारसे प्रवेश कर, प्रभुको प्रदक्षिणापूर्वक नमस्कार कर, ईशान दिशामें अनुक्रमसे बैठे। उस समय इंद्रका शरीर भक्तिसे रोमांचित हो आया। उसने पुनः हाथ जोड़, नमस्कार कर, इस तरह विनती की,—(३७०–३८३)

"हे नाथ! आप तीर्थंकर नामकर्मसे सबके अभिमुख हैं-मुखिया हैं। और हमेशा सन्मुख होकर अनुकूल बनकर आप सारी प्रजाको आनंदित करते हैं। आपके एक योजन प्रमाणवाले धर्मदेशनाके मंदिरमें (समवसरणमें) करोड़ों तिर्यंच, मनुष्य और देवता समा जाते हैं। एक भाषामें बोले गए, मगर सबको अपनी अपनी भाषामें समझमें आनेवाले, सबको प्रिय लगनेवाले और धर्मबोध देनेवाले आपके वचन भी तीर्थंकर नामकर्मकाही प्रभाव है। आपकी विहारभूमिके चारों तरफ, सवा सवा सौ योजन तक, पहले आए हुए रोगरूपी बादल, आपके विहाररूपी पवनके झपेटोंसे, विनाही प्रयत्नके, नष्ट हो जाते हैं। और (नेक) राजाओंके द्वारा नष्ट कीगई अनीतियोंकी तरह, आप जहाँ विहार करते हैं वहाँ—उस जमीनमें—चूहे, टिड्डियाँ और तोते वगैराकी उत्पत्तिरूप दुर्भिक्ष आदि ईतियाँ प्रकट नहीं होती हैं। आपके कृपारूपी पुष्करावर्तकी वर्षासे पृथ्वीपर जो,

क्षेत्र और द्रव्यादि कारणोंसे जन्मी हुई वैररूपी आग भी शांत हो जाती है। हे नाथ! अकल्याणका नाश करनेमें ढिंढोरेके समान आपका प्रभाव पृथ्वीपर भ्रमण करता रहता है, इसलिए मनुष्यलोकके शत्रुरूप महामारी वगैरा रोग उत्पन्न नहीं होते हैं। विश्वके वत्सल और लोगोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले आपके विचरण करते रहनेसे उत्पात करनेवाली अतिवृष्टि या अनावृष्टि भी नहीं होती। आपके प्रभावसे, सिंहनादसे हाथियों-की तरह, स्वराज्य और परराज्य संबंधी क्षुद्र उपद्रव तत्कालही नष्ट हो जाते हैं। सब तरहके अद्भुत प्रभाववाले और जंगम कल्पवृक्षके समान आप जिधर जाते हैं उधर अकाल मिट जाता है। आपके मस्तकके पिछले भागमें जो भामंडल है वह सूरजके तेजको जीतनेवाला है; वह इसलिए पिंडाकारमें बना जान पड़ता है कि आपका शरीर लोगोंके लिए दुरालोक न हो जाय। हे भगवान! घातिकर्मोंका क्षय होनेसे आपके इस योगसाम्राज्य-की महिमा विश्वमें प्रख्यात हुई है। यह बात किसके लिए आश्चर्य-का कारण न होगी! तुम्हारे सिवा दूसरा कौन अनंत कर्मरूपी तृणोंको सब तरहसे जड़मूलसे उखाड़कर भस्म कर सकता है। क्रियाकी अधिकतासे आप इस तरहके प्रयत्नोंमें लगे हुए हैं, कि आपके इच्छा न करनेपर भी लक्ष्मी आपका आश्रय लेती है। मैत्री (प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ चार भावनाओं*)के पवित्र

* (१) मैत्री—समान धर्मवालोंसे मित्रता करना-करनेकी भावना रखना। (२) प्रमोद—गुणियोंसे प्रसन्नताका व्यवहार करना-करनेकी भावना रखना। (३) करुणा—दुखी जीवोंपर दया करना-करनेकी भावना रखना। (४) माध्यस्थ—विरोधियोंकी उपेक्षा करना-करनेकी भावना रखना।

पात्ररूप, मुदित-आमोदशाली (सदा आनंदित मनवाले) और कृपा तथा उपेक्षा करनेवालोंमें मुख्य (ऐसे सब श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त) हे योगात्मा, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

(३८४-३६८)

उधर उद्यानपालकोंने सगरचक्रीके पास जाकर निवेदन किया कि उद्यानमें अजितनाथ स्वामीका समवसरण हुआ है। प्रभुके समवसरणकी बात सुनकर सगरको इतना हर्ष हुआ कि, जितना चक्रकी प्राप्तिके समाचारसे भी नहीं हुआ था। संतुष्टचित्त सगर चक्रवर्तीने उद्यानपालकोंको साढ़े बारह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ इनाममें दीं। फिर स्नान तथा प्रायश्चित्त कौतुक मंगलादिक कर, इंद्रकी तरह उदार आकृतिवाले रत्नोंके आभूपण धारण कर, कंधेपर दृढ़तासे हार रख अपने हाथसे अंकुशको नचाते हुए सगर राजा उत्तम हाथीपर, अगले आसनपर बैठे। हाथीके ऊँचे कुंभस्थलसे जिनका आधा शरीर ढक गया है ऐसे चक्री आधे उगे हुए सूर्यके समान शोभते थे। शंखों और नगारोंके शब्द दिशाओंके मुखमें फैलनेसे, सगर राजाके सैनिक इसी तरह एकत्रित हो गए जिस तरह सुघोपादि घंटोंकी आवाजसे देवता जमा हो जाते हैं। उस समय मुकुटधारी हजारों राजाओंके परिवारसे चक्री ऐसा दिखता था, मानो उसने अपने अनेक रूप बनाए हैं। मस्तकपर अभिपिक्त हुए राजाओंमें मुकुटके समान चक्री, मस्तकके ऊपर आकाशगंगाके आवर्तका भ्रम पैदा करनेवाले श्वेत छत्रसे सुशोभित हो रहा था। और दोनों तरफ डुलाए जानेवाले चमरोंसे वह ऐसा शोभता था जैसे दोनों तरफ स्थित चंद्रबिंबोंसे मेरुपर्वत शोभता

है। मानो स्वर्णके पंखोंवाले पक्षी हों ऐसे स्वर्णके कवचवाले अश्वोंसे, पाल चढ़ाए हुए कूपस्तंभोंवाले' जहाज हों ऐसे ऊँची ध्वजाओंके खंभोंवाले रथोंसे, झरनोंवाले पर्वत हों ऐसे मद झरते उत्तम हाथियोंसे, और मानो सर्पसहित सिंधुकी तरंगें हों ऐसे ऊँचे हथियारोंवाले प्यादोंसे पृथ्वीको चारों तरफसे आच्छादित करता हुआ सगरचक्री सहस्राम्रवन नामक उपवनके समीप आया। फिर, महामुनि जैसे मानसे उतरते हैं उसी तरह, सगर राजा उद्यानके दरवाजे की स्वर्णवेदीपर हाथीसे उतरा। उसने अपने छत्र, चमर इत्यादि राज्यचिह्न भी वहीं छोड़ दिए। कारण, विनयी पुरुषोंकी ऐसीही मर्यादा होती है। उसने विनयके कारण पैरोंसे जूते निकाल दिए। छड़ीदारके द्वारा दिए गए हाथके सहारेकी भी उपेक्षाकी-हाथका सहारा नहीं लिया और वह राजा नगरके नरनारियोंके साथ पैदल चलकर समवसरणके पास पहुँचा। फिर, मकरसंक्रांतिके दिन सूर्य जैसे आकाशके आँगनमें प्रवेश करता है ऐसेही, सगर राजाने उत्तर द्वारसे समवसरणमें प्रवेश किया। वहाँ उसने जगद्गुरुको तीन प्रदक्षिणा सहित नमस्कार करके अमृतके समान मधुरवाणीमें स्तुति करना आरंभ किया, (३६६-४१७)

"हे प्रभो! मिथ्यादृष्टिके लिए कल्पांतकालके सूर्यके समान और सम्यक्त्व दृष्टिके लिए अमृतके अंजनके समान और तीर्थंकरपनकी लक्ष्मीके लिए तिलकरूप यह चक्र आपके सामने बढ़ा है। "इस जगतमें तुम अकेलेही स्वामी हो।" यह कहनेके लिए इंद्रने मानो इंद्रध्वजके बहानेसे अपनी तर्जनी उँगली ऊँची

१—नौका बाँधनेके खंभ।

की है। जब आपके चरण कदम रखते हैं तब सुर और असुर कमल बनानेके बहाने कमलमें बसनेवाली लक्ष्मीका विस्तार करते हैं। मैं मानता हूँ कि दान, शील, तप और भाव चार तरहके इस धर्मको एक साथ कहनेके लिए आप चार मुखवाले हुए हैं। तीन लोककी तीन दोषोंसे बचानेकी प्रवृत्ति कर रहे हैं, इसीलिए मालूम होता है कि देवताओंने ये तीन कोट बनाए हैं। आप पृथ्वीपर विचरते हैं तब काँटे अधोमुख हो जाते हैं; मगर इसमें कोई अचरजकी बात नहीं है। कारण—जब सूरज उगता है तब अँधेरा कभी सामने नहीं आता है-नहीं आ सकता है। केश, रोम, नख, डाढ़ी और मूँछें बढ़े नहीं हैं; जैसे थे वैसेही हैं। (यह योगकी महिमा है) इस तरहकी बाहरी योगमहिमा, तीर्थंकरोंके सिवा दूसरोंको नहीं मिली। शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श नामके पाँच इंद्रियोंके विषय, आपके सामने, तार्किक लोगोंकी तरह प्रतिकूलता नहीं करते। सभी ऋतुएँ, असमयमें की हुई कामदेवकी सहायताके भयसे हों ऐसे, एक साथ आपके चरणोंकी सेवा करती हैं। भविष्यमें आपके चरणोंका स्पर्श होनेवाला है यह सोचकर, देवता सुगंधित जलवर्षासे और दिव्य पुष्पोंकी वृष्टिसे पृथ्वीकी पूजा करते हैं। हे जगतपूज्य! जब पक्षी भी चारों तरफसे आपकी परिक्रमा करते हैं और आपके विपरीत नहीं चलते हैं तब, जो मनुष्य होकर तुमसे विमुख वृत्ति रखते हैं और जगतमें बड़े होकर फिरते हैं उनकी क्या गति होगी? जब आपके पास आकर एकेंद्रिय पवन भी प्रतिकूलताका त्याग करता है तब पंचेंद्रिय तो दुःशील हो ही कैसे सकता है? आपके माहात्म्यसे चमत्कार पाए हुए वृक्ष भी मस्तक

झुका कर आपको नमस्कार करते हैं; इससे उनके मस्तक कृतार्थ होते हैं; मगर जिनके मस्तक आपके सामने नहीं झुकते हैं उन मिथ्यादृष्टियोंके मस्तक अकृतार्थ हैं व्यर्थ हैं–कमसे कम करोड़ों सुरासुर आपकी सेवा करते हैं। कारण—मूर्ख और आलसी पुरुष भी भाग्यके योगसे मिले हुए अर्थके प्रति उदासीनता नहीं दिखाते हैं।" (४१८–४३१)

इस तरह भगवानकी स्तुति करके विनय सहित जरा पीछे हटकर सगर चक्री इंद्रके पीछे बैठा और नरनारियोंका समूह उसके पीछे बैठा। इस तरह समवसरणके अंतिम ऊँचे गढ़के अंदर भक्तिके द्वारा मानो ध्यानमें स्थित रहा हो इस तरह चतुर्विध संघ आकर बैठा। दूसरे गढ़में सर्प और नकुल वगैरा तिर्यंच जाति वैरका भी त्याग करके आपसमें मित्रोंकी तरह बैठे। तीसरे गढ़में प्रभुकी सेवाके लिए आए हुए सुरासुर और मनुष्योंके वाहन थे। इस तरह सबके बैठनेके बाद एक योजन तक सुनाई देनेवाली और सभी भाषाओंमें समझी जानेवाली मधुर गिरासे भगवान अजित स्वामीने धर्मदेशना देना आरंभ किया। (४३२—४३६)

प्रभुकी देशना

[इस देशनामें धर्मध्यानका वर्णन है; इसीमें तीनों लोकका वर्णन आ गया है।]

"अहो ! उन मुग्धबुद्धि लोगोंको धिक्कार है जो कांचको वैडूर्यमणि और असार संसारको सारवाला जानते हैं; प्रतिक्षण बँधते हुए विविध कर्मोंसे प्राणियोंके लिए यह संसार इसी

तरह बढ़ता है जिस तरह दोहदों[1] से वृक्ष फलते हैं। कर्मके अभाव-से संसारका अभाव होता है' इसलिए विद्वानोंको कर्मका नाश करनेके लिए सदा प्रयत्न करना चाहिए। शुभ ध्यानसे कर्मका नाश होता है। वह ध्यान—आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान-चिंतवन नामसे—चार तरहका है। (३३७-४४०)

(१) आज्ञा—आप्त-सर्वज्ञके वचनोंको आज्ञा कहते हैं। वह दो प्रकारकी होती है। आगम आज्ञा और हेतुवाद आज्ञा। जो शब्दोंसे पदार्थोंका प्रतिपादन करता है उसे आगम आज्ञा कहते हैं। दूसरा, प्रमाणोंकी चर्चासे जो पदार्थोंका प्रतिपादन करता है उसे हेतुवाद आज्ञा कहते हैं। इन दोनोंका समान होना प्रमाण है। दोपरहित कारणके आरंभके लक्षणसे प्रमाण होता है। राग, द्वेष और मोहको दोप कहते हैं। ये दोप अर्हंतोंमें नहीं होते। इसलिए दोपरहित कारणोंसे संभूत (यानी पैदा हुआ या बोला गया) अर्हंतोंका वचन प्रमाण है। वह वचन नय और प्रमाणोंसे सिद्ध, पूर्वापर विरोध रहित, दूसरे बलवान शासनों-से भी अप्रतिक्षेप्य- अकाट्य, अंगोपांग, प्रकीर्ण इत्यादि बहु-शास्त्ररूपी नदियोंका समुद्ररूप, अनेक अतिशयोंकी साम्राज्य लक्ष्मीसे सुशोभित, दूरभव्य पुरुषोंके लिए दुर्लभ, भव्य पुरुषों-के लिए शीघ्र-सुलभ, गणिपिटकपनसे रहा हुआ और देवों

१— प्राचीन कालसे कवियोंकी यह मान्यता चली आई है कि सुंदर स्त्रिके स्पर्शसे प्रियंगु, पानकी पीक थूकनेसे मौलसिरी, पैरोंके आघात-से अशोक, देखनेसे तिलक, मधुर गानसे आम और नाचनेसे कचनार आदि वृक्ष फूलते हैं। इन्हीं क्रियाओंको दोहद कहते हैं।

और मानवोंके लिए नित्य स्तुति करने लायक है। ऐसे आगम वचनोंकी आज्ञाका आलंबन करके स्याद्वाद न्यायके योगसे द्रव्यपर्यायरूपसे, नित्यानित्य वस्तुओंमें इसी तरह स्वरूप और पररूपसे सत् असत्पनसे रहे हुए पदार्थोंमें जो स्थिर विश्वास करना है उसे आज्ञाविचय ध्यान कहते हैं। (४४१ ४४६)

(२) अपाय विचय—"जिन्होंने जिनमार्गका स्पर्श नहीं किया, जिन्होंने परमात्माको नहीं जाना और जिन्होंने अपने आगामी काल—यानी भविष्य—का विचार नहीं किया ऐसे पुरुषोंको हजारों अपाय (विघ्न) आते हैं। माया और मोहरूपी अंधकारसे जिसका चित्त परवश है (यानी जो अंधकारके कारण देख नहीं सकता है) वह प्राणी कौन कौनसे पाप नहीं करता है और उनसे उसको कौन कौनसे कष्ट नहीं होते हैं! ऐसे प्राणीको विचार करना चाहिए कि, नारकी, तिर्यंच और मनुष्य भवोंमें मैंने जो जो दुःख भोगे हैं उन सबका कारण मेरा दुष्ट प्रमादही है। परम बोधिबीजको पाकर भी मन, वचन और काया द्वारा की गई चेष्टाओंसे मैंनेही अपने मस्तकपर आग जलाई है। मुक्तिमार्गपर चलना मेरे हाथमें था; मगर मैं कुमार्गको ढूँढ उसपर चला और इस तरह मैंनेही अपने आत्माको कष्टमें डाला। जैसे अच्छा राज मिलनेपर भी मूर्ख मनुष्य भीख माँगता फिरता है वैसेही, मोक्षसाम्राज्य मेरे अधिकारमें होते हुए भी मैं अपने आत्माको संसारमें भ्रमण कराता हूँ। इस तरह राग द्वेष और मोहसे उत्पन्न होनेवाले अपायोंका विचार करना अपायविचय नामक दूसरा धर्मध्यान कहलाता है।

(४५०-४५६)

(३) विपाकविचय—"कर्मके फलको विपाक कहते हैं। यह विपाक शुभ और अशुभ ऐसे दो तरहका है। द्रव्य, क्षेत्रादिकी सामग्री द्वारा विचित्र प्रकारसे उसका अनुभव होता है। स्त्री, फूलोंकी माला और खाद्य द्रव्योंके उपभोगको शुभ विपाक कहते हैं और सर्प, शस्त्र, आग और जहर वगैरा पदार्थोंका जो अनुभव होता है उसे अशुभ विपाक कहते हैं। (ये शुभाशुभ विपाक द्रव्यविपाकके नामसे पहचाने जाते हैं।)

"महल, विमान, बाग बगीचे इत्यादि स्थानोंमें निवास करना शुभविपाक है; और मसान, जंगल वगैरामें रहना अशुभविपाक है। (ये शुभाशुभ विपाक क्षेत्रविपाक हैं।)

"सरदी-गरमी रहित वसंतादिक ऋतुओंमें फिरना शुभविपाक है; और सरदी और गरमीकी हेमंत और ग्रीष्म ऋतुओंमें भ्रमण करना अशुभविपाक है। (इनको कालविपाक कहते हैं।)

"मनकी प्रसन्नता और संतोषकी भावना शुभ विपाक है और क्रोध, अहंकार और रौद्रताकी भावना अशुभ विपाक है। (इनको भावविपाक कहते हैं।)

"कहा गया है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भवको प्राप्त कर कर्मोंका उदय, क्षय, उपशम और क्षयोपशम होता है। इस तरह द्रव्यादि सामग्रीके योगसे प्राणियोंको उनके कर्म अपना अपना फल देते हैं। कर्मके मुख्य आठ भेद हैं।

(१) ज्ञानावरणीय—कपड़ेकी पट्टी बाँधनेसे जैसे आँख नहीं देख सकती वैसेही, जिस कर्मके उदयसे सर्वज्ञ स्वरूपवाले

जीवका ज्ञान ढँक जाता है उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं। ज्ञानके मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय और केवल—ये पाँच भेद हैं। इन पाँचोंको ढकनेसे ज्ञानवरणीयके भी इसीके अनुसार पाँच भेद होते हैं। (मतिज्ञानवरणीय, श्रुत ज्ञानावरणीय, अवधि ज्ञानावरणीय,मनःपर्याय ज्ञानावरणीय और केवल ज्ञानावरणीय।)

"(२) दर्शनावरणीय—पाँच निद्राएँ (निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि) और चार दर्शन (चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन) इनको जो ढकता है उसे दर्शनावरणीयकर्म कहते हैं। जैसे राजाको देखनेकी इच्छा रखनेवाला चौकीदारके रोकनेसे राजाको नहीं देख सकता है वैसेही, जिस कर्मके उदयसे आत्मदर्शन नहीं होते हैं उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

"(३) वेदनीय—खड्गकी धाराके अग्रभागपर मधु लगा हो और उसको (जीभसे चाटकर) स्वाद लेनेमें जो सुख और दुःख होता है उसीके समान वेदनीयकर्म है। यह सुखके और दुःखके अनुभवरूप स्वभाववाला होनेसे दो तरहका है (साता वेदनीय और असातावेदनीय)।

"(४) मोहनीयकर्म—ज्ञानी पुरुषोंने मोहनीयकर्मको मदिरा पीनेके समान बताया है। कारण इस कर्मके उदयसे मोह पाया हुआ (मतवाला बना हुआ) आत्मा कृत्य और अकृत्यको नहीं समझ सकता है। उसमें मिथ्यादृष्टिपनके विपाकको करनेवाला दर्शन मोहनीय कर्म कहलाता है और

विरति-वैराग्यको रोकनेवाला चारित्र मोहनीय कर्म कहलाता है।

"(५) आयुकर्म—मनुष्य, तिर्यंच, नारकी और देवताके भेदसे चार तरहका है। वह प्राणियोंको अपने अपने भवमें जेल-खानेकी तरह कैद रखता है।

"(६) नामकर्म—गति, जाति वगैराकी विचित्रता करनेवाला नामकर्म चित्रकारके समान है। इसका विपाक प्राणियोंको शरीरमें प्राप्त होता है।

"(७) गोत्रकर्म—उच्च और नीच भेदसे दो तरहका है। इससे प्राणियोंको उच्च और नीच गोत्रकी प्राप्ति होती है। यह क्षीरपात्र और मदिरापात्रका भेद करनेवाले कुंभकारके जैसा है।

'(८) अंतरायकर्म—जिससे लाचार होकर दानादि लब्धियाँ सफल नहीं होतीं, वह अंतरायकर्म है। इसका स्वभाव भंडारीके समान है।

"इस तरह मूल प्रकृतियोंके उस तरहके विपाक—परिणाम-का विचार करना 'विपाक विचय' नामका धर्मध्यान कहलाता है। (४५७–४७६)

"(४) संस्थान विचय—जिसमें उत्पत्ति, स्थिति और लयरूप आदि-अंतरहित लोककी आकृतिका विचार किया जाता है उसे संस्थानविचय धर्मध्यान कहते हैं। यह लोक कमरपर हाथ रख, पैरोंको चौड़े कर खड़े हुए पुरुषकी आकृतिके जैसा है; और वह उत्पत्ति, स्थिति और नाशमान पर्यायोंवाले द्रव्योंसे भरा हुआ है। यह नीचे वेत्रासन जैसी, मध्यमें झालर जैसी और

ऊपरसे मृदंग जैसी आकृतिवाला है। यह लोक तीन जगतसे व्याप्त है। इसमें नीचेकी सात भूमियाँ महा बलवान घनांभोधि, घनवात और तनुवातसे घिरी हुई हैं। अधोलोक, तिर्यगलोक और ऊर्ध्वलोकके भेदसे यह तीन जगत कहलाता है। ये तीन लोकके विभाग रुचकप्रदेशकी अपेक्षासे होते हैं। मेरु पर्वतके अंदर मध्यमें गायके थनके आकारवाले, आकाशप्रदेशोंको रोकनेवाले चार नीचे और आकाशप्रदेशोंको रोकनेवाले चार ऊपर, इस तरह आठ रुचकप्रदेश हैं। उन रुचकप्रदेशोंके ऊपर और नीचे नौ सौ, नौ सौ योजन तकका भाग तिर्यगलोक कहलाता है। उस तिर्यगलोकके नीचे अधोलोक है। वह नौ सौ योजन कम सात रज्जु प्रमाणका है। अधोलोकमें एक एकके नीचे अनुक्रमसे सात भूमियाँ हैं। इनमें नपुंसक वेदवाले नारकियोंके भयंकर निवासस्थान हैं।

नरकोंके नाम	नरकोंकी मोटाई	नरकावासा
रत्नप्रभा	एक लाख अस्सी हजार योजन	तीस लाख
शर्कराप्रभा	,, बत्तीस ,, ,,	पचीस लाख
वालुकाप्रभा	,, अट्ठाईस ,, ,,	पंद्रह लाख
पंकप्रभा	,, बीस ,, ,,	दस लाख
धूमप्रभा	,, अठारह ,, ,,	तीन लाख
तमःप्रभा	,, सोलह ,, ,,	पाँच कम एकलाख
महातमःप्रभा	एकलाख आठ हजार योजन	पाँच

"इन रत्नप्रभादि सातों भूमियोंके, हरेकके नीचे मध्यमें

बीस हजार योजन मोटाईमें घनाब्धि है, घनाब्धिके नीचे मध्यमें असंख्य योजन तक घनवात है, घनवातके नीचे असंख्य योजन तक तनुवात है और तनुवातसे असंख्य योजन तक आकाश है। ये मध्यकी मोटाईसे क्रमशः कम होते होते घनाब्धि वगैराका आकार अंतमें कंकणकासा हो गया है। रत्नप्रभा भूमिके अंतिम भागमें परिधिकी तरह चारों तरफ घनाब्धि है। इसका विस्तार छः योजनका है। उसके चारों तरफ महावातका मंडल साढ़े चार योजनका है। उसके चारों तरफ तनुवातका मंडल डेढ़ योजनका है। इस तरह रत्नप्रभाके चारों तरफके मंडलके प्रमाणके सिवा, शर्कराप्रभा भूमिके चारों तरफ घनाब्धिमें एक योजनका तीसरा भाग अधिक है, घनवातमें एक कोस अधिक है और तनुवातमें एक कोसका तीसरा भाग अधिक है। शर्कराप्रभाके वलयके प्रमाणके सिवा तीसरी बालुका भूमिके चारों तरफ भी इसी तरहकी अधिकता होती है। इस तरह पूर्वके वलयके प्रमाणसे, पीछेके वलयोंके प्रमाणमें सातवीं भूमिके वलय तक वृद्धि[1] होती रहती है। इन घनाब्धि, महावात और तनुवातके मंडलोंकी ऊँचाई अपनी अपनी पृथ्वीकी ऊँचाईके समानही है। इस तरह इन सात पृथ्वियोंको घनाब्धि वगैराने धारण किया है। और इन्हींमें पापकर्मोंको भोगनेके स्थान नरकावासा हैं। इन नरकभूमियोंमें, जैसे जैसे नीचे जाते हैं वैसेही वैसे, यातना, रोग, शरीर, आयु, लेश्या, दुःख

१—इस तरह वृद्धि होनेसे सातवीं पृथ्वीके अंतिमभागमें वलयाकारसे; घनोदधि आठ योजन, घनवात छह योजन और तनुवात दो योजन है।

और भयादि क्रमशः बढ़ते जाते हैं। यह बात निश्चयपूर्वक समझना चाहिए।(४७७-५०३)

"रत्नप्रभा भूमिकी मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन है। उसमेंसे एक एक हजार योजन ऊपर और नीचे छोड़ देनेसे बाकी जो भाग है उसमें भवनपति देवोंके भवन हैं। वहाँ उत्तर और दक्षिण दिशाओंमें, जैसे राजमार्गके दोनों तरफ सिलसिलेवार मकान होते हैं वैसेही, भवनपतियोंके भवन हैं और उन्हींमें वे रहते हैं। उनमें मुकुटमणिके चिह्नवाले असुरकुमार भवनपति हैं, फनके चिह्नवाले नागकुमार भवनपति हैं, वज्रके चिह्नवाले विद्युत्कुमार हैं, गरुड़के चिह्नवाले सुपर्णकुमार हैं, घटके चिह्नवाले अग्निकुमार हैं, अश्वके चिह्नवाले वायुकुमार हैं, वर्द्धमानके[1] चिह्नवाले स्तनितकुमार हैं, मकरके चिह्नवाले उदधिकुमार हैं, केसरीसिंहके चिह्नवाले द्वीपकुमार हैं, और हाथीके चिह्नवाले दिक्कुमार हैं। उनमें असुरकुमारोंके चमर और बली नामके दो इंद्र हैं। नागकुमारोंके धरण और भूतानंद नामके दो इंद्र हैं। विद्युत्कुमारोंके हरि और हरिसह नामके दो इंद्र हैं। सुपर्णकुमारोंके वेणुदेव और वेणुदारी नामके दो इंद्र हैं। अग्निकुमारोंके अग्निशिख और अग्निमाणव नामके दो इंद्र हैं। वायुकुमारोंके वेलंब और प्रभंजन नामके दो इंद्र हैं। स्तनितकुमारोंके सुघोष और महाघोष नामके दो इंद्र हैं। अग्नि-

१—शरावसंपुट (शराव युगल) तत्त्वार्थसूत्र पेज १६२ (पं० सुखलालजी कृत टीकावाला) शरावका अर्थ मिट्टीका कुल्हड़ होता है।

कुमारोंके जलकाँत और जलप्रभ नामके दो इंद्र हैं। द्वीपकुमारोंके पूर्ण और अवशिष्ट नामके दो इंद्र हैं। और दिक्कुमारोंके अमित और अमितवाहन नामके दो इंद्र हैं। (५०४-५१४)

"रत्नप्रभा भूमिमें छोड़े हुए हजार योजनमें ऊपर और नीचे सौ सौ योजन छोड़नेके बाद बीचके आठ सौ योजनमें दक्षिणोत्तर श्रेणीके अंदर आठ तरहके व्यंतरोंकी निकाय बसती है। उनमें 'पिशाच व्यंतर' कदंबवृक्षके चिह्नवाले हैं, 'भूत व्यंतर' सुलसवृक्षके चिह्नवाले हैं, 'यक्ष व्यंतर' वट वृक्षके चिह्नवाले हैं, 'राक्षस व्यंतर' खट्वांगके[1] चिह्नवाले हैं, 'किन्नर व्यंतर' अशोक-वृक्षके चिह्नवाले हैं, 'किंपुरुष व्यंतर' चंपक वृक्षके चिह्नवाले हैं, 'महोरग व्यंतर' नाग वृक्षके चिह्नवाले हैं और गंधर्व व्यंतर तुंबरू वृक्षके चिह्नवाले हैं। उनमें—

पिशाच व्यंतरोंके काल और महाकाल नामके इंद्र हैं। भूत व्यंतरोंके सुरूप और प्रतिरूप नामके इंद्र हैं। यक्ष व्यंतरोंके पूर्णभद्र और मणिभद्र नामके इंद्र हैं। राक्षस व्यंतरोंके भीम और महाभीम नामके इंद्र हैं। किन्नर व्यंतरोंके किन्नर और किंपुरुष नामके इंद्र हैं। किंपुरुष व्यंतरोंके सत्पुरुष और महापुरुष नामके इंद्र हैं। महोरग व्यंतरोंके अतिकाय और महाकाय नामके इंद्र हैं। और गंधर्व व्यंतरोंके गीतरति और गीतयशा नामके इंद्र हैं। इस तरह व्यंतरोंके सोलह इंद्र हैं।

(५१५-५२३)

"रत्नप्रभा भूमिके छूटे हुए सौ योजनमेंसे ऊपर और नीचे

१—शिवका अस्त्रविशेष।

दस योजन छोड़ देनेके बाद बचे हुए बीचके अस्सी योजनमें व्यंतरोंकी दूसरी आठ निकायें-जातियाँ हैं। इनके नाम हैं—अप्रज्ञप्ति, पंच प्रज्ञप्ति, ऋषिवादित, भूतवादित, कंदित, महाकंदित, कुष्मांड और पचक। हरेकके दो दो इंद्र हैं। इनके क्रमसे नाम हैं:—संनिहित और समान; धातृ और विधातृक; ऋषि और ऋषिपाल; ईश्वर और महेश्वर; सुवत्सक और विशाल; हास और हासरति; श्वेत और महाश्वेत; पचन और पचकाधिप। (५२४-५२८)

"रत्नप्रभाके तलके ऊपर दस कम आठ सौ योजन जानेपर ज्योतिष्क मंडल आता है। प्रथम तारे हैं। इनसे दस योजन ऊपर सूरज है। सूरजसे अस्सी योजन ऊपर चाँद है। चाँदसे बीस योजन ऊपर ग्रह हैं। इस तरह एक सौ दस योजनके विस्तारमें ज्योतिर्लोक है। जंबूद्वीपके मध्यमें मेरुपर्वतसे ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूर मेरु पर्वतको नहीं छूता हुआ, मंडलाकारमें, सभी दिशाओंमें व्याप्त ज्योतिष चक्र फिरा करता है। केवल एक ध्रुवका तारा निश्चल रहता है। वह ज्योतिषचक्रलोकके अंतिम भागसे ग्यारह सौ ग्यारह योजन, लोकांतको स्पर्श न करते हुए मंडलाकारमें स्थित है। नक्षत्रोंमें सबसे ऊपर स्वाति नक्षत्र है और सबसे नीचे भरणी नक्षत्र है। सबसे दक्षिणमें मूल नक्षत्र है और सबसे उत्तरमें अभिजित नक्षत्र है।

"इस जंबूद्वीपमें दो चाँद और दो सूरज हैं। कालोदधिमें बयालीस चाँद और बयालीस सूरज हैं। पुष्कारार्द्धमें बहत्तर चाँद और बहत्तर सूरज हैं। इस तरह ढाई द्वीपमें एक सौ बत्तीस चाँद और एक सौ बत्तीस सूरज हैं। इनमेंसे हरेक चाँद-

के अट्ठासी ग्रह, अट्ठासी नक्षत्र और छासठ हजार नौसौ पचहत्तर कोटा-कोटि ताराओंका परिवार है। चाँदके विमानकी चौड़ाई और लंबाई एक योजनके इकसठ भाग करके उनमेंके छप्पन भाग जितने प्रमाणकी है। (५६/६१) सूर्यका विमान योजनके इकसठ भागमेंके अड़तालीस भाग जितना है। (४८/६१) ग्रहोंके विमान आधे योजनके हैं, और नक्षत्रोंके विमान एक एक कोस जितने हैं। सबसे उत्कृष्ट आयुवाले तारेका विमान आधे कोसका है और सबसे जघन्य आयुवालेका विमान पाँच सौ धनुषका है। उन विमानोंकी ऊँचाई मर्त्य-क्षेत्रके ऊपरके भागमें (पैंतालीस लाख योजनमें) लंबाईसे आधी है। उन सब विमानोंमें नीचे पूर्वकी तरफ सिंह हैं, दक्षिणकी तरफ हाथी हैं, पश्चिमकी तरफ बैल हैं और उत्तरकी तरफ घोड़े[1] हैं। वे चंद्रादिक विमानोंके वाहन हैं। उनमें सूरज व चंद्रके वाहनभूत सोलह हजार आभियोगिक देव हैं, ग्रहके आठ हजार हैं, नक्षत्रके चार हजार हैं और तारेके दो हजार हैं। चंद्रादिक विमान अपने स्वभावहीसे गतिशील हैं तो भी विमानोंके नीचे आभियोगिक देवता, आभियोग्य (सेवानामकर्म) से निरंतर वाहनरूप होकर रहते हैं। मानुषोत्तर पर्वतके बाहर पचास पचास हजार योजनके अंतरसे सूरज और चाँद स्थिर होकर रहते हैं। उनके विमान मनुष्यक्षेत्रके चंद्रसूर्यके प्रमाणसे आधे प्रमाणवाले हैं। क्रमशः द्वीपोंकी परिधिकी[2] वृद्धिसे उनकी संख्या बढ़ती जाती है। सारी लेश्यावाले और ग्रह, नक्षत्र तथा तारोंसे परिचारित (सेवित)

१—सिंह वगैराका रूप धारण करके उनके वाहनभूत आभियोगिक देवता रहते हैं। २—घेरा।

असंख्य सूर्य और चंद्र घंटाके आकारमें सुंदर मालूम हों इस तरह रहे हुए हैं; स्वयंभूरमण समुद्र उनकी सीमा है और एक एक लाख योजनके अंतरसे वे अपनी अपनी पंक्तियोंमें सदा स्थिर हैं। (५२६-५५१)

"मध्यलोकमें, जंबूद्वीप और लवणसमुद्र वगैरा अच्छे अच्छे नामवाले और एक दूसरेसे दुगने दुगने विस्तारवाले, असंख्य द्वीप और समुद्र हैं। हरेक द्वीपको समुद्र घेरे हुए है इसलिए वे गोलाकारवाले हैं। उनमें स्वयंभू नामका महोदधि अंतिम है। (५५२-५५३)

"जंबूद्वीपके मध्यमें सोनेके थाल जैसा गोल मेरुपर्वत है। वह पृथ्वीतलमें एक हजार योजन गहरा है और निन्यानवे हजार योजन ऊँचा है। पृथ्वीतलमें उसका विस्तार दस हजार योजन है और ऊपर उसका विस्तार एक हजार योजन है। तीन लोक[1] और तीन कांडसे[2] यह पर्वत विभक्त है। सुमेरु पर्वतका पहला कांड शुद्ध पृथ्वी, पत्थर, हीरे और शर्करासे भरा है। इसका प्रमाण एक हजार योजन है। इसके बाद उसका दूसरा कांड तिरसठ हजार योजन तक जातिवान चाँदी, स्फटिक, अंकरत्न और स्वर्णसे भरा है। मेरुका तीसरा कांड छत्तीस हजार योजनका है। वह स्वर्ण शिलामय है और उसपर वैडूर्यरत्नकी चूलिका है, उसकी ऊँचाई चालीस योजन है। मूलमें उसका विस्तार बारह योजन है, मध्यमें आठ योजन है और ऊपर

१—भूमिमें हजार योजन कहा गया है। इससे मालूम होता है कि सौ योजन अधोलोकमें, नौ सौ नीचेके लोकमें, नौ सौ ऊपरके तिर्यग लोकमें और शेष ९८१०० योजन ऊर्ध्वलोकमें है। २—भाग।

चार योजन है। मेरु पर्वतके तलमें एक भद्रशाल नामका वन है। उसका आकार गोल है। भद्रशाल वनसे जब पाँच सौ योजन ऊँचे जाते हैं तब मेरु पर्वतकी पहली मेखला आती है। इसपर पाँच सौ योजन विस्तारवाला गोलाकृति नंदन वन है। इससे ऊपर साढ़े बासठ हजार योजन जानेपर दूसरी मेखला आती है। इसके ऊपर इतनेही प्रमाणका यानी पाँच सौ योजन विस्तार-वाला सौमनस नामक तीसरा वन है। इस वनसे ऊपर छत्तीस हजार योजन जानेपर तीसरी मेखला आती है। यह मेरुका शिखर है। इसपर पांडुक नामका चौथा सुंदर वन है। वह चार सौ चौरानवे योजन विस्तारवाला है। उसका आकार वलयाकृति है। यानी गोल कंकणके समान है। (५५४-५६५)

"इस जंबूद्वीपमें सात खंड हैं। उनके नाम हैं-(१) भरत, (२) हेमवंत, (३) हरिवर्ष, (४) महाविदेह, (५) रम्यक, (६) हैरण्यवृत और (७) ऐरवत। दक्षिण और उत्तरमें इन क्षेत्रोंको जुदा करनेवाले वर्षधर पवत हैं। उनके नाम हैं—(१) हिमवान, (२) महाहिमवान, (३) निषध, (४) नीलवंत, (५) रुक्मी, और (६) शिखरी। उन पर्वतोंका विस्तार मूलमें और शिखरपर समान है। उनमेंसे प्रथम पृथ्वीके अंदर पच्चीस योजन गहरा स्वर्णमय हिमवान नामका पर्वत है। वह सौ योजन ऊँचा है। दूसरा महाहिमवान पर्वत गहराईमें और ऊँचाईमें हिमवानसे दुगना है और वह अर्जुन जातिके स्वर्णका है। तीसरा निषध नामका पर्वत है। वह गहराई और ऊँचाईमें दूसरेसे दुगना है। उसका वर्ण स्वर्णके समान है। चौथा नीलवंत पर्वत प्रमाणमें निषधके समान है और वह वैडूर्यमणिका है। पाँचवाँ रुक्मी

नामका पर्वत रौप्यमय है और प्रमाणमें महाहिमवंतके समान है। छठा शिखरी पर्वत स्वर्णमय है और प्रमाणमें हिमवंतके समान है। इन सब पर्वतोंके पार्श्वभाग विचित्रप्रकारकी मणियोंसे सुशोभित हैं। क्षुद्र हिमवंत पर्वतपर एक हजार योजन लंबा और पाँच सौ योजन चौड़ा पद्म नामका एक बड़ा सरोवर है। महाहिमवंत पर्वतपर महापद्म नामका सरोवर है। वह लंबाई चौड़ाईमें पद्म सरोवरसे दुगना है। निषध पर्वतपर तिगंछी नामका सरोवर है वह महापद्मसे दुगना है। नीलवंत गिरिपर केसरी नामका सरोवर है। वह तिगंछीके समान लंबा, चौड़ा है। रुक्मी पर्वतपर महापुंडरीक सरोवर है। वह महापद्मके समान लंबा चौड़ा है। शिखरी पर्वतपर पुंडरीक सरोवर है। वह पद्म सरोवरके समान लंबा चौड़ा है। इन पद्मादिक सरोवरोंमें जलके अंदर दस योजन गहरे विकसित कमल हैं। इन छहों सरोवरोंमें क्रमशः श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामकी देवियाँ रहती हैं। इनकी आयु पल्योपमकी है। इन देवियोंके पास सामानिक देव तीन, पर्षदाओंके देव, आत्मरक्षक देव और सेना हैं। (५६६-५७८)

"भरतक्षेत्रमें गंगा और सिंधु नामकी दो बड़ी नदियाँ हैं; हैमवंत क्षेत्रमें रोहिता और रोहितांशा नामकी दो नदियाँ हैं; हरिवर्ष क्षेत्रमें हरिसलिला और हरिकांता नामकी दो नदियाँ हैं; महाविदेह क्षेत्रमें सीता और सीतोदा नामकी दो बड़ी नदियाँ हैं; रम्यक क्षेत्रमें नरकांता और नारीकांता नामकी दो नदियाँ हैं; हैरण्यवत क्षेत्रमें स्वर्णकूला और रौप्यकूला नामकी दो नदियाँ

हैं; और ऐरवत क्षेत्रमें रक्ता और रक्तावती नामकी दो नदियाँ हैं; उनमेंकी पहली संख्यावाली नदियाँ पूर्व समुद्रमें जाकर मिलती हैं और दूसरी संख्यावाली नदियाँ पश्चिम समुद्रमें जाकर मिलती हैं। उनमें गंगा और सिंधु नदियोंमेंसे प्रत्येकमें चौदह हजार नदी-नाले मिलते हैं। सीता और सीतोदाके सिवा दूसरी नदियोंके प्रत्येक युगलमें पहलेसे दुगने नदी-नाले हैं। (यानी पहलेसे तीसरे युगलमें दुगने, चौथेमें तीसरेसे दुगने इत्यादि) उत्तरकी नदियां भी दक्षिणकी नदियोंके समानही परिवारवाली हैं। सीता और सीतोदा नदियाँ पाँच लाख बत्तीस हजार नदियोंके परिवारवाली हैं। (५७६-५८५)

"भरत क्षेत्रकी चौड़ाई पाँच सौ छब्बीस योजन और योजनके उन्नीस भाग करनेपर उनमेंके छह भाग जितनी हैं (यानी ५२६$\frac{6}{19}$ योजन)। अनुक्रमसे दुगने दुगने विस्तारवाले पर्वत और क्षेत्र महाविदेह क्षेत्र तक हैं। उत्तर तरफके वर्षधर पर्वत और क्षेत्र दक्षिणके वर्षधर पर्वत और क्षेत्रोंके समानही प्रमाणवाले हैं। इस तरह सभी वर्षधर पर्वतों और खंडोंका परिमाण समझना चाहिए। निषधाद्रिसे उत्तरकी तरफ और मेरुसे दक्षिणकी तरफ विद्युत्प्रभ और सौमनस नामोंके दो पर्वत पूर्व और पश्चिममें है। उनकी आकृति हाथीके दाँत जैसी है। उनके अंतिम हिस्से मेरुपर्वतसे जरा दूर हैं; इसको स्पर्श नहीं करते। इन दोनोंके बीचमें देवकुरु नामका युगलियोंका क्षेत्र है। उसका विष्कंभ (विस्तार) ग्यारह हजार आठ सौ बयालीस योजन है। उस देवकुरु क्षेत्रमें सीतोदा नदीके अगल-बगलमें पाँच द्रह हैं। उन पाँचों द्रहोंके दोनों तरफ दस दस सोनेके पर्वत हैं। इन

सबको जोड़नेसे सोनेके सौ पर्वत होते हैं। इसी देवकुरुमें सीतोदा नदीके पूर्व और पश्चिम किनारेपर चित्रकूट और विचित्रकूट नामके दो पर्वत हैं। उनकी-हरेककी ऊँचाई एक हजार योजन है, उनकी जमीनकी चौड़ाई भी एक हजार योजन है और शिखरपरका विस्तार आधा यानी पाँच सौ योजन है। मेरुके उत्तरमें और नीलवंत गिरिके दक्षिणमें गंधमादन और माल्यवान नामके दो पर्वत हैं। उनका आकार हाथीदाँतके जैसा है। उन दो पर्वतोंके अंदर सीतानदीसे भिन्न पाँच द्रह हैं। उनके दोनों तरफ भी दस दस सोनेके पर्वत होनेसे कुल एकसौ सोनेके पर्वत हैं। इससे उत्तरकुरुक्षेत्र बहुतही सुंदर लगता है। सीता नदीके दोनों किनारोंपर यमक नामके सोनेके दो पर्वत हैं। उनका प्रमाण चित्रकूट और विचित्रकूटके समान ही है। देवकुरु और उत्तरकुरुके पूर्वमें पूर्वविदेह है और पश्चिममें अपरविदेह है। वे परस्पर क्षेत्रांतरकी तरह हैं। उन दोनों विभागोंमें परस्पर संचार रहित, (आवागमन रहित) और नदियों तथा पर्वतोंसे विभाजित, चक्रवर्तीके जीतने योग्य सोलह विजय प्रांत) हैं। उनमेंसे कच्छ, महाकच्छ, सुकच्छ, कच्छवान आवर्त, मंगलावर्त, पुष्कल और पुष्कलावर्त ये आठ विजय पूर्व महाविदेहमें उत्तरकी तरफ हैं। वत्स, सुवत्स, महावत्स, रम्यवान, रम्य, रम्यक, रमणीय और मंगलावती ये आठ विजय दक्षिणकी तरफ हैं। पद्म, सुपद्म, महापद्म, पद्मावती, शंख, कुमुद, नलिन और नलिनावती ये आठ विजय पश्चिम महाविदेहमें दक्षिणकी तरफ हैं और वप्र, सुवप्र, महावप्र, वप्रावती,

वल्गु, सुवल्गु, गंधिल और गंधिलावती ये आठ विजय उत्तर-की तरफ हैं। (५८६–६०४)

"भरत खंडके मध्यमें दक्षिणार्द्ध और उत्तरार्द्धको जुदा करनेवाला वैताढ्य पर्वत है। वह पर्वत पूर्व और पश्चिममें समुद्र तक फैला हुआ है। वह छह योजन और एक कोस पृथ्वी-में गहरा है। उसका विस्तार पचास योजन और ऊँचाई पच्चीस योजन है। पृथ्वीसे दस योजन ऊपरकी तरफ जानेपर, ऊपर दक्षिण और उत्तरमें दस दस योजन विस्तारवाली विद्याधरोंकी दो श्रेणियाँ हैं। उनमेंसे दक्षिण श्रेणीमें विद्याधरोंके राष्ट्रसहित पचास नगर हैं और उत्तर श्रेणीमें साठ नगर हैं। उन विद्या-धरोंकी श्रेणीके ऊपर दस योजन जानेपर उतनेही विस्तारवाली व्यंतरोंके निवासोंसे सुशोभित दोनों तरफ दो श्रेणियां हैं। उन व्यंतरोंकी श्रेणियोंसे ऊपर, पाँच योजन जानेपर, नौ कूट[1] हैं। इसी तरह ऐरवत क्षेत्रमें वैताढ्य पर्वत है। (६०५–६१०)

"जंबूद्वीपके चारों तरफ किलेके समान आठ योजन ऊँची वज्रमयी जगती[2] है। वह जगती मूलमें बारह योजन चौड़ी है, मध्य भागमें आठ योजन है और ऊपर चार योजन है। उसपर जालकटक है। वह दो कोस ऊँचा है। वहाँ विद्याधरों-का अद्वितीय मनोहर क्रीड़ा-स्थान है। उस जालकटकके ऊपर भी देवताओंकी भोगभूमि रूप 'पद्मवरा' नामकी एक सुंदर वेदिका है। उस जगतीकी पूर्वादि दिशाओंमें अनुक्रमसे विजय,

१—शिखर। २—जर्मान (प्रसंगसे इसका अर्थ दीवार जान पड़ता है।)

वैजयंत, जयंत और अपराजित नामके चार द्वार हैं।

(६११-६१५)

"क्षुद्र हिमवान और महाहिमवान पर्वतोंके मध्यमें यानी हिमवंत क्षेत्रमें शब्दापाती नामक वृत्तवैताढ्य पर्वत है; शिखरी और रुक्मी पर्वतोंके बीचमें विकटापाती नामका वृत्तवैताढ्य पर्वत है; महाहिमवान और निषध पर्वतोंके मध्यमें गंधापाती नामका वृत्तवैताढ्य पर्वत है और नीलवंत तथा रुक्मी पर्वतोंके बीचमें माल्यवान नामका वृत्तवैताढ्य पर्वत है। ये वृत्तवैताढ्य पर्वत पल्याकृति[1] वाले और एक हजार योजन ऊँचे हैं।

(६१६-६१८)

"जंबूद्वीपके चारों तरफ लवण समुद्र है। उसका विस्तार जंबूद्वीपसे दुगुना है। बीचमें एक हजार योजन गहरा है। दोनों तरफकी जगतीसे[2] क्रमशः उतरते हुए पचानवें योजन जाएँ तब तक गहराईमें और ऊँचाईमें उसका जल बढ़ता जाता है। मध्यमें दस हजार योजनमें सोलह हजार योजन ऊँची इस लवण समुद्रके पानीकी शिखा है। उसपर दिनमें दो बार ज्वार-भाटा होता है। ज्वारका पानी दो कोस तक चढ़ता है। इस लवण समुद्रके बीचमें पूर्वादि दिशाके क्रमसे वडवामुख, केयूप, यूप और ईश्वर नामक बड़े मटकेके आकारके चार पाताल-कलश हैं। इन प्रत्येकका बिचला भाग एकलाख योजन चौड़ा है, इनकी गहराई एक लाख योजनकी है। इनकी वज्ररत्नकी

१—गुजरातीमें इसका अर्थ पाला किया गया है। इसका अभिप्राय नाज भरनेका बरतन होता है। २—किनारेसे।

ठीकरी एक हजार योजन मोटी है। वे नीचे और ऊपरसे दस हजार योजन चौड़े हैं। उनमें तीन भागोंमेंसे एक भागमें वायु है और दो भागोंमें जल है। उनका आकार काँठे विनाके बड़े मटकोंसा है। उन कलशोंमें काल, महाकाल, वेलंब और प्रभंजन नामके देवता अनुक्रमसे अपने अपने क्रीड़ास्थानोंमें रहते हैं। [इन[1] चार पातालकलशोंके अंतरमें—एक कलशसे दूसरे कलशकी दूरीके बीचमें—सात हजार आठ सौ चौरासी छोटे कलश हैं।] वे एक हजार योजन भूमिमें गहरे तथा बीचमें चौड़े हैं। उनकी ठीकरी दस योजन मोटा है। उनका ऊपरका व नीचेका भाग एक एक सौ योजन चौड़ा है। उनके मध्यभागका वायुमिश्र-जल वायुसे उछलता है। इस समुद्रकी अंदरूनी लहरोंको धारण करनेवाले बयालीस हजार नागकुमार देवता, रक्षककी तरह, हमेशा वहाँ रहते हैं। बाहरी लहरोंको धारण करनेवाले बहत्तर हजार देवता हैं और मध्यमें शिखापरकी दो कोस तक उछलती हुई लहरोंको रोकनेवाले साठ हजार देव हैं। उस लवण समुद्रमें गोस्तूप, उदकाभास, शंख और उदकसीम, इन नामोंके अनुक्रमसे सुवर्ण, अंकरत्न, रूपा और स्फटिकके चार वेलंधर पर्वत हैं। उनमें गोस्तूप, शिवक, शंख और मनोहृद नामके चार

१—कोष्ठकमें दिए हुए कलशोंकी संख्या गुजराती अनुवादमें है; मगर श्री जैनधर्म प्रसारक सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित, सं० १९६१ की संस्कृत आवृत्तिमें इस आशयका श्लोक नहीं है। जान पड़ता है कि छूट गया है। गुजराती अनुवाद भी जैनधर्म प्रसारक सभा भावनगरनेही प्रकाशित किया है।

देवता रहते हैं। समुद्रमें बयालीस हजार योजन जानेपर चारों दिशाओंमें वे चार हैं। इसी तरह चारों विदिशाओंमें कर्कोटक, कार्दमक, कैलाश और अरुणप्रभ नामके चार सुंदर अनुवेलंधर पर्वत हैं, वे सभी रत्नमय हैं। उन पर्वतोंपर कर्कोटक, विद्युज्जिह, कैलाश और अरुणप्रभ नामके देव, उनके स्वामी, निरंतर वहाँ बसते हैं। वे सभी पर्वत हरेक एक हजार सात सौ इक्कीस योजन ऊँचे हैं। वे मूलमें एक हजार योजन चौड़े हैं, और शिखरपर चार सौ चौबास योजन चौड़े हैं। उन सभी पर्वतोंपर उनके स्वामी देवताओंके सुंदर प्रासाद-महल हैं। फिर बारह हजार योजन समुद्रकी तरफ जानेपर पूर्वदिशासे संबंधित दो विदिशाओंमें दो चंद्रद्वीप हैं। वे विस्तारमें और चौड़ाईमें पूर्वके अनुसार हैं; और उतनेही प्रमाणवाले दो सूर्यद्वीप पश्चिम दिशासे संबंधित दो विदिशाओंमें हैं; और सुस्थित देवताओंका आश्रयभूत गौतमद्वीप उन दोनोंके बीचमें है। उपरांत लवण समुद्र संबंधी शिखाकी इस तरफ व बाहरकी तरफ चलनेवाले चंद्रमाओं और सूर्योंके आश्रयरूप द्वीप हैं और उनपर उनके प्रासाद बने हुए हैं। वह लवण समुद्र लवण रसवाला है।

(६१६-३३६)

"लवण समुद्रके चारों तरफ उससे दुगने विस्तारवाला धातकी खंड है। जंबूद्वीपमें जितने मेरुपर्वत, क्षेत्र और वर्षधर पर्वत कहे गए हैं उनसे दुगने, उन्हीं नामोंके धातकी खंडमें हैं। अधिक-उत्तर और दक्षिणमें धातकी खंडकी चौड़ाईके अनुसार दो इष्वाकार (धनुषके आकारके) पर्वत हैं। उनके द्वारा विभाजित पूर्वार्ध और पश्चिमार्धमें हरेकमें जंबूद्वीपके समान संख्या-

वाले क्षेत्र और पर्वत हैं। उस धातकी खंडमें चक्रके आरेके जैसे आकारवाले और निषधपर्वतके जितने ऊँचे तथा कालोदधि और लवण समुद्रको छूते हुए वर्षधर और इष्वाकार पर्वत हैं और आरेके अंतर जितने क्षेत्र हैं। (६४०-६४३)

"धातकी खंडके चारों तरफ कालोदधि समुद्र है। उसका विस्तार आठ लाख योजन है। उसके चारों तरफ पुष्करवर द्वीपार्ध उतनेही प्रमाणवाला है। धातकी खंडमें इष्वाकार पर्वतों सहित मेरु वगैराकी संख्याओंसे संबंध रखनेवाला जो नियम बताया गया है, वही नियम पुष्करार्धमें भी है। और पुष्करार्धमें क्षेत्रादिके प्रमाणका नियम धातकी खंडके क्षेत्रादि विभागसे दुगना है। धातकी खंड और पुष्करार्धमें मिलकर चार छोटे मेरुपर्वत हैं। वे जंबूद्वीपके मेरुसे पंद्रह हजार योजन कम ऊँचे और छह सौ योजन कम विस्तारवाले[1] हैं। उसका प्रथम कांड[2] महामेरुके जितनाही है। दूसरा कांड सात हजार योजन कम और तीसरा कांड आठ हजार योजन कम है। उनमें भद्रशाल वन और नंदन वन मुख्य मेरुके समानही हैं। नंदनवनसे साढ़े पचपन हजार योजन जानेपर सौमनस नामका वन आता है। वह पाँच सौ योजन बड़ा है। उससे आगे अट्ठाईस हजार योजन जानेपर पांडक वन है। वह मध्यकी चूलिकाके चारों तरफ चार सौ चौरानवे योजन विस्तारवाला है। उसका ऊपर और नीचेका विस्तार और अवगाहन महामेरुके समानही है, इसी तरह

१—ये चार मेरु जमीनसे ८४००० योजन ऊँचे और जमीनपर ९४०० योजन विस्तार में हैं। २—भाग।

मुख्य मेरुके समानही प्रमाणवाली चूलिका मध्य मेरुमें है।
(६४४-६५२)

"इस तरह मनुष्य क्षेत्रमें ढाई द्वीप, दो समुद्र, पैंतीस क्षेत्र, पाँच मेरु, तीस वर्षधर पर्वत, पाँच देवकुरु, पाँच उत्तरकुरु और एक सौ साठ विजय हैं। पुष्करार्ध द्वीपके चारों तरफ मानुषोत्तर नामका पर्वत है। वह मनुष्यलोकके बाहर शहरके कोटकी तरह गोलाकार है। वह सोनेका है और शेष पुष्करार्धमें सत्रह सौ इक्कीस योजन ऊँचा है, चार सौ तीस योजन पृथ्वीमें है, उसका एक हजार बाईस योजन नीचेका विस्तार है, सात सौ तेईस योजन मध्य भागका विस्तार है और चार सौ चौबीस योजन ऊपरका विस्तार है। उस मानुषोत्तर पर्वतके बाहर मनुष्योंका जन्म-मरण नहीं होता। उसके बाहर गए हुए चारण मुनि आदि भी मरण नहीं पाते; इसीलिए उसका नाम मानुषोत्तर है। इसके बाहरकी भूमिपर बादराग्नि, मेघ, विद्युत, नदी और काल वगैरह नहीं हैं। उस मानुषोत्तर पर्वतके अंदरकी तरफ ५६ अंतर्द्वीप[1] और ३५ क्षेत्र[2] हैं। उन्हीमें मनुष्य पैदा होते हैं। कई संहार-विद्याके बलसे या लब्धिके योगसे मेरुपर्वत वगैराके शिखरोंपर, ढाई द्वीपमें और दोनों समुद्रोंमें मनुष्य पाए जाते हैं। उनके भरत संबंधी, जंबूद्वीप संबंधी, और लवण समुद्र संबंधी-ऐसे सभी क्षेत्र, द्वीप और समुद्र संबंधी-संज्ञाओंके भेदसे जुदा जुदा विभाग कहलाते हैं। यानी भरत, जंबूद्वीप

१—अंतरद्वीपोंका वर्णन श्लोक ६८४ से आगे ७०० श्लोक तक देखो। २—भरत ५, ऐरवत ५, हिमवंत ५, हिरण्यवंत ५, हरिवर्ष ५, रम्यक ५, महाविदेह ५, सब ३५ हुए।

और लवणसमुद्रसे संबंध रखनेवाले सभी नाम, क्षेत्र, द्वीप और समुद्रके विभागोंसे हैं। (६५३-६६३)

"मनुष्योंके दो भेद हैं—आर्य और म्लेच्छ। क्षेत्र, जाति, कुल, कर्म, शिल्प और भाषाके भेदसे आर्य छः, तरहके हैं। क्षेत्र-आर्य पंद्रह कर्मभूमियोंमें उत्पन्न होते हैं, उनमेंसे इस भरतक्षेत्रके साढ़े पच्चीस देशोंमें जन्मे हुए आर्य कहलाते हैं। ये आर्यदेश अपनी नगरियोंसे इस तरह पहचाने जाते हैं। (१) राजगृही नगरीसे मगधदेश। (२) चंपानगरीसे अंगदेश। (३) ताम्रलिप्तिसे वंगदेश। (४) वाराणसीसे काशीदेश। (५) कांचनपुरीसे कलिंगदेश। (६) साकेतपुरीसे कोशलदेश। (७) हस्तिनापुरसे कुरुदेश। (८) शौर्यपुरीसे कुशार्तदेश। (९) कांपिल्यपुरीसे पंचालदेश। (१०) अहिच्छत्रापुरीसे जाँगलदेश। (११) मिथिलापुरीसे विदेहदेश। (१२) द्वारावतीपुरीसे सौराष्ट्रदेश। (१३) कौशांबीपुरीसे वत्सदेश। (१४) भद्रिलपुरीसे मलयदेश। (१५) नांदीपुरीसे संदर्भदेश। (१६) पुनरुच्छापुरीसे वरुणदेश। (१७) वैराटनगरीसे मत्स्यदेश। (१८) शुक्तिमती नगरीसे चेदीदेश। (१९) मृत्तिकावती नगरीसे दशार्णदेश। (२०) वीतभयपुरीसे सिंधुदेश। (२१) मथुरापुरीसे सौवीरदेश। (२२) अपापापुरीसे सूरसेनदेश। (२३) भंगीपुरीसे मासपुरीवतदेश। (२४) श्रावस्तिपुरीसे कुणालदेश। (२५) कोटिवर्षपुरीसे लाटदेश। और (२६) श्वेतांबीपुरीसे केतकार्धदेश। इस तरह साढ़े पच्चीस देश इन नगरियोंके नामोंसे पहचाने जाते हैं। तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, वासुदेवों और बलभद्रोंके जन्म इन्हीं देशोंमें होते हैं। इक्ष्वाकुवंश,

ज्ञातवंश, विदेहवंश, कुरुवंश, उग्रवंश, भोजवंश और राजन्यवंश वगैरा कुलोंमें जन्मे हुए मनुष्य जातिआर्य कहलाते हैं। कुलकर, चक्रवर्ती, वासुदेव और बलभद्र तथा उनकी तीसरी, पाँचवीं या सातवीं पीढ़ीमें आए हुए शुद्ध वंशमें जन्मे हुए मनुष्य कुलआर्य कहलाते हैं। पूजन करना और कराना, शास्त्र पढ़ना और पढ़ाना-इनसे या दूसरे शुभ प्रयोगोंसे-कामोंसे जो आजीविका करते हैं वे कर्मआर्य कहलाते हैं। थोड़े पाप व्यापारवाले, कपड़ा बुननेवाले, दरजी, कुंभार, नाई और पुजारी वगैरा शिल्पआर्य कहलाते हैं। जो उच्च भाषाके नियमवाले वर्णोंसे पूर्वोक्त पांचों प्रकारके आर्यों के व्यवहारको बताते हैं वे भाषाआर्य कहलाते हैं। (६६४-६७८)

"शाक, यवन, शबर, बर्बर, काया, मुंड, उड्र, गोड्र, पत्कणक, अरपाक, हूण, रोमक, पारसी, खस, खासिक, डोंबलिक, लकुस, भिल्ल, अंध्र, बुक्कस, पुलिंद, कौंचक, भ्रमरुत, कुंच, चीन, वंचुक, मालव, द्रविड, कुलक्ष, किरात, कैकय, हयमुख, गजमुख, तुरगमुख, अजमुख, हयकर्ण, गजकर्ण और दूसरे भी अनार्योंके भेद हैं। जो 'धर्म' इन अक्षरों तकको नहीं जानते, इसी तरह जो धर्म और अधर्मको अलग नहीं समझते वे सभी म्लेच्छ कहलाते हैं। (६७९-६८३)

"दूसरे अंतरद्वीपोंमें भी मनुष्य हैं। वे भी धर्म-अधर्मको नहीं समझते। कारण वे युगलिये हैं। ये अंतरद्वीप छप्पन हैं। उनमेंसे अट्ठाइस द्वीप, क्षुद्रहिमालय पर्वतके, पूर्व और पश्चिम तरफके अंतमें ईशानकोण वगैरा चार विदिशाओंमें लवण समुद्रमें निकली हुई डाढ़ोंपर स्थित हैं। उनमें ईशानकोणसे

जंबूद्वीपकी जगतीसे तीन सौ योजन लवण समुद्रमें जानेपर वहाँ उतनाही लंबा और चौड़ा एकोरु नामका पहला अंतरद्वीप है। इस द्वीपमें उस द्वीपके नामसे पहचाने जानेवाले सभी अंगोपांगोंसे सुंदर मनुष्य रहते हैं। सिर्फ एकोरु द्वीपमेंही नहीं, मगर दूसरे सभी अंतरद्वीपोंमें भी उन द्वीपोंके नामोंसे ही पहचाने जानेवाले मनुष्य रहते हैं; यह समझना चाहिए। अग्निकोण आदिकी शेष तीन विदिशाओंमें उतनीही ऊँचाईपर, उतनेही लंबे और चौड़े आभाषिक, लांगुलिक और वैपाणिक–इन नामोंके क्रमशः द्वीप हैं। उसके बाद जगतीसे चार सौ योजन लवण समुद्रमें जानेपर वहाँ उतनीही लंबाई और उतनेही विस्तारवाली ईशान इत्यादि विदिशाओंमें हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और शष्कुलीकर्ण–इन नामोंके क्रमसे अतरद्वीप हैं। उसके बाद जगतीसे पाँच सौ योजन दूर उतनी ही लंबाई और चौड़ाईवाले चार अंतरद्वीप ईशान वगैरा विदिशाओंमें, आदर्शमुख, मेषमुख, हयमुख और गजमुख नामके क्रमसे हैं। फिर छह सौ योजन दूर इतनीही लंबाई–चौड़ाई वाले अश्वमुख, हस्तिमुख, सिंहमुख और व्याघ्रमुख नामके अंतरद्वीप हैं। फिर सात सौ योजन दूर इतनी ही लंबाई–चौड़ाई वाले अश्वकर्ण, सिंहकर्ण, हस्तिकर्ण और कर्णप्रावरण नामके अंतरद्वीप हैं। उसके बाद आठ सौ योजन दूर इतनीही लंबाई–चौड़ाई वाले उल्कामुख, विद्युतजिह्व, मेषमुख और विद्युतदंत नामके चार द्वीप ईशान वगैरा विदिशाओंमें अनुक्रमसे हैं। उसके बाद जगतीसे लवणोदधिमें नौ सौ योजन जानेपर इतनी ही लंबाई–चौड़ाईवाले

गूढदंत, घनदंत, श्रेष्ठदंत और शुद्धदंत नामके चार अंतरद्वीप ईशान वगैरा विदिशाओंके क्रमसे हैं। इसी तरह शिखरी पर्वत पर भी अट्ठाईस द्वीप हैं। इस तरह सब मिलाकर छप्पन अंतरद्वीप हैं। (६८४-७००)

"मानुषोत्तर पर्वतके बाद दूसरा पुष्करार्ध है। पुष्करार्धके चारों तरफ सारे द्वीपोंसे दुगना पुष्करोदक समुद्र है। इसके बाद वारुणीवर नामक द्वीप और समुद्र हैं, इनके बाद क्षीरवर नामक द्वीप और समुद्र हैं; इनके बाद घृतवर नामक द्वीप और समुद्र हैं। इनके बाद इक्षुवर नामक द्वीप और समुद्र हैं। इनके बाद आठवाँ, स्वर्गके समान, नंदीश्वर नामक द्वीप है। यह गोलाई और विस्तारमें एक सौ तिरेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन है। वह द्वीप अनेक तरहके उद्यानोंवाला और देवताओंके लिए उपभोगकी भूमिके समान है। प्रभुकी पूजामें उत्साह रखनेवाले देवताओंके आवागमनसे (वह और भी अधिक) सुंदर है। इसके मध्य प्रदेशमें पूर्वादि दिशाओंमें अनुक्रमसे अंजनके समान वर्णवाले चार अंजन पर्वत हैं। वे पर्वत नीचेसे दस हजार योजनसे कुछ अधिक विस्तारवाले हैं और ऊपरसे एक हजार योजन विस्तारवाले हैं। इसी तरह वे क्षुद्र मेरुके समान (यानी पचासी हजार योजन) ऊँचे हैं। इसके पूर्वमें देवरमण नामका, दक्षिणमें नित्योद्योत नामका, पश्चिममें स्वयंप्रभ नामका और उत्तरमें रमणीय नामका-इस तरह चार अंजनाचल हैं। उन पर्वतोंपर- प्रत्येकपर सौ योजन लंबे, पचास योजन चौड़े और बहत्तर योजन ऊँचे अर्हंत भगवानके चैत्य हैं। हरेक चैत्यमें चार चार दरवाजे हैं। वे प्रत्येक सोलह योजन

ऊँचे हैं; प्रवेशमें आठ योजन और विस्तारमें भी आठ योजन हैं। वे द्वार वैमानिक, असुरकुमार, नागकुमार और सुवर्णकुमारके आश्रयरूप हैं और उनके नामोंहीसे वे प्रसिद्ध हैं। उन चार द्वारोंके मध्यमें सोलह योजन लंबी, उतनीही चौड़ी और आठ योजन ऊँची एक मणिपीठिका है। उस पीठिका पर सभी रत्नमय देव छंदक हैं, वे पीठिकासे विस्तारमें और ऊँचाईमें अधिक हैं। हरेक देवच्छंदकके ऊपर ऋषभ, वर्धमान, चंद्रानन और वारिषेण इन चार नामोंवाली पर्यंकासनपर बैठी हुई, अपने परिवार सहित रत्नमय, शाश्वत अर्हंतोंकी एक सौ आठ सुंदर प्रतिमाएँ हैं। हरेक प्रतिमाके साथ परिवारके समान दो दो नाग, यक्ष, भूत और कुंडधारी देवोंकी प्रतिमाएँ हैं। दोनों तरफ दो चमरधारिणी प्रतिमाएँ हैं और हरेक प्रतिमाके पिछले भागपर एक एक छत्रधारिणी प्रतिमा है। हरेक प्रतिमाके सामने धूपदानी, माला, घंटा, अष्टमांगलिक, ध्वज, छत्र, तोरण, चंगेरी, अनेक पुष्पपात्र, आसन, सोलह पूर्ण कलश और दूसरे अलंकार हैं। वहाँकी नीचेकी जमीनोंमें स्वर्णकी सुंदर रजवाली रेत है। आयतन (मंदिर) के समानही उनके सामने सुंदर मुख्यमंडप, प्रेक्षार्थमंडप (नाटकघर) अक्षवाटिकाएँ और मणिपीठिकाएँ हैं। वहाँ रमणीक स्तूप प्रतिमाएँ हैं, सुंदर चैत्यवृक्ष हैं, इंद्रध्वज हैं और अनुक्रमसे दिव्य वापिकाएँ हैं। प्रत्येक अंजनाद्रिकी चारों दिशाओंमें लाख लाख योजनके प्रमाणवाली वापिका है (यानी कुल सोलह वापिकाएँ हैं)। उनके नाम हैं—नंदीषेणा, अमोघा, गोस्तूपा, सुदर्शना, नंदोत्तरा, नंदा, सुनंदा, नंदिवर्धना, भद्रा, विशाला, कुमुदा, पुंडरीकिणिका, विजया,

वैजयंती, जयंती और अपराजिता। उनके-प्रत्येक वापिकासे पाँच सौ योजन दूर अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र इन नामोंवाले बड़े उद्यान हैं। उनकी चौड़ाई पाँच सौ योजन और लंबाई एक लाख योजन है। हरेक वापिकाके मध्यमें स्फटिकमणिके, पल्याकृतिवाले और सुंदर वेदिकाओं व उद्यानोंसे सुशोभित दधिमुख पर्वत हैं। उनमेंका हरेक पर्वत चौंसठ हजार योजन ऊँचा, एक हजार योजन गहरा और दस हजार योजन ऊपर और दस हजार योजन नीचे विस्तारवाला है। वापिकाओंके बीचकी जगहोंमें दो दो रतिकर पर्वत हैं। इस तरह सब बत्तीस रतिकर पर्वत हैं। दधिमुख पर्वतों व रतिकर पर्वतोंपर अंजनगिरिकी तरह शाश्वत अर्हतोंके चैत्य हैं। उन द्वीपोंकी विदिशाओंमें दूसरे चार रतिकर पर्वत हैं। उनमेंका हरेक दस हजार योजन लंबा-चौड़ा, एक हजार योजन ऊँचा, सुशोभित सर्व रत्नमय, दिव्य और झल्लरीके आकारवाला है। उनके दक्षिणमें सौधर्मेंद्रके दो रतिकर पर्वत हैं और उत्तरमें ईशानेंद्रके दो रतिकर पर्वत हैं। उनमेंसे हरेककी आठों दिशा विदिशाओंमें हरेक इंद्रकी आठ आठ महादेवियोंकी आठ आठ राजधानियाँ हैं। इस तरह कुल बत्तीस राजधानियाँ हैं। वे रतिकरसे एक लाख योजन दूर, एक लाख योजन लंबी चौड़ी और जिनालयोंसे विभूषित हैं। उनके नाम हैं,-सुजाता, सौमनसा, अर्चिमाली, प्रभाकरा, पद्मा, शिवा, शुची, व्यंजना, भूता, भूतवतंसिका, गोस्तूपा, सुदर्शना, अम्ला, अप्सरा, रोहिणी, नवमी, रत्ना, रत्नोचया सर्वरत्ना, रत्नसंचया, वसु, वसुमित्रिका, वसुभागा, वसुंधरा, नदोत्तरा, नंदा, उत्तरकुरु, देवकुरु, कृष्णा, कृष्णराजी, रामा

और रामरक्षिता। ये नाम पूर्व दिशाके क्रमसे समझने चाहिए। इस नंदीश्वर द्वीपमेंके जिनचैत्योंमें सभी तरहकी ऋद्धिवाले देवता परिवार सहित श्रीमत् अर्हतोंकी कल्याणक तिथियोंपर अष्टाह्निका उत्सव करते हैं। (७०१-७३८)

"नंदीश्वर द्वीपके चारों तरफ नंदीश्वर समुद्र है; उसके बाद अरुण द्वीप है और उसके चारों तरफ अरुणोदधि समुद्र है; उसके बाद अरुणवर द्वीप और अरुणवर समुद्र हैं; उनके बाद अरुणाभास द्वीप और अरुणाभास समुद्र हैं; उनके बाद कुंडल द्वीप और कुंडलोदधि नामक समुद्र हैं, और उनके बाद रुचक नामक द्वीप और रुचक नामका समुद्र है। इस तरह प्रशस्त नामवाले और पिछलोंसे अगले दुगने दुगने प्रमाणवाले द्वीप और समुद्र अनुक्रमसे हैं। उन सबके अंतमें स्वयंभूरमण नामका अंतिम समुद्र है। (७३९-७४२)

"पूर्वोक्त ढाई द्वीपोंमें देवकुरु और उत्तरकुरुके समान भागोंके बिना पाँच महाविदेह, पाँच भरत और पाँच ऐरावत ये पंद्रह कर्मभूमियाँ हैं। कालोदधि, पुष्करोदधि और स्वयंभूरमण ये तीन समुद्र मीठे पानीके हैं; लवणसमुद्र खारे पानीका है, तथा वरुणोदधिका पानी विचित्र प्रकारकी मनोहर मदिराके जैसा है। क्षीरोदधि शक्कर मिश्रित घीका चौथा भाग जिसमें होता है ऐसे गायके दूधके समान पानीवाला है। घृतवर समुद्र गरम किए हुए गायके घीके जैसा है और दूसरे समुद्र तज, इलायची, केशर और कालीमिर्चके चूर्ण मिश्रित चौथे भाग-वाले गन्नेके रसके समान है। लवणोदधि, कालोदधि और स्वयंभूरमण ये तीन समुद्र मछलियों और कछुओंसे संकुल हैं (यानी

मरे हुए हैं।) दूसरे नहीं हैं।" (७२३-७२७)

'जंबूद्वीपमें जघन्यसे (यानी कमसे कम) तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव और बलदेव चार चार होते हैं और उत्कृष्टसे (यानी अधिकसे अधिक) चौंतीस[1] जिन और तीस पार्थिव (यानी चक्रवर्ती या वासुदेव) होते हैं। धातकी खंड और पुष्करार्द्धमें इनसे दुगने होते हैं। (७२८-७२९)

"इस तिर्यग्लोक पर नौ सौ योजन कम सात रज्जु प्रमाण और महान ऋद्धिवाला ऊर्ध्वलोक है। उसमें सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेंद्र, ब्रह्म, लांतक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत आरण और अच्युत इन नामोंके बारह कल्प (यानी देवलोक) और सुदर्शन, सुप्रबुद्ध, मनोरम, सर्वभद्र, सुविशाल, सुमन, सौमनस, प्रीतिकर और आदित्य नामके नौ ग्रैवेयक हैं। उनके बाद पाँच अनुत्तर विमान हैं। उनके नाम हैं—विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध। उनमेंसे पहलेके चार पूर्व दिशाके क्रमसे चारों दिशाओंमें हैं और सर्वार्थसिद्ध विमान सबके बीचमें है। उसके बाद बारह योजनकी ऊँचाई पर सिद्धशिला है। उसकी लंबाई-चौड़ाई पैंतालीस लाख योजन है। उसपर तीन कोसके बाद चौथे कोसके छठे भागके लोकाग्र तक सिद्धोंके जीव हैं। यह संभूतला पृथ्वीसे सौधर्म और ईशान-कल्प तक डेढ़ राजलोक है, सनत्कुमार और माहेंद्र लोक तक ढाई राजलोक है, सहस्रार देवलोक तक पाँचवाँ राजलोक है,

१—महाविदेह क्षेत्रके बत्तीस विजयोंमें (यानी प्रांतोंमें) बत्तीस-हरेकमें एक एक और भरत तथा ऐरवतमें एक एक मिलाकर उत्कृष्टसे चौंतीस तीर्थंकर होते हैं।

अच्युत देवलोक तक छठा राजलोक है, और लोकांतक तक सातवाँ राजलोक है। सौधर्म कल्प और ईशान कल्प चंद्रमंडलके समान वर्तुलाकार हैं। सौधर्मकल्प दक्षिणार्द्धमें और ईशान कल्प उत्तरार्द्धमें है। सनतकुमार और माहेंद्र देवलोक भी उनके समान आकृतियोंवाले हैं। सनतकुमार देवलोक दक्षिणार्द्धमें है और माहेंद्र देवलोक उत्तरार्द्धमें है। लोक पुरुषकी कोनीवाले भागमें और ऊर्ध्वलोकके मध्यभागमें ब्रह्म देवलोक है। इसका स्वामी ब्रह्मेंद्र है। इस देवलोकके अंतिम भागमें सारस्वत, आदित्य, अग्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, मरुत और रिष्ट इन नौ जातियोंके लौकांतिक देव हैं। उसके ऊपर लांतक कल्प है। वहाँके इंद्रका नाम तेज है। उसपर महाशुक्र देवलोक है। उसके इंद्रका नाम भी तेज है। उसके ऊपर सहस्रार देवलोक है। वहाँ भी तेज नाम ही का इंद्र है। उसके ऊपर सौधर्म और ईशान देवलोकके समान आकृतिवाले आनत और प्राणत देवलोक हैं। उनमें प्राणत कल्पमें रहनेवाला प्राणत नामका इंद्र है। वह दोनों देवलोकोंका स्वामी है। उसके ऊपर वैसी ही आकृतिवाले आरण व अच्युत नामके दो देवलोक हैं। अच्युत देवलोकमें रहनेवाला अच्युत नामका इंद्र उन दोनों देवलोकोंका स्वामी है। ग्रैवेयक और अनुत्तरोंमें अहमिंद्र नामके देव हैं। पहले दो देवलोक घनोदधिके आधारपर रहे हुए हैं। उनके बादके तीन देवलोक वायुके आधारपर टिके हुए हैं। उनके बादके तीन देवलोक घनवात और तनवातके आधारपर हैं और उनके ऊपरके सभी देवलोक आकाशके आधारपर रहे हुए हैं। उनमें इंद्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पार्षद, अंगरक्षक, लोकपाल,

अनीक, प्रकीर्ण, आभियोगिक और किल्विषिक नामक दस प्रकारके देवता रहते हैं। सामानिक वगैरा देवताओंके जो अधिपति हैं वे सभी इंद्र कहलाते हैं। इंद्रके समान ऋद्धिवाले होते हुए भी जो इंद्रपनसे रहित हैं वे सामानिक देवता कहलाते हैं। जो इंद्रके मंत्री और पुरोहितके समान हैं वे त्रायस्त्रिंश देवता कहलाते हैं। जो इंद्रके मित्रोंके समान हैं वे पार्षद्य देवता कहलाते हैं। इंद्रकी रक्षा करनेवाले आत्मरक्षक देव कहलाते हैं। देवलोककी रक्षा करनेके लिए रक्षक बनकर फिरनेवाले लोकपाल कहलाते हैं। सैनिकका काम करनेवाले लोकपाल देव कहलाते हैं। प्रजावर्गके समान जो देव हैं वे प्रकीर्ण देवता कहलाते हैं। जो नौकरोंका काम करनेवाले हैं वे आभियोगिक देव कहलाते हैं। जो चांडाल जातिके समान हैं वे किल्विष देव कहलाते हैं। ज्योतिष्क और व्यंतर देवोंमें त्रायस्त्रिंश और लोकपाल देव नहीं होते। (७४३-७५१½)

"सौधर्मकल्पमें बत्तीस लाख विमान हैं, ईशान देवलोकमें अट्ठाईस लाख विमान हैं, सनतकुमारमें बारह लाख विमान हैं, माहेंद्रमें आठ लाख विमान हैं, ब्रह्मदेवलोकमें चार लाख हैं, लांतक देवलोकमें पचास हजार हैं, शुक्र देवलोकमें चालीस हजार हैं, सहस्रार देवलोकमें छः हजार हैं, नवें और दसवें लोकके मिलाकर चार सौ और आरण तथा अच्युत देवलोकके मिलाकर तीन सौ विमान हैं। आरंभके तीन ग्रैवेयकोंमें एक सौ ग्यारह विमान हैं, मध्यके तीन ग्रैवेयकोंमें एक सौ सात विमान हैं और अंतके तीन ग्रैवेयकोंमें सौ विमान हैं। अनुत्तर विमान पाँच ही हैं। इस तरह सब मिलाकर चौरासी लाख

सत्तानवे हजार तेईस विमान हैं।"

"अनुत्तर विमानोंमेंके चार विजयादिक विमानोंमें द्विचरिम[1] देवता हैं और पाँचवें सर्वार्थसिद्ध विमानमें एक चरिम[2] देवता हैं। सौधर्म कल्पसे सर्वार्थसिद्ध विमान तक देवताओंकी स्थिति, कांति, प्रभाव, लेश्या-विशुद्धि, सुख, इंद्रियोंके विषय और अवधिज्ञानमें पूर्व पूर्वकी अपेक्षा उत्तर उत्तरके अधिक अधिक हैं; और परिग्रह (परिवारादि), अभिमान, शरीर और गमन क्रियामें अनुक्रमसे कम कम हैं। सबसे जघन्य स्थितिवाले देवताओंको सात स्तोकके[3] अंतरसे साँस आती है और चोथभक्त (यानी एक रात दिन) के अंतरसे वे भोजन करते हैं। पल्योपमकी[4] स्थितिवाले देवताओंको एक दिनके अंतरसे साँस आती है और पृथक्त दिनके (यानी दो से नौ दिनके) अंतरसे वे भोजन करते हैं। इनके बाद जिन देवताओंकी जितने सागरोपमकी स्थिति है उन देवताओंको उतनेही पक्षके बाद साँस आती है और उतनेही हजार बरसके बाद वे भोजन करते हैं। अर्थात तेतीस सागरोपमकी आयुवाले सर्वार्थसिद्धिके देवताओंको प्रति तेतीस पक्षके अंतरसे श्वासोश्वास आता है और प्रति तेतीस हजार वर्षके बाद भोजन करते हैं। प्राय: देवता सद्वेदनावालेही होते हैं; कभी असद्वेदना होती है तो उसकी स्थिति अंतर्मुहूर्तहीकी होती है। मुहूर्तके बाद असद्वेदना नहीं रहती है। देवियोंकी उत्पत्ति ईशान देवलोक

१—दो जन्मके बाद मोक्ष जानेवाले। २—एकही जन्मके बाद मोक्ष जानेवाले। ३—सात श्वासोश्वास काल। ४—असंख्यात (एक संख्या विशेष) वर्षोंकी आयुवाले।

तकही होती है। अच्युत देवलोक तकके देवता गमनागमन करते हैं। (७७५-७८८३)

"ज्योतिष्क देवों तक तापस होते हैं। ब्रह्मदेवलोक तक चरक[1] और परिव्राजकों[2] की उत्पत्ति है। सहस्रार देवलोक तक तिर्यंचोंकी उत्पत्ति है। अच्युत देवलोक तक श्रावकोंकी उत्पत्ति है। मिथ्यादृष्टि होते हुए भी जैनलिंगी बनकर यथार्थ-रूपसे समाचारी[3] पालनेवालोंकी उत्पत्ति अंतिम ग्रैवेयक तक है। पूर्ण चौदह पूर्वधारी मुनियोंकी उत्पत्ति ब्रह्मलोकके सर्वार्थसिद्धि विमान तक है। सद् व्रतवाले साधुओंकी और श्रावकोंकी उत्पत्ति जघन्यतासे(यानी कमसे कम) सौधर्म देवलोकमें है। भुवन-पति, व्यंतर, ज्योतिषी और ईशान देवलोक तकके देवताओंके लिए अपने भवनमें बसनेवाली देवियोंके साथ विषय संबंधी अंगसेवा है। वे संक्लिष्ट(दुखदायी) कर्मवाले और तीव्र वैराग्य-वाले होनेसे मनुष्योंकी तरह कामभोगमें लीन रहते हैं और देवांगनाओंके सभी अंगोंसे संबंध रखनेवाली प्रीति प्राप्त करते हैं। उनके बाद दो देवलोकोंके देव स्पर्श मात्रसे, दो देवलोकों-के देव रूप देखनेसे, दो देवलोकोंके देव शब्द सुननेसे और आनत इत्यादि चार देवलोकोंके देव मनमें केवल विचार करने-हीसे विषय धारण करनेवाले होते हैं। इस तरह विषयरसका विचारसेही पान करनेवाले देवताओंसे अनंत सुख पानेवाले देवता ग्रैवेयकादिमें हैं कि जिनके मन विषयके विचारोंसे सर्वथा रहित हैं। (७८९-७९६)

१—अध्ययनके लिए व्रत करनेवाले। २—सन्यासी। ३—जैन-धर्मके अनुसार बताए गए सदाचरण।

"इस तरह अधोलोक, तिर्यगलोक और ऊर्ध्वलोकसे विभाजित समग्र लोकके मध्य भागमें चौदह राजलोक प्रमाण ऊर्ध्व-अधो लंबी त्रस नाड़ी है; और लंबाई चौड़ाईमें एक राजलोक प्रमाण है। इस त्रस नाड़ीमें स्थावर और त्रस दोनों तरहके जीव हैं और इससे बाहर केवल स्थावरही हैं। कुल विस्तार इस तरह है—नीचे सातलोक प्रमाण, मध्यमें तिर्यगलोकमें एक राजलोक प्रमाण, ब्रह्मदेवलोकमें पांच राजलोक प्रमाण और अंतमें सिद्ध-शिला तक एक राजलोक प्रमाण है। अच्छी तरह प्रतिष्ठित हुई आकृतिवाले इस लोकको न किसीने बनाया है और न किसी-ने धारणही किया है। वह स्वयंसिद्ध है और आश्रयरहित आकाशमें टिका हुआ है। (७६७–८००)

"अशुभ ध्यानको रोकनेका कारण ऐसे इस सारे लोकका अथवा उसके जुदा जुदा विभागोंका जो बुद्धिमान विचार करता है उसको धर्मध्यानसे संबंध रखनेवाली क्षायोपशमकादि भावकी प्राप्ति होती है और पीत लेश्या, पद्म लेश्या तथा शुक्ल लेश्या अनुक्रमसे शुद्ध शुद्धतर शुद्धतम होती हैं। अधिक वैराग्यके संगसे तरंगित धर्मध्यानके द्वारा प्राणियोंको स्वयंही समझ सके ऐसा (स्वसंवेद्य) अतींद्रिय सुख उत्पन्न होता है। जो योगी निःसंग (यानी निःस्वार्थ) होकर धर्मध्यानके द्वारा इस शरीरको छोड़ते हैं वे ग्रैवेयकादि स्वर्गोंमें उत्तम देवता होते हैं। वहाँ वे महा महिमावाले, सौभाग्य युक्त, शरद ऋतुके चंद्रके समान प्रभावशाली और पुष्पमालाओं तथा वस्त्रालंकारोंसे विभूषित शरीरको प्राप्त करते हैं। विशिष्ट वीर्य बोधाढ्य (यानी असा-मान्य ज्ञान व शक्तिके धारक), कामार्ति ज्वर रहित (यानी

जिनको काम पीड़ा नहीं सताती ऐसे) और अंतराय रहित अतुल्य सुखका चिरकाल तक सेवन करनेवाले होते हैं। इच्छानुसार मिले हुए सब अर्थोंसे मनोहर सुखरूप अमृतका उपभोग विघ्नरहित करते रहनेमें उन्हें यह भी पता नहीं लगता कि उनकी आयु कैसे बीतती जा रही है? ऐसे दिव्य भोग भोगनेके बाद अंतमें वे च्यवकर मनुष्यलोकमें उत्तम शरीरधारी मनुष्य जन्मते हैं। मनुष्यलोकमें भी वे दिव्य वंशमें उत्पन्न होते हैं; उनके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं; वे नित्य उत्सव मनाते हैं और मनको आनंद देनेवाले विविध प्रकारके भोगोंका उपभोग करते हैं। फिर विवेकका आश्रय ले, सभी भोगोंका त्यागकर शुभध्यान द्वारा वे सभी कर्मोंका नाशकर अव्ययपद (यानी मोक्ष) पाते हैं।" (८०१-८१०)

इस तरह सब जीवोंके हितकारी श्री अजितनाथ प्रभुने तीन जगतरूपी कुमुदोंको आनंदित करनेवाली कौमुदीरूपी धर्मदेशना दी। स्वामीकी देशना सुनकर हजारों नर-नारियोंने ज्ञान पाया और मोक्षकी मातारूप दीक्षा ग्रहण की। (८११-८१२)

उस समय सगर चक्रवर्तीके पिता वसुमित्रने—जो तबतक भाव यति बनकर घरहीमें रहते थे-भी प्रभुके पाससे दीक्षा ग्रहण की। फिर अजितनाथ स्वामीने गणधर नामकर्मवाले और अच्छी बुद्धिवाले सिंहसेन इत्यादि पंचानवे मुनियोंको, व्याकरणके प्रत्याहारोंके[1] समान उत्पत्ति, विगम[2] और ध्रौव्यरूप[3] त्रिपदी सुनाई। रेखाओंके आधारसे जैसे चित्र बनाया जाता है वैसेही,

१—व्याकरणमें 'अच' आदि प्रत्यय। २—विनाश। ३—स्थिति।

त्रिपदीके आधारसे गणधरोंने चौदह पूर्व सहित द्वादशांगी-की रचना की। फिर इंद्र अपनी जगहसे उठ, चूर्णसे (यानी वासक्षेपसे) पूर्ण थालको ले, देवताओंके समूहके साथ, स्वामी-के चरणकमलोंके पास आ खड़ा हुआ। जगतपति अजितनाथ स्वामीने खड़े होकर गणधरोंके मस्तकपर वासक्षेप डाला और अनुक्रमसे सूत्रसे, अर्थसे व उन दोनोंसे इसी तरह द्रव्यसे, गुणसे, पर्यायसे और नयसे अनुयोगकी[1] अनुज्ञा[2] तथा गणकी[3] अनुज्ञा दी। उसके बाद देवोंने, मनुष्योंने और स्त्रियोंने दुंदुभि-की ध्वनिके साथ गणधरोंपर वासक्षेप डाला। फिर गणधर भी हाथ जोड़कर अमृतके निर्झरकी जैसी प्रभुकी वाणी सुननेको तत्पर हुए। इसलिए पूर्वकी तरफ मुखवाले सिंहासनपर बैठकर प्रभुने उनको अनुशिष्टिमय[4] देशना दी। प्रथम पौरुषी (पहर) के समाप्त होनेपर भगवानने धर्मदेशना पूरी की। उस समय सगर राजाके द्वारा तैयार कराया हुआ और बड़े थालमें रखा हुआ चार प्रस्थ[5] प्रमाणका 'बलि' पूर्व द्वारसे समवसरणमें लाया गया। (८११-८२३)

वह बलि शुद्ध और कमलके समान सुगंधीवाले चावलों-

१—तीर्थंकर, कुलकर, चक्रवर्ती इत्यादिका अधिकार जिसमें बताया गया है उस दृष्टिवादका एक विभाग। २—आदेश, आज्ञा। ३—गच्छ या समान क्रियाएँ करनेवाले साधुओंका समुदाय। ४—उपदेशोंसे पूर्ण। ५—प्रस्थ शब्दका अर्थ 'सेर' दिया गया है; मगर जान पड़ता है कि उस जमानेका 'सेर' वजन, इस जमानेके सेरसे बहुत अधिक होगा।

का, अच्छी तरहसे बनाया गया था। देवताओंके द्वारा डाली गई गंधमुष्टियोंसे[1] उसकी सुगंध फैल रही थी। श्रेष्ट पुरुषोंने उसको उठाया था, साथमें चलते हुए नगारोंकी आवाजोंसे दिशाओंके मुख प्रतिध्वनित हो रहे थे। स्त्रियाँ गीत गाती हुई उसके पीछे चल रही थीं और भौंरोंसे जैसे कमलकोश घिर जाता है वैसेही नगरके लोगोंसे वह घिरा हुआ था। फिर उन सब लोगोंने प्रभुकी प्रदक्षिणा करके, देवताओंने जैसे पुष्पवृष्टि की थी वैसेही, बलि प्रभुके सामने उछाला। आधा भाग ऊपरहीसे, जमीनमें न गिरने देकर देवताओंने ले लिया। पृथ्वीपर गिरे हुए भागमेंसे आधा भाग सगर राजाने लिया और बाकी बचा हुआ भाग दूसरे लोगोंने लिया। उस बलिके प्रभावसे पुराने रोग नष्ट होते हैं और छह महीने तक नवीन रोग नहीं होते। (८२४-८३०)

मोक्षमार्गके नेता प्रभु सिंहासनसे उठ उत्तर द्वारके मार्गसे निकले और मध्यगढ़के बीच ईशान दिशामें बनाए हुए देवछंदपर उन्होंने विश्राम लिया। फिर सगर राजाके बनवाए हुए सिंहासनपर बैठकर सिंहसेन नामके मुख्य गणधर धर्मदेशना देने लगे। भगवानके स्थानके प्रभावसे गणधरने जिन्होंने पूछा उनको उनके असंख्य भव बता दिए। प्रभुकी सभामें संदेहोंका नाश करनेवाले गणधरोंको किसीने—सिवा केवलियोंके—'छद्मस्थ' नहीं समझा। गुरुके श्रमका नाश, दोनोंका समान विश्वास और गुरुशिष्यका क्रम—ये गुण गणधरकी देशनाके हैं। दूसरी पौरुपी समाप्त हुई तब गणधरने देशनासे इसी तरह

1—मुट्ठियाँ भर भरकर डाली गई सुगंधियोंसे।

विराम लिया जैसे पथिक चलनेसे विराम लेता है। देशना समाप्त होने पर सभी देवता प्रभुको प्रणाम करके अपने अपने स्थानोंको जानेके लिए रवाना हुए। मार्गमें उन्होंने नंदीश्वर द्वीप पर जाकर अंजनाचलदिकके ऊपर शाश्वत अर्हंतकी प्रतिमाओंका अट्ठाई महोत्सव किया। फिर यों बोलते हुए कि "हमें ऐसी यात्रा करनेका वार वार अवसर मिले" वे अपने अपने स्थानों पर जैसे आए वैसेही गए। (८३१-८४०)

सगर चक्रवर्ती भी भगवानको नमस्कार कर लक्ष्मीके संकेतस्थानरूप अपनी अयोध्या नगरीमें गया। महायक्ष नामका चतुर्मुख यक्ष अजितनाथके तीर्थका अधिष्ठायक हुआ। उसका वर्ण श्याम और वाहन हाथी था। उसकी दाहिनी तरफके चार हाथोंमें वरद[1], मुद्गर, अक्षसूत्र[2] और पाशिन[3] थे और बाईं तरफके चार हाथोंमें बीजोरा, अभय, अंकुश और शक्ति थे। प्रभुके शासनकी अजितबला नामकी चार हाथोंवाली देवी अधिष्ठायिका हुई। उसका वर्ण सोनेके जैसा है। उसके दाहिने हाथोंमें वरद तथा पाशिन हैं और बाएँ हाथोंमें बीजोरा तथा अंकुश हैं। वह लोहासनपर बैठी है। (८४१-८४६)

चौंतीस अतिशयोंसे सुशोभित भगवान सिंहसेनादि गणधरों सहित पृथ्वीमें विहार करने लगे। प्रत्येक गाँव, शहर और आकरमें विहार करते हुए और भव्य प्राणियोंको उपदेश देते हुए कृपासागर प्रभु एक वार कोशांबी नगरीके समीप पहुँचे। कोशांबीके ईशान कोणमें एक योजनमात्रके क्षेत्रमें देवताओंने

१—सूर्य पुष्प। २—रुद्राक्षकी माला। ३—फाँसा।

पहलेके समानही प्रभुके लिए समवसरणकी रचना की। उसमें अशोकवृक्षके नीचे, सिंहासनपर विराजमान जगत्पतिने सुर, असुर और मनुष्योंकी पर्षदामें देशना देना आरंभ किया। उसी समय एक ब्राह्मणकी जोड़ी आई और तीन जगतके गुरु-को प्रदक्षिणा देकर यथायोग्य स्थान पर बैठी।

सम्यक्त्वका माहात्म्य

देशनाके अंतमें उस जोड़ीमेंसे ब्राह्मण खड़ा हुआ और उसने हाथ जोड़कर प्रभुसे पूछा, "हे भगवान्! यह ऐसा कैसे है?"

प्रभुने जवाब दिया, "यह सम्यक्त्व की महिमा है। वही सभी अनर्थोंको रोकनेका और सभी कार्योंकी सिद्धिका एक प्रबल कारण है। सम्यक्त्वसे सभी तरहके वैर इसी तरह शांत हो जाते हैं जिस तरह वर्षासे दवाग्नि शांत हो जाती है; सभी व्याधियाँ इस तरह नष्ट हो जाती हैं जिस तरह गरुड़से सर्प नष्ट हो जाते हैं; दुष्कर्म ऐसे गल जाते हैं जैसे सूर्यसे बरफ गल जाता है; क्षणवारमें मनोवांछित कार्य ऐसे सिद्ध होते हैं जैसे चिंता-मणिसे सिद्ध होते हैं; श्रेष्ठ हाथी जैसे पानीके प्रवाहको बाँधता है वैसेही देवआयुका बंध होता है; और महापराक्रमी मंत्रकी तरह देवता आकर हाजिर होते हैं। ऊपर कही हुई बातें तो सम्यक्त्वका एक अल्प फल हैं। इसका महाफल तो तीर्थंकर-पद और सिद्धिपद (मोक्षपद) की प्राप्ति है। (८८७—८९७)

प्रभुका जवाब सुनकर विप्र हर्षित हुआ और हाथ जोड़-कर बोला, "हे भगवान! यह ऐसाही है। सर्वज्ञकी वाणी कभी अन्यथा नहीं होती।" विप्र मौन हो रहा। तब मुख्य गण-

धरने, जो स्वयं इस बातचीतका अभिप्राय समझ गए थे तो भी, सारी पर्षदाको ज्ञान करानेके अभिप्रायसे जगद्गुरुसे पूछा, "हे भगवान ! इस ब्राह्मणने आपसे क्या पूछा ? और आपने क्या उत्तर दिया ? इस सांकेतिक बातचीतको साफ साफ समझाइए।" (८५८-८६०)

प्रभुने कहा, "इस शहरके पास शालिग्राम नामका एक अग्रहार[1] है। वहां दामोदर नामका एक मुख्य ब्राह्मण रहता था। उसके सोमा नामकी स्त्री थी। उस दंपतिके शुद्धभट नामका पुत्र हुआ। वह सिद्धभट नामके किसी ब्राह्मणकी सुलक्षणा नामक कन्यासे ब्याहा गया। शुद्धभट और सुलक्षणा दोनों जवान हुए। और अपने वैभवके अनुसार यथोचित भोग भोगने लगे। कालक्रमसे उनके माता-पिताका देहांत हुआ। उनकी पैतृक संपत्ति भी समाप्त हो गई इसलिए वे कभी कभी रातको निराहार रहने लगे। कहा है—

"निर्धनस्य सुभिक्षेपि दुर्भिक्षं पारिपार्श्विकम् ।"

[निर्धन मनुष्यके पास सुकालमें भी दुकाल रहता है।]

शुद्धभट कभी उस नगरके राजमार्गमें विदेशसे आए हुए कार्पिट[2] की तरह पुराने वस्त्रका टुकड़ा पहन कर फिरता था; कई बार चातक पक्षीकी तरह प्यासा रहता था और कई बार पिशाचकी तरह उसका शरीर मलसे मलिन रहता था। इस स्थितिमें वह अपने साथियोंसे लज्जित होकर, अपनी स्त्रीको भी कहे बगैर दूर विदेश चला गया। उसकी स्त्रीने कुछ दिनोंके बाद वज्रपात

१—दानमें मिली हुई जमीनपर बसा हुआ गाँव। २—भिखारी।

की तरह लोगोंको कहते सुना कि तेरा पति विदेश चला गया है। श्वसुरके और अर्थके नष्ट होनेसे और पतिके परदेश चले जानेसे अपने आपको दुर्लक्षणा मानती हुई सुलक्षणा दुखमें दिन बिताने लगी। वर्षा ऋतु आई और कोई 'विपुला' नामकी साध्वी उसके घर चातुर्मास रहनेके अभिप्रायसे आई। सुलक्षणाने साध्वीको रहनेके लिए जगह दी और वह हमेशा उनके मुखसे धर्मदेशना सुनने लगी। जैसे मीठी चीजके संबंधसे खट्टी चीज-का खट्टापन जाता रहता है वैसेही, साध्वीके धर्मोपदेशसे सुलक्षणाका मिथ्यात्व जाता रहा। कृष्णपक्षका उल्लंघन करके रात्रि जैसे निर्मलताको प्राप्त होती है, वैसेही वह निर्मल सम्य-क्त्व पाई। वैद्य जैसे शरीरमें उत्पन्न होनेवाले रोगोंको जानता है वैसेही वह जीव-अजीव आदि पदार्थोंको यथास्थित जानने लगी। जैसे समुद्र लांघनेके लिए मुसाफिर योग्य जहाजमें सवार होता है, वैसेही संसारसे पार लगानेमें समर्थ जैनधर्मको उसने अंगीकार किया। उसे विषयोंसे विरक्ति हो गई, उसकी कषाएँ उपशांत हुईं और अविच्छिन्न जन्म-मरणकी श्रेणीसे वह व्याकुल हो उठी। रसपूर्ण कथासे जागरूक मनुष्य जैसे रात बिताता है, वैसेही उसने साध्वीकी सेवा सुश्रूषा करते हुए वर्षाकाल बिताया। उसको अणुव्रत ग्रहण कराकर साध्वी विहार कर दूसरी जगह चली गई। कहा है—

"क्षेत्रे प्रावृषऊर्ध्वं न तिष्ठंत्येकत्रसंयताः।"

[संयमी साधु वर्षाऋतुके समाप्त होने पर एक स्थानपर नहीं रहते।] (८६१—८८०)

शुद्धभट भी परदेशसे बहुतसा धन कमाकर प्रियाके प्रेमसे

खिंचकर, कबूतरकी तरह वापस आया। उसने आकर पूछा, "हे प्रिये! कमलिनी जैसे हिमको नहीं सह सकती। वैसेही तूने-जो पहले थोड़ासा वियोग भी नहीं सह सकती थी-मेरे दीर्घकालके वियोगको कैसे सहन किया?" (८८१-८८२)

सुलक्षणाने जवाब दिया, "हे जीवितेश्वर! मरुस्थलमें जैसे हंसी, थोड़े पानीमें जैसे मछली, राहुके मुँहमें जैसे चंद्रलेखा और दावानलमें जैसे हरिणी महा संकटमें फँस जाती है वैसे-ही तुम्हारे वियोगसे मैं भी मौतके दरवाजे तक पहुँच चुकी थी; उसी समय अंधकारमें दीपकके समान, समुद्रमें जहाजके समान, मरुस्थलमें वर्षाके समान और अंधेपनमें नजरके समान, दयाके भंडारके समान एक 'विपुल' नामकी साध्वी यहाँ आई। उनके दर्शनसे तुम्हारे विरहसे आया हुआ मेरा सारा दुःख जाता रहा और मुझे मनुष्य जन्मके फलस्वरूप सम्यक्त्व प्राप्त हुआ।" (८८३-८८७)

शुद्धभटने पूछा, "हे भद्रिनी! तुम मनुष्य जन्मका फल सम्यक्त्व कहती हो, वह क्या चीज है?"

वह बोली, "हे आर्यपुत्र। वह अपने प्रिय मनुष्यको कहने लायक है, और आप मुझे प्राणोंसे भी प्रिय हैं इसलिए कहती हूँ। सुनिए—

"देवमें देवपनकी बुद्धि, गुरुमें गुरुपनकी बुद्धि और शुद्ध धर्ममें धर्मबुद्धि रखना सम्यक्त्व कहलाता है। अदेवमें देव-बुद्धि, अगुरुमें गुरुबुद्धि और अधर्ममें धर्मबुद्धि रखना विप-र्यास[1]भाव होनेसे मिथ्यात्व कहलाता है।

सर्वज्ञ, रागादिक दोषोंको जीतनेवाले, तीन लोक-पूजित

और यथायोग्य अर्थ बतानेवाले अर्हत परमेश्वर देव हैं। उन देवकाही ध्यान करना, उन्हींकी उपासना करना, उन्हींकी शरण- में जाना और यदि ज्ञान हो तो उन्हींके शासनका प्रतिपादन करना चाहिए। जो देव स्त्री, शस्त्र और अक्षसूत्रादि रागादि दोषोंके चिह्नोंसे अंकित हैं और जो कृपा या दंड देनेमें तत्पर हैं वे देव कभी मुक्ति देनेमें समर्थ नहीं हो सकते। नाटक, अट्टहास और संगीत वगैरा उपाधियोंसे जो विसंस्थुल[१] बने हुए हैं वे देवता शरणमें आए हुए प्राणियोंको मोक्षमें कैसे लेजा सकते हैं?" (८८८-८९५)

"महाव्रतोंको धारण करनेवाले, धैर्यधारी भिक्षा मात्रहीसे जीवननिर्वाह करनेवाले और सदा सामायिकमें[३] रहनेवाले जो धर्मोपदेशक होते हैं वे गुरु कहलाते हैं। सभी चीजें चाहने- वाले, सभी तरहका भोजन करनेवाले, परिग्रहधारी, अब्रह्मचारी और मिथ्या उपदेश देनेवाले गुरु नहीं हो सकते। जो गुरु खुद- ही परिग्रह और आरंभमें मग्न रहते हैं, वे दूसरोंको कैसे तार सकते हैं? जो खुद दरिद्री होता है, वह दूसरोंको कैसे धनवान बना सकता है? (८९६-८९८)

"दुर्गतिमें पड़ते हुए प्राणियोंको जो धारण करता है उसे धर्म कहते हैं। सर्वज्ञका बताया हुआ संयम वगैरा दस प्रकार- का धर्म मुक्तिका कारण होता है। जो वचन अपौरुषेय[४] है वह असंभव है, इसलिए वह प्रमाण-मान्य नहीं होता; कारण,— प्रमाणता तो आप्त[५] पुरुषके आधीन होती है। मिथ्यादृष्टि मनु-

१—प्रतिकूल भाव। २—चंचल। ३—समभावोंमें। ४—जो पुरुषका कहा हुआ नहीं है। ५—सच्चे देव।

क्योंके माने हुए और हिंसादि दोषोंसे कलुषित बने हुए नाम-मात्रके धर्मको यदि धर्मकी तरह जाना-माना जाए तो वह संसारमें परिभ्रमण करनेका कारण होता है। यदि रागी देव, देव माना जाए, अब्रह्मचारी गुरु माना जाए और दयाहीन धर्म, धर्म माना जाए तो खेदके साथ यह कहना पड़ेगा कि जगतका नाश हो गया है (यानी जगतके प्राणी दुर्गतिमें जाएँगे।)

सम्यक्त्व शम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और आस्तिकता, इन पाँच बातोंसे अच्छी तरह पहचाना जाता है। स्थिरता, प्रभावना, भक्ति, जिनशासनमें कुशलता और तीर्थसेवा, ये पाँच बातें सम्यक्त्वकी भूषण कहलाती हैं। शंका, आकांक्षा, विचि-कित्सा, मिथ्यादृष्टिकी प्रशंसा और उनका परिचय, ये पाँच बातें सम्यक्त्वको दूषित करती हैं।" (८९९-९०५)

ये बातें सुनकर ब्राह्मणने कहा, "हे स्त्री, तू भाग्यवती है। कारण, तूने निधानकी तरह सम्यक्त्व प्राप्त किया है।" इस तरह कहते-सोचते शुद्धभट भी तत्कालही सम्यक्त्व पाया।

"धर्मे धर्मोपदेष्टारः साक्षिमात्रं शुभात्मनाम्।"

[शुभ आत्माओंके लिए धर्मप्राप्तिमें धर्मोपदेशक साक्षीमात्र होते हैं।] सम्यक्त्वके उपदेशसे वे दोनों श्रावक हुए।

"स्वर्णीस्यातां सिद्धरसात् सीसकत्रपुणी अपि।"

[सिद्धरससे शीशा और लोहा दोनों स्वर्ण होते हैं।] उस समय उस अग्रहारमें साधुओंका संसर्ग नहीं होता था इसलिए लोग श्रावकधर्मका त्याग करके मिथ्यादृष्टि हो गए थे; इसलिए लोग उन दोनोंकी यह कहकर निंदा करने लगे कि ये दोनों

दुर्बुद्धि, कुलक्रमागत धर्मको छोड़कर श्रावक हो गए हैं। इस निंदाकी कुछ परवाह न कर वे श्रावकधर्ममें निश्चल रहे। समय-पर उस विप्र-दंपतिके गृहस्थाश्रम-वृक्षके फलस्वरूप एक पुत्र उत्पन्न हुआ। (६०६-६११)

एक बार शिशिर ऋतुमें शुद्धभट अपने पुत्रको लेकर ब्राह्मणोंकी सभासे घिरी हुई धर्मअग्निष्ठिकाके[1] पास गया। तब सभी ब्राह्मण क्रोधसे एक स्वरमें बोल उठे, "तू श्रावक है; यहाँसे दूर हो! दूर हो!" इस तरह चांडालकी तरह उसका तिरस्कार किया गया। वे सभी धर्म अग्निष्ठिकाको अच्छी तरह घेर कर बैठ गए।

"...... द्विजातयो जातिधर्मस्तेषां हि मत्सरः।"

[मत्सर करना ब्राह्मणोंका जातिधर्म है।] उनके ऐसे वचनोंसे दुखी और क्रुद्ध होकर शुद्धभटने उस सभाके सामने प्रतिज्ञा की,—'यदि जिनका कहा हुआ धर्म संसार-समुद्रसे तारनेवाला न हो, यदि सर्वज्ञ तीर्थंकर अर्हंत आप्त-देव न हों, ज्ञान-दर्शन-चारित्रही यदि मोक्षमार्ग न हो और जगतमें यदि ऐसा सम्यक्त्व न हो तो यह मेरा पुत्र जल जाए; और मैंने जो कुछ कहा है वह यदि सत्य है तो यह जलती हुई आग मेरे पुत्रके लिए जलके समान शीतल हो जाए।"

यों कहकर क्रोधसे, मानो दूसरी आग हो इस तरह, उस साहसी ब्राह्मणने अपने पुत्रको जलती आगमें डाल दिया। उस समय, "अरेरे! इस अनार्य ब्राह्मणने अपने पुत्रको जला दिया।"

१—धर्म अँगीठी।

इस तरह क्रोधपूर्वक कहते हुए ब्राह्मणोंकी पर्षदाने उसका बहुत तिरस्कार किया।

उधर वहाँ कोई सम्यग्दर्शनवाली देवी रहती थी। उसने बालकको भ्रमरकी तरह कमलके अंदर झेल लिया और ज्वालाओंके जालसे विकराल बने हुए उस अग्निकी दाहशक्तिको हर लिया; ऐसेही उसके लड़केको मानो चित्रस्थ हो ऐसा बना दिया। उस देवीने पूर्व मनुष्य-भवमें संयमकी विराधना की थी इससे वह मरकर व्यंतरी हुई थी। उसने किन्हीं केवलीसे पूछा था,-"मुझे बोधिलाभ-सम्यक्त्वप्राप्ति कब होगी?" केवलीने कहा था,-"हे अनघे! तू सुलभबोधि होगी; मगर तुझे सम्यक्त्व-की प्राप्तिके लिए सम्यक्त्वकी भावनामें अच्छी तरह उद्योगी रहना होगा।" इस वचनको वह हारकी तरह हृदयपर धारण किए फिरती थी। इसीलिए सम्यक्त्वका माहात्म्य बढ़ानेके लिए उसने ब्राह्मणके पुत्रकी रक्षा की थी।

इस तरह जैनधर्मके प्रभावको प्रत्यक्ष देखकर ब्राह्मणोंकी आँखें विस्मयसे विस्फारित हो गईं। वे ब्राह्मण जन्मसे लगाकर अदृष्टपूर्वी हुए (अर्थात उन्होंने पहले कभी नहीं देखी थी ऐसी बात उस दिन देखी।) शुद्धभटने घर जाकर अपनी स्त्रीसे यह बात कही और सम्यक्त्वके प्रभावके प्रत्यक्ष अनुभवसे उस ब्राह्मणको आनंद हुआ। विपुला साध्वीके गाढ संपर्कसे विवेक-शाली बनी हुई ब्राह्मणी, "अहो! धिक्कार है! तुमने यह क्या किया? सम्यक्त्वका भक्त कोई देवता पासही था इसीलिए तुम्हारा मुख उज्ज्वल हुआ; मगर यह तुम्हारे क्रोधकी चंचलता है; यदि उस समय सम्यक्त्वकी महिमा प्रकट करनेवाला कोई

देवता यहाँ आसपासमें न होता, तो तुम्हारा पुत्र जल जाता और लोग जैनधर्मकी निंदा करते। यदि ऐसा होता तो भी जैनधर्म अप्रमाणित न होता। ऐसे प्रसंगोंपर जो लोग यह कहें कि "जैनधर्म अप्रमाण है" उनको विशेष पापी समझना चाहिए। मगर-तुमने तो ऐसा काम किया है जैसा मूर्ख मनुष्य भी नहीं करता। इसलिए हे आर्यपुत्र! फिर कभी ऐसा काम न करना।" यों कहकर वह स्त्री अपने पतिको सम्यक्त्वमें स्थिर करनेके लिए, यहां हमारे पास लाई है। यही सोचकर इस ब्राह्मणने हमसे प्रश्न किया था और हमने उत्तर दिया था,- "यह सम्यक्त्वकाही प्रभाव है।"

भगवानके ये वचन सुनकर अनेक प्राणी प्रतिबोध पाए और धर्ममें स्थिर हुए· शुद्धभटने भट्टिनी सहित भगवानसे दीक्षा ली, और अनुक्रमसे उन दोनोंको केवलज्ञान हुआ।

(६१२-६३६)

जगतपर अनुग्रह करनेमें तल्लीन और चक्रसे चक्रीकी तरह आगे चलते हुए धर्मचक्रसे सुशोभित भगवान अजितस्वामी देशना समाप्त कर उस स्थानसे रवाना हुए और पृथ्वीपर विहार करने लगे। (६३७)

आचार्य श्री हेमचंद्रविरचित त्रिषष्टिशलाका
पुरुष चरित्र महाकाव्यके दूसरे पर्वमें
अजितस्वामीका दीक्षा-केवल
वर्णन नामका तीसरा सर्ग
समाप्त हुआ।

सर्ग चौथा

सगरका दिग्विजयी होना और चक्रवर्तीपद पाना

उधर सगर राजाके शस्त्रमंदिरमें सुदर्शन नामक चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। उस चक्रकी धारा स्वर्णमय थी, उसके आरे लोहिताक्ष रत्नके थे और विचित्र माणिक्यकी घंटिकाओंके समूहसे वह शोभता था। वह चक्र नंदीघोष सहित था। निर्मल मोतियोंसे सुंदर लगता था। उसकी नाभि वज्ररत्नमय थी। वह घुघरियोंकी श्रेणीसे मनोहर मालूम होता था और सभी ऋतुओंके फूलोंसे अर्चित था। उसपर चंदनका लेप लगा हुआ था। एक हजार देवताओंसे वह अधिष्ठित था और आकाशमें अधर ठहरा हुआ था।

मानो सूर्यका मंडल हो, ऐसी ज्वालाओंकी पंक्तियोंसे विकराल ऐसे उस चक्रको प्रकट होते देख शस्त्रागारके अधिकारीने उसे नमस्कार किया। फिर विचित्र पुष्पमालाओंसे उसे पूजकर खुशी खुशी उसने सगर राजाको इसके समाचार सुनाए। यह सुनकर गुरुके दर्शनकी तरह सगर राजाने सिंहासन, पादपीठ और पादुकाका तत्कालही त्याग किया। मनही मन चक्ररत्नका ध्यान धर, कुछ कदम उसकी तरफ चल सगर राजाने उसको नमस्कार किया। कहा है,—

"·········देवतीयंती यदस्त्राण्यस्त्रजीविनः।"

[अस्त्रजीवी लोगोंके लिए उनके अस्त्र देवके समान होते

है।] फिर सिंहासनपर बैठकर उसने अपने शरीरपर जितने आभूषण थे वे सभी उतार उतारकर चक्ररत्नके उत्पन्न होनेके समाचार देनेवालेको देदिए। फिर वह पवित्र जलसे मंगल-स्नान कर, दिव्य वस्त्राभूषण पहन, पैदलही चक्ररत्नकी पूजा करनेको रवाना हुआ। कारण,—

"पादचारेणोपस्थानं पूजातोऽप्यतिरिच्यते।"

[पैदल चलकर सामने जाना पूजासे भी अधिक है।] किंकरोंकी तरह दौड़ते और गिरते-पड़ते रुकते राजा लोग सन्मानसे उसके पीछे चले। कई सेवक पूजाकी सामग्री लेकर, बुलाए नहीं गए थे तो भी, उनके पीछे पीछे चले। कारण,—

"स्वाधिकारप्रमादित्वं भीतये ह्यधिकारिणाम्।"

[अधिकारियोंको अपने अधिकारका प्रमाद भयभीत बनाता है।] देवसे जैसे विमान चमकता है वैसेही दिव्य चक्रसे चमकते हुए शस्त्रागारमें सगर पहुँचा। राजाने गगनरत्नके (सूर्यके) समान चक्ररत्नको देखतेही, पाँच अंगोंसहित पृथ्वीका स्पर्श कर, प्रणाम किया। हाथमें रोमहस्त (मोरपंखकी पींछी) लेकर, महावत जैसे सोकर उठे हुए हाथीका मार्जन करता है वैसेही, सगरने चक्रका मार्जन किया; और जलके कुंभ भरकर लानेवाले पुरुषोंके पाससे जल-ले लेकर, देवप्रतिमाकी तरह, चक्ररत्नको स्नान कराया। उसपर, उसे अंगीकार करनेके लिए लगाए हुए अपने हाथकी शोभाके जैसा, चंदनका तिलक किया। विचित्र फूलोंकी मालासे, जयलक्ष्मीके पुष्पगृह जैसी, चक्ररत्नकी पूजा की और फिर गंध और वासक्षेप, प्रतिष्ठाके समय देव-

प्रतिमापर जैसे आचार्य क्षेपन करते हैं वैसेही, उसने चक्रपर क्षेपन किया–डाला। देवोंके योग्य महामूल्यवान वस्त्रालंकारोंसे राजाने, अपने शरीरकी तरह, चक्ररत्नको सजाया। आठों दिशाओंकी जयलक्ष्मीका आकर्षण करनेके लिए, अभिचार[1] मंडल हों ऐसे, आठ मंगल, चक्रके सामने चित्रित किए। उसके पास, वसंतकी तरह अच्छी सुगंधवाले, पंचवर्णी फूलोंका ढेर लगाया। उसके सामने कपूर और चंदनका धूप किया। उसके धुएँसे ऐसा जान पड़ा मानो राजा कस्तूरीका विलेपन करता है। फिर सगरने चक्रको तीन प्रदक्षिणा दे, जरा पीछे हट, जय-लक्ष्मीको पैदा करनेके लिए समुद्ररूप चक्ररत्नको पुनः प्रणाम किया, और नये प्रतिष्ठित देवके लिए किया जाता है वैसा चक्र-रत्नका अष्टाह्निका महोत्सव किया। नगर-सीमाकी देवीकी तरह नगरके सभी लोगोंने भी बड़ी धूमधामसे चक्रका पूजा–महोत्सव किया। (१–२७)

फिर दिग्यात्राका विचार चक्ररत्नने प्रकट किया हो वैसे उत्सुक होकर राजा अपने महलमें गया और ऐरावत हाथी जैसे गंगामें स्नान करता है वैसेही उसने स्नानगृहमें जाकर पवित्र जलसे स्नान किया। फिर रत्नस्तंभकी[2] तरह, दिव्य वस्त्रसे अपने शरीरको साफ कर, राजाने उजले दिव्यवस्त्र धारण किए। गंधकारिकाएँ[3] आकर, चंद्रिकाका रस बनाया हुआ हो ऐसे

१—बुरे कामोंके लिए मंत्र प्रयोग करना। तंत्रके अनुसार छः प्रकारके अभिचार होते हैं—मारण, मोहन, स्तंभन, विद्वेषण, उच्चाटन और वशीकरण। यहाँ वशीकरण अर्थ है। २—रत्नोंका बना स्तंभ। ३—इतर चंदन आदि लगानेवाली।

निर्मल गोशीर्षचंदनके रससे राजाका अंगराग करने लगीं-शरीरपर चंदनका लेप लगाने लगीं। फिर राजाने अपने अंगके संगसे अलंकारोंको अलंकृत किया।

"प्रयांति ह्युत्तमस्थाने भूषणान्यपि भूष्यताम्"

[उत्तम स्थानको पाकर आभूषण भी अधिक सुशोभित होते हैं।] (२८-३२)

फिर मंगलमुहूर्तमें, पुरोहितोंने जिसका मंगल किया है ऐसा, राजा खड्गरत्न हाथमें ले दिग्यात्रा करनेके लिए गजरत्नपर सवार हुआ। सेनापति अश्वरत्नपर सवार हो हाथमें दंडरत्न ले राजाके आगे चला। सर्व उपद्रवरूप नीहारको[1] को नष्ट करनेमें दिनरत्न[2] के समान पुरोहितरत्न राजाके साथ चला। भोजन दानमें समर्थ और जगह जगह सेनाके लिए घरोंकी-डेरे तंबुओंकी व्यवस्था करनेवाला गृहीरत्न, मानो जंगम चित्ररस नामका कल्पवृक्ष हो ऐसे, सगर राजाके साथ चला। तत्कालही नगर आदिकी रचना करनेमें समर्थ, पराक्रमी विश्वकर्माके जैसा वर्द्धकी रत्नभी राजाके साथ चला। चक्रवर्तीके कर-स्पर्शसे फैलने वाले छत्ररत्न और चर्मरत्न, अनुकूल पवनके स्पर्शसे बादल चलते हैं ऐसे, साथ चले। अंधकारका नाश करनेमें समर्थ मणिरत्न और कांकिणीरत्न, जंबूद्वीपका लघुरूप धारण किए हुए दो सूर्य हों ऐसे, साथ चले। बहुत दासियाँ जिसके साथ हैं ऐसा अंतःपुर (यानी सागरकी रानियां) स्त्रीराज्यसे आया हो ऐसे, चक्रीकी छायाकी तरह उसके साथ चला। दिशाओंको

१—कोहरा। २—सूरज।

प्रकाशित करता था इससे दूरहीसे दिग्विजयका स्वीकार करता हुआ चक्ररत्न, चक्रवर्तीके प्रतापकी तरह पूर्वकी तरफ मुख करके आगे चला। पुष्करावर्त मेघकी घटाके जैसे प्रयाण वाजित्रोंके शब्दसे दिग्गजोंके कान खड़े करता, चक्रके साथ चलते हुए अश्वोंके खुरोंसे उड़ती हुई धूलिसे संपुट पुटकी[1] तरह द्यावाभूमि[2] को एक करता, रथों और हाथियोंपर फरीती हुई ध्वजाओंके अग्रभागमें बनाए हुए पाठीन जातिके मगरादिसे मानो आकाश-रूपी महासमुद्रको जलजंतुमय बनाता हो ऐसे दिखता; सात तरफसे झरते हुए मदजलकी धारावृष्टिसे सुशोभित हाथियोंकी घटाके समूहसे दुर्दिन दिखाता, उत्साहसे उछलते होनेसे, मानो स्वर्गमें चढ़नेकी इच्छा रखते हों ऐसे करोड़ों प्यादोंसे पृथ्वीको चारों तरफसे ढकता, सेनापतिकी तरह आगे चलते, असह्य प्रतापवाले और सर्वत्र अकुंठित शक्तिवाले चक्ररत्नसे सुशोभित; सेनानीके धारण किए हुए दंडरत्न द्वारा, हलसे खेतकी जमीन-की तरह, विषम-ऊबड़ खाबड़ भूमिको एकसी बनाता और हर रोज एक एक योजनके चलनेसे भद्रद्वीपकी तरह लीलासे रस्ते-को समाप्त करता, इंद्रके समान वह चक्री कई दिनोंके बाद पूर्व दिशामें आई हुई गंगानदीके ललाटपर तिलकके समान मगध देशमें पहुँचा। (३३-५०)

वहाँ सगर चक्रीकी आज्ञासे वर्द्धकी रत्नने, अयोध्याकी छोटी बहन हो ऐसी, छावनी बनाई। आकाश तक ऊँची और

१—दोनों हाथोंके पंजोंको जोड़कर बनाए हुए संपुटकी तरह।
२—आकाश और पृथ्वीको।

बड़ी बड़ी अनेक हस्तिशालाओंसे, बड़ी बड़ी गुफाओंके समान हजारों अश्वशालाओंसे, विमानके समान हवेलियोंसे, मेघकी घटाके समान मंडपोंसे, मानों साँचेमें ढालकर बनाई गई हों ऐसी समान आकृतिवाली दुकानोंसे और शृंगाटक-चौराहे वगैरा की रचनासे राजमार्गकी स्थितिको बताती हुई वह छावनी शोभती थी। उसका विस्तार नौ योजन और उसकी लंबाई बारह योजन थी। (५१-५३)

वहाँ पोषधशालामें राजाने मगधतीर्थ कुमारदेवका मनमें ध्यान करके अष्टम तप किया और सर्व वेषभूषा त्याग, दर्भकी चटाईका आश्रय ले, शस्त्ररहित हो, ब्रह्मचर्य पालते और जागते हुए उसने तीन दिन बिताए। अष्टम तप पूर्ण हुआ तब राजाने पोषधगृहसे निकलकर पवित्र जलसे स्नान किया। फिर राजा रथपर सवार हुआ। रथ पांडुवर्णकी ध्वजाओंसे ढका हुआ था। वह, अनेक तरहके हथियारोंसे ढका होनेके कारण फेन और जलजंतुओंवाले समुद्रके जैसा जान पड़ता था। उसके चारों तरफ चार दिव्य घंटे लगे हुए थे, उनसे वह ऐसा शोभता था जैसे चार चंद्र और सूर्योंसे मेरु पर्वत शोभता है। इंद्रके उच्चैःश्रवा नामक घोड़ेके जैसे ऊँची गर्दनवाले घोड़े उसमें जुते हुए थे। (५४-६०)

चतुरंगिनी-हाथी, घोड़े, रथ और प्यादोंकी-सेनासे, वह चार प्रकारकी-साम, दाम, दंड और भेदवाली-नीतिके समान शोभता था। उसके सरपर एक छत्र था और दोनों तरफ दो चँवर थे। ये तीनों उसकी तीनों लोकमें व्याप्त यशरूपी बेलके तीन अंकुरके समान मालूम होते थे। राजाका रथ पहियोंकी

नाभि जितने गहरे जल तक समुद्रमें पहुँचा। राजा हाथमें धनुष लिए रथमें बैठा था। जयलक्ष्मीरूपी नाटिकाके नाँदीके समान धनुषकी डोरी उसने बजाई और भंडारमेंसे जैसे रत्न निकालते हैं वैसेही उसने भाथेमेंसे तीर निकाला। फिर धातकीखंडके मध्यमें रहे हुए इष्वाकार पर्वतके जैसे उस बाणको धनुषके साथ जोड़ा। अपने नामसे अंकित और कानके आभूषणपनको प्राप्त उस सोनेके तीक्ष्ण बाणको राजाने कान तक खींचा और उसे मगधतीर्थके अधिपतिकी तरफ चलाया। वह आकाशमें उड़ते हुए गरुड़की तरह पंखोंसे सनसनाता निमिषमात्रमें बारह योजन समुद्र लाँघकर मगधतीर्थकुमारदेवकी सभामें पड़ा। आकाशसे गिरनेवाली बिजलीकी तरह, उस बाणको गिरते देख, वह देव गुस्सा हुआ। उसकी भ्रकुटियाँ चढ़ गईं। इससे वह भयंकर मालूम होने लगा। फिर थोड़ा विचार कर, खुद उठ उसने उस बाणको हाथमें लिया। उस पर उसे सगर चक्रवर्तीका नाम दिखाई दिया। हाथमें बाण लिए हुए वह अपने सिंहासनपर बैठा और गंभीर गिरासे वह सभामें इस तरह कहने लगा— (६१–७१)

"जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें इस समय सगर नामक दूसरे चक्रवर्ती उत्पन्न हुए हैं। भूतकालके, भविष्यकालके और वर्तमान कालके मगधपतियोंका यह आवश्यक कर्तव्य है कि वे चक्रवर्तियोंको भेट दें।" (७२–७३)

फिर भेटकी वस्तुएँ ले नौकरके समान आचरण करता हुआ वह मगधपति विनय सहित सगर चक्रीके सामने आया। उसने आकाशमें रहकर चक्रीका फेंका हुआ बाण, हार, बाजू-

बंध, कणाभरण, भुजबंध आदि आभूषण, बंप और देवदूष्य-वस्त्र राजाको भेट किए। जिस तरह वार्तिक रसेंद्र देता है (यानी वैद्य जैसे पारा देता है वैसेही) उसने राजाको मगधतीर्थका जल भेट किया। फिर पद्मकोशके समान हाथ जोड़के उसने चक्रवर्तीसे कहा, "इस भरत क्षेत्रकी पूर्व दिशाके प्रांत-भागमें, आपके एक सामंतकी तरह, मैं रहता हूँ।" (७४-७८)

चक्रवर्तीने उसे अपना नौकर स्वीकार किया और एक दुर्गपालकी तरह सत्कार करके विदा किया। फिर उगते हुए सूरजकी तरह अपने तेजसे दिशाओंको भरते हुए सगर चक्रवर्ती समुद्रसे बाहर निकला और अपनी छावनीमें आया। राजाओंमें गजेंद्रके समान उन महाराजने स्नान और देवपूजा करके परिवार सहित पारणा किया और वहाँ मागधतीर्थके अधिपतिका अष्टाह्निका उत्सव किया। कारण—

"......स्वामिदत्तमाहात्म्याः खलु सेवकाः।"

[सेवकोंका माहात्म्य—सम्मान स्वामी ही बढ़ाते हैं।]

(७९-८२)

उसके बाद सर्व दिग्विजयोंकी लक्ष्मियोंको अर्पण करनेमें जामिनके समान चक्ररत्न दक्षिण दिशाकी तरफ चला। अपनी सेनासे पर्वत सहित पृथ्वीको चलायमान करता हुआ चक्रवर्ती दक्षिण और पश्चिम दिशाके मध्य मार्गसे चक्रके पीछे चला। सभी दिशाओंको विजय करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञावाला सगर राजा मार्गमें कई राजाओंको, वृक्षोंको जैसे पवन उखाड़ता है वैसे, राजगद्दियोंसे उठाता, कइयोंको शालिके पौधेकी तरह पुनः राजगद्दीपर बिठाता, कइयोंको कीर्तिस्तंभ हों ऐसे, नये राजा

बनाता, बेंतकी जातिके पेड़ोंको नदीका पूर झुकाता है वैसे कइयोंको, अपने सामने सर झुकवा कर छोड़ता, कइयोंकी उँगलियोंको कटवाता, कइयोंके पाससे रत्नोंका दंड ग्रहण करता, कइयोंसे हाथी घोड़े छुड़ाता, और कइयोंको छत्रहीन बनाता हुआ क्रमसे दक्षिण समुद्रके किनारे आ पहुँचा। वहाँ हाथीसे उतरकर क्षणभरमें तैयार हुई छावनीके अंदर एक जगहमें उसने इस तरह निवास किया जिस तरह इंद्र विमानमें निवास करता है। (८३-८९)

वहाँसे चक्री पौषधशालामें गया और अष्टमतप कर पौषध ले वरदाम नामके वहाँके अधिष्ठायक देवका ध्यान करने लगा। अष्टम भक्तके अंतमें पौषध व्रत पार कर, सूर्यमंडलमेंसे लाया गया हो ऐसे रथमें बैठा। जैसे मथानी छास विलोनेकी मथनीमें प्रवेश करती है वैसेही उसने रथकी नाभि तक समुद्रके जलमें प्रवेश किया। फिर उसने धनुषपर चिल्ला चढ़ाकर उसकी आवाज की। त्राससे घबराए हुए और कान झुकाए हुए जलचरोंने भयभीत होकर वह आवाज सुनी। सपेरा जैसे बिलमें-से सर्पको पकड़ता है वैसेही उसने एक अतिशय भयंकर बाण भाथेमेंसे निकाला। उसे चिल्लेपर चढ़ाकर किसी सूचना देनेके लिए आए हुए सेवककी तरह अपने कानके पास तक खींचकर इंद्र जैसे पर्वतपर वज्र डालता है वैसे, वरदामपतिके स्थानकी तरफ चला दिया। अपनी सभामें बैठे हुए वरदाम कुमार देवके आगे जाकर बाण ऐसे पड़ा जैसे किसीने मुद्‌गरका आघात किया हो। (९०-९७)

"इस असमयमें कालने किसका खाता देखा है ?" कहते

हुए वरदामपतिने उठकर बाणको हाथमें लिया; उसपर सगर राजाका नाम देखकर वह इस तरह शांत हो गया जिस तरह नागदमनी दवाको देखकर सर्प शांत हो जाता है। उसने अपनी सभाके लोगोंसे कहा, "जंबूद्वीपके भरत क्षेत्रमें सगर नामक दूसरे चक्रवर्ती उत्पन्न हुए हैं। घर आए हुए देवकी तरह विचित्र वस्त्रोंसे और महा मूल्यवान रत्नालंकारोंसे यह चक्रवर्ती मेरे लिए पूजने लायक है।" (९८-१००)

वह भेंट ले, तत्कालही रथमें बैठे हुए चक्रवर्तीके पास आकर अंतरीक्षमें खड़ा रहा और भंडारीकी तरह उसने रत्नोंका मुकुट, मोतियोंकी मालाएँ, बाजूबंद और कड़े इत्यादि चक्रीको भेंट किए। बाण भी वापस दिया और कहा, "आजसे इंद्रपुरी-के समान अपने देशमें भी, मैं आपका आज्ञाकारी बनकर वर-दामतीर्थके अधिकारीकी तरह रहूँगा।" (१०१-१०४)

कृतज्ञ चक्रवर्तीने उनसे भेंट ले, उसका कथन स्वीकार कर, उसे सम्मान सहित विदा किया। (१०५)

जलवाजियोंको (जलके घोड़ोंको) देखकर जिसके रथके घोड़े हिनहिना रहे हैं वह चक्रवर्ती चक्रके मार्गका अनुसरण करते हुए वापस लौटा और अपनी छावनीमें आया। फिर उसने स्नान तथा जिनपूजा करके अष्टम तपका पारणा किया। फिर वरदामकुमारका बड़ा अष्टाह्निका उत्सव किया। कारण—

"........भक्तेष्वीशा हि प्रतिपत्तिदाः।"

[ईश अपने भक्तोंका सम्मान बढ़ानेवाले होते हैं।]

(१०६-१०८)

वहाँसे चक्ररत्नके मार्गसे वे पृथ्वीपति सेनाकी रजसे सूरजको ढकते हुए पश्चिम दिशाकी तरफ चले। गरुड़ जैसे दूसरे देशके पक्षियोंको उड़ाता है वैसेही वे द्राविड देशके राजाओंको भगाते, सूर्य जैसे उल्लुओंको अंधा बनाता है वैसेही वे आंध्रके राजाओंको अंधा बनाते, तीन तरहके चिह्नोंसे (यानी बात, पित्त और कफके विकारसे) जैसे प्राण नष्ट होते हैं वैसेही, वे कलिंग देशके राजाओंके राजचिह्नोंको छुड़ाते, दर्भके विस्तरमें रहे हों वैसे, विदर्भदेशके राजाओंको निःसत्व बनाते, कपड़ेवाला जैसे स्वदेशका त्याग करता है वैसेही, महाराष्ट्र देशके राजाओंसे उनके देशका त्याग कराते, बाणोंसे जैसे घोड़े अंकित किए जाते हैं वैसेही, अपने बाणोंसे कोकण देशके राजाओंको अंकित करते, तपस्वियोंकी तरह लाट देशके राजाओंको ललाटपर अंजलि रखनेवाला बनाते, बड़े कछुओंकी तरह कच्छ देशके सभी राजाओंको चारों तरफसे संकोच कराते और क्रूर सोरठ देशके राजाओंको, देशकी तरह अपने वशमें करते, वे क्रमसे पश्चिम समुद्रके किनारेपर आए। (१०६–११४)

वहाँ छावनी डाल प्रभास तीर्थके अधिष्ठायक देवको हृदयमें धारण कर, अष्टम तप कर, उन्होंने पौषधशालामें पौषध ग्रहण किया। अष्टमके अंतमें सूर्यकी तरह बड़े रथपर सवार हो, चक्रीने रथकी नाभि तक समुद्रमें प्रवेश किया। फिर उसने चिल्ला चढ़ाकर बाणके-- प्रयाणके कल्याणकारी, जयवाजित्रके शब्दके जैसी, धनुषकी टंकार की और प्रभास तीर्थके देवके निवासस्थानकी तरफ, संदेश पहुँचानेवाले दूतके जैसा अपने नामसे अंकित बाण चलाया। पक्षी जैसे पीपल पर गिरता है

वैसेही वह बाण बारह योजनपर स्थित प्रभासदेवकी सभामें आकर गिरा। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ प्रभासदेवने बाणको देखा और उसपर लिखे हुए सगर चक्रवर्तीके नामके अक्षर पढ़े। तत्काल ही प्रभासपति, सगरके बाणके साथ अनेक तरहकी भेटें लेकर इस तरह चक्रीके सामने चला जैसे घर आए हुए गुरु-अतिथिके सामने गृहस्थ जाते हैं, और उसने आकाशमें रहकर मुकुटमणि, कंठभूषण, कड़े, कटिसूत्र, बाजूबंद और बाण चक्रवर्तीको भेट किए, तथा नम्रतापूर्वक अयोध्यापतिसे कहा, "हे चक्रवर्ती महाराज! आजसे मैं अपने स्थानमें आपका आज्ञाकारी होकर रहूँगा।" (११५-१२३)

तब चक्रवर्तीने भेट स्वीकार कर आदर सहित उससे बातचीत की और एक नौकरकी तरह उसे विदा किया। फिर वहाँसे चक्रवर्ती वापस छावनीमें आया और स्नान तथा जिनपूजा कर उसने अपने परिवारके साथ बैठकर अष्टमभक्तका पारणा किया। आनंदित चक्रीने वरदामपतिकी तरह प्रभासपतिका भी वहाँ अष्टाह्निका महोत्सव किया। (१२४-१२६)

वहाँसे चक्रके पीछे, प्रतीपगामी (यानी पीछे लौटनेवाले) समुद्रकी तरह चक्री अपनी सेनाके साथ सिंधुके दक्षिण किनारेसे पूर्वकी तरफ चला। रस्तेमें सिंधु देवीके मंदिरके पास उसने आकाशमें तुरतके उतरे हुए गंधर्व नगरके जैसी, अपनी छावनी डाली और सिंधुदेवीका मनमें स्मरण कर अष्टम तप किया। इससे सिंधुदेवीका रत्नासन कंपित हुआ। देवीने अवधिज्ञानसे जाना कि चक्री आया है। तत्कालही वह भक्तिपरायण देवी भेटें लेकर सामने आई। उसने आकाशमें रहकर निधिके जैसे एक

हजार आठ रत्नके कुंभ, मणिरत्नोंसे विचित्र दो भद्रासन, बाजूबंद, कड़े वगैरा रत्नोंके आभूषण और देवदूष्य वस्त्र चक्रवर्तीको भेट किए। फिर वह बोली, "हे नरदेव! तुम्हारे देशमें रहनेवाली मैं तुम्हारी दासीकी तरह आचरण करूँगी। मुझे आज्ञा दीजिए।"

अमृतके घूँटकी जैसी वाणीसे देवीका सत्कार करके चक्रीने उसे विदा किया और फिर पारणा कर पहलेहीकी तरह (अर्थात जैसे पहलेवाले देवताओंका किया था वैसे) सिंधुदेवीका अष्टाह्निका उत्सव किया। कारण—

"महात्मनां महर्द्धीनामुत्सवा हि पदे पदे ॥"

[महान ऋद्धिवाले महात्माओंके लिए पद पदपर उत्सव होते हैं।] (१२७-१३५)

अपनी बंधनशालासे जैसे हाथी निकलता है वैसेही, लक्ष्मीके धामरूप, आयुधशालासे निकलकर चक्र वहाँसे उत्तर पूर्वके मध्यमें चला। उसके पीछे चलते हुए कई दिनोंके बाद चक्रवर्ती वैताढ्य महागिरिकी दक्षिण दिशामें पहुँचा और विद्याधरके नगरके जैसी छावनी डालकर, उसने वैताढ्यकुमारका मनमें स्मरण कर अष्टमतप किया। अष्टमतप पूरा हुआ तब वैताढ्याद्रिकुमार देवका आसन काँपा। अवधिज्ञानसे उसने जाना कि भरतार्द्धकी सीमापर चक्रवर्ती आया है। उसने सगरके पास आ, आकाशमें रह, दिव्यरत्न, वीरासन, भद्रासन और देवदूष्य वस्त्र भेट किए। फिर प्रसन्न होकर उसने स्वस्तिवाचककी तरह आशीर्वाद दिया, "चिर जीओ! बहुत सुख पाओ! और चिरकाल तक विजयी बनो।" चक्रवर्तीने अपने

प्रियबंधुके समान उससे सम्मानके साथ बातचीत की और तब उसे विदा दे अष्टमतपका पारणा किया तथा अपने प्रसादरूपी प्रासादमें स्वर्णकलशके समान उसका अष्टाह्निका उत्सव किया।
(१२६-१४४)

फिर चक्रके पीछे चलकर चक्री तमिस्रा गुफाके पास पहुँचा और वहाँ छावनी डालकर सिंहकी तरह रहा। वहाँ उसने कृतमाल देवका स्मरण करके अष्टमतप किया। महान पुरुष भी—

"......कृत्यं महांतो न त्यजंति हि।"

[महान पुरुष जो काम करने योग्य होता है उसको नहीं छोड़ते हैं।] अष्टम तपका फल फला; कृतमाल देवताका आसन काँपा। कहा है कि—

"तादृशामाभियोगे हि कंपंते पर्वता अपि।"

[वैसे (पराक्रमी) पुरुष जब उद्योग करते हैं, तब पर्वत भी काँप उठते हैं।] कृतमाल देवने अवधिज्ञानसे चक्रीका आना जाना और वह स्वामीके पास आते हैं वैसे आकाशमें आकर खड़ा रहा। उसने स्त्रियोंके योग्य चौदह तिलक दिए और अच्छे, वेष, वस्त्र, गंधचूर्ण, माला इत्यादि चीजें चक्रीको भेट की और "हे देव आपकी जय हो! जय हो।" कहकर चक्रवर्तीकी सेवा स्वीकार की।

"सेवनीयाश्चक्रिणो हि देवैरपि नरैरिव।"

[मनुष्योंकी तरह देवताओंके लिए भी चक्रवर्ती सेवा करने योग्य होते हैं।] चक्रवर्तीने स्नेह सहित बातचीत करके

उसे विदा किया और अष्टमभक्तके अंतमें परिवार सहित पारणा किया। वहाँ सगर राजाने आदरपूर्वक कृतमालदेवका अष्टाह्निका उत्सव किया। कारण—यह कृत्य देवताओंके लिए प्रीतिदायक होता है। (१४४-१५२)

अष्टाह्निका उत्सव पूरा हुआ तब चक्रवर्तीने पश्चिम दिशाके सिंधु निष्कुटको जीतने जानेकी सेनापति रत्नको आज्ञा की। सेनापतिने सर झुकाकर पुष्पमालाकी तरह यह आज्ञा स्वीकार की। फिर वह हस्तिरत्नपर सवार होकर चतुरंगिणी सेना सहित सिंधुके प्रवाहके निकट आया। वह अपने उग्र तेजसे भारतवर्षमें ऐसा प्रसिद्ध था मानो वह इंद्र था या सूरज था। वह सभी तरहके म्लेच्छ लोगोंकी भाषाएँ और लिपियाँ जानता था। वह सरस्वतीके पुत्रके समान सुंदर भाषण करता था। भारतमें जितने देश हैं उनमें और जलस्थलमें जितने किले हैं उनमें जाने-आनेके मार्गोंको वह जानता था। मानो शरीरधारी धनुर्वेद हो ऐसे सभी तरहके हथियार चलानेमें वह दक्ष था। उसने स्नान करके प्रायश्चित्त और कौतुकमंगल किया। शुक्ल-पक्षमें जैसे कम नक्षत्र दिखते हैं वैसे उसने बहुत ही कम मणियोंके आभूषण पहने थे। इंद्रधनुष सहित मेघकी तरह धीर सेनापतिने धनुष और परवालेके विस्तारवाले समुद्रकी तरह चर्मरत्न धारण किया। उसने दंडरत्न ऊँचा किया था इससे वह ऐसा शोभने लगा जैसे पुंडरीक कमलसे सरोवर शोभता है। दोनों तरफ डुलते हुए चमरोंसे वह ऐसा शोभता था मानो उसने शरीरपर चंदनके तिलक-छापे लगाए हों और बाजोंकी आवाजसे वह आकाशको ऐसे गुँजा रहा था जैसे मेघ

गर्जना करके गुँजाता है। इस तरह तैयार होकर सेनापति सिंधुनदीके प्रवाहके पास आया। उसने हाथसे चर्मरत्नको स्पर्श किया, इससे वह बढ़कर जहाजसी आकृतिवाला बन गया। उसमें सेनासहित सवार होकर सेनापति सिंधुनदी उतरा। लोहे-के खूँटेसे जैसे उन्मत्त हाथी छूटता है वैसेही, महाबलवान सेनापति सिंधुके प्रवाहको पार कर सेनासहित चारों तरफ फैल गया। उसने सिंहल जातिके, बर्बर जातिके, टंकण जातिके और दूसरे म्लेच्छ जातियोंके एवं यवनोंके द्वीपोंपर आक्रमण किया। कालमुख, जोनक और वैताढ्यपर्वतके मूलमें रही हुई अनेक म्लेच्छ जातियोंसे उसने स्वच्छंदता सहित दंड लिया। सभी देशोंमें श्रेष्ठ कच्छदेशको, बड़े बैलकी तरह, उस सेनापति-ने वशमें कर लिया। वहाँसे लौट, सभी म्लेच्छोंको जीत, वहाँ-की समतल भूमिमें, जलक्रीड़ा करके निकले हुए हाथीकी तरह, उसने मुकाम किया। म्लेच्छ लोगोंके मंडपों, नगरों और गाँवों-के अधिपति तत्कालही वहाँ ऐसे खिचकर आये जैसे पाश (जाल) में फँसे हुए प्राणी खिचकर आते हैं। तरह तरहके आभू-षण, रत्न, वस्त्र, सोना, चाँदी, घोड़े, हाथी, रथ और दूसरे भी अनेक उत्तम पदार्थ—जो उनके पास थे—लाकर उन्होंने इस तरह सेनापतिको भेट कर दिए जिस तरह किसीकी रखी हुई धरोहर वापस लाकर सौंपते हैं। फिर उन्होंने सेनापतिसे कहा, "हम आपके वशमें, कर देनेवाले नौकरोंकी तरह रहेंगे।"

(१५४–१७३)

उनसे भेटं स्वीकार कर, उनको विदा दे, सेनापति रत्न चर्मरत्नसे सिंधु पार हुआ। और चक्रवर्तीके पास आकर उसे

सारी चीजें भेट कर दीं। कहा है,—

"कृष्टाश्वेष्ट्य इवायाति शक्त्या शक्तिमतां श्रियः ॥"

[बलवानोंको उनकी शक्तिके द्वाराही लक्ष्मी दासीकी तरह मिल जाती है।] नदियाँ जैसे समुद्रसे मिलने आती हैं इसी तरह दूर दूरसे आकर राजा जिनकी सेवा करते हैं ऐसा चक्रवर्ती बहुत दिनों तक छावनी डालकर वहीं रहा। (१७४–१७६)

एकबार उन्होंने तमिस्रा गुफाके दक्षिण द्वारके किवाड़ खोलनेकी दंडरत्नरूपी कुंजीको धारण करनेवाले, सेनापतिको आज्ञा दी। उसने तमिस्रा गुफाके पास जा, उसके अधिष्ठायक कृतमालदेवका मनमें ध्यान कर अष्टमतप किया। कारण,—

"..........प्रायस्तपोग्राह्या हि देवताः ॥"

[देवता प्राय: तपसे ग्राह्य (ग्रहण करने लायक, प्रसन्न करनें लायक) होते हैं।] अष्टमतपके अंतमें वह स्नानविलेपन कर, शुद्ध वस्त्र पहन, धूपदानी हाथमें ले, देवताके सामने जाते हैं वैसे, गुफाके सामने गया। गुफाको देखतेही उसने प्रणाम किया और हाथमें दंडरत्न लेकर वह द्वारपर द्वारपालकी तरह खड़ा रहा। फिर वहाँ अष्टाह्निका उत्सव कर, अष्टमांगलिक चित्रित कर सेनापतिने दंडरत्नसे गुफाके द्वारपर आघात किया। इससे कड़ड़ शब्द करते हुए सूखी हुई फलीके संपुटकी तरह, उसके किवाड़ खुल गए। कड़ड़ शब्दकी आवाजसे किवाड़ोंके खुलनेकी बात चक्रवर्तीने जान ली थी, तो भी पुनरुक्तिकी तरह सेनापतिने जाकर वह बात चक्रीसे निवेदन की। चक्रवर्ती हस्तिरत्नपर सवार हो, चतुरंगिणी सेना सहित, मानो वह एक दिग्पाल

हो वैसे, गुफाके पास पहुँचा। उसने हस्तिरत्नके दाहिने कुंभ-स्थलपर, दीवटपर दीपककी तरह, प्रकाशमान मणिरत्न रखा। फिर अस्खलित गतिवाले केसरीसिंहकी तरह, चक्रवर्तीने चक्रके पीछे पचास योजन विस्तारवाली तमिस्रा गुफामें प्रवेश किया और उस गुफाकी दोनों तरफकी दीवारोंपर, गोमूत्रिकाके आकारके पाँच सौ धनुष विस्तारवाले और अंधकारका नाश करनेवाले कांकणीरत्नके उनचास मंडल, एक एक योजनके अंतरसे बनाए। [खुला हुआ गुफाका द्वार और कांकणीरत्नके बने हुए मंडल जब तक चक्री जीवित रहता है तबतक वैसेही रहते हैं।] वे मंडल मानुषोत्तरके चारों तरफकी चाँद सूरजकी श्रेणीका अनुसरण करनेवाले थे, इसलिए उनसे सारी गुफामें प्रकाश हो रहा था। फिर चक्री गुफाकी पूर्व दिशाकी दीवारसे निकलकर पश्चिम दीवारके मध्यमें जाती हुई उन्मग्ना और निमग्ना नामकी, समुद्रमें जानेवाली दो नदियोंके पास आया। उन्मग्ना नदीमें डाली हुई शिला भी तैरती है और निमग्ना नामकी नदीमें डाली हुई तूँबी भी डूब जाती है। वर्द्धकीरत्नने तत्कालही उनपर एक पुल बनाया और चक्रवर्ती सारी सेना सहित, घरके एक जलप्रवाहकी तरह उन नदियोंको पार कर गया। क्रमशः वह तमिस्राके उत्तर द्वारपर पहुँचा; इसके द्वार तत्कालही अपने आप कमलके कोशकी तरह खुल गए। हाथी-पर बैठा हुआ चक्रवर्ती, सूर्य जैसे बादलोंमेंसे निकलता है वैसे, सपरिवार गुफासे बाहर निकला। (१७७–१९५)

दुखकारक है पतन जिनका ऐसे और भुजबलके मदसे उद्धत बने हुए आपात जातिके भील लोगोंने सागरकी तरह

आते हुए सगर चक्रवर्तीको देखा। अपने अस्त्रोंके प्रकाशसे चक्री सूर्यके तिरस्कारका कारण बना था; पृथ्वीकी रज खेचरकी स्त्रियों-की दृष्टियोंको विशेष निमेष देता था, (यानी रजसे उनकी आँखें मुँद जाती थीं) अपनी सेनाके भारसे पृथ्वीको कँपाता था और उसके तुमुल शब्दसे स्वर्ग और पृथ्वीको बहरा बनाता था। वह असमयमें मानो परदेसे बाहर निकला हो, मानो आकाशसे नीचे उतरा हो, मानो पातालसे बाहर आया हो ऐसा मालूम होता था। वह अगणित सेनासे गहन और आगे चलते हुए चक्रसे भयंकर जान पड़ता था। ऐसे चक्रीको आते देखकर वे तत्कालही क्रोध व दिल्लगीके साथ आपसमें इस तरह बात-चीत करने लगे। (१६६–२००)

"हे पराक्रमी पुरुषो! अप्रार्थितकी[1] प्रार्थना करनेवाला; लक्ष्मी, लज्जा, बुद्धि और कीर्तिसे वर्जित; सुलक्षण रहित अपने आत्माको वीर माननेवाला और अभिमानसे अंध बना हुआ यह कौन आया है? अरे! यह कैसे अफसोसकी बात है, कि यह भैंसा केसरीसिंके अधिष्ठित स्थानमें (यानी सिंहकी गुफामें) घुसता है!" (२०१–२०२)

फिर वे महा पराक्रमी म्लेच्छ राजा, इस तरहसे, चक्रवर्ती-के अगले भागकी सेनाको सताने लगे, जिस तरह असुर इंद्रको सताते हैं। थोड़ीही देरमें सेनाके अगले भागके हाथी भाग गए, घोड़े नष्ट हो गए, रथोंकी धुरियाँ टूट गईं और सारी सेना परा-वर्तनभावको प्राप्त हुई (अर्थात छिन्न-भिन्न हो गई)। भील लोगोंके द्वारा सेना नष्ट की गई है यह बात जानकर चक्रवर्तीका

१—जिसके पानेकी कोई प्रार्थना नहीं करता, यानी मौत।

सेनापति, गुस्सा होकर सूर्यकी तरह, अश्वरत्नपर सवार हुआ और वह महापराक्रमी सेनापति नए उगे हुए धूमकेतुके जैसे खड्गरत्नको खींचकर, हरेक म्लेच्छपर आक्रमण करने लगा। जैसे हाथी वृक्षोंका नाश करता है वैसेही, उसने कइयोंको नष्ट कर दिया, कइयोंको मल दिया और कइयोंको भूमिपर सुला दिया। (२०३-२०७)

सेनापतिके द्वारा खदेड़े हुए किरात कमजोर होकर, पवनके द्वारा उड़ाई हुई रूईकी तरह, बहुत योजन तक भाग गए। वे दूर सिंधु नदीके किनारे इकट्ठे हुए और रेतीके विस्तार बनाकर वस्त्रहीन वहाँ बैठे। उन्होंने अत्यंत नाराज होकर अपने कुलदेवता मेघकुमार और नागकुमारके उद्देश्यसे अष्टम भक्त तप किया। तपके अंतमें उन देवताओंके आसन काँपे। उन्होंने अवधिज्ञानसे, सामने देखते हैं ऐसे, किरात लोगोंकी दुर्दशा देखी। कृपासे पिताकी तरह उनकी दुर्दशासे दुःखी होकर मेघकुमारदेव उनके पास आए और आकाशमें रहकर कहने लगे, हे वत्सो ! तुम किस हेतुसे इस हालतमें हो ? हमें यह बात तत्काल बताओ, जिससे हम उसका प्रतिकार करें।

(२०८-२१३)

किरातोंने कहा, " हमारा देश ऐसा है जिसमें कोई आदमी बहुत कठिनतासे प्रवेश कर सकता है; उसीमें किसीने, समुद्रमें वडवानलकी तरह प्रवेश किया है। उससे हारकर हम आपकी शरणमें आए हैं। आप ऐसा कीजिए, जिससे जो आया है वह वापस चला जाए और फिर कभी लौटकर न आए।"

देवता बोले, "जैसे पतिंगा अग्निको नहीं जानता वैसेही,

तुम इससे अजान हो। यह महा पराक्रमी सगर नामका चक्रवर्ती है। इसे सुर या असुर कोई भी नहीं जीत सकता है। उसकी शक्ति इंद्रके समान है। वह शस्त्र, अग्नि, मंत्र, जहर, जल और तंत्रविद्या—सबके लिए अगोचर है (यानी किसीका उसपर असर नहीं होता है।) कोई वज्रकी तरह उसको भी हानि नहीं पहुँचा सकता है। तो भी तुम्हारे अति आग्रहसे हम उसको तकलीफ देनेकी कोशिश करेंगे। हमारी कोशिशका परिणाम इतनाही होगा जितना मच्छरके उपद्रवसे हाथीको होता है।" (२१४-२१६)

फिर वे मेघकुमार देवता वहाँसे अदृश्य हो गए। उन्होंने चक्रवर्तीकी सेनामें दुर्दिन प्रकट किया। उन्होंने घने अंधकारसे दिशाओंको इस तरह भर दिया कि कोई किसीको ऐसे नहीं देख सकता था जैसे जन्मांध मनुष्य किसीको नहीं देख सकता है। फिर उन्होंने छावनीपर सात दिन-रात, आँधी और तूफान सहित मूसलाधार पानी बरसाया। प्रलयकालके समान उन आँधी-पानीको देखकर चक्रवर्तीने अपने हस्त-कमलसे चर्मरत्नको स्पर्श किया। तत्कालही वह छावनीके जितना फैल गया और तिरछा होकर जलपर तैरने लगा। चक्रवर्ती सेना सहित उसपर जहाजकी तरह सवार हो गए, फिर उन्होंने छत्ररत्नको स्पर्श किया। इससे वह भी चर्मरत्नकी तरह फैल गया और सारी छावनीपर बादलकी तरह छा गया। फिर चक्रीने छत्रके डंडेपर प्रकाशके लिए मणिरत्न रखा। इस तरह रत्नप्रभा पृथ्वी-के अंदर जैसे असुर और व्यंतरोंका समूह रहता है वैसेही, चर्म-

रत्न और छत्ररत्नके अंदर चक्रवर्ती, सारी फौज सहित सुखसे रहने लगा। गृहाधिप रत्न अनाज, शाक-पात और फलादिक, सवेरे बोकर शामके वक्त सबको देने लगा। कारण,—उस रत्न-का माहात्म्यही ऐसा है। मेघकुमार अखंड धारासे इसी तरह बरसते रहे जिस तरह दुष्ट लोगोंकी दुष्ट वाणी बरसती है।
(२२०-२२६)

एक दिन सगर चक्रवर्ती कोप सहित सोचने लगा, "वे कौन हैं जो मुझे सतानेका काम कर रहे हैं?" उसके पास रहने-वाले सोलह हजार देवताओंने यह बात जानी। वे कवच पहन, अस्त्र-शस्त्र धारण कर, मेघकुमारोंके पास गए और कहने लगे, "हे अल्पबुद्धि नीचो! क्या तुम नहीं जानते कि यह चक्रवर्ती देवताओंके लिए भी अजेय है! अब भी अगर तुम अपनी भलाई चाहते हो तो यहाँसे चले जाओ, अन्यथा केलेके झाड़की तरह खंड खंड कर दिए जाओगे।"

उनकी बातें सुनकर मेघकुमार देववर्षा बंद कर जलमें मछलीकी तरह छिप गए और आपात जातिके किरातोंके पास जाकर बोले, "चक्रवर्तीको हम नहीं जीत सकते।" यह सुन किरात भयभीत हो,स्त्रियोंकी तरह वस्त्र धारण कर रत्नोंकी भेट ले, सगर राजाकी शरणमें गए। वहाँ वे आधीन हो, चक्रवर्तीके चरणोंमें गिर, हाथ जोड़ कहने लगे, "हम अज्ञान और दुर्मद हैं इसीलिए हमने, अष्टापद पशु मेघपर छलांग मारता है वैसेही आपको सताना चाहा। हे प्रभो! आप हमें हमारे अविचारी कामके लिए क्षमा कीजिए। हम आजसे आपकी आज्ञा पालेंगे; आपके सामंत, प्यादे या सेवक बनकर रहेंगे। हमारी स्थिति अब आपके हाथमें है।"

"प्रणिपातावसानो हि कोपाटोपो महात्मनाम् ।"

[महात्माओंका कोप प्रणिपात पर्यंत ही होता है।] चक्रवर्तीने भेटें स्वीकार कीं और कहा, "उत्तर भरतार्द्धके सामंतोंकी तरह तुम भी कर भरो और मेरे सेवक बनकर रहो।" (उनके स्वीकार करनेपर) उनको सम्मान सहित चक्रीने विदा किया, और अपने सेनापतिको सिंधुका पश्चिम भाग जीतनेकी आज्ञा की।

उसने पूर्व भागकी तरहही चर्मरत्नसे सिंधु नदी पार कर, हिमवंत पर्वत और लवण समुद्रकी मर्यादामें रहे हुए, सिंधुके पश्चिमाभागको जीत लिया। प्रचंड पराक्रमी वह दंडपति-सेनापति म्लेच्छ लोगोंसे दंड लेकर जलसे भरे हुए मेघकी तरह, सगर चक्रीके पास आया। विविध प्रकारके भोग भोगते, अनेक राजाओंसे पूजित चक्रवर्ती बहुत दिनों तक वहीं रहे।

"........नास्ति विदेशः कोऽपि दोष्मताम् ॥"

[पराक्रमी पुरुषोंके लिए कोई स्थान विदेश नहीं है।]

(२३०-२४५)

एक बार, ग्रीष्मऋतुके सूर्यबिंबकी तरह, चक्ररत्न आयुधशालासे निकला और पूर्वके मध्यमार्गसे चला। चक्रके पीछे पीछे महाराजा क्षुद्रहिमालयके दक्षिणनितंबके[1] निकट आए और वहीं पड़ाव डालकर रहे। उन्होंने क्षुद्र हिमालय नामके देवका स्मरण कर अष्टमतप किया और वे पौषधशालामें पौषधव्रत ग्रहण करके बैठे। तीन दिनके पौषधके अंतमें वे रथमें बैठकर

१—पर्वतकी दाहिनी तरफकी ढाल।

हिमालय पर्वतके निकट गए। उन्होंने रथके अगले भागसे पर्वतको इस तरह तीन बार टक्कर लगाई जिस तरह हाथी दाँतोंसे प्रहार करता है। चक्रीने वहाँ रथके घोड़ोंको काबूमें रख, धनुषपर चिल्ला चढ़ा, उसमें अपने नामका बाण रख, उसे चलाया। वह बाण, एक कोसकी दूरीपर हो ऐसे, बहत्तर योजन पर स्थित, क्षुद्रहिमालय देवके आगे जाकर गिरा। बाणको गिरते देख देव क्षणभरके लिए गुस्सा हुआ; मगर बाणके ऊपर लिखे हुए अक्षर पढ़कर वह तत्कालही शांत हो गया। फिर गोशीर्षचंदन, सब तरहकी दवाइयाँ, पद्महृदका जल, देवदूष्य वस्त्र, बाण, रत्नोंके अलंकार और कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाएँ वगैरा पदार्थ उसने आकाशमें रहकर सगर चक्रवर्तीके भेट किए; सेवा करना स्वीकार किया और "चक्रीकी जय हो!" शब्द पुकारे। (२४६-२५४)

उसको विदा कर चक्री अपने रथको लौटा ऋषभकूट पर्वत पर गया। वहाँ भी उस पर्वतके तीन बार रथके अगले भागकी टक्कर लगाई और अश्वोंको नियममें रख उसने उस पर्वतके पूर्व भागपर कांकिणी रत्नसे ये अक्षर लिखे, "इस अवसर्पिणीमें मैं दूसरा चक्रवर्ती हुआ हूँ।" वहाँसे रथको लौटा, अपनी छावनीमें आ, उसने अष्टमतपका पारणा किया। फिर जिसकी, दिग्विजयकी प्रतिज्ञा पूरी हुई है उस सगर राजाने बड़ी धूमधामसे हिमाचलकुमारका अष्टाह्निका उत्सव किया।

(२५५-२५८)

वहाँसे चक्रके पीछे चलते चक्री उत्तर-पूर्वके मार्गसे होते हुए सुखपूर्वक गंगादेवीके सम्मुख आए। वहाँ गंगाके निकट

छावनी डाली और गंगादेवीके उद्देश्यसे अष्टमभक्ततप किया। गंगादेवी भी, सिंधुदेवीकी तरह अष्टमतपके अंतमें, आसन काँपनेसे, चक्रवर्तीको आया जान, आकाशमें आकर खड़ी रही। उसने महाराजाको रत्नोंके एक हजार आठ कुंभ, स्वर्ण-माणिक्य आदि द्रव्य और रत्नोंके दो सिंहासन भेट किए। सगर राजाने गंगादेवीको विदा कर अष्टमतपका पारणा किया और आनंदके साथ देवीकी कृपाके लिए उसका अष्टाह्निका उत्सव किया।
(२५६-२६३)

वहाँसे चक्रके बताए हुए मार्गसे चक्री दक्षिण दिशामें खंडप्रपाता गुफाकी तरफ चला। वहाँ पहुँच खंडप्रपाताके पास छावनी डाल, नाट्यमाल देवका स्मरण कर उसने अष्टमतप किया। अष्टमतपके अंतमें नाट्यमाल देव अपने आसनकंपसे, चक्रवर्तीका आना जान, ग्रामपतिकी तरह भेट ले, उसके पास आया। उसने तरह तरहके अलंकार चक्रवर्तीके भेट किए और मंडलेश्वर राजाकी तरह नम्र होकर उसकी सेवा स्वीकार की। चक्रीने उसको विदा करके, पारणा करनेके बाद हर्षसे उसका अष्टाह्निका उत्सव किया। यह मानो उपकारका बदला था।
(२६४-२६८)

उसके बाद चक्रवर्तीकी आज्ञासे सेनापति आधी सेना लेकर गया और सिंधुके भागकी तरहही गंगाका पूर्व भाग भी जीत आया। (२६९)

फिर सगर चक्रीने वैताढ्यपर्वतकी दोनों श्रेणियोंके विद्याधरोंको पर्वतके राजाओंकी तरहही, शीघ्रतासे जीत लिया। उन्होंने रत्नोंके अलंकार, वस्त्र, हाथी और घोड़े चक्रीके भेट

किए और उसकी सेवा स्वीकार की। महाराजा भरतने विद्याधरोंको, सत्कार सहित विदा किया।

"तुष्यंति हि महीयांसः सेवामन्या गिरापि हि।"

[बड़े आदमी, मैं आपका सेवक हूँ यह बात सुनकर ही संतुष्ट हो जाते हैं।] (२७०-२७२)

चक्रीकी आज्ञासे सेनापतिने तमिस्रा गुफाकी तरहही अष्टमतप वगैरा करके खंडप्रपाता गुफाका द्वार खोला। फिर सगर राजाने हाथीपर सवार हो, मेरु पर्वतके शिखरपर सूर्य रहता है वैसे हाथीके दाहिने कुंभस्थलपर मणि रख, उस गुफामें प्रवेश किया। पहलेकी तरहही उस गुफाकी दोनों तरफ कांकिणी रत्नके मंडल बनाए और पूर्वकी तरहही उन्मग्ना और निमग्ना नामक नदियोंको पार किया। गुफाके मध्यमेंसे सगर राजा उस गुफाके अपने आप खुले हुए, दक्षिण द्वारमेंसे, नदीके प्रवाह की तरह बाहर निकले। (२७३-२७६)

फिर गंगाके पश्चिम किनारेपर छावनी डाली। वहाँ नवनिधियोंका ध्यान करके अष्टमतप किया। तपके अंतमें नैसर्प, पांडु, पिंगल, सर्वरत्नक, महापद्म, काल, महाकाल, मानव, और शंख इन नौ नामोंकी नवनिधियाँ चक्रवर्तीके निकट प्रकट हुईं*

* हिंदूधर्ममें इन नौ निधियोंके नाम ये हैं,—महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील व खर्व। ये नौ कुबेरके खजानोंके नाम बताए गए हैं। श्रीमद हेमचंद्राचार्यने भी 'अभिधान चिंतामणि' के दूसरे कांडके १०७ श्लोकमें यही निधियाँ दी हैं; मगर इस श्लोककी टीकाके अंतमें लिखा है, "जैन समये तु नैसर्पाद्या निधयः, यदवोचाम

इनमेंसे हरेक निधिके हजार हजार देवता सानिध्यकारी होते हैं,—अर्थात साथमें रहते हैं। उन्होंने चक्रीसे कहा, "हे महा-भाग ! हम गंगाके मुँहके पास मगध तीर्थमें रहती हैं। वहाँसे तुम्हारे भाग्यसे तुम्हारे वशमें होकर यहाँ, तुम्हारे पास आई हैं। अब इच्छानुसार हमारा उपभोग करो या दे दो। शायद क्षीर समुद्रका क्षय हो जाए, मगर हमारा क्षय कभी नहीं होगा। हे देव ! नौ हजार सेवकोंसे रक्षित, बारह योजनके विस्तारवाले, और नौ योजनकी चौड़ाईवाले आठ चक्रोंपर स्थित हम तुम्हारी सेविकाओंकी तरह पृथ्वीमें तुम्हारे साथ चलेंगी।"

(२७७-२८३)

उनका कहना स्वीकार कर चक्रीने पारणा किया और आतिथेय[1] की तरह उनका अष्टाह्निका महोत्सव किया।

सगर राजाकी आज्ञासे नदीकी पूर्व दिशामें रहा हुआ दूसरा निष्कुट भी एक गाँवकी तरह सेनापतिने जीत लिया। गंगा और सिंधु नदीकी दोनों बाजुओंके चार निष्कुटोंसे और उसके मध्यके दो खंडोंसे यह भरतक्षेत्र षटखंड कहलाता है। उसे सगर चक्रीने बत्तीस हजार बरसमें धीरे धीरे आरामसे जीत लिया। कहा है,—

"अनुत्सुकानां शक्तानां लीलापूर्वाः प्रवृत्तयः ॥"

[शक्तिमान पुरुषोंकी प्रवृत्ति उत्सुकता रहित लीलापूर्वक-

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते।" [जैन शास्त्रोंमें नैसर्पादि निधियाँ हैं। जिनका उल्लेख त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्रमें है।] संस्कृतमें निधि शब्द पुल्लिंग है।

१—मेहमानवाजी-अतिथि सत्कार।

ही होती है।] (२८४-२८७)

महाराजा सगर चक्रवर्ती चौदह रत्नोंके स्वामी थे, नौ निधियोंके ईश्वर थे, बत्तीस हजार राजा उनकी सेवा करते थे, बत्तीस हजार राजपुत्रियाँ और दूसरी बत्तीस हजार स्त्रियाँ–ऐसे कुल चौसठ हजार स्त्रियाँ–उनके अंत:पुरमें थीं (यानी उनके चौसठ हजार पत्नियाँ थीं)। वे बत्तीस हजार देशोंके स्वामी थे, बहत्तर हजार बड़े बड़े नगरोंपर उनकी सत्ता थी, निन्यानवे हजार द्रोणमुखों[1] के वे स्वामी थे, अड़तालीस हजार पत्तनों[2]-के वे अधिकारी थे, चौबीस हजार कर्बटों[3] और मंडवोंके वे अधिपति थे; वे चौदह हजार संबाधकोंके स्वामी थे, सोलह हजार खेटकों[4] के रक्षक थे, इक्कीस हजार आकरों[5] के नियंता थे, उनचास कुराज्योंके नायक थे, छप्पन अंतरोदकों[6] के पालक थे, छियानवे करोड़ गाँवोंके स्वामी थे, छियानवे करोड़ प्यादे, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े और चौरासी लाख रथोंसे पृथ्वीमंडलको आच्छादित करते थे। इस तरह महान ऋद्धियोंवाले चक्रवर्ती चक्ररत्नका अनुसरण करके, द्वीपांतरोंसे जहाज वापस आता है वैसेही, वापस लौटे। (२८८-२९७)

ग्रामपति, दुर्गपाल और मंडलेश्वर मार्गमें उनकी दूजके चंद्रमाकी तरह, उचित भक्ति करते थे। बधाई देनेवाले पुरुषोंकी तरह, आकाशमें उड़ती हुई धूलि दूरहीसे उनके आनेकी सूचना देती थी। मानो स्पर्द्धासे फैलती हों ऐसे, घोड़ोंके हिनहिनाने-

१—चार सौ गाँवोंके बीचमें जो मुख्य ग्राम होता है उसे द्रोण-मुख कहते हैं। २—कसबा। ३—आठ सौ ग्रामोंका मुख्य ग्राम। ४—खेडा। ५—खान। ६—द्वीप।

की, हाथियोंके चिंघाड़नेकी, चारणोंके आशीर्वादोंकी और बाजों-की आवाजें दिशाओंको बहरा बनाती हैं। इस तरह हमेशा एक एक योजन चलते, आरामसे मुसाफिरी करते, सगर राजा, प्रिय पत्नीके पास जाते हैं वैसे, अयोध्या नगरीके पास आ पहुँचे। पराक्रमके पर्वत समान राजाने विनीता नगरीके निकट समुद्रके समान पड़ाव डाला। (२९८-३०२)

एक दिन सभी कलाओंके भंडार सगर चक्री अश्वक्रीड़ाके लिए एक तूफानी और विपरीत शिक्षावाले घोड़ेपर चढ़े। वहाँ उत्तरोत्तर धारामें वे उस चतुर घोड़ेको फिराने लगे। क्रमशः उन्होंने घोड़ेको पाँचवीं धारामें फेरा, तब मानो भूत लगा हो ऐसे, लगाम वगैराकी कुछ परवाह न कर, घोड़ेने आकाशमें छलांग मारी। मानो अश्वरूपी राक्षस हो ऐसे, कालके वेगसे शीघ्र उड़कर वह सगर राजाको किसी बड़े जंगलमें ले गया। क्रोधसे लगाम खींचकर तथा अपनी राँगसे दबाकर चक्रीने घोड़ेको खड़ा किया और कूदकर वह उससे उतर पड़ा। थक-कर घबराया हुआ घोड़ा भी जमीनपर गिर पड़ा। चक्री वहाँसे पैदलही रवाना हुआ। थोड़ी दूर चलनेपर आगे उसे एक बड़ा सरोवर दिखाई दिया। वह सूर्यकिरणोंकी गरमीसे, पृथ्वीपर गिरी हुई चंद्रिकाके समान मालूम होता था। सगर चक्रीने वनके हाथीकी तरह, थकान मिटानेके लिए उस सरोवरमें स्नान किया और स्वादिष्ट, स्वच्छ और कमलकी सुगंधसे सुगं-धित शीतल जलका पान किया। वह सरोवरसे निकलकर किनारे बैठा तब जलदेवीके समान एक युवती उसे दिखाई दी। वह नवीन खिले हुए कमलके समान मुखवाली और नील-

कमलके समान लोचनवाली थी। उसके शरीरपर सुंदरताका जल तरंगित हो रहा था, चक्रवाक पक्षीके जोड़के समान दो स्तनोंसे और फूले हुए स्वर्णकमलके जैसे हाथ-पैरोंसे वह बहुतही सुंदर मालूम होती थी। शरीरधारिणी सरोवरकी लक्ष्मीके समान उस स्त्रीको देखकर चक्री इस तरह विचार करने लगा—अहा! क्या यह अप्सरा है! व्यंतरी है! नागकन्या है! या विद्याधरी है! कारण, सामान्य स्त्री इस तरहकी नहीं होती। अमृतकी वृष्टिके सहोदरके समान इसका दर्शन हृदयको जैसा आनंद देता है वैसा सरोवरका जल भी नहीं देता।

(३०३-३१५)

उसी समय कमलपत्रके समान आँखोंवाली स्त्रीने भी, पूर्ण अनुरागके साथ, चक्रीको देखा। तत्काल (ही उसकी दशा) कुम्हलाई हुई कमलिनीके जैसी, कामदेवसे घबराई हुई सी हो गई। इससे उसकी सखियाँ, जैसे-तैसे उसे उसके निवास-स्थानपर ले गईं। सगर राजा भी कामातुर हो धीरे धीरे सरोवर-के किनारेपर टहलने लगे। उस समय किसी कंचुकी[1] ने सगरके सामने आकर हाथ जोड़े और कहा, "हे स्वामी! इस भरत-क्षेत्रके वैताढ्यपर्वतमें संपत्तियोंका प्रिय ऐसा गगनवल्लभ नामका नगर है। वहाँ सुलोचन नामका एक प्रसिद्ध विद्याधरपति था। वह ऐसे रहता था जैसे अलकापुरी[2] में कुबेरका भंडारी रहता है। उसके एक सहस्रनयन नामका नीतिवान पुत्र है और विश्व-की स्त्रियोंमें शिरोमणि ऐसी एक सुकेशा नामकी कन्या है। वह जन्मी तब किसी ज्योतिषीने बताया था, कि यह लड़की चक्र-

१—अंतःपुरकी रक्षा करनेवाला। २—कुबेरकी नगरी।

वर्तीकी पट्टरानी और स्त्रीरत्न होगी। रथनुपुरके राजा पूर्णमेघने उसके साथ ब्याह करनेकी इच्छा कई बार प्रकट की; मगर उसके पिताने पूर्णमेघकी बात नहीं मानी। तब जबर्दस्ती लड़कीको ले जानेकी इच्छासे पूर्णमेघ, गर्जना करता हुआ, युद्ध करनेके लिए आया। दीर्घभुजावाले पूर्णमेघने बहुत समय तक युद्ध करके अंतमें सुलोचनको कभी न टूटनेवाली निद्रामें सुला दिया। तब सहस्रनयन धनकी तरह अपनी बहनको लेकर यहाँ चला आया। वह अब सपरिवार यहीं रहता है। हे महात्मन! सरोवरमें क्रीड़ा करती हुई उस सुकेशाने आज तुमको देखा है और जबसे तुमको देखा है तभीसे कामदेवने उसे वेदनामय विकारकी सजा दी है। गरमीसे पीड़ित हो ऐसे, उसके सारे शरीरमें पसीना आता है; डरी हो ऐसे उसका शरीर काँपता है, रोगिणी हो ऐसे उसके शरीरका रंग बदल गया है, शोकमें डूबी हो ऐसे उसकी आँखोंसे आँसू गिर रहे हैं और मानो योगिनी हो ऐसे वह किसी ध्यानमें लीन रहती है। हे जगतत्राता! तुम्हारे दर्शनसे क्षणभरहीमें उसकी अवस्था विचित्र प्रकारकी हो गई है; इसलिए वह मरण-शरण ले इसके पहलेही आप आकर उसकी रक्षा करें।" (३१६–३३०)

इस तरह अंतःपुराध्यक्षा स्त्री कह रही थी, उसी समय सहस्रनयन भी आकाशमार्गसे वहाँ आया और उसने चक्रीको नमस्कार किया। वह सगर चक्रीको आदर सहित अपने निवासस्थान पर ले गया और वहाँ स्त्रीरत्न अपनी बहिन सुकेशाका दान करके उसने चक्रीको संतुष्ट किया। फिर सहस्रनयन और चक्री विमानपर सवार होकर वैताढ्य पर्वतपर स्थित गगन-

वल्लभ नगर गए। वहाँ चक्रीने सहस्रनयनको उसके पिताके राज्यपर बिठाकर, विद्याधरोंका अधिपति बनाया।

(३३१–३३४)

फिर इंद्रके समान पराक्रमी सगर चक्री, स्त्रीरत्नको लेकर अयोध्या अपनी छावनीमें आया। वहाँ उसने विनीता नगरीके उद्देश्यसे अष्टमतप किया और विधिके अनुसार, पौषधशालामें जाकर, पौषधव्रत ग्रहण किया। अष्टमतपके अंतमें उसने पौषध-शालासे निकलकर अपने परिवारके साथ पारणा किया। उसके बाद उसने वासकसज्जा[1] नायिकाके जैसी अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया। वहाँ स्थान स्थानपर तोरण बँधे हुए थे, उनसे वह भ्रकुटीवाली स्त्रीसी मालूम होती थी; दुकानोंकी शोभाके लिए बँधी हुईं और पवनसे उड़ती हुई पताकाओंसे वह मानो नाचने-के लिए हाथ ऊँचे कर रही हो ऐसी जान पड़ती थी। धूपदानियों-से धुआँ निकल निकलकर उसकी पंक्तियाँ बन रही थीं, उनसे ऐसा मालूम होता था, मानो उसने अपने शरीरपर पत्रवल्लियाँ बनाई हों; हरेक मंडपपर रत्नोंकी पात्रिकाएँ[2] सजाई हुई थीं, उनसे मानो वह नेत्रका विस्तारवाली हो ऐसी मालूम होती थी; विचित्र प्रकारकी कीगई मंच-रचनाओंसे मानो वहाँ बहुत अच्छी शय्या बिछी हो ऐसी मालूम होती थी; और विमानोंकी घुघरियोंकी आवाजसे मानो मंगलगान करती हो ऐसी जान पड़ती थी। क्रमसे नगरमें चलते हुए चक्रवर्ती, इंद्र जैसे अपने विमानमें आता है वैसे, ऊँचे तोरणवाले, उड़ती हुई पताकाओं-

१—जब पतिके आनेका समय होता है तब शृंगारादिकसे तैयार होकर, उसकी राह देखनेवाली स्त्री। २—कटोरियाँ।

वाले और जहाँ चारण-भाट मांगलिक गीत गारहे हैं ऐसे अपने घरके आँगनमें पहुँचे। फिर महाराजाने, सदा अपने साथ रहनेवाले सोलह हजार देवताओंको, बत्तीस हजार राजाओंको, सेनानी, पुरोहित, गृहपति और वर्द्धकी नामके इन चार महा-रत्नोंको, तीन सौ साठ रसोइयोंको, श्रेणीप्रश्रेणियोंको, दुर्ग-पालोंको, सेठोंको, सार्थवाहोंको और दूसरे सभी राजाओंको अपने अपने स्थानोंपर जानेकी आज्ञा दी। फिर उसने अंत:पुर-के परिवार और स्त्रीरत्न सहित, सत्पुरुषोंके मनके जैसे, विशाल और उज्ज्वल मंदिरमें प्रवेश किया। वहाँ स्नानगृहमें स्नान और देवालयमें देवपूजा कर राजाने भोजनगृहमें जाकर भोजन किया। फिर साम्राज्य लक्ष्मीरूपी लताके फलोंके समान संगीत, और नाटक वगैराके विनोदोंसे चक्री क्रीड़ा करने लगा। (३३५-३४८)

एक दिन देवता आकर सगर राजासे कहने लगे, "हे राजा! तुमने इस भरत क्षेत्रको वशमें किया है इससे, इंद्र जैसे अर्हतका जन्माभिषेक उत्सव करते हैं वैसेही, हम तुम्हारा चक्रवर्तीपदका अभिषेकोत्सव करेंगे।

यह सुनकर चक्रवर्तीने, लीलासे जरा भ्रकुटी झुकाकर, उनको आज्ञा दी।

"महात्मानः प्रणयिनां प्रणयं खंडयंति न।"

[महात्मा लोग स्नेहीजनोंके स्नेहका खंडन नहीं करते हैं।]

फिर आभियोगिक देवोंने, नगरके ईशान कोणमें अभिषेकके लिए एक रत्नमंडित मंडप बनाया। वे समुद्रों, तीर्थों, नदियों और द्रहोंका पवित्र जल तथा पर्वतोंसे दिव्य औषधें लाए। जब

पूरी तैयारी हो गई तब चक्री अंतःपुर तथा स्त्रीरत्न सहित, रत्नाचलकी गुफाके समान उस रत्नमंडपमें दाखिल हुआ। वहाँ उन्होंने सिंहासन सहित मणिमय स्नानपीठकी, अग्निहोत्री जैसे अग्निकी प्रदक्षिणा करता है वैसे, प्रदक्षिणा की और अंतःपुर सहित पूर्व तरफकी सोपानपंक्तिसे उस पीठपर चढ़ जिसका मुँह पूर्वकी तरफ है ऐसे, सिंहासनको अलंकृत किया। बत्तीस हजार राजा भी, हंस जैसे कमलखंडपर चढ़ते हैं वैसे, उत्तर तरफकी सीढ़ियोंके रस्ते ऊपर चढ़, सामानिक देव जैसे इंद्रके सामने बैठते हैं वैसे, सगर राजाके सामने हाथ जोड़ दृष्टि रख, अपने अपने आसनोंपर बैठे। सेनापति, गृहपति, पुरोहित और वर्द्धकीरत्न इसी तरह सेठ, सार्थवाह और अन्य अनेक मनुष्य, आकाशमें जैसे तारे होते हैं वैसे, दक्षिण तरफके सोपानोंसे ऊपर चढ़ स्नानपीठपर अपने अपने आसनोंपर बैठे। फिर शुभ दिन, वार, नक्षत्र, करण, योग, चंद्र और सभी ग्रहोंके बलवाले लग्नमें देवों इत्यादिने सोनेके, चाँदीके, रत्नोंके और जिनके मुखोंपर कमल रहे हुए हैं ऐसे कलशोंसे, सगर राजाको चक्रवर्तीपदका अभिषेक किया; चित्रकार जैसे रँगनेकी दीवारको साफ करते हैं वैसे, उन्होंने देवदूष्य वस्त्रसे कोमलताके साथ राजाके शरीरको पोंछा; फिर मलयाचलके सुगंधित चंदनादिकसे, चंद्रिकाके द्वारा आकाशकी तरह, उन्होंने राजाके अंगपर विलेपन किया, दिव्य और अति सुगंधवाले फूलोंकी माला, अपने दृढ़ अनुरागकी तरह, राजाको पहनाई, और खुद लाएहुए देवदूष्य वस्त्र और रत्नालंकार चक्रीको पहनाए। तब महाराजाने मेघध्वनिके समान वाणीमें अपने नगरके अध्यक्षको आज्ञा दी, "नगरमें ढिंढोरा पिटवा

दो कि इस नगरमें बारह बरस तक चुंगी नहीं ली जाएगी, कोई सुभट इसमें प्रवेश न करेगा, किसीको सजा नहीं दी जाएगी और हमेशा उत्सव होता रहेगा।"

नगरके अध्यक्षने, अपने आदमियोंको हाथीपर बिठाकर, सारे नगरमें राजाज्ञाकी घोषणा करा दी। इस तरह स्वर्गनगरीके विलास-वैभवको चुरानेके व्रतवाली (अर्थात उसके जैसी) विनीता नगरीमें छह खंड पृथ्वीके स्वामी महाराजा सगरका चक्रवर्तीपदाभिषेक सूचित करनेवाला उत्सव बारह वर्ष तक हरेक दुकानमें, हरेक मकानमें और हरेक रस्तेमें होता रहा

(३४६–३७०)

आचार्य श्री हेमचंद्र विरचित त्रिषष्टिशलाका-
पुरुष चरित्र महाकाव्यके दूसरे पर्वमें
सगरका दिग्विजय व चक्र-
वर्तीपदाभिषेक वर्णन
नामका चौथा सर्ग
समाप्त हुआ।

卐

सर्ग पाँचवाँ

सगरपुत्रोंका नाश

एक वार देवताओंसे निरंतर सेवित, भगवान श्री अजितनाथ स्वामी साकेत नगरके उद्यानमें आकर समोसरे। इंद्रादिक देव और सगरादि राजा यथायोग्य स्थानोंपर बैठे। तव प्रभु धर्मदेशना देने लगे। उस समय पिताके वधका स्मरण करके क्रोधित सहस्रनयनने, वैताढ्य पर्वतपर गरुड़ जैसे सर्पको मारता है वैसेही, अपने शत्रु पूर्णमेघको मार डाला। इसका पुत्र धनवाहन वहाँसे भागकर शरण पानेकी इच्छासे समवसरणमें आया। वह भगवानको तीन प्रदक्षिणा देकर, मुसाफिर जैसे वृक्षके नीचे बैठता है वैसे, प्रभुके चरणोंके पास बैठा। उसके पीछेही हाथमें हथियार लिए सहस्रनयन यह बोलता हुआ आया कि, "मैं उसे पातालसे भी खींचकर, स्वर्गसे भी तानकर, बलवानकी शरणमेंसे भी बाहर निकालकर मारूँगा।" वहाँ उसने धनवाहनको समवसरणमें बैठे देखा। प्रभुके प्रतापसे तत्कालही उसका क्रोध शांत हो गया। वह हथियार त्याग, प्रभुको तीन प्रदक्षिणा दे, योग्य स्थानपर बैठा। तब सगर चक्रीने भगवानसे पूछा, "हे प्रभो! पूर्णमेघ और सुलोचनके वैरका कारण क्या है?" (१–६)

भगवान बोले, 'पहले सूर्यपुर नगरमें भगवान नामका एक करोड़पति वणिक रहता था। एक बार वह सेठ अपना

सारा द्रव्य अपने पुत्र हरिदासको सौंपकर व्यापारके लिए देशांतर गया। वह बारह बरसतक परदेशमें रह, बहुतसा धन जमा कर, वापस आया और रातको नगरके बाहर ठहरा। रातके समय अपने सब परिवारको छोड़कर अकेला अपने घर गया। कारण—

"......उत्कंठा हि बलीयसी।"

[उत्कंठा बलवान होती है।] उसके पुत्र हरिदासने उसे चोर समझकर तलवारके घाट उतार दिया।

"......विमर्शः क्वाल्पमेधसां।"

[अल्पबुद्धि लोगोंको विचार नहीं होता।] अपने मारनेवालेको पहचानकर, तत्कालही, उसके लिए, मनमें द्वेषभाव जन्मे और इसीमें वह मर गया। पीछेसे हरिदासने अपने पिताको पहचाना। अजानमें किए गए अपने इस अयोग्य कार्यके लिए उसे बहुत दुःख हुआ और पश्चाताप करते हुए उसने अपने पिताकी दाह-क्रिया की। कुछ कालके बाद हरिदास भी मरा। उन दोनोंने कई दुःखदायक भवोंमें भ्रमण किया। अंतमें किसी सुकृतके योगसे भावन सेठका जीव पूर्णमेघ हुआ और हरिदासका जीव सुलोचन हुआ। इस तरह हे राजन! पूर्णमेघ और सुलोचनका प्राणांतिक वैर पूर्वभवसेही सिद्ध है और इस भवमें तो प्रसंग आने से हुआ है।" (१०–१६)

सगर राजाने फिरसे पूछा, "इन दोनोंके पुत्रोंमें आपसी बैरका कारण क्या है? और इस सहस्रनयनके लिए मेरे मनमें प्रेमकी भावना क्यों जागी?"

स्वामीने कहा, "कई भव पहले तुम रंभक नामके सन्यासी थे। उस समय तुम्हारे शशि और आवली नामके दो शिष्य थे। उनमेंसे आवली नामका शिष्य बहुत नम्र होनेसे तुमको अति प्रिय था। उसने एकबार गाय खरीदनेका सौदा किया, तभी कठोर हृदयवाला शशि बीचमें पड़ा। उसने, गायके मालिकको बहकाकर गाय खरीद ली। इससे दोनोंकी आपसमें लड़ाई हुई। खूब केशाकेशी, मुक्कमुक्का और लट्ठंलट्ठा हुई। अंतमें शशिने आवलीको मार डाला। चिरकाल तक भवभ्रमण करते हुए शशि यह मेघवाहन हुआ और आवली यह सहस्रनयन हुआ। यही इनके वैरका कारण है। दानके प्रभावसे अच्छी गतियोंमें भ्रमण कर रंभकका जीव-तुम चक्रवर्ती हुए हो। सहस्रनयनके लिए तुम्हारा स्नेह पूर्व भवोंसेही चला आ रहा है।
(२०-२६)

उस समय वहाँ समवसरणमें भीम नामका राक्षसपति बैठा था। उसने वेगसे उठकर मेघवाहनको गले लगाया और कहा, "पुष्करवर द्वीपके भरत क्षेत्रमें, वैताढ्य पर्वतपर कांचनपुर नामके नगरमें पूर्वभवमें मैं विद्युद्दंष्ट्र नामका राजा था। उस भवमें तू मेरा रतिवल्लभ नामका पुत्र था। हे वत्स! तू मुझे बहुत प्रिय था। अच्छा हुआ कि आज तू मुझे दिखाई दिया। इस समय भी तू मेरा पुत्रही है, इसलिए मेरी सेना और दूसरा जो कुछ मेरा है उसे ग्रहण कर। और लवण समुद्रमें देवताओंके लिए भी दुर्जय, सात सौ योजनका सर्व दिशाओंमें विस्तारवाला राक्षसद्वीप नामका सर्व द्वीपोंमें शिरोमणि एक द्वीप है। उसके मध्यमें पृथ्वीकी नाभिमें मेरुपर्वतके जैसा त्रिकूट नामका पर्वत

है। वह बड़ी ऋद्धिवाला पर्वत वलयाकार है। वह नौ योजन ऊँचा, पचास योजन विस्तारवाला और बड़ाही दुर्गम है। उस-पर मैंने सोनेका गढ़ और सोनेकेही घरों और तोरणोंवाली लंका नामकी नगरी बसाई है। वहाँसे छह योजन नीचे पृथ्वीमें, शुद्ध स्फटिक रत्नके गढ़वाली, नाना प्रकारके रत्नमय घरोंवाली और सवा सौ योजन लंबी-चौड़ी पाताललंका नामकी बहुतही प्राचीन और दुर्गम नगरी है। वह भी मेरीही मालिकीकी है। हे वत्स! तू इन नगरियोंको स्वीकार कर और उनका राजा हो। इन तीर्थंकर भगवानके दर्शनोंका फल तुझे आजही मिले।" (२७-३७)

यों कहकर उस राक्षसपतिने नौ माणिकोंका बनाया हुआ एक बड़ा हार तथा राक्षसी विद्या उसे दी। घनवाहन भी तत्कालही भगवानको नमस्कार कर राक्षसद्वीपमें गया और वहाँ दोनों लंकाओंका राजा बना। राक्षसद्वीपके राज्यसे और राक्षसी-विद्यासे उस घनवाहनका वंश तभीसे राक्षसवंश कहलाया। (३८-४०)

फिर वहाँसे सर्वज्ञ दूसरी तरफ विहार कर गए और सुरेंद्र तथा सगरादि भी अपने अपने स्थानोंको गए। (४१)

अब राजा सगर चौसठ हजार स्त्रियोंके साथ रतिसागरमें निमग्न हो, इंद्रकी तरह क्रीड़ा करने लगा। उसे अंतःपुरके संभोगसे (अर्थात स्त्रीरत्नके सिवा अन्य जो स्त्रियाँ थीं उनके साथ संभोग करनेसे) जो ग्लानि हुई थी वह, स्त्रीरत्नके संभोग-से इसी तरह जाती रही जिस तरह मुसाफिरकी थकान, दक्षिण दिशाके पवनसे जाती रहती है। इस तरह हमेशा विषय-सुख

भोगते हुए, सगरके जन्हुकुमार वगैरा साठ हजार पुत्र हुए। उद्यानपालिकाओंके द्वारा पाले हुए वृक्ष, जैसे बढ़ते हैं वैसेही, धाय-माताओंके द्वारा पाले-पोसे गए वे लड़के भी क्रमसे बड़े हुए। वे चंद्रमाकी तरह धीरे धीरे सारी कलाएँ ग्रहण कर, शरीरकी लक्ष्मीरूपी लताके उपवनरूप यौवनवयको प्राप्त हुए। वे दूसरोंको अपनी अस्त्रविद्याकी कुशलता बताने लगे और न्यूनाधिक जाननेकी इच्छासे दूसरोंका शस्त्रकौशल देखने लगे। कलाएँ जाननेवाले वे दुर्दम तूफानी घोड़ोंको भी नचानेकी क्रीड़ामें, घोड़ोंको समुद्रके आवर्तकी लीलासे फिराकर सीधे कर देते थे। देवताओंकी शक्तिको भी लाँघ जानेवाले वे, पेड़के पत्तेको भी अपने कंधोंपर नहीं सहनेवाले, उन्मत्त हाथियोंको भी, उनके कंधोंपर चढ़कर, वशमें कर लेते थे। मदसे शब्द करते हुए, हाथी जैसे विंध्य अटवीमें क्रीड़ा करते हैं वैसेही सफल शक्तिवाले, वे अपनी उम्रवाले लड़कोंके साथ उद्यानादिमें स्वच्छंदतापूर्वक खेलते कूदते थे। (४२-५०)

एक दिन बलवान राजकुमारोंने राजसभामें बैठे हुए चक्रवर्तीसे प्रार्थना की, "हे पिताजी! आपने पूर्व दिशाके आभूषणरूप मगधपति देवको, दक्षिण दिशाके तिलक वरदामपति देवको, पश्चिम दिशाके मुकुट प्रभासपतिको, पृथ्वीकी दोनों तरफ स्थित दो भुजाओंके समान गंगा और सिंधु देवीको, भरतक्षेत्ररूपी कमलकी कर्णिकाके समान वैताढ्यादिकुमार देवको, तमिस्रा गुफाके अधिपति क्षेत्रपाल सदृश कृतमाल देवको, और भरत क्षेत्रकी मर्यादाभूमिके स्तंभरूप हिमाचलकुमार देवको, खंडप्रपाता गुफाके अधिष्ठायक नाट्यमाल देवको, नैसर्प वगैरा नव-

निधियोंके अधिष्ठायक नौ हजार देवताओंको,—इन सभी देवोंको साधारण मनुष्योंकी तरह जीत लिया है। हे तेजस्वी! आपने अंतरंग शत्रुके षट्वर्गकी तरह इस छह खंड पृथ्वीको अपने आपही पराजित किया है। अब आपकी भुजाओंके पराक्रमके योग्य कोई भी ऐसा काम बाकी नहीं रहा कि जिसे हम पूरा कर यह बता सकें कि हम आपके पुत्र हैं। अब तो आपके जीते हुए सर्व भूतलपर स्वच्छंदतापूर्वक विचरण करनेहीमें हमारा, आपके पुत्र होना सफल हो; यही हमारी इच्छा है। हम चाहते हैं कि आपकी कृपासे हम घरके आँगनकी तरह सारी भूमिमें हाथीकी तरह स्वच्छंदतापूर्वक विहार करें।" पुत्रोंकी यह माँग उसने स्वीकार की। कारण—

"महत्सु याञ्चान्यस्यापि न मुधा किं पुनस्तकाम् ॥"

[महान पुरुषोंसे की गई दूसरोंकी प्रार्थना भी जब व्यर्थ नहीं होती तब अपने पुत्रोंकी प्रार्थना तो होही कैसे सकती है?]

(५१-६१)

फिर उन्होंने, पिताको प्रणाम कर अपने निवासस्थानपर आ, प्रयाणमंगलसूचक दुंदुभि बजवाए। उस समय, प्रयाणके समयही, ऐसे अशुभ उत्पात और अशुभ शकुन होने लगे कि जिनसे धीरपुरुष भी भयभीत हो जाएँ। बड़े सर्पकुलसे आकुल रसातलके द्वारकी तरह सूर्यका मंडल सैकड़ों केतु नामक ताराओंसे आकुल हुआ; चंद्रमंडलके मध्यमें छिद्र दिखने लगा, इससे वह नवीन उत्कीर्ण[1] दाँतके ताटंक[2] के समान जान पड़ता था;

१—छिदे या खुदे हुए। २—कानका एक आभूषण।

वायुसे जैसे लता काँपती है वैसेही पृथ्वी काँपने लगी; शिला-ओंके टुकड़ोंके समान बड़े बड़े ओले गिरने लगे; सूखे हुए बद्दलोंके चूर्णके समान रजोवृष्टि होने लगी; गुस्सा हुए शत्रुके जैसी महा भयंकर वायु चलने लगी; अकल्याणकारिणी स्यारिनें दाहिनी तरफ खड़ी होकर बोलने लगीं, उल्लू मानो इनकी स्पर्द्धा करते हों ऐसे क्रोध करने लगे; मानो उग्र प्रकारसे कालचक्रके साथ क्रीड़ा करती हों ऐसी चीलें मंडलाकार होकर, आकाशमें उड़ने लगीं; गरमियोंके दिनोंमें जैसे नदियाँ जलहीन हो जाती हैं ऐसेही सुगंधित मदवाले हाथी मदहीन हो गए और बिलोंमें-से जैसे भयंकर सर्प निकलते हैं ऐसेही, हिनहिनाते हुए घोड़ोंके मुखोंमेंसे धुआँ निकलने लगा। इन अपशकुनोंकी उन्होंने कोई परवाह नहीं की। कारण—

"तत्-ज्ञानामपि हि नृणां प्रमाणं भवितव्यता।"

[उन-उत्पात होनेकी बात,बतानेवाले अपशकुनोंको जानने-वाले मनुष्योंके लिए भवितव्यही प्रमाण होता है।] उन्होंने स्नान करके प्रायश्चित्त कौतुक-मंगलादि किया; फिर वे चक्र-वर्तीकी सारी सेनाके साथ वहाँसे रवाना हुए। महाराजा सगर-ने स्त्रीरत्नके सिवा सभी रत्न पुत्रोंके साथ रवाना किए। कारण—

"......आत्मैव हि सुतत्वभाक्॥"

[अपना आत्मा है वही पुत्र है।] (६२-७४)

सभी पुत्र वहाँसे रवाना हुए। उनमेंसे कई उत्तम हाथियों-पर बैठे हुए थे वे दिग्पालके समान मालूम होते थे; कई घोड़ों-

पर सवार सूर्यके पुत्र रेवंतके जैसे जान पड़ते थे, और कई सूर्यादि ग्रहोंकी तरह रथोंमें सवार थे। सभीने मुकुट पहने थे इसलिए वे इंद्रोंके समान जान पड़ते थे। उनकी छातियोंपर हार लटक रहे थे इनसे वे नदियोंके प्रवाहोंवाले पर्वत जान पड़ते थे। उनके हाथोंमें विविध प्रकारके हथियार थे उनसे वे पृथ्वीपर आए हुए आयुधधारी देवता मालूम होते थे। उनके मस्तकोंपर छत्र थे इनसे वे वृक्षोंके चिह्नोंवाले व्यंतर जान पड़ते थे। आत्मरक्षकोंसे घिरे हुए वे-किनारेसे घिरे हुए समुद्रके समान दिखते थे। ऊँचे हाथ कर करके चारण-भाट उनकी स्तुति करते थे। घोड़े अपने तेज खुरोंसे पृथ्वीको खोदते थे। बाजोंकी आवाजोंसे सारी पृथ्वी बहरीसी हो रही थी। बहुत उड़ी हुई धराकी धूलिसे सभी दिशाएँ अंधीसी हो रही थीं।
(७५-८०)

विचित्र उद्यानोंमें मानो उद्यान देवता हों, पर्वतोंके शिखरोंपर मानो मनोहर पर्वतोंके अधिष्ठायक देवता हों, और नदियोंके किनारोंपर मानो नदीपुत्र हों ऐसे वे स्वेच्छापूर्वक क्रीड़ा करते हुए इस भरतभूमिमें सभी स्थानोंपर फिरने लगे। गाँवोंमें, खानोंमें, नगरोंमें और द्रोणमुखों और किसानोंकी झोंपड़ियोंमें भी वे विद्याधरोंकी तरह जिनपूजा करते थे। बहुत भोग भोगते, बहुत धन देते, मित्रोंको खुश करते, शत्रुओंका नाश करते, रस्तोंमें चिह्न बनानेमें अपना कौशल बताते, फिरते और गिरते हुए शस्त्रोंको पकड़ लेनेमें अपनी निपुणता दिखाते, शस्त्रों व शस्त्रियोंकी विचित्र प्रकारकी और विनोदपूर्ण कथाएँ अपने समान आयुवाले राजाओंसे करते, वाहनोंपर सवार उस अष्टापद

पर्वतके पास आ पहुँचे, जिसमें ऐसी दवाइयाँ हैं कि जिनको देखने मात्रहीसे भूख-प्यास मिट जाती है और जो पुण्यसंपत्तिका स्थानरूप है। (८१-८७)

वह अष्टापद पर्वत, बड़े सरोवरोंसे देवताओंके अमृतरस-का भंडार हो ऐसा मालूम होता था; सघन और पीले वृक्षोंसे वह श्यामरंगी संध्याके बादलोंवाला हो ऐसा लगता था; पासके समुद्रसे बड़े पंखोंवालासा लगता था; झरनोंसे झरते जलप्रवाह-से ऐसा मालूम होता था मानो उसपर पताकाओंके चिह्न हैं; उसपर विद्याधरोंके विलासगृह थे, उनसे ऐसा मालूम होता था मानो वह नवीन वैताढ्य पर्वत है; हर्षित मयूरोंके मधुर स्वरोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो वह गायन कर रहा है; उसपर अनेक विद्याधरियाँ रहती थीं, उनसे वह पुतलियोंवाले चैत्यसा जान पड़ता था; चारों तरफ गिरे हुए रत्नोंसे ऐसा प्रतीत होता था मानो वह रत्नमणियोंसे बना हुआ पृथ्वीका मुकुट हो और वहाँके चैत्योंकी वंदना करनेके लिए हमेशा आनेवाले चारण श्रमणादिकोंसे वह पर्वत नंदीश्वर द्वीपसा मालूम होता था।

(८८-९२)

कुमारोंने उस पर्वतको-जो स्फटिक रत्नमय है और जिस-में सदा उत्सव होते रहते हैं-देखकर सुबुद्धि वगैरा अपने अमा-त्योंसे पूछा, "वैमानिक देवोंके स्वर्गके क्रीड़ापर्वतोंमेंसे मानो एक यहाँ पृथ्वीपर उतरा हो ऐसा, यह कौनसा पर्वत है ? और उसपर, आकाश तक ऊँचा तथा हिमालय पर्वतपर रहे हुए शाश्वत चैत्यके जैसा यह जो चैत्य है, इसको किसने बनवाया है ?" (९३-९५)

मंत्रियोंने जवाब दिया, "पहले ऋषभदेव भगवान हुए हैं। वे भारतमें धर्मतीर्थके आदिकर्ता थे और तुम्हारे पूर्वज थे। उनका पुत्र भरत निन्यानवे भाइयोंमें सबसे बड़ा था। उसने छह खंड पृथ्वी जीती थी और सभीसे अपनी आज्ञा मनवाई थी। इंद्रके लिए जैसे मेरुपर्वत है वैसेही, चक्रीके लिए आश्चर्योंका स्थानभूत यह अष्टापद नामका क्रीड़ागिरि था। इस अष्टापद पर्वतपर ऋषभदेव भगवान, दस हजार साधुओंके साथ, मोक्ष गए हैं। ऋषभ स्वामीके निर्वाणके बाद भरत राजाने यहाँपर रत्नमय पाषाणोंका सिंहनिषद्या नामका चैत्य बनवाया था। उसमें उसने ऋषभ स्वामी और उनके बाद होनेवाले तेईस तीर्थंकरोंके निर्दोष रत्नोंके बिंब बनवाए हैं। हरेक बिंब अपने अपने देहप्रमाण, संस्थान, वर्ण और चिह्नवाले हैं। उसने उनकी प्रतिष्ठा इस चैत्यमें, चारण मुनियोंसे कराई है। उसने अपने बाहुबली इत्यादि निन्यानवे भाइयोंकी चरणपादुकाएँ और मूर्तियाँ भी यहीं स्थापित कराई हैं। यहाँ भगवान ऋषभदेवका समवसरण हुआ था। उस समय उन्होंने भविष्यमें होनेवाले तीर्थंकरों, चक्रवर्तीयों, वासुदेवों, प्रतिवासुदेवों और बलभद्रोंका वर्णन किया था। इस पर्वतके चारोंतरफ भरतने आठ आठ सोपान बनाए थे। इसलिए इसका नाम अष्टापदगिरि है।"

(६६-१०५)

यह हाल सुनकर कुमारोंको हर्ष हुआ। उस पर्वतको अपने पूर्वजोंका जान वे अपने परिवार सहित उसपर चढ़े और सिंहनिषद्या चैत्यमें गए। दूरसे, दर्शन होतेही, उन्होंने हर्ष सहित आदितीर्थंकरको प्रणाम किया। अजित स्वामीके और दूसरे

तीर्थंकरोंके बिंबोंको भी उन्होंने समान श्रद्धाके साथ नमस्कार किया। कारण,—वे गर्भश्रावक¹ थे। मंत्रसे आकर्षित करके मँगवाया हो ऐसे, तत्कालही आए हुए, शुद्ध गंधोदकसे, कुमारोंने जिनबिंबोंको स्नान करवाया। उस समय कई कलशोंको पानीसे भरते थे, कई देते थे, कई प्रभुपर उंडेलते थे, कई खाली हुओंको उठा ले जाते थे; कई स्नात्रविधि बोल रहे थे, कई चामर डुला रहे थे, कई स्वर्णकी धूपदानियाँ उठाते थे, कई धूपदानियोंमें उत्तम धूप डालते थे और कई ऊँचे स्वरसे शंखादि बाजे बजाते थे। उस समय वेगसे गिरते हुए स्नानके गंधोदकसे अष्टापद पर्वत दुगने झरनोंवाला हो गया था। फिर उन्होंने कोमल, कोरे और देवदूष्य वस्त्रोंके समान वस्त्रोंसे, जौहरीकी तरह, भगवानके रत्नबिंबोंको पोंछा, उन भक्तिवानोंने दासीकी तरह, अपनी इच्छासे, बिंबोंपर गोशीर्षचंदनके रससे विलेपन किया और विचित्र पुष्पोंकी मालाओंसे, तथा दिव्यवस्त्रों तथा मनोहर रत्नालंकारोंसे बिंबोंकी पूजा की व इंद्रके रूपकी विडंबना करनेवाले स्वामीके बिंबोंके सामने, पट्टोंपर चावलोंके अष्ट मांगलिक बनाए। उन्होंने सूर्यबिंबके समान देदीप्यमान आरतियोंमें कपूर रखकर, पूजाके बाद आरती की। और हाथ जोड़ शक्रस्तवसे वंदना कर, ऋषभस्वामी वगैराकी इस तरह स्तुति की,—

(१०७-११६)

"हे भगवान ! इस अपार और घोर संसाररूपी समुद्रमें आप जहाजके समान हैं और मोक्षके कारणभूत हैं। आप हमें पवित्र बनाइए। स्याद्वादरूपी महलका निर्माण करनेमें नयों

१—गर्भसे आए, वर्गोंसे श्रावक थे।

और प्रमाणोंसे, सूत्रधारपनको धारण करनेवाले हे प्रभो ! हम आपको नमस्कार करते हैं। योजन तक फैलती हुई वाणीरूपी धारासे, सर्व जगतरूपी बागको हराभरा करनेवाले हे जिन ! हम आपको प्रणाम करते हैं। हम सामान्य जीवनवालोंने भी, आपके दर्शनसे पाँचवें आरेके जीवनवालोंकासा परम फल पाया है। गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और मुक्तिरूप पाँच पाँच कल्याणकोंसे नारकियोंको भी सुख देनेवाले हे स्वामी ! हम आपको वंदना करते हैं। मेघ, वायु, चंद्र और सूर्यकी तरह समदृष्टि रखनेवाले हे भगवान ! आप हमारे लिए कल्याणका कारण बनें। धन्य हैं, अष्टापदपर रहनेवाले पक्षी भी कि जो प्रतिदिन आपके दर्शन करते हैं। बहुत देर तक हम आपके दर्शन और पूजन करते रहे हैं। इससे हमारा जीवन धन्य और कृतार्थ हुआ है। (१२०–१२७)

इस तरह स्तुति कर, पुनः अर्हंतको नमस्कार कर सगर-पुत्र सानंद मंदिरसे बाहर निकले। फिर उन्होंने भरत चक्रीके भ्राताओंके पवित्र स्तूपोंकी वंदना की। बादमें कुछ सोचकर सगरके बड़े पुत्र जह्नुकुमारने अपने छोटे भाइयोंसे कहा, "मेरा खयाल है कि इस अष्टापदके जैसा दूसरा कोई उत्तम स्थान नहीं है; इसलिए हम भी यहाँ इसी चैत्यके जैसा दूसरा चैत्य बनवाएँ। अहो ! यद्यपि भरत चक्रवर्तीने भरतक्षेत्र छोड़ दिया है तो भी वह इस पर्वतपर–जो कि भरतक्षेत्रमें सारभूत है–चैत्यके बहाने अब भी अधिकारारूढ़ है।" कुछ ठहरकर फिर बोला, "नवीन चैत्य बनानेकी अपेक्षा, भविष्यमें जिसके लोप होनेकी संभावना है, इस चैत्यकी यदि हम रक्षा करें तो सगरका

जाएगा कि यह चैत्य हमनेही बनवाया है। कारण जब दुःषम काल आएगा तब लोग अर्थलोलुप, सत्वहीन और कृत्याकृत्य-विचारहीन होंगे। इसलिए नए धर्मस्थान बनवानेकी अपेक्षा पुराने धर्मस्थानोंकी रक्षा करना ही अधिक अच्छा होगा।"
(१२८-१३४)

यह सुनकर सभी छोटे भाइयोंने इस चैत्यकी रक्षाकेलिए उसके चारों तरफ खाई खोदनेके लिए दंडरत्न उठाया। फिर मानो तीव्र तेजसे सूर्य हो ऐसे जह्नु अपने भाइयोंके साथ नगर-की तरह अष्टापदके चारों तरफ खाई बनानेके लिए दंडरत्नसे पृथ्वी खोदने लगा। उनकी आज्ञासे दंडरत्नने हजार योजन गहरी खाई खोदी। उससे वहाँ नागकुमारोंके मंदिर टूटने लगे। अपने मंदिरोंके टूटनेसे, समुद्रका मथन करनेसे जैसे जलजन्तु क्षुब्ध होते हैं वैसे, सारा नागलोक क्षुब्ध हो उठा। मानो परचक्र आया हो, मानो आग लगी हो या मानो महावात उत्पन्न हुआ हो ऐसे नागकुमार इधर उधर दुःखी हो डोलने लगे। अपने नागलोकको इस तरह आकुल देख नागकुमारोंका राजा ज्वलन-प्रभ क्रोधसे अग्निकी तरह जलने लगा। पृथ्वीको खुदा देख ये क्या है? यह सोचता हुआ वह शीघ्रतासे बाहर निकला और सगरचक्रीके पुत्रोंके पास आया। चढ़ती हुई तरंगोंवाले समुद्र-की तरह चढ़ी हुई भ्रकुटिसे वह भयंकर लगता था। ऊँची ज्वालाओंवाली आगकी तरह कोपसे उसके ओंठ फड़क रहे थे। तपे हुए लोहेके तोमरोंकी श्रेणीके जैसी लाल दृष्टि वह डालता था, वज्राग्निकी धोंकनीके समान अपनी नासिकाको फुलाता था और यमराजकी तरह क्रुद्ध और प्रलयकालके सूर्यकी तरह

जिसके सामने न देखा जा सके ऐसा वह नागपति सगरपुत्रोंसे कहने लगा—(१३५-१४४)

"अरे ! तुम अपनेको पराक्रमी माननेवाले और दुर्मद हो ? तुमने भील लोगोंको जैसे किला मिलता है वैसे दंडरत्न मिलनेसे यह क्या करना शुरू किया है ? हे अविचारपूर्वक काम करनेवालो ! तुमने भवनपतियोंके शाश्वत भवनोंको यह कैसी हानि पहुँचाई है ? अजितस्वामीके भाईके पुत्र होकर भी तुमने पिशाचोंकी तरह यह दारुण कर्म करना कैसे शुरू किया है ?" (१४५-१४७)

तब जह्नुने कहा, "हे नागराज ! हमारे द्वारा आपके स्थान गिरे हैं इससे पीड़ित होकर आप जो कुछ कहते हैं वह योग्य है; मगर हम दंडरत्नवालोंने आपके स्थान टूटें इस बुद्धिसे यह पृथ्वी नहीं खोदी है; हमने तो इस अष्टापद पर्वतकी रक्षाके लिए चारों तरफ खाई बनानेको यह पृथ्वी खोदी है। हमारे वंशके मूलपुरुष भरत चक्रवर्तीने रत्नमय चैत्य और सभी तीर्थंकरोंकी रत्नमय सुंदर प्रतिमाएँ बनवाई हैं। भविष्यमें, कालके दोषसे, लोग इनको हानि पहुँचाएँगे इस शंकासे हमने यह काम किया है। आपके स्थान तो बहुत दूर हैं, यह जानकर हमारे मनमें उनके टूटनेकी शंका नहीं हुई थी। मगर ऐसा होनेमें हमें इस दंडरत्नकी अमोघ शक्तिकाही अपराध मालूम होता है। इसलिए अर्हंतकी भक्तिके वश होकर हमने बिना विचारे जो काम किया है उसके लिए आप हमें क्षमा करें। अब फिरसे हम ऐसा नहीं करेंगे।" (१४८-१५४)

इस तरह विनयपूर्वक जह्नुकुमारों द्वारा कही गई बात

सुनकर नागराज शांत हुआ। कहा है कि—

"......सामवागंभः कोपाग्नेः शमनं सताम्।"

[सत्पुरुषोंकी कोपाग्निको शांत करनेमें समतापूर्ण वाणी जलके समान होती है।] "अब फिरसे ऐसा न करना" कहकर नागपति इसी तरह नागलोकमें चला गया जिस तरह सिंह गुफामें चला जाता है। (१५५–१५६)

नागराजके जानेके बाद जह्नुने अपने छोटे भाइयोंसे कहा, हमने अष्टापदके चारों तरफ खाई तो बनाई पर पातालके समान गहरी खाई जलके बिना इसी तरह नहीं शोभती जिस तरह मनुष्यकी बड़ी आकृति भी बुद्धिके बिना नहीं शोभती है। और यह फिर कभी वापिस मिट्टीसे भर भी सकती है। कारण कि काल पाकर बड़े बड़े खड्डे भी थलके समान हो जाते हैं इसलिए इस खाईको बहुत जलसे अवश्य भर देनी चाहिए। मगर यह काम ऊँची तरंगोंवाली गंगाके बिना पूरा न हो सकेगा।" यह सुनकर उसके भाइयोंने कहा, "आप कहते हैं वह ठीक है।" तब जह्नुने मानो दूसरा यमदण्ड हो ऐसा दण्डरत्न हाथमें लिया। उसने दण्डरत्नसे गंगाके किनारेको इसी तरह तोड़ दिया जैसे इंद्रवज्रसे पर्वतके शिखरको तोड़ देता है। किनारेके टूटनेसे गंगा उसी मार्गसे चली। कारण,—

"........नीयते यत्र तत्रांभोः गच्छत्यृजुपुमानिव।"

[सरल पुरुषोंकी तरह जल यहाँ ले जाया जाता है वहीं जाता है।] उस समय गंगा नदी अपनी उछलती हुई ऊँची ऊँची तरंगोंसे ऐसी मालूम होती थी मानो उसने पर्वतोंके

शिखरोंको ऊँचा उठाया है और किनारेपर पानीके टकरानेसे होनेवाले शब्दों द्वारा ऐसी मालूम होती थी मानो वह जोरसे बाजे बजा रही है। इस तरह अपने जलके वेगसे दंडके द्वारा बनाए गए पृथ्वीके मार्गको दुगना चौड़ा करती हुई गंगा अष्टापदगिरिके चारोंओर बनाई गई खाईके पास आई और उसमें इसी तरह गिरी जैसे समुद्रमें गिरती है। पातालके समान भयंकर हजार योजन गहरी खाईको पूरनेमें वह प्रवृत्त हुई। जह्नुसे अष्टापद पर्वतकी खाई पूरनेके लिए गंगाको लाया था इसलिए उसका नाम जाह्नवी कहलाया। बहुत पानीसे खाई पूरी भर गई तब जल नागकुमारोंके मकानोंमें धारायंत्रकी तरह घुसा। बिलोंकी तरह नागकुमारोंके मंदिर जलसे भर गए। इससे हरेक दिशामें नागकुमार व्याकुल हुए; फुँकार करने लगे और दुःखी हुए। नागलोककी व्याकुलतासे सर्पराज (नागकुमारोंका इंद्र ज्वलनप्रभ) बहुत गुस्सा हुआ। अंकुश मारे हुए हाथीकी तरह उसकी आकृति भयंकर हो गई। वह बोला, "सगरके पुत्र पिताके वैभवसे दुर्मद हो गए हैं, इसलिए ये क्षमा करने योग्य नहीं हैं; ये गधेकी तरह दंड देनेके लायक हैं। हमारे भवनोंको नष्ट करनेका इनका एक अपराध मैंने क्षमा कर दिया था; इनको उसके लिए कोई सजा नहीं दी थी। इसीलिए इन्होंने फिरसे यह अपराध किया है। इसलिए अब मैं इनको इसी तरह सजा दूँगा जिस तरह रक्षकलोग चोरोंको सजा देते हैं।"

इस तरह अति कोपसे भयंकर बोलता, असमयमें कालाग्निके समान अत्यंत दीप्तिसे दारुण दिखता, और वड़वानल जैसे समुद्रको सुखा देनेकी इच्छा करता है वैसे, जगतको जला

देनेकी इच्छा करता वह पृथ्वीसे बाहर निकला और वज्रा-नलकी तरह ऊँची ज्वालाओंवाला वह नागराज नागकुमारोंके साथ रसातलसे निकलकर वेगसे वहाँ आया। फिर दृष्टिविष-सर्पोंके राजाने कोपपूर्ण दृष्टिसे सगरपुत्रोंको देखा। इससे आगसे जैसे घासके पूले जलते हैं, वैसेही वे जलकर राख हो गए। उस समय लोगोंमें एक ऐसा भयंकर हाहाकार हुआ कि जो आकाश और पृथ्वीको भर देता था। कारण,—

"लोके स्यादनुकंपायै सागसामपि निग्रहः॥"

[अपराधियोंको सजा मिलनेपर भी लोगोंके दिलोंमें तो दया अवश्य होती ही है।] इस तरह नागकुमार सगर राजाके साठ हजार पुत्रोंको मौतके घाट उतार इसी तरह वापिस रसा-तलमें चला गया, जिस तरह साँझको सूरज डूब जाता है।

(१५७-१५८)

श्री हेमचंद्राचार्य विरचित त्रिषष्टिशलाका
पुरुषचरित्र काव्यके दूसरे पर्वका
सगरपुत्रोंका नाश नामका
पाँचवाँ सर्ग
समाप्त हुआ।

卐

सर्ग छठा

अजित स्वामी और सगरके दीक्षा व निर्वाणका वृत्तांत

उस समय चक्रीकी सेनामें योद्धाओंका ऐसा कोलाहल होने लगा जैसा जलाशयके खाली होनेपर जलजंतुओंका होता है। मानो किम्पाक फल (जहरी कुचला) खाया हो, मानो जहर पिया हो अथवा मानो सर्पने काटा हो ऐसे कई मूर्च्छावश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े; कई नारियलकी तरह अपना सर पछाड़ने लगे; कई मानो छातीने गुनाह किया हो ऐसे उसे बारबार पीटने लगे; कई मानो दासीकी तरह किंकर्तव्यविमूढ़ हो, पैर पसार, बैठे रहे; कई वानरकी तरह कूदनेके लिए शिखर-पर चढ़े; कई अपना पेट चीरनेकी इच्छासे यमराजकी जिह्वाके समान छुरियाँ म्यानसे बाहर निकालने लगे; कई फाँसी लगाने-के लिए, पहले क्रीड़ा करनेके लिए जैसे झूले बाँधे जाते थे वैसे, अपने उत्तरीय वस्त्र वृक्षोंकी शाखाओंपर बाँधने लगे; कई खेतों-मेंसे अंकुर चुनते हैं वैसे मस्तकपरसे केस चुनने लगे; कई पसीनेकी बूँदोंकी तरह शरीरपरके वस्त्रोंको फेंकने लगे; कई पुरानी भीतोंको आधार देनेके लिए रखे हुए खंभोंकी तरह कपोलपर हाथ रखे चिंता करने लगे और कई अपने वस्त्रोंको भी अच्छी तरह रखे बगैर पागल आदमीकी तरह शिथिल अंग होकर पृथ्वीपर लोटने लगे। (१-६)

उस समय अंतःपुरकी स्त्रियोंके हृदयको मथनेवाले, जुदा

जुदा प्रकारके ऐसे विलाप होने लगे जैसे आकाशमें टिटिहरीके होते हैं। "हे देव! हमारे प्राणेशके प्राण लेकर और हमारे प्राणोंको यहाँ रखकर तूने यह अर्धदग्धपन कैसे किया? हे पृथ्वीदेवी! तुम फट जाओ और हमें जगह दो; कारण आकाशमेंसे गिरे हुओंका सहारा भी तुम्हीं हो। हे देव! चंदनगोहकी तरह आज तू हमपर अकस्मात निर्दय होकर बिजली गिरा। हे प्राणो! तुम्हारे मार्ग सरल हों। तुम इच्छानुसार अब यहाँसे चले जाओ और इस शरीरको किराएकी झोंपड़ीकी तरह छोड़ दो। सर्व दुखोंको मिटानेवाली हे महानिद्रा! तू आ। हे गंगा! तू उछलकर हमको जलमृत्यु दे। हे दावानल! तू इस पर्वतके जंगलमें प्रकट हो कि जिससे तेरी मददके द्वारा हम पतिकी गतिको पाएँ। हे केशपाशो! तुम अब पुष्पोंकी मालाओंके साथकी मित्रता छोड़ दो। हे आँखो! तुम अब काजलको जलांजलि दो। हे कपोलो! तुम अब पत्ररेखाके साथ संबंध छोड़ दो। हे ओंठो! अब तुम अलताकी संगतिकी श्रद्धा त्याग दो। हे कानो! तुम अब गाना सुननेकी इच्छाको दूर करो, साथही रत्नकर्णिकाओंका भी त्याग करो। हे कंठो! अब कंठियाँ पहननेकी उत्कंठा मत रखो। हे स्तनो! आजसे तुम्हें कमलोंके लिए जैसे ओसकी बूँदोंका हार होता है वैसेही, अश्रुबिन्दुओंका हार धारण करना होगा। हे हृदय! तुम तत्काल पके हुए फूटकी तरह दो भागोंमें बँट जाओ। हे भुजाओ! अब तुम कंकण और बाजूबंधोंके भारसे मुक्त हुए। हे नितंबो! तुम भी प्रातःकालका चंद्रमा जैसे कांतिका त्याग करता है वैसेही कंदोरोंका त्याग करो। हे चरणो! तुम अनाथकी तरह अब आभूषण मत

पहनो। हे शरीरो! तुम्हें अब कोचकी फलीके स्पर्शकी तरह अंगरागोंकी जरूरत नहीं है।"

अंत:पुरकी स्त्रियोंके इस तरह, करुण स्वरमें रोनेसे, बंधुकी तरह सारे वन भी प्रतिध्वनिके साथ रोने लगे। (१०-२३)

सेनापति, सामंत, राजा और मंडलेश्वर इत्यादि सभी शोक, लज्जा, क्रोध और शंकादिसे रोते हुए विचित्र प्रकारसे बोलने लगे। "हे स्वामीपुत्रो! हम नहीं जानते कि तुम कहाँ गए हो? इसलिए तुम बताओ जिससे हम भी स्वामीकीआज्ञामें तत्पर होनेसे तुम्हारे पीछे आवें। अथवा क्या तुम्हें अंतर्धान होनेकी विद्या प्राप्त हुई है? अगर ऐसा हो तो उसका उपयोग नहीं करना चाहिए, कारण उससे तुम्हारे सेवकोंको दु:ख होता है। तुम नष्ट हुएहो मगर तुम्हारे बिना अगर हम जाएँगे तो हमारा मुख ऋषिहत्या करनेवालोंकी तरह सगर राजा कैसे देखेंगे? यदि तुम्हारे बिना जाएँगे तो लोग भी हमारी दिल्लगी करेंगे। हे हृदयो! अब तुम पानीसे भरे कच्चे घड़ोंकी तरह तत्कालही फूट जाओ। हे नागकुमार! तू भी खड़ा रह। हमारे स्वामीको जो अष्टापदकी रक्षा करनेमें व्यग्र थे–कपटसे कुत्तेकी तरह जलाकर अब तू कहाँ जाएगा? हे तलवारो! हे धनुषो! हे शक्तियो! हे गदाओ! तुम युद्धके लिए तैयार हो जाओ। हे नाग! तू भागकर कहाँ जाएगा? ये स्वामीपुत्र हमें यहाँ छोड़कर चले गए। हा! हा! उन्हें छोड़कर लौटनेसे हमें भी स्वामी जल्दीही छोड़ देंगे। यदि हम वहाँ नहीं भी जाएँगे और यहीं जीवित रहेंगे तो यह सुनकर हमारे स्वामी लज्जित होंगे या हमें दंड देंगे।"

इस तरह नाना प्रकारसे रोनेके बाद सब इकट्ठे होकर

और अपना स्वाभाविक धैर्य धारण कर इस प्रकार सोचने लगे, जैसे प्रथमके नियमसे बादके नियम बलवान होते हैं वैसेही कर्म सबसे ज्यादा बलवान होते हैं। उनसे अधिक बलवान दूसरा कोई नहीं है। जिसका प्रतिकार असंभव है ऐसे कार्यके लिए प्रयत्न करनेकी इच्छा रखना व्यर्थ है। कारण, यह इच्छा आकाशको मारनेकी और हवाको पकड़नेकी इच्छाके समान है। अब रोनेसे क्या फायदा? इसलिए हम हाथी, घोड़े, वगैरा सारी सम्पत्ति धरोहर रखनेवालेकी तरह वापस ले जाकर महाराजको सौंप दें। इसके बाद वे जैसा चाहें वैसा व्यवहार हमारे साथ करें। (२४-२७)

इस तरह विचारकर वे सब अंत:पुरको साथ ले दीन मुख किए अयोध्याकी तरफ रवाना हुए। उनमें उत्साह नहीं था। उनके मुख मलिन थे और नेत्रोंमें ज्योति न थी। वे सोकर उठे हों ऐसे मालूम होते थे। वे धीरे धीरे चलकर अयोध्याके पास पहुँचे;सब एकत्र होकर पृथ्वीपर बैठे। उनका चित्त ऐसा दु:खपूर्ण था मानो किसीने उन्हें वध्यशिलापर बिठाया हो। वे आपसमें इस तरह बातचीत करने लगे, "पहले राजाने हमको भक्त, बहुश्रुत (अधिक ज्ञानी), अनुभवी और बलवान समझकर बड़े आदरके साथ अपने पुत्रोंके साथ भेजा था; उन कुमारोंके बिना हम अपने स्वामीके पास कैसे जाएँ? और नासिकारहित पुरुषकी तरह अपना मुख कैसे दिखाएँ? अथवा अकस्मात वज्रपातके समान उनके पुत्रोंके मरनेकी बात उनसे कैसे कहें? इससे हमें वहाँ जाना ही न चाहिए; हमारे लिए तो सर्व दुखियोंको शरण देनेवाली मौत प्राप्त करना ही योग्य है। स्वामीने हमसे जो आशा

की थी वह पूरी नहीं हुई; इससे (बेकार) प्राणीकी तरह जीनेसे क्या फायदा है ? शायद पुत्रोंकी हृदयद्रावक मौत सुनकर चक्रवर्तीके प्राणपखेरू उड़ जाएँगे। इससे यह अच्छा है कि हम उनसे पहलेही प्राण त्याग दें।" इस तरह जब वे मरनेका निर्णय कर रहे थे तब कोई गेरुवावस्त्रधारी ब्राह्मण वहाँ आया।

(३८-४७)

वह श्रेष्ठ ब्राह्मण कमलके समान हाथ ऊँचा करके जीवन देनेवाली वाणीमें, आत्महत्या नहीं करनेकी बात समझाता हुआ बोला, "हे किंकर्तव्यमूढ़ बने हुए पुरुषो ! तुम अस्वस्थचित्त क्यों हो रहे हो ? तुम उन खरगोशोंके समान हो रहे हो जो शिकारीको आते देखकर ही गिर पड़ते हैं। तुम्हारे स्वामीके एक हजार पुत्र, युगलियोंकी तरह मर गए हैं; मगर उसके लिए अब दुःख करनेसे क्या लाभ है ? एक साथ जन्मे हुए भी कई बार वे अलग अलग स्थानोंपर अलग अलग वक्तपर मरते हैं और कई जुदा जुदा स्थानोंमें जन्मे हुए भी कई बार एकही समय एक स्थानपर मरते हैं ! एक साथ बहुत भी मरते हैं और कम भी मरते हैं। कारण, मौत तो सबके साथ है ही। जैसे सैकड़ों प्रयत्न करनेपर भी प्राणीका स्वभाव नहीं बदला जा सकता, वैसेही चाहे जितना प्रयत्न किया जाय, मगर मौत नहीं टाली जा सकती। अगर मौत टाली जा सकती होती, तो इंद्रों और चक्रवर्तियों आदिने आज तक इसका प्रयत्न क्यों नहीं किया ? क्यों उन्होंने खुदको और अपने स्वजनोंको मौतके पंजेसे नहीं छुड़ाया ? आकाशसे गिरता हुआ वज्र हाथमें पकड़ा जा सकता है; उद्भ्रांत बना हुआ समुद्र पाल बाँधकर रोका जा सकता है;

महाभयंकर प्रलयकालकी आग जलसे बुझाई जा सकती है; प्रलयकालके उत्पातसे तीव्र बना हुआ पवन मंद किया जा सकता है; गिरता हुआ पर्वत सहारा लगाकर रोका जा सकता है; मगर मौत सैकड़ों प्रयत्न करके भी नहीं रोकी जा सकती। इसलिए तुम यह सोच सोचकर दुख न करो कि स्वामीके द्वारा हमें सौंपे गए, स्वामीके पुत्र, इस दुनियासे चल बसे हैं। शोकमें डूबते हुए तुम्हारे स्वामीको हाथ पकड़नेकी तरह, मैं उपदेशप्रद वचन कहकर, पकड़ रक्खूँगा।" (४८-५६)

इस तरह सबको धीरज बँधा, उस ब्राह्मणने रस्तेमें पड़े हुए किसी अनाथके मुर्देको उठाकर विनीता नगरीमें प्रवेश किया; और सगरचक्रीके राजगृहके आँगनमें जा ऊँचा हाथ कर, उच्च स्वरमें इस तरह कहना आरंभ किया, "हे न्यायी चक्रवर्ती! हे अखंड भुजपराक्रमी राजा! तुम्हारे इस राज्यमें अब्रह्मण्यकर्म हुआ है-अत्याचार हुआ है। स्वर्गमें इंद्रकी तरह आप इस भरत क्षेत्रमें रक्षक हैं, तो भी मैं लुट गया हूँ।"

(६०-६३)

ऐसी अश्रुतपूर्व बात सुनकर, सगर चक्रीके हृदयने अनुभव किया, मानो उस ब्राह्मणका दुख उसमें फैल गया है। उसने द्वारपालसे कहा, "यह कौन है? इसको किसने लूटा है? यह कहाँसे आया है? आदि सारी बातें उससे पूछकर मुझे बता या उसे यहीं बुला ला।" द्वारपालने तत्कालही आकर उससे पूछा; मगर वह तो द्वारपालकी बात सुनता ही न हो ऐसे चिल्लाता ही रहा। तब फिरसे द्वारपालने कहा, "हे ब्राह्मण! तू दुःखसे बहरा हो गया है या स्वाभाविकरूपसे ही बहरा है? ये अजित-

नाथ स्वामीके भाई दीन व अनाथकी रक्षा करनेवाले और शरणार्थीको शरण देनेवाले हैं। वे स्वयं सहोदरकी तरह, तुम्हारी पुकार सुनकर, आदर सहित पूछते हैं कि तुमको किसने लूटा है? तुम कौन हो? और कहाँसे आए हो? हमें सारी बातें कहो या खुद आकर महाराजको अपने दुःखका इसी तरह कारण बताओ जिस तरह रोगी वैद्यको अपने रोगका कारण बताता है।" (६४–७०)

प्रतिहारकी बातें सुनकर ब्राह्मणने धीरे धीरे सभागृहमें प्रवेश किया। उसकी आँखें इस तरह मुँद रही थीं जिस तरह ओससे द्रहके कमल मुंदते हैं; उसका मुख ऐसे मलिन हो रहा था जैसे हेमंत ऋतुमें आधी रातका चाँद मलिन होता है, उसके सुंदर केश रीछकी तरह बिखर रहे थे और वृद्ध वानरकी तरह उसके कपोलोंमें खड्डे पड़ रहे थे। (७१–७३)

दयालु चक्रवर्तीने ब्राह्मणसे पूछा, "क्या किसीने तुम्हारा सोना ले लिया है? या तुम्हारे वस्त्र और अलंकार छीन लिए हैं? या किसी विश्वासघातकने तुम्हारी धरोहर दबा ली है? या किसी गाँवके रक्षकने तुमको सताया है? या किसी चुंगीके अधिकारीने तुम्हारा सारा माल छीनकर तुम्हें संकटमें डाला है? या तुम्हारे किसी हिस्सेदारने तुम्हारा हिस्सा नहीं दिया है? या किसीने तुम्हारी स्त्रीका हरण किया है? या किसी बलवान शत्रुने तुमपर आक्रमण किया है? या किसी भयंकर आधि या व्याधिने तुमको पीड़ित कर रक्खा है? या ब्राह्मण जातिके लिए जन्महीसे सुलभ ऐसी दरिद्रताने तुम्हें हैरान कर रखा है? हे ब्राह्मण! तुम्हें जो दुःख हो वह मुझसे कहो।" (७४–७६)

राजाकी बातें सुनकर ब्राह्मण नटकी तरह आँसू गिराता हुआ हाथ जोड़कर बोला, "हे राजा! जैसे स्वर्ग इंद्रके न्याय और पराक्रमसे शोभता है वैसेही यह भरतकी छह खंड पृथ्वी आपसे राजन्वती हो रही है। इसमें कोई किसीका स्वर्ण-रत्नादिक ले नहीं सकता है। धनिक लोग दो गाँवोंके बीचके रस्तेपर भी निश्चिंत होकर घरकी तरह सो सकते हैं। अपने उत्तम कुलकी तरह कोई किसीकी धरोहरका उच्छेद नहीं करता। गाँवोंके रक्षक अपनी संतानोंके समान लोगोंकी रक्षा करते हैं। अधिक धन मिलता हो तो भी चुंगीके अधिकारी, अपराधके प्रमाणमें दंडकी तरह योग्य कर वसूल करते हैं। उत्तम सिद्धांत ग्रहण करनेवाले शिष्य जैसे पुनः गुरुके साथ विवाद नहीं करते हैं वैसेही, हिस्सेदार लोग हिस्सा दे-लेकर फिर कभी झगड़ा नहीं करते। तुम्हारे राज्यमें सभी लोग न्यायी हैं, इसलिए वे परस्त्री-को, अपनी बहिन, कन्या, पुत्रवधू या माताके समान समझते हैं। जैसे यतियोंके उपाश्रयोंमें वैरवाणी नहीं होती वैसेही, तुम्हारे राज्योंमें भी वैरवाणी नहीं है। जैसे जलमें ताप नहीं होता वैसे-ही, तुम्हारी संतुष्ट प्रजामें आधि-व्याधि नहीं है। चौमासेमें तृषाकी तरह सारी पृथ्वी औषधिमय होनेसे उसमें बसनेवाले लोगोंमें किसी तरहकी व्याधि नहीं है। और आप साक्षात कल्प-वृक्ष हैं इसलिए किसीको गरीबीका दुःख नहीं है। इसके सिवा यद्यपि यह संसार दुःखकी खानके समान है तथापि मुझे किसी तरहका दुःख नहीं है। हाँ, मगर मुझ गरीबपर एक यह दुःख आ पड़ा है। (८०-८६)

इस पृथ्वीमें, स्वर्गके जैसा, अवंती नामका एक बड़ा देश

है। वह निर्दोष नगर उद्यानों और नदियों वगैरासे बहुत सुंदर मालूम होता है। उसमें अश्वभद्र नामका एक गाँव है।। वह बड़े-बड़े सरोवरों, कूओं, वापिकाओं और विचित्र आरामोंसे (बगीचोंसे) सुंदर और पृथ्वीका तिलक जान पड़ता है। मैं, उस गाँवका रहनेवाला, वेदाध्ययनमें तत्पर, शुद्ध ब्रह्मकुलमें जन्मा हुआ, एक अग्निहोत्री ब्राह्मण हूँ। एक बार मैं अपना प्राण-प्रिय पुत्र, उसकी माताको सौंप, विशेष विद्या पढ़नेके लिए दूसरे गाँव गया। एक दिन पढ़ते पढ़ते, बिनाही कारण, मुझे पढ़नेमें स्वाभाविक अरुचि हो आई; उस समय यह सोचकर कि, यह बड़ा अपशकुन हुआ है, मैं व्याकुल हो उठा। उस अपशकुनसे डरकर मैं, जातिवंत घोड़ा जैसे पूर्वाश्रित मंदुरा (घुड़शाल) में आता है वैसेही, अपने गाँव वापस आया। दूरसे मैंने अपने घरको शोभाहीन देखा। मैं सोचने लगा कि इसका कारण क्या है? उसी समय मेरी दाहिनी आँख तेजीसे फड़कने लगी और एक कौआ सूखे वृक्षकी डालपर बैठकर कठोर वाणीमें काँव! काँव!! करने लगा। इन अपशकुनोंसे मेरा हृदय, बाण लगा हो ऐसे, विंध गया। मेरा मन खीज उठा। मैं चुगलखोर आदमीकी तरह घरमें घुसा। मुझे आते देखकर मेरी स्त्री–जिसके केश इधर उधर फैल रहे थे– 'हा पुत्र! हा पुत्र!' चिल्लाती हुई जमीन पर लोट गई। उसकी दशा देखकर मुझे निश्चय हो गया कि मेरा पुत्र मर गया है। मैं भी (शोकके वेगसे) प्राणरहित मनुष्यकी तरह पृथ्वीपर गिर पड़ा। जब मेरी मूर्च्छा दूर हुई तब मैं करुण कंठसे विलाप करता हुआ घरमें चारों तरफ देखने लगा। मुझे मेरा यह पुत्र घरमें मरा पड़ा दिखाई दिया। इसको

सांपने काटा था। मैं खाना-पीना छोड़कर रात भर, जागता हुआ शोकमग्न अवस्थामें बैठा रहा। उस समय मेरी कुलदेवीने आकर मुझसे कहा, "हे वत्स! तू पुत्रशोकसे इतना व्याकुल क्यों हो रहा है? अगर तू मेरी बात मानेगा तो मैं तेरे पुत्रको जीवित कर दूँगी।" (१०-१०३)

तब मैंने हाथ जोड़कर कहा, "हे देवी! मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है। कारण—

"पुत्रार्थं शोकविधुरैः किं वा न प्रतिपद्यते।"

[पुत्रशोकसे दुखी पुरुष (अगर पुत्रके जीनेकी आशा हो तो) क्या स्वीकार नहीं करते? अर्थात सब कुछ स्वीकार करते हैं।]

फिर देवीने कहा, "जिसके घरमें आज तक कोई न मरा हो उसके घरसे तू शीघ्र जाकर मांगलिक अग्नि ले आ।" (१०४-१०५)

तबसे मैं पुत्रको जिलानेके लोभसे हरेक घरमें पूछता हुआ और बालककी तरह हँसीका पात्र बना हुआ भ्रांतिसे भटक रहा हूँ। जिस घरमें जाकर मैंने पूछा है उसी घरवालेने अपने घरमें असंख्य आदमियोंके मरनेकी बात कही है; अबतक एक भी घर ऐसा नहीं मिला जिसमें आज तक कोई मरा न हो। इससे आशाहीन होकर मैंने, मरे हुए की तरह, नष्टबुद्धि होकर, दीन वाणीमें सारी बातें देवीसे कहीं। (१०६-१०८)

कुलदेवीने कहा, "यदि एक भी घर पूर्ण मंगलमय नहीं है तो मैं तुम्हारा अमंगल कैसे मिटा सकती हूँ?" (१०९)

देवीकी बात सुनकर तोत्र (बाँसकी लकड़ी) की तरह हरेक गाँव और हरेक शहरमें फिरता हुआ मैं यहाँ आया हूँ। हे राजन्! आप सारी पृथ्वीके रक्षक हैं; बलवानोंके नेता हैं। आपके समान दूसरा कोई नहीं है। वैताढ्य पर्वतके दुर्गपर स्थित दोनों श्रेणियोंमें रहनेवाले विद्याधर भी आपकी आज्ञाको, माला-की तरह मस्तकपर धारण करते हैं; देवता भी सेवककी तरह आपकी आज्ञा मानते हैं; नवनिधियाँ भी हमेशा आपको इच्छित पदार्थ देती हैं; दीन लोगोंको आश्रय देना आपका सदाका व्रत है। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप मेरे लिए कहींसे मंग-लाग्नि मँगवा दीजिए; जिससे देवी मेरे पुत्रको जिंदा करदे। मैं पुत्रके मरनेसे अत्यंत दुखी हूँ।" (११०–११५)

राजा संसारके दुखोंको जानते थे, तो भी वे करुणावश ब्राह्मणके दुखोंसे दुखी हुए। कुछ क्षणोंके बाद कुछ सोचकर कहने लगे, "हे भाई! इस पृथ्वीमें पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरुकी तरह सभी घरोंमें हमारा घर बहुत उत्कृष्ट है; परंतु इस घरमें भी तीन जगतके लिए मानने योग्य शासनवाले, तीर्थंकरोंमें प्रथम और राजाओंमें भी प्रथम, और लाख योजन ऊँचे मेरुपर्वतको डंडेके समान बना (उसके सहारे) अपनी भुजाओंसे इस पृथ्वी-को छत्रके समान बनानेमें समर्थ और चौसठ इंद्रोंके मुकुटोंसे जिनके चरणकमलोंकी नखपंक्तियाँ चमक उठी थीं ऐसे ऋषभ-स्वामी भी कालके योगसे मृत्युको प्राप्त हुए। उनके प्रथम पुत्र भरतराजा भी—जो चक्रवर्तियोंमें प्रथम थे, सुरासुर सभी आनंदसे जिसकी आज्ञा मानते थे और जो सौधर्मेंद्रके आधे आसनपर बैठते थे—आयुष्य समाप्त होनेपर इस नर-पर्यायको छोड़कर चले

गए। इनके छोटे भाई बाहुबली भी—जो भुजपराक्रमवालोंमें स्वयंभूरमण समुद्रकी तरह धुरीण कहलाते थे और दीक्षा ग्रहण करनेके बाद (ध्यानमग्न होनेपर) भैंसे, हाथी और अष्टापद आदि पशु भी जिनके शरीरसे अपना शरीर खुजाते थे तो भी जो अकंपित वज्रदंडकी तरह एक वर्ष तक प्रतिमाधारी रहे थे—आयु समाप्त होनेपर एक क्षणके लिए भी अधिक न जी सके। भरत चक्रवर्तीके पराक्रमी पुत्र आदित्ययशा हुए हैं। उनका पराक्रम आदित्यसे (सूर्यसे) कम नहीं था। उनके पुत्र महायशा हुए; उनका यशोगान दिगदिगंतोंमें होता था और वे पराक्रमियोंमें शिरोमणि थे। उनका पुत्र अतिबल हुआ; इंद्रकी तरह उसका शासन अखंड पृथ्वीपर था। उसका पुत्र बलभद्र हुआ, वह बलसे जगतको वश करनेवाला और तेजसे सूर्यके समान था। उसका पुत्र बलवीर्य हुआ; वह महापराक्रमी, शौर्य व धैर्य-धारियोंमें मुख्य और राजाओंमें अगुआ था। उसका पुत्र कीर्तिवीर्य था; वह कीर्ति और वीर्यसे प्रख्यात था; वह ऐसाही उज्ज्वल था जैसे एक दीपकसे दूसरा दीपक होता है। उसका पुत्र जलवीर्य हुआ; वह हाथियोंमें गंधहस्तिकी तरह और आयुधोंमें वज्रदंडकी तरह मुख्य एवं जिसके पराक्रमको कोई रोक नहीं सकता ऐसा पराक्रमी था। उसका पुत्र दंडवीर्य हुआ; वह मानो दूसरा यमराज हो ऐसा अखंड शक्तिवाला और प्रचंड भुजदंडवाला था। वे सभी दक्षिण भरतार्द्धके स्वामी, महा-पराक्रमी और इंद्रके द्वारा दिए गए भगवानके मुकुटको धारण करनेवाले थे। इसी तरह अपने लोकोत्तर पराक्रमसे वे देवों और असुरोंसे भी न जीते जा सकें ऐसे थे। वे भी दैवयोगसे

इसी घरमें जन्मे थे, तो भी मरण-शरण हुए हैं। उनके बाद भी महान पराक्रमी असंख्य राना हुए हैं और वे सभी मरे हैं। कारण,—

"..........कालो हि दुरतिक्रमः।"

[काल निश्चयही दुरतिक्रम है-अलंघ्य है।] हे ब्राह्मण! मौत चुगलखोरकी तरह सबको हानि पहुँचानेवाली है, आगकी तरह सबको खानेवाली है व जलकी तरह सबको भेदनेवाली है। मेरे घरमें भी मेरे कोई भी पूर्वज मौतसे नहीं बचे, तब दूसरोंके घरकी तो बात ही क्या है? इससे देवीने कहा वैसा मंगलघर कहाँ मिलेगा? इससे अगर तेरा एक पुत्र मरा है तो इसमें न कोई बात आश्चर्यकी है न अनुचित ही। हे ब्राह्मण! जो मौत सबके लिए सामान्य है उसके लिए तू क्यों शोक करता है? बालक हो, बूढ़ा हो, दरिद्र हो या चक्रवर्ती हो, मौत सबके लिए समान है। संसारका ऐसाही स्वभाव है कि इसमें, नदीकी तरंगोंकी तरह, या शरदऋतुके बादलोंकी तरह, कोई चीज स्थिर नहीं रहती। फिर इस संसारमें माता, पिता, भाई, पुत्र, बहिन और पुत्रवधू वगैरा जो संबंध हैं वे पारमार्थिक नहीं हैं। गाँवकी धर्मशालामें जैसे मुसाफिर जुदी जुदी दिशाओंसे आकर एकत्र मिलते हैं वैसेही, कोई कहींसे और कोई कहींसे इस संसारमें आकर एक घरमें इकट्ठे होते हैं। उनमेंसे फिर सभी अपने अपने कर्मोंके परिणामोंके अनुसार जुदा जुदा रस्तोंसे चले जाते हैं। इसके लिए कौन सुबुद्धि मनुष्य लेशमात्र भी शोक करता है? हे द्विजोत्तम! इससे तुम मोहका चिह्न जो शोक है उसका त्याग करो, धीरज रखो और दे

महासत्व ! तुम अपने आत्मामें विवेक धारण करो।"

(११६-१२५)

ब्राह्मणने कहा, हे राजा ! मैं प्राणियोंके संसारके स्वरूप-को अच्छी तरह जानता हूँ; मगर पुत्रके शोकसे आज भूल गया हूँ। कारण—जब तक मनुष्यको इष्टवियोगका अनुभव नहीं होता तब तक सभी सब कुछ जानते हैं और धीरज रखते हैं। हे स्वामिन ! हमेशा, अर्हतके आदेशरूपी अमृतपानसे जिनका चित्त निर्मल हुआ है ऐसे, तुम्हारे समान, धीरजधारी और विवेकी पुरुष विरलेही होते हैं। हे विवेकी ! आपने मुझ मोह-में फँसनेवालेको उपदेश दिया, यह बहुत उत्तम किया; मगर यह विवेक तुम्हें, अपनी आत्माके लिए भी धारण कर लेना चाहिए। कष्ट होनेपर मोहादिक द्वारा नाश होती हुई यह आत्मा रक्षणीय है। कारण,—हथियार इसलिए धारण किए जाते हैं, कि वे संकटके समय काममें आवें; मगर उनका उपयोग हर समय नहीं होता। यह काल रंक और चक्रवर्ती सबके लिए समान है। यह किसीके भी प्राण और पुत्र ले जाते नहीं डरता। जिस घरमें थोड़े पुत्र होते हैं उसमें थोड़े मरते हैं और जिसमें अधिक होते हैं उसमें अधिक मरते हैं; मगर पीड़ा दोनोंको इसी तरह समान होती है जिस तरह कीड़ेपर व हाथीपर थोड़ा और अधिक प्रहार होनेसे उनको होती है। जैसे मैं अपने एक पुत्रका नाश होनेसे शोक नहीं करूँगा वैसेही, तुम भी अपने सभी पुत्रोंका नाश होनेपर भी शोक न करना। हे राजा! भुजपराक्रमसे सुशोभित तुम्हारे साठ हजार पुत्र कालयोगसे एक साथ मृत्युको पाए हैं।" (१२६-१४५)

उसी समय कुमारोंके साथ गए हुए सामंत, अमात्य, सेनापति वगैरा और जो कुमारोंकी हाजिरीमें रहनेवाले नौकर थे वे सभी–जो वहाँ पासहीमें खड़े थे–उत्तरीय वस्त्रोंसे मुँह ढँके लज्जासे सर झुकाए, दावानलसे जले हुए वृक्षोंकी तरह दुःखसे विवर्ण शरीरवाले, पिशाच और किन्नरोंकी तरह अत्यंत शून्य मनवाले, लुटे हुए कृपणोंकी तरह दीन और आँसूभरी आँखोंवाले, मानो साँपोंने काटा हो ऐसे कदम कदम पर गिरूँ गिरूँ करते, मानो संकेत किया हो ऐसे, सभी एक साथ सभामें आए और राजाको प्रणाम कर, मानो जमीनमें धँस जाना चाहते हों ऐसे, सर झुकाए अपने अपने योग्य आसनोंपर बैठे। (१५६–१६०)

ऊपर जिसका उल्लेख हो चुका है ऐसी, ब्राह्मणकी वाणी सुनकर तथा बिना महावतके हाथियोंकी तरह, आदमियोंको आया देखकर उसकी आँखें इस तरह स्थिर हो गईं मानो वे चित्रलिखित हों, निद्रावश हों, स्तंभित हों या शून्य हों। राजा अधैर्यवश मूर्च्छित हो गया। जब उसकी मूर्च्छा गई तब ब्राह्मणने उसे बोध देनेके लिए फिरसे कहा, "हे राजा! विश्वकी मोहनिद्राका नाश करनेके लिए सूर्यके समान ऋषभदेवके तुम वंशज हो और अजितनाथ स्वामीके तुम भाई हो; फिर भी तुम सामान्य मनुष्यकी तरह मोहके वशमें पड़कर उन दोनों महात्माओंको क्यों कलंकित करते हो?" (१६१–१६५)

राजाने सोचा, "इस ब्राह्मणने अपने पुत्रकी मौतके बहाने, मेरे पुत्रोंके नाशरूपी नाटककी प्रस्तावना सुनाई थी। यह ब्राह्मण साफ तौरसे मेरे पुत्रोंकी मौतकी बात कह रहा है; इसी

तरह मेरे ये प्रधान पुरुष भी, कुमारोंके बिना अकेले इस दिशा-में यहाँ आए हैं। मगर वनमें विचरते केसरीसिंहकी तरह पृथ्वीपर इच्छापूर्वक भ्रमण करते हुए मेरे कुमारोंका नाश कैसे संभव हो सकता है? महारत्न जिनके साथ हैं और जो अपने पराक्रमसे भी अजेय हैं ऐसे अस्खलित शक्तिवाले कुमारोंको कौन मार सकता है?"

फिर उसने पूछा, "यह बात क्या है?"

तब अमात्यादिने नागकुमारोंके इंद्र ज्वलनप्रभका सारा हाल कह सुनाया। उस हालको सुनकर वज्रताड़ितकी तरह, भूमिको भी कँपाता हुआ वह, मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़ा। कुमारोंकी माताएँ भी मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ीं। कारण—

"पितुर्मातुश्च तुल्यं हि दुःखं सुतवियोगजं।"

[पुत्रके वियोगका दुःख माता और पिता दोनोंको समान-ही होता है।] उस समय समुद्रके तटपर खड्डेके अंदर गिरे हुए जलजंतुओंकी तरह अन्य लोगोंका महा आक्रंदन भी राजमंदिर में होने लगा; मंत्री वगैरा राजकुमारोंकी मौतकी साक्षीरूपा अपनी आत्माकी निंदा करते हुए करुण स्वरमें रोने लगे। स्वामीकी उस हालतको देखनेमें मानो असमर्थ हों ऐसे, छड़ीदार भी हाथोंसे मुँह ढँक कर ऊँची आवाजमें हाय-तोबा करने लगे; आत्मरक्षक अपने प्राणप्रिय हथियारोंका त्याग करते हुए हवासे टूटकर गिरे हुए वृक्षोंकी तरह पृथ्वीपर गिरकर लोटने और विलाप करने लगे; दावानलमें पड़े हुए तीतुर पक्षीकी तरह कंचुकी अपने कंचुक फाड़ फाड़कर रोने लगे और चिरकालके

बाद आए हुए शत्रुकी तरह छाती कूटते हुए दास दासी 'हम मारे गए' कहते हुए क्रोध करने लगे। (१६६-१७८)

फिर पंखोंकी हवासे और पानी छिड़कनेसे राजा और रानी दुःखशल्यको टालनेवाली संज्ञा पाने लगे (अर्थात उनकी वेहोशी जाती रही।) जिनके वस्त्र, आँसुओंके साथ बहते हुए काजलसे मलिन हो गए थे; जिनके गाल और नेत्र, फैली हुई केशरूपी लतासे ढँक गए थे; जिनके छातीपर लटकते हुए हारोंकी लड़ियाँ, हाथोंसे छाती पीटनेके कारण, टूट रही थीं; पृथ्वीपर बहुत लोटनेसे जिनके कंकणोंके मोती फूट रहे थे; वे इतने दीर्घनिःश्वास डाल रही थीं मानो वे शोकाग्निका धुआँ थे और जिनके कंठ और अधरदल सूख गए थे—ऐसी रानियाँ अत्यंत रुदन करने लगीं। (१७९-१८२)

चक्रवर्ती सगर भी उस समय धीरज, लाज और विवेकको छोड़, रानियोंकी तरह शोकसे व्याकुल हो इस तरह विलाप करने लगा, "हे कुमारो! तुम कहाँ हो? तुम भ्रमण करना छोड़ो। अब तुम्हारे लिए राज्य करनेका और मेरे लिए व्रत ग्रहण करनेका अवसर है। इस ब्राह्मणने सत्यही कहा है, 'दूसरे कोई तुमसे नहीं कहते कि चोरके समान छलिया भाग्यके द्वारा तुम लूटे गए हो। हे देव! तू कहाँ है? हे अधम नागराज ज्वलनप्रभ! तू कहाँ है? क्षत्रियोंके लिए अयोग्य ऐसा आचरण करके अब तू कहाँ जाएगा? हे सेनापति! तेरे भुजबलकी प्रचंडता कहाँ गई? हे पुरोहितरत्न! तेरा क्षेमंकरपन कहाँ गया? हे वर्द्धकीरत्न! तेरी दुर्गरचनाकी कुशलता क्या गल गई थी? हे

गृहीरत्न! तेरी संजीवनी औषधियाँ क्या तू कहीं भूल गया था? हे गजरत्न! उस समय तुझे क्या गजनिमीलिका[1] हुई थी? हे अश्वरत्न! उस समय क्या तुझे शूलने सताया था? हे चक्र! हे दंड! हे खड्ग! उस समय तुम क्या छिप गए थे? हे मणि और काँकिणी रत्न! क्या तुम भी उस समय दिनके चंद्रमाकी तरह तेजहीन हो गए थे? हे छत्ररत्न! हे चर्मरत्न! तुम क्या बाजेके चमड़ेकी तरह फट गए थे? हे नवनिधियो! क्या तुमको पृथ्वीने निगल लिया था? अरे! तुम सबके भरोसे मैंने कुमारोंको शंकाहीन होकर भेजा था। खेलते हुए राजकुमारोंकी उस अधम नागसे तुमने रक्षा क्यों न की? अथवा सर्वनाश हो जानेपर अब मैं क्या कर सकता हूँ? शायद इस ज्वलनप्रभका, उसके वंश सहित नाश कर डालूँ; मगर इससे क्या मेरे कुमार पुनः जीवित होंगे? ऋषभस्वामीके वंशमें आज तक कोई इस तरह नहीं मरा। हे पुत्रो! तुम इस लज्जाजनक मृत्युको कैसे प्राप्त हुए? मेरे सभी पूर्वज अपनी आयु पूरी करके ही मरनेवाले हुए हैं। उन्होंने अंतमें दीक्षा ग्रहण करके स्वर्ग या मोक्ष पाया है। हे पुत्रो! जैसे जंगलमें उगे हुए वृक्षोंके दोहद पूरे नहीं होते हैं वैसेही तुम्हारी स्वेच्छा विहारकी इच्छा अबतक पूरी नहीं हुई थी। उदयमें आया हुआ पूर्ण चाँद राहुसे ग्रसा गया; फले-फूले वृक्षोंको हाथीने तोड़ डाला; किनारेपर पहुँचे हुए जहाजके, तटके पर्वतने, टुकड़े कर दिए; आकाशमें आए हुए नवीन मेघको हवाने छिन्न-भिन्न कर दिया; पके हुए धानका खेत दावानलमें भस्म

१—एक रोग जिससे हाथीकी आँखें बंद हो जाती हैं, न देखनेका बहाना।

हो गया; इसी तरह धर्म, अर्थ व कामके योग्य बने हुए तुम नष्ट हो गए। हे पुत्रो ! कृपण धनाढ्यके घर आए हुए याचकोंकी तरह मेरे घर आकर तुम अकृतार्थ अवस्थामेंही यहाँसे चले गए। यह कितने दुःखकी बात है ? हे पुत्रो ! उद्यानादि बिना चंद्रिकाकी तरह, आज चक्रादि रत्न और नवनिधियाँ तुम्हारे बिना मेरे किस कामके हैं ? प्राणप्रिय पुत्रोंके बिना यह छह खंड भरत क्षेत्रका राज्य मेरे लिए व्यर्थ है।" (१८३-२०२)

इस तरह विलाप करते हुए सगर राजाको समझानेके लिए उस ब्राह्मण श्रावकने अमृतके समान मधुर वाणीमें फिरसे कहा, "हे राजा ! तुम्हारे वंशने पृथ्वीकी रक्षाकी तरह ज्ञान भी अधिकारमें पाया है (यानी ज्ञान भी विरासतमें मिला है।) इसलिए दूसरा कोई तुमको बोध दे, यह व्यर्थकी बात है। जगतकी मोहनिद्रा नष्ट करानेके लिए सूर्यके समान अजितनाथ स्वामी जिसके भाई हों उसे दूसरेसे उपदेश मिले, यह बात क्या लज्जाजनक नहीं है ? जब दूसरे यह जानते हैं कि यह संसार असार है तब तुमको तो यह बात अवश्य मालूम होनी ही चाहिए; क्योंकि तुम तो जन्महीसे सर्वज्ञके सेवक हो। हे राजा ! पिता, माता, जाया, पुत्र और मित्र ये सब संसारमें सपनेके समान हैं। जो सवेरे दिखता है वह मध्याह्नमें नहीं दिखता और जो मध्याह्नमें दिखता है वह रातमें नहीं दिखाई देता। इस तरह इस संसारमें सभी पदार्थ अनित्य हैं। तुम स्वयंही तत्त्ववेत्ता हो, इसलिए धीरज धरो। कारण, सूर्य दुनियाको प्रकाशित करता है, परंतु सूरजको प्रकाशित करनेवाला कोई नहीं होता।" (२०३-२०९)

लवण समुद्र जैसे मणियों और लवणसे व्याप्त होता है;

पक्षकी मध्यरात्रि जैसे अंधकार और प्रकाशसे व्याप्त होती है; हिमाचल पर्वत जैसे दिव्य औषधियों और हिमसे व्याप्त होता है वैसे उस ब्राह्मणके उपदेशको और पुत्रोंकी मृत्युके समाचारको सुनकर सगर राजा उपदेश और मोहसे व्याप्त हो गया। उस राजाके हृदयमें जैसा स्वाभाविक महान धैर्य था वैसाही मोह पुत्रोंकी मृत्युके समाचारसे आया था। एक म्यानमें दो तलवारों-की तरह और एक खंभेमें दो हाथियोंकी तरह राजाके दिलमें बोध और मोह एक साथ उत्पन्न हुए। तब राजाको समझानेके लिए सुबुद्धि नामका बुद्धिमान मुख्य प्रधान अमृतके जैसी वाणी-में बोला, "शायद समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे, शायद पर्वत-समूह कंपित हो, शायद पृथ्वी चपल हो उठे, शायद वज्र जर्जर हो जाए, मगर आपके समान महात्मा महान दुःखोंके आने पर भी, जरासे भी नहीं घबराते। इस संसारमें क्षणभर पहले दिखाई देनेवाले और क्षणभरके बाद नष्ट होनेवाले सर्व कुटुंबा-दिको जानकर विवेकी पुरुष उनमें मोह नहीं करते हैं। इसके संबंधमें एक कथा कहता हूँ। आप ध्यान देकर सुनिए।

(२१८-२१९)

इस जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके किसी नगरमें एक राजा था। वह जैनधर्मरूपी सरोवरमें हंसके समान था, सदाचाररूपी मार्ग-का मुसाफिर था, प्रजारूपी मयूरोंके लिए मेघ था, मर्यादाका पालन करनेमें सागर था, सभी तरहके व्यसनरूपी तृणके लिए अग्नि था, दयारूपी बेलके लिए आश्रयदाता वृक्ष था, कीर्ति-रूपी नदीके उद्गमके लिए पर्वतके समान था और शीलरूपी रत्नोंका रोहणाचल पर्वत था। वह एक बार सुखसे अपनी सभा-

में बैठा था, उस समय छड़ीदारने आकर विनती की, "कोई पुरुष आया है। उसके हाथमें फूलोंकी माला है। कोई कलाकार जान पड़ता है। वह आपसे कुछ निवेदन करनेके हेतु आपके दर्शन करना चाहता है। वह पंडित है, कवि है, गंधर्व है, नट है, नीतिवेत्ता है, अस्त्रविद्याका जाननेवाला है या इंद्रजालिक है सो कुछ मालूम नहीं होता, मगर आकृतिसे वह कोई गुणवान मालूम होता है। कहा जाता है कि जहाँ सुंदर आकृति होती है वहाँ गुण भी होता है।" (२२०-२२६)

राजाने आज्ञा दी, "उसको तुरन्त यहाँ बुलालाओ कि जिससे वह अपने मनकी बात कहे।"

राजाकी आज्ञासे छड़ीदारने उसे सभामें जाने दिया। उसने राजाकी सभामें इस तरह प्रवेश किया जिस तरह बुध सूर्यके मंडलमें प्रवेश करता है। 'खाली हाथ राजाके दर्शन न करने चाहिए' यह सोचकर उसने मालीकी तरह एक फूलोंकी माला राजाके भेट की। फिर छड़ीदारके बताए हुए स्थानमें आसन देनेवालोंने उसे एक आसन बताया। वह हाथ जोड़कर उसपर बैठा। (२२७-२३०)

फिर जरा आँखें विस्फारित कर, हास्यसे ओंठोंको फैला राजाने कृपापूर्वक उससे पूछा, "ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंमेंसे तुम किस वर्णके हो? अंबष्ठ और मागध वगैरा देशोंमेंसे तुम किस देशके हो? श्रोत्रिय हो? पौराणिक हो? स्मार्त हो? जोषी हो? तीन विद्याएँ जाननेवाले हो? धनुर्धाचार्य हो? ढाल तलवारके उपयोगमें होशियार हो? तुम्हें भाला चलानेका अभ्यास है? तुम शल्य जातिके शस्त्रोंमें कुशल हो?

तुम गदायुद्ध जानते हो ? तुम दंडयुद्धमें पंडित हो ? तुम शक्ति चलानेमें विशेष सशक्त हो? मूसलशस्त्रमें कुशल हो ? हलशस्त्रमें अधिक चतुर हो? चक्र चलानेमें पराक्रमी हो ? छुरीयुद्धमें निपुण हो? बाहुयुद्धमें चतुर हो? अश्वविद्याके जानकार हो ? हाथीकी शिक्षामें समर्थ हो ? व्यूहरचनाके जाननेवाले आचार्य हो? व्यूह-रचनाको तोड़नेमें कुशल हो ? रथादिककी रचना जानते हो ? रथोंको चला सकते हो ? सोना चाँदी वगैरा धातुओंको गढ़ना जानते हो ? चैत्य,प्रासाद और हवेली वगैरा चुननेमें निपुण हो? विचित्र यंत्रों और किलों वगैराकी रचनामें चतुर हो? किसी सांयात्रिक[1] के कुमार हो ? किसी सार्थवाहके सुत हो ? सुनार हो? मणिकार हो ? वीणामें प्रवीण हो ? वेणु बजानेमें निपुण हो ? ढोल बजानेमें चतुर हो ? तबला बजानेमें उस्ताद हो ? वाणीके अभिनेता हो ? गायनशिक्षक हो ? सूत्रधार हो ? नटोंके नायक हो? भाट हो ? नृत्याचार्य हो ? संशप्तक[2] हो? चारण हो ? सभी तरहकी लिपियोंके जानकार हो ? चित्रकार हो ? मिट्टीका काम करनेवाले हो ? या किसी दूसरी तरहके कारीगर हो? नदी, द्रह या समुद्र तैरनेकी क्या कभी तुमने कोशिश की है ? या माया, इंद्रजाल अथवा दूसरे किसी कपटप्रयोगमें चतुर हो ?"

(२३१-२४५)

इस तरह आदरके साथ राजाने उससे पूछा, तब वह नमस्कार कर विनय सहित इस तरह बोला, "हे राजा, जैसे जलका आधार समुद्र और तेजका आधार सूर्य है, उसी तरह

१—जलमार्गसे व्यापार करनेवाला। २—युद्धसे पराङ्मुख न होनेकी प्रतिज्ञा करनेवाला युद्ध।

सभी पात्रोंके (यानी सब तरहके आदमियोंके)आप आधार हैं। मैं वेदादि शास्त्रोंको जाननेवालोंका सहाध्यायी हूँ; धनुर्वेदादि जाननेवालोंका मानो मैं आचार्य हूँ, उनसे अधिक जानता हूँ; सभी कारीगरोंमें मानो मैं प्रत्यक्ष विश्वकर्मा हूँ; गायन इत्यादि कलाओंमें मानो पुरुषके रूपमें मैं साक्षात सरस्वती हूँ; रत्नादिकके व्यवहारमें मानो मैं जौहरियोंका पितातुल्य हूँ; वाचालतासे मैं चारण-भाटोंके उपाध्याय जैसा हूँ; और नदी वगैरा तैरनेकी कला तो मेरे बाएँ हाथका खेल है। मगर इस समय तो इंद्रजालका प्रयोग करनेके लिए मैं आपके पास आया हूँ। मैं तत्कालही आपको उद्यानोंकी एक पंक्ति बता सकता हूँ और उसमें वसंतादि ऋतुओंका परिवर्तन करनेमें भी मैं समर्थ हूँ। आकाशमें गंधर्व नगरका संगीत प्रकट कर सकता हूँ। क्षणभरमें मैं अदृश्य,दृश्य तथा अंतर्धान हो सकता हूँ। मैं कटहलकी तरह खैरके अंगारे खा सकता हूँ; तपे हुए लोहेके तोमरको सुपारीकी तरह चबा सकता हूँ; मैं जलचरका, स्थलचरका या खेचरका रूप एक तरहसे या अनेक तरहसे परकी इच्छाके अनुसार धारण कर सकता हूँ; मैं दूरसे भी इच्छित पदार्थ ला सकता हूँ; पदार्थोंके रंगोंको तत्काल ही बदल सकता हूँ; और दूसरे अनेक अचरज पैदा करनेवाले काम बतानेका कौशल मुझमें है। इसलिए हे राजन् ! आप मेरे इस कलाभ्यासको, देखकर उसे सफल बनाइए।" (२४६–२५७)

इस तरह उसके, गर्जना करके स्थिर हुए मेघकी तरह, प्रतिज्ञा करके, चुप होनेपर राजाने कहा, "हे कलाविद पुरुष ! जैसे कोई चूहा पकड़नेको पहाड़ खोदता है, मछलियां वगैरा

पकड़नेके लिए सरोवर सुखाना है, लकड़ीके लिए आम्रवन उजाड़ता है, मुट्ठी भर चूनेके लिए चंद्रकांतमणि जलाता है, घावपर पट्टी बाँधनेके लिए देवदूष्य वस्त्र फाड़ता है और खीलीके लिए बड़ा देवालय तोड़ता है वैसेही स्फटिकके समान शुद्ध और परमार्थ प्राप्त करनेकी योग्यतावाले अपने आत्माको तुमने अपविद्या प्राप्त करनेमें मलिन बनाया है। संनिपातके रोगीकी तरह तुम्हारी इस अपविद्याको देखनेवालेकी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। तुम याचक हो इसलिए इच्छानुसार धन माँग लो। हमारे कुलमें किसीकी (योग्य) आशाका भंग नहीं किया जाता।" (२५८-२६४)

इस तरह राजाकी कठोर बातें सुनकर सदाका मानी पुरुष अपने क्रोधको छिपाता हुआ बोला, "क्या मैं अंधा हूँ ? बहरा हूँ ? लूला हूँ ? लँगड़ा हूँ ? नपुंसक हूँ ? या और किसी तरहसे दयापात्र हूँ कि जिससे मैं अपने गुण बताए बगैर ही, अचरजमें डाले बगैरही, कल्पवृक्षके समान आपसे दान ग्रहण करूँ ? आपको मेरा नमस्कार है। मैं यहाँसे कहीं दूसरी जगह जाऊँगा।" यों कहकर वह खड़ा हुआ। 'मुझपर कृपणताका दोष आएगा' इस भयसे राजाने उसे आदमी भेजकर ठहरनेको कहा; मगर वह न ठहरा। सभागृहसे निकल गया। सेवकोंने राजाकी शरम यह कहकर मिटाई कि स्वामीने द्रव्य देना चाहा था तो भी उसने क्रोधके मारे नहीं लिया। इसमें स्वामीका क्या दोष है ? (२६५-२७०)

वही पुरुष एक बार फिर ब्राह्मणका वेष धारण कर हाथमें भेट ले राजाके द्वारपर आ खड़ा हुआ। द्वारपालने राजाको

उसके आनेकी खबर दी। द्वारपर आए हुए मनुष्यकी खबर राजाको देना तो द्वारपालका कर्त्तव्यही है। राजाकी आज्ञासे, सत्कार संबंधी कार्योंके अधिकारी पुरुषके साथ, छड़ीदारने दरबारमें उसका प्रवेश कराया। वह राजाके सामने खड़ा हो, ऊँचा हाथ कर आशीर्वादात्मक आर्यवेदोंके मंत्र, पदक्रमसे बोला। मंत्र बोलनेके बाद वह छड़ीदारके बताए हुए आसनपर बैठा। राजाकी कृपापूर्ण आँखें उसको देखने लगीं। राजाने पूछा, "तुम कौन हो ? और क्यों आए हो ?" (२७१-२७६)

तब वह, ब्राह्मणोंका अग्रेसर बोला, "हे राजन् ! मैं नैमित्तिक (ज्योतिषी) हूँ; साक्षात ज्ञानके अवतार जैसे गुरुकी उपासना करके मैंने यह विद्या प्राप्त की है। आठ अधिकरणी ग्रंथ, फलादेशके ग्रंथ, जातक तथा गणितके ग्रंथ अपने नामकी तरह मुझे याद हैं। हे राजा ! मैं तपःसिद्ध मुनिकी तरह भूत, भविष्य और वर्तमानकी बातें ठीक ठीक बता सकता हूँ।"

तब राजाने कहा, "हे प्रिय ! वर्तमान समयमें तत्कालही जो नवीन बात होनेवाली हो वह बताओ। कारण,—दूसरेको तुरंत अपने ज्ञानका विश्वास करा देनाही ज्ञानका फल है।"
(२७६-२८०)

तब ब्राह्मणने कहा, "आजसे सातवें दिन समुद्र सारे संसारको जलमय बनाकर प्रलय कर देगा।" (२८१)

यह सुनकर राजाके मनमें विस्मय और क्षोभ एक साथ उत्पन्न हुए; इसलिए उसने दूसरे ज्योतिषियोंकी तरफ देखा। राजाकी भ्रकुटिके संकेतसे पूछे गए और ब्राह्मणकी उस दुर्घट (असंभव) बातसे क्रुद्ध बने हुए वे ज्योतिषी उपहासके साथ

कहने लगे, "हे स्वामी ! जान पड़ता है कि यह कोई नया ज्योतिषी हुआ है, या इसके ज्योतिष शास्त्र ही नए बने हुए हैं, कि जिनके प्रमाणसे यह श्रवणके लिए दुखदाई वचन कहता है कि जगत जलमय हो जाएगा। परंतु क्या ग्रह, नक्षत्र और तारे भी नए हुए हैं कि जिनकी वक्रगतिके आधारपर यह ज्योतिषी ऐसी बात कहता है ! जो ज्योतिषशास्त्र हैं वे सभी सर्वज्ञके शिष्य गणधरकी रची हुई द्वादशांगीके आधार पर ही बने हुए हैं। उनके अनुसार विचार करनेसे ऐसा अनुमान नहीं होता। ये सूर्यादिक ग्रहों–जो उस शास्त्रके साथ संबंध रखते हैं–के अनुमानसे भी हम ऐसा नहीं मानते। लवण समुद्र जंबूद्वीपमें है वह किसी समय भी (हे ब्राह्मण !) तुम्हारी तरह मर्यादाका त्याग नहीं करता। शायद आकाशसे या जमीनसे एक नया समुद्र उठे और वह इस विश्वको जलमय करे तो भले करे। यह कोई दु:साहसी है ! पिशाचका साधक है ! मत्त है ! उन्मत्त है ! स्वभावसे ही वातपीड़ित है ! अथवा असमयमें शास्त्र पढ़ा है ! या इसे मिरगीका रोग है कि जिससे उच्छृंखल होकर अनुचित बातें करता है ! आप मेरुकी तरह स्थिर हैं और पृथ्वीकी तरह सब कुछ सहन करनेवाले हैं, इसी लिए दुष्ट लोग स्वच्छंदता पूर्वक ऐसी बातें कर सकते हैं। ऐसी बात किसी साधारण आदमीके सामने भी नहीं कही जा सकती है, तो फिर कोप या कृपा दिखानेकी शक्ति रखनेवाले आपके सामने तो कही ही कैसे जा सकती है ? ऐसे दुर्वचन बोलनेवाला वक्ता धीर है ? या जो ऐसे वचन सुनकर गुस्से नहीं होता वह श्रोता धीर है ? यदि इन वचनोंपर स्वामीको श्रद्धा हो तो भले रखें। कारण;

इस समय तो यह वचन प्रमाणके विना भी स्वीकार करना पड़ता है। शायद पर्वत उड़ें, आकाशमें फूल उगें, आग ठंडी हो, वंध्याके पुत्र जन्मे, गधेके सींग उग आवें, पत्थर पानीपर तैरने लगे और नारकीको वेदना न हो; मगर इसकी वाणी कदापि सच नहीं हो सकती।" (२८१-२९८)

अपनी राजसभाके ज्योतिषियोंकी बातें सुनकर योग्य-अयोग्यका ज्ञान रखनेवाले राजाने कौतुक सहित नए ज्योतिषीकी तरफ देखा। वह ज्योतिषी उपहासपूर्ण वाणीमें, मानो प्रवचनने प्रेरणा की हो ऐसे, गर्वसहित बोला, हे राजा ! आपकी सभाके मंत्री क्या मसखरे हैं? या वसंतऋतुमें विनोद करानेवाले हैं? या ग्रामपंडित हैं? हे प्रभो ! आपकी सभामें यदि ऐसे सभासद होंगे तो चतुराई निराश्रित होकर नष्ट हो जाएगी। अहो ! आप विश्वमें चतुर हैं; आपका इन मुग्ध-मूर्ख लोगोंके साथ बातचीत करना इसी तरह अशोभनीय है जिस तरह सियारके साथ केसरीसिंहका बातचीत करना। यदि ये लोग आपके कुलक्रमागत नौकर हों तो इन अल्पबुद्धि लोगोंका, स्त्रियोंकी तरह पोषण होना चाहिए; ये लोग आपकी सभामें बैठने योग्य इसी तरह नहीं हैं जिस तरह स्वर्ण और माणिक्यसे बनाए गए मुकुटमें कांचके टुकड़े बिठाने योग्य नहीं होते। ये लोग शास्त्रोंके रहस्यको जरासा भी नहीं समझते; ये तोतेकी तरह मात्र पाठ पढ़कर अभिमानी हुए हैं। मिथ्या गाल फुलानेवाले और गधेकी पूँछ पकड़कर रखनेवाले लोगोंकी यह वाणी है; मगर जो रहस्य-अर्थको जानते हैं वे तो सोच-विचार कर ही बोलते हैं। शायद सार्थवाहका पुतला ऊँटपर बिठानेसे देशांतरों-

में फिर आवें, मगर इससे क्या यह कहा जा सकता है कि वह मार्गका जानकार है ? जिसने कभी पानीमें पैर न रक्खा हो ऐसा मनुष्य सरोवर या नदीमें, तूँबे बाँधकर तैर ले, इससे क्या यह कहा जाएगा कि उसे तैरना आता है ? इसी तरह ये लोग गुरुकी वाणीसे शास्त्र पढ़े हैं, मगर उसके रहस्यार्थको जरासा भी नहीं जानते। यदि इन दुर्बुद्धि लोगोंको मेरी बातका विश्वास न हो तो विश्वास दिलानेवाले सात दिन क्या बहुत दूर हैं ? हे राजेंद्र ! महासमुद्र अपनी उत्ताल तरंगोंसे यदि जगतको जलमय बनाकर मेरी वाणीको सत्य बना देगा तो ये ज्योतिष-ग्रंथोंको जाननेवाले तुम्हारे सभासद क्या पर्वतोंको पक्षीकी तरह उड़ते हुए बताएँगे ? क्या वृक्षकी तरह आकाशमें पुष्प बताएँगे ? क्या अग्निको जलकी तरह शीतल बताएँगे ? क्या वंध्याके धेनुकी तरह पुत्र जन्माएँगे ? क्या भैंसेकी तरह गधेको सींग-वाला बताएँगे ? क्या पत्थरोंको जहाजोंकी तरह सरोवरोंमें तैराएँगे ? और नारकियोंको वेदनारहित करेंगे ? या इस तरह असमंजसके साथ बोलते हुए ये मूर्ख लोग सर्वज्ञभाषित शास्त्रों-को अन्यथा बनाएँगे ? हे राजा ! मैं सात दिन तक तुम्हारे नौकरोंके अधिकारमें रहूँगा। कारण—जो मिथ्याभाषी होता है वह ऐसी हालतमें नहीं रह सकता। यदि मेरी बात सातवें दिन सच न हो तो चोरकी तरह चांडालोंसे मुझे सजा दिल-वाइए। (२९९-३१८)

राजाने कहा, "इस ब्राह्मणकी बात संदिग्ध, अनिष्ट या असंभव हो अथवा सच हो तो भी सातवें दिन तुम सबका संदेह मिट जाएगा और उसके बाद सत्यासत्यकी विवेचना

होगी।" फिर उसने ब्राह्मणको, धरोहरकी तरह, अपने अंग-रक्षकोंको सौंपा और सभा विसर्जन की। उस समय नगरके लोग तरह तरहकी बातें करने लगे।—"अहो ! आजसे सातवें दिन महान कौतुक देखनेको मिलेगा।" "अफसोस ! उन्मत्तकी तरह बोलनेवाला यह ब्राह्मण सातवें दिन मारा जाएगा।" "शायद युगांतर होनेवाला है अन्यथा अपनी जान देनेको कौन इस तरह बोलेगा ?" ब्राह्मण सोचने लगा, मैं सातवें दिन सबको अचरजकी बात बताऊँगा। उत्सुकताकी अधिकतासे दुखी होते हुए ब्राह्मणने बड़ी कठिनतासे सात दिन बिताए। संशय मिटानेको उत्सुक बने हुए राजाने भी बार बार गिनकर छह दिन छह महीनेकी तरह बिताए। सातवें दिन राजा चंद्रशाला (छत) पर बैठकर ब्राह्मणसे कहने लगा, "हे विप्र, आज तेरे वचनकी और जीवनकी अवधि पूर्ण हुई। कारण, तूने कहा था कि सातवें दिन प्रलयके लिए समुद्र उछलेगा, मगर अबतक तो कहीं ज्वारका नाम भी नहीं दिखाई देता। तूने सबका प्रलय बताया था, इसलिए सभी तेरे वैरी हुए हैं। यदि तेरी बात झूठी होगी तो वे सभी तुझे दंड दिलानेका प्रयत्न करेंगे। मगर तू एक जंतुमात्र ! तुझे सजा करनेसे मुझे क्या लाभ होगा ? इससे अब भी तू यहाँसे चला जा। जान पड़ता है, तूने यह बात उन्मत्त दशामें कही है।" (३१६-३२६)

फिर राजाने अपने रक्षकोंको आज्ञा दी-"इस बिचारे गरीबको छोड़ दो। यह भले सुखसे यहाँसे चला जाए।" उस समय, जिसके ओठोंपर हँसी खेल रही है ऐसा, वह ब्राह्मण बोला, "महात्माओंके लिए यह योग्य है कि वे सबपर दया

रखें। हे राजा! जबतक मेरी की हुई प्रतिज्ञा झूठी नहीं होती तबतक मैं दयापात्र नहीं हूँ। जब मेरी प्रतिज्ञा मिथ्या होगी, तब आप मेरा वध करानेमें समर्थ हैं। और जब मैं वधके योग्य हो जाऊँ तब यदि आप मुझे छोड़ देंगे तो आप दयालु कहलाएँगे। मुझे आपने छोड़ दिया है तो भी मैं यहाँसे नहीं जाऊँगा और कैदीकी तरह ही रहूँगा। अब मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण होनेमें थोड़ाही समय है। थोड़ी देरके लिए धीरज रखिए और यहीं बैठे हुए यमराजके अगले सैनिकोंके समान उछलते हुए समुद्रकी तरंगोंको देखिए। आपकी सभाके इन ज्योतिषियोंको थोड़ी देरके लिए साक्षी बनाइए। कारण, क्षणभरके बाद आप, मैं और ये कोई नहीं रहेंगे।"

यों कहकर वह विप्र मौन हुआ। क्षणभरके बाद मौतकी गर्जनाके समान कोई अव्यक्त शब्द सुनाई दिया। अचानक हुई उस पीड़ाकारी ध्वनिको सुनकर वनके मृगोंकी तरह सबने अपने कान खड़े किए। उस समय वह ब्राह्मण कुछ सर उठाकर, कुछ आसनसे उठकर और कुछ ओठोंको टेढ़ा कर इस तरह कहने लगा, "हे राजा! आकाश और पृथ्वीको भर देनेवाली सागरकी ध्वनिको सुनिए। वह आपकी विदाईको सूचित करनेवाले भंभा (डुग्गी) की आवाजके समान है। जिसका अंशमात्र जल ग्रहण कर पुष्करावर्तादि मेघ सारी पृथ्वीको डुबा देते हैं वही समुद्र मर्यादा छोड़कर बेरोक इस पृथ्वीको डुबाता आ रहा है। उसे देखिए। यह समुद्र खड्डोंको भर रहा है, वृक्षोंको मथ रहा है, स्थलोंको ढक रहा है और पर्वतोंको आच्छादित कर रहा है। अहो! यह बड़ाही दुर्वार है। जोरकी हवा चल रही हो, तो

उसका उपाय घरमें घुस जाना है और अग्निको बुझानेका उपाय जल है; परंतु उछलते हुए समुद्रको रोकनेका कोई उपाय नहीं है।" ब्राह्मण यों कह रहा था, उसी समय देखतेही देखते मृगतृष्णाके जलकी तरह दूरसे चारों तरफ फैलता हुआ जल प्रकट हुआ। (३३०-३४५)

कसाई जैसे उसपर विश्वास करनेवालेका नाश करता है वैसेही, समुद्रने विश्वका संहार किया है। इस तरह हाहाकार ध्वनि हुई। लोग क्रुद्ध होकर बोलने और ऊँचे सर कर-करके देखने लगे। फिर वह ब्राह्मण राजाके पास आया और उँगली-से बताकर क्रूरकी तरह कहने लगा, "देखिए, वह डूब गया। यह डूब गया। अंधकारके समान समुद्रके जलसे पर्वत शिखर तक ढक गये। ये सारे वन ऐसे मालूम हो रहे हैं, मानो उन्हें जलने उखाड़ दिया है और इसीसे ये सारे वृक्ष अनेक तरहके जलजंतुओंके समान तैरते हुए मालूम होते हैं। थोड़ी देरमें यह समुद्र अपने जलसे गाँवों, खानों और नगरों इत्यादिका नाश करेगा। अहो! इस भवितव्यताको धिक्कार है। चुगलखोर आदमी जैसे सद्‌गुणोंको ढक देते हैं वैसेही, उच्छृंखल समुद्रके जलने नगरके बाहरके बगीचोंको ढक दिया है। हे राजन! समुद्र-का जल इस तरह किलेके चारों तरफ क्यारोंकी तरह फैल गया है और उछल उछलकर टकरा रहा है। अब यह फैलता हुआ जल इस किलेको लांघ रहा है; वह ऐसा मालूम होता है मानो बलवान घोड़ा सवार सहित उसे लांघ रहा हो। देखिए, इस समुद्रके प्रचंड जलसे सारे मंदिर व महल व नगर कुंडकी तरह भर रहे हैं। हे राजा! अब यह घुड़सवारोंकी सेनाकी तरह

दौड़ता हुआ आपके घरके दरवाजेपर शब्द करता आ रहा है। हे पृथ्वीपति! जलमें डूबे हुए नगरका मानो अब शेष भाग हो ऐसा यह आपका महल बंदरके समान मालूम होता है। आपकी मेहरबानीसे उन्मत्त बने हुए राजसेवक जैसे आपके महलोंके जीनोंपर चढ़ते हैं वैसेही, यह पानी बेरोक आपके महलोंके जीनोंपर चढ़ रहा है। आपके महलोंकी पहली मंजिल डूब गई, दूसरी डूब रही है और अब तीसरी मंजिल भी डूबने लगी है। अहो! क्षणभरमें देखते ही देखते चौथी, पाँचवीं और छठी मंजिलें भी समुद्रके जलसे भर गईं। विषके वेगकी तरह चारों तरफसे इस घरके आसपास जलका जोर बढ़ रहा है अब शरीरमें मस्तककी तरह केवल छत ही बाकी रही है। हे राजा! यह प्रलय हो गया। मैंने जिस तरह पहले कहा था वैसाही हुआ है। उस वक्त जो मुस्कराकर हँस रहे थे वे आपकी सभामें बैठनेवाले ज्योतिषी अब कहाँ गए? (३४६-३६१)

तब विश्व-संहारके शोकसे राजाने पानीमें कूदनेके लिए खड़े होकर कमर कसी और वह बंदरकी तरह उछलकर कूद गया। क्षणभरके बाद राजाने अपने आपको पहलेकी ही तरह सिंहासनपर बैठा पाया, और क्षणमात्रमेंही समुद्रका जल न मालूम कहाँ चला गया। राजाकी आँखें आश्चर्यसे फैल गईं और उसने देखा कि वृक्ष, पर्वत, किला और सारी दुनिया जैसे थे वैसेही मौजूद हैं। (३६२-३६५)

अब वह जादूगर ढोलक बाँधकर अपने हाथोंसे बजाते हुए इस तरह कहने लगा "आरंभमें इंद्रजालका प्रयोग करने-वाले और आदिमें इंद्रजालकी कलाका सर्जन करनेवाले संवर

नामक इंद्रके चरणकमलोंमें मैं प्रणाम करता हूँ।" अपने सिंहासनपर बैठे हुए राजाने आश्चर्यके साथ ब्राह्मणसे पूछा, "यह क्या है ?" तब ब्राह्मणने जवाब दिया, "पहले आपको सभी कलाओंके जानकार और गुणग्राही समझकर मैं आपके पास आया था, उस समय आपने मेरा यह कहकर तिरस्कार किया था कि इंद्रजाल मतिको भ्रष्ट करता है। इसीलिए उस समय आपने मुझे धन देना चाहा था, तो भी मैंने नहीं लिया और मैं चला गया था। गुणवानको गुण प्राप्त करनेमें जो श्रम होता है वह बहुतसा धन मिलनेसे सार्थक नहीं होता। गुणीके गुणकी जानकारीसेही वह सार्थक होता है। इसीलिए आज मैंने, कपटसे ज्योतिषी बनकर भी, आपको अपनी इंद्रजाल-विद्या बताई है। आप प्रसन्न हूजिए ! मैंने आपके सभासदोंका तिरस्कार किया और बहुत समय तक आपको मोहमें फँसा रखा, उसकी उपेक्षा कीजिए। कारण,—तत्त्वदृष्टिसे तो इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है।" (३६६–३७३)

यों कहकर वह इंद्रजालिक मौन रहा। तब परमार्थका जानकार राजा अमृतके समान मधुर वाणीमें बोला, "हे विप्र ! तूंने राजाका और राजाके सभासदोंका तिरस्कार किया है; इस बातका अपने मनमें कुछ डर न रखना। कारण,—तू तो मेरा महान उपकार करनेवाला हुआ है। हे विप्र! तूने मुझे इंद्रजाल दिखाकर यह बता दिया है, कि यह संसार इंद्रजालके समानही असार है। जैसे तूने जल प्रकट किया था और वह देखतेही देखते नष्टहो चुका था वैसेही, इस संसारके सारे पदार्थ भी प्रकट

होकर नष्ट हो जानेवाले हैं। अहो! ऐसे संसारमें अब क्या स्नेह करना?" इस तरह उस राजाने, संसारके बहुतसे दोष विषको बनाकर कृतार्थ किया और बादमें दीक्षा ले ली। (३७४-३७८)

यह कथा कहकर सुबुद्धि प्रधान बोला, "हे प्रभो! उस राजाने कहा वैसे यह संसार इंद्रजालके समान है। यह बात हम निश्चितरूपसे मानते हैं; मगर आप तो सब कुछ जानते हैं, क्योंकि आप सर्वज्ञके कुलमें चंद्रमाके समान हैं।" (३७९)

फिर बृहस्पतिके समान बुद्धिमान दूसरा मंत्री शोक शल्यको दूर करनेवाली वाणीसे नृपश्रेष्ठसे कहने लगा, "पहले इसी भरतक्षेत्रमें एक नगर था। उसमें विवेक वगैरा गुणोंकी खानके समान एक राजा था। एक बार वह सभामें बैठा था तब छड़ीदारने आकर कहा, "एक पुरुष बाहर आकर खड़ा है और वह अपने आपको मायाके प्रयोगमें निपुण बताता है।" शुद्ध बुद्धिवाले राजाने उसे दरबारमें आनेकी आज्ञा नहीं दी। कारण,—

"न मायिनामृजूनां चाजर्यं शाश्वतवैरिवत्।"

[कपटी मनुष्यके और सरल मनुष्यके आपसमें, शाश्वत-स्वाभाविक शत्रुओंकी तरह मित्रता नहीं होती।] इन्कार करनेसे वह कपटी खिन्न होकर वापस गया। कुछ दिनोंके बाद वह, कामरूपी देवताकी तरह रूप बदलकर आकाश-मार्गसे राजसभामें आया। उसके हाथोंमें तलवार और भाला थे और साथमें एक श्रेष्ठ स्त्री थी। राजाने उससे पूछा, "तू कौन है? यह स्त्री कौन है? और यहाँ किस लिए आया है?"

(३८०-३८६)

उसने उत्तर दिया, "हे राजन! मैं विद्याधर हूँ। यह

विद्याधरी मेरी प्रिया है। एक विद्याधरके साथ मेरी शत्रुता हुई है। उस स्त्रीलंपट दुरात्माने इस स्त्रीका छल कपटसे इसी तरह हरण किया था जिस तरह राहु चंद्रमाकी सुधाको हरण करता है; मगर मैं अपनी इस प्राणप्रियाको वापस ले आया हूँ। कारण,—

"नारीपरिभवं राजन् सहंते पशवोपि न।"

[हे राजा! पशु भी नारीका अपमान नहीं सह सकते हैं।] हे राजा! पृथ्वीको धारण करनेसे तेरे प्रचंड भुजदंड सार्थक हुए हैं; गरीबोंकी गरीबी मिटानेसे तेरी सम्पत्ति सफल हुई है; भय-भीतोंको अभयदान देनेसे तेरा पराक्रम कृतार्थ हुआ है, विद्वानों-के संशय मिटानेसे तेरी विद्वत्ता अमोघ हुई है; विश्वके काँटे निकालनेसे तेरा शास्त्रकौशल्य सफल हुआ है। इनके सिवा तुम्हारे दूसरे गुण भी अनेक प्रकारके परोपकारोंसे कृतार्थ हुए हैं। इसी तरह तुम परस्त्रीको बहिनके समान समझते हो, यह बात भी विश्वमें विख्यात है। अब मुझपर उपकार करनेसे तुम्हारे ये सभी गुण विशिष्ट फलवाले होंगे। यह प्रिया मेरे साथ है, मैं इससे बँध गया हूँ; इसलिए छल-कपटवाले शत्रुओंसे मैं युद्ध नहीं कर सकता। मैं हस्तिसेना, अश्वसेना, रथसेना या पैदल-सेनाकी सहायता नहीं चाहता; मात्र तुम्हारी आत्माकी सहायता चाहता हूँ। और वह यह कि तुम धरोहरकी तरह मेरी स्त्रीकी रक्षा करो। कारण, तुम परस्त्रीके सहोदर हो। कई दूसरोंकी रक्षा करनेमें समर्थ होते हैं, मगर वे परस्त्रीगामी होते हैं; और कई परस्त्रीगामी नहीं होते, मगर दूसरोंकी रक्षा करनेमें अस-मर्थ होते हैं। हे राजा! तुम न परस्त्रीगामी हो और न दूसरों-

की रक्षा करनेमेंही असमर्थ हो। इसीलिए मैंने दूरसे आकर भी तुमसे प्रार्थना की है। यदि तुम मेरी प्रियारूपी धरोहरको स्वीकार करोगे तो फिर, यद्यपि समय बलवान है तथापि, यह समझ ही लेना चाहिए कि शत्रु मारा जाएगा।" (३८७-३६६)

उसके वचन सुनकर,हास्यरूपी चंद्रिकासे जिसका मुखचंद्र उल्लसित हो उठा है ऐसा वह उदार और चरित्रवान राजा बोला, "हे भद्र ! जैसे कल्पवृक्षसे केवल पत्ते माँगना, समुद्रसे सिर्फ पानी माँगना, कामधेनुसे केवल दूध माँगना; रोहिणाद्रिसे पत्थर माँगना, कुबेरके भंडारीसे अन्न माँगना और मेघसे मात्र छाया माँगना (अशोभनीय है) वैसेही तुमने, दूरसे आकर, मुझसे यह क्या माँगा ? तुम मुझे अपने शत्रुको बताओ, ताकि मैंही उसे मार डालूँ और तुम निःशंक होकर संसारका सुख भोगो।" (४००-४०३)

राजाके वाणीरूपी अमृतके प्रवाहसे उसकी श्रवणेंद्रिय भर उठी। वह हर्षित हुआ और राजासे इस तरह कहने लगा, "सोना, चाँदी, रत्न, पिता, माता, पुत्र और जो कुछ हो वे थोड़ेसे विश्वाससे भी दूसरेको सौंपे जा सकते हैं, मगर अपनी प्यारी स्त्री बहुत बड़े विश्वस्त को भी नहीं सौंपी जा सकती। हे राजा ! ऐसे विश्वासका स्थान तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं है। कारण, चंदनका स्थान एक मलयाचल पर्वतही है। आप मेरी प्रियाको धरोहरकी तरह स्वीकार कीजिए, इससे मैं यही मानूँगा कि आपहीने मेरे शत्रुको मारा है। हे राजा ! तुमने मेरी स्त्रीकी धरोहर स्वीकार की है, इससे मुझे बड़ा आश्वासन मिला है। अब मैं इसी वक्त अपने शत्रुको विश्वस्त भार्यावाला

बनाऊँगा (यानी वह मारा जाएगा और उसकी स्त्री विधवा होगी)। हे राजा ! तुम यहाँ बैठे हो, इतनेहीमें मैं केसरीसिंह-की तरह उछलकर अपना पराक्रम बताऊँगा। तुम आज्ञा दो ताकि मैं गरुड़की तरह स्वच्छंद रीतिसे क्षणभरमें आकाशमें चला जाऊँ।" (४०४-४११)

राजाने कहा, "हे सुभट विद्याधर ! तू स्वेच्छासे जा और तेरी स्त्री पिताके घरकी तरह यहाँ मेरे घरमें भले रहे।" (४१२)

फिर तत्कालही वह पुरुष पक्षीकी तरह आकाशमें उड़ा और दो पंखोंकी तरह तीक्ष्ण और चमकती हुई तलवार और दंडफलकको फैलाता हुआ अदृश्य हो गया। राजाने उसकी स्त्रीको अपनी पुत्रीकी तरह आश्वासन दिया, इससे वह अपने मनको स्वस्थ करके वहाँ बैठी। अपने स्थानमें बैठे हुए राजाने, मेघगर्जनाकी तरह आकाशमें सिंहनाद सुने। चमकती हुई बिजलीकी कड़कड़ाहटके समान तलवारों और ढालोंकी अनोखी आवाजें सुनाई देने लगीं। "यह मैं हूँ ! यह मैं हूँ ! नहीं ! नहीं ! ठहर ! ठहर ! मरनेको तैयार हो !" इस तरहके शब्द आकाश-से आने लगे। राजा सभामें बैठे हुए सभ्यों सहित, अचरजमें पड़कर बहुत समय तक, ग्रहणकी वेलाकी तरह, ऊँचा मुँह करके आकाशकी तरफ देखता रहा। उसी समय राजाके निकट, रत्नकंकणसे शोभित, एक हाथ आकर पड़ा। आकाशसे गिरे हुए उस हाथको पहचाननेके लिए विद्याधरी आगे आकर देखने लगी। फिर वह बोली, मेरे गालका तकिया, मेरे कानका आभू-षण और मेरे कंठका हार यह मेरे प्रिय पतिहीका हाथ है।" (४१३-४२१)

वह इस तरह कह रही थी और मृगीकी तरह देख रही थी, उसी समय हाथका निश्चय करानेहीके लिए हो ऐसे एक पैर पृथ्वीपर पड़ा। पैरोंमें पहननेके कड़ेवाले उस चरणको देख, पहचान, अश्रुपात करती हुई, वह कमलवदना फिरसे कहने लगी, "अरे! यह तो मेरे पतिहीका वह पैर है जिसे मैंने अनेक बार अपने हाथोंसे मला है, धोया है, पोंछा है और विलेपन किया है।" वह इस तरह कह रही थी उसी समय पवन द्वारा झकझोर कर गिराई हुई वृक्षकी डालकी तरह आकाशसे दूसरा हाथ गिरा। रत्नोंके भुजबंद और कंकणवाले उस हाथको देखकर धारायंत्रकी पुतलीकी तरह आँसू गिराती हुई वह स्त्री बोली, "अफसोस! यह तो मेरे पतिका वही चतुर हाथ है जो कंघीसे मेरे बालोंमें माँग निकालता था और विचित्र पत्रलतिकाकी लीलालिपि लिखता था।" यों कहकर वह खड़ीही थी कि आकाशसे दूसरा पैर भी गिरा। तब वह फिरसे कहने लगी, "हाय! यह मेरे पतिका वही चरण है कि जिसे मैं अपने हाथोंसे दबाती थी और अपनी गोदरूपी शय्यामें सुलाती थी।" तभी एक धड़ और एक मस्तक, स्त्रीके दिलको दहलाते और पृथ्वीको कँपाते, जमीन पर गिरा।" (४२२-४३१)

तब वह स्त्री रोरोकर कहने लगी, "हाय! उस छलिए बलवान शत्रुने मेरे पतिको मार डाला। अरे! मैं गरीब मारी गई। यह मेरे पतिहीका कमलके समान मुख है कि जिसे मैंने परमप्रीतिके साथ कुंडलोंसे सजाया था। हाय! यह मेरे पतिहीका वह विशाल हृदय है कि जिसके अंदर और बाहर केवल मेराही निवास था। हे नाथ! अब मैं अनाथ हो गई हूँ। हे

स्वामी ! अब तुम्हारे बिना नंदनवनसे फूल लाकर मेरे केशोंको कौन सजाएगा ? तुम्हारे साथ एक आसन पर बैठकर आकाशमें फिरते हुए अब मैं किसके साथ सुखसे वल्लकी वीणा बजाऊँगी ? कौन वीणाकी तरह मुझे अपनी गोदमें बिठाएगा ? शय्यामें अस्त व्यस्त हुए मेरे केशोंको कौन सीधे करेगा ? प्रौढ़ स्नेहकी लीलासे मैं किसपर कोप करूँगी ? अशोक वृक्षकी तरह मेरा पदप्रहार किसके हर्षके लिए होगा ? हे प्रिय ! गुच्छरूप कौमुदीकी तरह गोशीर्षचंदनके रससे मेरा अंगराग कौन करेगा ? सैरंध्री दासीकी तरह मेरे गालोंपर, ग्रीवापर, ललाटपर और स्तनकुंभोंपर पत्ररचना कौन करेगा ? गुस्सेका बहाना बनाकर बैठी हुई मुझे क्रीड़ा करनेके लिए, राजमैनाकी तरह, कौन बुलाएगा ? जब मैं नींदका बहाना करके सो जाती थी तब तुम मुझे, हे प्रिया ! हे प्रिया ! हे देवी ! हे देवी ! इत्यादि मधुर वाणीसे जगाते थे; अब कौन जगाएगा ? आत्माके लिए विडंबनाके समान अब विलंब क्यों करूँ ? इसलिए हे नाथ ! महामार्गके हे महान पथिक ! मैं भी आपके पीछे आती हूँ।"

(४३२-४४२)

इस तरह विलाप करती और अपने प्राणनाथके मार्गका अनुसरण करनेकी इच्छावाली उस स्त्रीने हाथ जोड़कर राजासे वाहनकी तरह आग माँगी। राजाने उससे कहा, "हे पवित्र इच्छावाली पुत्री ! तू पतिकी स्थितिको अच्छी तरह जाने बगैर यह क्या कहती है ? कारण, राक्षसोंकी और विद्याधरोंकी ऐसी माया भी होती है, इसलिए थोड़ी देर राह देख। फिर आत्मसाधन करना तो तेरे हाथहीमें है।" (४४३-४४५)

फिरसे उसने राजासे कहा, "यह साक्षात मेरा पतिही है। यह युद्धमें कटकर मरा हुआ दिखाई दे रहा है। संध्या सूर्यके साथही उदय होती है और सूर्यके साथही अस्त भी होती है; वैसेही पतिव्रता नारी भी पतिके साथ जीती है और पतिके साथही मरती भी है। मैं जीवित रहकर अपने पिता और पिताके निर्मल कुलोंमें कलंक क्यों लगाऊँ ? मैं आपकी धर्मपुत्री हूँ। उसे पति विना भी जीवित देखकर हे पिता ! तुम कुलस्त्रीके धर्मके जानकार होकर भी लजाते क्यों नहीं हो ? जैसे चाँदके विना चाँदनी नहीं रहती और बादलोंके विना बिजली नहीं रहती वैसेही पतिके विना रहना मेरे लिए उचित नहीं है। इसलिए तुम सेवकोंको आज्ञा देकर मेरे लिए काठ मँगवाओ (और चिता चुनवाओ) कि जिसकी आगमें मैं पतिके शरीरके साथ, जल-की तरह प्रवेश करूँ।" (४४६-४५१)

उसकी, आग्रहके साथ कही हुई बात सुनकर दयालु राजा शोकसे गद्‌गद हुई वाणीमें बोला, "हे पुत्री ! तू थोड़ी देर धीरज धर। तुझे पतंगकी तरह जलकर मरना योग्य नहीं है। छोटासा कामभी विना विचारे करना उचित नहीं होता।"

(४५२-४५३)

राजाकी बात सुनकर वह नारी नाराज हुई और बोली, "अरे ! तुम अब भी मुझे रोककर रखना चाहते हो ! इससे मालूम होता है कि तुम पिता नहीं हो; तुम परस्त्री-सहोदरके नामसे प्रसिद्ध हो; यह प्रसिद्धि दुनियाके विश्वासके लिए ही है, पर-मार्थके लिए नहीं है। यदि तुम सचमुचही धर्मात्मा पिता हो तो तत्कालही अपनी पुत्रीको, अग्निमार्ग द्वारा अपने पतिके

साथ जाते देखो।" (४५४–४५६)

लाचार होकर राजाने उसको, उसकी इच्छा पूर्ण करनेकी आज्ञा दी और कहा, "हे पुत्री ! अब मैं तुझे नहीं रोकूँगा। तू अपने सतीव्रतको पवित्र कर।" तब उस स्त्रीने प्रसन्नतापूर्वक, राजाके मँगवाए हुए रथमें, अपने पतिके शरीरको बड़े आदरके साथ खुदही रखा और आप अंगपर अंगराग लगा, सफेद कपड़े पहन, केशोंमें फूल गूँथ पहलेकी तरहही पतिके पास बैठी। सर झुकाए शोकमें मग्न राजा रथके पीछे चला। नगरके लोग अचरजके साथ देखने लगे। इस तरह वह स्त्री नदीपर पहुँची। क्षणभरमें सेवक लोग चंदनकी लकड़ियाँ लाए और मानो मृत्युदेवकी शय्या हो ऐसी चिता रची। फिर पिताकी तरह राजाने उस स्त्रीको धन दिया। वह धन उसने कल्पलताकी तरह याचकोंमें बाँट दिया, जलसे अंजली भरके, दक्षिणावर्त ज्वालावाली अग्निकी प्रदक्षिणा की और सतीके सत् धर्मका पालन करके, पतिके शरीरके साथ घरकी तरह चिताकी आगमें इच्छापूर्वक प्रवेश किया। बहुतसे घीकी धाराओंसे सींची हुई आग, ज्वालाओंसे आकाशको प्रकाशित करती हुई अधिकाधिक जलने लगी। विद्याधरका शरीर, वह स्त्री और सारी लकड़ियाँ, समुद्रमें जाता हुआ जल जैसे लवणमय हो जाता है वैसेही, जलकर राख हो गए। तब राजा उसे निवापांजलि[1] दे, शोकसे व्याकुल हो अपने महलमें आया। (४५६–४६७)

ज्योंही शोकाकुल राजा सभामें बैठा त्योंही तलवार और भाला हाथोंमें लिए वह पुरुष आकाशसे नीचे उतरा। राजा और

१—जलानेके बादकी एक क्रियाविशेष।

सभासदोंने अचरजके साथ उसकी तरफ देखा वह कपटी विद्याधर राजाके पास गया और बोला, "हे परस्त्री और परधनकी इच्छा न रखनेवाले राजा! तुम्हारी सद्भाग्यसे वृद्धि होती है। मैंने जुआरीकी तरह जैसे अपने शत्रुको जीता वह सुनाता हूँ; सुनिए। हे आश्रय लेने योग्य! मैं अपनी स्त्रीको आपकी शरणमें रखकर जब आकाशमें, पवनकी तरह उड़ा, तब वहाँ मैंने अभिमानके साथ मेरे सामने आते हुए उस दुष्ट विद्याधरको, सर्पको जैसे नकुल देखता है वैसे देखा। फिर हम दोनों दुर्जय बैलोंकी तरह गर्जना करने लगे और आपसमें एक दूसरेको लड़ाईके लिए ललकारने लगे, "अच्छा हुआ कि आज मैंने तुझे देखा है। हे भुजबलका गर्व करनेवाले! तू पहले प्रहार कर कि जिससे मैं अपनी भुजाओंका और देवताओंका कौतुक पूर्ण करूँ। अन्यथा हथियार छोड़कर रंक जैसे भोजन ग्रहण करता है वैसे दसों उँगलियाँ दाँतोंके बीचमें लेकर जीनेकी इच्छासे निःशंक होकर चला जा।" इस तरह हम आपसमें कहते सुनते, ढाल-तलवाररूपी पंखोंको फैलाते मुर्गोंकी तरह लड़ने लगे। चारी-प्रचार[1] में चतुर रंगाचार्यकी[2] तरह हम एक दूसरेके प्रहारसे बचते हुए आकाशमें फिरने लगे। तलवाररूपी सींगोंसे गेंड़ोंकी तरह एक दूसरेपर प्रहार करते आगे बढ़ने और पीछे हटने लगे। क्षणभरमें हे राजा! तुम्हें बधाई देनेवाला ही वैसे, मैंने उसका बायाँ हाथ काटकर यहाँ जमीनपर डाल दिया, उसके बाद आपको आनंदित करनेके लिए उसका एक पैर केलेके खंभेकी तरह लीलासे काटकर पृथ्वीपर गिरा दिया। फिर हे

१—नृत्यमें कुछ चेष्टाएँ। २—सूत्रधार।

राजा ! मैंने कमलनालकी तरह उसका दाहिना हाथ भी काट कर पृथ्वीपर पटक दिया; उसके बाद पेड़के तनेकी तरह उसका दूसरा पैर भी तलवारसे छेदकर तुम्हारे सामने गिरा दिया। फिर उसके सर और धड़को अलग अलग करके यहाँ डाल दिया। इस तरह भरत खंडकी तरह उसके छह खंड कर दिए। अपनी पुत्रीकी तरह मेरी स्त्रीरूपी धरोहरकी रक्षा करनेवाले आपही वास्तवमें उस शत्रुको मारनेवाले हैं; मैं तो केवल कारण हूँ। आपकी सहायताके बिना वह शत्रु मुझसे न मारा जाता। जलती हुई आग भी हवाकी मददके बिना घास नहीं जला सकती है। आज तक मैं स्त्री या नपुंसकके समान था। आज आपने मुझे शत्रुको मारनेका पौरुष दिया है। आपही मेरे पिता, माता, गुरु या देवता हैं। आपके समान उपकारी बननेके योग्य कोई दूसरा नहीं है। आपके समान उपकारी पुरुषोंके प्रभावहीसे विश्वको सूर्य प्रकाश देता है, चाँद प्रसन्न करता है, वर्षा समय-पर जल देती है, और भूमि दवाइयाँ उगाकर देती है; समुद्र अपनी मर्यादामें रहता है और पृथ्वी स्थिर रहती है। आप मेरी स्त्री–जिसे मैंने धरोहरकी तरह आपके पास रखा था–मुझे सौंपिए जिससे हे राजा ! मैं अपनी क्रीड़ा-भूमिको जाऊँ। शत्रु-को मारकर निष्कंटक बना हुआ मैं, अब वैताढ्य पर्वतपर और जंबूद्वीपकी जगतीपरके जालकटकादिमें, आपकी कृपासे प्रिया सहित आनंद करूँगा। (४६८–४६१)

उसके वचन सुनकर राजा चिंता, लज्जा, निराशा और विस्मयसे आक्रांत हुआ और उससे कहने लगा, "हे भद्र ! तुम अपनी स्त्रीको धरोहरकी तरह रखकर गए; फिर हमने आकाश-

में तलवारोंकी और भालोंकी आवाजें सुनीं। बादमें क्रमसे हाथ, पैर, धड़ और मस्तक जमीनपर गिरे। तुम्हारी पत्नीने हमें निश्चयपूर्वक कहा कि ये मेरे पतिके हैं। फिर उसने अपने पतिके साथ जलनेकी इच्छा प्रकट की। पुत्रीप्रेमसे हमने उसे कई बार रोका तो वह दूसरे लोगोंके समानही मेरी कल्पना करने लगी; मैं जब उसके आग्रहसे लाचार हो गया तब वह नदी पर गई और लोगोंके सामने, शरीरके कटे अवयवोंके साथ, चितापर चढ़ गई। मैं इसी समय उसको निवापअंजली अर्पण करके आया हूँ व उसके शोकमें उदास बैठा हूँ। अब तुम आए हो। यह क्या बात है? वे अंग तुम्हारे नहीं थे या उस समय आए थे वे तुम नहीं हो? हमारा मन संशयमें गिर गया है। मगर इस विषयमें हम–जिनके मुख अज्ञानसे मुद्रित हो गए हैं–अधिक क्या कह सकते हैं? (४८०–४८६)

यह सुनकर बनावटी क्रोध बताता हुआ वह पुरुष बोला, "हे राजा! यह कैसी दुःखकी बात है। मैंने मनुष्योंके कहनेसे तुमको परस्त्री-सहोदर समझा था; मगर वह बात मिथ्या थी। तुम्हारी उस प्रसिद्धिहीसे मैंने अपनी प्रियाको धरोहरके तौर पर तुम्हें सौंपा था; मगर तुम्हारे आचरणसे, कोमल खिलता हुआ कमल जैसे परिणाममें लोहेका निकलता है वैसेही, तुम मालूम होते हो। जो काम मेरे दुराचारी शत्रुने किया था वही काम अफसोस है, कि अब तुमने किया है। इससे अब तुम दोनोंमें क्या अंतर माना जाए? हे राजा! यदि तुम परस्त्री-पर मोह करनेवाले नहीं हो और लोकापवादसे डरते हो तो मेरी स्त्री मुझे सौंप दो। उसको छिपा रखना योग्य नहीं है। जो

तुम्हारे समान पवित्र पुरुष भी अपवित्र बनेंगे तो फिर काले साँपकी तरह विश्वासपात्र कौन रह जाएगा ?" (५०१-५०४)

तब राजाने कहा, "हे पुरुष ! तेरे प्रत्येक अंगको पहचान कर तेरी प्रियाने अग्निमें प्रवेश किया है। इसमें कोई संशय नहीं है। नगरके और देशके सभी लोग इस बातके साक्षी हैं, आकाशमें रहे हुए जगच्चक्षु सूर्यदेव भी इसके साक्षी हैं, चार लोकपाल, ग्रह, नक्षत्र, तारे, भगवती पृथ्वी और जगतके पिता धर्म भी इसके साक्षी हैं। इसलिए ऐसे कठोर वचन बोलना अनुचित है। इन सबमेंसे किसीको भी तुम प्रमाण मान लो।" (५०५-५०८)

राजाकी बात सुनकर बनावटी क्रोध बतानेवाले उस पुरुषने कठोर वाणीमें कहा, "जहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण हो वहाँ दूसरे प्रमाणकी बातही क्या है ? तुम्हारे पीछे कौन बैठी है सो देखो। तुम्हारा कथन तो बगलमें चोरीका माल छिपाकर शपथ लेनेके समान है। राजाने पीछे मुड़कर देखा तो वहाँ उसे वह स्त्री दिखाई दी। इससे वह यह सोचकर कि मैं परदाराके दोषसे दूषित हुआ हूँ इस तरह म्लान हो गया जैसे तापसे पुष्प म्लान होता है। निर्दोष राजाको दोषकी शंकासे खिन्न देख वह पुरुष हाथ जोड़कर कहने लगा, "हे राजन् ! क्या आपको याद है कि बहुत दिनों तक अभ्यास करके मैं अपनी मायाके प्रयोगकी चतुराई बतानेकी प्रार्थना करनेके लिए आपके पास आया था; मगर उस समय आपने मुझे दरवाजेसेही लौटा दिया था। आप मेघकी तरह सारे विश्वपर कृपा करनेवाले हैं; परंतु भाग्यदोषसे मेरी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। तब कुछ दिनके बाद रूप

बदल, कपट नाटकके द्वारा मुझे अपनी कला आपको दिखानी पड़ी। अब मैं कृतार्थ हुआ। आप मुझपर प्रसन्न हूजिए। अपना गुण, चाहे किसी तरहसे क्यों न हो, महान पुरुषोंको दिखाना चाहिए; अन्यथा गुण पानेके लिए जो मेहनत की जाती है वह सफल कैसे हो सकती है? आज मेरी मेहनत सफल हुई। अब आज्ञा दीजिए; मैं जाऊँगा। आपको अपना गुण बताकर अन्य स्थानोंके लिए अब मैं महँगा हो गया हूँ।" राजाने उसे बहुतसा धन देकर बिदा किया। (५०६-५१६)

फिर राजा सोचने लगा, "जैसा उसका मायाप्रयोग था ऐसाही यह संसार है। कारण,—ये दिखाई देनेवाली सारी चीजें पानीके बुदबुदेकी तरह देखतेही नाश हो जानेवाली हैं।" इस तरह अनेक प्रकारसे संसारकी असारताका विचार कर, विरक्त हो, राज्य छोड़, राजाने दीक्षा ग्रहण की।"

इस तरहकी कथा कहकर दूसरा मंत्री बोला, "हे प्रभो! यह संसार, मेरी कही हुई मायाप्रयोगकी कथाके समान है। उसमें आप शोक न कर आत्मस्वार्थकी सिद्धिके लिए प्रयत्न करें।" (५२०-५२२)

इस तरह उन दोनों मंत्रियोंके वचन सुनकर, महाप्राणके स्थानमें जैसे महाप्राण आता है वैसेही, चक्रीके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। सगर राजाने तत्त्वसे श्रेष्ठ वाणीके द्वारा कहा, "तुमने मुझे ये बहुत अच्छी बातें कही हैं। प्राणी अपने अपने कर्मोंके अनुसारही जीते हैं और मरते हैं। बालक, युवा या वृद्ध इस तरह वयका इसमें कोई प्रमाण नहीं है। बंधु आदिका मिलन सपनेके समान है, लक्ष्मी हाथीके कान जैसी चंचल है,

यौवनलक्ष्मी पर्वतसे निकलती हुई नदीके समान बह जानेवाली है और जीवन घासके पत्तेपर रही हुई बूँदके समान है। यौवन जबतक मरुभूमिकी तरह चला नहीं गया है; राक्षसीकी तरह जीवनका अंत करनेवाली वृद्धावस्था जबतक आई नहीं है, सन्निपातकी तरह जबतक इंद्रियाँ विकल नहीं हुई हैं और वेश्याकी तरह सब कुछ लेकर लक्ष्मी जबतक चली नहीं गई है तबतक स्वयमेव इन सबको छोड़कर दीक्षा ग्रहण करनेके उपाय-से लभ्य-स्वार्थसाधनके लिए प्रयत्न करना चाहिए। जो पुरुष इस असार शरीरसे मोक्ष प्राप्त करता है, वह मानो काँचके टुकड़ेसे मणि, काले कौएसे मोर, कमल-नालकी मालासे रत्न-हार, खराब अन्नसे खीर, छाससे दूध और गधेसे घोड़ा खरी-दता है।" (५२३–५३२)

सगर राजा यूँ कह रहा था तब उसके द्वारपर, अष्टापद के निकट रहनेवाले, अनेक लोग आए और वे उच्च स्वरमें पुकारने लगे, "हमारी रक्षा कीजिए ! रक्षा कीजिए !" सगरने द्वार-पालसे उन्हें बुलवाया और पूछा, "क्या हुआ है ?" तब उन ग्रामीणोंने एक स्वरमें कहा, "अष्टापद पर्वतके चारों तरफ बनाई गई खाईको पूरनेके लिए, आपके पुत्र दंडरत्नसे गंगा नदी लाए थे। उस गंगा नदीने पातालके समान दुष्पूर खाईको भी क्षण-भरमें पूर दिया और अब वह कुलटा स्त्री जैसे दोनों कुलोंकी मर्यादाका उल्लंघन करती है वैसेही, दोनों कूलोंको–किनारोंको लाँघ रही है और अष्टापदके निकटके गाँवों, आकरों और नगरोंको डुबोकर समुद्रकी तरह फैल रही है। हमारे लिए तो प्रलयकाल इसी समय आ गया है। बताइए कि हम कहाँ जाकर

रहें, जहाँ कोई उपद्रव न हो। (५३३-५३६)

तब सगर चक्रीने अपने पौत्र भगीरथको बुलाकर वात्सल्ययुक्त वाणीमें कहा, "हे वत्स! अष्टापदके चारों तरफकी खाई को पूरकर गंगा नदी उन्मत्त स्त्रीकी तरह इस समय गाँवोंमें फिर रही है। उसे दंडरत्न द्वारा खींचकर पूर्व सागरमें डाल दो। कारण,—जबतक जलको मार्ग नहीं बताया जाता तबतक वह अंधेकी तरह उन्मार्गपर भटकता है। असामान्य बाहुपराक्रम, भुवनोत्तर ऐश्वर्य, महान हस्तिबल, विश्वमें विख्यात अश्वबल, महापराक्रमी प्यादोंका बल, बड़ा रथबल और अति उत्कट प्रताप, निस्सीम कौशल और दैवी आयुध संपत्ति, ये सब जैसे शत्रुओंके गर्वका हरण करते हैं वैसेही, जान पड़ता है कि इनका अभिमान हमें भी हानि पहुँचाता है। हे पुत्र! अभिमान सभी दोषोंका अग्रणी है, आपत्तिका स्थान है, संपत्तिका नाशक है, अपकीर्तिका कर्ता है, वंशका संहारक है, सर्व सुखोंका हर्ता है, परलोक पहुँचानेवाला है और अपने शरीरहीसे जन्मा हुआ शत्रु है। ऐसा अभिमान जब सन्मार्गपर चलनेवाले सामान्य लोगोंके लिए भी त्याज्य है, तब मेरे पौत्रके लिए तो वह खास तौरसे छोड़ने लायक ही है। हे पौत्र! तुम्हें विनीत होकर गुणकी पात्रता प्राप्त करनी चाहिए। विनयी बननेसे अशक्त मनुष्यको भी उत्कृष्ट गुणकी प्राप्ति होती है और शक्तिवान पुरुषके लिए तो यदि विनयगुण हो तो वह सोने और सुगंधके मेलसा या निष्कलंक चंद्रमाके समान होता है। सुर, असुर और नागादिकका तुम्हें यथायोग्य क्षेत्रमें और सुखकारक कार्यमें उपचार करना चाहिए। उपचारके योग्य कार्यमें उपचार करना दोष-

कारक नहीं है; परंतु पित्त प्रकृतिवालेके लिए आतपका उपचार करना दोषकारक है। ऋषभस्वामीके पुत्र भरत चक्रीने योग्य उपचारसे देवों और दैत्योंको वशमें किया था। वे शक्तिवान थे तो भी उन्होंने देवादिकमें करने योग्य उपचार बताया है। इससे तुमको भी कुलाचारके समान वर्ताव करना चाहिए।"

(५३३-५५४)

महाभाग भगीरथने पितामहकी आज्ञा आदर सहित स्वीकार की।

"निसर्गेण विनीतस्य शिक्षा सद्भित्तिचित्रवत्।"

[जो स्वभावहीसे विनीत हैं उनको उपदेश देना अच्छी दीवारपर चित्र निकालनेके समान है।] फिर सगरने भगीरथको अपने प्रतापके समान सामर्थ्यवान दंडरत्न अर्पण कर, उसके मस्तकको (ललाटको) चूम, विदा किया। भगीरथ चक्रीके चरणकमलमें प्रणाम कर दंडरत्न सहित, बिजली सहित मेघकी तरह, वहाँसे रवाना हो गया। (५५५-५५७)

चक्रीकी दी हुई सेनासे और उस देशके लोगोंसे परिवारित भगीरथ, प्रकीर्ण देवताओं और सामानिक देवताओंसे परिवारित, इंद्रके समान शोभता था। क्रमशः वह अष्टापद पर्वतके निकट पहुँचा। वहाँ उसने उस पर्वतको, समुद्र द्वारा वेष्टित त्रिकूटाद्रिकी तरह, मंदाकिनीसे घिरा हुआ देखा विधिके जानकार भगीरथने ज्वलनप्रभके उद्देश्यसे अष्टम तप किया। अष्टम तपके समाप्त होनेपर नागकुमारोंका पति ज्वलनप्रभ प्रसन्न होकर भगीरथके पास आया। भगीरथने गंध, धूप और पुष्पों द्वारा

अनेक तरहसे उसका पूजा उपचार किया। प्रसन्न होकर नाग-कुमारोंके स्वामीने पूछा, "मैं तुम्हारा क्या उपकार करूँ?" तब मेघके समान गंभीर वाणीवाला भगीरथ ज्वलनप्रभ इंद्रसे कहने लगा, "यह गंगानदी अष्टापदकी खाईको पूरकर अब भूखी नागिनकी तरह देशोंके चारों तरफ फैल रही है, मकानोंको उखाड़ रही है, वृक्षोंको ध्वंस कर रही है, सभी खड्डों और टेक-रियोंको समान बना रही है, किलोंको तोड़ रही है, महलोंको गिरा रही है, हवेलियोंको गिरा रही है और मकानोंको बरबाद कर रही है। पिशाचिनीकी तरह उन्मत्त होकर देशका नाश करनेवाली इस गंगाको, दंडरत्नके द्वारा खींचकर, यदि आप आज्ञा दें तो, मैं पूर्व समुद्रमें मिला दूँ।" (५५८-५६७)

प्रसन्न हुए ज्वलनप्रभने कहा, "तुम अपनी इच्छानुसार काम करो और वह निर्विघ्न पूरा हो। तुम मेरी आज्ञासे काम करोगे इसलिए इस भरतक्षेत्रमें रहनेवाले मेरे आज्ञापालक साँपों-से तुमको कोई तकलीफ न होगी। यों कहकर नागेंद्र रसातलमें अपने स्थानपर चला गया। फिर भगीरथने अष्टम भक्तके अंतमें, पारणा किया। (५६८-५७०)

उसके बाद वैरिणीकी तरह पृथ्वीको भेदनेवाली और स्वैरिणीकी तरह स्वच्छंदतापूर्वक विचरण करनेवाली गंगाको खींचनेके लिए भगीरथने दंडरत्न ग्रहण किया। प्रचंड भुजबल-वाले भगीरथने गर्जना करती हुई उस नदीको, जैसे सँडसीसे माला खींची जाती है वैसेही, दंडरत्नसे खींचा। फिर कुरुदेशके मध्यभागमें, हस्तिनापुरके दक्षिणमें, कौशलदेशके पश्चिममें, प्रयागके उत्तरमें, काशीके दक्षिणमें, विंध्याचलके दक्षिणमें और

अंग तथा मगध देशके उत्तरमें होकर, ववंडर जैसे तृणको उड़ाता है वैसे मार्गमें आती हुई नदियोंको खींचनेवाली उस नदीको ले जाकर उसने पूर्व समुद्रमें उतारा। तबसे वह स्थान गंगासागर-के नामसे प्रसिद्ध हुआ। और भगीरथने खींचकर समुद्रमें डाला इससे गंगा भगीरथीके नामसे भी पहचानी जाने लगी। मार्ग-में गंगाके चलनेसे जहाँ जहाँ नागोंके घर टूट जाते थे वहाँ वहाँ भगीरथ नागदेवोंको बलिदान चढ़ाता था। जले हुए सगरपुत्रोंकी अस्थियोंको गंगाके प्रवाहने पूर्व सागरमें पहुँचाया, यह देखकर भगीरथने विचार किया, "यह बहुत अच्छा हुआ कि मेरे पिता-की और काकाओंकी अस्थियोंको गंगाने समुद्रमें ले जा डाला। यदि ऐसा न होता तो ये अस्थियाँ गीध आदि पक्षियोंकी चोंचों और पंजोंमें जाकर, पवनके द्वारा उड़ाए हुए फूलोंकी तरह, न मालूम किस अपवित्र स्थानमें गिरतीं।" वह यह सोच रहा था तब जलकी आफतसे बचे हुए लोगोंने 'तुम लोकरंजक हो! (तुम लोगोंके कल्याणकर्ता हो!)' यों कह कह कर बहुत देर तक उसकी प्रशंसा की। उस समय उसने अपने पितरोंकी अस्थियाँ जलमें डाली थीं इसलिए लोग अबतक भी मृतककी अस्थियोंको जलमें डालते हैं। कारण—

"......सोऽध्वा यो महदाश्रितः।"

[महापुरुष जो प्रवृत्ति करते हैं, वही लोगोंके लिए मार्ग होती है।] (५७१-५८२)

भगीरथ उस स्थानसे रथमें बैठकर वापस लौटा। अपने रथकी चालसे काँसीके तालकी तरह, पृथ्वीसे शब्द कराता, जब वह चला आ रहा था तब, रस्तेमें कल्पवृक्षके समान स्थिर

खड़े हुए एक केवली भगवानको उसने देखा। उन्हें देखकर वह आनंदपूर्ण हृदयके साथ अपने रथसे, इस तरह नीचे उतरा जिस तरह उदयगिरिसे सूर्य उतरता है या आकाशसे गरुड़ उतरता है। उस चतुर और भक्त भगीरथने, पास पहुँचतेही भक्ति सहित उन केवली भगवानकी वंदना की और तीन प्रदक्षिणा दी। पश्चात फिरसे उसने वंदना कर, योग्य स्थानपर बैठ, पूछा, "हे भगवन्! मेरे पिता और काका किस कर्मके कारण एक साथ (जलकर) मरे?" त्रिकालकी बातें जाननेवाले और करुणारसके सागर वे केवली भगवान मधुरवाणीमें इस तरह कहने लगे, "हे राजपुत्र! बहुत लक्ष्मीवाले, मानो कुबेरकी लक्ष्मीके वे आश्रय हों ऐसे, श्रावकोंसे पूर्ण एक संघ पहले तीर्थयात्राके लिए निकला था। संध्याको वह संघ, मार्गसे थोड़ी दूर पासहीमें एक गाँव देखकर उसमें गया। वह रातको किसी कुम्हारके घरके पास उतरा। उस धनवान संघको देखकर गाँवके सभी लोग खुश हुए और धनुष व तलवारें लेकर लूटनेको तैयार हो गए। मगर पापका भय रखनेवाले उस कुम्हारने खुशामद भरे और अमृतके समान हितकारी वचन कहकर गाँवके लोगोंको इस कामसे रोका। उस कुम्हारके आग्रहसे गाँवके लोगोंने संघको इसी तरह छोड़ दिया जिस तरह मिला हुआ पात्र छोड़ देते हैं। उस गाँवके सभी लोग चोर थे। इस लिए वहाँके राजाने एक बार उस गाँवको इसी तरह जला दिया जिस तरह पर-राज्यके (शत्रुके) गाँवको जला देते हैं। उस दिन वह कुम्हार किसीके बुलानेसे दूसरे गाँव गया हुआ था, इसलिए उस आगसे वह अकेलाही बच गया। कहा है कि—

"......'सर्वत्र कुशलं सताम् ।"

[सतपुरुषोंका सब जगह कल्याणही होता है ।] फिर कालके योगसे मरकर वह कुम्हार विराट देशमें, मानो दूसरा कुवेर भंडारी हो ऐसा वणिक हुआ । गाँवके दूसरे लोग भी मर कर विराट देशमें साधारण मनुष्य हुए । कारण, एकसे काम करनेवालोंको एकसा स्थानही मिलता है । कुम्हारका जीव मर-कर फिरसे उसी देशका राजा हुआ । वहाँसे भी मरकर वह परम ऋद्धिवाला देवता हुआ । वहाँसे आकर तुम भगीरथ हुए हो और वे ग्रामवासी भ्रमण करते करते तुम्हारे पिता जन्हुकुमार वगैरा हुए । उन्होंने केवल मनहीसे संघको हानि पहुँचाई थी इसलिए वे सभी एकसाथ जलकर राख हो गए । इसमें ज्वलन-प्रभ नागराज तो निमित्तमात्रही है । हे महाशय ! तुमने उस समय गाँवको बुरा काम करनेसे रोकनेका शुभकर्म किया था इसलिए, तुम गाँव जला था उस समय भी नहीं जले और इस समय भी नहीं जले ।" (५८३-६०१)

इस तरह केवलज्ञानीसे पूर्वभव सुनकर विवेकका सागर भगीरथ संसारसे अतिशय उदासीन हुआ; मगर उस समय उसने यह सोचकर दीक्षा नहीं ली कि यदि मैं दीक्षा लूँगा तो फोड़े पर फोड़ेकी तरह मेरे पितामहको दुःखपर दुःख होगा । वह केवलीकी चरण-वंदना कर, रथपर सवार हो, वापस अयोध्या आया । (६०२-६०४)

आज्ञानुसार काम करके आए हुए और प्रणाम करते हुए पौत्रका सगर राजाने बार बार मस्तक सूँघा, हाथ उसकी पीठ पर रक्खा और स्नेहपूर्ण गौरवके साथ कहा, "हे वत्स ! तू

बालक होते हुए भी बल और बुद्धिसे स्थविर पुरुषोंका अग्रणी है, इसलिए अब तू यह न कहकर कि मैं अभी बालक हूँ, हमारे इस राज्यभारको ग्रहण कर; जिससे हम भाररहित होकर संसारसागरको तैरनेका प्रयत्न करें। यह संसार यद्यपि स्वयंभू-रमण समुद्रकी तरह दुस्तर है, तो भी मेरे पूर्वज उसको तैरे हैं, इसीलिए मुझे भी श्रद्धा है। उनके पुत्र भी राज्यभार ग्रहण करते थे। उन्हींका बताया हुआ यह मार्ग है। उसी पर तू भी चल और इस पृथ्वीको धारण कर।" (६०५–६०६)

भगीरथ पितामहको प्रणाम करके बोला, "हे पिताजी! यह उचितही है, कि आप संसारसागरसे तारनेवाली दीक्षा लेना चाहते हैं; परंतु मैं भी व्रत ग्रहण करनेको उत्सुक हूँ, इसलिए राज्यदानके प्रसादसे मुझे निराश न कीजिए।" (६१०–६११)

तब चक्रवर्तीने कहा, "हे वत्स! व्रत ग्रहण करना हमारे कुलके योग्य ही है; परंतु उससे भी अधिक योग्य गुरुजनोंकी आज्ञापालनका व्रत है; इसलिए हे महदाशय! समय आनेपर, जब तुम्हारे कवचधारी पुत्र हो तब उसे राज्यभार सौंपकर तुम, भी मेरी तरह व्रत ग्रहण करना।"

यह सुनकर भगीरथ गुरुआज्ञा भंग होनेके डरसे डरा और उस भवभीरुका मन विचलित हो उठा; इससे बहुत देर तक वह चुप रहा। तब सगर चक्रीने भगीरथका परम आनंदके साथ, राज्याभिषेक किया। (६१२–६१५)

उसी समय उद्यानपालकोंने आकर चक्रीको प्रभु अजित-नाथके उद्यानमें आकर, समोसरनेकी बधाई दी। पौत्रके राज्या-भिषेकसे और प्रभुके आगमनसमाचारसे चक्रीको अति अधिक

आनंद हुआ। महलमें होते हुए भी उसने उठकर प्रभुको नमस्कार किया और सामनेही हों इस तरह शक्रस्तवसे प्रभुकी स्तुति की। स्वामीके आनेके समाचार सुनानेवाले उद्यानपालोंको चक्रीने साढ़े बारह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ इनाममें दीं। फिर भगीरथ व सामंतोंसे परिवारित सगर बड़े ठाठके साथ समवसरणके समीप गया। वहाँ समवसरणमें उत्तर द्वारके मार्गसे प्रवेशकर वह मानने लगा मानो उसकी आत्माने सिद्धक्षेत्रमें प्रवेश किया है। पश्चात चक्री धर्मचक्री तीर्थंकरकी प्रदक्षिणा दे, नमस्कार कर इस तरह स्तुति करने लगा। (६१६–६२२)

"मेरे प्रसादसे आपका प्रसाद या आपके प्रसादसे मेरा इन अन्योन्य आश्रयोंका भेद कीजिए और मुझपर प्रसन्न होइए। हे स्वामी ! आपकी रूपलक्ष्मीको देखनेमें सहस्राक्ष इंद्र असमर्थ है और आपके गुणोंका वर्णन करनेमें सहस्रजिह्वा शेष लाचार है। हे नाथ ! आप अनुत्तर विमानके देवोंके संशयोंको भी मिटाते हैं, इससे अधिक और कौनसा गुण स्तुत्य हो सकता है ? आपमें आनंद सुख भोगकी भी शक्ति है और इसके त्यागकी भी शक्ति है। इन परस्पर विरुद्ध बातोंपर अश्रद्धालु लोग कैसे श्रद्धा कर सकते हैं ? हे नाथ ! आप सब प्राणियोंके साथ उपेक्षाभाव रखते हैं और साथही सबके कल्याणकर्ता भी हैं। यह बात सही है; परंतु गलतसी मालूम होती है। हे भगवंत ! आपके समान परस्पर विरोधी बातें किसी दूसरेमें नहीं हैं। आपमें परम त्यागीपन भी है और परम चक्रवर्तीपन भी है; ये दोनों एक साथ हैं। जिनके कल्याण-पर्वोंमें नारकी जीव भी सुख पाते हैं उनके पवित्र चरित्रका वर्णन करनेकी शक्ति किसमें

है ? हे प्रभो ! आपका शम[1] अद्भुत है, आपका रूप अद्भुत है और सब प्राणियोंपरकी आपकी दया भी अद्भुत है। ऐसे सब प्रकार की अद्भुतताके भंडार आपको हम नमस्कार करते हैं।" (६२३-६३०)

इस तरह जगन्नाथकी स्तुति कर, योग्य स्थानपर बैठ, सगरने अमृतके प्रवाहसी धर्मदेशना सुनी। देशनाके अंतमें सगर राजा बार बार प्रभुको नमस्कार कर, हाथ जोड़, गद्गद स्वरमें बोला, "हे तीर्थेश, यद्यपि आपके लिए न कोई अपना है और न कोई पराया है; तथापि अज्ञानवश मैं आपको अपने भाईकी तरह पहचानता हूँ। हे नाथ ! जब आप दुस्तर संसार-सागरसे सारे जगतको तारते हैं तो उसमें मुझ डूबते हुए की उपेक्षा आप क्यों करते हैं ? हे जगत्पति ! अनेक क्लेशोंसे भरे हुए इस संसाररूपी खड्डेमें गिरनेसे आप मुझे बचाइए ! बचाइए ! प्रसन्न होकर मुझे दीक्षा दीजिए। हे स्वामी ! मैंने संसारके सुखोंमें पड़कर, मूर्ख और अविवेकी बालककी तरह अपना जीवन निष्फल खोया है।" इस तरह कह, हाथ जोड़कर खड़े हुए सगर राजाको भगवानने दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा दी। (६३१-६३७)

तब भगीरथने उठ, नमस्कार कर, प्रार्थनाएँ पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षके समान भगवानसे इस तरह प्रार्थना की, "हे पूज्यपाद ! आप मेरे पितामहको दीक्षा देंगे, मगर जबतक मैं निष्क्रमणोत्सव न करूँ तब तक प्रतीक्षा कीजिए। यद्यपि मुमुक्षुओंको उत्सवादिकी कोई आवश्यकता नहीं है तथापि मेरे आग्रहको

1—मनोनिग्रह, निर्विकारी भाव।

पितामह भी स्वीकार करेंगे।"

सगर राजा दीक्षा लेनेको बहुत उत्सुक थे, तो भी पौत्रके आग्रहसे जगद्गुरुको प्रणाम कर, वापस अपने नगरमें गए। फिर इंद्र जिस तरह तीर्थंकरोंका दीक्षाभिषेक करता है वैसे, भगीरथने सगर राजाको सिंहासनपर बिठाकर उसका दीक्षाभिषेक किया; गंधकाषायी वस्त्रसे शरीर पोंछा और गोशीर्षचंदनका विलेप किया। उसके बाद सगर राजाने मांगलिक दो दिव्य वस्त्र धारण किए और गुणोंसे अलंकृत होते हुए भी देवताओंके द्वारा दिए गए अलंकारोंसे अपने शरीरको अलंकृत किया। फिर याचकोंको इच्छानुसार धन देकर उज्ज्वल छत्र और चमर सहित वह शिबिकामें बैठा। नगरके लोगोंने हरेक घर, हरेक दुकान और हरेक मार्ग वंदनवारों, तोरणों और मंडपोंसे सजाया। मार्गमें चलते हुए जगह जगहपर देशके और नगरके लोगोंने पूर्णपात्रादि द्वारा उनके अनेक मंगल किए। सगर बारबार देखे जाते थे और पूजे जाते थे; बारंबार उनकी स्तुति की जाती थी और उनका अनुसरण किया जाता था। इस तरह आकाशमें जैसे चंद्रमा चलता है वैसेही, सगर अयोध्याके मध्यमार्गसे धीरे धीरे चलते हुए, मनुष्योंकी भीड़से जगह जगह रुकते हुए, आगे बढ़ रहे थे। भगीरथ, सामंत, अमात्य, परिवार और अनेक विद्याधर उनके पीछे चल रहे थे। इस तरह सगर चक्री क्रमसे प्रभुके पास पहुँचे। वहाँ भगवानको प्रदक्षिणा दे, प्रणाम कर, भगीरथके द्वारा लाए हुए यतिवेषको उसने अंगीकार किया। फिर सारे संघके सामने स्वामीकी वाचनासे, उच्च प्रकारसे, सामायिकका उच्चारण करते हुए सगरने चार महाव्रत-

रूप दीक्षा ग्रहण की। जो सामंत और मंत्री जह्नुकुमार आदिके साथ गए थे उन्होंने भी संसारसे विरक्त होकर सगर राजाके साथ दीक्षा ले ली। उसके बाद धर्मसारथि प्रभुने चक्रवर्ती मुनिके मनरूपी कुमुदके लिए चंद्रिकाके समान अनुशिष्टिमय(आज्ञामय) धर्मदेशना दी। प्रथम पौरुषी समाप्त हुई तब प्रभुने देशना समाप्त कर, उठकरके देवच्छंदको अलंकृत किया, फिर प्रभुकी चरण-पीठिकापर बैठकर मुख्य गणधरने प्रभुके प्रभावसे सभी संशयों-को छेदनेवाली देशना प्रभुके समानही दी। दूसरी पौरुषी समाप्त होनेपर, जैसे वर्षाका बरसना बंद होता है वैसेही, गण-धरने भी देशना बंद की। प्रभु विहार करनेके लिए वहाँसे विदा हुए और भगीरथादि राजा और देवता अपने अपने स्थानोंको गए। (६३८–६५८)

स्वामीके साथ विहार करते हुए सगर मुनिने मूलाक्षरों (स्वर-व्यंजनों) की तरह लीलामात्रमें द्वादशांगीका अध्ययन किया। वे हमेशा प्रमाद रहित होकर, पाँच समिति और तीन गुप्तिरूपी आठ चारित्र-माताओंकी अच्छी तरहसे आराधना करते थे। हमेशा भगवानके चरणोंकी सेवा करनेसे होनेवाले हर्षके कारण, उनको होनेवाले परिसहोंके क्लेशोंका जरासा खयाल भी नहीं आता था। मैं तीन लोकके चक्री तीर्थंकरका भाई हूँ और मैं खुद भी चक्रवर्ती हूँ; ऐसा अभिमान न रखते हुए दूसरे मुनियोंके साथ वे विनयका व्यवहार करते थे। पीछेसे दीक्षा ग्रहण करनेपर भी वे राजर्षि तप और अध्ययनसे पुराने दीक्षित मुनियोंसे भी अधिक(मान्य)हो गए थे। क्रमशः घाति-कर्मोंके नष्ट होनेसे उनको इस तरह केवलज्ञान उत्पन्न हुआ

जैसे दुर्दिनके बीतनेसे सूर्य उदय होता है। (६५६-६६४)

केवलज्ञान उत्पन्न होनेके समयसे पृथ्वीपर विहार करते हुए अजितनाथ स्वामीके पचानवे गणधर, एक लाख मुनि, तीन लाख तीस हजार साध्वियाँ, साढ़े तीन सौ चौदह पूर्वधर, एक हजार चार सौ मनःपर्ययज्ञानी, नौ हजार चार सौ अवधिज्ञानी, बाईस हजार केवली, बारह हजार चौरासी वादी, बीस हजार चार सौ वैक्रियलब्धिवाले, दो लाख अठानवे हजार श्रावक और पाँच लाख पैंतालीस हजार श्राविकाएँ—इतना परिवार हुआ। (६६५-६७०)

दीक्षाकल्याणकसे एक पूर्वांग कम एक लाख पूर्व बीतनेपर अपना निर्वाण-समय निकट जान प्रभु संमेद शिखरपर गए। उनकी बहत्तर लाख पूर्वकी आयु समाप्त हुई, तब उन्होंने एक हजार श्रमणोंके साथ पादपोपगमन अनशन व्रत ग्रहण किया। उस समय सभी इंद्रोंके आसन पवनसे हिलाए हुए उद्यानके वृक्षोंकी शाखाओंकी तरह हिल उठे। उन्होंनें अवधिज्ञानसे प्रभुके निर्वाणका समय जाना। इससे वे भी संमेदशिखर पर्वतपर आए। वहाँ उन्होंने देवताओं सहित प्रभुको प्रदक्षिणा दी और शिष्यकी तरह सेवा करते हुए वे पासमें बैठे। जब पादपोपगमन अनशनका एक महीना बीता तब चैत सुदी ५ के दिन, चंद्रमा मार्गशीर्ष नक्षत्रमें आया उस समय, पर्यंकासनमें विराजमान प्रभु बादरकाययोगरूप रथमें बैठे थे; और रथमें जुड़े हुए दो घोड़ोंकी तरह बादर मनोयोग और वचनयोग रहे थे। उन्होंने सूक्ष्म काययोगमें रहकर, दीपकसे जैसे अंधकारका समूह रुकता है वैसेही, बादर काययोगका रोध किया और

सूक्ष्म काययोगमें रहते हुए बादर मनोयोग और वचनयोगको भी रोका। फिर सूक्ष्म मनोयोग और वचनयोगमें स्थित होकर सूक्ष्मक्रिय नामक शुक्लध्यानका तीसरा पाया प्राप्त किया। पश्चात शुक्लध्यानके चौथे पाये, शैलेशीकरणमें, मात्र पाँच लघु अक्षर उच्चारण हो सकें इतने समय तक रहे। वहाँ शेष कर्मक्षय हुए और अनंत चतुष्टय सिद्ध हुआ। इससे वे परमात्मा प्रभु ऋजुगतिसे लोकाग्रको प्राप्त हुए-मोक्षमें गए।

(६७९-६८१)

प्रभु कौमारावस्थामें अठारह लाख पूर्व, राज्य स्थितिमें एक पूर्वांग सहित तिरपन लाख पूर्व, छद्मस्थावस्थामें बारह बरस, और केवलज्ञानावस्थामें एक पूर्वांग और बारह वर्ष कम लाख पूर्व रहे। सब मिलाकर बहत्तर लाख पूर्वकी आयु भोगकर ऋषभप्रभुके निर्वाणसे पचास लाख करोड़ सागरोपमके बाद अजितनाथ प्रभु मोक्ष गए। उनके साथ दूसरे एक हजार मुनि भी-जिनने पादपोपगमन अनशन व्रत ग्रहण किया था-केवलज्ञान प्राप्त कर, तीनों योगोंको रोक, मोक्षपद पाए। सगर मुनिने भी, केवली समुद्घात करके जगतमें अनुपदी[1] की तरह, स्वामीके प्राप्त किए हुए पदको प्राप्त किया-यानी मोक्ष गए।

(६८२-६८७)

उस समय प्रभुके मोक्षकल्याणकमें, कभी सुखका मुँह नहीं देखनेवाले नारकियोंको भी, क्षणभरके लिए सुख हुआ। फिर शोकसहित इंद्रने दिव्यजलसे स्वामीके अंगको स्नान कराया और गोशीर्ष चंदनके रससे उसपर लेप किया। इसी

1—पीछे चलनेवाला।

तरह उसे हंसोंके चित्रवाले वस्त्र पहनाए और विचित्र दिव्य आभूषणोंसे प्रभुके शरीरका शृंगार किया। देवोंने दूसरे मुनियोंके शरीरोंको स्नान, अंगराग, नेपथ्य[1] और आच्छादन किया। फिर इंद्र स्वामीके शरीरको शिविकामें रखकर गोशीर्षचंदनकी काष्ठमय चितामें ले गया। देवता मुनियोंके शरीरोंको, दूसरी शिविकामें रखकर, गोशीर्षचंदनके काष्ठकी रची हुई दूसरी चितापर ले गए। अग्निकुमार देवने चितामें आग पैदा की, वायुकुमार देवोंने आगको अधिक भड़काया और इंद्रकी आज्ञासे अनेक देवताओंने सैकड़ों भार[2] कपूर व कस्तूरी और सैकड़ों घड़े घी चिताओंमें डाले। अस्थिके सिवा जब प्रभुकी सब धातुएँ जल गईं तब मेघकुमार देवोंने जल बरसाकर चिताओंको शांत किया। प्रभुकी ऊपरकी, दाहिनी और बाईं दोनों डाढ़ें शक्र और ईशानेंद्रने ग्रहण की और नीचेकी दोनों डाढ़ें चमर और बलि इंद्रने ग्रहण कीं। दूसरे इंद्रोंने प्रभुके दाँत ग्रहण किए और देवोंने भक्तिसे दूसरी अस्थियाँ लीं। दूसरे स्तूप-रचना वगैरहके जो काम वहाँ करने थे उन्हें विधिके अनुसार करके, इंद्रोंने देवताओं सहित, नंदीश्वर द्वीप जाकर बड़े ठाट-बाटके साथ, शाश्वत अर्हंतोंका अष्टाह्निका उत्सव किया। फिर सभी देवेंद्र अपने अपने स्थानोंपर गए। वहाँ उनने अपनी अपनी सुधर्मा नामकी सभाओंके मध्य भागके, माणवक स्तंभोंमें, वज्रमय गोलाकार डिब्बोंमें प्रभुकी डाढ़ें रखीं और वे उनकी, शाश्वत प्रतिमाओंकी तरह, उत्तम गंध, धूप और पुष्पोंसे,

---

१—नेपथ्य करना-वस्त्राभूषण पहनाना। २—आठ हजार तोलेका एक भार।

निरंतर पूजा करने लगे। इसीके प्रभावसे इंद्रोंके लिए हमेशा अव्याहत और अद्वितीय विजय-मंगल वर्तता है।

(६८७-७०१)

पद्मोंसे परिपूर्ण मनोहर सरोवरकी तरह, अंदर स्थित सगरके चरित्रसे मनोरम, यह अजितनाथ स्वामीका चरित्र, श्रोताओंके लिए इस लोक और परलोकके सुखका विस्तार करे। (७०२)

आचार्य श्री हेमचंद्र विरचित त्रिषष्टि शलाका
पुरुष चरित्र नामक महाकाव्यके द्वितीय
पर्वमें, अजितस्वामी व सगरचक्रीके
दीक्षा और निर्वाण वर्णन
नामका, छठा सर्ग
समाप्त हुआ।

卐

टिप्पणियाँ

१–करण सत्तरी

४२ पिंडविशुद्धि—साधु नीचे लिखे गये ४२ दोष टाल-कर आहार–पानी लें।

१–धात्रृपिंड (गृहस्थके बालकोंको खिलाकर आहार लेना), २–दूतीपिंड (विदेशके समाचार बताकर गोचरी लेना), ३–निमित्तपिंड (ज्योतिषकी बातें बताकर गोचरी लेना),४–आजीव-पिंड (अपनी पहली दशा बताकर गोचरी लेना), ५–वनीपकपिंड (जैनेतरके पाससे उसका गुरु बनकर गोचरी लेना), ६–चिकित्सा पिंड (चिकित्सा करके गोचरी लेना), ७–क्रोधपिंड (डराकर गोचरी लेना), ८–मानपिंड (अपनेको उच्च जाति या कुलका बताकर गोचरी लेना), ९–मायापिंड (वेष बदलकर गोचरी लेना), १०–लोभपिंड (जहाँ स्वादिष्ट भोजन मिलता हो वहाँ बारबार गोचरीको जाना), ११–पूर्वस्तवपिंड (पुराने सम्बन्धका परिचय देकर गोचरी लेना), १२–संस्तवपिंड (सम्बन्धीके गुण बखानकर गोचरी लेना), १३–विद्यापिंड (बच्चे पढ़ाकर गोचरी लेना), १४–मन्त्रपिंड (यन्त्र मन्त्र बताकर गोचरी लेना), १५–चूर्णयोगपिंड (वास-क्षेप इत्यादि देकर गोचरी लेना), १६–मूल-कर्मपिंड (गर्भ रहनेके उपाय बताकर गोचरी लेना)।

[ये सोलह तरहके दोष साधुको अपने ही कारणसे लगते हैं।]

१७-साधुके लिए बना आहार लेना, १८-औद्देशिक (अमुक मुनिके लिए बना आहार लेना), १९-पूतिकर्म (सदोष अन्नमें मिला निर्दोष अन्न लेना), २०-मिश्र आहार (साधु तथा गृहस्थ के लिए बना आहार लेना), २१-स्थापना (साधुके लिए रखा हुआ आहार लेना), २२-प्राभृतिक (साधुके निमित्तसे, समयसे पहले या बादमें, बनाया हुआ आहार लेना), २३-प्रकाशकरण (अँधेरेमें से उजेलेमें लाना), २४-क्रीत (खरीदा हुआ आहार लेना), २५-उद्यतक (उधार लाया हुआ आहार लेना), २६-परिवर्तित (बदलेमें आया हुआ आहार लेना), २७-अभ्याहृत (सामने लाया हुआ आहार लेना), २८-पदभिन्न (मुहर तोड़कर निकाला हुआ आहार लेना), २९-मालापहृत (ऊपरसे लाकर दिया हुआ आहार लेना), ३०-अछेद्य (जबरदस्ती दूसरेसे छीन-कर लाया हुआ आहार लेना), ३१-अनिसृष्ट (अनेक आद-मियोंके लिए बनी हुई रसोईमें से दूसरोंकी आज्ञा लिए बगैर एक आदमी आहार दे वह लेना), ३२-अध्यवपूर्वक (साधुको आते जानकर गृहस्थका उनके लिए अधिक भोजन बनाना और साधुका उसे ग्रहण करना)

[ये १७ से ३२ तकके दोष गृहस्थकी तरफसे होते हैं। इनको उद्गम दोष कहते हैं।]

३३-शंकित (अशुद्ध होनेकी शंका होने पर भी आहार लेना), ३४-मृक्षित (अशुद्ध वस्तु लगे हुए हाथसे आहार लेना), ३५-निक्षिप्त (सचित्त वस्तुमें गिरी हुई अचित्त वस्तु निकालकर रखी हो वह लेना), ३६-पिहित (सचित्त वस्तुसे ढकी हुई अचित्त वस्तु लेना), ३७-संहृत (एकसे दूसरे बर्तनमें डालकर

दी हुई वस्तु लेना), ३८-दायक (देनेवालेका मन देनेकी तरफ न हो वह वस्तु लेना), ३९-मिश्र (सचित्तमें मिली हुई अचित्त वस्तु लेना), ४०-अपरिणत (अचित्त हुए वगैर वस्तु लेना), ४१-लिप्त (थूँक वगैरह लगे हाथसे मिलनेवाली वस्तु लेना), ४२-उज्झित (रस टपकती हुई वस्तु लेना)

[३३ से ४२ तकके दस दोष देने और लेनेवाले दोनोंके मिलनेसे होते हैं।

५. समिति—(देखो पेज २८)

१२ भावना या अनुप्रेक्षा— १. अनित्य (संसारकी चीजें अनित्य हैं–इसलिये उनमें मोह नहीं करना चाहिये) २. अशरण (सिवा धर्म के दूसरा कोई आश्रय मनुष्यके लिए नहीं है) ३. संसार (संसार सुख-दुखका स्थान और कष्टमय है) ४. एकत्व (जीव अकेला ही जन्मता और मरता है) ५. अन्यत्व- (परिवार, धनसम्पत्ति और शरीर सभी पर हैं) ६. अशुचि- (यह शरीर अशुचि है) ७. आस्रव (इन्द्रियासक्ति अनिष्ट- है) ८. संवर (उत्तम विचार करना) ९. निर्जरा (उदय में आए हुए कर्मों को समभाव से सहना और तप के द्वारा सत्ता में रहे हुए कर्मों को नाश करने की भावना) १०. लोकानुप्रेक्षा (संसार के स्वरूप का विचार करना) ११. बोधिदुर्लभ (सम्यक्ज्ञान और शुद्ध चारित्र का प्राप्त होना दुर्लभ है) १२. धर्मस्वाख्यातत्त्व (सबका कल्याण करने वाले धर्म का सत्पुरुषों ने उपदेश दिया है । यह सौभाग्य की बात है)

५. पाँचों इन्द्रियों का निरोध—(स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण)

१. पडिलेहण या प्रतिलेखन—(हरेक चीज को ध्यान-पूर्वक देखना)

३. गुप्ति—(मन-वचन-काय गुप्ति, देखो पेज २८)

४. अभिग्रह या प्रतिज्ञा.

१. मुनि प्रतिमा—(देखो टिप्पणियों में 'प्रतिमा' शब्द)

इस प्रकार कुल ७० हुए.

दूसरी तरह से भी करण सत्तरी गिनी जाती है । ४-चयालीस दोष रहित-आहार, उपाश्रय, वस्त्र और पात्र की गवेषणा । ५-समिति, १२ भावना, १२ मुनि प्रतिमा, ५ इन्द्रिय निरोध, २५ तरह से पडिलेहण, ३ गुप्ति, ४ अभिग्रह (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से)

[प्रयोजन के अनुसार व्यवहार में लाना, हर रोज न लाना 'करण' कहलाता है ।]

२—कमठ और धरणेन्द्र—

पार्श्वनाथ जी प्रथम भव में मरुभूति नाम से प्रसिद्ध थे । कमठ उनका भाई था । इसकी दुश्चरित्रता के कारण यह दंडित हुआ । इसका कारण वह मरुभूति को समझ इनसे वैर रखने लगा । पार्श्वनाथ जी के दसवें भव में कमठ कठ नाम का पंचाग्नि तप करने वाला तपस्वी हुआ । एक बार गृहस्थावस्था में पार्श्वनाथ जी तपस्वी की धूनी पर गए । वहाँ लक्कड़ जल रहे थे । इनमें से एक लकड़ी की पोल में एक साँप जल रहा था । पार्श्वनाथ जी ने यह बात अपने अवधिज्ञान से जानी । इन्होंने कठ से कहा, "तुम यह कैसा तप करते हो कि जिसमें

जीवित सर्प जल रहा है ?"—कमठ ने विरोध किया। पार्श्वनाथ जी ने अपने नौकरके द्वारा धूनी में से एक लक्कड़ निकलवाया। उसमें से तड़पता हुआ साँप निकला। पार्श्वनाथ जी ने उसे नवकार मंत्र सुनाया। साँप मरकर धरण नाम का इन्द्र हुआ। इससे कठका बड़ा अपमान हुआ। कठ भी मरकर मेघमाली नाम का देव हुआ। पार्श्वनाथ जी ने दीक्षा ली। वे एक दिन ध्यान में थे। मेघमाली ने उन्हें देखा। वह पूर्व का वैर याद कर उन पर मूसलधार पानी बरसाने लगा। उनके चारों तरफ पानी भर गया। वे गले तक डूब गए। धरणेन्द्र को यह बात मालूम हुई। उसने आकर पार्श्वनाथ जी को एक सोने के कमल पर चढ़ा लिया और उन पर फनकी छाया कर दी। फिर उसने मेघमाली को धमकाया। वह डरकर पार्श्वनाथ प्रभु के चरणों में पड़ा। इस तरह कमठ ने प्रभु के शरीर को सताया और धरणेन्द्र ने प्रभु के शरीर की रक्षा की, परन्तु पार्श्वनाथ जी न कमठ से नाराज हुए और न धरणेन्द्र पर प्रसन्न हुए। उनके मन में दोनों के लिए समान भाव थे।

३—बहत्तर कलाएँ

ये कलाएँ भगवान आदिनाथने अपने बड़े पुत्र भरतको सिखलाई थीं १. लेख–लिखनेकी कला: सब तरहकी लिपियोंमें लिख सकना; खोदकर, सींकर, बुनकर, छेदकर, भेदकर, जलाकर और संक्रमण करके एक दूसरेमें मिलाकर अक्षर बनाना; मालिक-नौकर, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, शत्रु-मित्र वगैरहके साथ पत्र व्यवहारकी शैली, और लिपिके गुण दोषका ज्ञान, २. गणित, ३. रूप—मिट्टी, पत्थर, सोना, मणि, वस्त्र और

चित्रादिमें रूप वगैरा आकृति बनाना, ४. नाट्य—अभिनय-वाला और अभिनय बिना का नाच, ५. गीत, ६. वादित्र, ७. स्वरगत—संगीतके सात स्वरोंका ज्ञान, ८. पुष्करगत—मृदंग वगैरह बजानेका ज्ञान, ९. समताल—गायन वगैरहके तालका ज्ञान, १०. द्यूत-जूआ, ११. जनवाद—एक तरहका जूआ, १२. पासक-पासा, १३. अष्टापद-चौपड़, १४. पुरःकाव्य—शीघ्र कवित्व, १५. दकमृत्तिका—मिली हुई चीजोंको अलग करनेकी विद्या, १६. अन्न-विधि—पाकविद्या-भोजन बनानेका ज्ञान, १७. पानविधि-पानी साफ करनेकी और उसके गुण-दोष जाननेकी विद्या, १८. वस्त्र विधि—वस्त्र पहननेकी विद्या, १९. विलेपन विधि, २०. शयनविधि—पलंग, गद्दा, तकिया वगैरहके प्रमाण का और कैसे सोना चाहिए इसका ज्ञान, २१. आर्या—आर्या छंदके भेद-प्रभेदोंका ज्ञान, २२. प्रहेलिका—पहेली—समस्या [२३. मागधिका, २४. गाथा, २५. गीति, २६. श्लोक—वगैरा के भेद-प्रभेदोंका ज्ञान,] २७. हिरण्ययुक्ति—चाँदीके कौन-कौनसे जेवर किस किस जगह पहनने चाहिए इसका ज्ञान, २८. स्वर्णयुक्ति—सोनेके कौन कौनसे जेवर किस किस जगह पहनने चाहिए इसका ज्ञान, २९. चूर्णयुक्ति—स्नान, मंजन वगैरहके चूर्ण बनानेका ज्ञान, ३०. आभरण विधि, ३१. तरुणी प्रतिकर्म—युवतीके वर्ण वगैरा बढ़ानेका ज्ञान, [३२. स्त्री, ३३. पुरुष, ३४. हय, ३५. गज, ३६. गाय, ३७. कुक्कुट—मुरगा, ३८. छत्र, ३९. दंड, ४०. असि, ४१. मणि, ४२. काकणी-रत्न—इन ग्यारहके सामुद्रिक शास्त्रमें बताए हुए लक्षणों का ज्ञान,] ४३. वास्तुविद्या—वह विद्या जिससे इमारतसे सम्बन्ध रखने वाली सभी बातोंका ज्ञान होता है, ४४. स्कंधा-

वारमान—सेनाके परिमाणका ज्ञान, ४५. नगरमान—शहर के परिमाणका ज्ञान, ४६. व्यूह—सेनाकी रचनाका ज्ञान, ४७. प्रतिव्यूह—प्रतिद्वन्द्वी शत्रुकी व्यूहरचनाका ज्ञान, ४८. चार—ग्रहोंकी गति वगैरहका ज्ञान, ४६. पडियार—प्रतिचार-ग्रहोंकी गति वगैराका ज्ञान अथवा प्रतिकार-रोगीके उपचार का ज्ञान, [५०. चक्रव्यूह, ५१. गरुड व्यूह, ५२. शकटव्यूह—वगैरा व्यूहोंकी रचनाका ज्ञान,] ५३. युद्ध, ५४. नियुद्ध—मलयुद्ध ५५. युद्धातियुद्ध—बड़ी लड़ाई ५६. दृष्टियुद्ध ५७. मुष्टि-युद्ध ५८. बाहु युद्ध ५६. लतायुद्ध—लता की तरह प्रतिद्वन्दी से लिपटकर किया जाने वाला युद्ध, ६०. ईश वस्त्र—बाणों और अस्त्रोंका ज्ञान, ६१. त्सरुप्रवाद—असि युद्धकी विद्या ६२. धनुर्वेद, ६३. हिरण्यपाक—चाँदी बनानेका कीमिया ६४. स्वर्णपाक—सोना बनानेका कीमिया-रसायण, ६५. सूत्र-खेल—टूटी हुई या जली हुई रस्सियोंको बताना कि ये टूटी हुई या जली हुई नहीं हैं अथवा रस्सियोंको खींचकर किया जाने वाला पुतलियोंका खेल, ६६. वस्त्र खेल—फटा हुआ या छोटा कपड़ा इस तरह पहनना कि वह फटा या छोटा न दिखाई दे, ६७. नालिका खेल * —एक तरहका जूआ, ६८. पत्र-

* सूत्रक्रीड़ाकी व्याख्या करते हुए वात्स्यायनकी टीकामें लिखा है–"नालिकासंचारनालादिसूत्राणां अन्यथा अन्यथा दर्शनम्।" अर्थात् नलीमें डाले हुए सूतके तंतुओंका दूसरी दूसरी तरह दिखाई देना। इससे ऐसा जान पड़ता है कि शायद नालिका खेलका अर्थ सूत्रक्रीडासे मिलता जुलताही हो। और यह शब्द सूत्र खेल और वस्त्र खेलकी पंक्तिमें ही है। इससे भी यह अर्थ अधिक सुसंगत मालूम होता है।

च्छेद्य-पत्तोंके थोकमें अमुक संख्या तकके पत्तोंको छेदनेकी कला, ६६. कटच्छेद्य—बीचमें अन्तरवाली और एकही पंक्तिमें रक्खी हुई वस्तुओंको क्रमवार छेदनेका ज्ञान, ७०. सजीव—मरी हुई धातुओंको सहज रूपमें लानेका ज्ञान, ७१. निर्जीव—धातुओंको मारनेका ज्ञान, ७२. शकुनरुत-शकुनों और आवाजोंका ज्ञान।

इस तरह बहत्तर कलाओंका उल्लेख समवायांग सूत्रके बहत्तरवें समवायमें और राजप्रश्नीयमें दृढ़प्रतिज्ञकी शिक्षाके प्रकरणमें कुछ परिवर्तनके साथ आता है।

कामसूत्रके विद्या समुद्देश प्रकरणमें ६४ कलाओं और उनका विवरण दिया हुआ है। इन चौंसठ कलाओंमें ऊपर बताई हुई बहत्तर कलाएँ समा जाती हैं।

विवरण इस प्रकार है:—

काम सूत्र	जैनसूत्रकी कौनसी कलाएँ उसमें समाती हैं
१—गीत	५. गीत ७. स्वरगत
२—वाद्य	६. वादित्र ८. पुष्करगत ६.(समताल
३—नृत्य	४. नाट्य
४—आलेख्य	३. रूप
५—विशेषकच्छेद्य [इसको पत्र-च्छेद्य भी कहा है। तिलक वगैरह के लिए पत्तोंकी अनेक तरहकी आकृतियाँ बनानेकी कला।]	६८. पत्रच्छेद्य [इसकी व्याख्या विशेषकच्छेद्यकी व्याख्या के अनुसार भी हो सकती है।]

६—तंडुल कुसुमवलिविकार [अनेक रंगों के चावलों वगैरहसे तरह तरहके साथिए इत्यादि बनाना]	
७—पुष्पास्तरण [इसे पुष्पशयन भी कहते हैं]	२०. शयनविधि
८—दशन वसनांगराग [दाँत, कपड़े और शरीर रँगना]	३१. तरुणी प्रतिकर्म (?) १६. विलेपन २०. वस्त्रविधि
६—मणिभूमि कर्म [सोने-बैठने के लिए मणि वगैरहसे जमीन बाँधना]	
१०-शयन रचन	२०. शयन विधि
११-उदकवाद्य [जलतरंग]	६. वादित्र
१२-उदकाघात [पानीकी पिच-कारियोंसे खेलना]	
१३-चित्रयोग [जादू-टोना]	
१४-माल्यग्रथन [मालाएँ गूँथना]	
१५-शेखरका पीड योजन [फूलों द्वारा शेखरक आपीड़ यानी सरके गहने गूँथना]	३०. आभरण विधि
१६-नेपथ्यप्रयोग	१८. वस्त्रविधि
१७-कर्णपत्रभंग [दाँत, शंखादि के कानोंके जेवर बनाना]	३०. आभरण विधि
१८-गंधयुक्ति	२६. चूर्णयुक्ति
१६-भूषणयोजन	३०. आभरण विधि

२०-इन्द्रजाल	
२१-कौंचुमारयोग [कुचुमारके बताए हुए सौभाग्य, वाजीकरण वगैरह उपाय]	
२२-हस्तलाघव [हाथकी चालाकी]	६८. पत्रच्छेद्य ६९ कटच्छेद्य
२३-विचित्र शाक-यूप-भक्ष्य विकार क्रिया	१६ अन्नविधि
२४-पानकरसरागासव योजन	१७. पानविधि
२५-सूचीवान कर्म [दर्जीका काम]	
२६-सूत्रक्रीडा	६५. सूत्रखेल ६७. नलिकाखेल
२७-वीणाडमरुक वाद्य	६. वादित्र
२८-प्रहेलिका [पहेली]	२२. प्रहेलिका
२९-प्रतिमाला [अंतकड़ी]	
३०-दुर्वाचकयोग [कठिन उच्चारण वाले शब्दोंको बोलने की कला]	
३१-पुस्तक वाचन	
३२-नाटकाख्यायिक दर्शन	
३३-काव्य समस्यापूर्ति	
३४-पत्रिका वेत्रवान विकल्प [बेंत, सरकंडा वगैरह से पलंग, कुर्सी वगैरह बुनने की क्रिया]	
३५-तक्षकर्म	
३६-तक्षण [सुतारका काम]	

३७-वास्तुविद्या	४३. वास्तुविद्या ४५. नगरमान
३८-रूप्यरत्न परीक्षा	४१. मणिलक्षण ४२. कांकणीलक्षण २७. हिरण्ययुक्ति? २८. सुवर्णयुक्ति ?
३९-धातुवाद	६३. हिरण्यपाक ६४. सुवर्णपाक ७०. सजीव ७१. निर्जीव
४०-मणिरागाकर ज्ञान [मणियोंकी खानोंका और मणियाँ रँगने का काम]	
४१-वृक्षायुर्वेद [वनस्पतिकी दवा करनेकी विद्या]	
४२-मेषकुक्कुटलावक युद्ध-विधि [मेढों, मुर्गों और लवोंकी लड़ाईकी विधि का ज्ञान]	५३. युद्ध ?
४३-शुकसारिका प्रलापन [तोता मैनाको बोलना सिखाना]	
४४-उत्सादन, संवाहन और केशमार्जन कौशल [हाथ-पैर दबाने, मालिश करने और बालोंको मलनेकी कला]	
४५-अक्षर मुष्टिका कथन	
४६-म्लेच्छित कलाविकल्प [सांकेतिक भाषाका प्रयोग]	
४७-देशभाषा विज्ञान	

४८-पुष्पशकटिका [फूलोंके म्याने, पालखियाँ वगैरा बनाने की कला]

४९-निमित्तज्ञान

५०-यंत्र मातृका [सजीव या निर्जीव यंत्रोंकी रचना]

५१-धारणमातृका[स्मरणशक्ति-याद रखनेकी कला]

५२-संपाठ्य [कोई आदमी कविता बोलता हो उसके साथही दूसरा आदमी--जिसे वह कविता न आती हो-भी एकाध अगला शब्द सुनकर वह कविता बोल सके ऐसी कला। जैनशास्त्रों में इसको पदानुसारिणी बुद्धि कहते हैं।]

५३-मानसी काव्यक्रिया [पद्म, उत्पल वगरहकी आकृति-वाले श्लोकोंमें खाली जगहों को भरना]

५४-अभिधानकोश [शब्दकोश का ज्ञान]

५५-छंदोविज्ञान

[७२. शकुनरुत (३२ से ४२ तक की कलायें) ४८. चार ४९ प्रतिचार]

२१. आर्या २३. मागधिका २४. गाथा २५. गीति २६. श्लोक

५६-क्रियाकल्प [काव्य-अलंकार]	१४. पुरःकाव्य-शीघ्र कवित्व
५७--छलितक योग [रूपांतर करके ठगनेकी कला]	
५८--वस्त्रगोपन	
५९--द्यूतविशेष	[१० वें से १४ वें तक]
६०--आकर्ष क्रीड़ा [पासोंका खेल]	१२. पाशक
६१-बालक्रीडन [बालकोंके लिए गुड़िया वगैरह बनानेकी कला]	
६२--वैनयिकी [अपनेको व दूसरेको शिक्षित बनानेकी तथा हाथी वगैरह पशुओं को शिक्षित बनानेकी कला]	
६३--वैजयिकी [विजय पानेकी कला]	[४६. व्यूह ४७. प्रतिव्यूह ५०. चक्रव्यूह ५१. गरुड व्यूह ५२. शकट व्यूह ५३. युद्ध ५४. नियुद्ध ५५. युद्धातियुद्ध ५६. दृष्टि युद्ध ५७. मुष्टियुद्ध ५८. बाहु युद्ध ५९. लतायुद्ध ६०. इ-ष्वस्त्र ६१. त्सरुप्रवाद, ६२. धनुर्वेद, ४५. स्कंधावारमान]
६४--व्यामिकी [व्यायामसे संबन्ध रखनेवाली कला]	

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिकी टीकामें स्त्रीकी ६४ कलाओंके नाम आगे लिखे अनुसार हैं—

१ नृत्य, २–औचित्य, ३–चित्र, ४–वादित्र, ५–मंत्र, ६–तंत्र, ७-ज्ञान, ८-विज्ञान, ९-दंभ, १०–जलस्तम्भ, ११–गीतमान, १२–तालमान, १३–मेघवृष्टि, १४–फलाकृष्टि, १५–आरामरोपण, १६-आकारगोपन, १७-धर्मविचार, १८–शकुनसार, १९–क्रियाकल्प, २०–संस्कृतजल्प, २१–प्रासादनीति, २२–धर्मनीति, २३–वर्णिकावृद्धि, २४-स्वर्णसिद्धि, २५–सुरभितैलकरण, २६-लीलासंचरण, २७-हयगजपरीक्षा, २८-पुरुषस्त्रीलक्षण, २९–हेमरत्न भेद, ३०–अष्टापदलिपिपरिच्छेद, ३१–तत्कालबुद्धि, ३२–वास्तुसिद्धि, ३३–काम विक्रिया, ३४–वैद्यकक्रिया, ३५–कुंभ भ्रम, ३६-सारीश्रम, ३७ अंजनयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९–हस्तलाघव, ४ –वचनपाटव, ४१–भोज्यविधि, ४२–वाणिज्यविधि, ४३ मुखमंडन, ४४–शालीखंडन, ४५–कथाकथन, ४६–पुष्पग्रंथन, ४७-वक्रोक्ति, ४८–काव्यशक्ति, ४९–स्फार–विधिवेश, ५०–सर्वभाषा विशेष, ५१–अभिधानज्ञान, ५२–भूषणपरिधान, ५३–भृत्योपचार, ५४–गृहाचार, ५५–व्याकरण, ५६–परनिराकरण, ५७-रंधन, ५८–केशबन्धन, ५९–वीणा–नाद, ६०–वितंडावाद, ६१–अंकविचार, ६२–लोकव्यवहार, ६३–अंत्याक्षरिका, ६४–प्रश्नप्रहेलिका।

प्राचीन समयमें इन सभी कलाओंके शास्त्र थे। वाराह–संहिता, भरतका नाट्यशास्त्र, वात्स्यायनका कामसूत्र, चरक तथा सुश्रुतकी संहितायें, नलका पाकदर्पण, पालकाप्यका हस्त्यायुर्वेद, नीलकंठकी मातंगलीला, श्रीकुमारका शिल्परत्न, रुद्रदेवका श्यैनिक शास्त्र, मयमत और संगीतरत्नाकर वगैरह ग्रंथ तो अब भी प्राप्त हो सकते हैं। ये कलायें पहले सूत्रसे कंठस्थ कराई जाती थीं, पीछे उनका अर्थ बताया जाता था। और उसके बाद उनकी

प्रयोगात्म शिक्षा दी जाती थी। इसमें खास ध्यान देनेकी बात यह है कि पुराने लोग शिक्षा देते समय उन उन विषयोंके प्रयोगोंको भूलते नहीं थे। और इन कलाओंकी योजना इस तरह की गई थी कि जिससे मनुष्योंकी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का विकास समान रूपसे होता था। इससे यह भी मालूम होता है कि पुराने जमानेमें केवल एकांगी–मात्र मानसिक–ज्ञानही नहीं दिया जाता था।

[अध्यापक बेचरदासजी द्वारा अनुवादित 'भगवान महावीरनी धर्मकथाओ' नामक पुस्तकसे]

४ काल

कालका व्यवहार मनुष्य-लोकमें ही होता है। घड़ी, दिन, रात वगैरा भेद सूरज और चाँद आदिकी गतिके आधार पर होता है।

जम्बूद्वीप थालीकी तरह गोल है। लवण समुद्र उसे कड़े की तरह लपेटे हुए है। इसी तरह लवणसमुद्रको धातकीखंड और धातकीखंडको कालोदधि समुद्र और इसको पुष्करार्द्ध घेरे हुए हैं। यही मनुष्यलोक है। इसमें ढाई द्वीप और दो समुद्र हैं। इसे ढाई द्वीप भी कहते हैं और यह समयक्षेत्रके नामसे भी पहचाना जाता है।

मनुष्यलोकमें कुल १३२ चाँद और सूरज हैं। [जंबूद्वीपमें दो दो, लवणसमुद्रमें चार चार, धातकी खंडमें बारह बारह, कालोदधि समुद्रमें बयालीस बयालीस, और पुष्करार्द्धमें बहत्तर बहत्तर। प्रत्येक चाँदके परिवारमें बीस नक्षत्र, अठासी ग्रह और छासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोटा–कोटि तारे हैं]

कालके चार भेद हैं—१-प्रमाणकाल, २-यथायुर्निर्वृत्तिकाल ३-मरणकाल और ४-अद्धाकाल।

१—प्रमाणकाल दो तरह का है-दिन प्रमाणकाल और रात्रि प्रमाणकाल। चार पौरुषी–पहरका दिन होता है और चार पहरकी रात होती है। दिन या रातकी पहर अधिकसे अधिक साढ़े चार मुहूर्त की और कमसे कम तीन पहरकी होती है। जब पहर घटती–बढ़ती है तब वह मुहूर्तके एक सौ बाईसवें भाग जितनी घटती या बढ़ती है। जब दिन बड़ा होता है तब वह अठारह मुहूर्तका होता है और रात छोटी यानी बारह मुहूर्त्तकी होती है; जब रात बड़ी होती है तब वह अठारह मुहूर्तकी होती है और दिन छोटा यानी बारह मुहूर्तका होता है।

आषाढ़ मास की पूर्णिमाको, दिन अठारह मुहूर्तका और रात बारह मुहूर्तकी होती है। पौष महीनेकी पूर्णिमाको रात अठारह मुहूर्तकी और दिन बारह मुहूर्तका होता है। चैत्री पूर्णिमा और आश्विनी पूर्णिमाको दिन-रात समान यानी पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्तके होते हैं।

२—यथायुर्निर्वृत्ति काल–देव, मनुष्यादि जीवों ने जैसी आयु बाँधी हो उसके अनुसार उसका पालन करना।

३—मरणकाल–जीवका एक शरीरसे अलग होनेका समय।

४—अद्धाकाल—यह सूर्यके उदय और अस्त होनेसे मापा जाता है। यह अनेक तरहका है। कालके छोटेसे छोटे अवि-भाज्य भाग को समय कहते हैं। ऐसे असंख्य समयोंकी एक आवलिका होती है।

२५६ आवलिकाका एक क्षुल्लक भव; १७ से अधिक क्षुल्लक भवका एक श्वासोश्वास; व्याधिरहित एक प्राणीका एक श्वासोश्वास एक प्राण; ७ प्राणका एक स्तोक; ७ स्तोकका एक लव; ७७ लवका एक मुहूर्त; (३७७३ श्वासोश्वासका एक मुहूर्त); ३० मुहूर्तका एक दिन-रात; १५ दिन रातका एक 'पक्ष'; दो पक्षका एक मास; दो मासकी एक ऋतु; तीन ऋतुका एक अयन; दो-अयनका एक वर्ष; १२ वर्षका एक जुग; ८४ लाख वर्षका एक पूर्वांग; चौरासी लाख पूर्वांगका एक पूर्व। इसी तरह त्रुटितांग-त्रुटित; अडडांग-अड़ड; अववांग-अवव; हू हूअांग, हू हू अ; उत्पलांग, उत्पलपद्मांग, पद्म; नलिनांग, नलिन; अर्थनिउरांग, अर्थनिउर; अयुतांग, अयुत; प्रयुतांग, प्रयुत; नयुतांग, नयुत; चूलिकांग, चूलिका; शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका।

यहाँ तक संख्यावाचक शब्द हैं। इसके बाद संख्यासे नहीं; परन्तु उपमासे ही काल जाना जा सकता है। इसे औपमिक काल कहते हैं। यह दो तरहका है:—एक पल्योपम और दूसरा सागरोपम।

१. पल्योपम—जिसका फिर भाग न हो सके वह परमाणु; अनन्त परमाणुओंके समागमसे एक उच्छ्लक्ष्णश्लक्ष्णिका; इन आठकी एक लक्ष्णश्लक्ष्णिका; इन आठका एक ऊर्ध्वरेणु; इन आठका एक त्रसरेणु; इन आठका एक रथरेणु; आठ रथरेणुका देवकुरु और उत्तरकुरुके मनुष्योंके, एक बालका अग्रभाग होता है; ऐसे आठका, हरिवर्ष और रम्यकके मनुष्योंके, एक बालका अग्र भाग; ऐसे आठका, हेमवत्त और ऐरावतके मनुष्योंके, एक

वालका अग्र भाग; ऐसे आठका, पूर्व विदेहके मनुष्योंके, एक वालका अग्र भाग; ऐसे आठकी एक लिखा (लीक); आठ लिखा की एक यूका (जूँ); आठ यूकाका एक यवमध्य; आठ यव-मध्योंका एक अंगुल; [छः अंगुलका एक पाद, बारह अंगुलका एक बालिश्त, चौबीस अंगुलका एक हाथ, ४८ अंगुलकी एक कुक्षि]; ९६ अंगुलका एक दंड (धनुष्य, युग, नालिका, अक्ष अथवा मूसल) होता है। ऐसे २००० दंड या धनुषका एक कोस और ऐसे चार कोसका एक योजन होता है। ऐसा एक योजन आयाम-विष्कम्भ (लम्बाई-चौड़ाई) वाला, एक योजन ऊँचाई वाला और सविशेष तीन योजन परिधिवाला एक पल्य अर्थात् खड्डा हो; उसमें एक दिनके उगे, दो दिनके उगे, तीन दिनके उगे और अधिकसे अधिक सात दिनके उगे हुए करोड़ों वालोंके अगले भागोंसे वह खड्डा मुँह तक ठसाठस भरा हो; फिर उस पल्य यानी खड्डेमेंसे सौ सौ बरसके बाद एक एक बालाग्र निकाला जाए, फिर जितने बरसोंमें वह खड्डा बिलकुल खाली हो जाए उतने वर्षोंको एक पल्योपम कहते हैं। ऐसे कोटाकोटि पल्योपमको १० गुणा करनेसे जितने बरस आते हैं उतने बरसों का एक सागरोपम होता है। बीस कोटाकोटि सागरोपमका एक कालचक्र गिना जाता है। (देखो पेज १२२-१२३)

[भगवती सूत्र शतक ६ उद्देशक ७ से]

५—चरण सत्तरी

५. महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

१०. यतिधर्म—क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य। (इसे उत्तमधर्म भी कहते हैं।)

१७. संयम—पाँच इन्द्रियोंका निग्रह, पाँच अव्रतोंका त्याग, चार कषायोंका जय, और मन-वचन-कायकी विरति।

१०. वैयावृत्त्य— आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष (शिक्षण-प्राप्तिका उम्मीदवार-नवदीक्षित), ग्लान (रोगी), गण (एक साथ पढ़नेवाले भिन्न भिन्न आचार्योंके शिष्योंका समूह), कुल (एक ही दीक्षाचार्यका शिष्य-परिवार) संघ, साधु, समनोज्ञ (समानशील)। [इन दस तरहके सेव्योंकी सेवा करना।]

९. ब्रह्मचर्य-गुप्ति—१-उस स्थानमें न रहना जहाँ स्त्री, पशु या नपुंसक हों। २-स्त्रीके साथ रागभावसे वातचीत न करना। ३-जिस आसनपर स्त्री बैठी हो उस पर पुरुष और पुरुष बैठा हो उसपर स्त्री दो घड़ी तक न बैठें। ४-रागभावसे पुरुष स्त्रीके और स्त्री पुरुषके अंगोपांग न देखें। ५-जहाँ स्त्री-पुरुष सोते हों या कामभोगकी वातें करते हों और उसके बीचमें एक ही दीवार हो तो साधु वहाँ न ठहरे। ६-पहले भोगे हुए भोगोंको याद न करे। ७-पुष्टिकारक भोजन न करे। ८-नीरस आहार भी अधिक न ले। ९-शरीरको न सिंगारे। [इनसे शीलकी रक्षा होती है।]

३. तीनरत्न—ज्ञान, दर्शन और चारित्र।

१२. तप—[६ बाह्य तप—अनशन, ऊनोदरी, वृत्ति-संक्षेप, रस त्याग, विविक्तशैया-संलीनता यानी ऐसे एकान्त स्थानमें रहना जहाँ कोई बाधा न हो, कायक्लेश। ६-अभ्यंतर तप-प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग-अभिमान और ममताका त्याग करना, और ध्यान।]

४. कषायजय—क्रोध, मान, माया, लोभ। (कुल ५८)

[नित्यके आचरणको चरण कहते हैं। साधु ऊपर लिखी बातें सदा आचरणमें लाते हैं।]

६–ध्यान

उत्तम संहननवालेका किसी एक विषयमें अन्तःकरण-की वृत्तिका स्थापन करना, ध्यान है। यह अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। मनके संकल्प-विकल्पोंको छोड़नेको भी ध्यान कहते हैं। ध्यानके चार भेद हैं—आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल।

१. आर्तध्यान—अर्तिका अर्थ दुःख है; इससे जो मनमें भाव उत्पन्न होता है उसे 'आर्त' कहते हैं। दुःख चार तरहसे उत्पन्न होता है–अप्रिय वस्तु मिलनेसे, प्रिय वस्तुके चले जाने से, रोगसे, अप्राप्त वस्तुको प्राप्त करनेके संकल्पसे; इसीसे इसके चार भेद किए गए हैं। १–अनिष्टसंयोग; २–इष्टवियोग; ३–रोगचिंता; और ४ निदान आर्तध्यान। आर्तध्यानके चार लक्षण हैं–जोरसे रोना, दीनता, चुपचाप आँसू गिराना और बार बार दुःखपूर्ण वचन बोलना।

२. रौद्रध्यान—जिसका चित्त क्रूर होता है उसे 'रुद्र', कहते हैं और ऐसे आत्माका जो चिंतन होता है उसे 'रौद्र', कहते हैं। यह क्रूरता चार तरहसे उत्पन्न होती है–हिंसासे, झूठसे, चोरीसे, मिली हुई चीजोंकी रक्षा करनेके ख्यालसे। इसी-से इसके चार भेद किए गए हैं। १–हिंसानुबन्धी; २–अनृता-नुबन्धी; ३–स्तेयानुबंधी और ४–विषयसंरक्षणानुबंधी रौद्रध्यान। रौद्रध्यानके चार लक्षण हैं। हिंसाके विचार करना; हिंसाके काम करना; हिंसादि अधर्मके काम धर्मबुद्धिसे करना और मरण तक पापोंका प्रायश्चित्त नहीं करना।

३. धर्मध्यान—देखो पेज ६३६ से ६७२। धर्मध्यानके चार लक्षण हैं—जिनोपदेशमें रुचि; स्वभावसे ही तत्वमें रुचि; शास्त्रअभ्याससे तत्त्वमें रुचि; और बारह अंग-ग्रंथोंके सविस्तर अवगाहनकी रुचि। धर्मध्यानके चार आलंबन हैं—वाचना (अध्ययन); प्रतिप्रच्छना; पुनरावर्तन और धर्मकथा। धर्म-ध्यानकी चार भावनाएँ हैं—एकत्व भावना; अनित्य भावना; अशरण भावना और संसार भावना।

४. शुक्लध्यान—इसके चार भेद हैं—

(क) पृथक्त्व वितर्क सविचार—[पृथक्त्व-विविध पर्यायें। वितर्क-अंगशास्त्र या श्रुतज्ञान। विचार-संक्रमण। सविचार-संक्रमण सहित] इसमें श्रुतज्ञानका अवलंबन लेकर किसी भी एक द्रव्यमें उसके पर्यायोंका विविध दृष्टियोंसे चिंतन किया जाता है; श्रुतज्ञानके सहारे ही एक अर्थ परसे दूसरे अर्थ पर, अर्थ परसे शब्द पर, शब्द परसे अर्थ पर तथा एक योग परसे दूसरे योग पर बार बार संचार करना पड़ता है।

(ख) एकत्व वितर्क अविचार-[अविचार-संक्रमण रहित] इसमें श्रुतज्ञानका अवलंबन होनेपर भी द्रव्यकी एकही पर्याय पर स्थिर हुआ जाता है; तथा शब्द अर्थके चिंतनका या मन-वाणी-कायाके व्यापारोंमें कोई परिवर्तन नहीं किया जाता।

[क, और ख, में से 'क' भेदप्रधान है और 'ख' अभेद-प्रधान। 'क' का अभ्यास होने परही 'ख' की योग्यता प्राप्त होती है। 'ख' में मनकी चंचलता जाती रहती है, और अंतमें ज्ञानके सकल आवरण हट जानेसे 'केवलज्ञान' की प्रप्ति होती है। केवल-ज्ञान प्राप्त आत्मा 'सर्वज्ञ' कहलाता है।]

(ग) सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती—इसमें मन-वचनके व्यापारोंको सर्वथा रोककर और शरीरके स्थूल व्यापारोंको रोककर, सूक्ष्म व्यापारका आश्रय लिया जाता है। इसमें केवल श्वासोश्वास चलता रहता है। इसमेंसे पतन नहीं होता।

(घ) समुच्छिन्न क्रियानिवृत्ति—इसमें शरीरकी श्वासोश्वास आदि क्रियाएँ भी बन्द होकर आत्मप्रदेश सर्वथा निष्कम्प हो जाते हैं। इसके प्रभावसे आस्रव और बंधका निरोध होता है; कर्मोंका नाश होता है और मोक्ष मिलता है।

'ग' और 'घ' शुक्लध्यानोंमें श्रुतका अवलम्बन नहीं होता, इससे इन्हें 'अनालंबन' भी कहते हैं।—शुक्लध्यानके चार लक्षण हैं:—क्षमा, निःस्पृहता, आर्जव-सरलता और मार्दव-मानका त्याग।—शुक्लध्यानके चार आलंबन हैं:—अव्यथा—निर्भयता, मोहका अभाव, विवेक-शरीर व आत्माकी भिन्नताका ज्ञान, और व्युत्सर्ग त्याग।—शुक्लध्यानकी चार भावनाएँ हैं:—संसारके अनंत वृत्तिपनका विचार, वस्तुओंमें प्रतिक्षण होनेवाले परिवर्तनका विचार, संसारकी अशुभताका विचार, और हिंसादिसे उत्पन्न होनेवाले अनर्थोंका विचार।

व्युत्सर्ग-त्याग दो तरहका होता है—द्रव्यव्युत्सर्ग और भावव्युत्सर्ग। द्रव्यव्युत्सर्ग चार तरहका होता है:—गणव्युत्सर्ग, शरीरव्युत्सर्ग, उपधि (साधन सामग्री) व्युत्सर्ग, और आहार-पानी व्युत्सर्ग। भावव्युत्सर्ग तीन तरहका होता है:—कषाय-व्युत्सर्ग (क्रोध-मान-माया-लोभका त्याग), संसार व्युत्सर्ग-(नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवके संसारका त्याग), कर्मव्युत्सर्ग (ज्ञानावरणादि आठों कर्मोंका त्याग। देखो पेज ६३६)

७–प्रतिमा

श्रावकोंकी ग्यारह प्रतिमाएँ।–१–दर्शनप्रतिमा [सम्यक्त्व का एक महीने तक निरतिचार पालन करना] २–व्रतप्रतिमा– (स्वीकार किये हुये अणुव्रतोंका दो महीने तक निरतिचार–पालन करना) ३–सामायिक प्रतिमा (तीन महीने तक सामायिकका निरतिचार पालना) ४–पौषधप्रतिमा (चार मास तक आठम, चौदस, अमावस और पूनमके दिन पूर्णरूपसे पौषध लेना) ५–कायोत्सर्ग प्रतिमा (पाँच महीने तक स्थिर रहकर जिन भगवानका ध्यान करना, स्नान न करना, रातको भोजन न करना, दिनमें सर्वथा ब्रह्मचर्य पालना, रातमें मर्यादित ब्रह्मचर्य पालना, अपने दोषोंका निरीक्षण करना और लाँग खुली रखना) ६–ब्रह्मचर्य प्रतिमा (छः महीने तक शृंगार और संसंगका त्याग करना) ७–सचित्त आहारवर्जन प्रतिमा (सात महीने तक सचित्त वस्तु न खाना) ८–स्वयं आरम्भ वर्जन–प्रतिमा (आठ महीने तक स्वयं कोई ऐसा काम न करना जिससे पापास्त्रव हो) ९–भृतक प्रेष्यारंभ वर्जन प्रतिमा (नौ महीने तक नौकरों या अन्य लोगोंके द्वारा भी कोई ऐसा काम न कराना जिससे पापास्त्रव हो) १०–उद्दिष्ट भक्त वर्जन प्रतिमा (दस महीने तक अपने उद्देशसे बनाया हुआ भोजन न करना, सिर मुंडा हुआ रखना या सिर्फ चोटी रखना) ११–श्रमणभूत प्रतिमा (ग्यारह महीने तक साधुके समान आचरण रखना)

नई प्रतिमा धारण करने पर भी पहले की प्रतिमाएँ चालू रखी जाती हैं।

[अध्यापक बेचरदासजी दोषी द्वारा अनुवादित 'भगवान महावीरना दस उपासको' नामक गुजराती पुस्तकसे अनुवादित।]

प्रतिमा—साधुओंकी बारह प्रतिमायें। १ली प्रतिमा (गच्छ-से बाहर निकल, अलग रह, एक महीने तक अन्न और पानी की एकदत्तीके द्वारा ही जीवन-निर्वाह करना। दत्ती अर्थात दान देने वाला जब भोजन या पानी देता हो तब भोजन या पानीकी एक धार हो और उस एक धारमें जितना आवे उतना ही लेना। धार टूटनेके बाद कुछ न लेना। दूसरी प्रतिमा (दो महीने तक अन्न या पानीकी दो दत्ती लेना।) तीसरी, चौथी पाँचवीं, छठी और सातवीं प्रतिमाओंमें क्रमसे तीन, चार, पाँच छः और सात दत्तियाँ अनुक्रमसे तीन, चार, पाँच, छः और सात महीनों तक ली जाती हैं) ८ वीं प्रतिमा (सात दिन रात तक एक दिन उपवास और एक दिन आयंबिल करना, उपवास चौविहार करना, गाँवके बाहर रहना, चित या करवट लेटकर सोना, तथा उकड़ूँ बैठकर जो संकट आवे सो सहन करना। ९-वीं प्रतिमा (सात रातदिन उसी तरह उपवास और आयंबिल करना उकड़ूँ बैठना और टेढ़ी लकड़ी की तरह सोना।) १० वीं प्रतिमा (उतने ही रातदिन, उसी तरह उपवास व आयंबिल करना, गोदोहनासन या वीरासनमें रहना तथा संकुचित होकर बैठना)। ११ वीं प्रतिमा (इस प्रतिमामें छठ [यानी छः समयका भोजन छोड़ना-दो चौविआहार उपवास और अगले व पिछले दिन एकासन] करना तथा एक दिनरात गाँवके बाहर हाथ लम्बे करके खड़े हुए ध्यान करना।) १२ वीं प्रतिमा (इसमें अट्ठम यानी चौविहार तीन उपवास और अगले व पिछले दिन एकासन और एक रात नदीके किनारे किसी कगार पर खड़े होकर आँखें झप-काए बगैर ध्यान करना होता है।)

[सूचना—इन साधुप्रतिमाओंको हरेक साधु नहीं पाल सकता

लगभग दस पूर्वका धारक साधु ही इनको स्वीकार कर सकता है और पाल सकता है।]

(श्री गोपालदास जीवाभाई पटेल द्वारा सम्पादित, गुजराती भगवती-सारके पेज १७९-८० से अनुवादित)

८-भ० ऋषभदेवजीके १०० पुत्रों व २ पुत्रियोंके नाम

माता सुमंगलाकी कोखसे जन्मे हुए—पुत्री १ ब्राह्मी और ९९ पुत्र—१ भरत। २ शंख। ३ विश्वकर्मा। ४ विमल। ५ सुलक्षण। ६ अमल। ७ चित्रांग। ८ ख्यातकीर्ति। ९ वरदत्त। १० सागर। ११ यशोधर। १२ अमर। १३ रथवर। १४ कामदेव। १५ ध्रुव। १६ वत्सनंद। १७ सुर। १८ कामदेव। १९ ध्रुव। २० वत्सनंद। २१ सुर। २२ सुवृन्द। २३ कुरु। २४ अंग। २५ वंग। २६ कौशल। २७ वीर। २८ कलिंग। २९ मागध। ३० विदेह। ३१ संगम। ३२ दशार्ण। ३३ गंभीर। ३४ वसुवर्मा। ३५ सुवर्मा। ३६ राष्ट्र। ३७ सौराष्ट्र। ३८ बुद्धिकर। ३९ विविधकर। ४० सुयशा। ४१ यशःकीर्ति। ४२ यशस्कर। ४३ कीर्तिकर। ४४ सुरण। ४५ ब्रह्मसेन। ४६ विक्रांत। ४७ नरोत्तम। ४८ पुरुषोत्तम। ४९ चन्द्रसेन। ५० महासेन। ५१ नभसेन। ५२ भानु। ५३ सुकांत। ५४ पुष्पयुत। ५५ श्रीधर। ५६ दुर्दश। ५७ सुसुमार। ५८ दुर्जय। ५९ अजयमान। ६० सुधर्मा। ६१ धर्मसेन। ६२ आनंदन। ६३ आनन्द। ६४ नंद। ६५ अपराजित। ६६ विश्वसेन। ६७ हरिषेण। ६८ जयविजय ६९ विजय। ७० विजयंत। ७१ प्रभाकर। ७२ अरिदमन। ७३ मान। ७४ महाबाहु। ७५ दीर्घबाहु। ७६ मेघ। ७७ सुघोष। ७८ विश्व। ७९ वराह। ८० सुसेन। ८१ सेनापति। ८२ कुंजर-

वल । ८३ जयदेव । ८४ नागदत्त । ८५ काश्यप । ८६ वल । ८७ वीर । ८८ शुभमति । ८९ सुमति । ९० पद्मनाभ । ९१ सिंह । ९२ सुजाति । ९३ संजय । ९४ सुनाम । ९५ मरुदेव । ९६ चित्त-हर । ९७ सरवर । ९८ दृढरथ । ९९ प्रभंजन । माता सुनंदासे जन्मे—१ पुत्र बाहुवली । १ पुत्री सुंदरी ।

९–लिपियाँ

भगवान आदिनाथने अपनी ज्येष्ठपुत्री ब्राह्मीको नीचे लिखी १८ लिपियाँ सिखाई थीं—

१–ब्राह्मी, २–जवणाणिया (यवनानी ?) ३–दोसापुरिया, ४–खरोष्ट्री, ५–पुक्खरसारिया (पुष्करसारिका), ६–भोगवइया, ७–पहराइया, ८–अंतक खरिया, ९–अक्खर पुट्ठिया, १०–वेणइया, ११–निण्हइया, १२–अंकलिवि, १३–गणितलिवि, १४–गांधर्वलिवि, १५–आयंसलिवि, १६–माहेश्वरी, १७–दोमीलिवि, १८–पोलिंदी ।

पन्नवणासूत्रमें लिखा है कि–ये अठारहों लिपियाँ ब्राह्मी, लिपिके अन्तर्गतही गिनी जाती थीं । विशेषावश्यककी टीकामें इन लिपियोंके नाम भिन्न हैं । वे ये हैं—

१–हंस लिपि, २–यक्षो लिपि, ३–भूत लिपि, ४–राक्षसी लिपि, ५–उड्डी लिपि, ६–यवनीलिपि, ७–तुरुक्की लिपि, ८–कीरीलिपि, ९–द्रविडीलिपि, १०–सिंधवीयलिपि, ११–मालवीनीलिपि, १२–नटी लिपि, १३–नागरी लिपि, १४–लाट लिपि, १५–पारसी लिपि, १६–अनिमित्ती लिपि, १७–चाणक्य लिपि, १८–मूलदेवी लिपि ।

[अध्यापक वेचरदासजी द्वारा अनुवादित गुजराती 'महावीरनी धर्मकथाओ' नामक पुस्तक से ।]

१०-शीलांगके १८००० भेद

१० यतिधर्म

क्षमा	मार्दव	आर्जव	मुक्ति	तप	संयम	सत्य	शौच	अकिंचनत्व	ब्रह्मचर्य
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०

१० स्थावरादि

पृथ्वी	अप्	तेज	वायु	वनस्पति	दो इं०	ती० इं०	चा० इं०	पां० इं	अजीव
५ स्थावर					४ त्रस				१
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०

५ इन्द्रियाँ					४ संज्ञाएँ			
श्रोत्रेंद्रिय निग्रह	चक्षु-इन्द्रिय निग्रह	घ्राणेंद्रिय निग्रह	रसनेंद्रिय निग्रह	स्पर्शेंद्रिय निग्रह	आहार संज्ञा	भय संज्ञा	मैथुन संज्ञा	परिग्रह संज्ञा
१००	१००	१००	१००	१००	५००	५००	५००	५००

३ योग			३ करण		
मन-योग	वचन-योग	काय-योग	न करना	न कराना	न अनुमोदन देना
२०००	२०००	२०००	६०००	६०००	६०००

मुनि—क्षमावान, पृथ्वीकाय-संरक्षक, श्रोत्रेंद्रियको वशमें करनेवाला, आहारसंज्ञा-रहित, मनसे (पापव्यापार) न करे। इसी तरह मुनि मार्दव-युक्त, पृथ्वीकाय-संरक्षक, श्रोत्रेन्द्रियको वशमें करनेवाला, आहारसंज्ञा-रहित, मनसे (पापव्यापार) न करे। इसी तरह यतिधर्मके दूसरे आठ भेद गिननेसे कुल १० भेद होते हैं। इन १० भेदोंको पृथ्वीकायकी तरह ही अप्काय आदि मिलानेसे १०×१०=१०० भेद हुए। ये सौ भेद श्रोत्रेंद्रिय आदि ५ इन्द्रियोंके संयोगसे (१००×५)=५०० भेद हुए। ये पाँच सौ भेद आहार आदि ४ संज्ञाओंके संयोगसे (५००×४)=२००० भेद हुए। ये दो हजार भेद मन आदि ३ योगोंके संयोगसे (२०००×३) =६००० भेद हुए। और ये छः हजार भेद न करना आदि ३ करणोंके संयोगसे (६०००×३)=१८००० भेद हुए। इस तरह शीलांगके अठारह हजार भेद होते हैं।

३ करण, ३ योग, ४ संज्ञाएँ, ५ इन्द्रियाँ और १० पृथ्वीकाय आदि (५ स्थावर, ४ त्रस और १ अजीव) और १० यति धर्म; इन सबको आपसमें गुणनेसे १८००० होते हैं। ये ही शीलांगके अठारह हजार भेद हैं।

गुणाकार-(३×३=६×४=३६×५=१८०×१०=१८००×१०=१८०००)

"जोए करणे सन्ना, इन्दिय भोमाइ समणधम्मे य।
सीलंग-सहस्साणं, अट्ठारस-सहस्स णिप्फत्ती ॥"

(दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा १७७)

११–संगमदेवकृत उपसर्ग

महावीर स्वामी अट्ठम तप सहित पेढ़ाला नामक गाँवके पोलास नामक चैत्यमें एक शिला पर रातमें ध्यानमग्न थे। उस

समय धर्मेन्द्रने अपनी सभामें महावीर प्रभुके धैर्यकी प्रशंसा की। सभामें संगम नामका एक देव था। उसने भगवानको धैर्य से डिगानेका निश्चय किया। वह ध्यानमग्न प्रभुके पास आया। उसने प्रभुपर एक रातमें २० तरहके उपसर्ग किए। उनमें से अठारह शरीरको पीड़ा पहुँचानेवाले थे और दो शरीरको शांति देनेवाले थे। मगर प्रभु ध्यानसे चलित नहीं हुए। जब वहाँसे प्रभुने विहार किया, तब भी संगम छः महीने तक लगातार प्रभुके शरीर को पीड़ा पहुँचाता रहा; मगर प्रभु नहीं घबराए। अन्तमें वह हारकर प्रभुसे क्षमा माँगकर चला गया। "इसने कितने बुरे कर्म बाँधे हैं" यह विचारकर प्रभुकी आँखोंमें करुणाके कण आ गए।

१२–भगवान ऋषभदेवजी और अजितनाथजीसे सम्बन्ध रखनेवाली मुख्य मुख्य बातें।

मुख्य बातें	ऋषभदेवजी	अजितनाथजी
१. च्यवनतिथि	आषाढ़ वदी ४	वैशाख सुदी १३
२. किस विमानसे	सर्वार्थसिद्धि	विजयविमान
३. जन्मनगरी	विनीता	अयोध्या
४. जन्मतिथि	चैत्र वदी ८	माघ सुदी ८
५. पिताका नाम	नाभिकुलकर	जितशत्रु
६. माताका नाम	मरुदेवी	विजया
७. जन्मनक्षत्र	उत्तराषाढा	रोहिणी
८. जन्मराशि	धन	वृष
९. लक्षणनाम	वृषभ	हस्ति

मुख्य बात	ऋषभदेवजी	अजितनाथजी
१०. शरीरमान	५०० धनुष	४५० धनुष
११. आयुमान	८४ लक्ष पूर्व	७२ लक्ष पूर्व
१२. शरीरका वर्ण	सुवर्ण वर्ण	सुवर्ण वर्ण
१३. पदवी	राजपदवी	राजपदवी
१४. विवाहित या अविवाहित	विवाह हुआ	विवाह हुआ
१५ कितनोंके साथ दीक्षा	४००० साधु	१००० साधु
१६. दीक्षानगरी	विनीता	अयोध्या
१७. दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास
१८. प्रथम पारनेमें क्या आहार मिला	इक्षुरस	परमान्न क्षीर
१९. पारनेका स्थान	श्रेयांसके घर	ब्रह्मदत्तके घर
२०. कितने दिनके बाद पारणा	एक वर्ष के बाद	दो दिन के बाद
२१. दीक्षातिथि	चैत्र वदी ८	माघ सुदी ९
२२. छद्मस्थकाल	१००० वर्ष	१२ वर्ष
२३. ज्ञान प्राप्ति स्थान	पुरिमताल	अयोध्या
२४. ज्ञानतप	तीन उपवास	दो उपवास
२५. दीक्षावृक्ष	वट वृक्ष	साल वृक्ष
२६. ज्ञानतिथि	फाल्गुन वदी ११	पौष वदी ११
२७. गणधरसंख्या	८४	९५
२८. साधुओंकी संख्या	८४०००	१०००००
२९. साध्वियोंकी संख्या	३०००००	३३००००

३०. वैक्रियलब्धिवंत	२०६००	२०४००
३१. वादियोंकी संख्या	१२६५०	१२४००
३२. अवधिज्ञानियोंकीसँ	६०००	६४००
३३. केवली संख्या	२००००	२२०००
३४. मनःपर्यंव संख्या	१२७५०	१२५५०
३५. चौदह पूर्वी संख्या	४७५०	३७२०
३६. श्रावक संख्या	३५००००	२६८०००
३७ श्राविका संख्या	५५४०००	५४५०००
३८. शासनयक्षनाम	गोमुखयक्ष	महायक्ष
३९. शासनयक्षिणी	चक्रेश्वरी	अजितबला
४०. प्रथम गणधरनाम	पुंडरीक	सिंहसेन
४१. प्रथम आर्यानाम	ब्राह्मी	फाल्गु
४२. मोक्षस्थान	अष्टापद	सम्मेदशिखर
४३. मोक्षतिथि	माघ वदी १३	चैत्र सुदी ५
४४. मोक्षसंलेषणा	६ उपवास	१ मास
४५. मोक्षआसन	पद्मासन	कायोत्सर्ग
४६. अंतरमान	... ...	५० लाख कोटि सागर
४७. गणनाम	मानव गण	मानव गण
४८. योनि नाम	नकुल योनि	सर्प योनि
४९. मोक्ष परिवार	१००००	१०००
५०. सम्यक्त्वके बाद भवसंख्या	तेरह भव	तीन भव
५१. कुल नाम	इक्ष्वाकु कुल	इक्ष्वाकु कुल
५२. गर्भकालमान	नौ माह चार दिन	८ माह २५ दिन

कोश

(शब्दोंके आगे जो संख्याएँ दीगई हैं, वे पुस्तकके पेजोंकी हैं)



शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७	१६	हा	हो
,,	१६	आर	और
३५	१६	अद्भुत	अद्भुत
३६	८	पवत	पर्वत
३८	११	कुऐं	कुएँ
४७	१५	वगैरही	वगैरही
५८	१२ वीं	पंक्ति के आगे	पाँचवाँ भव
७५	६	पाँचवाँ	छठा
८५	१	छठा	सातवाँ
८५	७	सातवाँ	आठवाँ
८५	११	आठवाँ	नवाँ
६४	१	नवाँ	दसवाँ
६४	१०	दसवाँ	ग्यारहवाँ
६५	इसमें टिप्पणी नं० २ है उसे ६६ वें पृष्ठकी और ६६ वें पृष्ठकी को ६५ वें पृष्ठकी टिप्पणी नं० २ समझें		
१२५	१३ वीं	पंक्तिके आगे	'प्रथम कुलकर'
१३२	१७	सवा पांचसौ	सवा पांच सौ धनुष
१३७	२०	अपने	आपने
१६०	१६	भक्ति से	भक्तिसे
१६३	४	लड्डू	लड्डू
१६३	१४	टपकरी	टपकती

२०९	२३	क्रमासे	कर्मांसे
२३९	१३	जिह्वाला	चिह्नवाला
२४०	४	क्रिए	क्रिया
२७२	२०	धर्मसेमें	धर्ममें
२७४	८	(दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी और चतु०)	(अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमा०)
२८४	१०	आसमान	असमान
२८६	२१	वद्धकी	वर्द्धकी
२९०	१०	अकाशमें	आकाशमें
२९०	१३	तरगें	तरंगें
२९०	२०	दढके	दंडके
२९१	११	वाण	वाण
२९१	१६	दढ	दंड
२९३	१८	तीथ	तीर्थ
२९५	६	सप	सर्प
३०२	७	पूण	पूर्ण
३०२	१७	कीमता	कीमती
३०३	११	समथ	समर्थ
३०५	८	आर	और
३०८	१७	हाथक	हाथके
३०९	१०	सूयके	सूर्यके
३०९	२४	बगीचेको	बगीचेके
३१२	१०	प्रेतराजाओंको	प्रेतराजको
३१४	२	चलाता था	चलता था

३१६	१३	कुलदेवताका	कुलदेवोंका
३१६	१५	कापे	काँपे
३१७	१०	तिस्कार	तिरस्कार
३२०	२०	विरोधा	विरोधी
३३१	६	नैसर्प	नैसर्ग
३३३	७	अप्सराओंसे	अप्सराओंके
३३६	२४	नरमुड	नरमुंड
३३६	१७	सात	साथ
३५३	६	अपने	आपके
३६१	२	मारनेवाली	मारनेवाला
३६२	१	सुवेश	सुवेग
३६३	१४	सुवेश	सुवेग
३६६	८	शौयवान	शौर्यवान
३६६	१२	तरंगोंकेसे	तरंगोंसे
४०८	२	भार्थोंसे	भार्थोंमें
४०६	१५	करके	करने
४१४	६	जसे	जैसे
४३४	२	चद्र	चंद्र
४४०	१	ऋपभदेवज	ऋपभदेवजी
४४६	१५	चाँदीकी	चाँदीका
४५०	११	उए	गए
४५३	१८	आधाकमी	आधाकर्मी
४५८	६	महान	माहना
५८१	५	निर्माण	निर्वाण
४८४	२४	हृदयका	हृदयका

४६८	१६	सिद्धाथा	सिद्धार्थां
५०३	११	साथ साथ लेकर	साथ लेकर
५०६	८	स्वर्ण कंकड़ो	स्वर्ण कंकणों
५०८	१५	विश्वपर	विश्व पर
५०६	४	आचार्य	× × ×
५१७	१८	पीनेमें	पीने
५२३	८	अधकूपमें	अंधकूपमें
५२४	१६	वसेही	वैसे ही
५२७	११	वस्तुओंका	वस्तुओंको
५२७	२२	जिसको	जिससे
५२८	१२	वें-सोचे	वेसोचे
५३१	३	जली	चली
५४२	१६	आचार्य	× ×
५५४	११	तरक	तरह
५६४	८	वठा था	वैठा था
५६५	१७	अपना	अपने
५६८	१	साँथियोंसे	साथियोंसे
५६६	६	ऊँजाई	ऊँचाई
५६२	२०	सद्मीने	लद्मीने
५६३	१८	आचार्य	× × ×
५६४	३	प्रभुकी	प्रभुका
६०८	१२	ससारसमुद्र	संसार समुद्र
६२७	११	पाए	पापको
६४३	२०	नरकावासा	नरकावास
६४५	१६	गातरति	गीतरति

६४६	२३	वण	वर्ण
६५३	६	षचास	पचास
६५४	१०	याजन	योजन
६५४	१८	उन	उनमेंसे
६६०	८	दरजा	दरजी
६६१	१२	अतरद्वीप	अंतर्द्वीप
६६३	८	पर्यकासन	पर्यंकासन
६६६	२४	चौतास	चौतीस
६७१	१०	स्वर्गामें	स्वर्गोमें
६७६	११	विपुल	विपुला
६८२	१	धम	धर्म
७०४	६	विस्तार	विस्तर
७३४	२१	यहाँ	जहाँ
७४०	१८	बहुश्रत	बहुश्रुत
७५२	१	दिशा	दशा
७६५	२२	छोड़ हो	छोड़ दो
७६६	६	थीड़ी	थोड़ी
७७०	१२	छड़ीदाने	छड़ीदार ने
७७७	२२	आार	और
७७८	२०	ही	हो
७८४	२१	ती	तो
७८७	२०	माग	मार्ग

卐

हमारे प्रकाशन

१—श्री सूत्रकृताङ्गसूत्रम् भाग १ (सटीक) ४-०-०

२—श्री सूत्रकृताङ्गसूत्रम् भाग २ (सटीक) ३-०-०

३—श्री पंचप्रतिक्रमणसूत्र सार्थ (गुजराती)
विवेचनसहित, पृष्ठ ६४० २-०-०

४—नामांकित नागरिक, शेठ मोतीशाह
(गुजराती) २-८-०

५—Jainism in Gujarat
(1100 A. D. To 1600 A. D.) 6-0-0

६—श्रीमद्भगवतीसूत्रम् (पञ्चदशं गोशालकाख्यं शतकम्)
अभयदेवसूरि-विरचित वृत्तिसहित २-८-०

७—Bhagavatisutram. Gosalamatam
(XV Sataka. Text with the Sanskrit Gloss
By Abhayadevasuri and two Appendices)
2-8-0

८—Uttaradhyayanasutram.
The First Mulasutra of the Jain Canon:
Complete Text only Edited By R. D.
Vadekar & N. V. Vaidya. 2-0-0

श्री गोडीजी महाराज जैनमंदिर और धार्मिक-विभागोंके ट्रस्टी,
नं० १२, पायधुनी, बंबई-३